बृहत्

विश्व

सूक्ति

कोश

तृतीय खंड

संपादक: डा. श्याम बहादुर वर्मा

सहसंपादक: मधु वर्मा

भूमिका
(तृतीय खंड)

ज्ञान ही मानव को अंधकार से प्रकाश की ओर तथा मरणशीलता से अमरता की ओर ले जाने में समर्थ है। उत्कृष्ट ज्ञान साधना से प्राप्त होता है और साधना के शिखर पर पहुँचे महान व्यक्तियों के ज्ञान का प्रसाद मिल पाना भी सौभाग्य से ही संभव होता है। ज्ञान से जीवन-दृष्टि निर्मल होती है और जीवन-शक्ति का विकास तथा सदुपयोग करने में मानव सक्षम होता है। महान जीवन-दृष्टि को व्यक्त करने वाले उदात्त विचारों, भव्य कल्पनाओं, अमूल्य अनुभवों, सरस अनुभूतियों आदि को जन-जन तक पहुँचाने के लिए विद्वान उत्कृष्ट साहित्य की रचना करते हैं। हमारे सौभाग्य से आज यह वाङ्मय अत्यंत विशाल है। विश्व की शत-शत भाषाओं में बिखरा हुआ तथा विशाल होने के कारण उसका अध्ययन किसी भी एक मानव के लिए प्रायः असंभव ही है। किन्तु उस साहित्य की सार रूप उक्तियों का, पुष्पों के मधु के समान, रसास्वादन कर सामान्य मानव भी दिव्य आनन्द प्राप्त कर सकता है। ये सूक्तियाँ हृदयग्राही, प्रेरक, कालजयी और उदात्त होती हैं। वे अपने रचयिता विद्वानों को ही नहीं, अपने अध्येताओं और प्रयोग-कर्ताओं को भी लाभान्वित करती हैं। जैसे इन सूक्तियों के कारण रचयिता विद्वानों को 'राजमान्यता' और 'लोकमान्यता' प्राप्त होती है, वैसे ही उनके प्रयोक्ता लेखकों, वक्ताओं इत्यादि को वाग्विदग्धता, विद्वत्ता व यश की प्राप्ति होने से, राजमान्यता तथा लोकमान्यता के द्वार खुलते हैं।

'बृहत् विश्व सूक्ति कोश' में ऐसी महत्त्वपूर्ण सूक्तियों का विपुल भंडार है। जीवन-दृष्टि के उपयोगी सूत्रों से पूर्ण तथा जीवन-संघर्ष में विजय पाने के लिए आवश्यक प्रेरणा व जीवन-शक्ति में समृद्ध सूक्तियों का यह कोश आदि से अंत तक वर्तमान भारत की सांस्कृतिक आवश्यकताओं के अनुरूप ही साजा-सँवारा गया है। अतः निस्सन्देह प्रथम व द्वितीय खंड के समान ही तृतीय खंड में भी सहृदय पाठकों को उपयोगी तथा भव्य सामग्री मिलेगी।

ग्रंथ की भूमिका में, जो प्रथम खंड में दी गयी है, तथा द्वितीय खंड की भूमिका में भी, ग्रन्थ के स्वरूप तथा उपयोग-विधि पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यहाँ भी उसी दृष्टि से निम्नलिखित बातों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना हमें आवश्यक प्रतीत हो रहा है।

समय-सम्बंधी सूचना

प्रस्तुत ग्रन्थ में सर्वत्र (तीनों खंडों में) ईस्वी सन् का ही प्रयोग किया गया है। परिशिष्ट-१ में लेखकों के जन्म-वर्ष तथा मृत्यु-वर्ष दोनों ही यथासंभव दिए गए हैं। ऐसा न होने पर अधिकतम उपलब्ध जानकारी दी गयी है। दिए वर्ष की अनिश्चितता होने पर उसे प्रश्नवाचक चिह्न द्वारा सूचित भी कर दिया गया है। ग्रन्थों का रचना-काल भी इसी प्रकार दिया गया है। वेद, उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रन्थों तथा कालिदास, शंकराचार्य सदृश लेखकों के काल के विषय में आधुनिक विद्वानों में गहरा मतभेद है। अतः इनके समय की अनिश्चितता भी इंगित कर दी गयी है।

श्रीकृष्ण, बुद्ध और महावीर

श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध तथा महावीर स्वामी की वाणी क्रमशः गीता, अनेक बौद्ध ग्रन्थों तथा अनेक जैन ग्रंथों में सुरक्षित मिलती है। तीनों खंडों के परिशिष्ट-१ का अवलोकन इस दृष्टि से उपादेय है। 'गीता' के अन्तर्गत जो पृष्ठ-संख्याएँ दी गयी है, उनमें प्रायः श्रीकृष्ण-वाणी है, केवल कुछ सूक्तियाँ अर्जुन अथवा संजय की वाणी हैं। इसी प्रकार बुद्ध-वाणी के लिए 'त्रिपिटक' में समाविष्ट अनेकानेक ग्रन्थों में से दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुत्त-निकाय, अंगुत्तरनिकाय, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, जातक इत्यादि की सूक्तियाँ अवलोकनीय हैं। तीर्थंकर महावीर की वाणी आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग आदि के अन्तर्गत द्रष्टव्य है।

बाइबिल तथा क़ुरान की सूक्तियाँ

ईसाई धर्मग्रन्थ 'बाइबिल' नाम से प्रसिद्ध है किन्तु वस्तुतः वह दो ग्रन्थों का सम्मिलित नाम है—१. नवविधान (न्यू टेस्टामेंट) तथा २. पूर्वविधान (ओल्ड टेस्टामेंट)। प्रस्तुत ग्रन्थ मे 'नवविधान' तथा 'पूर्व-विधान' के अन्तर्गत अनेक सूक्तियाँ संकलित है। इसी प्रकार इस्लाम के आधारभूत धर्मग्रन्थ 'क़ुरान' की अनेक सूक्तियाँ भी ग्रंथ में द्रष्टव्य हैं।

परिशिष्ट-१ की पूरक सामग्री

तीनों खंडों के परिशिष्ट-१ में विविध प्रकार के कुछ नामों का समावेश नहीं किया गया था। परिशिष्ट-१ की यह पूरक सामग्री अधोलिखित है—

एक अंग्रेजी प्रकाशन द्वारा आयोजित 'मित्र' की सुन्दरतम परिभाषा पर आयोजित प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त परिभाषा

द्वितीय खंड—पृष्ठ ८३७

एक महात्मा ('तत्त्वकथा' पुस्तक के लेखक)

द्वितीय खंड—४६०, ५१७, ७९३, ७९६

एक शिंतो प्रार्थना

द्वितीय खंड—६४१

एक संत ('जीवन-दर्शन' पुस्तक के लेखक)

द्वितीय खंड—५७८, ८०३
तृतीय खंड—१२०२

एक गुजराती गीत

तृतीय खंड—१०१७

ग्रामगीत अथवा लोकगीत (हिन्दी)

प्रथम खंड—२००
द्वितीय खंड—५७१, ५८२, ८२२
तृतीय खंड—१३३३

फ़्रांस में राजा की मृत्यु और उत्तराधिकारी के राजा बनने की घोषणा पर उद्घोषकों की उक्ति

तृतीय खंड—९२१

फ़्रांसीसी राज्यक्रान्ति का नारा

प्रथम खंड—३५६

भारतीय संस्कृत परिषद्, लखनऊ के कार्यालय के मुख्य द्वार पर अंकित

तृतीय खंड—११७२

महाराष्ट्र में पेशवा-काल की एक राजाज्ञा

तृतीय खंड—१०४१

लुई १६ के शासन-काल में प्रारंभ फ़्रांसीसी उक्ति

तृतीय खंड— ९१३

संस्कृत-पत्रिका 'भवितव्यम्' का ध्येयवाचक श्लोक

तृतीय खंड—११७२

'स्टेट्समैन' पत्र का संपादकीय लेख

तृतीय खंड—१११५

एक नाम के दो लेखक

परिशिष्ट-१ से ज्ञात होगा कि एक ही नाम के दो लेखकों की भिन्न-भिन्न सूक्तियों को ग्रंथ में स्थान मिला है। ऐसे स्थानों पर सूक्ति के लेखक का ठीक परिचय परिशिष्ट-१ से ज्ञात करने में पृष्ठ-संख्या सहायता देगी। ऐसे लेखकों में दरिया साहब, जयदेव, धनंजय, पुष्पदंत, रामचन्द्र शुक्ल, हरिदास आदि के नाम ध्यान देने योग्य हैं। उदाहरणार्थ, प्रथम खंड के पृष्ठ ६२-६३ पर **'अस्पृश्यता-निवारण' शीर्षक में दी गयी सूक्ति**

"एक दिन हम भी किसी के लाल थे
आँख के तारे किसी के थे कभी
........................."

को हिन्दी के प्रसिद्ध इतिहासकार व समीक्षक आचार्य **रामचन्द्र शुक्ल** (१८८१-१९४१) की रचना समझने का भ्रम हो सकता है (जैसा महान विद्वान श्री रामनरेश त्रिपाठी को भी हुआ था)। यह उनसे भिन्न विद्वान **रामचन्द्र शुक्ल** (१८९४-१९७६) की रचना है। परिशिष्ट-१ में परिचय देते समय यही भेद बताने के लिए प्रायः जयदेव-१, जयदेव-२ इत्यादि लिखा गया है।

पाठकों से अनुरोध

पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे तीनों खंडों की भूमिकाओं तथा परिशिष्ट को देखकर ग्रंथ का पूर्ण लाभ उठाएँ।

हमारा यह भी अनुरोध है कि पाठक हमें पत्र लिखकर 'बृहत् विश्व सूक्ति कोश' के सम्बन्ध में अपने विस्तृत विचारों तथा उपयोगी सुझावों की जानकारी दें। तदर्थ हम उनके प्रति कृतज्ञ रहेंगे।

हमें विश्वास है कि सहृदय पाठकों के सहयोग से ग्रंथ को भविष्य में और भी समृद्ध किया जा सकेगा।

संकल्प की पूर्ति

तृतीय खंड की समाप्ति से ग्रंथ की समाप्ति होते देखकर, अपने संकल्प की पूर्ति पर हमें हार्दिक संतोष तथा आनन्द है। वर्षों व्यस्त रखने वाले 'बृहत् विश्व सूक्ति कोश' के इस आनन्ददायक कार्य से विदा लेते समय हमें एक विलक्षण रिक्तता का भी अनुभव हो रहा है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत तुकाराम की निम्नलिखित पंक्तियों का अर्थ अब कुछ अधिक स्पष्ट होता जा रहा है—

उद्योगाची धांव बैसली आसनीं
पडिलें नारायणी मोटक हें।
सकळ निश्चिती झाला ही मखसा
नाहीं गर्भवासा येणें ऐसा।
आपुलिया सत्ते नाहीं आम्हा जिणें
अभिमानं तेणे नेला देवें।
तुका म्हणे चले एकाचिये सत्ते
आपुले मी रितेपणे असें॥

[अब उद्योगों की दौड़ शांत हो गयी है। परमात्मा ने यह गठरी ठीक से बांध दी है। मैं पूर्णतः निश्चित हो गया हूँ और यह विश्वास हो गया है कि अब मेरा गर्भवास छूट गया। अब मैं अपनी सत्ता से जीवित नहीं हूँ। भगवान ने मेरा यह अभिमान छीन लिया है। अब सब एक ही सत्ता से चलता है। मैं अब रिक्त-सा हो गया हूँ।]

ओ३म् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

नयी दिल्ली
चैत्र शुक्ल पंचमी, संवत् २०४२ विक्रमी

श्याम बहादुर वर्मा
मधु वर्मा

विषयानुक्रमणिका

तृतीय खंड

(र से ह)

ह

र

रक्षा

बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षताम् ।
ज्ञान और विज्ञान तेरी रक्षा करें ।

—अथर्ववेद (८।१।१३)

मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः ।
अभीक्ष्णदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचैलतः ॥
भली प्रकार सँभाल कर रखने से अनाज की रक्षा होती है। फेरने से घोड़े सुरक्षित रहते हैं। बारंबार देख-भाल करने से गौओं की तथा मैले वस्त्रों से स्त्रियों की रक्षा होती है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३४।४०)

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ॥
आपत्ति के लिए धन की रक्षा करें। धन के द्वारा भी स्त्री की रक्षा करे। स्त्री एवं धन दोनों के द्वारा सदा अपनी रक्षा करे।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३७।१८)

सत्यन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥
सत्य से धर्म की रक्षा होती है। योग से विद्या सुरक्षित होती है। सफाई से रूप की रक्षा होती है। सदाचार से कुल की रक्षा होती है।

—वेदव्यास (महाभारत,उद्योग पर्व, ३६।३४)

वित्तेन रक्ष्यते धर्मो, विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृदुना रक्ष्यते भूपः, सत्स्त्रिया रक्ष्यते गृहम् ॥
धन से धर्म की रक्षा की जाती है, योग अर्थात् अभ्यास से विद्या की रक्षा होती है, कोमलता से राजा की रक्षा होती है और श्रेष्ठ स्त्री द्वारा घर की रक्षा होती है।

—चाणक्यनीति

जाको राखै साइयां मार न सकिहै कोय ।
बार न बांका कर सकै जो जग बैरी होय ॥

—कबीर

रक्षा का पहला साधन तो अपने हृदय में पड़ा है। वह है ईश्वर में सरल श्रद्धा, दूसरा है पड़ोसियों की सद्भावना।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन, भाग १, ४४३)

सिर सलामत तो पगड़ी हज़ार।

—हिंदी लोकोक्ति

रचना

रसवद्वचना रचना रचना
विगुणा रचना त्वरुचिन्यसना ।
सरस वाक्यों वाली रचना ही रचना है, गुणहीन रचना तो अरुचि उत्पन्न करने वाली है।

—भट्ट मथुरानाथ शास्त्री (गोविंदवैभव, पृ० ९१)

रजोगुण

दे० 'त्रिगुण'

रत्न

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥
पृथ्वी पर तीन रत्न हैं—जल, अन्न और सुभाषित। मूर्ख लोग ही पाषाण-खण्डों को रत्न नाम देते हैं।

—चाणक्यनीति

रस

रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।
वही (ब्रह्म) रस है। इस रस को प्राप्त करके ही जीवात्मा आनन्दयुक्त होता है।

—तैत्तिरीयोपनिषद् (२।७।२)

लक्ष्मीरिव विना त्यागान्न वाणी भाति नीरसा ।

विना त्याग के धन की शोभा नही होती । और रसहीन वाणी की भी शोभा नही होती।

—अग्निपुराण (३३६।६)

विभानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः ।

विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों के संयोग से रस-निष्पत्ति होती है ।

—भरत (नाट्यशास्त्र, ६।३२ के पश्चात्)

अस्तु वस्तुषु मा वा भूत कविवाचि रसः स्थितः ।

किसी वस्तु मे रस हो या न हो, किन्तु कवि की वाणी में रस होना चाहिए ।

—पाल्यकीर्ति (राजशेखर कृत काव्यमीमांसा में उद्धृत)

यथा तथा वास्तु वस्तुनोरूपं, वक्तृप्रकृतिविशेषायत्ता तु रसवन्ता । तथा च यमर्थं रक्तः स्तौति तं विरक्तो विनिन्दति मध्यस्थस्तु तत्रोदास्ते ।

वस्तु का रूप चाहे कैसा भी हो, सरसता तो कवि की प्रकृति के आधार पर है। अनुरक्त व्यक्ति जिस वस्तु की प्रशंसा करता है, विरक्त व्यक्ति उसी की निन्दा करता है और मध्यस्थ व्यक्ति उस संबंध में उदासीन रहता है ।

—पाल्यकीर्ति (काव्यमीमांसा में उद्धृत)

चतुर्वर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम् ।
काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते ॥

काव्यामृत का रस काव्य को समझने वालों (सहृदयों) के अन्तःकरण में चतुवर्ग रूप फल के आस्वाद से भी बढ़कर चमत्कार को उत्पन्न करता है ।

—कुंतक (वक्रोक्तिजीवित)

असभ्यपरिपाटिकामधिरोति शृंगारिता
परस्परतिरस्कृतिं परिचिनोति वीरायितम् ।
विरुद्धगतिरद्भुतस्तदलमल्पसारैः परैः
शमस्तु परिशिष्यते शमितचित्तखेदो रसः ॥

शृंगार रस असभ्यों के व्यवहार का प्रतीक बनता है । वीररस आपसी तिरस्कार का परिचय कराता है । अद्भुत रस प्रत्यक्ष-विरुद्ध (अनहोनी) बातों का आश्रय लेकर चलता है । अल्परस वाले इतर रसों से क्या लाभ हो सकता है ? अन्त में चित्त के खेद को शान्त करने वाला केवल एक शान्त रस ही सही बचता है ।

—कवि तार्किक

नमोऽस्तु साहित्यरसाय तस्मै निषिक्तमन्तः पृषताऽपि यस्य ।
सुवर्णतां वक्त्रमुपैति साधोर्दुर्वर्णतां याति च दुर्जनस्य ॥

उस साहित्य-रस को मैं नमस्कार करता हूँ जिसका एक कण भी अन्त.करण को स्पर्श करे तो सहृदयों का मुख सुवर्णता को प्राप्त करता है और दुर्जन का मुख विवर्णता को प्राप्त होता है।

—परिमल पद्मगुप्त (नवसाहसांकचरित, १।१४)

स्वादुरम्लोऽथलवणो कटुकस्तिक्त एव च ।
कषायश्चेति षट्कोऽयं रसानां संग्रहः स्मृतः ॥

मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय छह रस हैं ।

—चरक संहिता (सूत्रस्थान, प्रथम अध्याय)

संसार-विषवृक्षस्य द्वे रस फले ह्यमृतोपमे ।
काव्यामृतरसास्वादः संगतिः सुजनैः सह ॥

संसार रूपी विष-वृक्ष के दो फल अमृत तुल्य हैं—काव्यामृत के रस का आस्वाद और सज्जनों की संगति ।

—अज्ञात

जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (रस-मीमांसा, पृ० ५)

रस का पूर्ण चमत्कार समरसता में होता है।

—जयशंकर प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ७५)

रस और भाव

न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः ।
भाव्यते रसा एभि भाव्यन्ते च रसा इति ॥

'रस' भावहीन नहीं है और 'भाव' भी रस से रहित नहीं है, क्योंकि इन भावों से रस की भावना होती है। 'भाव्यन्ते रसा एभि:' (अर्थात् इनके द्वारा रस भावित होते हैं) इस व्युत्पत्ति के अनुसार वे 'भाव' कहे गये हैं।

—अग्निपुराण (३३९।१२)

न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।
परस्परकृता सिद्धिस्तयोरभिनये भवेत्॥

रस भावहीन नहीं होता तथा रसहीन भाव नहीं होता। इनके परस्पर संबंध से अभिनय में सिद्धि होती है।

—भरत (नाट्यशास्त्र, ६।३७)

यथा बीजाद् भवेद् वृक्षो वृक्षात् पुष्पं फलं यथा।
तथा मूलं रसाः सर्वे तेभ्यो भावा व्यवस्थिताः॥

जैसे बीज से वृक्ष और फिर उससे पुष्प व फल होते हैं, वैसे ही रस मूल हैं, उन्ही पर भावों की स्थिति होती है।

—भरत (नाट्य शास्त्र, ६।३९)

रसज्ञता

चदुवदि यॆंत कल्गिन रसज्ञत।
मिंचुक चालकुन्न या चदुवु निरर्थकंवु।

कितना भी पांडित्य हो, थोड़ी सी रसज्ञता की कमी से निरर्थक हो जाता है।

[तेलुगु] —मारन वेंकटय्या (भास्करशतकमु)

रसवाद

रसवाद में वासनात्मकतया स्थित मनोवृत्तियाँ, जिनके द्वारा चरित्र की सृष्टि होती है, साधारणीकरण के द्वारा आनन्दमय बना दी जाती हैं, इसलिए वह वासना का संशोधन करके उनका साधारणीकरण करता है। इस समीकरण के द्वारा जिस अभिन्नता की रससृष्टि वह करता है, उसमें व्यक्ति की विभिन्नता, विशिष्टता हट जाती है, और साथ ही सब तरह की भावनाओं को एक धरातल पर हम एक मानवीय वस्तु कह सकते हैं। सब प्रकार के भाव एक दूसरे के पूरक बनकर, चरित्र और वैचित्र्य के आधार पर रूपक बनाकर, रस की सृष्टि करते हैं। रसवाद की यही पूर्णता है।

—जयशंकर प्रसाद (काव्य,और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ८५)

रसानुभूति

रस की अनुभूति एक प्राकृतिक और स्वाभाविक अनुभूति है जो किसी प्रकार के उत्कृष्ट काव्य द्वारा भी हो सकती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (सूरदास, पृ० ३७)

रसानुभूति प्रत्यक्ष या वास्तविक अनुभूति से सर्वथा पृथक् कोई अन्तर्वृत्ति नहीं है, बल्कि उसी का एक उदात्त और अवदात्त स्वरूप है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, रसात्मक बोध के विविध स्वरूप)

रहन-सहन

यदि तुम रोम में हो तो रोमवासियों की शैली से रहो। यदि तुम अन्यत्र हो तो उसी प्रकार रहो जैसे वे अन्यत्र रहते हैं।

—सेंट एम्ब्रोजे (जेरेमी टेलर द्वारा डक्टर डुबिटेण्टियम १।१।५ में उद्धृत)

रहस्य

बँधी मुट्ठी लाख बराबर।

—हिंदी लोकोक्ति

हलक़ से निकली ख़लक़[1] में पड़ी।

—हिंदी लोकोक्ति

कुछ न कहना भी किसी के सामने
इक तरह का इन्किशाफ़े-राज़[2] है।

—अज्ञात

रहस्यवाद

साहित्य में विश्वसुन्दरी प्रकृति में चेतनता का आरोप संस्कृत-वाङ्मय में प्रचुरता से उपलब्ध होता है। यह प्रकृति अथवा शक्ति का रहस्यवाद सौन्दर्य-लहरी के 'शरीरं त्वं

१. विश्व। २. रहस्य का उद्घाटन।

शम्भो का अनुकरण मात्र है। वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है। वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। उसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं का इदम् से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है। हाँ, विरह भी युग की वेदना के अनुकूल मिलन का साधन बन कर इसमें सम्मिलित है। वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सम्पत्ति है, इसमें सन्देह नहीं।

—जयशंकर प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ६७-६८)

काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है।

—जयशंकर प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ४६)

तत्त्व-दृष्टि से, मनोविज्ञान की दृष्टि से, साहित्य की दृष्टि से 'अज्ञात की लालसा' कोई भाव ही नहीं है। यह केवल 'ज्ञात की लालसा' है जो भाषा की छिपाने वाली वृत्ति के सहारे 'अज्ञात की लालसा' कही जाती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग २, काव्य में रहस्यवाद)

मुझे ऐसा लगता है कि रहस्यवादी कविता का केन्द्र-बिन्दु वह वस्तु है जिसे भक्ति-साहित्य में 'लीला' कहते हैं। ···रहस्य शका का नाम है 'लीला' समाधान का।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (साहित्य-सहचर, पृ० ६८)

राग और ईर्ष्या

ईर्ष्या जेथा ततो रागः स्वयमाशाः पलायते।

ईर्ष्या जीत लो तो राग स्वयं ही दिशाओं में भाग जाता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ३।५२१)

राग-द्वेष

सुखानुशयी रागः। दुःखानुशयी द्वेषः।

राग तो सुख के संस्कार से उत्पन्न होता है और द्वेष, दुःख के संस्कार से।

—पतंजलि (योगसूत्र, २।७-८)

द्वेषो नामैष दुर्धर्षो जितो येन विवेकिना।
क्षणार्धेनैव रागस्य तेन नामापि नाशितम्॥

जिस विवेकी ने इस दुर्धर्ष द्वेष को जीत लिया, उसने अर्धक्षण में ही राग का नाम भी मिटा दिया।

— कल्हण (राजतंगिणी, ३।५२०)

सोइ पंडित सोइ पारखी, सोई संत सुजान।
सोई सूर सचेत सो, सोई सुभट प्रमान॥
सोइ ग्यानी सोइ गुनी जन, सोई दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित भई, राग द्वेष की हानि॥

—तुलसीदास (वैराग्य संदीपनी, ५८-५६)

राग मिलाने वाली वासना है और द्वेष अलग करने वाली।

—रामचन्द्र शुक्ल (रस मीमांसा, पृ० ६०)

राग-विराग

अलब्धे रागिणो लोका अहो लब्धे विरागिणः।
हेमन्ते तापमीहन्ते हन्त ग्रीष्मे हिमं पुनः॥

वस्तु के प्राप्त न होने पर लोगों का उसमें अनुराग होता है तथा प्राप्त हो जाने पर वैराग्य। हेमन्त ऋतु में आग की कामना होती है तथा ग्रीष्म में पुनः हिम की।

—अज्ञात

रागात्मकता

हमारी बुद्धि-वृति बाहर के स्थूलतम बिन्दु से लेकर भीतर के सूक्ष्मतम बिन्दु तक जीवन को एक अर्धवृत्त में घेर सकती है, परन्तु दूसरा अर्धवृत्त बनाने के लिए हमारी रागात्मिका वृत्ति ही अपेक्षित रहेगी।

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, चिन्तन के कुछ क्षण, पृ० ७)

राजकर

दे० 'कर'

राजकोष

The Crown is according to the saying, the "fountain of honour", but the Treasury is the spring of business.

एक कहावत के अनुसार राजमुकुट 'प्रतिष्ठा का स्रोत' है किन्तु राजकोप कार्य का स्रोत है।

—वाल्टर वैजेट (दि इंगिलश कांस्टीट्यूशन)

राजतंत्र

The best reason why monarchy is a strong goverment is, that it is an intelligible government. The mass of mankind understand it, and they hardly anywhere in the world understand any other.

राजतंत्र के सशक्त शासन होने का सर्वोत्तम कारण यह है कि यह एक समझ में आने योग्य शासन है। मानवों का समूह इसे समझता है और विश्व भर में कही भी वे किसी अन्य तंत्र को नहीं समझ पाते हैं।

—वाल्टर वेजेट (दि इंगलिश कांस्टीट्यूशन)

Monarchy is like a splendid ship, with all sails set, it moves majestically on, then it hits a rock and sinks forever Democracy is like a raft. It never sinks but, damnit, your feet are always in the water,

राजतंत्र एक ऐसे भव्य जहाज की तरह है जिसके सभी पाल चढ़े हुए हैं। यह गौरवपूर्वक आगे वढ़ता है और कभी चट्टान से टकराकर हमेशा के लिए डूब जाता है। लोकतंत्र वेड़े की तरह है। वह कभी नहीं डूबता, परन्तु आपके पैर हमेशा पानी में रहते हैं।

—फ़िशर एमेस

राजदंड

उद्वृत्तं सततं लोकं राजा दण्डेन शास्ति वै।
दण्डात् प्रतिभयं भूयः शान्तिरुत्पद्यते तदा।
नोद्विग्नश्चरते धर्मं नोद्विग्नश्चरते क्रियाम्॥

उच्छृंखल लोगों को राजा अपने दण्ड के द्वारा शिक्षा देता है। दण्ड से भय होता है। फिर भय से पुनः शान्ति स्थापित होती है। उद्विग्न व्यक्ति न धर्म का अनुष्ठान कर सकता है, न शास्त्रीय कर्मों का आचरण।

—वेदव्यास (महाभारत, आदिपर्व, ४१।२७-२८)

राजनिष्ठा

राजा से अधिक राजनिष्ठ नहीं होना चाहिए।

—लुई १६ के शासन काल में प्रारंभ फ्रांसीसी उक्ति

राजनीति

कच्चिद् राजगुणैः षड्भिः सप्तोपायांस्तथानघ।
वलावलं तथा सम्यक् चतुर्दश परीक्षसे॥

क्या तुम राजोचित ६ गुणों[1] के द्वारा ७ उपायों[2] की, अपने और शत्रु के वलावल की तथा देशपाल, दुर्गपाल आदि १४ व्यक्तियों[3] की भली भाँति परीक्षा करते हो?

—वेदव्यास (महाभारत, सभापर्व।५।२१)

वारांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा।

राजनीति वेश्या की तरह अनेकरूपिणी होती है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ४७)

आगतं विग्रहं विद्वान् उपायैः प्रशमं नयेत्।
विजयस्य ह्यनित्यत्वाद् रभसेन न संपतेत्॥

विद्वान आये हुए युद्ध को उपायों द्वारा शान्त कर दे। विजय के अनित्य होने के कारण युद्ध में तेजी से संलग्न न हो।

—अज्ञात

आत्मना संगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत्।
पदलग्नं करस्थेन कंटकेनैव कंटकम्॥

अपने वश में किये हुए शत्रु से दूसरे शत्रु को नष्ट करा दे; पैर में लगे काँटे को हाथ में स्थित काँटे से ही निकालते हैं।

—अज्ञात

अजियं जिणाहि, जियं च पालेहि।

नहीं जीते हुए को जीतो, और जीते हुए का पालन करो।

[पालि] —औपपातिक सूत्र (५३)

---

१. व्याख्यानशक्ति, प्रगल्भता, तर्ककुशलता, भूतकाल की स्मृति, भविष्य पर दृष्टि, नीतिनिपुणता। २. मंत्र, औषध, इन्द्रजाल, साम, दान, दण्ड, भेद। ३. देश, दुर्ग, रथ, हाथी, घोड़े, शूर, सैनिक, अधिकारी, अन्तःपुर, अन्न, गणना, शास्त्र, लेख्य, धन, वल—इनके अधिकारी।

हमारे देश में राजनीति का उपयोग या तो अपने को आगे बढ़ाने की सीढ़ी के तौर पर किया जाता है और नहीं तो वह अवकाश के समय हमारे विनोद का साधन होती है।

—महात्मा गांधी (जी० एस० अरुंडेल को पत्र, ४-८-१९१९)

राजनीति ही मनुष्यों के लिए सब कुछ नहीं है। राजनीति के पीछे नीति से भी हाथ न धो बैठो, जिसका विश्व-मानव के साथ व्यापक सम्बन्ध है।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, प्रथम अंक)

राष्ट्रनीति, दार्शनिकता और कल्पना का लोक नहीं है।

—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, प्रथम अंक)

अब केवल पाणिनि से काम नहीं चलेगा। अर्थशास्त्र और दण्डनीति की आवश्यकता है।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, प्रथम अंक)

राजनीति का क्षेत्र मानव जीवन के सत्य के सम्पूर्ण स्तरों को नहीं अपनाता, वह हमारे जीवन का धरती पर चलने वाला समतल चरण है, हमें अपने मन तथा आत्मा के शिखरों की ओर चढ़ने वाले एक ऊर्ध्व संचरण की भी आवश्यकता है, जो हमारे ऊपर के वैभव को धरती की ओर प्रवाहित कर समाज के राजनैतिक आर्थिक ढाँचे को शक्ति, सौन्दर्य, सामंजस्य तथा स्थायी लोककल्याण प्रदान कर सके।

—सुमित्रानंदन पंत ('उत्तरा', भूमिका, पृ० १९)

राजनीति में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण सदा लाभदायक होते हैं।

—वृन्दावनलाल वर्मा (माधवजी सिंधिया, पृ० ५५९)

राजनीति भुजंग से भी अधिक कुटिल है; असिधारा से भी अधिक दुर्गम है, विद्युत्-शिखा से भी अधिक चंचल है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० ९९)

राजनीतिक संसार में शत्रु को गिराने के वास्ते लोभ, भय और स्त्री सदा ही प्रयोग किए गए हैं। राजनीतिक चरित्र उसी का है जिसमें इनसे बचने की हिम्मत हो। इन प्रलोभनों में फँसकर मनुष्य राष्ट्रद्रोह करता है।

—भाई परमानन्द (मेरे अन्त समय के विचार, पृ० १७०)

प्रकाश-गृह के तौर पर ही कुछ लोग राजनीति से अलग रहें, तो देश के लिए अच्छा रहेगा। दुनिया में कुछ तो ऐसे मुक्त पुरुष रहने ही चाहिए, जो दुनिया के सामने चिरकालीन मूल्य रखें।

— विनोबा (लोकनीति, पृ० २१३)

सियासी दोस्ती छि काग़ज़ी नाव,
च् हरफव्य पोढ्य अथ प्यठपान मो साव
पकुन छुय ब्रोंठ पकनु च थाव सूरत,
छु वक्तच लहरि दोरान ग़रज़ुकुय वाव।

नेताओं की मित्रता काग़ज़ की नाव के समान होती है। तू अपने को उसमें न बहा। तुझे तो आगे बढ़ना है, अतः शक्ति का संचय कर। राजनीति की लहर तो स्वार्थ के समीर से युक्त होती है, अतः उसमें न बह।

[कश्मीरी] —मिर्ज़ा आरिफ़

राजनीति संसारी आदमियों का काम है, साधुओं का नहीं...मैं बुद्ध के इस सिद्धान्त को नहीं मानता कि क्रोध का उपाय केवल प्रेम है...मैं श्रीकृष्ण के इस उपदेश को मानता हूँ कि जो तुमसे जैसा बरते, तुम उसे वैसा ही बरतो।

—लोकमान्य तिलक (महात्मा गांधी को पत्र)

यथार्थ से मुँह मोड़ने वाली राजनीति न केवल निरर्थक है अपितु भयावह भी है।

—श्यामाप्रसाद मुकर्जी (दिसम्बर १९४३, हिंदूमहासभा अधिवेशन, अमृतसर)

राजनीति है रक्तपातविहीन युद्ध और युद्ध है रक्तपातयुक्त राजनीति।

—माओ-त्से-तुंग

हमारा युग बुद्धि का राजनीतिक घृणाओं में राष्ट्रीयकरण करने का युग है।

—जूलियन बेन्दा (ला त्राहिसन दे क्लर्क्स)

राजनीति पूर्ण विज्ञान नहीं है।

—बिस्मार्क (प्रूशिया के चैम्बर में भाषण)

Politics is a science of human affairs and not mere group strategy. Some politicians know no politics but party politics.

राजनीति मानवीय कार्य-व्यापार का विज्ञान है, केवल शासन-सम्बन्धी कौशल नहीं। कुछ राजनीतिज्ञ दलीय राजनीति के अतिरिक्त और किसी राजनीति को नहीं जानते।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य (स्वराज्य, २६ जून, १९५७)

Ambitious politicians find themselves at the mercy of parties and parties are at the mercy of financiers

महत्त्वाकांक्षी राजनीतिज्ञ स्वयं को दलों की दया पर पाते हैं और दल धनदाताओं की दया पर होते हैं।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य (स्वराज्य, २६ जनवरी १९५७)

Politics are now nothing more than a means of rising in the world.

राजनीति अब विश्व में ऊँचा उठने के साधन से अधिक कुछ नहीं है।

—डॉ० जॉनसन (बॉसवैल द्वारा लिखित जीवनी, खण्ड २, पृ० ३६९)

Manganimity in politics is not seldom the truest wisdom and a great empire and little minds go ill together.

राजनीति में उदारता यदा-कदा ही यथार्थतम बुद्धिमत्ता नहीं है और एक विशाल साम्राज्य तथा क्षुद्र मनों का साथ ठीक नहीं मिलता है।

—एडमंड बर्क (स्पीच आन कानसिलिएशन विदअमेरिका २२, मार्च १७७५)

Finality is not the language of politics.

अन्तिमता राजनीति की भाषा नहीं है।

—डिज़रायली (लोक सभा में भाषण, २८ फरवरी १८५९)

Like horse-racing, there is smothing in politics which degrades. They turn good men into bad men and bad into worse. They blunt the fineness of youth and destroy the sensitive evaluation of the things by which we live. And the reason is as plain as the cloud which blots out the sun. Our politics today are always 'power-politics.'

घुड़दौड़ के जुए की तरह राजनीति में ऐसा कुछ है जो मनुष्य को नीचे गिरा देता है। वह अच्छे मनुष्य को बुरा और बुरे को और भी जघन्य बना देती है। वह यौवन की तीव्रता को कुण्ठित करती और जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के मूल्यांकन की निपुणता को घटा देती है। इसका कारण उस बादल के टुकड़े के समान बिल्कुल स्पष्ट है, जो सूर्य को सर्वथा ओझल कर देता है। हमारी आज की राजनीति सदा 'अधिकारपरक राजनीति' ही है।

—डेज़मोंड शा (वर्ल्ड वर्थ)

Politics is perhaps the only profession for which no preparation is thought necessary.

संभवतः राजनीति ही ऐसा पेशा है जिसके लिए किसी प्रकार की तैयारी आवश्यक नहीं मानी जाती है।

—राबर्ट लुई स्टीवेंसन

In politics, victory is never total.

राजनीति में कभी भी पूर्ण विजय नहीं होती।

—रिचर्ड निक्सन (सिक्स क्राइसिज़)

Let us never negotiate out of fear. But let us never fear to negotiate.

हमें भय के कारण सन्धि-वार्ता नहीं करना चाहिए परन्तु हमें सन्धि-वार्ता करने से भय भी नहीं करना चाहिए।

—कैनेडी

राजनीतिक दल

A party of order or stability, and a party of progress or reform, are both necessary elements of a healthy state of political life.

व्यवस्था या स्थायित्व का पक्षधर दल और प्रगति या सुधार का पक्षधर दल—दोनों ही स्वस्थ राजनीतिक जीवन के लिए आवश्यक तत्त्व हैं।

—मिल (आन लिबर्टी, अध्याय २)

राजनीतिज्ञ

चतुर राजनीतिज्ञ कहीं दिखाई नहीं पड़ता, लोगों के, सामने नहीं आता, पर जगह-जगह उसी की बातें होती हैं और वह अपने वाग्विलास से सारी सृष्टि को मोहित कर लेता है।

—समर्थ रामदास (दासबोध)

It is as hard and severe a thing to be a true politician as to be truly moral.

सच्चा राजनीतिज्ञ होना उतना ही कठिन और दुष्कर कार्य है जितना सच्चा नैतिक व्यक्ति होना।

—बेकन (एडवांसमेंट आफ़ लर्निंग अध्याय २)

Politicians neither love nor hate,

राजनीतिज्ञ न प्रेम करते है न घृणा।

—ड्राइडेन (एब्सालम ऍंड एकिटोफ़ेल)

A politician thinks of the next election; a statesman, of next generation,

राजनीतिज्ञ अगले चुनाव की सोचता है और राजनेता अगली पीढ़ी की।

—जेम्स फ्रीमैन क्लार्क

राजनीति-विज्ञान

राजनीति विज्ञान का साध्य मनुष्य का कल्याण ही होना चाहिए।

—अरस्तू

राजभाषा

राजा की भाषा जीविका की कुंजी है।

—प्रेमचन्द (कलम तलवार और त्याग भाग २, पृष्ठ १५)

राजमद

केहि न राजमद दीन्ह कलंकू।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२२९।१)

राजयोग

राजयोगं विना पृथ्वी राजयोगं विना निशा।
राजयोगं विना मुद्रा विचित्रापि न शोभते॥

जैसे राजा के योग के बिना पृथ्वी, राजा (चन्द्रमा) के योग के बिना निशा, तथा राजा के योग के बिना मुद्रा विचित्र होने पर भी शोभित नहीं होती उसी प्रकार राजयोग के बिना आसन, प्राणायाम तथा मुद्रा शोभित नही होती है।

—स्वात्मारामयोगीन्द्र (हठ्योगप्रदीपिका, ३।१२६)

राजलक्ष्मी

भुजंगजिह्वा चपला नृपश्रियः।

राजलक्ष्मी तो सर्प की जिह्वा के समान चंचल होती है।

—भास (कर्णभार, १।१७)

राजसेवक

राज्ञो यत्र जनपदे बहवो राजपुरुषाः।
अनयेनोपवर्तन्ते तद् राज्ञः किल्विषं महत्॥

जब राजा के बहुत से कर्मचारी देश मे अन्यायपूर्ण व्यवहार करने लगते है, तब उसका भारी पाप राजा को लगता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।९१।२४)

राजसत्ता

आह राजचक्र सबको पीसता है।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, प्रथम अंक)

राजसत्ता के अस्तित्व की घोषणा के लिए इतना भयंकर प्रदर्शन!

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, तृतीय अंक)

राजसत्ता सुव्यवस्था से बढ़े तो बढ़ सकती है, केवल विजयों से नहीं।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, प्रथम अंक)

राजा

बालोऽपि नावमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति॥

मनुष्य समझ कर बालक राजा भी अपमान करने योग्य नहीं है क्योंकि वह मनुष्य रूप में प्रतिष्ठित बड़ी दैवी शक्ति ही है।

—मनुस्मृति (७।८)

जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः।

जितेन्द्रिय राजा ही प्रजा को वश में रख सकता है।

—मनुस्मृति (७।४४)

राजा कालो युगं चैव राजा सर्वमिदं जगत्।

राजा काल और युग है तथा राजा यह सम्पूर्ण जगत है।

—वाल्मीकि (रामायण, उत्तरकाण्ड, प्रक्षिप्तसर्ग, २।६)

अल्पप्रज्ञैः सह मन्त्रं न कुर्यान्
न दीर्घसूत्रै रभसैश्चारणैश्च।

(राजा को) थोड़ी बुद्धि वाले, दीर्घसूत्री, जल्दबाज़ लोगों और चारणों के साथ गुप्त-सलाह नहीं करना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३३।६९)

लोकरंजनमेवात्र राज्ञां धर्मः सनातनः।
सत्यस्य रक्षणं चैव व्यवहारस्य चार्जवम्॥

प्रजा को प्रसन्न रखना, सत्य की रक्षा करना और व्यवहार में सरलता रखना राजाओं का सनातन धर्म है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, ५७।११)

धर्मे स्थिता सत्त्ववीर्या धर्मसेतुवटारका।
त्यागवाताध्वगा शीघ्रा, नौस्तं संतारयिष्यति॥

राजधर्म एक नौका के समान है। वह नौका धर्मरूपी समुद्र में स्थित है। सत्त्वगुण ही उस नौका का संचालन करने वाला बल (कर्णधार) है। धर्मशास्त्र ही उसे बांधने वाली रस्सी है, त्याग रूपी वायु का सहारा पाकर वह मार्ग पर शीघ्रतापूर्वक चलती है। वह नाव ही राजा को संसार-समुद्र से पार कर देगी।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, ६६।३७)

नाराजकेषु राष्ट्रेषु वस्तव्यम्।

शासकविहीन देश में नहीं रहना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, ६७।५)

मालाकारोपमो राजन् भव माऽङ्गारिकोपमः।

राजन! तुम माली के समान बनो, कोयला बनाने वाले के समान नहीं।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, ७१।२०)

न तु हन्यान्नृपो जातु दूतं कस्यांचिदापदि।

राजा कभी किसी आपत्ति में भी किसी के दूत की हत्या न करे।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, ८५।२६)

दुर्बलस्य च यच्चक्षुर्मुनेराशीविषस्य च।
अविषह्यतमं मन्ये मा स्म दुर्बलमासदः॥

दुर्बल मनुष्य, मुनि और विषधर सर्प—इन सबकी दृष्टि को मैं अत्यन्त दुःसह मानता हूँ। इसलिए तुम किसी दुर्बल प्राणी को मत सताना।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, ९१।१४)

निग्रहानुग्रहौ चोभौ यत्र स्यातां प्रतिष्ठितौ।
अस्मिन् लोके परे चैव राजा स प्राप्नुते फलम्॥

जिसमें निग्रह और अनुग्रह दोनों प्रतिष्ठित हों वह राजा इहलोक और परलोक में मनोवांछित फल पाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, ९१।४१)

मृदुमप्यवमनयन्ते तीक्ष्णादुद्विजते जनः।
मा तीक्ष्णो मा मृदुर्भूस्त्वं तीक्ष्णो भव मृदुर्भव॥

मनुष्य कोमल स्वभाव वाले राजा का अपमान करते हैं और अत्यन्त कठोर स्वभाव वाले से भी उद्विग्न हो उठते हैं। अतः तुम न केवल कठोर बनो, न केवल कोमल। कठोर भी बनो और कोमल भी।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १०३।३४)

एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः।

राजाओं का परम धर्म है—दुखियों का दुख दूर करना।

—भागवत (१।१७।११)

नरान् परीक्षयेद् राजा साधून् सम्मानयेत् सदा।
निग्रहं चासतां कुर्यात् स लोके लोकजित्तमः॥

राजा को चाहिए कि मनुष्यों की परीक्षा करे। सत्य-पुरुषों को सदा सम्मानित करे। दुष्टों को नियंत्रित करे। ऐसा राजा ही सभी राजाओं में श्रेष्ठ है।

—मत्स्यपुराण (२१०।७)

राजा प्रमाणं भूतानां स विनश्येन् मृषावदन्।

संसार के प्राणियों के लिए उचित-अनुचित के निर्णय में राजा प्रमाणभूत होता है, यदि वह मिथ्या बोलता है तो नष्ट हो जाता है।

—मत्स्यपुराण (३१।१८)

मानशरीरा राजानः।

मान ही राजाओं का शरीर कहलाता है।

—भास (उरुभंग, १।६२ के पश्चात्)

गोपहीना गावो विलयं यान्त्यपालिताः।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः॥

जिस प्रकार ग्वाले बिना गायें नष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार राजा के बिना प्रजा का नाश हो ही जाता है।

—भास (प्रतिमानाटक, ३।२३)

पुण्यसंचयसम्प्राप्तामधिगण्य नृपश्रियम्।
वंचयेद् यः सुहृद्बन्धून स भवेद् विफलश्रमः॥

पुण्य-सचय से प्राप्त राज्य-श्री को पाकर जो अपने बंधु-बांधवों को ठगता है, उसका सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है।

—भास (दूतवाक्यम्, १।२५)

एकं विनिन्ये स जुगोप सप्त सप्तैव तत्याज ररक्ष पंच।
प्राप त्रिवर्गं बुबुधे त्रिवर्गं जज्ञे द्विवर्गं प्रजहौ द्विवर्गम्॥

उसने एक (अपने) को विनीत किया। सात (राज्य के सात अंगों) को गुप्त रखा। सात (राजाओं के सात दोषों) का त्याग किया। पाँच (पाँच उपायों) की रक्षा की। त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ काम) को प्राप्त किया। त्रिवर्ग (शत्रु, मित्र, मध्यस्थ) को समझा। द्विवर्ग (नीति, अनीति) को जाना। और, द्विवर्ग (काम, क्रोध) को त्यागा।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, २।४१)

तत्याज शस्त्रं विममर्श शास्त्रं शमं सिषेवे नियमं विषेहे।
वशीव केचिद्विषयं न भेजे पितेव सर्वान्विषयान्ददर्श॥

शस्त्र छोड़ा, शास्त्र विचारा, शम का सेवन किया, नियम को सहन किया, संयमी के समान किसी भी विषय का सेवन नहीं किया, पिता के समान सब विषयों (देशों या प्रजा समूह) को देखा।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, २।५२)

बभार राज्यं स हि पुत्रहेतोः पुत्रं कुलार्थं यशसे कुलं तु।
स्वर्गाय शब्दं दिवमात्महेतोर्धर्मार्थमात्मस्थितिमाचकांक्ष॥

उसने राज्य का पुत्र के लिए, पुत्र का कुल के लिए, कुल का यश के लिए पालन किया और उसने शब्द की स्वर्ग के लिए, स्वर्ग की अपने लिए, और अपने जीवन की धर्म के लिए आकांक्षा की।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, २।५३)

अहंकार-दाह-ज्वर-मूर्च्छान्धकारिता विह्वला हि राज-प्रकृतिः।

राजाओं का स्वभाव, अहंकार रूप दाह-ज्वर से उत्पन्न मूर्च्छा से विवेकहीन होकर अधीरतापूर्ण हो जाता है।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ३१०)

प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्।

लोग राजा के वचन का अनुगमन भयवश प्रतिध्वनि के समान करते रहते हैं।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ३१८)

पुरुषरत्ननामेक एव राजोदन्वान्भाजनम्।

पुरुष रूपी रत्नों का एकमात्र आधार राजा रूपी समुद्र ही है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, १।१०)

अन्धा इव न पश्यन्ति योग्यायोग्यं हिताहितम्।
यथा तेनैव गच्छन्ति नीयन्ते येन पार्थिवाः॥

लोग अन्धे के समान योग्यायोग्य एवं हिताहित नहीं देखते तथा उसी मार्ग से जाते हैं जिससे राजा ले जाते हैं।

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन)

गर्भवासव्यथां जातः शरीरी विस्मरेद्यथा।
प्राप्तराज्यस्तथा राजा नियतं पूर्वचिन्तनम् ॥

जिस प्रकार प्राणी उत्पन्न होकर गर्भवास की व्यथा विस्मृत कर देता है, उसी प्रकार राजा राज्य प्राप्त कर, नियत पूर्व चिन्तन को भूल जाता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ५।२०१)

बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यंगो घनसंवृतिकंचुकः।
चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः ॥

बुद्धि ही जिसका शस्त्र है, राज्य के अमात्य आदि अंग ही जिसकी सेना हैं, दुर्मेद्य मंत्र की गुप्तता ही जिसका कवच है, गुप्तचर ही जिसके नेत्र हैं, दूत जिसका मुख हैं—इस तरह का राजा कोई अलौकिक ही पुरुष है।

—माघ (शिशुपालवध, २।८२)

स्वाराध्यो नीतिमान् राजा दुराराध्यस्त्वनीतिमान्।
यत्र नीतिबले चोभे तत्र श्रीस्सर्वतोमुखी ॥

नीतिमान राजा की आराधना सुखपूर्वक और अनीतिमान राजा की आराधना दुःखपूर्वक होती है। जिस राजा के पास नीति व बल दोनों हैं, उसके पास सब ओर से लक्ष्मी आती है।

—शुक्रनीति (१।१७)

आचारप्रेरको राजा ह्येतत्कालस्य कारणम्।

आचार का प्रेरक राजा होता है, अतः वही काल का भी कारण होता है।

—शुक्रनीति (१।२२)

राजदण्डभयाल्लोकः स्वस्वधर्मपरो भवेत्।

लोग राजदण्ड के भय से अपने-अपने धर्म के पालन में लगे रहते हैं।

—शुक्रनीति (१।२३)

यो हि धर्मपरो राजा देवांशोऽन्यश्च रक्षसाम्।
अंशभूतो धर्मलोपी प्रजापीडाकरो भवेत् ॥

जो धर्मनिष्ठ राजा है, वह 'देवांश' कहलाता है। जो अन्य राजा हैं, वे राक्षसों के वंश से उत्पन्न, धर्मलोभी तथा प्रजापीड़क कहलाते हैं।

—शुक्रनीति (१।७०)

क्षमया तु विना भूपो न भात्याविलसद्गुणैः।

सम्पूर्ण गुणों से, युक्त राजा भी 'क्षमा' रहित हो तो उसकी शोभा नहीं होती है।

—शुक्रनीति (१।८२)

परोपदेशकुशलः केवलो न भवेन्नृपः।

राजा केवल दूसरों को उपदेश देने में कुशल न हो।

—शुक्रनीति (१।९३)

चारैः स्वदुर्गुणं ज्ञात्वा लोकतः सर्वदा नृपः।
सुकीर्त्यै संत्यजेन्नित्यं नावमन्येत वै प्रजाः।

लोगों द्वारा कहे हुए अपने दुर्गणों को गुप्तचरों से जान कर राजा को अपनी सुकीर्ति के लिए सर्वदा यह करना चाहिए कि दुर्गुणों को त्याग दे और प्रजा का अपमान न करे।

—शुक्रनीति (१।१३२-१३३)

यौवनं जीवतं वित्तं छाया लक्ष्मीश्च स्वामिता।
चंचलानि षडेतानि ज्ञात्वा धर्मरतो भवेत् ॥

यौवन, जीवन, धन छाया, लक्ष्मी, प्रभुत्व—ये छह चंचल होते हैं। यह जानकर राजा को धर्मरत होना चाहिए।

—शुक्रनीति (१।१३८)

सर्वधर्मावन्नानीचनृपोऽपि श्रेष्ठतामियात्।
उत्तमोऽपि नृपो धर्मनाशनान्नीचतामियात् ॥

सब राजधर्मों की रक्षा करते रहने से नीच राजा भी श्रेष्ठ हो जाता है और उत्तम राजा भी राजधर्म का नाश करने से नीचता को प्राप्त हो जाता है।

—शुक्रनीति (४।४२४)

धर्माधर्मप्रवृत्तौ तु नृप एव हि कारणम्।

लोगों की धर्म तथा अधर्म की प्रवृत्ति में कारण राजा ही होता है।

—शुक्रनीति (४।४२५)

अनाथानां दरिद्राणां बालवृद्धतपस्विनाम्।
अन्यायपरिभूतानां सर्वेषां पार्थिवो गतिः ॥

अनाथ, दरिद्र, बाल, वृद्ध, तपस्वी तथा अन्याय से पीड़ित, इन सब की गति राजा ही होती है।

—अज्ञात

ये द्रष्टारः सदसतां ते धर्मविगुणाः क्रियाः।
वयमेव विदध्मश्चेद्यातु न्यायेन कोऽध्वना॥

यदि हम (शासक) लोग ही जो सत् व असत् के द्रष्टा हैं, धर्म-विरुद्ध कार्य करें तो न्याय-पथ पर कौन चलेगा?

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।६०)

पुत्रपत्नीसुहृद्भृत्या येषां शंकानिकेतनम्।
विस्रम्भभूर्भूपतीनां कस्तेषामिति वेत्तिकः॥

पुत्र, स्त्री, मित्र और भृत्य पर जो शंका करते है, वे राजा किन का विश्वास करते हैं, इसे कौन जानता है?

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।१२४४)

प्रायो नृपा नियमशून्यमनोऽनुभावाः।

प्रायः राजा लोग अनियमित मन वाले होते हैं।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।१६११)

अतथ्यं तथ्यवद्वस्तु तथ्यं वातथ्यवन्नृपः।
यः पश्येन्मूढवत् सोऽर्थैस्त्यक्तोऽनर्थैः कदर्थ्यते॥

जो राजा मूर्खवत् असत्य को सत्य या सत्य को असत्य मानता है, उसे सम्पत्तियाँ त्याग देती है और वह अनर्थों से पीड़ित होता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।२०८३)

भृत्योरिवोग्रदण्डस्य राज्ञो यान्ति वशं द्विषः।
शष्पतुल्यं हि मन्यन्ते दयालुं रिपवो नृपम्॥

शत्रुगण मृत्यु के समान उग्र दण्ड वाले राजा के वश में आ जाते हैं परन्तु दयालु राजा को तिनके के समान समझते हैं।

—विष्णुशर्मा (पंचतंत्र, ३।३०)

दूरादवेक्षणं हासः संप्रश्नेष्वादरो भृशम्।
परोक्षेऽपि गुणश्लाघा स्मरणं प्रियवस्तुषु॥
असेवके चानुरक्तिदर्शनं सप्रियभाषणम्।
अनुरक्तस्य चिह्नानि दोषेऽपि गुणसंग्रहः॥

दूर से निहारना, हँसना, बात पूछते समय अधिक आदर दिखाना, पीठ पीछे भी गुण का वर्णन करना और अपनी प्रिय वस्तुओं में स्मरण करना, जो सेवक नहीं है उस पर भी प्रेम करना, मीठी बातें करते हुए कुछ देना और दोष से भी गुण ग्रहण करना, ये प्रसन्न राजा के चिह्न हैं।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, २।५९-६०)

अनाथानां नाथो गतिरगतिकानां व्यसनिनां
विनेताभीतानामभयमधृतीनां भरवशः।
सुहृद् बन्धुः स्वामी शरणमुपकारी वरगुरुः
पिता माता भ्राता जगति पुरुषो यः स नृपतिः॥

वही मनुष्य वास्तविक नृपति है जो अनाथों का नाथ, निरुपायों का अवलंब, दुष्टों को दंड देने वाला, डरों हुओं को अभय देने वाला, भीरुओं का भरण-पोषण करने वाला, और सभी का उपकारक, मित्र, बन्धु, स्वामी, आश्रयस्थल, श्रेष्ठ गुरु, पिता, माता तथा भाई है।

—अज्ञात

अन्यान्यं कुरुते यदा क्षितिपतिः कस्तं निरोद्धुं क्षमः।

जब राजा अन्याय करता है तो उसे रोकने में कौन समर्थ होगा?

—अज्ञात

भृत्यान्तरापरिज्ञानमात्रेण जगतीभुजाम्।
निरागसो वज्रपातः कष्टं राष्ट्रस्य जायते॥

कितने कष्ट की बात है कि राजा लोग अपने कर्मचारियों के आन्तरिक भेद को न जानने के कारण निरपराध राष्ट्र पर वज्रपात करते हैं।

—अज्ञात

राजा और दैव बराबर होते हैं, ये जो करें सो देखते चलो, बोलने की तो जगह ही नहीं।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (विषस्य विषमौषधम्)

रत्नजटित मुकुट तुम्हें भगवान ने इसलिए नहीं दिया कि लाखों सिरों को तुम पैरों से ठुकराओ।

—जयशंकर प्रसाद (राज्यश्री, तृतीय अंक)

नृपति चाहिए, क्योंकि परस्पर मनुज लड़ा करते हैं।
खड्ग चाहिए, क्योंकि न्याय से वे न स्वयं डरते हैं।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग)

देवता और राजा दोनों एक से ही हैं। ये जब तक मंदिर के बाहर न निकलें, तभी तक पूजा करने लायक़ हैं।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ३७४)

दह दरवेश दर गिलीमे बिख़ुस्बन्द
व दू पादशाह दर इक़्लीमे न गुंजन्द।
दस साधु एक कम्बल में सो सकते है लेकिन दो राजा एक साम्राज्य में नहीं रह सकते।
[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, प्रथम अध्याय)

कुलाहे-ताजे सुलतानी कि बीमेजां दरो दर्जस्त
कुलाहे- दिलकशस्त अम्मा बदर्दे-सर न मी अर्जद।
राजा का ताज, जिसमें हमेशा प्राण का भय है, दिल को लुभाने वाला तो होता है, परन्तु सर के दर्द के बराबर भी उसकी कीमत नहीं की जाती।
[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

राजा वही है जो धन के सप्रयत्न उपार्जन, उसकी वृद्धि, रक्षा तथा वितरण में प्रवीण हो।
—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ३८५)

राजाओं में वही दीपक है जिसमें दान, दया, धर्म-नीति प्रजा-संरक्षण ये चारों हों।
—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ३९०)

राजा दिवंगत हुए, राजा अमर हों।
—फ्रांस में राजा की मृत्यु और उत्तराधिकारी के राजा बनने की घोषणा पर उद्घोषकों की उक्ति)

राजा अपने राज्य का प्रथम सेवक होता है।
—फ्रे़डरिक महान (ब्रेंडेबूर्ग के संस्मरणों में उद्धृत)

Authority forgets a dying king.
सत्ता मरते हुए राजा को भुला देती है।
—टेनिसन (इडिलस आफ़ दी किंग, दी पासिंग आफ़ आर्थर)

राजा और विद्वान्

लंकापतेः संकुचितं यशो यद् यत् कीर्तिपात्रंरघुराजपुत्रः।
स सर्व एवादिकवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः॥
लंकापति रावण का यश नष्ट हुआ और राम की कीर्ति बढ़ी, यह सब आदिकवि वाल्मीकि का प्रभाव था। अतः राजाओं को चाहिए कि वे कवियों पर कोप न करें।
—बिल्हण (विक्रमांकदेवचरित, १।२७)

विप्रोऽपि यो भवेन्मूर्खः स पुराद्बहिरस्तु मे।
कुंभकारोऽपि यो विद्वान् स तिष्ठतु पुरे मम॥
ब्राह्मण भी यदि विद्यारहित हो तो उसे नगर में स्थान नहीं मिलेगा। कुम्हार भी यदि विद्वान हो तो वह मेरी राजधानी में बसे।
—राजा भोज की घोषणा

ख्याता नराधिपतयः कवि-संश्रयेण
राजाश्रयेण च गताः कवयः प्रसिद्धिम्।
राज्ञा समोऽस्ति न कवेः परमोपकारी
राज्ञो न चास्ति कविना सदृशः सहायः॥
नृपतिगण कवियों को आश्रय देने से प्रसिद्ध हुए हैं तथा कवियों ने भी राजाओं के आश्रय से प्रसिद्धि पाई है। राजा के समान कवि का उपकारी नहीं है तथा राजा का भी कवि के समान सहायक नहीं है।
— भट्ट गोविन्द स्वामी

राजा-प्रजा

यद्वृत्ताः सन्ति राजानस्तद्वृत्ताः सन्ति हि प्रजाः।
राजा जैसे आचरण करते हैं, प्रजा भी वैसे ही आचरण करने लगती है।
—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, १०९।९)

हिरण्यधान्यरत्नानि धनानि विविधानि च।
तथान्यदपि यत्किंचित्प्रजाभ्यः स्युर्महीभृताम्॥
सुवर्ण, धन्य, रत्न, तथा अनेक प्रकार के धन और अन्य जो कुछ भी राजाओं का होता है, वह प्रजा-जनों के के लिए होता है।
—बल्लाल कवि (भोजप्रबंध, ४३)

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥
प्रजा के सुख में ही राजा का सुख और प्रजाओं के हित में ही राजा को अपना हित समझना चाहिए। आत्मप्रियता में राजा का हित नहीं है, प्रजाओं की प्रियता में ही राजा का हित है।
—चाणक्य (अर्थशास्त्र, १।१९।४०)

प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्धयति पार्थिवम्।
वर्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तदभावे सदप्यसत्॥

राजा प्रजा की रक्षा करता है और प्रजा राजा को उन्नत करती है। उस उन्नति से बढ़कर प्रजा का रक्षण श्रेयस्कर है। क्योंकि यदि रक्षण न हो सकेगा तो सब रहते हुए भी कुछ नहीं रह जायेगा।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ३।३)

यथा देशस्तथा भाषा यथा राजा तथा प्रजाः।
यथा भूमिस्तथा तोयं यथा बीजं तथांकुराः॥

जैसा देश वैसी भाषा। जैसा राजा वैसी प्रजा। जैसी भूमि वैसा जल। जैसा बीज वैसे अंकुर।

—अज्ञात

स्वधर्मरूपो राजेन्द्रो दयारूपेण मन्त्रिणः।
सेवकाः साधुरूपेण यथा राजा तथा प्रजाः॥

राजा स्वधर्म रूप है, मंत्री लोग दयारूप हैं, सेवक लोग साधुरूप हैं। जैसा राजा वैसी प्रजा होती है।

—अज्ञात

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
लोकास्तदनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः॥

राजा धर्मशील हो तो लोग धर्मशील होते हैं, पापी हो तो पापी होते हैं, सम हो तो सम होते हैं। लोग तो राजा का अनुसरण करते है। जैसा राजा होता है, वैसी ही प्रजा होती है।

—अज्ञात

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।७१।३)

मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।१२६।२)

बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होइ॥

—तुलसीदास (दोहावली, ५०८)

वह राजा, जिसके कानों तक प्रजा की पुकार न पहुँचने पाये, आदर्श नहीं कहा जा सकता।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० १०४)

Kings will be tyrants from policy, when subject are rebels from principle.

यदि प्रजा सिद्धान्ततः विद्रोही होगी तो राजागण नीतितः अत्याचारी होंगे।

—एडमंड बर्क (फ़्रांस की क्रांति पर विचार)

राज्य

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।

मेरे राज्य में एक भी चोर, कंजूस, और शराबी नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, ७७।८)

धर्मः प्रागेव चिन्त्यः सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुद्ध्या प्रच्छाद्यौ रागरोषौ मृदुपुरुषगुणौ कालयोगेन कार्यौ। ज्ञेयं लोकानुवृत्तं परचरनयनैर्मंडलं प्रेक्षितव्यं। रक्ष्यो यत्नादिहात्मा रणशिरसि पुनः सोऽपि नावेक्षितव्यः॥

(राज्य भी एक बोझ है, क्योंकि) पहले धर्म देखना होता है, अपनी बुद्धि से मन्त्रियों की मति-गति देखनी होती है, राग-द्वेष को छिपाना होता है, सरलता तथा कठोरता का यथासमय व्यवहार करना ही होता है, लोकवृत्त जानना होता है, गुप्तचर रूपी नेत्रों से मंडल को देखना होता है, यहाँ अपनी रक्षा करनी होती है तथा रणभूमि में तो उसकी भी उपेक्षा करनी होती है।

—भास (अविमारक, १।१२)

राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते।
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते।

शत्रुओं को पराजित करके, सहृदय राजकुमार लोग राज्य को प्राप्त करते हैं। उसे न तो संसार में कहीं माँगा जाता है और न वह दीन याचकों को दिया ही जाता है।

—भास (दूतवाक्य, १।२४)

नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय
राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्।

राज्य छाते के तुल्य है जिसका अपने हाथ में पकड़ा हुआ दंड थकान को उतना अधिक दूर नहीं करता है, जितना कि थकान करता है।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ५।६)

धिग्राज्यं यत्कृते पुत्राः पितरश्चेतरेतरम्।
शंकमाना न कुत्रापि सुखं रात्रिषु शेरते॥

उस राज्य को धिक्कार है जिसके लिए पुत्र तथा पिता परस्पर शंकित रहकर कहीं सुखपूर्वक रात्रियों में शयन भी नहीं करते हैं।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।१२४३)

अबला यत्र प्रबला, शिशुरविनीतो निरक्षरो मंत्री।
नहि नहि तत्र धनाशा जीविताशापि दुर्लभा भवति॥

जहाँ स्त्रियाँ प्रबल हों, बच्चे ढीठ हों और मंत्री निरक्षर हो, वहाँ धन की कोई आशा नहीं होती तथा जीवन की आशा भी दुर्लभ हो जाती है।

—अज्ञात

राज्य पशुबल का प्रत्यक्ष रूप है। वह साधु नहीं है, जिसका बल धर्म है, वह विद्वान् नहीं है, जिसका बल तर्क है। वह सिपाही है जो डण्डे के ज़ोर से अपना स्वार्थ सिद्ध करता है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० ११७)

किसान ही राज्य के पालनकर्ता हैं। ऐसे किसानों की बरबादी करने वाला राज्य, अनजाने राज्य की इमारत की जड़ें खोदता है।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० १७४)

राज्य का अस्तित्व अच्छे जीवन के लिए होता है, केवल जीवन के लिए नहीं।

—अरस्तू (राजनीति, ३।९)

A state without the means of some change is without the means of its conservation.

कुछ परिवर्तन के साधनों से रहित राज्य आत्म-संरक्षण के साधनों से रहित होता है।

—एडमंड बर्क (फ़्रांस की राज्यक्रांति पर विचार)

The worth of a State, in the long run, is the worth of the individuals composing it.

किसी राज्य का महत्त्व अन्ततः उसके घटक व्यक्तियों का ही महत्त्व है।

—मिल (आन लिबर्टी, अध्याय ५)

रात्रि

आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतूंत्समीर्त्सति।
अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री॥

कल्याण करने वाली स्त्री रात्रि आ गई है। वह दिवस की किरणों का प्रतिबंध करने की इच्छा रखती है। सब जगत को विश्राम देने वाली यह रात्रि कल्याण करने वाली है।

—सामवेद (६०८)

गर्भस्था इव मोहमभ्युपगताः सर्वाः प्रजा निद्रया
प्रासादाः सुखसुप्तनीरवजना ध्यानं प्रविष्टा इव।
प्रग्रस्ता इव संचितेन तमसा स्पर्शानुमेया नगा
अन्तर्धानमिवोपयाति सकलं प्रच्छन्नरूपं जगत्॥

इस समय सारी जनता गर्भस्थ शिशु की भाँति निद्रा में मुग्ध हो रही है। जहाँ सभी लोग सुख से सो रहे हैं, वे प्रासाद ध्यानमग्न जैसे हैं। अंधकार में डूबे वृक्षों का ज्ञान स्पर्श से अनुमान मात्र होता है। इस जगत् का रूप छिप गया है, मानो वह अन्तर्धान को प्राप्त हो रहा हो।

—भास (अविमारक, ३।३)

बहुविषमश्च सुखश्च रात्रिचारः।

रात को घूमना सुखप्रद और ख़तरे से भरा हुआ होता है।

—भास (अविमारक, ३।११)

बहुदोषा हि शर्वरी।

रात्रि बहुदोषमयी होती है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, १।५८)

पगली हाँ सम्हाल ले कैसे
छूट पड़ा तेरा अंचल,
देख बिखरती है मणिराजी
अरी उठा बेसुध चंचल।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आशा)

रात मानो सो गयी थी
दीप आँचल से बुझाकर।

—श्यामनारायण पाण्डेय (जौहर, १२ वीं चिनगारी)

रात सचमुच ही जीवन्त पदार्थ है। वह सांस लेती हुई जान पड़ती है, उसके अंग-अंग में कम्पन होता है, प्रसन्न होती है, उदास होती है, धुंधुआ जाती है, खिल उठती है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (केतु दर्शन)

हे रात्रि! तू प्रेमियों की सखी, एकान्तवासियों की सुखदात्री और असहायों का आतिथ्य करने वाली है।

—खलील जिब्रान (धरती के देवता, पृ० ७६)

हे रात्रि, मैं तेरी तरह हूँ और जब मेरा अरुणोदय होगा, तभी मेरा जीवन भी समाप्त होगा।

—खलील जिब्रान (धरती के देवता, पृ० ७९)

राधा

दे० 'राधा और कृष्ण' भी।

देख-देख राधा रूप अपार।
अपरूब के बिहि आनि मिलाओल, खिति तल लावनि-सार।

— विद्यापति (विद्यापति की पदावली, २)

मेरी भवबाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई[1] परे, स्याम हरति दुति होय॥

—बिहारी (सतसई, १)

राधे की चटक देखे अँखियाँ अटक रहीं।

—ताज

रूपोद्यान-प्रफुल्ल-प्राय-कलिका राकेन्दु-बिम्बानना।
तन्वंगी कल-हंसिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला पुत्तली।
शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि-सी लावण्य-लीला-मयी।
श्रीराधा-मृदुभाषिणी-मृगदृगी-माधुर्य सन्मूर्ति थीं॥

— अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(प्रियप्रवास, ४।४)

राधा थी सुमना प्रसन्न-वदना स्त्रीजाति रत्नोपमा।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(प्रियप्रवास, ४।८)

वे छाया थीं सु-जन-शिर की, शासिका थी खलों की,
कंगालों की परमनिधि थीं, औषधि पीड़ितों की।
दीनों की थी भगिनि, जननी थीं अनाथाश्रितों की,
आराध्या थीं व्रज अवनि की, प्रेमिका विश्व की थीं।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(प्रियप्रवास, सर्ग १७)

जित जित जाति बृखभानु की दुलारी फबी,
तित-तित जाति दबी दीपति दिवारी की।

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (शृंगार लहरी, १३)

थोरी-थोरी बैस की अहीरिनि की छोरी संग,
भोरी भोरी बातिन उचारति गुमान की।
कहै रतनाकर बजावत मृदंग चंग,
अंगिनि उमंग भरी जोवन उठान की।
घाघरे की घूमनि समेटि कै कछोटी किए,
कटि तट फेंटि कोछी कलित पिधान की।
झोरी भरे रोटी घोरि केसरि कमोरी भरे,
होरी चली खेलन किसोरी वृषभान की।

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

राधा-कृष्ण

कोऽयं द्वारि हरिः, प्रयाह्य पवनं, शाखामृगस्यात्र किं
कृष्णोऽहं दयिते बिभेमि सुतरां, कृष्णादहं वानरात्।
मुग्धेऽहं मधुसूदनः, पिब लतां तामेव तन्वीमलम्
इत्थं निर्वचनीकृतो दयितया ह्रीतो हरिः पातु वः॥

कृष्ण द्वार पर ध्वनि करते हैं तो राधा पूछती हैं—यह द्वार पर कौन है? उत्तर मिला—हरि। राधा ने कहा—वानर का यहां क्या काम? वन में जाओ। कृष्ण ने कहा—प्रिये, मैं कृष्ण हूँ। तब राधा ने कहा—काले बंदर से तो मैं और भी अधिक डरती हूँ। पुनः कृष्ण ने कहा—हे मुग्धे! मैं मधुसूदन हूँ। राधा ने कहा—तो उसी कोमल लता का रसपान करो। इस प्रकार निरुत्तर किए गए लज्जित कृष्ण आपकी रक्षा करें।

—अज्ञात

चहियत युगल किसोर लखि, लोचन जुगल अनेक।

—बिहारी (बिहारी सतसई, ६)

---

1. छाया।

रसमय जसमय प्रेममय सुखमय स्यामा स्याम।
जिन पर अगिनित वारिये, सची सक्र रति काम।।
तिनके चरन सरोज को, मो मन भ्रमर सरूप।
कहत 'तोष' अति हेत तें लेत रहत रस रूप ।।
—तोष (सुधानिधि, ग्रंथसमाप्ति)

सच्चे-स्नेही अवनिजन के देश के श्याम जैसे
राधा जैसी सदय-हृदया विश्व के प्रेम-डूबी
हे विश्वात्मा ! भरत-भुवि के अक में और आवें
ऐसी व्यापी विरह-घटना किन्तु कोई न होवे ।।
—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (प्रियप्रवास, १७।५४)

नव तमाल घनश्याम पिया श्री राधा पीत चमेली।
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (प्रेममालिका, ६१)

राधा-रस तो निराला ही है, राधा-कृष्ण एक हैं, राधा-कृष्ण का स्त्री रूप है और कृष्ण राधा का पुरुष रूप ।
—राममनोहर लोहिया (कृष्ण, पृ० १५)

और कोऊ समझै सो समझो हमकूं इतनी समझ भली।
ठाकुर नंद किशोर हमारे, ठकुराइन वृषभानु लली ।।
—भगवान हित रामदास

राम

दे० 'राम और कृष्ण', 'रामराज्य', 'राम-वन-गमन' 'राम और गंगा', 'राम और रावण' भी ।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ।।
जिस अनन्त, नित्यानन्द और चिन्मय परब्रह्म में योगी लोग रमण करते है, वही 'राम' पद से प्रतिपादित होता है ।
—श्रीरामपूर्वतापनीय उपनिषद् (१।६)

स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ।।
सम्पूर्ण गुणों से युक्त वे श्रीरामचन्द्र जी अपनी माता कौसल्या का आनन्द बढ़ाने वाले हैं, गम्भीरता में समुद्र और धैर्य में हिमालय के समान हैं ।
—वाल्मीकि (रामायण, बालकाण्ड, १।१।१७)

रामो द्विर्नाभिभाषते ।
राम दो तरह की बात नहीं करता ।
—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, १८।३०)

रामो विग्रहवान् धर्मः ।
राम धर्म के मूर्त रूप हैं ।
—वाल्मीकि (रामायण, अरण्यकाण्ड, ३७।१३)

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ।।
जैसे नदियाँ समुद्र में मिलती हैं, उसी प्रकार सदा राम से साधु पुरुष मिलते रहते हैं। वे आर्य एवं सब में समान भाव रखने वाले हैं ।
—स्कन्दपुराण (१।१।१६)

श्री रामः शरणं समस्त जगतां रामं विना का गती
रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नमः ।
रामात् त्रस्यति काल भीमभुजगो रामस्य सर्वं वशे
रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे राम त्वमेवाश्रयः ।।[1]
श्री रामचन्द्र समस्त संसार को शरण देने वाले हैं। श्री राम के विना कौन-सी गति है। श्रीराम कलियुग के समस्त दोषों को नष्ट कर देते हैं, अतः श्री रामचन्द्र जी को नमस्कार करना चाहिए श्री राम से काल रूपी भयंकर सर्प भी डरता है। जगत का सब कुछ भगवान श्रीराम के वश में है। श्रीराम में मेरी अखड भक्ति बनी रहे। हे राम आप ही मेरे आधार हैं।
—स्कन्दपुराण (उत्तर खंड, नारद-सनत्कुमार-संवाद, रामायण माहात्म्य, प्रथम अध्याय, १)

सायोध्या यत्र राघवः ।
जहाँ राम, वहीं अयोध्या ।
—भास (प्रतिमा नाटक, ३।२४)

त्यकता जीर्णदुकूलवद् वसुमतीबद्धोम्बुधिर्विन्दुवद्
वाणाग्रेण जरत्कपोतक इव व्यापादितो रावणः ।
लंका काऽपि विभीषणाय सहसा मुद्रेव हस्तेऽर्पिता
श्रुत्वैवं रघुदनंदनस्य चरितं को वा न रोमांचति ।।

१. इस सूक्ति में सभी विभक्तियों में 'राम' शब्द के रूप आ गए है ।

जिसने जीर्ण वस्त्र के समान पृथ्वी का त्याग कर दिया, एक बिंदु के समान समुद्र का मंथन कर दिया, बाण की नोक से वृद्ध कपोत के समान रावण का वध कर दिया और अलौकिक ऐश्वर्य से युक्त लंका को एक अंगूठी के समान विभीषण के हाथों में सौंप दिया, ऐसे राम के चरित्र को सुनकर किसको रोमांच नहीं होता ?

—भानुदत्त (रसतरंगिणी, ७।२१)

दानं करे पादतलेन तीर्थं बाहौ जयश्रीर्वचने च सत्यम्।
लक्ष्मी प्रसादे प्रतिघे च मृत्युरेतानि रामस्य निसर्गजानि ॥

हाथ में दान, पैरों से तीर्थ-यात्रा, भुजाओं में विजय-श्री, वचन में सत्यता, प्रसाद में लक्ष्मी, संघर्ष में शत्रु की मृत्यु—ये राम के स्वाभाविक गुण है।

—लक्ष्मण सूरि (पौलस्त्यवध)

नाना भांति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस,१।३३।३)

रामहि केवल प्रेम पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१३७।१)

सोह न राम-प्रेम बिन ग्यानू।
करन धार-बिनु जिमि जल जानू ।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२७७।३)

उमा ! राम सम हित जग माही।
गुरु, पितु, मातु, बंधु प्रभु नाहीं ।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।१२।१)

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि सरइ कहु काहि ।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१९)

रावरे दोष न पायन को, पग धूरि को भूरि प्रभाउ महा है।

इसमें आपके चरणों का कोई दोष नही है। आपके चरणों की धूलि का प्रभाव ही बहुत बड़ा है।

—तुलसीदास (कवितावली, अयोध्या काण्ड, ६)

भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ।।

—तुलसीदास (दोहावली, ११३)

अज अद्वैत अनाम, अलख रूप, गुन रहित जो।
मायापति सोइ राम, दास हेतु नर तनु धरेऊ ।।

जो जन्मरहित है, अद्वितीय है, नामरहित है, अलक्ष्य रूप और त्रिगुण से रहित है, और माया का स्वामी है, वही तत्त्व रामचन्द्र जी हैं, जिन्होंने अपने दासों (भक्तों) के लिए मनुष्य शरीर धारण किया है।

—तुलसीदास (वैराग्य-संदीपिनी, ५)

पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परिपूरण
बतावै न बतावैं और उक्ति को।
दरशन देत जिन्हें दरशन समुझें न,
नेति नेति कहै वेद छाँड़ि आन युक्ति को।
जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम,
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देहि अणिमाहि गुण देहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि नाम देहि मुक्ति को ।।

—केशव (रामचन्द्रिका, १।३)

रसना राम संभारिये, श्रवनहिं सुनिये राम।
नयने निरखहु राम कूं, रवीदास यहि काम ।।

—रवि साहब

समता रूपी राम जी सब सूं येके भाई।
जाके जैसी प्रीति है तैसी करै सहाइ ।।

—गरीबदास

राम पूर्ण धर्मस्वरूप है क्योंकि अखिल विश्व की स्थिति उन्हीं से है। धर्म का विरोध और राम का विरोध एक ही बात है। जिसे राम प्रिय नही, उसे धर्म प्रिय नहीं।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग १, पृ० २१०)

राम के बिना हिन्दू जीवन नीरस है—फीका है। यही रामरस उसका स्वाद बनाए रहा और बनाए रहेगा। राम ही का मुंह देख हिंदू जनता का इतना बड़ा भाग अपने धर्म और जाति के घेरे में पड़ा रहा। न उसे तलवार हटा सकी, न धन-मान का लोभ, न उपदेशों की तड़क-भड़क।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ३१)

राम, तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाए, सहज सम्भाव्य है।

—मैथिलीशरण गुप्त (साकेत, सर्ग ५, पृ० १५६)

राम तुम्हें यह देश न भूले
धाम-धरा-धन-धान्य भले ही,
यह अपना उद्देश्य न भूले।
निज भाषा निज भाव न भूले,
निज भूषा, निज वेष न भूले।
प्रभो तुम्हें भी सिंधु पार से
सीता का संदेश न भूले।

—मैथिलीशरण गुप्त

केहि के वेधन हेतु प्रिय यह विशाल धनु वान।
अग जग वेधन में कुशल कम कुछ मुरली तान।।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी ('रविवार' साप्ताहिक, कलकत्ता, १७-२३ जून १९७९ में उद्धृत)

राम और कृष्ण

हिन्दुस्थान में तो दो ही राजा हुए हैं—एक मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री रामचन्द और दूसरे जगद्गुरु श्रीकृष्ण। हिन्दुओं पर तो अब भी इन्हीं दोनों का राज्य चलता है। राजनिष्ठा तो इन्हीं के प्रति संभव है। भूमि और द्रव्य के ऊपर राज्य करने वाले कोई और हों, किन्तु हिन्दुओं के हृदय पर राज्य करने वाले तो ये दो ही है।

— एक साधु (काका कालेलकर द्वारा जीवन-साहित्य, पृ० २२ में उद्धृत)

श्री कृष्ण क्या हैं? वे हिन्दू राष्ट्रीयता की आत्मा हैं। श्री राम और श्रीकृष्ण—ये दो नाम हिन्दू जाति के प्राण हैं। हमारी राष्ट्रीयता या जातीयता सबसे बढ़कर इन दो नामों से बंधी हुई है। यदि ये दो नाम हमसे बाहर निकल आयें तो हमारा राष्ट्र या जाति मृतप्राय हो जाए।

—भाई परमानन्द (मेरे अंत समय के विचार, पृ० १७३)

यदि राम द्वारा रावण का वध तथा कृष्ण के साहाय्य द्वारा जरासंध और कौरवों का दमन न हो सकता तो भी राम-कृष्ण की गतिविधि में पूरा सौन्दर्य रहता पर उनमें भगवान की पूर्ण कला का दर्शन न होता क्योंकि भगवान की शक्ति अमोघ है।

—रामचन्द्र शुक्ल (रसमीमांसा, पृ० ४८)

मंगल-शक्ति के अधिष्ठान राम और कृष्ण जैसे पराक्रम-शील और धीर हैं, वैसा ही उनका रूप-माधुर्य और उनका शील भी लोकोत्तर है।

—रामचन्द्र शुक्ल (रसमीमांसा, पृ० ४९)

कहना मुश्किल है कि राम और कृष्ण में कौन उन्नीस, कौन वीस है। सबसे आश्चर्य की बात है कि स्वयं ब्रज के चारों ओर की भूमि के लोग भी वहां एक-दूसरे को 'जै रामजी' से नमस्ते करते हैं।

—राममनोहर लोहिया (कृष्ण, पृ० १३)

भारतीय हृदय के चिरंजीव राजा दो हैं, एक अयोध्या-धीश राजा रामचन्द्र और दूसरे द्वारिकानाथ श्रीकृष्ण। दूसरे सैकड़ों राजा-महाराजा आए और गए, लेकिन इन दो राजाओं का राज अटल है। उनके सिंहासन पर अन्य कोई भी सत्ताधीश नहीं बैठ सकता। भारतीय संस्कृति मानो राम-कृष्ण ही है।

—साने गुरुजी (भारतीय संस्कृति, पृ० २९१)

राम और गंगा

तुलसी जेहि के पदपंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
ते प्रभु या सरिता तरिबे कहुँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े।।

जिनके चरण कमल से यह (गंगा) नदी प्रकट हुई है, जो बड़े-बड़े पापों का नाश करने वाली है, वे प्रभु श्री रामचन्द्र इस नदी को पार करने के लिए किनारे पर खड़े होकर (केवट) से नाव माँग रहे हैं।

—तुलसीदास (कवितावली, अयोध्याकाण्ड, ५)

राम और रावण

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।।

आकाश आकाश के ही तुल्य है, समुद्र समुद्र के ही समान है तथा राम और रावण का युद्ध राम और रावण के युद्ध के ही सदृश है।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकाण्ड, १०७।५१-५२)

लोक के विरोध में खड़ा होने वाला व्यक्ति रावण हैं पर जो लोक में रमकर जल बने···वह जाय···वायु बने, सबको शीतल करे, वही राम है। राम और रावण सभी युग में होते आये हैं।

—लमक्षीनारायण मिश्र (धरती का हृदय, पृ० ६७)

राम कथा

श्रुत्वा रामकथां रम्यां शिरः कस्य न कम्पते।

राम की रम्य कथा सुनकर कौन आनन्द से अपना सिर नहीं हिलाता ?

—अज्ञात

स्याम सुरभि पय विसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१० तथा दोहावली, १६६)

विरति विवेक भगति दृढ़ करनी।
मोह नदी कहँ सुन्दर तरनी॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१५।४)

राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२८)

राष्ट्र की भावात्मक एकता के लिए जिस उदात्त की आवश्यकता है, वह रामकथा में है।

—युगेश्वर (तुलसीदास आज के संदर्भ में)

रामकृपा

रामकृपा बिनु सुनु खगराई।
जानि न जाइ राम प्रभुताई।
जानें बिनु न होइ परतीती।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।।
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई।
जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।८९।३-४)

रामकृष्ण परमहंस

मेरे गुरुदेव का मानव जाति के लिए यह सन्देश है कि 'पहले'[1], स्वयं धार्मिक बनो और सत्य की उपलब्धि करो।'

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, भाग ७, पृ० २६७)

रामकृष्ण व्याख्यान नहीं देते थे, अखबार नहीं निकालते थे, शास्त्रार्थ भी नहीं करते थे, किन्तु उन्हें देखकर जनता को विश्वास हो गया कि निराकार ही सत्य नहीं है, साकार भी उतना ही सत्य है। यही नहीं, पुराण भी सत्य है, विभिन्न देवी-देवता भी सत्य हैं और साधना के सभी मार्ग भी सत्य हैं।

—रामधारीसिंह दिनकर (निबन्ध 'सगुणोपासना')

रामचरितमानस

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमंजुल मातनोति॥

अनेक पुराण, वेद और तन्त्र शास्त्र से सम्मत तथा जो रामायण में वर्णित है, और कुछ अन्यत्र से भी उपलब्ध श्री रघुनाथ जी की कथा को तुलसीदास अपने अन्तःकरण के सुख के लिए अत्यन्त मनोहर भाषा रचना में विस्तृत करता है।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १। श्लोक ७)

जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।३८)

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम्।
श्री मद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतंगघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

यह रामचरितमानस पुण्य रूप, पापों का हरण करने वाला, सदा कल्याणकारी, विज्ञान और भक्ति को देने वाला,

1. समाज को उपदेश देने से पहले।

माया मोह और मल का नाश करने वाला परम निर्मल प्रेम रूपी जल से परिपूर्ण तथा मंगलमय है। जो मनुष्य भक्ति पूर्वक इस मानसरोवर में गोता लगाते हैं, वे संसार रूपी सूर्य की अति प्रचण्ड किरणों से नहीं जलते।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१३०।२)

'मानस' के काव्य-पक्ष का तो कहना ही क्या है! उसके भीतर मनुष्य जीवन में साधारणत: आनेवाली प्रत्येक दशा और प्रत्येक परिस्थिति का सन्निवेश तथा उस दशा और परिस्थिति का अत्यंत स्वाभाविक, मर्मस्पर्शी और सर्वग्राह्य चित्रण है।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ६३)

'मानस' में तुलसीदास जी धर्मोपदेष्टा और नीतिकार के रूप में सामने आते है। वह ग्रंथ एक धर्मग्रंथ के रूप में भी लिखा गया है और माना जाता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ६४)

हिन्दी लिपि और भाषा जानना हर भारतीय का कर्तव्य है। उस भाषा का स्वरूप जानने के लिए 'रामायण' जैसी दूसरी पुस्तक शायद ही मिलेगी।

—महात्मा गांधी (इंडियन ओपिनियन, १७-१०-१९०८)

भारत की सभ्यता की रक्षा करने में तुलसीदास ने बहुत अधिक भाग लिया है। तुलसीदास के चेतनमय रामचरितमानस के अभाव में किसानों का जीवन जड़वत् और शुष्क बन जाता है—पता नहीं कैसे क्या हुआ, परन्तु यह निर्विवाद है कि तुलसीदास जी की भाषा में जो प्राणप्रद शक्ति है वह दूसरों की भाषा में नहीं पाई जाती। रामचरितमानस विचार-रत्नों का भण्डार है।

—महात्मा गांधी (गांधीसंपूर्ण वाङ्मय, खंड ४१, पृ० ४००)

मानस का प्रत्येक पृष्ठ भक्ति से भरपूर है। मानस अनुभवजन्य ज्ञान का भण्डार है।

—महात्मा गांधी (गांधी सम्पूर्ण वाङ्मय, खंड ४१, पृ० ५९०)

महाकवि तुलसीदास ने आदर्श, विवेक और अधिकारी-भेद के आधारभूत युगवाणी रामायण की रचना की।

—प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, ११४)

यह विश्व का एक विशिष्ट महाकाव्य है। वस्तुत: जीवन की उलझन का वह एक अत्यंत सुलझा हुआ ग्रंथ है।

—चन्द्रवली पाण्डे (तुलसीदास, पृ० ८७)

शिव-पार्वती के कारण जहां मानस आगम-ग्रंथ है, वहीं याज्ञवल्क्य, भारद्वाज जी और कागभुसुण्डि गरुड़ के कारण पुराण भी। तुलसी के कारण यह काव्यग्रंथ है ही।

—चन्द्रवली पाण्डे (तुलसीदास, पृ० ८७)

मानस एक ऐसा वाग्द्वार है जहाँ से समस्त भारतीय साधना और ज्ञानपरम्परा प्रत्यक्ष दीख पड़ती है। दूसरी ओर इसमें देशकाल से परेशान, दुखी और टूटे मनों को सहारा तथा संदेश देने की अद्‌भुत क्षमता है। आज भी यह करोड़ों मनों का सहारा है।

—युगेश्वर (तुलसीदास आज के संदर्भ में, प्रस्तावना)

रामतीर्थ

हृदय के द्वारा वे बुद्धि को भावुक बनाते थे और बुद्धि के द्वारा हृदय को विचारशील। परन्तु उनकी चेतना में सत्य सबसे महान् था और इन दोनों से ही ऊपर था।

—पूर्णसिंह (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइजेशन की भूमिका, खण्ड १, पृ० १२)

बुद्धि द्वारा वेदान्त के सिद्धान्तों का मान लिया जाना ही उन[1] के लिए वेदांत नहीं है। वे प्रेम की पवित्र वेदी पर गम्भीरतापूर्वक शरीर और चित्त की शुद्ध भेंट को वेदान्त समझते हैं। दर्शन-शास्त्र और तर्क, पुस्तक और प्रमाण पांडित्य और अलंकार विद्या से बौद्धिक सहमति पुष्टि पाकर बढ़ सकती है, किन्तु इन उपायों से रामतीर्थ के वेदान्त की उपलब्धि किसी को नहीं हो सकती।

—पूर्णसिंह (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइजेशन की भूमिका, खण्ड १, पृ० २५)

As we walk along with him, the echoes of his teachings we catch in the warblings of merry birds, in the liquid music of the falling rain and the life-throbs of 'both man, bird and beast'. In the morning bloom of flowers open his Bible. In the evening sparkle of stars flashes

१. स्वामी रामतीर्थ।

his Veda, His Alkoran is writ large in the living characters of myriad-hued life.

उनके साथ चलते-चलते उनकी शिक्षाओं की प्रतिध्वनियाँ हमें प्रसन्न पक्षियों के कलरव में, बरसते हुए पानी के रस भरे संगीत में और मनुष्य तथा पशु-पक्षी सभी के जीवन-स्पन्दों में सुनाई देती है। प्रभात में फूलों का खिलना मानो उनकी बाइबिल का खुलना है। साँझ में तारों का चमकना मानो उनके वेदों का प्रकट होना है। बहुरंगे जीवन के जीते-जागते व्यक्तियों में उनका अलकुरान मोटे अक्षरों में लिखा हुआ है।

—पूर्णसिंह (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइज़ेशन की भूमिका, खण्ड १, पृ० २३)

राम नाम

राम रामेति रामेति रामेति च पुनर्जपन्।
स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः॥
कुरुक्षेत्रम् तथा काशी गया वै द्वारका तथा।
सर्वं तीर्थं कृतं तेन नामोच्चारणमात्रतः॥

'राम', 'राम', 'राम', 'राम'—इस प्रकार बार-बार जप करने वाला चाण्डाल हो तो भी वह पवित्रात्मा हो जाता है—इसमें कोई सदेह नहीं है। उसने केवल नाम का उच्चारण करते ही कुरुक्षेत्र, काशी, गया और द्वारिका आदि सम्पूर्ण तीर्थों का सेवन कर लिया।

—पद्मपुराण (उत्तरखण्ड ७१।२०-२१)

तन्मुखं तु महातीर्थं तन्मुखं क्षेत्रमेव च।
यन्मुखे राम रामेति तन्मुखं सार्वकामिकम्॥

जिस मुख में 'राम-राम' का जप होता रहता है, वह मुख ही महान् तीर्थ है, वही प्रधान क्षेत्र है तथा वही समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।

—पद्मपुराण (उत्तरखण्ड, ७१।३३-३४)

रामनामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

श्री राम का नाम केवल श्री राम नाम ही मेरा जीवन है। कलियुग में और किसी उपाय से जीवों की सद्‌गति नहीं होती, नहीं होती, नहीं होती।

—स्कन्दपुराण (उत्तरखण्ड, नारद-सनत्कुमार संवाद, रामायण माहात्म्य, पंचम अध्याय।१)

वद जिह्वे वद जिह्वे चतुरे श्रीराम रामेति।
पुनरपि जिह्वे वद वद जिह्वे वद राम रामेति॥

हे बुद्धिमती जीभ! तू श्रीराम-राम कह! हे जीभ! तू बार-बार राम-राम बोल।

—लक्ष्मीधर (श्री भगवन्नाम कौमुदी)

कबीर आपण राम कहि, औरां राम कहाइ।
जिहि मुखि राम न ऊचरे, तिहि मुख फेरि कहाइ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ६)

लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम है लूटि।
पीछैं ही पछिताहुगे, यहु तन जैहे छूटि॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ७)

कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुस्तक देइ बहाइ।
बावन आखर सोधि करि, ररैं ममैं चित लाइ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३८)

बोवत बबूर, दाख फल चाहत, जोवत है फल लागे।
'सूरदास' तुम राम न भजिकैं, फिरत काल संग लागे॥

—सूरदास (सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पद ६१)

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२१)

राम नाम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२६)

स्वपच खबर खस जमन जड़ पाँवर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम होत भुवन विख्यात॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।१९४)

राम नाम बिनु गिरा न सोहा।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।२३।२)

यह कलिकाल मला यतन मन करि देखु बिचार।
श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिन आन अधार॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ६।१२१ख)

श्वपच, खल, भिल्ल, यवनादि हरिलोकगत,
नामबल विपुल मति मल न परसी।
त्यागि सब आस, संत्रास, भवपास,
असि निसित हरिनाम जपु दास तुलसी ।।
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, ४६)

राम-नाम छाँड़ि जो भरोसो करै और रे।
तुलसी परोसो त्यागि माँगे कूर कौर रे।।
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, ६६)

राम-नाम ही सों अंत सब ही को काम रे।
—तुलसीदास (विनय-पत्रिका, ६६)

कलि नहिं ज्ञान-विराग न जोग समाधि।
राम नाम जप 'तुलसी' नित निरुपाधि ।।
—तुलसीदास (बरवै रामायण, ४८)

राम नाम दुइ आखर हिय हितु जानु।
राम-लखन सम 'तुलसी' सिखवन आनु ।।

श्रीराम नाम के दोनों अक्षरों ('रा' और 'म') को श्रीराम-लक्ष्मण के समान हृदय से हितैषी जानना चाहिए, श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि यह शिक्षा हृदय में लानी चाहिए।

—तुलसीदास (बरवै रामायण, ४९)

तप तीरथ मख दान नेम उपवास।
सब ते अधिक राम जपु 'तुलसीदास' ।।
—तुलसीदास (बरवै रामायण, ५२)

एकु छत्रु एकु मुकुटमनि सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के बरन बिराजत दोउ ।।

श्री रघुनाथ जी के नाम (राम) के दोनों अक्षरों में एक 'र' तो (रेफ के रूप में) सब वर्णों के मस्तक पर छत्र की भाँति विराजता है और दूसरा 'म' सबके ऊपर मुकुट-मणि के समान सुशोभित होता है।

—तुलसीदास (दोहावली, ९)

केहि गनती महँ गनती जस बन घास।
राम जपत भए तुलसी तुलसीदास ।।
—तुलसीदास (बरवै रामायण, ५९)

राम नाम सुमिरत मिटहिं तुलसी कठिन कलेस।
—तुलसीदास (दोहावली, १७)

मोर मोर सब कहँ कहसि तू को कहु निज नाम।
कै चुप साधहि सुनि समुझि कै तुलसी जपु राम ।।
—तुलसीदास (दोहावली, १८)

राम नाम नर केसरी कनक कसिपु कलिकाल।
जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ।।
—तुलसीदास (दोहावली, २६)

राम नाम सब धरममय जानत तुलसीदास।
—तुलसीदास (दोहावली, २९।२)

ब्रह्म राम-तें नामु बड़, बर दायक बर-दानि।
राम-चरित सत कोटि महं, लिय महेस जिय जानि ।।
—तुलसीदास (दोहावली, ३१)

राम राम रसना रट्या,
मुख का खुल्या कपाट।
रोम रोम रुचि सूं पिया,
र र र र उचरत पाठ।
—संत सेवगराम

राम रावरे नाम में वही अनोखी बात।
दो सूधे आखर[1] तऊ आखर[2] याद न आत ।।
—चतुरसिंह महाराज

दरिया दूजे धर्म से, संसय मिटै न सूल।
राम नाम रटता रहै, सब धर्मों का मूल ।।
—दरिया महाराज

राम नाम नहिं हिरदै धरा, जैसा पसुवा तैसा नरा।
— दरिया महाराज

राम नाम ध्याया नहिं माई। जनम गया पसुवा की नाँई ।।
—दरिया महाराज

ररा ममा को ध्यान धरि यही उचारै ग्यान।
दुविध्या तिमिर सहजैं मिटै उदय भक्ति को भान ।।
—देवादास

१. अक्षर। २. अंतकाल।

दरिया यहु संसार है, राम नाम निज नाव।
दादू ढील न कीजिये, यहु औसर यहु दाव[1]॥
—दादू दयाल (श्री दादू दयाल जी की वाणी, पृ० ३७)

मुक्ति कौ धाम है, भुक्ति कौ दाम है,
राम कौ नाम है कामदं गैया।
—भिखारीदास (काव्यनिर्णय, २५ वां उल्लास)

'दास' कहै पैहलाद उबारत, रामहुँ ते पैहले किहि ठाँई।
राम बड़ाई न नाम बड़ौ भयौ राम बड़ौ निज नाम बड़ाई।
—भिखारीदास (काव्य निर्णय, २५ वां उल्लास)

राम शब्द विच परम सुख, जो मनवा मिलि जाय।
चौरासी आवै नहीं, दुख का धका न खाय॥
—संतदास (कल्याण, संतवाणी अंक, पृ० ४०२)

कठिन राम कौ काम है, सहज राम कौ नाम।
करत राम कौ काम जे, परत राम सों काम॥
—वियोगी हरि (वीर सतसई, सातवां शतक, ३५)

राम शब्द के उच्चार से लाखों-करोड़ों हिन्दुओं पर फ़ौरन असर होगा। और 'गॉड' शब्द का अर्थ समझने पर भी उसका उन पर कोई असर न होगा। चिरकाल के प्रयोग से और उनके उपयोग के साथ सयोजित पवित्रता से शब्दों को शक्ति प्राप्त होती है।
—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, १९-६-१९३६)

विकारी विचार से बचने का एक अमोघ उपाय राम-नाम है। नाम कंठ से ही नहीं, किन्तु हृदय से निकलना चाहिए।
—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, पृ० ३९)

राम नाम पुण्यात्माओं का अन्त समय का धन हैं,
ब्रह्मज्ञान का यह प्रतीक ऐसा अनमोल रतन है,
दस्यु न कोई छीन सका है जिसे भक्त के मन से,
नष्ट-भ्रष्ट होता न शस्त्र से राम-भक्त का तन है।
—नरेन्द्र शर्मा ('रक्तचंदन' की 'देवालय' कविता)

1. दांव, अवसर।

भारत रत्नर द्वीप मनुष्य-शरीर नौका
राम-नाम महारत्न सार।
हेनय बाणिज पाइ जिऽये जीवे नकरिल
तात परे दुखी नाहि आर॥

भारत रत्नों का द्वीप है, मनुष्य शरीर नौका है। राम नाम महारत्नों का सार है। व्यापार का ऐसा अवसर पाकर भी जो मनुष्य यह व्यापार नहीं करता, उससे अधिक भाग्य-हीन कोई नही है।
[असमिया] —माधवदेव (नामघोषा, २४।१६२।४०७)

एवरनि निर्णयिचिरि रा निन्नेट्लाराधि चिरिरा नरवरुलु
शिवुडवो माधवुडवो वामलभवुडवो परब्रह्म वो
शिवमंगमुनव्यु मा जीवमु माधव मंत्रमुनकु रा जीवमु
विवरमु तेलिसिन धनुलकु ओक्केद वितरण गुण त्यागराजनुत।

बुद्धिमान लोगों ने आपको किस रूप में पाया है या आपका रूप-निर्णय कैसे किया है? आप शिव हैं या केशव हैं या परब्रह्म है? वैसे देखा जाए तो शिवमंत्र का 'प्राण' मकार है क्योंकि 'नमः शिवाय' में अगर मकार को निकाला जाए तो न शिवाय' बचता है और अर्थ का अनर्थ हो जाता है। इसी प्रकार सप्ताक्षरी नारायण मन्त्र में से 'रा' को निकाला जाए तो 'नमो नायनाय' बचता है जिससे उलटे अर्थ का बोध हो जाता है। पर संयोग की बात है कि दोनों मन्त्रों के आधारभूत अक्षरों के संयोग से 'राम' शब्द की निष्पत्ति होती है। यही 'राम' शब्द का परम रहस्य है जिसके ज्ञाताओं के चरणों पर त्यागराज नतमस्तक है।
[तेलुगु] —त्यागराज

रामभक्त

रामचरन पंकज प्रिय जिन्हही।
विषय भोगु बस करहिं कि तिन्हही॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।८४।४)

सोइ सर्वग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। रामचरन जा कर मन राता॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२६।१)

जे जन रूखे विषय रस चिकने राम सनेह॥
—तुलसीदास (दोहावली, ६१।१)

तुलसी रामहुँ ते अधिक राम भगत जिय जान।

—तुलसीदास (दोहावली, १११)

रामभक्ति

अहिल्या पाषाणः प्रकृतिपशुरासीत् कपिचमू
गुहो भूच्चांडालस्त्रियमपि नीतं निजपदम्।
अहं चित्रे नाश्मः पशुरपि तवार्चादिकरणे
क्रियाभिश्चांडालो रघुवर न मामुद्धरसि किम् ॥

अहिल्या पत्थर थीं, कपि-समूह पशु था और निषाद चांडाल था, पर तीनों को आपने अपने पद में शरण दी। मेरा चित्त भी पत्थर है, आपके पूजने आदि में पशु समान भी हूँ और कर्म भी चांडाल सा है, तब आप मेरा उद्धार क्यों नहीं करते ?

—रहीम

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
वंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।७ ग)

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस १।८।१)

गिरा अरथ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१८)

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउं निरवान।
जनम-जनम रति रामपद यह वरदानु न आन ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२०४)

राम विमुख सिधि सपनेहुं नाहीं।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२५६।१)

जोग कुजोग ग्यानु अग्यानू।
जहँ नहिं राम प्रेम परधानू ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२९१।१)

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ३।३८।३)

दीपशिखा सम जुवति तन मन जनि होसि पतंग।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ३।४६ख)

लव निमेष परमानु जुग वरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ६। मंगलाचरण दोहा)

काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।७३ क)

जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर।
व्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर ॥
तिमि रघुपति निज दास कर करहिं मान हित लागि।
तुलसीदास ऐसे प्रभुहिं कस न भजहु भ्रम त्यागि ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।७४ क ख)

रामचन्द्र के भजन बिनु जो चह पद निर्वान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ विषान ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।७८)

बिनु हरि भजन न जाहि कलेसा।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।८९।२)

बिनु संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा।
थल विहीन तरु कबहुँ कि सामा ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।९०।१)

हरि माया कृत दोष गुन, बिनु हरि भजन न जाँहि।
भजिअ राम तजि काम सब, अस बिचारि मन माँहि ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१०४ क)

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत विचारि ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।११९ क)

जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।११९ ख)

राम भगति मनि उर बस जाके।
दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२०।५)

जीव न लहइ सुख हरि प्रतिकूला।
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२२।८)

बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२० ख)

बारि मथें घृत होइ वरु, सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिऊ यह सिद्धांत अपेल ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२२ क)

राम भजिअ सब काज बिसारी
—तुलसीदास (रामचरितसानस, ७।१२३।१)

जासु पतित पावन बड़ बाना।
गावहिं कवि श्रुति संत पुराना ॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई।
राम भजें गति केहिं नहिं पाई ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२९।४)

मो सम दीन न दीनहित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुवंस मनि हरहु विषम भव भीर ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१३० क)

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१३० ख)

तिहूँकाल तिनको भलौ जे राम-रँगीले ॥
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद ३२)

रामनाम-गति रामनाम-मति, रामनाम-अनुरागी।
ह्वै गये, है, जे होहिंगे, तेइ त्रिभुवन गनियत बड़भागी ॥
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, ६५)

जाके प्रिय न राम-वैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, १७४)

नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै वहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद १७४)

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ॥
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, १७४)

बरसा रितु रघुपति भवति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग, सावन-भादव मास ॥
—तुलसीदास (दोहावली, २५)

रहैं न जल भरि पूरि, राम सुजस सुनि रावरो।
तिन आँखिन में धूरि, भरि-भरि मूठी मेलिये ॥
—तुलसीदास (दोहावली, ४५)

स्वारथ सीता-राम-सों, परमारथ सिय राम।
—तुलसीदास (दोहावली, ५३)

ज्यों जग वैरी मीन को आपु सहित बिनु बारि।
त्यों तुलसी रघुबीर बिनु गति आपनी बिचारि ॥
—तुलसीदास (दोहावली, ५९)

तुलसी दुह महँ एक ही, खेल छाँड़ि छल खेलु।
कै करु ममता राम सों, कै ममता परहेलु[1] ॥
—तुलसीदास (दोहावली, ७९)

जौं जगदीस तौ अति भलो जौं महीस तौ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि राम चरन अनुराग ॥
—तुलसीदास (दोहावली, ९१)

मन मों न बस्यौ अस बालकु जौ तुलसी जग में फलु कौन जिए।
—तुलसीदास (कवितावली, बालकाण्ड २)

---

१. ममता को पूर्णतया त्याग दे।

रामु हैं, मातु पिता, गुरु, बंधु औ संगी सखा सुतु स्वामि सनेही।
राम की सौंह, भरोसो है राम को, राम रंग्यो रुचि राच्यो न केही ॥
जीअत रामु, मुएं पुनि रामु, सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जिए जग में, 'तुलसी' नतु डोलत और मुए धरि देही ॥
—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, ३६)

सिय राम सरूपु अगाध अनूप बिलोचन मीनन को जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नामु, हिएं पुनि रामहि को थलु है।
मति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रति रामसों, रामहि को बलु है।
सबकी न कहै, तुलसी के मतें, इतनो जग जीवन को फलु है ॥
—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, ३७)

कहत सुगम, करत अगम, सुनत मीठी लगति।
लहत सकृत, चहत सकल, जुग-जुग जगमगति।
राम प्रेम पथ ते कबहुँ डोलति नहिं डगति ॥
—तुलसीदास (गीतावली, अयोध्याकांड, ८२)

तुलसीदास रघुबीर भजन करि को न परम पद पायो ?
—तुलसीदास (गीतावली, सुन्दरकांड, ४४)

तुलसी कहत सुनत सब समुझत कोय।
बड़े भाग अनुराग राम सन होय ॥
—तुलसीदास (बरवै रामायण, ६३)

एकहि एक सिखावत जपत न आप।
तुलसी राम प्रेम कर बाधक पाप ॥

लोग एक दूसरे को शिक्षा दिया करते है, परन्तु स्वयं उसका जप नहीं करते। तुलसीदास कहते हैं कि राम-प्रेम का बाधक पाप है। जब तक यह पाप दूर नहीं होता, नाम-जप में मन नहीं लगता है।
—तुलसीदास (बरवै रामायण, ६४)

मरत कहत सब-सब कहँ सुमिरहु राम।
तुलसी अब नहिं जपत समुझि परिनाम ॥
—तुलसीदास (बरवै रामायण, ६५)

भजि मन राम सियापति,रघुकुल ईस।
दीनबंधु दुख टारन, कौसलधीस ॥
—रहीम (बरवै रामायण, ६१)

सेवग रीझै राम जी, प्रेम प्रीति जब होय।
प्रेम बिना रीझै नहीं, चतुराई कर जोय ॥
—सेवगराम

गदगद बानी पुलक तन, नैन नीर मन पीर।
नाम रटत ऐसी दसा, होत मिलत रघुवीर ॥
—युगलानन्यशरण

मान मान उपदेश गुरु, ध्याय ध्याय इक राम।
जाय जाय दिन जाय है, उदै करो विश्राम ॥
—दयाल महाराज

राम बिनु पुर बसिए केहि हेत।
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (राम-लीला, २६)

राम बिन सब जग लागत सूनो।
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (राम-लीला, ३३)

नूर फ़कीर जानैं नहीं जात बरन एक राम।
तुव चरनन में आय के अब तो कियो विश्राम ॥
—नूरुद्दीन

रामराज्य

काले वर्षति पर्जन्यः सुभिक्षं विमला दिशः।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं पुरं जनपदास्तथा ॥
नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तथा।
नानर्थो विद्यते कश्चिद् रामे राज्यं प्रशासति ॥

श्री राम के शासन करते समय मेघ समय पर वर्षा करते थे। सदा सुकाल रहता था। सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न थीं। नगर व जनपद हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से भरे रहते थे। किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी। प्राणियों को कोई रोग नहीं सताता था और कोई उपद्रव नहीं खड़ा होता था।
—वाल्मीकि (रामायण, उत्तरकाण्ड, ६६।१३-१४)

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि व्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुन्दर सब विरुज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।२१।१-४)

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र के राज।।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।२२)

लोक की रक्षा 'सत्' का आभास है, लोक का मंगल 'परमानन्द' का आभास है। इस व्यावहारिक 'सत्' और 'आनंद' का प्रतीक है राम-राज्य।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ३२)

रामराज्य याने प्रेमयोग और साम्ययोग—प्रेम और समत्व।

—विनोबा (लोकनीति, पृ० २१२)

कारु वारु सेयुवारु कलरे नोवले साके नागरिनि।
ऊरिवारु देश जनुलु वरमुनुलुप्पोंगुचु भावुकुलय्ये।
नेलकु मूड़ वानलखिल विद्यल नेपु गलिग दीर्घायुलु गलिग।
चलमु गर्व रहितलु गालदे साधु त्यागराज विनुत राम।

साकेत के स्वामी राम! जैसे आपने साकेत का शासन किया है, वैसा सुन्दर प्रशासन और कहाँ देखने को मिलेगा? ग्रामीण, नागरिक और सारे देशवासी भाव के धनी होकर काननवासी मुनियों को आनंद प्रदान किया करते थे। प्रतिमास तीन वार यथेष्ट वर्षा हुआ करती थी। लोग सभी विद्याओं में पारंगत हुआ करते थे। सभी लोग दीर्घायु होकर निराडंबर और निर्मल जीवन व्यतीत किया करते थे। ऐसा साधुवाद प्राप्त करने वाला राज्य और कहां पाया जाएगा!

[तेलुगु] —त्यागराज

राम-वन-गमन

सूर्य इव गतो रामः सूर्य दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता।।

सूर्य की भाँति राम चला गया। सूर्य के अनुगत दिवस की भाँति लक्ष्मण भी गया। सूर्य और दिन के चले जाने पर छाया की तरह सीता भी नहीं दिखाई दे रही है।

—भास (प्रतिमानाटक, २।७)

कीर के कागर ज्यों नृपचीर, बिभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवास के रूख ज्यों, पंथ के साथ ज्यों लोग-लुगाई।।
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया, मनो धर्मु क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन रामु चले तजि बाप का राज बटाऊ की नाई।।

श्री राम के अंगों ने राजोचित वस्त्रों और अलंकारों को त्याग कर वही शोभा पाई जो तोता अपने पुराने पंखों को त्याग कर पाता है। श्री राम ने अयोध्या को मार्ग-निवास के वृक्षों के समान त्याग दिया और अयोध्यावासी स्त्री-पुरुषों को मार्ग में मिले साथियों के समान त्याग दिया। श्री राम के साथ श्रेष्ठ भाई लक्ष्मण और पवित्र प्रिया सीता ऐसे प्रतीत होते हैं मानो धर्म और क्रिया सुन्दर देह धारण किए हुए हों। कमलनयन श्री राम अपने पिता का राज्य पथिक के समान छोड़ कर चल दिए।

—तुलसीदास (कवितावली, अयोध्याकाण्ड १)

ऐसी मनोहर मूरति ए, बिछुरें कस प्रीतम लोगु जियो है।
आँखिन में सखि राखिबे जोगु, इन्हें किमि कै बनवासु दियो है।।

—तुलसीदास (कवितावली, अयोध्याकाण्ड, २०)

रामायण

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।

इस पृथ्वी पर जब तक नदियों और पर्वतों की सत्ता रहेगी, तब तक संसार में रामायण-कथा का प्रचार होता रहेगा।

—वाल्मीकि (रामायण, बालकाण्ड, २।३६)

धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं च द्विजोत्तमाः।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या रामायणपरामृतम्।

विप्रवरो! रामायण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन तथा परम अमृत-रूप है; अतः सदा भक्ति-भाव से उसका श्रवण करना चाहिए।

—स्कन्दपुराण (उत्तरखण्ड, १।२४)

वाल्मीकीय रामायण को मैं आर्य काव्य का आदर्श मानता हूँ।

—रामचन्द्र शुक्ल (रसमीमांसा, पृ० ८७)

गृहाश्रम भारतीय आर्य-समाज की भित्ति है और रामायण उसी का महाकाव्य।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ('रामायण' निबन्ध)

रामायण ने बाहुबल को नहीं, जिगीषा को नहीं, राष्ट्र-गौरव को नहीं, केवल शान्त-रसास्पद गृहधर्म को ही, करुणा के अश्रुजल से अभिषिक्त कर, महान शौर्य-वीर्य्य के ऊपर प्रतिष्ठित किया है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ('रामायण' निबन्ध)

रामायण और महाभारत

महाभारत और रामायण हमारे राष्ट्रीय ग्रंथ हैं। उनमें वर्णित व्यक्ति हमारे जीवन में एकरूप हो गये हैं। राम, सीता, धर्मराज, द्रौपदी, भीष्म, हनुमान आदि के चरित्रों ने सारे भारतीय जीवन को हज़ारों वर्षों से मंत्रमुग्ध सा कर रखा है। संसार के अन्यान्य महाकाव्यों के पात्र इस तरह लोक-जीवन में घुले-मिले नहीं दिखाई देते। इस दृष्टि से महाभारत और रामायण निस्सन्देह अद्‌भुत ग्रन्थ हैं। रामायण यदि एक मधुर-नीति काव्य है, तो महाभारत एक व्यापक समाजशास्त्र।

—विनोबा (गीता प्रवचन, पृ० ९-१०)

राष्ट्र

तद् वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम्।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना॥

जिस राष्ट्र में विद्वान सताए जाते हैं, वह विपत्तिग्रस्त होकर वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे टूटी नौका जल में डूबकर नष्ट हो जाती है।

—अथर्ववेद (५।१९।८)

राजनीति के सिद्धान्त में राष्ट्र की रक्षा सब उपायों से करने का आदेश है इसलिए राजा, रानी, कुमार और अमात्य सब का विसर्जन किया जा सकता है किन्तु राज्य-विसर्जन अन्तिम उपाय है।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, प्रथम अंक)

फूंक दो उस राष्ट्र को जहाँ स्वाभिमान पर मर मिटने वाले पुरुष नहीं, आग लगा दो उस देश में जहाँ पातिव्रत की रक्षा के लिए धधकती आग में अपने को झोंक देने वाली स्त्रियां नहीं और पीस दो उस समाज को जो अपना अधिकार दूसरों को सौंप कर बँधे हुए कुत्ते की तरह से याचक आँखों से उसकी ओर देखता है।

—श्यामनारायण पांडे (जौहर, भूमिका, पृ० ३)

राष्ट्रों की प्रगति क्रमिक विकास और क्रान्ति दोनों तरीक़ों से हुई है। क्रमिक विकास और क्रान्ति दोनों ही समान रूप से ज़रूरी हैं।

— महात्मा गांधी (यंग इंडिया, २-२-१९२२)

हम ऐसे लोगों के समूह को 'राष्ट्र' नाम नहीं दे सकते जो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों वाले, भिन्न-भिन्न विचार-धाराओं वाले हों तथा जिनके इतिहास भिन्न हों, हिताहित कल्पनाएँ परस्पर विरोधी हों, परस्पर शत्रु-भाव मानते हों, जिनके आपसी संबंध भक्ष्य-भक्षक के रहे हों और जिनके रहने के मूल कारण भी एक से न हों।

—केशव बलीराम हेडगेवार

जब यह कहा जाता है कि हमारे राष्ट्र को किसी निश्चित जीवन-दर्शन को अंगीकार कर लेना चाहिए तो उसका अभिप्राय यही होता है कि हमारे राष्ट्र के सामने कोई निश्चित लक्ष्य एवं आदर्श होना चाहिए जिसकी प्राप्ति के लिए वह प्रयत्न करे।

—सम्पूर्णानन्द (अधूरी क्रांति, पृ० २९)

व्यक्तिवाद अधर्म है। राष्ट्र के लिए काम करना धर्म है। राष्ट्र-कार्य को साधने के लिए जो कुछ आ पड़े, करना ही उचित है।

—दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्र के स्वरूप का परम्परागत सच्चा साक्षात्कार होने से राष्ट्रीय जीवनोद्देश्य का ज्ञान होता है और राष्ट्र-जीवन चैतन्य से भर जाता है।

—दीनदयाल उपाध्याय

जब एक मानव-समुदाय के समक्ष एक मिशन, विचार या आदर्श रहता है और वह समुदाय किसी भूमि विशेष को मातृभाव से देखता है तो वह राष्ट्र कहलाता है।

—दीनदयाल उपाध्याय

किसी न किसी नित्य-यज्ञ के बिना राष्ट्र खड़ा नहीं रह सकेगा।

—विनोबा (विचार पोथी, पृ० २९८)

राष्ट्र को जोश, उत्तेजना और भावनाशीलता की जितनी आवश्यकता है, उतनी विवेक, धैर्य और दूरदर्शिता की भी।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी' (शक्ति-साधना, पृ० ६३)

राष्ट्र का शाब्दिक अर्थ है रातियों का संगम स्थल और राति शब्द 'देन' का पर्यायवाची है। राष्ट्रभूमि और राष्ट्र-जन की यह संयुक्त इकाई राष्ट्र इसीलिए कही जाती है कि यहाँ राष्ट्रजन अपनी-अपनी 'राति' (देन) राष्ट्रभूमि के चरणों पर अर्पित करते हैं। जो इस राति से मातृभूमि को वंचित करना चाहता है वह अराति है, देशद्रोही है। उसके लिए राष्ट्र में कोई स्थान नहीं हो सकता।

—फतहसिंह (साहित्य और राष्ट्रीय स्व, पृ० २८)

राष्ट्र-निष्ठा से अभिप्राय है व्यक्तिगत 'स्व' के निर्माण में लगाने की लगन, राष्ट्र के लिए सर्वस्व त्याग एवं पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना, इससे उद्भूत होता है राष्ट्रजन के प्रति प्रेम, सेवा और त्याग का भाव जो व्यक्ति में मनुष्य-निष्ठा का रूप ग्रहण कर राष्ट्रीय सीमाओं को भी लाँघने के लिए उत्सुक रहता है।

—फतहसिंह (साहित्य और राष्ट्रीय स्व, पृ० २८)

जो राष्ट्र जीवन-रस से भरा है, वह प्रभावों से डरता नहीं फिरता। वह खुली आँखों से जगत् के समस्त पदार्थों को, धर्मों को, मतों को, काव्यों को, चित्रों को देखता है और उसके जीवन की पूर्ति के लिए जो आवश्यक होता है उसे ग्रहण करता है और अपने आप जीवन-रस की परिपूर्णता के कारण जो ऐश्वर्य आलोकित हो उठता है, उसे दूसरों को देता रहता है। देने में और लेने में विवेक की शरण जाना चाहिए, संस्कारों को नहीं। लेकिन ठीक-ठीक विवेक के लिए हमें अपने और पराये संस्कारों का ज्ञान चाहिए।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचार-प्रवाह, पृ० १७२)

हर एक राष्ट्र का विश्व के लिए एक ध्येय होता है और जब तक वह ध्येय आक्रान्त नहीं होता, तब वह राष्ट्र जीवित रहता है—चाहे जो संकट क्यों न आये। पर ज्यों ही वह ध्येय नष्ट हुआ कि राष्ट्र भी ढह जाता है।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, खण्ड १०, पृ० ५)

प्रत्येक राष्ट्र का लक्ष्य विधाता द्वारा निर्धारित है। प्रत्येक राष्ट्र के पास संसार को देने के लिए कोई न कोई संदेश है। प्रत्येक राष्ट्र को किसी विशेष संकल्प की पूर्ति करना है।

— विवेकान्द (उत्तिष्ठत जाग्रत, पृ० १९)

The reconstitution of a nation has to begin with its ideals.

राष्ट्र का पुनर्निर्माण उसके आदर्शों के पुनर्निर्माण से प्रारंभ होना चाहिए।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज वर्क्स, भाग ४, पृ० ३५०)

Every nation has a particular genius of its own and therefore a particular way of self-expression.

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी विशेष प्रतिभा होती है और इसीलिए आत्माभिव्यक्ति की एक विशेष विधि होती है।

—सुरेन्द्रनाथ दास गुप्ता (फंडामेंटल्स आफ़ इंडियन आर्ट, भूमिका, पृ० ११)

A nation is not conquered which is perpetually to be conquered.

ऐसा राष्ट्र जिसे निरन्तर जीतते रहना पड़े अविजित ही है।

—एडमंड बर्क, (अमरीका से समझौते पर भाषण, २२ मार्च १७७५)

Nations, like men, hire their infancy.

मनुष्यों की तरह राष्ट्रों का भी शैशव होता है।

—विस्काउट बोलिंगब्रोक (आन दि स्टडी आफ़ हिस्टरी, लेटर सेकेंड)

Better one suffer, than a nation grieve.

राष्ट्र दुःखी हो, इसकी अपेक्षा एक व्यक्ति का कष्ट झेलना अधिक अच्छा है।

—ड्राइडेन

The true source of our national power is our power of intellect—of our wealth, our wealth of ideas—of our resources, our resources of human skill and energy.

हमारी राष्ट्रीय शक्ति का वास्तविक स्रोत है हमारी बौद्धिक क्षमता, हमारी सम्पति—विचारों की सम्पत्ति की क्षमता, हमारे साधनों—मानवीय शिल्प तथा शक्ति के साधनों—की क्षमता।

ह्यूबर्ट एच० हम्फ़्री (भाषण, २ दिसंबर १९६५)

राष्ट्र और धर्म

मेरी मान्यता है कि कोई भी राष्ट्र धर्म के बिना वास्तविक प्रगति नही कर सकता।

—महात्मा गांधी (बुनकरों की सभा में भाषण, ३१-८-१९१९)

किसी व्यक्तिगत और स्थानीय धर्म को राष्ट्रीय धर्म से ऊँचा स्थान न देना चाहिए। इन धर्मो को ठीक अनुपात से रखना ही सुख लाता है।

—रामतीर्थ (स्वामी रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० १)

राष्ट्र और राज्य

'राष्ट्र' एक स्थायी सत्य है। राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए 'राज्य' पैदा होता है।

—दीनदयाल उपाध्याय

राष्ट्र (नेशन) और राज्य (स्टेट) को समानार्थी मानने में ही पश्चिमी विचारकों ने स्वयं के जीवन में अनेक भ्रांतियाँ तथा उसके परिणामस्वरूप अव्यवस्थाएँ पैदा कर ली हैं। वस्तुतः ये पूर्णतः दो भिन्न इकाइयाँ हैं। एक भावमूलक है, दूसरी व्यवस्थामूलक है। इनकी समानता तो दूर रही, परस्पर तुलना भी संभव नहीं। इसी आधार पर भारतीय मान्यता है कि राष्ट्र के लिए राज्य है, राज्य के लिए राष्ट्र नहीं।

—विश्वनाथ लिमये (मैं या हम, पृ० ७५)

राष्ट्र-निंदा

राष्ट्रीय जीवनरूपी यह जहाज़ लाखों लोगों को जीवनरूपी समुद्र के पार करता रहा है। कई शताब्दियों से इसका यह कार्य चल रहा है और इसकी सहायता से लाखों आत्माएँ रस-सागर में उस पार अमृत-धाम में पहुँची हैं। पर आज शायद तुम्हारे ही दोष से इस पोत में कुछ ख़राबी हो गई है, उसमें एक-दो छेद हो गये हैं तो क्या तुम इसे कोसोगे?

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, खण्ड ५, पृ० १२२)

राष्ट्र-निर्माण

जो आवश्यकता है, वह है हृदय में देश के दर्द की, देश के असंख्य लोगों की निहित शक्ति और उज्ज्वल भविष्य पर विश्वास की, और महलों से निकलकर झोंपड़ियों में धूनी रमा देने और देश के ग़रीबों के साथ कंधा मिलाकर चलने, सोचने, समझने और काम करने की।

—गणेशशंकर 'विद्यार्थी' (साप्ताहिक प्रताप, १९ मई १९२४)

कायरों से राष्ट्र नहीं बना करते।

—गणेशशंकर 'विद्यार्थी' (साप्ताहिक प्रताप, २१ जुलाई १९२४)

Breakers of home can not be the makers of nations.

गृहों के भंजक राष्ट्रों के निर्माता नहीं हो सकते।

—अज्ञात (बालकृष्णभट्ट की भट्ट निबंधावली, पृ० १९ पर उद्धृत)

राष्ट्रपतन

No nation can fall from any point of view without being degraded spiritually.

बिना आध्यात्मिक पतन हुए किसी राष्ट्र का किसी भी दृष्टि से पतन नहीं हो सकता।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइज़ेशन, पृ० १०२)

राष्ट्रपति

मैं तो एक ऐसे राष्ट्रपति की कल्पना करता हूँ जो नाई या मोची का धन्धा करके अपना निर्वाह करता हो और साथ ही राष्ट्र की बागडोर भी अपने हाथों मे थामे हुए हो।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, २२-१२-१९१९)

राष्ट्रभक्ति

दे० 'देशभक्ति' भी।

हमें नवीन कुछ नहीं करना है। हमारे पूर्वजों ने जिस भाँति समाज और संस्कृति की सेवा की, जो ध्येय अपने सामने रखे और उनकी प्राप्ति के लिए दिन-रात प्रयत्न किए उन्हीं ध्येयों को उसी भाँति हमें भी सिद्ध करना है, उनका अधूरा कार्य पूरा कर राष्ट्र-सेवा करनी है।

—केशव बलीराम हेडगेवार

सच्चा राष्ट्रभक्त वह है जो स्वयं के लिए संन्यस्त और राष्ट्र के लिए दिन-रात छटपटाता रहता है।

—माधव स० गोलवलकर (प्रसिद्ध भाषण 'वयं पंचाधिकं शतम्', १९४८ ई० मकरसंक्रांति)

भक्तिवान अन्तःकरण ही चरित्रवान होगा। मातृभूमि की भक्ति हृदय में जाग्रत होगी तो सद्गुणों के अर्जित करने की चेष्टाएँ प्रारम्भ होने में विलम्ब नहीं लगेगा।

—माधव स० गोलवलकर (श्री गुरुजी समग्र दर्शन, खंड ७, पृ० ७)

सगुण और निर्गुण की उलझन का लोकपक्ष भी है। राष्ट्र (स्टेट) निर्गुण, व्यक्ति या जन सगुण और प्रत्यक्ष सिद्ध है। उसीके कल्याण में रस है। कोरा सिद्धांत या वाद निर्गुण या अमूर्त है, किन्तु जन का जीवन मूर्त और प्रेम का पात्र है। हमारे समस्त सिद्धांतों या मतवादों को सगुण जन-जीवन की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (कल्पवृक्ष, पृ० १४६)

अपनी भाषा है भली, भलो आपुनो देस।
जो कुछ अपनो है भलो, यही राष्ट्र-संदेस॥

—अज्ञात

कोई मनुष्य सर्व रूप परमात्मा से अपनी अभेदता तब तक कदापि अनुभव नहीं कर सकता, जब तक कि समग्र राष्ट्र के साथ अभेदता उसके शरीर के रोम-रोम में जोश न मारती हो।

—रामतीर्थ (स्वामी रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० १)

राष्ट्र के हित के लिए प्रयत्न करना ही विश्व की शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना करना है।

—रामतीर्थ (स्वामी रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० १)

राष्ट्र के हित की वृद्धि के लिए प्रयत्न करना ही आधि-दैविक शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना करना है।

—रामतीर्थ (राम हृदय, पृ० २)

मतभेद भुलाकर किसी विशिष्ट कार्य के लिए सारे पक्षों का एक हो जाना ज़िन्दा राष्ट्र का लक्षण है।

—लोकमान्य तिलक

राष्ट्र-भक्ति ही समस्त राष्ट्रीय प्रगति तथा स्वातन्त्र्य का मूल है।

—लाला हरदयाल

इतिहास तथा राजनीति-शास्त्र का अध्ययन करके राष्ट्रभक्त अपने-अपने सुझाव प्रस्तुत कर सकते हैं। रोग एक हैं, वैद्य बहुत से। देखें किसका नुस्खा कारगर होता है। इसमें गालियाँ देने और व्यक्तिगत चोटें करने की आवश्यकता नहीं। आदमी को एक तर्क के मुक़ाबले पर दूसरा तर्क प्रस्तुत करना चाहिए ताकि इस महत्त्वपूर्ण समस्या पर विचार किया जा सके।

—लाला हरदयाल

राष्ट्रवाद

पृथ्वी पर नेशन[1] का निर्माण तो सत्य के ज़ोर से हुआ, लेकिन नेशनलिज़्म[2] सत्य नहीं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (१० अगस्त १९२१ का शांति निकेतन का भाषण 'शिक्षा का मिलन')

राष्ट्रीय एकता

राजनीति और अर्थशास्त्र के बिना भले ही
जी लें जन,—राष्ट्रीय ऐक्य के बिना न संभव।

—सुमित्रानंदन पंत (पतझर, 'इतिहास भूमि')

लड़ें क्यों हिन्दुओं से हम यहीं के अन[3] से पनपे हैं
हमारी भी दुआ ये है कि गंगा जी की बढ़ती हो।

—अकबर (महाकवि अकबर का उर्दू काव्य, पृ० २१९)

ये झगड़े बखेड़े मेट कर आपस में मिल जाओ,
ये तिफ़रके अबस[4] है तुममें हिन्दू और मुसलमां की।

—अशफ़ाक़ उल्ला खाँ (अमर शहीद अशफ़ाक़ उल्ला खाँ, पृ० ९६)

१. राष्ट्र। २. राष्ट्रवाद। ३. अन्न।
४. भेद-भाव व्यर्थ है।

राष्ट्रीय चरित्र

विविध प्रसंगों पर जिस राष्ट्र के लोग तेजस्विता का परिचय देते हैं, उनके बारे में तेजस्वी जनसमूह के मन में आदर निर्माण होता है। राष्ट्र का बड़प्पन उसकी जनसंख्या पर निर्भर नहीं करता।

—लोकमान्य तिलक

जो राष्ट्र का हित, वही व्यक्ति का हित और जो राष्ट्र का कर्तव्य, वही व्यक्ति का कर्तव्य—यह भावना जिस दिन प्रत्येक व्यक्ति में जाग्रत हो जाएगी वह देश के लिए बड़ा ही सुदिन होगा।

—लोकमान्य तिलक

We must first attain the Swaraj-character before we can reasonably be expected to work a Swaraj state-constitution.

स्वराज का राज्य-संविधान चलाने की युक्तिसंगत आशा हमसे तभी की जा सकती है जब हम पहले स्वराज—चरित्र को प्राप्त कर लें।

—विपिनचन्द्र पाल (१ सितम्बर १९२३ के 'दि इंग्लिशमैन' पत्र में लेख 'आवर अनफ़िटनेस फ़ार रियल रिस्पांसिबिल गवर्नमेण्ट)

Subjugation to a foreign yoke is one of the most potent causes of the decay of national character.

किसी भी राष्ट्र के चरित्र में अधःपतन के सबसे प्रबल कारणों में से एक कारण उस राष्ट्र का किसी विदेश शासन के अधीन हो जाना है।

—ई० ए० रॉस (प्रिंसिपिल्स आफ़ सोशियोलाजी, पृ० १३२)

राष्ट्रीयता

राष्ट्रीयता का आदर्श एक गहरा और मज़बूत आदर्श है, और यह बात नहीं कि इसका ज़माना बीत चुका हो और आगे के लिए इसका महत्त्व न रह गया हो; लेकिन और भी आदर्श जैसे अन्तर्राष्ट्रीयता और श्रमजीवी वर्ग के आदर्श—जो मौजूदा ज़माने की असलियतों की बुनियाद पर ज़्यादा

क़ायम हैं—उठ खड़े हुए हैं और अगर हम दुनिया की कश-मकश को बंद कर अमन क़ायम करना चाहते हैं, तो हमें इन जुदा-जुदा आदर्शों के बीच एक समझौता क़ायम करना होगा। आदमी की आत्मा के लिए राष्ट्रीयता का जो आकर्षण है—इसका लिहाज़ करना पड़ेगा, चाहे उसके समय दायरे को कुछ सीमित ही करना पड़े।

—जवाहरलाल नेहरू (हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० ६७)

शिक्षा, स्वदेशी तथा स्वराज्य—राष्ट्रीयता के तीन प्रधान स्तंभ हैं। जिस समय तक तुम अपने परिश्रम तथा प्रयत्नों द्वारा उन्हें सुदृढ़ न कर लो उस समय तक विश्राम न लो।

—मैजिनी

This barbarous feeling of Nationalty···has become the curse of Europe.

राष्ट्रीयता की यह वर्बर भावना···यूरोप का अभिशाप हो गयी है।

—डब्ल्यू नैस्सन सीनियर

राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता

राष्ट्रीयता भी सत्य है और मानव जाति की एकता भी सत्य है। इन दोनों सत्यों के सामंजस्य में ही मानव जाति का कल्याण है।

—अरविन्द (कर्मयोगी)

अन्तर्राष्ट्रीयता तभी पनप सकती है जब राष्ट्रीयता का सुदृढ़ आधार हो।

—श्यामाप्रसाद मुकर्जी (भारतीय जनसंघ के कानपुर अधिवेशन में भाषण, दिसम्बर १९५२)

राष्ट्रीय प्रगति

दमनचक्र से राष्ट्र पीछे नहीं, उलटे और शक्ति लगाकर आगे को ही बढ़ता है। प्रगति के लिए राष्ट्रको धर्माधिष्ठित विजिगीषु वृत्ति रखनी चाहिए। फिर उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं। किन्तु जो भी प्रगति या सुधार करना हो, वह राष्ट्र की अपनी विशेषताओं को बनाये रखकर उसके अनुसार ही करना चाहिए।

—लोकमान्य तिलक

No man has a right to fix the boundary of the march of a nation: no man has a right to say to his country—thus far shalt thou go and no further.

राष्ट्रीय प्रगति की सीमा को निर्धारित करने का अधिकार किसी व्यक्ति को नहीं है। किसी को भी अपने देश से यह कहने का अधिकार नहीं है कि तुम बस इतना आगे तक बढ़ोगे, उसके बाद नहीं।

—पारनल (कॉर्क में भाषण, २१ जनवरी १८८५)

रासलीला

अद्भुत रस रह्यो रास गीत धुनि सुनि मोहे मुनि।
सिला सलिल ह्वै चली सलिल ह्वै रहयो सिला पुनि॥
पवन थक्यौ, ससि थक्यौ, थक्यो उडु-मंडल सिगरौ।
पाछै रवि रथ थक्यौ चलै नहिं आगे डगरौ॥

—नंददास (रास पंचाध्यायी, ५।२२-२३)

प्रकृति-पुरुष के संयोग से ब्रह्मांड की रचना ही रास-लीला है। इस रासलीला में परमात्मा की शक्तिस्वरूपिणी माया या प्रकृति ही राधा है।

—गंगेश्वरानंद (सद्गुरु स्वामी गंगेश्वरानंद के लेख तथा उपदेश, पृ० २१७

मधुर-भाव में सब सम्बन्ध, सब भाव तथा रस पीछे छूट जाते हैं और भक्त सब कुछ भूलकर भगवान को ही एक मात्र सर्वस्व समझकर उन्हीं की सेवा तथा आराधना में लीन होकर आनन्द-विभोर हो जाता है। बस उसी का नाम रास-लीला है जिसको गोपियों ने किया और परम पद की अधिकारिणी बन गयीं। यही मधुर भाव की महिमा है जो तन्मय बना दे।

—गंगेश्वरानंद (सद्गुरु स्वामी गंगेश्वरानंद के लेख तथा उपदेश)

राह

मैं राहों का अन्वेषी हूँ,
राहें ही धोखा देती हैं।

—सतीश बहादुर वर्मा (लहर और लपटें, पृ० ५७)

रीति-रिवाज

रिवाज के कुएँ में तैरना अच्छा है। उसमें डूबना आत्म-हत्या है।

—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, २-७-२५)

We think according to nature; we speak according to rules; but we act according to custom.

हम विचार करते हैं अपने स्वभाव के अनुसार, बोलते हैं नियमों के अनुसार, किन्तु हम काम करते हैं रीतिरिवाज के अनुसार।

—बेकन (एक्जेम्पिला एंटीथेटोरम, १०)

रुचि

अन्यया यौवने मर्त्यो बुद्ध्या भवति मोहितः।
मध्ययेऽन्यया जरायां तु सोऽन्या रोचयते मतिम्॥

मनुष्य यौवन में किसी और ही प्रकार की बुद्धि से मोहित होता है, मध्यम अवस्था में दूसरी ही बुद्धि से प्रभावित होता है, किन्तु वृद्धावस्था में उसे अन्य प्रकार की ही बुद्धि अच्छी लगने लगती है।

—वेदव्यास (महाभारत, सौप्तिक पर्व, ३।११)

भिन्नरुचिर्हि लोकः।

लोगों की रुचि भिन्न-भिन्न होती है।

—कालिदास (रघुवंश, ६।३०)

न खल्वक्षिदुःखितोभिमुखे दीपशिखां सहते।

दुखती आँखों वाले को सामने रखी दीपशिखा अच्छी नहीं लगती है।

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, १।२१ के पश्चात्)

प्रत्यक्षकविकाव्यं च रूपं च कुलयोषितः।
गृहवैद्यस्य विद्या च कस्मैचिद्यदि रोचते॥

प्रयत्क्ष कवि की कविता, कुलस्त्रियों का रूप और घरेलू वैद्य की चिकित्सा किसी-किसी को ही अच्छे लगते हैं।

—अज्ञात (राजशेखर कृत काव्यमीमांसा, १।१० में उद्धृत)

मिट्ठत्तणे महिअलम्मि ण किं व अण्णं
रुच्चिस्स अत्थि सरिसं पुणु माणुसस्स।

मनुष्य की रुचि के समान पृथ्वी पर कोई भी वस्तु मधुर नहीं हैं।

[प्राकृत] —राजशेखर (कर्पूरमंजरी, ३।१४)

जं जस रुच्चइ तं तसु भल्लउ।

जो जिसे अच्छा लगे, वही उसके लिए भला है।

[अपभ्रंश] —नयनंदी (सुदंदण चरिउ, ७।५)

ऊधो मन माने की वात।
दाख छुहारा छांड़ि अमृत फल विष कीरा विष खात।
सूरदास जाको मन जासौं, सोई ताहि सुहात॥

—सूरदास (सूरसागर, १०।४६३६)

गुन अवगुन जानत सब कोई।
जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।४।५)

जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।८०)

चोरहि चंदिनि राति न भावा।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।११।४)

जद्यपि ताको सोइ मारग प्रिय जाहि जहां बनि आई।
मैन के दसन[1] कुलिस के मोदक[2] कहत सुनत बौराई॥

—तुलसीदास (श्रीकृष्ण गीतावली, पद ५१)

मीठ काह[3] कवि कहहिं जाहि जोइ भावहि।

—तुलसीदास (पार्वतीमंगल, ४०)

भिन्न रुचि भिन्न देश औ काल,
विनिर्मित जग का वस्तु स्वरूप,
असुन्दर भी सुन्दर है कहीं
और सुन्दर भी कहीं कुरूप।

—गोपालदास 'नीरज' (दो गीत, पृ० ५२)

कोयल अम्बहि लेते है,काग निवोरी लेत।

—अज्ञात

---

१. मोम के दांत। २. वज्र के लड्डू। ३. मीठा क्या है?

भरे पेट पर शक्कर भारी।

—हिंदी लोकोक्ति

गुलहाय-रंगारंग में है जीनते चमन[1]
ऐ ज़ौक इस जहाँ[2] को है ज़ेब[3] इख्तलाफ़[4] से।

—ज़ौक़

पेट पुरिले अमृत पित्ता।
पेट भरा होतो अमृत भी कड़ुवा लगे।

—उडिया लोकोक्ति

कोई कार्य तुच्छ नहीं। यदि मन पसन्द कार्य मिल जाये तो मूर्ख भी उसे पूरा कर सकता है। किन्तु बुद्धिमान पुरुष वही है जो प्रत्येक कार्य को अपने लिए रुचिकर बना ले।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत जाग्रत, पृ० १४४)

It is our business, as readers of literature, to know what we like. It is our business, as Christian, as well as readers of literature to know what se ought to like. It is our business as honest men not to assume that what we like is what we ought to like

साहित्य के अध्येता के नाते हमारा यह कर्तव्य है कि हम जानें कि हम क्या पसंद करते हैं। ईसाई होने और साथ ही साहित्य के अध्येता होने के नाते यह जानना हमारा कर्तव्य है कि हमारी पसंद क्या होनी चाहिए। ईमानदार मनुष्य होने के नाते हमारा कर्तव्य है कि हम यह न मान लें कि हमारी जो पसंद है, वह वही है जो होनी चाहिए थी।

—टी० एस० इलियट (सिलेक्टिड एसेज़)

रूठना

रूठने का लुत्फ़[5] यह है रूठिए मन जाइए
रूठते हैं आप लेकिन रूठना आता नहीं।

—अज्ञात

मित ज अतरो माण कर, जितो ज आटा लूंण।
घड़ी घड़ी रै रूसणें, तूझ मनासी कूंण॥

मित्र, इतना ही मान करो जितना आटे में नमक होता है। बार-बार रूठने पर आखिर तुझे मनाता कौन रहेगा?

[राजस्थानी] —अज्ञात

रूढ़ि

प्राचीन हों कि नवीन छोड़ो रूढ़ियाँ जो हों बुरी,
बन कर विवेकी तुम दिखाओ हंस जैसी चातुरी।
प्राचीन बातें ही भली हैं, यह विचार अलीक है,
जैसी अवस्था हो जहाँ वैसी व्यवस्था ठीक है।

—मैथिलीशरण गुप्त, (भारत-भारती, पृ० १६८)

रूढ़ि, बिना जड़ की वह बेल,
चूस रही जीवन-रस खेल।

—मैथिलीशरण गुप्त (हिन्दू, पृ० १६४)

रूढ़ि वस्तुतः अन्तर्निहित तत्त्ववाद को भुला देने का ही नाम है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० १००)

रूढ़िवादी

ये लोग[1] इस सत्य को किसी तरह मानते ही नहीं कि काल के साथ ही साथ नियम भी बदला करते हैं। इसलिए ज्यों ही किसी समयोपयोगी नवीन पथ का अवलम्बन करने की चेष्टा होती है, त्यों ही ये लोग मारे भय के सूख जाते हैं।

—शरत्चन्द्र (नारी का मूल्य, पृ० २७)

रूप

परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता।
संसार में परस्पर रूप की समानता दिखाई पड़ती है।

—भास (वासवदत्ता, ४।१४)

तं रुअं जत्थ गुणा।
रूप वह है जहाँ गुण हो।

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथा सप्तशती, ३।५१)

१. उद्यान की शोभा। २. जगत। ३. शोभा।
४. मतभेद, भिन्नता।
५. आनन्द।

१. रूढ़िवादी।

तरवर आछा छांवला, रूप सुहाना सांवला।

वृक्ष तो छायादार अच्छा है और रूप सांवला अच्छा होता है।

—हिंदी लोकोक्ति

मोती बाया न नीपजें, कंचन लगें न डार।
रूप उधारो ना मिले, भटकत फिरे गंवार॥

मोती बोने से उगते नहीं हैं। कंचन कभी डाली में नहीं लगता। मूर्ख! रूप कभी उधार नहीं मिलता, क्यों रूप की तलाश में भटक रहा है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

रूप और गुण

यत्राकृतिस्तत्र गुणाः।

जहां रूपाकृति होती है, वहां गुण भी होते हैं।

—अज्ञात

रूपासक्ति

रूवहु उप्परि रइ म करि णयण णिवारहि जंत।
रूवासत्त पयंगडा पेक्खहि दीवि पडंत॥

रूप में अनुरक्त मत हो। उधर जाते हुए नेत्रों को रोक। रूप में आसक्त पतंगे को दीपक पर पड़ते हुए देख।

[अपभ्रंश] —देवसेन (सावयधम्म दोहा, १२६)

रोग

रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते
न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम्।
दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव
न बुध्यन्ते धनभोगान् न सौख्यम्॥

रोग से पीड़ित मनुष्य मधुर फलों का आदर नहीं करते। विषयों में भी उन्हें कुछ सुख या सार नहीं मिलता। रोगी सदा ही दुखी रहते हैं। वे न तो धन-सम्बन्धी भोगों का और न सुख का ही अनुभव करते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३६।६६)

आतंकपंकमग्नानां हस्तालंबो भिषग्जितम्।

रोग रूपी कीचड़ में डूबे हुए मनुष्यों के लिए औषधि ही हाथ का सहारा है।

—वाग्भट (अष्टांगहृदय,उत्तरस्थान, ४०।६४)

क्या देखता है हाथ मेरा छोड़ दे तबीब[1]
यां जान ही बदन में नहीं नब्ज़[2] क्या चले।

—अज्ञात

रोजगार

अपनी शक्ति और योग्यता के अनुरूप काम पाना प्रत्येक व्यक्ति का सहज अधिकार है।

—सम्पूर्णानन्द (स्फुट विचार, पृ० १६१)

A man willing to work and unable to find work, is perhaps the saddest sight that fortune's inequality exhibits under the sun.

काम करने का इच्छुक किन्तु काम पाने में असमर्थ व्यक्ति संभवतः विश्व में भाग्य की असमानता द्वारा प्रदर्शित करुणतम दृश्य है।

—कार्लाइल (चार्टिज्म)

रोटी

मनुष्य केवल रोटी से नहीं अपितु परमात्मा के मुख से निकले प्रत्येक वचन से जीवित रहेगा।

—नवविधान (मत्ती, ४।४)

रोना

शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरवधार्यते।
पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया॥

तालाब में अधिक पानी भर जाने पर निकाल देना ही उचित प्रतिक्रिया होती है, उसी प्रकार शोक से विक्षुब्ध होने पर हृदय को प्रलापों के द्वारा ही धारण किया जाता है।

—भवभूति (उत्तररामचरित, ३।२९)

---

१. वैद्य। २. नाड़ी।

पृथ्वी तल रोने ही के लिए है ? नहीं, सबके लिए एक ही नियम तो नहीं। कोई रोने के लिए है, तो कोई हँसने के लिए।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, द्वितीय अंक)

रुदन में कितना उल्लास, कितनी शान्ति, कितना बल है। जो कभी एकांत में बैठकर किसी की स्मृति, किसी के वियोग में सिसक-सिसक और बिलख-बिलख नहीं रोया, वह जीवन के ऐसे सुख से वंचित है जिस पर सैकड़ों हँसियाँ न्यौछावर है। उस मीठी वेदना का आनन्द उन्ही से पूछो, जिन्होंने यह सौभाग्य प्राप्त किया है। हँसी के बाद मन खिन्न हो जाता है, आत्मा क्षुब्ध हो जाती है, मानो हम थक गए हों, पराभूत हो गए हों। रुदन के पश्चात् एक नवीन स्फूर्ति, एक नवीन जीवन, एक नवीन उत्साह का अनुभव होता है।

—प्रेमचन्द (ग़बन, पृ० २८८)

बड़ा रोवे बड़ाई को, छोटा रोवे पेट को।

—हिंदी लोकोक्ति

बेकसी मुद्दत तलक बरसा की अपनी गोर[1] पर,
जो हमारी ख़ाक[2] पर से होके गुज़रा, रो गया।

—मीर

थमते थमते थमेंगे आँसू,
यह रोना है कुछ हँसी नहीं है।

—मीर

१. क़ब्र। २. मिट्टी, भूमि।

रो रहे हैं दोस्त मेरी लाश पर बेइख्तियार
यह नहीं दर्याफ्त करते किसने इसकी जान ली।

—अकबर इलाहाबादी

एक उम्र पड़ी है सब्र भी कर लेंगे,
इस वक्त तो जी खोल के रो लेने दे।

—'फ़िराक़' गोरखपुरी

बरस ऐ अब्र[1] जितना चाहे तू अब तेरी बारी है
कभी दिल था तो मैं रो-रोके एक दर्या[2] बहाता था

—ज़िया

चैतन्य मेडलिन शवमुनु गूर्चि
विलपिप दगुना वेरि तनंबु।

चैतन्य-विहीन शव के लिए रोना पागलपन नहीं तो और क्या है।

[तेलुगु] —श्रीनाथ (पलनाटि वीर चरित्रमु)

उरे चिरूगट फ़क्त एक नेसूं !
नाहीं डोळां पाणी गाळायाहि आसूं !

पहिनने के लिए केवल एक फटा कपड़ा है, पर रोने के लिए आँखों में आँसू तक नहीं है।

[मराठी] —यशवन्त दिनकर पेंढरकर (कविता 'मुठेलोकमाते')

If you shed tears when you miss the sun, you also miss the stars.

यदि तुम सूर्य को खो बैठने पर आँसू बहाओगे तो तारों को भी खो बैठोगे।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रे बर्ड्स, ६)

१. बादल। २. नदी, सागर।

ल

लक्षण

पूत के पाँव पालने में पहचाने जाते हैं।

—हिंदी लोकोक्ति

होनहार बिरवान के होत चीकने पात।

—हिंदी लोकोक्ति

लक्ष्मी

सुशीलो भव धर्मात्मा मैत्रः प्राणिहिते रतः।
निम्नं यथापः प्रवणाः पात्रमायान्ति सम्पदः।

सुशील, धर्मात्मा, सब के मित्र और प्राणियों का हित करने में तत्पर बनो। जैसे पानी नीचे की ओर बहता है, वैसे ही सम्पत्तियाँ ऐसे पात्र को आश्रय बना लेती हैं।

—विष्णुपुराण (१।११।२४)

लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं
श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्।

प्रार्थी व्यक्ति को लक्ष्मी मिले या न मिले, किन्तु जिसे स्वयं लक्ष्मी चाहे वह लक्ष्मी के लिए कैसे दुर्लभ हो सकता है।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ३।१२)

क्व चिराय परिग्रहः श्रियाम्
क्व च दुष्टेन्द्रियवाजिवश्यता।
शरदभ्रचलाश्चलेन्द्रियैः
असुरक्षा हि बहुच्छलाः श्रियः॥

लक्ष्मी का चिरकालीन स्वायत्तीकरण कहां हुआ और घोड़े के समान दुष्ट इन्द्रियों को वश में करना कहां सम्भव है? शरद् ऋतु के बादलों की भाँति चंचल, छलनामयी, लक्ष्मी की चंचल इन्द्रियों से सुरक्षा कर पाना असम्भव ही है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, २।३९)

नान्तरज्ञाः श्रियो जातु प्रियैरासां न भूयते।
आसक्तास्तास्वमी मूढा वामशीला हि जन्तवः॥

श्री ऊँच और नीच नहीं समझती, उसका कोई प्रिय नहीं होता। ये मूढ़ और वामशील लोग उसी श्री में अनुराग करते हैं।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ११।२४)

स नास्ति कश्चित् प्रथमं यः प्रदर्श्यानुकूलताम्।
संताप्यते न चरमं नीचप्रीत्येव नाऽनया॥

ऐसा कोई नहीं है जिसे पहले अनुकूलता दिखाकर बाद में नीच की प्रीति सदृश इस लक्ष्मी ने संतप्त न किया हो।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ५।७)

अकाण्डपातोपनता कं न लक्ष्मी विमोहयेत्।

अकस्मात् प्राप्त लक्ष्मी किसको मत्त नहीं कर देती?

—सोमदेव (कथासरित्सागर, १।५)

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः।
केन न व्यसनं प्राप्तं श्रियः कस्य निरन्तराः॥

किसके कुल में दोष नहीं है, कौन व्याधि से पीड़ित नहीं है, कौन कष्ट में नहीं पड़ता तथा लक्ष्मी निरन्तर किसके पास रहती है?

—बृहस्पतिनीतिसार तथा चाणक्यनीति

मूर्खा यत्र न पूज्यन्ते, धान्यं यत्र सुसंचितम्।
दंपत्योः कलहो नास्ति, तत्र श्रीः स्वयमागता॥

जहाँ मूर्खों की पूजा नहीं होती, जहाँ धान्य भविष्य के लिए संगृहीत किया हुआ है, जहाँ स्त्री-पुरुष में कलह नहीं —वहाँ मानो लक्ष्मी स्वयमेव आई हुई है।

—चाणक्यनीति

उत्साहसंपन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः॥

उत्साही, आलस्यहीन, काम करने का ढंग जानने वाले, निर्व्यसनी बहादुर, और पक्की मित्रता निभाने वाले पुरुष के पास लक्ष्मी निवास करने के लिए स्वयं चली आती है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।१७४)

या हि प्राणपरित्यागमूल्येनापि लभ्यते।
सा श्रीर्नीतिविदं दृष्ट्वा चंचलापि प्रधावति॥

जो लक्ष्मी प्राणों के देने पर भी नहीं प्राप्त होती, वह चंचल होती हुई भी नीतिज्ञ मनुष्य के पास अपने आप दौड़ी आती है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ४।४६)

हालाहलो नैव विषं विषं रमा
जनाः परं व्यत्ययमत्र मन्वते।
निपीय जागर्ति सुखेन तं शिवः
स्पृशन्निमां मुह्यति निद्रया हरिः॥

हालाहल विष नहीं है, लक्ष्मी विष है, लोग इससे बड़ा व्यवधान पाते हैं। विष पीकर शिव सुख से जागते हैं तथा विष्णु लक्ष्मी का स्पर्श करके निद्रा से मूर्च्छा-ग्रस्त हो जाते हैं।

—अज्ञात

सा ममारिधमनी निधानिनी सामधाम धनिधामसाधिनी।
मानिनी सगरिमापपापपा सापगा समसमागमासमा॥[1]

धनादि निधियों से सम्पन्न, शांति की निधान, धनवान लोगों में तेज प्रदान करने वाली, पूजनीय, गौरवपूर्णा, निष्कलुषजनों की रक्षिका, प्रसिद्ध वैभवशालिनी, नदी की भांति चंचल प्राप्ति वाली अनुपमा, भगवती लक्ष्मी मेरे शत्रुओं का विनाश करें।

—अज्ञात (भोजराज कृत 'सरस्वती कंठाभरण में' उद्धृत)

लक्ष्मीबाई (झांसी की रानी)

इस प्रकार रानी लक्ष्मीबाई लड़ी। अपना लक्ष्य पूरा कर गयी। ऐसा एक जीवन सम्पूर्ण राष्ट्र का मुख उज्ज्वल करता है। वह सब सद्गुणों का निचोड़ थी। एक महिला जिसने जीवन के २३ वसन्त ही देखे थे, कोमलांगी, मधुर, विशुद्ध चरित्र, पुरुषों में भी न पायी जाने वाली संगठन-कुशलता से ओत-प्रोत थी। उसके हृदय में देशभक्ति रत्नदीप की तरह प्रकाशमान थी। अपने देश भारत पर उसे गर्व था। युद्ध-कौशल में अद्वितीय थी। विश्व में शायद ही कोई देश ऐसा होगा, जो ऐसी देवी को अपनी कन्या और रानी कहने का अधिकारी होगा। इंग्लैंड के भाग्य में यह सम्मान अब तक नहीं बदा है। इटली की क्रान्ति में ऊँचे शौर्य और आदर्श का परिचय मिलता है, फिर भी इतने वैभवपूर्ण समय में इटली तक लक्ष्मी को पैदा नहीं कर सका।

—विनायक दामोदर सावरकर (१८५७ का भारतीय स्वातंत्र्य समर, पृ० ४५८)

लक्ष्य

कहाँ?
मेरा अधिवास कहाँ?
क्या कहा? —रुकती है गति जहाँ?

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (परिमल, ११७)

लक्ष्य के लिए सहज प्रवृत्तियों को भी होम कर देना होता है।

—सम्पूर्णानन्द (स्फुट विचार, पृ० १४६)

जिस सिम्त[1] क़दम उठते हैं मेरे
मंज़िल भी उधर हो जाती है।

—शारब

जैसा तुम्हारा लक्ष्य होगा, वैसा ही तुम्हारा जीवन भी होगा।

—श्रीमाँ (शिक्षा, पृ० १)

बुद्धिमत्ता का लक्ष्य स्वतंत्रता है। संस्कृति का लक्ष्य पूर्णता है। ज्ञान का लक्ष्य प्रेम है। शिक्षा का लक्ष्य चरित्र है।

—सत्य साईं बाबा (साईं अवतार, भाग २)

लघुता

रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।

ख़ाली होने पर सब कुछ छोटा होता है और पूर्णता गौरव के लिए होती है।

—कालिदास (मेघदूत, पूर्व २१)

---

१. संगीत के षड्ज स्वरों के व्यंजनों से बना श्लोक।

१. दिशा।

अग्रे लघिमा पश्चात् महतापि पिधीयते न हि महिम्ना।

महान् व्यक्तियों की भी प्रारम्भ की लघुता को उत्तरकाल की महिमा नहीं छिपा पाती है।

— गोवर्धन (आर्या सप्तशती)

लघुता में प्रभुता बसे,
प्रभुता लघुता भोन।
दूब धरे सिर बानवा,
ताल खडाऊ कोन॥

लघुता में प्रभुता निवास करती है और प्रभुता, लघुता का भवन है। दूब लघु है तो उसे विनायक के मस्तक पर चढ़ाते हैं और ताड़ के बड़े वृक्ष की कोई खड़ाऊं बनाकर भी नहीं पहनता।

—दयाराम (दयाराम सतसई, ४०४)

तू छोटा बन, बस छोटा बन
गागर में आयेगा सागर।

--सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (आराधना, १८)

लज्जा

न हि किंचिन्न क्रियते ह्रिया।

लज्जा के कारण मनुष्य जो चाहे कुछ भी कर डालता है।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ४५३)

भाति चापि वसनं विना न तु व्रीडधैर्यपरिवर्जितो जनः।

मनुष्य वस्त्रों के बिना तो शोभित हो सकता है परन्तु लज्जा व धैर्य से रहित होने पर नहीं।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, (१८।६६)

धन-धान्य-प्रयोगेषु विद्या-संग्रहणेषु च।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्।

धन और धान्य के प्रयोग में, विद्या के ग्रहण करने में, आहार और व्यवहार में जो लज्जा का त्याग कर देता है, वह सुखी होता है।

—अज्ञात

लाज महा बड़वानल सी सखि,
प्रेम-समुद्र न बाढन पावै।

—गंग (गंग-कवित्त, १२१)

लखि न सकै अँखियाँ सखी परी लाज की जेल॥

—मतिराम (मतिराम ग्रंथावली, पृ० ३३४)

चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हल्की सी मसलन हूं
जो बनती कानों की लाली।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, लज्जा सर्ग)

उज्ज्वल वरदान चेतना का
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं,
जिसमें अनंत अभिलाषा के
सपने सब जगते रहते हैं।
मैं उसी चपल की धात्री हूं
गौरव महिमा हूं सिखलाती,
ठोकर जो लगने वाली है
उसको धीरे से समझाती।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, लज्जा सर्ग)

मैं रति की प्रतिकृति लज्जा हूँ
मैं शालीनता सिखाती हूँ,
मैं मतवाली सुन्दरता पग में
नूपुर सी लिपट मनाती हूँ।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, लज्जा सर्ग)

लाली बन सरल कपोलों में
आँखों में अंजन सी लगती,
कुंचित अलकों सी घुंघराली
मन की मरोर बन कर जगती।
चंचल किशोर सुन्दरता की
मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हलकी सी मसलन हूँ।
जो बनती कानों की लाली।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, लज्जा सर्ग)

लज्जा अत्यन्त निर्लज्ज होती है। अंतिम काल में जब भी हम समझते है कि उसकी उल्टी साँसें चल रही है, वह सहसा चैतन्य हो जाती है, और पहले से भी अधिक कर्तव्यशील हो जाती है।

—प्रेमचंद (रंगभूमि, परिच्छेद ४)

जिसको कोई लाज नहीं, उसकी लाज क्या जाएगी? जो अपनी लाज नही बचाता, उसकी लाज और कौन बचा सकता है?

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ३२०)

पाँच पंच मिलि कीजै काज, हारे जीते नाहीं लाज।

—हिंदी लोकोक्ति

आहार चूके वो गए, व्यवहार चुके वो गए।
दरबार चूके वो गए, ससुरार चूके वो गए।

—हिंदी लोकोक्ति

अक़्ल मीख्वास्त कज़ाँ शोला चराग़ अफ़रोज़द
बर्क़े ग़ैरत बद्ररख़शीदो जहाँ बरहम ज़द।

बुद्धि ने चाहा कि उस (प्रेम के) अंगार से अपना दीपक ज्योतित कर ले। लज्जा की बिजली ने चमककर संसार को उलट-पुलट दिया।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

लज्जाशीलता मानव का अलंकार है। बुद्धिमान में यह न हो तो मान सहित चलना भी एक व्याधि है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १०१४)

मलिन-मनों की आँखों के सम्मुख लज्जा ढाल के समान है।

—खलील जिब्रान (जीवन संदेश, पृ० ४६)

लड़खड़ाना

रखते हैं कहीं पाँव तो पड़ते हैं कहीं और
साक़ी तू ज़रा हाथ तो ले थाम हमारा।

—'इन्शा'

लाठी

लाठी में गुण बहुत है, सदा राखिए संग,
गहिरी नदि नारा जहां, तहाँ बचावै अंग।
तहां बचावै अंग—झपटि कुत्ता को मारै,
दुश्मन दावागीर होय तिनहू को झारै।
कहि गिरिधर कविराय, सुनो हो धुरके बाठी
सब हथियारन छाँडि हाथ मँह लीजै लाठी।

—गिरिधर

लाड़-प्यार

लालने बहवो दोषास्ताडने बहवो गुणाः।
तस्मात् पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत्॥

लालन में बहुत से दोष हैं और ताड़ना में बहुत गुण है। इसलिए पुत्र और शिष्य को ताड़ना देनी चाहिए, लालन नहीं करना चाहिए।

—अज्ञात

हिलायांसूँ दाल जाय, लड़ायांसूँ पूत जाय।

हिलाने से दाल बिगड़ती है। लाड़-प्यार से पुत्र बिगड़ता है।

[राजस्थानी] —लोकोक्ति

खिचड़ीने चाख्ये नहीं, ने दीकरीने लाडव्ये नहीं।

खिचड़ी को चाखे नहीं, पुत्री को लाड़ न लड़ाए।

[गुजराती] — लोकोक्ति

एक मायेर एक पूत, बेड़ाय जेन जमेर दूत।

एक माता का एक पुत्र, ऐसे घूमता है जैसे यमदूत।

[बँगला] —लोकोक्ति

लाभ

नीते रत्ने भाजने को निरोधः।

रत्न के चले जाने पर केवल पात्र की रक्षा करने से क्या लाभ?

—भास (प्रतिज्ञायौगन्धरायण, ४।११)

एक ही सुलाभ सब ही की हानि हरी है।

—तुलसीदास (गीतावली, बालकांड, ६२)

आम के आम गुठलियों के दाम।

—हिंदी लोकोक्ति

लाभ-हानि

आग का जला आग से अच्छा होता है।

—हिंदी लोकोक्ति

भागते भूत की लंगोटी ही भली।

—हिंदी लोकोक्ति

लालसा

लालसा को व्यक्त और ज्ञात के बाहर, अव्यक्त और अज्ञात तक ले जाना चाहिए।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग २, काव्य में रहस्यवाद)

दू कस मुर्दन्द व हसरते बेफ़ायदा बुर्दन्द यके आँकि दाश्त व न ख़ुर्द-दीगर आँकि दानिस्त व न कर्द।

दो तरह के मनुष्य मरते समय व्यर्थ ही लालसा करते जाते हैं—एक वह जो धन रखता है और उसने नहीं भोगा, दूसरा वह जो जानता था और उसने नहीं किया।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्ताँ, आठवाँ अध्याय)

सौदा! जहाँ में आके कोई कुछ न ले गया
जाता हूँ एक मैं दिले पुर आरज़ू[1] लिये।

—सौदा

शौक़े बेहद की हक़ीक़त 'कैफ़' उससे पूछिये
जो मुसाफ़िर बैठ जाये थक के मंजिल के क़रीब।

—'कैफ़' बरेलवी

१. लालसा से भरा हृदय।

लालित्य

Gracefulness has been defined to be the outward expression of the inward harmony of the soul.

लालित्य की परिभाषा 'आत्मा के आन्तरिक सौन्दर्य की बाहरी अभिव्यक्ति' की गई है।

—हैज़लिट

लावण्य

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदंगेषु लावण्यं तदिहोच्यते॥

मोतियों के भीतर से झलकती हुई आभा की तरह अंगों में जो आंतरिक छवि झलकती है, उसे लावण्य कहते हैं।

—उज्ज्वलनीलमणि (पृ० २७३)

सा णिरलंकार जि चारु-गत्त।
आहरण-रिद्धि पर भार-मेत्त॥
तहे णिय-लायण्णु जे दिण्ण-सोहु।
मलु केवलु पर कुंकुम-रसोहु॥
पासेय-फुलिंगावलि जं चारु।
पर गरुयउ मोत्तिय-हारु भारु॥
लोयण जि सहावें दल-विसाल।
आडम्बरु पर कन्दोह-माल॥

अलंकारों के बिना ही उसका शरीर शोभन था। गहनों की समृद्धि उसे भार मात्र थी। अपने ही लावण्य से उसकी इतनी शोभा थी कि केशर की पराग उसे केवल मैल था। पसीने की बूंदों की पंक्ति उस पर इतनी सुन्दर लगती थी कि भारी मोतियों का हार उसे भार ही जान पड़ता था। स्वभाव से विशाल कमल-दल के समान उसके नेत्रों के आगे नील कमलों की माला आडम्बर ही जान पड़ती थी।

[अपभ्रंश] —स्वयम्भूदेव (पउमचरिउ, १।१३।५-८)

लिपि

लिपि किसी जाति की संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है, लेकिन भाषा का वह अभिन्न अंग नहीं है।

—रामविलास शर्मा (भाषा और समाज, पृ० ३३०)

लीला

कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम
इसी में सब होते अनुरक्त।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

लेखक

कवि या साहित्यकार में अनुभूति की जितनी तीव्रता होती है, उसकी रचना उतनी ही आकर्षक और ऊँचे दरजे की होती है।

—प्रेमचंद (प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन में सभापति पद से भाषण)

मेरे हृदय और मस्तिष्क में, भावों और विचारों की जो आँधी शताब्दी की अर्जित प्रज्ञा पूँजी थी, उस सबको मैंने 'वयं रक्षामः' में झोंक दिया है। अब मेरे पास कुछ नहीं है। लुटा-पिटा सा, ठगा सा, श्रान्त-कलान्त बैठा हूँ। चाहता हूँ—अब विश्राम मिले। चिर न सही, अचिर ही।

—चतुरसेन (वयं रक्षामः, 'पूर्व निवेदन')

जो साहित्यकार अपने जीवन में मानव-सहानुभूति से परिपूर्ण नहीं है और जीवन के विभिन्न स्तरों को स्नेहार्द्र दृष्टि से नहीं देख सका है वह बड़े साहित्य की सृष्टि नहीं कर सकता।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (साहित्य-सहचर, पृ० १६)

आज मैं एक हृदय से कह रहा हूँ, कल उसे अनगिनत हृदय कहेंगे।

—खलील जिब्रान (आँसू और मुस्कान, पृ० १०८)

मैं छोटी पत्रिका में लिखता हूँ, भाई, यही मेरे लिए काफ़ी है। मुझे वहाँ सम्मान मिलता है, श्रद्धा मिलती है, इससे अधिक किसी और चीज़ की आशा नही करता।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० १५)

मुझे बहुतेरे लोग बड़ी पत्रिकाओं में लिखने के लिए कहते हैं, क्योंकि उससे नाम अधिक होगा। आपकी पत्रिका छोटी है, कितने आदमी पढ़ते हैं? हाँ, मैं भी इस बात को स्वीकार करता हूँ। लाभ-हानि का विचार किया जाय, तो उन्हीं की बात सच है और साधारणतः सभी वैसा करते हैं। लेकिन मुझ में कुछ आत्म-सम्भ्रम भी है और कुछ आत्म-निर्भरता भी है। इसीलिए सब जिस रास्ते को सुभीते का समझते हैं, मैं उसे सुभीते का समझने पर भी वही मेरा एक-मात्र अवलम्बन नहीं। अगर मैं चेष्टा करके छोटी पत्रिकाओं को बड़ा कर सकूँ, तो उसी में लाभ समझता हूँ। इसके अलावा आपको बहुत कुछ आश्वासन दिया है, अब नीच की तरह उसे अन्यथा नहीं करूँगा।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० २८)

एक पत्रिका में नियमित लिखता हूँ, यही काफ़ी है। जो मेरी रचनाएं पसन्द करता है, वह इसी पत्रिका को पढ़ेगा, यह मेरी धारणा है।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ३०)

मनुष्य में केवल लेखक ही नहीं रहता, आलोचक भी रहता है। उम्र के साथ आलोचक बढ़ता जाता है। इसलिए अधिक उम्र में जब लेखक लिखने बैठता है, तब आलोचक पग-पग पर उसका हाथ पकड़ लेता है।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ८२)

ग्रंथकार किसी विशेष जाति-सम्प्रदाय का नहीं होता, वह हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, ईसाई सब कुछ है।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० १३१)

जो मनोरंजकता के साथ अपने विचारों को प्रकट करना जानता है, उसको जनसाधारण की रुचि-विचित्रता से चिढ़ नहीं होती।

—गेटे (फ़ाउस्ट, रंगमंच पर प्रस्तावना)

Write till your ink be dry, and with your tears
Moist it again; and frame some feeling line
That may discover such integrity.

तब तक लिखो जब तक स्याही सूख न जाए और तब इसे अपने आँसूओं से फिर गीला कर लो, और कोई भावुक पंक्ति लिखो जो ऐसी प्रामाणिकता को खोज सके।

—शेक्सपियर (दि टू जेंटिलमैन आफ़ वेरोना, ३।२)

The two most engaging powers of an author are, to make new things familiar, and familiar things new.

लेखक की दो अधिकतम प्रभावी शक्तियाँ हैं—नई वस्तुओं को परिचित बनाना और परिचित वस्तुओं को नया बनाना।

—डा० जानसन ('डिक्शनरी आफ़ दि इंग्लिश लैंग्वेज' की भूमिका)

The chief glory of every people arises from its authors.

हर समाज का सर्वोच्च गौरव उसके लेखकों से उद्भूत होता है।

—डॉ० जानसन (ए डिक्शनरी आफ़ दि इंगलिश लैंग्वेज)

The faults of great are generally excellences carried to an excess.

महान लेखकों की ग़लतियां साधारणतया उनकी अतिशयता तक पहुँची विशिष्टताएँ होती हैं।

—कालरिज

An author who speaks about his own books is almost as bad as a mother who talks about her own children.

अपनी पुस्तकों की चर्चा करते रहने वाला लेखक लगभग उतना ही बुरा है जितनी वह माँ जो अपने बच्चों के विषय में ही बात करती रहती है।

—डिजरायली (ग्लासगो में भाषण, १८ नवम्बर १९७३)

Talent alone cannot make a writer. There must be a man behind the book.

प्रतिभा मात्र लेखक नहीं बना सकती। कृति के पीछे एक व्यक्तित्व होना ही चाहिए।

—एमर्सन (रिप्रिजंटेटिव मेन, गेटे)

As writers become more numerous, it is natural for readers to become more indolent.

जैसे-जैसे लेखकों की संख्या अधिक होती जाती है, पाठकों का अधिक निष्क्रिय होते जाना स्वाभाविक है।

—ओलिवर गोल्डस्मिथ (दि बी नं० १७५, अपान अनफ़ारच्युनेट मेरिट)

The pen is mightier than the sword.

लेखनी तलवार से अधिक शक्तिशाली है।

—एडवर्ड जार्ज बुलवर (रिशेलियु)

A great writer creates a world of his own and his readers are proud to live in it. A lesser writer may entice them in for a moment, but soon he will watch them filing out.

महान लेखक अपना ही एक संसार रचता है और उसके पाठक उस संसार में रहने के अभिमानी होते हैं। छोटा लेखक उन्हें क्षण भर को फाँस सकता है किन्तु शीघ्र ही वह उन्हें बाहर निकलता हुआ देखता है।

—साइरिल कानोली (एनेमीज आफ़ प्रामिज, अध्याय १)

लेखन

जिस किसी को गंभीर और ठोस साहित्य-सेवा करनी है, उसे अपने समय की रक्षा करनी पड़ेगी, चाहे आगंतुकों के साथ उसे अशिष्टता का वर्ताव ही करना पड़े।

—बनारसीदास चतुर्वेदी (साहित्य और जीवन, पृ० १०१)

(सुन्दर लाल जी का कहना था—) लिखने का मतलब यह नहीं कि जो लिखो वह छपे ही।

—मुकुटविहारी वर्मा (पत्रकारिता के अनुभव, पृ० ९)

दस ग्रंथों से टीप कर, पुस्तक की तैयार,
उस पुस्तक पर मिल गया, पुरस्कार सरकार।
पुरस्कार सरकार, लेखनी सरपट रपटे,
सूझ-बूझ मौलिकता, भय से पास न फटके।

—काका हाथरसी ('सफल लेखक' कविता)

मैं प्रतिदिन दो घण्टे से अधिक कभी नहीं लिखता। दस बारह घण्टे पढ़ता हूं।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० २७)

यह कहा जा सकता है कि बंगाली भाषा पर मेरा बिलकुल अधिकार नहीं है। शब्द-भण्डार बहुत थोड़ा है। इसलिए मेरी रचना सरल होती है। मेरे लिए कठिन लिखना ही असंभव है। मेरी मूर्खता ही मेरे काम की सिद्ध हुई।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ३३)

जवानी को पार कर जो व्यक्ति रस-सृजन का आयोजन करता है, वह भूल करता है। मनुष्य की एक उम्र है जिसके

वाद काव्य कहो या उपन्यास कहो, लिखना उचित नहीं। अवसर ग्रहण करना ही कर्त्तव्य है। बुढ़ापा है मनुष्य को दुःख देने की उम्र, तब मनुष्य को आनन्द देने का अभिनय करना व्यर्थ है।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ८२-८३)

यदि बातें लेखक की अपनी अनुभूति के रस से सत्य और विशुद्ध होकर रचना में नहीं आई है तो समझ लेना कि उसके भाव और भाषा के आडम्बर चाहे जितने भी चकाचौंध देने वाले और मनुष्य की दृष्टि को आकर्षित करने वाले क्यों न हों, अन्तःसारशून्य हैं, वे टिक नहीं सकेंगे।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ११८)

मेरे लेखन में समस्या है, समाधान नहीं है, प्रश्न है, उसका उत्तर ढूंढ़े नहीं मिलता। कारण, मेरा यह चिरकाल का विश्वास है कि समस्या के समाधान की ज़िम्मेदारी काम करने वालों पर है, साहित्यिक पर नहीं।

—शरत्चन्द्र (तरुणों का विद्रोह, पृ० २६०)

जब हम अपने जीवन के भिन्न-भिन्न समयों में लिखे हुए लेखों को इकट्ठे करने बैठते हैं तो यह देखकर हमें खेद होता है कि काल भगवान की तराज़ू में यह संग्रह कितना हल्का साबित हुआ है।

—जार्ज ब्रांडी (क्रियेटिव स्प्रिट्स आफ़ दि नाइण्टीण्थ सेंचुरी)

समस्त उत्तम लेखन का रहस्य सही निर्णय है।

—होरेस (आर्स पोइटिका)

जो दस लाख पाठकों की अपेक्षा नहीं करता, उसे एक पंक्ति भी नहीं लिखनी चाहिए।

—गेटे (जोहन्न पीतर एकरमान्न से वार्तालाप में, १२ मई १८२५)

Let there be gall enough in thy ink; though thou write with a goose pen, no matter.

चाहे तुम कोमल पंखों की लेखनी से लिखो, कोई बात नहीं, तुम्हारी स्याही में दम होना चाहिए।

—शेक्सपियर (ट्वेल्फ्थ नाइट, ३।२)

What is written without effort is in general read without pleasure.

जो कुछ बिना प्रयास के लिखा जाता है, सामान्यतः नीरस रूप में पढ़ा जाता है।

—डॉ० जानसन (हिल द्वारा संपादित जानसोनियल मिसेलेनीज, खंड २, पृ० ३०६)

Of every four words I write, I strike out three.

मैं अपने द्वारा लिखे गए हर चार शब्दों में से तीन शब्दों को काट देता हूं।

—निकोलस ब्वाइलो (सैटाइर्स II)

Learn to write well, or not to write at all.

या तो अच्छी तरह लिखना सीखो अथवा बिलकुल न लिखना।

—ड्राइडेन (एसे आन सैटाइर)

Some men have only one book in them, others, a library.

कुछ लेखकों के अन्दर केवल एक पुस्तक होती है, अन्यों के अन्दर एक पुस्तकालय।

—सिडनी स्मिथ

He that writes to himself writes to an eternal public.

जो स्वयं के लिए लिखता है, वह एक शाश्वत जनता के लिए लिखता है।

—एमर्सन (एसेज़, प्रथम भाग, स्प्रिचुअल लाज़)

The pen is the tongue of the hand—a silent utterer of words for the eye.

लेखनी हाथ की जिह्वा होती है - नेत्र की मूक वाणी।

—हेनरी वार्ड बीचर (प्रावर्ब्स फ़्राम प्लाइमाउथ पल्पिट)

Our admiration of fine writing will always be in proportion to its real difficulty and its apparent ease.

उत्तम लेखन की हमारे द्वारा प्रशंसा सदैव ही इसमें वास्तविक कठिनाई तथा इसमें दिखाई देने वाली सरलता की समानुपाती होगी।

—चार्ल्स लैम्ब काल्टन (लेकॉन, २।१४३)

You don't write because you want to say something; you write because you' ve got something to say.

आप इसलिए नहीं लिखते कि आप कुछ कहना चाहते हैं, आप लिखते हैं क्योंकि आप पर कहने के लिए कुछ है।

—एफ० स्काट फिट्जजेराल्ड (दि क्रैक अप, दि नोटबुक्स)

Writing, at its best, is a lonely life. Organization for writers palliate the writer's loneliness, but I doubt if they improve his writing.

लेखन जब सर्वोत्तम होता है, तो एक की जीवन होता है। लेखकों के संघ लेखक के एकाकी पन को तो हल्का कर देती है पर मुझे सन्देह है कि वे उसके लेखन को उन्नत कर पाते हैं।

—अर्नेस्ट हेमिंग्वे (नोबल पुरस्कार लेते समय भाषण, १० दिसंबर १९५४)

लेखन-कला

छपाने के लिए कभी मत लिखो, सिर्फ़ लिखने के लिए लिखो। लिखकर स्वयं एक सम्पादक की दृष्टि से पढ़ो और जो कमियां दिखाई दें, उन्हें फिर सुधारो। दूसरी नक़ल के बाद उसे उठाकार रख दो और भूल जाओ। कुछ दिन बाद फिर पढ़ो और जो नयी बातें सूझें—अवश्य सूझेंगी—उन्हें उसमें बढ़ा दो।

अब उसे फिर रख दो और कुछ दिन बाद उसे अपने मित्रों को सुनाओ। वे यदि कुछ सुझाव दें और ये अपने को जँचें या सुनाते समय स्वयं कुछ नयी बातें सूझेंगी—उन्हें फिर से लेख में बढ़ा दो। यदि लिखकर पढ़ते समय ही यह सूझे कि यह कुछ नहीं है, तो उसे तुरन्त फाड़कर फेंक दो।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (जिंदगी मुस्कराई, भूमिका पृ० ८)

आरंभ में कभी बड़े पत्रों के दरवाज़े न झांको और जब रचनाओं में कुछ जाने-आने लगे तो धीरे-धीरे पत्रों में ही उन्हें भेजो। दूसरे लेखकों के लेखों को एक-दो-तीन बार पढ़कर फिर उन्हें बिना देखे, अपने ढंग पर उन्हें लिखो और तब असल से मिलाकर देखो कि क्या कमी रह गयी है और बस उन्हें फाड़ फेंको। किसी श्रेष्ठ कवि से सम्पर्क बनाओ, उन्हें अपनी रचनाएँ दिखाओ, अपनी नम्रता, अहंकारहीनता और सेवा से उन्हें उनसे ठीक कराओ।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (जिंदगी मुस्कराई, पृष्ठभूमि, पृ० १०)

कभी फ़ालतू चीज न लिखो, वही लिखो जिसमें पूरा मन लगे, पूरा रस लगे और पूरी डुबकी आए।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (जिंदगी मुस्कराई, पृष्ठभूमि, पृ० १२)

बोलने या अंकन करने से न बोलना या न अंकन करना अत्यन्त कठिन है। बहुत आत्मसंयम करना, बहुत लोभ का दमन करना पड़ता है, तभी सचमुच में बोलना और अंकन करना होता है।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ३५)

केवल हृदय में अनुभव करने से ही किसी चीज को भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता। सभी चीजों को कुछ न कुछ सीखना पड़ता है और यह सीखना सदा अपने आप नहीं होता।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ६०)

लेखन-कार्य में जो शिल्प, कौशल और कला है, उसे जरा और यत्न से तुम्हें प्राप्त करना होगा। केवल लिखना ही नहीं, भाई, न लिखने की विद्या को भी सीखना चाहिए। तब उच्छ्वसित हृदय जिस बात को शतमुख से कहना चाहता है, वही शान्त, संयत होकर जरा से गंभीर इशारे से ही सम्पूर्ण हो जाता है।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ७९)

लिखने में शीघ्रता मुंशी की योग्यता है, लेखक की नहीं।

—शरत्चन्द्र (पत्रावली, पृ० ८१-८२)

रचना का असंयम साहित्य की मर्यादा को नष्ट कर देता है।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ८६)

लेन-देन

पहले लिख पीछे दे, भूल पड़े काग़ज़ से ले।

—हिंदी लोकोक्ति

लोक

भूर्भुवः स्वर्महश्चैव जनश्च तप एव च।
सत्यलोकश्च सप्तैते लोकास्तु परिकीर्तिताः॥

भूलोक, भुवःलोक, स्वः लोक, महःलोक, जनःलोक, तपःलोक और सत्लोक—ये सात लोक प्रसिद्ध हैं।

—अग्निपुराण

लोक-कल्याण

दे० 'जनहित'।

प्यारे आवें सुवचन कहें प्यार से गोद लेवें।
ठंडे होवें नयन दुख हों दूर मैं मोद पाऊँ।
ए भी हैं भाव मम उर के और ए भाव भी हैं।
प्यारे जीवें जग-हित करें गेह चाहे न आवें॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(प्रियप्रवास, १६।९८)

लोकतंत्र

दे० 'जनतंत्र'।

लोक-धर्म

लौकिकाचारं मनसापि न लंघयेत्।

लोकाचार का मन से भी उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

—अज्ञात

जो धर्म उपदेश द्वारा न सुधरने वाले दुष्टों और अत्याचारियों को दुष्टता के लिए छोड़ दे, उनके लिए कोई व्यवस्था न करे, वह लोक-धर्म नहीं, व्यक्तिगत साधना है।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० २१)

भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचण्डता और मृदुता का सामंजस्य ही लोक-धर्म का सौन्दर्य है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० २१६)

लोक-निंदा

लोक-निन्दा का भय इसलिए है कि वह हमें बुरे कामों से बचाती है। अगर वह कर्त्तव्य-मार्ग में बाधक हो तो उससे डरना कायरता है।

—प्रेमचंद (सेवासदन, परिच्छेद ४६)

लोक-परलोक

ई लोकंबु गर्म भूमियु नालोकंबु
फल भूमियु ननि येरुंगु।

यह लोक कर्म-भूमि है और परलोक फल-भूमि है।

[तेलुगु] —एर्रना (महाभारत, अरण्य पर्व)

लोक-प्रवृत्ति

न विद्यया नैव कुले न गौरवं
जनानुरागो धनिकेषु सर्वदा।

सर्वसाधारण की दृष्टि में विद्या और कुल का विशेष महत्त्व नहीं होता, लोगों का अनुराग सदा धनवान के प्रति ही होता है।

—अज्ञात

भारतीय जनता के मन की धर्मभावना को कलात्मक सुरुचि देने का प्रयास नहीं करेंगे तो एक ओर से प्रवाह बांध देने पर वह दूसरी ओर से फूटेगा। आप 'छोड़ गए वालम' का विरोध करेंगे तो वह 'छोड़ गये मोहन' होकर लाउड-स्पीकरों में गूँजेगा और अश्लील पोस्टरों को फाड़िएगा तो वे सीता, पार्वती, राधा के नाम पर चिपका दिए जाएंगे।

—धर्मवीर भारती (कहनी-अनकहनी, पृ० ८)

लोकप्रियता

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति॥

जो नेत्र, मन, वाणी और कर्म—इन चारों से संसार को प्रसन्न करता है, उसी से संसार प्रसन्न रहता है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३४।२५)

ख़्वाही के पसंदीदए अवाम शवी,
मक़बूल व क़बूल ख़ास व आम शवी,
अन्दर पए मोमिन व जहूद व तरसा,
बदगोए मवाश ता निको नाम शवी।

तुममें सर्वप्रिय बनने की इच्छा होनी चाहिए। ऐसा करो जिससे विशेष व सामान्य (सब लोग) तुम्हें पसन्द करें। तुम मोमिन (सूफी), यहुदी तथा ईसाई की बुराई उनके पीछे-पीछे मत करो जिससे लोग तुम्हें अच्छा समझें।

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रुबाइयात, ७३६)

दर राहे ख़िरद बजुज़ ख़िरद रा मपसन्द,
चूं हस्त रफ़ीक़े नेको बद रा मपसन्द,
ख़्वाही कि हमां जहां तुरा बेपसन्दन्द,
मी बाश बख़ुशीदली व ख़ुदरा मपसन्द।

बुद्धि के मार्ग में बुद्धि के अतिरिक्त किसी और को न मान। जब तुझे अच्छा साथी मिल गया है तो बुरे को पसन्द मत कर। यदि तू यह चाहता है कि सभी लोग तुझसे प्रसन्न रहें तो सदैव प्रसन्नचित्त रह और पसन्द पर मत चल।

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रुबाइयात, २९८)

लोकमान्य तिलक

लोकमान्य के हृदय में भारत के प्रति अपार प्रेम था। इसी से लोगों के मन में भी उनके प्रति अत्यन्त स्नेह था। स्वराज्य के मन्त्र का जिस हद तक लोकमान्य ने जाप किया उस हद तक किसी और व्यक्ति ने नहीं किया। और जिस समय लोगों ने अन्तःकरण से इस बात का अनुभव किया कि भारत को स्वराज्य के योग्य होने में अभी थोड़ा समय लगेगा उस समय लोकमान्य ने अन्तःकरणपूर्वक यह माना कि भारत आज ही स्वराज्य के लिए तैयार है। उनकी इस मान्यता ने लोगों के दिलों को जीत लिया।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, ८-८-१९२०)

तिलक-गीता का पूर्वार्द्ध है 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है', और उसका उत्तरार्द्ध है 'स्वदेशी हमारा जन्मसिद्ध कर्तव्य है'। स्वदेशी को लोकमान्य बहिष्कार से भी ऊँचा स्थान देते थे।

—महात्मा गांधी

तब ह्रास और विनाश के इस वायुमण्डल का भेदन करती हुई एक आत्मा, कर्मण्यता की एक मूर्ति, उदय हुई, जिसने मुरदा देश के सामने संजीवन संदेश उपस्थित किया। उसने दलितों को बतलाया कि वे भी मनुष्य हैं और कायरों को बतलाया कि उनमें भी वीरता निहित है। ख़ाली उपदेशों से काम न चला। सुन्दर उपदेशों की पहले ही क्या कमी थी अब स्वर्ण ने तप-तप कर दिखला दिया कि खरापन इसे कहते हैं और खरेपन की चमक यह है, तब उन तक की आँखें खुल गयीं, जिन्होंने किसी भी वस्तु के न देखने के लिए अपनी आँखें सदा के लिए बन्द कर ली थीं। तिलक की कठिन तपस्या और प्रबल त्याग ही ने देश में प्राण-संचार किया।

—गणेशशंकर 'विद्यार्थी' (साप्ताहिक प्रताप, ९ अगस्त १९२०)

भारत की आँख के तिल, माथे के तुम तिलक थे।

—रामनरेश त्रिपाठी (मानसी, पृ० ५६)

लोकविश्वास

निव्वूढपोरिसाणं असच्चसंभावणा वि संभवइ।
इक्काणणे वि सीहे जाया पंचाणणपसिद्धी॥

पराक्रमी व्यक्तियों के सम्बन्ध में असत्य संभावना भी प्रचलित हो जाती है। सिंह का एक मुख होने पर भी उसकी प्रसिद्धि पंचानन के रूप में हो गई है।

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथा सप्तशती, उत्तरार्द्ध। १००५)

लोकसंग्रह

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥

हे अर्जुन! कर्म में आसक्त हुए अज्ञानी जन जिस प्रकार

कर्म करते हैं, उसी प्रकार लोक-संग्रह की इच्छा करने वाला विद्वान अनासक्त होकर कर्म करे।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व।२७।२५ अथवा गीता, ३।२५)

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्॥

ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि कर्मों में आसक्ति वाले अज्ञानियों की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न न करे किन्तु स्वयं परमात्मा के स्वरूप में स्थित हुआ और सब कर्मों को अच्छी प्रकार करता हुआ उनसे भी वैसे ही करावे।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व २७।२६ अथवा गीता, ३।२६)

अभेद-भक्ति, वैराग्य और ज्ञान का स्वयं आचरण करके उसी मार्ग पर दूसरों को ले आने का नाम ही लोकसंग्रह है।

—एकनाथ (एकनाथी भागवत)

लोक-संस्कृति

लोक-संस्कृति प्रकृति की गोद में पलती और पनपती है, लोकोत्तर संस्कृति आग उगलती हुई चिमनियों से हुंकार करती हुई मशीनों और विद्युत बल्बों से प्रदीप्त नगरों में निवास करती है। लोक-संस्कृति के उपासक या संरक्षक बाहर की पुस्तकें न पढ़कर अन्दर की पुस्तकें पढ़ते हैं, उनके हृदय-सरोवर में श्रद्धा के सुमन सदैव फूले रहते हैं। लोकोत्तर संस्कृति के उपासकों, संरक्षकों में धन, पद, शिक्षा का स्वाभिमान रहता है, उनके हृदयों में तर्क की चिनगारियाँ सुलगती रहती हैं। लोक-संस्कृति की शिक्षा-प्रणाली में श्रद्धा-भक्ति की प्राथमिकता रहती है उसमें अविश्वास, तर्क का कोई स्थान नहीं रहता।

—गोपीनाथ कविराज (सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, पृष्ठ २०-२१)

लोक-सेवा

याद रखो—जब तक तुम मान-बड़ाई के लिए लोक-सेवा करते हो, लोकसेवा करके मान बड़ाई पाने पर प्रसन्न होते हो, तब तक तुम्हारे मन में लोकसेवा के साथ-ही-साथ मान-बड़ाई की एक ऐसी चाह छिपी है, जो धीरे-धीरे तुम्हें लोकसेवा से हटाकर लोकरंजन की ओर ले जाती है। और जब तुम्हारे मन में लोकरंजन का भाव हो जाएगा, तुम्हारा उद्देश्य लोकरंजन हो जायगा, तब तुम्हें लोकसेवा बरबस छोड़नी पड़ेगी। फिर तो तुम वही करोगे, जिसमें लोकरंजन होगा।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

जो स्वयं अपना है, वह परिवार का नहीं हो सकता है और जो परिवार में अनुरक्त है, वह सारे संसार के लिए दिलोजान से काम नहीं कर सकता। किसी न किसी को तो रोना ही पड़ेगा, जिससे सारा संसार हँस सके।

—लाला हरदयाल (क्रांतिकारी ऋषि कार्ल मार्क्स, पृष्ठ २३)

The bondage of man hurts the freedom of God, This is our philosophy of life. And, as such, whatever makes for the uplift of man is a sacred religious duty to us.

मनुष्य की पराधीनता परमात्मा की स्वतंत्रता पर आघात है। यह हमारा जीवनदर्शन है। और इस कारण जो कुछ भी मानव का उद्धार कर सके, वह हमारे लिए पवित्र धार्मिक कर्तव्य है।

—बिपिन चन्द्र पाल (दि न्यू इकोनामिक मेनेस टू इण्डिया, पृष्ठ २४६)

लोकोक्ति

ऐसी कोई लोकोक्ति नहीं है जो सत्य न हो।

—सर्वेंटीज (डान क्विक्जोट, २।६५)

दीर्घ अनुभव से प्राप्त लघु वाक्य।

—माइगेल

लोकोक्ति की तीन विशेषताएं होती हैं—थोड़े शब्द, ठीक भाव, उत्तम बिम्ब।

—मूसा बिन याक़ूब इब्न एज़र

Patch grief with proverbs.

शोक को कहावतों से दूर करो।

—शेक्सपियर (मच एडो एबाउट नथिंग, ५।१)

The genuis, unit, and spirit of a Nation are discovered in its proverbs.

किसी राष्ट्र की प्रतिभा, विदग्धता और भावना उसकी कहावतों में प्राप्त हो जाती हैं।

—बेकन

Proverbs may be said to be the abridgment of wisdom.

लोकोक्तियों को विद्वत्ता का सूत्र कहा जा सकता है।

—जोसेफ़ जूबर्ट

लोभ

मा गृधः कस्य स्विद् धनम्।

किसी के धन का लालच मत करो?

—ईशावास्योपनिषद् (मंत्र १)

कुले जातस्य वृद्धस्य परवित्तेषु गृद्ध्यतः।
लोभः प्रज्ञानमाहन्ति प्रज्ञा हन्ति हता ह्रियम्॥

मनुष्य उत्तम कुल में जन्म लेकर और वृद्ध होने पर भी यदि दूसरों के धन को लेना चाहता है तो वह लोभ उसकी विचार-शक्ति को नष्ट कर देता है। विचार-शक्ति नष्ट होने पर उसकी लज्जा को भी नष्ट कर देती है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ७२।१८)

न लुब्धो बुध्यते दोषाँल्लोभान्मोहात् प्रवर्तते।

लोभी मनुष्य किसी कार्य के दोषों को नहीं समझता, वह लोभ और मोह से प्रवृत्त हो जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, द्रोण पर्व, ५१।११)

अहो विनिकृतो लोको लोभेन च वशीकृतः।
लोभक्रोधभयोन्मत्तो नात्मानमवबुध्यते॥

अहो! लोभ के वशीभूत होकर यह सारा संसार ठगा जा रहा है। लोभ, क्रोध और भय से यह इतना पागल हो गया है कि अपने आपको भी नहीं जानता।

—वेदव्यास (महाभारत, स्त्री पर्व। ४।१२)

लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रवर्तते।
लोभान्मोहश्च माया च मानः स्तम्भः परासुता॥

लोभ से ही क्रोध उत्पन्न होता है, लोभ से ही काम की प्रवृत्ति होती है और लोभ से ही माया, मोह, अभिमान, उद्दण्डता तथा पराधीनता आदि दोष प्रकट होते हैं।

—महाभारत (शांति पर्व, ५८।४)

लोभोऽस्तीव च पापिष्ठस्तेन को न वशीकृतः।
किं न कुर्यात् तदाविष्टः पापं पार्थिवसत्तमः॥
पितरं मातरं भ्रातॄन् गुरून् स्वजनबान्धवान्।
हन्ति लोभसमाविष्टो जनो नात्र विचारणा॥

लोभ में असीम पाप भरा हुआ है। इस नीच लोभ ने किसको अपने वश में नहीं किया है? उससे आविष्ट हो जाने पर श्रेष्ठ राजा भी कौन-सा बुरा कर्म नहीं कर सकता? लोभी प्राणी पिता, माता, भाई, गुरु एवं अपने बन्धु-बान्धवों को भी मार डालता है। इस विषय में कुछ भी अन्यथा विचार नहीं किया जा सकता है।

—देवीभागवत पुराण (३।१५।३१-३२)

लोभः प्रतिष्ठा पापस्य प्रसूतिर्लोभ एव च।
द्वेषक्रोधादिजनको लोभः पापस्य कारणम्॥

लोभ पाप का घर है, लोभ ही पाप की जन्मस्थली है और यही दोष, क्रोध आदि को उत्पन्न करने वाली है, अतः पाप का कारण लोभ है।

—बल्लाल कवि (भोजप्रबंध, १)

लभ्यं लब्धमिदं च लभ्यमधिकं तन्मूललभ्यं ततो
लब्धं चापरमित्यनारतमहोलब्धं धनं ध्यायसि।
नैतद् वेत्सि पुनर्भवन्तमचिरादाशापिशाची बलात्
त्सर्वग्रासमियं ग्रसिष्यति महालोभांधकारावृतम्॥

यह लभ्य धन पा लिया, यह पाना है, इससे अधिक मूललभ्य है, अनन्तर यह मिला, इस लब्ध धन का ध्यान किया करते हो। यह नहीं समझते कि यह आशा-पिशाची बलपूर्वक ग्रस लेगी क्योंकि तुम महालोभरूपी अंधकार से घिरे हुए हो।

—श्रीकृष्ण मिश्र (प्रबोध चन्द्रोदय, ४।२१)

अतिलोभाभिभूतस्य चक्रं भ्रमति मस्तके।

अधिक लोभ-ग्रस्त के मस्तक में चक्र-सा घूमता रहता है।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, ५।२२)

वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात्।

आज का कबूतर कल के मोर से अच्छा।

—संस्कृत लोकोक्ति

वृद्धिमिष्टवतो मूलमपि विनष्टम्।

समृद्धि की आकांक्षा में मूल भी नष्ट हुआ।

—अज्ञात

अतिलोभो न कर्तव्यश्चक्रं भ्रमति मस्तके।

अधिक लोभ नहीं करना चाहिए, मस्तक पर काल-चक्र घूम रहा है।

—अज्ञात

लोभो धम्मानं परिपन्थो।

लोभ धर्मकार्य का बाधक है।

[पालि] —सयुंत्तनिकाय (१।१।७६)

लुद्धो अत्थं न जानाति लुद्धो धम्मं न पस्सति।

लोभी न परमार्थ को समझता है और न धर्म को।

[पालि] —इतिवुत्तक (१।३९)

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई।

ज्यों-ज्यों लाभ होता है त्यों-त्यों लोभ होता है। इस प्रकार लाभ से लोभ निरन्तर बढ़ता जाता है।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (८।१७)

लोहेण विडंविउ सयलु जणु भणु किं
किर चोज्जइंणउ करइ।

लोभ से विडंवित सारा संसार क्या आश्चर्यजनक काम नहीं करता ?

[अपभ्रंश] —मुनि कनकामर (करकंड चरिउ, २।९।१०)

ग्यानी तापस सूर कवि कोविद गुन आगार।
केहि के लोभ बिडंबना कीन्हि न एहि संसार॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।७० क)

ज्ञानी, तापस, सूर, कवि, कोविद गुन-आगार।
कहि-कै लोभ बिडंबना, कीन्हि न यहि संसार॥

—तुलसीदास (दोहावली, २६१)

लालच हू ऐसी भली, जासो पूरे आस।
चाटेहू कहूँ ओस के, मिटत काहू की प्यास॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

साधारणतः मन की ललक यदि वस्तु के प्रति होती है तो लोभ, और किसी प्राणी या मनुष्य के प्रति होती है तो प्रीति कहलाती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग १, लोभ और प्रीति)

लोभ सामान्योन्मुख होता है और प्रेम विशेषोन्मुख।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, लोभ और प्रीति)

जिन अंगूरों को विवश हो बाद में खट्टा कहना पड़े, उन पर लपकने की मूर्खता भला क्यों ?

—शिवानी (विषकन्या, पृ० ११)

आधी तज सारी को धावै, ऐसा डूबे थाह न पावै।
आधी तज सारी को धावै, आधी रहे न सारी पावै॥

—अज्ञात

दरदा कि तबीबे सब्र भी फ़रमायद
वो नफ़्से हरीस रा शकर मी बायद।

अनेक रोग है कि जिनमें वैद्य परहेज बताता है परन्तु इस लोभी मन को शकर चाहिए।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, पांचवां अध्याय)

आज़ बगुज़ार कि बा आज व हिकमत न रसी।

लोभ को अपने हृदय में भूलकर भी स्थान न दे। लोभ के कारण सत्य ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती।

[फ़ारसी] —सनाई

कामना सरलता से लोभ बन जाती है और लोभ वासना बन जाता है।

—सत्य साईं बाबा

लोभी

मनसा कर्मणा वाचा परस्वादानहेतुतः।
प्रपतन्ति नराः सम्यग् लोभोपहतचेतसः॥

लोभ से नष्ट हुए चित्त वाले मनुष्य दूसरों का धन हड़पने के लिए मन, वाणी और कर्म से भली-भाँति अपने कार्य में संलग्न हो जाते हैं।

—देवीभागवत (३।१६।४९)

उपप्रदानं लिप्सूनामेक ह्याकर्षणौषधम्।

लोभियों को उपहार देना उनके आकर्षण की एक मात्र औषध है।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ५।१)

लोभियों! तुम्हारा अक्रोध, तुम्हारा इन्द्रिय-निग्रह, तुम्हारी मानापमान-समता, तुम्हारा तप अनुकरणीय है, तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निर्लज्जता, तुम्हारा अविवेक, तुम्हारा अन्याय विगर्हणीय है। तुम धन्य हो! तुम्हें धिक्कार है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, लोभ और प्रीति)

लोभिवानि जंप लोकंबु लोपल
मंदु वलदु वेरु मतमु गलदु
पंक मडुग जालु भग्गुन बडि चच्चु।

लोभी को मारना हो तो किसी दवा की आवश्यकता नहीं। भाई उससे पैसे माँगे, तो वह अपने आप जल कर मर जाता है।

[तेलुगु] —वेमना (वेमनशतकमु)

व

वंदेमातरम्

'वन्देमातरम्' निस्सन्देह भारत का प्रधान राष्ट्रगीत है। उसकी भव्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। हमारी स्वतन्त्रता से वह सम्बद्ध है। उसका स्थान अप्रतिम है। दूसरा कोई भी गीत उसका स्थान नहीं ले सकता।

—जवाहरलाल नेहरू

जिन लोगों को भारत से प्यार है, या जो भारत के हितैषी हैं, वे लोग इस गीत को मंत्र के रूप में स्वीकार करेंगे।

—ग्रियर्सन (इंग्लैण्ड की एक सभा में भाषण)

वंश

दे० 'कुल'।

वंशी

वंशी मेरे वंधु के अधरों की मुस्कान चुराकर मेरे समस्त जीवन को उससे भर देती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (पथ का गीत, ६६)

वकील

If there were no bad people, there would be no good lawyers.

यदि बुरे लोग न होते तो अच्छे वकील भी न होते।

—डिकिन्स (दि ओल्ड क्यूरिओसिटी शाप, अध्याय ५६)

Lawyers are always more ready to get a man into troubles than out of them,

वकील सदैव इसके लिए अधिक तैयार रहते है कि कोई व्यक्ति मुश्किल में फँसे अपेक्षाकृत इसके कि वह उनसे बाहर निकले।

—गोल्डस्मिथ (दि गोल्ड नेचर्ड मैन, अंक ३)

वक्ता

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥

राजन्! सदा प्रिय लगने वाली बातें कहने वाले लोग सुलभ है, लेकिन सुनने में अप्रिय किन्तु परिणाम में हितकर बातें कहने और सुनने वाले दुर्लभ हैं।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकाण्ड, १६।२१)

वक्तव्ये तु यदा वक्ता श्रोतारमवमन्य वै।
स्वार्थमाह परार्थं तत् तदा वाक्यं न रोहति॥

जब बोलते समय वक्ता श्रोता की अवहेलना करके दूसरे के लिए अपनी बात कहता है, तब वह वाक्य श्रोता के हृदय में प्रवेश नहीं करता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शान्ति पर्व, ३२०।६२)

वक्तृत्व

दे० 'वक्ता,' वाक्पटुता' 'वाग्विदग्धता', 'वाणी'।

वचन-पालन

दे० 'वायदा' भी।

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहु वरु वचनु न जाई॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२८।२)

वचन हेतु हरिचंद नृप भये स्वपचके दास।
वचन हेत दशरथ दयो रतन सुतहि बनवास।
वचन हेत भीषम करयो गुरुसों समर महान॥
वचन हेतु नृप बलि दयो विष्णुहि सरवस दान॥

| रत्नावली

वड़े वचन पलटैं नहीं, कहि निर्वाहै धीर।
कियो विभीपन लंकपति, पाय विजय रघुवीर ।।

—वृन्द (वृन्द सतसई)

सूर समन्त चढ़ैं रन ऊपर,
ते पुनि कोटि करो विचलैं ना।
वात यहै सिरदारन की,
मुंहते कहि के कवहूँ वदले ना ।।

—जगनिक (आल्ह खंड)

सोई हृदय जहँ भाव अनेका।
सोई सिर जहँ निज वच टेका ।।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

वचन का पालन करने वाला कंजूस की भांति तोल-तोल कर अपने मुख से शव्द निकालता है।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, ५-५-१९२१)

हाथी के दांत, मरद की वात।

—हिन्दी लोकोक्ति

मजो दुरुस्तीए अहद अज जहानेसुस्त निहाद
कि इ अजूजा उरूसे हजार दामादस्त।

वात यह है कि इस नाशवान जगत के जीवों से यह आशा मत रख कि वे अपने वचनों को पूरा करेंगे। वे हजारों वचन देते हैं।

[फ़ारसी] —हाफ़िज (दीवान)

वधू

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननन्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृष ।।

हे वधू ! तू ससुर के लिए सम्राज्ञी हो, सास के लिए सम्राज्ञी हो, ननद के लिए सम्राज्ञी हो, देवरों के लिए सम्राज्ञी हो।

—ऋग्वेद (१०।८५।४६)

वन

शय्या शाद्वलमासनं शुचिशिला सद्म द्रुमाणामधः
शीतं निर्झरवारिपानमशनं कन्दाः सहाया मृगाः।
इत्यप्रार्थितलभ्यसर्वविभवे दोषोऽयमेको वने
दुष्प्रापार्थिनि यत् परार्थघटनावन्ध्यैर्वृथा स्थीयते ।।

जहां घास से हरा-भरा स्थान शय्या है, पवित्र शिला-तल आसन है, वृक्षों के नीचे का भाग घर है, झरने का शीतल जल पेय वस्तु है, कन्दों का भोजन है, मृग साथी हैं—इस प्रकार वन में विना मांगे अनायास ही जीवन के लिए अपेक्षित सभी वस्तुएं सुलभ हैं, किन्तु एक कमी है कि याचक नहीं मिलता जिससे परोपकार करने से वंचित हम व्यर्थ ही यहां पड़े हैं।

—हर्ष (नागानन्द, ४।२)

वयः संधि

सैसव जोवन दुहु मिलि गेल।
स्रवनक पथ दुहु लोचन लेल।
वचनक चातुरि लहु-लहु हास।
धरनिये चाँद कएल परगास।

—विद्यापति (पदावली)

सैसव जोवन दरसन भेल। दुहु दल वले दन्द परि गेल।

—विद्यापति (पदावली)

मिटी न सिसुता की झलक झल्कयो जोवन अंग।

—विहारी (विहारी सतसई)

सीसी में कलिल जैसे, सुमन पराग तैसे,
सिसुता में झलमलै, जोवन की झांई सी।

—गंग (गंग कवित्त, १२६)

तिय सैसव[1] जोवन[2] मिले, भेद न जान्यो जात।
प्रात समय निसि-द्यौस[3] के दुवौ[4] ... यार्थ के दर्शन

१. शैशव, वालपन। २. योवन।

वय

न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ।

धर्म में वृद्धता को प्राप्त लोगों में उम्र नहीं देखी जाती ।

—कालिदास (कुमारसंभव, ५।१६)

भुवमधिपतिर्बालावस्थोऽप्यलं परिरक्षितुं
न खलु वयसा जात्यैवायं स्वकार्यसहो भरः ।

राजा का पुत्र बालक होते हुए भी पृथ्वी का ठीक से पालन कर सकता है क्योंकि अपने-अपने कर्तव्य-पालन करने की शक्ति उम्र से नही वरन् जाति से ही उत्पन्न हो जाती है ।

— कालिदास (विक्रमोर्वशीय, ५।१८)

बड़प्पन सिर्फ उम्र में ही नहीं, उम्र के कारण मिले हुए ज्ञान, अनुभव, और चतुराई में भी है। जहां ये तीनों चीजें न हों, वहां उम्र के कारण बड़प्पन रहता है। किन्तु सिर्फ़ उम्र की ही पूजा कोई नहीं करता ।

—महात्मा गांधी (भागलपुर में भाषण, १७ अक्तूबर १९१७)

अक़्ल बड़ी कि वैस[1] ।

—हिन्दी लोकोक्ति

वयोवृद्ध

दे० 'वृद्ध' ।

वर्ण

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म-विभागशः ।

गुण और कर्मों के विभाग से चातुर्वर्ण्य मेरे (भगवान के) द्वारा रचा गया है ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २८।१३ अथवा गीता ४।१३)

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न ।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिता गुणकर्मभिः ॥

इस संसार में जन्म से न तो कोई ब्राह्मण ही होता है, और न क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या म्लेच्छ ; गुणों व कर्मों से ही भेद होता है ।

—शुक्र नीति (१।३८)

ब्रह्मणस्तु समुत्पन्नाः सर्वे ते किं नु ब्राह्मणाः ।
न वर्णतो न जनकाद् ब्रह्मतेजः प्रपद्यते ॥

सभी जीव ब्रह्मा से उत्पन्न हुए है तो क्या वे सभी 'ब्राह्मण' हैं ? नही, क्योंकि वर्ण से और पिता से ब्रह्म तेज प्राप्त नहीं होता है ।

—शुक्रनीति (१।३९)

कम्मुणा बंमणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वईसो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥

कर्म से ही ब्राह्मण होता है, कर्म से ही क्षत्रिय । कर्म से ही वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र ।

[प्राकृत] **—उत्तराध्ययन (२५।३३)**

वर्ण असल में धर्म है, अधिकार नहीं। इसलिए वर्ण का अस्तित्व केवल सेवा के लिए ही हो सकता है, स्वार्थ के लिए नहीं ।

—महात्मा गांधी (हरिजन सेवक, २१-४-१९३३)

वर्ण का आधार सांस्कृतिक है । वर्ण का प्रभाव बढ़ने से जाति का प्रभाव कम होता है । वर्ण की एकता शिथिल होने से जातियां फिर से जाग्रत होती हैं ।

—काका कालेलकर (युगानुकूल हिन्दू जीवन दृष्टि, पृ० ६७)

वर्णन

I describe not man, but manners; not an individual but a species.

मैं मनुष्य नहीं, उनके तौर तरीकों का वर्णन करता हूँ, एक व्यक्ति नहीं वरन् एक जाति का ।

—हेनरी फील्डिंग (जोसेफ़ एंड्रयूज़, ३।१)

---

1. वयस्=वय, इसे बिगाड़कर प्रायः इस प्रकार लोकोक्ति बोलते हैं—'अक्ल बड़ी कि भैंस' ।

वर्णनातीत

To those who know thee not,
no words can paint.
And those who know thee, know
all words are faint.

जो तुझे नहीं जानते, उनके लिए तू शब्दों से वर्णनातीत है और जो तुझे जानते हैं, वे जानने हैं कि सभी शब्द तेरे चित्रण के लिए फीके हैं।

—हान मोर (हिंदू सुपीरियारिटी में उद्‌धृत, पृ० ३२)

वर्णाश्रम-व्यवस्था

वर्णाश्रम-व्यवस्था समाज की सुविधा के लिए है, न कि समाज उस व्यवस्था की सुविधा के लिए।

—लोकमान्य तिलक (धार्मिक मतें)

वर्तमान

दे० 'वर्तमान और भविष्य', अतीत और वर्तमान, 'अतीत, वर्तमान और भविष्य' भी।

अद्धा हि तद् यदद्य···अनद्धा हि तद् यच्छवः।

'आज' निश्चित है, जो 'कल' है वह अनिश्चित है।

—शतपथ ब्राह्मण (२।३।१।२८)

श्वो मयूरादद्य कपोतो वरः।

कल के मोर से आज का कबूतर ही अच्छा है।

—चाणक्यसूत्राणि (५।५९)

गते शोको न कर्तव्यो भविष्यं नैव चिंतयेत्।
वर्तमानेन कालेन वर्तयन्ति विचक्षणाः॥

बीती बात का शोक न करे। भविष्य की चिन्ता न करे। बुद्धिमान् पुरुष वर्तमान काल के अनुसार ही व्यवहार करते हैं।

—अज्ञात

अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकंखे अनागतं।
यदतीत्तं पहीनं तं, अप्पत्तं च अनागतं॥

न अतीत के पीछे दौड़ो और न भविष्य की चिन्ता में पड़ो क्योंकि जो अतीत है, वह तो नष्ट हो गया, और भविष्य अभी आ नहीं पाया है।

[पालि] —मज्झिमनिकाय, (३।३१।१)

इणमेव खणं वियाणिया।

जो क्षण वर्तमान में उपस्थित है, वही महत्त्वपूर्ण है।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।२।३।१९)

मेरी कठिनाई दूर भविष्य के बारे में नहीं है। मैं तो सदा वर्तमान पर ही पूरा ध्यान लगा सकता हूं और उसी की मुझे कभी-कभी चिन्ता होती है। अगर वर्तमान को संभाल लिया जाये तो भविष्य अपने-आप संभल जाएगा।

—महात्मा गांधी (जवाहरलाल को पत्र, ३० जुलाई १९३६)

अपने युग को हीन समझना, आत्महीनता होगी।

— मैथिलीशरण गुप्त (द्वापर, पृ० ५२)

जिस युग में हम हुए, वही तो
अपने लिए बड़ा है,
अहा ! हमारे आगे कितना
कर्मक्षेत्र पड़ा है।

—मैथिलीशरण गुप्त (द्वापर, पृ० ५०)

मेरे लिए वर्तमान ही सब कुछ है। भविष्य की चिन्ता हमें कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० २०१)

हमारा युग दुर्बलताओं और ध्वंस का युग है और दुर्बलता तथा ध्वंस जितने प्रसारगामी होते हैं, शक्ति और निर्माण उतने नहीं हो सकते।

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, चिन्तन के कुछ क्षण, पृ० ६३)

वर्तमान तो कर्म चाहता है, स्वप्न नहीं, यथार्थ के दर्शन चाहता है।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी' (शीशदान, पृ० ५५)

अपने वर्तमान को सर्वोत्तम कर्म से भरते चलो। वर्तमान ही भूत बनता है। वर्तमान का उपयोग ठीक हो रहा है, तो भूत अपने आप उत्तम हो जायगा और वर्तमान में तुम उत्तम कर्म में लगे हो तो भविष्य उत्तम होने की सम्भावना भी है ही।

—अखण्डानन्द (सांख्ययोग, पृ० ४२०)

नौ नक़द अच्छे, न तेरह उधार।

—हिन्दी लोकोक्ति

मारा ब जहां खुशतर अज ईं यकदम नेस्त।

हमारे जिये संसार में इस क्षण से अच्छा कुछ नहीं है।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, प्रथम अध्याय)

'आज' को पकड़ लो और 'कल' में कम से कम विश्वास करो।

—होरेस (ओड्स, १।११।७)

हर स्थिति—नहीं नहीं हर क्षण—अनन्त मूल्य का है क्योंकि यह सम्पूर्ण अनन्तता का प्रतिनिधि है।

—गेटे

हर दिन अपने उपहार देता है।

—मार्शल (एपिग्राम्स)

हमको वर्तमान की चर्चा करनी चाहिए। भविष्य का किसे पता है?

—मैक्सिम गोर्की (मां)

The present hour alone is man's.
वर्तमान समय ही मनुष्य का अपना है।

—डा० जानसन (आयरीन, ३।२)

The future is purchased by the present.
भविष्य को वर्तमान ख़रीदता है।

—डा० जानसन

It is the fashion to style the present moment an extraordinary crisis.

वर्तमान को असाधारण संकट से ग्रस्त बताना एक फ़ैशन ही है।

—डिजरायली (भाषण, १६ दिसम्बर १८३४)

No time like the present.
वर्तमान के समान कोई समय नहीं।

—श्रीमती मैनले (दि लॉस्ट लवर, ४।१)

The present time has one advantage over every other—it is our own.

वर्तमान समय का अन्य प्रत्येक समय की अपेक्षा एक लाभ है—यह हमारा अपना है।

—चार्ल्स कैलेब कोल्टन (लैकोन, १।८१)

Each day the world is born anew
For him who takes it rightly.

उस व्यक्ति के लिए जो इसे ठीक से ग्रहण करे, संसार प्रतिदिन नया जन्म लेता है।

—जेम्स रसेल लावेल (अंडर दि विलोज ऐंड अदर पोइम्स)

वर्तमान और भविष्य

दे० 'अतीत, वर्तमान और भविष्य भी'।

अतीत के वज्र-कठोर हृदय पर जो कुटिल रेखाचित्र खिंच गए हैं, वे क्या कभी मिटेंगे? यदि आपकी इच्छा है तो वर्तमान में कुछ रमणीय सुन्दर चित्र खींचिए, जो भविष्य में उज्ज्वल होकर दर्शकों के हृदय को शान्ति दें।

—जयशंकर प्रसाद (अजातशत्रु, दूसरा अंक)

आज का अंडा आने वाले कल की मुर्ग़ी से अधिक अच्छा होता है।

—तुर्की लोकोक्ति

He that fears not the future may enjoy the present.

जो भविष्य का भय नहीं करता है, वही वर्तमान का आनंद ले सकता है।

—टामस फ़ुलर (नोमोलोजिया)

वर्तमान युग

It is an age of incoherence in thought and indecision in action. Our values are blurred, our

thought is confused, our aims are wavering and our future is uncertain.

वर्तमान युग चिंतन में असम्बद्धता और कर्म में अनिश्च-यात्मकता का है। हमारे जीवन-मूल्य धुंधले हो गए हैं, हमारा चिन्तन उलझा है, हमारे लक्ष्य डगमगा रहे हैं और हमारा भविष्य अनिश्चित है।

—राधाकृष्णन् (दि फ़िलासफ़ी आफ़ सर्वपल्ली राधाकृष्णन, पृ० २५)

वर्षा

दृप्तसारंगनादेन दर्दुरव्याहृतेन च।
नवैश्च शिखिविक्रुष्टैरवकीर्णा वसुन्धरा॥

मतवाले भ्रमरों के गुंजारव, मेढकों की ध्वनि तथा मोरों की नूतन केका-वाणी से वहां की भूमि गूंज रही थी।

—हरिवंशपुराण (विष्णुपर्व, १०।१४-१५)

दामिनि दमक रह न घन माहीं।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥
बरषहिं जलद भूमि निअराए।
जथा नवहिं बुध बिद्या पाए॥
बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे।
खल के बचन संत सह जैसे॥
छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई।
जस थोरेहुं धन खल इतराई॥
भूमि परत भा ढाबर पानी।
जनु जीवहि माया लपटानी॥
समिटि समिटि जल भरहिं तलावा।
जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई।
होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।१४।१-४)

हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बिबाद तें गुप्त होहिं सद्ग्रंथ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।१४)

कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।१५ क)

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।१५ क)

वर्षा की पहली बौछार ; नहीं, पृथ्वी पर
जड़ें फेंक दी हैं आकाश ने।

—श्रीकांत वर्मा (माया-दर्पण)

कलसे पानी गरम है, चिरियां न्हावै धूर।
अंडा लै चींटी चढ़ै, तौ बरषा भरपूर॥

—भड्डरी

नाज़ हो जिसको बहारे मिस्रो शामो रूम पर
सरज़मीनेहिन्द में देखे फ़िज़ा बरसात की।

—चकबस्त (सुबहे वतन, पृ० २१४)

घर टपकता है और उस पर घर में वो मेहमान है
पानी पानी हो रही है आबरू बरसात में।

—मज़्तर मुज़फ़्फ़रपुरी

बरसतै दड़ड़ नड़ अनड़ वाजिया सघण गाजियो गुहिर सदि।
जलनिधि ही समाई नहीं जल, जलवाला न समाइ जलदि॥

बड़े जोर से बरसने से पर्वतों के नाले शब्दायमान होने लगे। सघन मेघ गभीर शब्द से गर्जने लगा। समुद्र में भी जल नहीं समाता और बिजली बादलों में नहीं समाती है।

[राजस्थानी] —पृथ्वीराज राठौर

यदि वरे आग ने, राजा जामेन मांगने।
यदि अगहन में बरसे तो राजा रोटी को तरसे।

[बंगला] —खना

वसन्त ऋतु

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपंकजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥

उन्होंने (श्रीकृष्ण ने) पहले नवपल्लवयुक्त पलाशवन वाले, विकसित तथा पराग से परिपूर्ण कमलों वाले तथा पुष्प-समूहों से सुगंधित वसन्त ऋतु को देखा।

—माघ (शिशुपालवध, ६।२)

माधविका-परिमल-ललिते नवमालिकयातिसुगन्धौ।
मुनिमनसामपि मोहनकारिणि तरुणाकारणबन्धौ॥

यह वसन्त काल माधविका पुष्प की सुगंधि से ललित और नयी मालती की सुगंध से परिपूर्ण है, मुनियों के मन को भी मोहित करने वाला है और तरुणों का सहज बंधु है।

—जयदेव (गीतगोविन्द, १।३३)

आम्रे पल्लविते स्थित्वा कोकिला मधुरस्वरम्।
चुकूज कामिनां चित्तमाकर्षन्तीव दूतिका॥

आम के पुष्पित होने पर कोयल दूतिका के समान कामियों के चित्त को आकर्षित करती हुई मधुर स्वर में कूजने लगी।

—अज्ञात

छल्लन्ति दंतरअणाइं गदे तुसारे
ईसीसि चंदनरसम्मि मणः कुणन्ति।
एण्हिं सुवंति घरमज्झमसालि आसु
पा अंतपुंजिअपडं मिहुणाई पेच्छ॥

अब शीत के समाप्त हो जाने पर स्त्री-पुरुषों के दांत चमकने लगे है, चंदन के लेप की भी कुछ-कुछ इच्छा स्त्री-पुरुषों की हो चली है। अपने-अपने घरों के मध्य देश में अब स्त्री-पुरुष सोने लगे हैं और रात्रि में शीत के बढ़ जाने के भय से चादर केवल पैरों के पास समेट लेते हैं।

[प्राकृत] —राजशेखर (कर्पूरमंजरी, १।१४)

फुल्लिअ केसु कम्प तहुँ पअलिअ मंजरि तेगिअ चूआ
दक्खिण बाउ सीअ भई पवहइ कम्प बिओइणि हीआ।
केअइ धूलि सव्व दिस पसरिअ पीअरू सव्बउ भासे
आउ वसन्त काइ सइ करिहउ कन्त ण थक्कइ पासे॥

केसू फूलने लगे। पल्लव काँपने लगे। आमों में मंजरी निकल आई। दक्षिण वायु शीतल होकर बहने लगी। वियोगिनियों का हृदय काँपने लगा। केवड़े की धूलि चारों ओर फैल गयी, सब जगह वसन्ती रंग दिखाई दे रहा है। इस प्रकार हे सखी, वसन्त तो आ गया परन्तु मेरा प्रिय मेरे पास नहीं है।

[अपभ्रंश] —अज्ञात (प्राकृत पिंगल सूत्र, पृ० २१२)

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गंध।
ठौर ठौर झूमत झपत, झौंर झौंर[1] मधु अंध॥

—विहारी (विहारी सतसई, ५६०)

लो, चित्र-शलभ सी, पंख खोल
उड़ने को अब कुसुमित घाटी,
यह है अल्मोड़े का वसंत,
खिल पड़ीं निखिल पर्वत घाटी!

—सुमित्रानन्दन पन्त (युगांत, पृ० २२)

फूली सरसों ने दिया रंग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु-वसुधा पुलकित अंग-अंग,
हैं वीर वेश में किन्तु कंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त?

—सुभद्राकुमारी चौहान (मुकुल, वीरों का कैसा हो वसन्त)

उद्यान में
उड़ रही है तितलियां—
वसंत के प्रेम पत्र।

—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (जंगल का मर्द, पृ० ११७)

वासन्ती, रे भुवन मोहिनी
हे भुवन मोहिनी वासन्ती ऋतु।

[बंगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

In the spring a youngman's fancy lightly turns to thoughts of love,

वसन्त ऋतु में नवयुवक की कल्पना धीरे-धीरे प्रेम के विचारों में परिवर्तित हो जाती है।

—टेनिसन (लाक्स्ले हाल)

वस्त्र

तुम्हारे वस्त्र तुम्हारे बहुत से सुन्दर अंश को छिपा लेते है, लेकिन असुन्दर को नही।

—खलील जिब्रान (जीवन सन्देश, पृ० ४५)

1. समूह।

वाक्पटुता

गरौ गिरः पल्लवनाऽर्थलाघवे
मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता।

शब्दों का फैलाव तथा अर्थ का संकोचन वाणी के विषश्वारूप हैं क्योंकि संक्षिप्त तथा सार पूर्ण (अर्थात् बहुत अर्थ से युक्त) वचन कहना ही वाक्पटुता है।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ६।८)

अल्पाक्षररमणीयं य. कथयति निश्चितं स खलु वाग्मी।
बहुवचनमल्पसारं यः कथयति विप्रलापी सः॥

जो थोड़े शब्दों में सुन्दर बात कहता है, वही वाग्मी है, बहुत से बचनों में थोड़ा सार कहने वाला तो विप्रलापी ही है।

—सुन्दर पाण्डया (नीति द्विषष्टिका)

सुखुन दर मियाने दु दुश्मन चुनां गोयी
कि—अगर दोस्त गर्दन्द शर्मिन्दा न वाशी।

दो बैर करने वालों के बीच में बात ऐसे कहे कि यदि वे मित्र वन आयें तो तू लज्जित न हो।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

Eloquence is the child of knowledge.

वाग्मिता ज्ञान की सन्तान है।

—डिजरायली (दि यंग ड्यूक, ५।६)

Talking and eloquence are not the same : to speak and to speak well, are two things.

बोलना और वाग्मिता एक नहीं है; बोलना और अच्छी तरह बोलना दो चीजें हैं।

— वेन जानसन (डिसकवरीज)

Honesty is one part of eloquence.

ईमानदारी वाग्मिता का एक तत्त्व है।

—हैज़लिट

वाग्विदग्धता

Brevity is the soul of wit.

संक्षिप्तता वाग्विदग्धता का प्राण है।

—शेक्सपियर (हैमलेट, २।२)

A thing well said will be wit in all languages.

अच्छे ढंग से कही हुई बात समस्त भाषाओं में ही वाग्विदग्धता होती।

—ड्राइडेन (एसे आफ ड्रैमेटिक पोयजी)

True wit is nature to advantage dressed,
What oft was thought but ne'er so well
expressed.

सच्ची वाग्विदग्धता का अर्थ है सुसज्जित प्रकृति अर्थात् जो प्रायः विचार में तो आया था परन्तु कभी इतने अच्छे रूप में अभिव्यक्त नहीं हुआ था।

—पोप (ऐन एसे आन क्रिटिसिज्म, पृ० २९७)

Wit is the salt of converstion, not the food.

वाग्विदग्धता वार्तालाप का नमक है, भोजन नहीं।

—हैज़लिट (लेक्चर्स आव प्रि इंग्लिश, कामिक राइटर्स, आव विट एण्ड ह्यूमर)

वाचाल

मांडे पुर्‍या मुखें सांगों जाणे मात।
तोंडी लाल हाल चोली रिते॥
ऐसियाच्या गोष्ठी फिक्या मिठें विण।
रुचि नेदी अन्न चवी नाहीं॥

जैसे नमक के बिना अन्न स्वादरहित और फीका लगता है, वैसे ही वाचाल के कथन निस्सार होते हैं और किसी को रुचिकर नहीं लगते।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, २८८)

वाणी

दे० 'वाणी और मौन', 'मधुरवाणी', 'कटु वाणी' भी।

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो,
यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते,
भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥

जैसे सत्तू को सूप से परिष्कृत करते हैं, वैसे ही मेधावी जन अपने बुद्धि वल से परिष्कृत की गई भाषा को प्रस्तुत

हैं। विद्वान् लोग वाणी से होने वाले अभ्युदय को प्राप्त करते हैं, उनकी वाणी में मंगलमयी लक्ष्मी निवास करती है।

—ऋग्वेद (१०।७१।२)

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाच-
मुत त्वः श्रृण्वन् न श्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे,
जायेव पत्य उशती सुवासाः॥

कुछ मूढ लोग वाणी को देखकर भी नहीं देख पाते, सुनकर भी नहीं सुन पाते। किन्तु विद्वानों के समक्ष तो वाणी अपने को स्वयं ही प्रकाशित कर देती है, जैसे कि सुन्दर वस्त्रों से आवृत्त पत्नी पति के समक्ष अपने को अनावृत्त कर देती है।

—ऋग्वेद (१०।७१।४)

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां,
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।

मैं वाग्देवी, समग्र विश्व की अधीश्वरी हूं, और अपने उपासकों को ऐश्वर्य देने वाली हूं। मैं ज्ञान से सम्पन्न हूं और यज्ञीय साधनों में सर्वश्रेष्ठ हूं।

—ऋग्वेद (१०।१२५।३)

गोस्तु मात्रा न विद्यते।

वाणी का परिमाण नहीं है।

—यजुर्वेद (२३।४८)

अग्ने त्वां कामये गिरा।

हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! मैं वाणी द्वारा तेरी प्राप्ति की इच्छा करता हूं।

—सामवेद (८)

मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचम्।

हे देवो! मैं तुम्हारे द्वारा न सुनने योग्य वचन न बोलूं।

—सामवेद (६१०)

जिह्वाया: अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।

मेरी जीभ के अग्रभाग में मधुरता रहे। मेरी जीभ के मूल भाग में मधुरता रहे।

—अथर्ववेद (१।३४।२)

सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।

सौहार्द वाले, समान व्रत वाले होकर भद्र भाव से वचन बोलो।

—अथर्ववेद (३।३०।३)

वाचो वा इदं सर्वं प्रभवति।

वाणी से ही यह सब उत्पन्न होता है।

—शतपथ ब्राह्मण (१।३।२।१६)

वाग्वै ब्रह्म।

वाणी ही ब्रह्म है।

—शतपथ ब्राह्मण (२।१।४।१०)

वाग्वाव नाम्नो भूयसा···यद् वै वाङ्नाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वार्यवैतत्सर्वं विज्ञापयति।

वाक् ही नाम से बढ़कर है। यदि वाणी न होती तो न धर्म का और न अधर्म का ही ज्ञान होता। तथा न सत्य, न असत्य, न साधु, न असाधु, न मनोज्ञ और न अमनोज्ञ का ही ज्ञान हो सकता। वाणी ही इन सब का ज्ञान कराती है।

—छान्दोग्योपनिषद् (७।२।१)

सर्वेषां वेदानां वागेकायनम्।

सब वेदों का वाणी ही एकमात्र मार्ग है।

—बृहदारण्यक उपनिषद् (२।४।११)

अप्रियस्य हि पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।

हितकर किन्तु अप्रिय वचन को कहने और सुनने वाले दोनों दुर्लभ है।

—वाल्मीकि (रामायण, ६।१६।२१) और
वेदव्यास (महाभारत, सभापर्व।६४।१६) तथा
उद्योगपर्व, ३६।१५)

न चैवोक्ता न चानुक्ता हीनतः पुरुषा गिरः।
भारत प्रतिजल्पन्ति सदा तूत्तमपुरुषाः॥

श्रेष्ठ पुरुष नीच पुरुषों द्वारा कही या न कही गयी कड़वी बातों का कभी उत्तर नहीं देते।

—वेदव्यास (महाभारत, सभापर्व।७२।८)

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता ।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते ।।

हे राजन् ! मधुर शब्दों में कही हुई बात अनेक प्रकार से कल्याण करती है, किन्तु यही यदि कटु शब्दों में कही जाय तो महान अनर्थ का कारण बन जाती है ।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व, ३४।७७)

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ।।

वाणों से बिंधा हुआ तथा फरसे से काटा हुआ वन भी अंकुरित हो जाता है, किन्तु कटु वचन कहकर वाणी से किया हुआ भयानक घाव नहीं भरता ।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व ३४।७८)

कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः ।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ।।

कर्णि, नालीक और नाराच नामक वाणों को शरीर से निकाल सकते हैं । परन्तु कटु वचन रूपी वाण नही निकाला जा सकता, क्योंकि वह हृदय के भीतर धँस जाता है ।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व।३४।७९
तथा अनुशासनपर्व, १०४।३४)

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति रात्र्यहनि ।
परस्य ना मर्मसु ते पतन्ति
तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः ।।

कटु वचन रूपी वाण मुख से निकल कर दूसरों के मर्म स्थान पर ही चोट करते हैं, उनसे आहत मनुष्य रात-दिन घुलता रहता है । अतः विद्वान पुरुष दूसरों पर उनका प्रयोग न करें ।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व, ३४।८०)

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः
सत्यं वदेद् व्याहृतं तद् द्वितीयम् ।
प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं
धर्मं वदेद व्याहृतं तच्चतुर्थम् ।।

व्यर्थ बोलने की अपेक्षा मौन रहना अच्छा बताया गया है (यह वाणी की प्रथम विशेषता है)। सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता है । प्रिय बोलना वाणी की तीसरी विशेषता है । धर्म बोलना वाणी की चौथी विशेषता है (इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है) ।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व।३६।१२ तथा
शांतिपर्व।२९९।३८)

ययास्य वाचा पर उद्विजेत
न तां वदेद् रुशती पापलोक्याम् ।

जिसके कहने से दूसरों को उद्वेग होता हो वह रुखाई से भरी रुई बात पापियों के लोक में ले जाने वाली होती है । अतः वैसी बात कभी न बोले ।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व।१०४।३१)

अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित् ।

वास्तव में ब्रह्मवेत्ताओं की वाणी कहीं असत्य नहीं होती है ।

—भागवत (१०।११।५७)

प्रियमुक्तं हितं नैतदिति मत्वा न तद्वदेत् ।
श्रेयस्तत्र हितं वाच्यं यद्यप्यत्यन्तमप्रियम् ।।

प्रिय होने पर भी जो हितकर न हो, उसे न कहे । हितकर कहना ही अच्छा है चाहे वह अत्यन्त अप्रिय हो ।

— विष्णुपुराण (३।१२।४४)

तस्माद् ब्राह्मणेन न म्लेच्छित वै नापभाषितवै ।
म्लेच्छो ह वा एष यदपशब्दः ।

ब्राह्मण को म्लेच्छन अर्थात् दोषयुक्त नहीं बोलना चाहिए । जो अपशब्द है, वह निश्चय ही म्लेच्छ है ।

—पतंजलि (महाभाष्य, प्रथम आह्निक)

प्रियनिवेद्यमानानि प्रियाणि प्रियतराणि भवन्ति ।

प्रियजन द्वारा कही गई प्रिय बातें प्रियतर होती हैं ।

—भास (अविमारक, ३।१ से पूर्व)

आर्जवाभिहितं वाक्यं न च मन्तव्यमन्यथा ।

सरलतापूर्वक कहे गए वचन को अन्यथा नहीं समझना चाहिए ।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ११।१५)

रुक्षमप्याशये शुद्धे रुक्षतो नैति सज्जनः ।

शुद्ध आशय हो तो रूखे वचन को भी सज्जन रूखा नहीं समझता है ।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ११।१५)

अप्रियं हि हितं स्निग्धमस्निग्धमहितं प्रियम्।

हितकारी अप्रियवचन स्नेही[1] का होता है। अहितकारी प्रिय वचन स्नेहरहित[2] का होता है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ११।१६)

अमृतं खलु ते वचनम्। अथवा चन्द्रादमृतमिति किमाश्चर्यम्।

आपके वचन तो अमृत है। परन्तु यदि चन्द्रमा से अमृत बरसे तो आश्चर्य ही क्या!

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, १।११ के पश्चात्)

विन्देय देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम्।

हम आत्मा की कला स्वरूप शाश्वत दैवी वाक् को पावें।

—भवभूति

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।

हितकारी और मनोरम बात दुर्लभ होती है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, १।४)

विरोधिवचसो मूकान् वागीशानपि कुर्वते।
जडानप्यनुलोमार्थात् प्रवाचः कृतिनां गिरः॥

कुशल मनुष्यों की वाणी विरोधी बड़े-बड़े वक्ताओं को भी मूक बना देती है और अपने अनुकूल बोलने वाले मन्द-बुद्धि वालों को भी निपुण वक्ता बना देती है।

—माघ (शिशुपालवध, २।२५)

गौर्गौः कामदुधा सम्यक् प्रयुक्ता स्मर्यते बुधैः।
दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुः सैव शंसति॥

भली प्रकार प्रयुक्त की गई, गौ (वाणी) को विद्वानों ने कामनापूर्ण करने वाली कामधेनु कहा है। किन्तु वही वाणी दुष्प्रयुक्त होने पर वक्ता में गोत्व (मूर्खता) को सूचित करती है।

—दण्डी (काव्यादर्श, १।६)

भुजे वीर्यं निवसति, न वाचि।

पराक्रम तो भुजाओं में रहता है, न कि वाणी में।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० ११३)

वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिता चेत्।
खलत्वमल्पीयसि जल्पितेऽपि तदस्तु वन्दिभ्रमभूमितैव॥

गुणों से अद्भुत वस्तु का यदि वर्णन न हो तो वाणी के जन्म की विफलता अत्यन्त दुःखदायिनी होती है। अगर थोड़ा कहा जाय तो दुर्जनता प्रकट होती है। इस कारण स्तुतिपाठक होने की भ्रांति होना ही ठीक है।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ८।३२)

को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति।

गूंगा कौन है? जो समयानुकूल प्रिय वाणी बोलना नहीं जानता है।

—अमोघवर्ष

अस्थाने गमिता लयं हतधियां वाग्देवता कल्पते,
धिक्काराय पराभवाय महते तापाय पापाय या।
स्थाने तु व्ययिता सतां प्रभवति प्रख्यातये भूतये,
चेतोनिर्वृतये परोपकृतये प्रान्ते शिवावाप्तये॥

दुर्बुद्धि मनुष्यों द्वारा अनुचित स्थान में प्रयुक्त होने पर (सांसारिक तुच्छ वस्तुओं का वर्णन किये जाने पर) वाणी प्रयोक्ता को धिक्कार, पराजय, अत्यधिक संताप तथा पाप का कारण बन जाती है। किन्तु वही वाणी उचित स्थान में प्रयुक्त होने पर (परमात्मा का गुणानुवाद या सद्वस्तुओं का वर्णन किये जाने पर) सज्जनों की ख्याति, ऐश्वर्य, मन की शान्ति, परोपकार तथा अंत में शिव (कल्याण या भगवान) की प्राप्ति का हेतु बनती है।

—जगद्धर (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १८५)

आसंसारमुदारैः कविभिः प्रतिदिनगृहीतसारोऽपि।
अवाप्यभिन्नमुद्रो विभाति वाचां परिस्यन्दः॥

यह वाणी का स्रोत असीम और अनन्त है। सृष्टि-काल से आज तक न जाने कितने ही प्रखर प्रतिभाशाली कवि, प्रतिदिन इसका तत्त्व-ग्रहण करते आ रहे हैं और ग्रहण करते रहेंगे। यह अनादि स्रोत, आज भी उसी निर्बाध गति से, अविच्छिन्न रूप से, बहता जा रहा है।

—वाक्पतिराज (गौड़वहो, ८७)

१. मित्र २. शत्रु।

न्यूना वाणी नोपकुर्यादजडानामुन्मूढानां
चाधिकोद्वेजनाय।

न्यून वाणी मूर्खों की समझ में नहीं आती और अधिक बोलना विद्वानों को उद्विग्न करता है।

—धनंजय (द्विसंधान महाकाव्य, ११।२३)

मुखमस्तीति प्रलपसि यत्किंचन मूढ नास्ति ते शास्ता।

मुख है अतः चाहे जो बकते हो। हे मूढ़ ! तुम्हारा कोई नियंत्रक नहीं है।

—अनन्त देव ('मनोनुरंजन' नाटक)

वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥

केवल सुसंस्कृत वाणी पुरुष को भली प्रकार अलंकृत करती है। अन्य आभूषण तो नष्ट हो जाते हैं किन्तु वाणी रूपी आभूषण सदा आभूषण बना रहता है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, १९)

अवसरपठितं सर्वं सुभाषितत्वं प्रयात्यसूक्तमपि।
क्षुधि कदशनमपि नितरां भोक्तुः सम्पद्यते स्वादु ॥

उचित अवसर पर कही गयी असुन्दर वाणी भी उसी प्रकार सुभाषित हो जाती है जिस प्रकार भूख में नितान्त अस्वादु भोजन भी सुस्वादु हो जाता है।

—वल्लभदेव (सुभाषितावलि, १५०)

अदेशकालज्ञमनायतिक्षमं
यदप्रियं लाघवकारि चात्मनः।
योऽत्राब्रवीत् कारणवर्जितं वचो
न तद्वचः स्याद् विषमेव तद्वचः ॥

जो मनुष्य देश और काल के ज्ञान से रहित, परिणाम में कटु, अप्रिय, अपने लिए लघुताकारक और अकारण वचन बोलता है, उसका वह वचन नहीं, विष ही है।

— विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, ३।११३)

मुखमस्ति च वक्तव्यं शतहस्ता हरीतकी।

मुख है तो कहना ही चाहिए—सौ हाथ लम्बी हरड़।

—संस्कृत लोकोक्ति

इदमस्खलितं धारय वारय परुषाक्षरा वाचः।
एकः सकलजनानां जगति रिपुः परुषवाक् पुरुषः ॥

इस बात को सावधानी से समझो कि कठोर वचनों को रोको। अकेला कटुभाषी पुरुष संसार में सभी मनुष्यों का शत्रु है।

—अज्ञात

अन्यमुखे दुर्वादो यः प्रियवदने स एव।

दूसरों के मुख से जो दुर्वचन है वही अपने प्रिय के मुख से परिहास हो जाता है।

—अज्ञात

अवसर-पठिता वाणी गुणगणरहितापि शोभते पुंसाम्।

मनुष्यों की गुणों से रहित वाणी भी यदि उचित अवसर पर कही गई हो तो शोभा देती है।

—अज्ञात

अप्रतिबुद्धे श्रोतरि वक्तुर्वाक्यं प्रयाति वैफल्यम्।

मन्दबुद्धि व्यक्ति से कहा गया वचन विफल होता है।

— अज्ञात

काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदो पिककाकयोः।
वसन्तसमये प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः ॥

कौवा काला है और कोयल भी काली है, कौवे और कोयल में क्या भेद है ? बसन्त के समय कौवा कौवा है और कोयल कोयल है।

—अज्ञात

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात् तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥

प्रिय वचन बोलने से सब प्राणी सन्तुष्ट हो जाते हैं, अतः प्रिय ही बोलना चाहिए। वचन में क्या दरिद्रता ?

—अज्ञात

आनन्दयति सत्त्वानि यो हि मंगलमंजुवाक्।

मंगलमयी कोमल वाणी वाला मनुष्य प्राणियों को आनन्दित करता है।

—अज्ञात

धम्मं भणे, नाधम्मं
पियं भणे, नापियं,
सच्चं भणे, नालिक।

धर्म कहना चाहिए, अधर्म नहीं। प्रिय कहना चाहिए, अप्रिय नहीं। सत्य कहना चाहिए, असत्य नहीं।

[पालि] —संयुत्तनिकाय, (१।८।६)

कतमा च भिक्खवे मिच्छा वाचा ?
मुसावादो, पिसुणा वाचा, फरुसा वाचा, सम्फप्पलापो।

भिक्षुओं ! मिथ्या वचन क्या हैं ? असत्य, चुग़ली, कठोर वचन और बकवास मिथ्या वचन है।

[पालि] —मज्झिमनिकाय (३।१७।१)

तरमानस्स भासतो कायो पि किलमति
चित्तं पि उपहंञति, सरो पि उपहंञति
कण्ठो पि आतुरीयति, अविसट्ठं पि होती
अविञ्ञेय्यं तरमानस्स भासितं॥

जल्दी बोलने वाले के शरीर को भी कष्ट होता है, चित्त भी पीड़ित होता है, स्वर भी विकृत होता है, कंठ भी आतुर होता है और जल्दी बोलने वाले की बात समझ में न आने योग्य भी होती है।

[पालि] —मज्झिमनिकाय (३।३६।२)

तमेव वाचं भासेय्य, या यत्तानं न तापेय।
पेर च न विहिंसेय्य, सा वे वाचा सुभाषिता॥

वही बात बोलनी चाहिए जिससे न स्वयं को कष्ट हो और न दूसरों को ही। वस्तुतः सुभाषित वाणी ही श्रेष्ठ वाणी है।

[पालि] —थेरगाथा (२१।१२३६)

कल्याणिमेव मुंचेय्य नहि मुंचेय्य पापिकं।
मोक्खो कल्याणिया साधु मुत्वा तपति पापिकं॥

कल्याणकर वाणी ही मुख से निकालें, पापी वाणी को नहीं। कल्याणकर वाणी का उच्चारण अच्छा है। पापी वाणी को मुख से निकालने वाला पीछे तपता है।

[पालि] —जातक (सारंभ जातक)

नो वयणं फरुसं वइज्जा।

कठोर वचन न बोले।

[प्राकृत] —आचारांग (२।१।६)

तुमं तुमंति अमणुन्नं सव्वसो तं न वत्तए।

तू-तुम—जैसे अभद्र शब्द कभी नहीं बोलने चाहिए।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।६।२६)

हिज मिअ — अफरुसवाई, अणुवी इभासि वाइओविणओ।

हित, मित, मृदु और विचारपूर्वक बोलना वाणी का विनय है।

[प्राकृत] —दशवैकालिकनियुंक्ति (३२२)

वयणं विण्णाणफलं, जइ तं भणिए डवि नत्थि किं तेण।

वचन की फल-श्रुति है—अर्थज्ञान ! जिस वचन के बोलने से *अर्थ का ज्ञान नहीं हो तो उस वचन से भी क्या लाभ ?*

[प्राकृत] —विशेष आवश्यक भाष्य (१५१३)

एहि हिअए अण्णं अण्णं वाआइ लोअस्स।

आजकल के लोग हृदय में कुछ और वाणी में कुछ रखते हैं।

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथा सप्तशती, १।३२)

आक्खेव आइँ पिअजम्पिआइँ परहिअ अणिव्वुदिअराइं।
विरलो खु जाणइ जणो उप्पण्णे जम्पिअव्वाइं॥

वात को उड़ा देने वाले, दूसरों के हृदयों को आनन्द पहुंचाने वाले, प्रिय वचनों से अवसर पर कम लोग बोलना जानते हैं।

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथासप्तशती, ३।४२)

मामि सरसक्खराणँ वि अत्थि विसेसो पअम्पि अव्वाणं।
णेहमइआणँ अण्णो अण्णो उवरोहमइआणं॥

हे मामी ! समान अक्षर होने पर भी वातों में विशिष्टता होती है—स्नेहमयी बातों में दूसरी और अनुरोधवश कही हुई बातों में दूसरी।

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथासप्तशती, ५।५०)

ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोइ।
अपना तन शीतल करै, औरन को सुख होइ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५७)

अति आरत, अति स्वारथी, अति दीन-दुखारी।
इनको बिलगु न मानिये, बोलहिं न बिचारी॥
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद ३४)

कहे त्रिनु रह्यो न परत, कहे राम ! रस न रहत।
—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद २५६)

रत्नावली काँटो लग्यो बैंदनु दयो निकारि।
वचन लग्यो निकस्यो न कहूँ उन डारो हिय फारि॥
—रत्नावली

रहिमन जिह्वा बावरी, कहिगै सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल।
—रहीम (दोहावली, १८६)

आदमी को मोल एक बोल में पिछानिये।
—गंग (गंग कवित्त, ३९६)

बात कहन की रीति मैं, है अन्तर अधिकाय।
एक वचन तैं रिस बढ़ै, एक वचन तैं जाय॥
—वृन्द (वृन्द सतसई, १००)

मधुर वचन ते जात मिट, उत्तम जन अभिमान।
तनिक सीत जल सों मिटै, जैसे दूध-उफान॥
—वृन्द (वृन्द सतसई)

मानुष बैठे चुप करे, कदर न जानै कोय।
जबहीं मुख खोलै कली, प्रगट बास तब होय॥
—मलूकदास (मलूकदास जी की बानी, पृ० ३६)

मानुष की रचना बसैं, विष अर अमृत दोय।
भली कहै बच जाय है, बुरी कहैं दुख होय॥
—बुधजन (बुधजन सतसई)

इक फीका ना गालाइ, सभना मैं सच्चा धणी।
हिआई न कैंही ठाहि, माणिक सभ्भ अमोलवैं॥

एक भी अप्रिय बात मुंह से न निकाल, क्योंकि सच्चा मालिक हर प्राणी के अन्दर है। किसी के दिल को तू मत दुखा, हर दिल एक अनमोल रत्न है।
—शेख़ फ़रीद

सोई रसना जहँ अमृत बानी।
जेहि सुनि कै हिय नारि जुड़ानी॥
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

कड़ी बात भी हँसकर कही जाय, तो मीठी हो जाती है।
—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० ७१)

वाक्संयम विश्व-मैत्री की पहली सीढ़ी है।
—जयशंकर प्रसाद (अजातशत्रु, पहला अंक)

रसविहीन जिसको कहकर रसना बने
ऐसी नीरस बातें क्यों जायें कही।
—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(वैदेही बनवास, १४।१००)

बड़ी बात को थोड़े में कहना ही चतुराई है।
—वृन्दावनलाल वर्मा (मृगनयनी, पृ० ३०६)

सत्य सरल वक्ता की वाणी
किसको नहीं लुभायेगी,
घातक की तलवार धार भी
मोहित होकर मुड़ जाएगी।
—श्यामनारायण पाण्डेय (बालि-वध, पृ० ६)

हम जो कुछ बोलें, उसमें बल होना चाहिए।
—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० १८२)

वही मुख पान खिलावै, वही मुख पनही[1]।
—हिंदी लोकोक्ति

अंडा सिखावै बच्चे को किलीं-थीं मतकर।
—हिंदी लोकोक्ति

ज़बान ही हाथी चढ़ावे, ज़बान ही सिर कटवावे।
—हिन्दी लोकोक्ति

इतनी सी जान, गज़ भर की ज़बान।
—हिंदी लोकोक्ति

गुड़ न दे तो गुड़ की-सी बात तो करे।
—हिंदी लोकोक्ति

१. जूता।

ज़बान शीरीं, मुल्कगीरी,
जबान टेढ़ी, मुल्क बांका।

वाणी मधुर हो तो सब वश में हो जाते। वाणी कटु हो तो सब शत्रु हो जाते हैं।

—हिंदी लोकोक्ति

कागा काको धन हरै कोयल काको देय।
मीठो वचन सुनाय के जग वश में कर लेय।।

—अज्ञात

दु चीज़ तीराए अक़्लस्त दम फ़रो बस्तन्
बे वक़्ते गुफ़्तन् ओ ब वक़्ते ख़ामोशी।

दो चीज़ें बुद्धि की लज्जा हैं—बोलने के समय चुप रहना और चुप रहने के समय बोलना।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, भूमिका)

ज़बां दर दहाने ख़िरदमन्द चीस्त
कलीदे दरे गंजे साहिब हुनर,
चु दर बस्ता बाशद-चि दानद कसे
कि जौहर फ़रोशस्त या शीशागर।

बुद्धिमान के मुख में जिह्वा क्या है? गुणियों के कोष द्वार की चाभी है। जब द्वार बन्द हो तो कोई कैसे जाने कि उसके अन्दर रत्न-विक्रेता है या काँच-विक्रेता।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, भूमिका)

कुनूनत कि इमकाने गुफ़्तार अस्त
बिगो ऐ बिरादर ब लुत्फ़ो ख़ुशी,
कि फ़र्दा चु पैके अजल दर रसद
ब हुक्मे ज़रूरत ज़ुबां दरकशी।

अभी तुझमें बोलने की शक्ति है। हे भाई। आनन्द और प्रसन्नतापूर्वक बोल। क्योंकि कल जब यमदूत आ पहुँचेंगे, तब तो अनिवार्यतः जीभ बन्द रखेगा ही।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, भूमिका)

पाटा पीड़ उपाव, तन लागां तरवारियां।
वहै जीभ रा घाव, रती न ओषद राजिया।।

शरीर में तलवारों के घाव लगने पर पट्टी द्वारा उसकी पीड़ा का इलाज हो सकता है। पर हे राजिया! जीभ के घावों की रत्ती-भर भी दवा नहीं है।

[राजस्थानी] —कृपाराम

भाविक शब्द बोले वाणीचा।
लटिका वाचा वाचाल तो।।

विचारशील व्यक्ति आवश्यकतानुसार ही बोलता है किन्तु वाचाल निरर्थक वचन बोलता रहता है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, १७८१)

नये बोलो फार वैसों जनामधीं।

जन समुदाय में बैठकर आवश्यकता से अधिक नहीं बोलना चाहिए।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, १४८६)

बोलणें तें आम्ही बोलों उपयोगी।
पडिलें प्रसंगी कालाऐसें।।

बोलना हो तो उपयोगी ही बोलना उचित है। प्रसंगानुसार जो उचित हो वही बोलना चाहिए।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ३५१४)

मितमलु सद्भाषणमुलु
हितमुलुशा बलुकु वानि नेल्ल जनुलु स
न्नुत लोनरिंचुचु न्नोक्कुदुरु।

जो कम बोलता है, अच्छी मीठी बातें करता है और प्यार से बोलता है ऐसे लोगों को हमेशा सम्मान करते हैं।

[तेलुगु] —वेमना (वेमनशतकमु)

भूषलु गावु पूरुषुनि भूषितु जेयु पवित्रवाणि वा
वभूषणमे सुभूषणमु भूषणमुल् नशियिंचु नन्नि युन्।

जिसकी वाणी पवित्र होती है, वही मानव भूषित माना जाता है। वाक् ही मानव का आभूषण है। शेष सारे ऊपरी दिखावट के आभूषण नष्ट होने वाले हैं।

[तेलुगु] —एनुगु लक्ष्मण कवि

सच्चरित व्यक्ति के मुख से निकलने वाले शब्द फिसलन पर चलते समय आधार-दण्ड के समान (जीवन में सहायक) होते हैं।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ४१५)

बोल वह है जो कि सुनने वाले को वशीभूत कर ले, और न सुनने वालों में भी सुनने की इच्छा उत्पन्न कर दे।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६४३)

विचारों को सजाकर मधुर ढंग से व्यक्त करने वाला प्राप्त हो तो संसार शीघ्र उसके आदेशों को सुनेगा।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६४८)

कठोर वचन बोलने से कठोर बात सुननी पड़ेगी। चोट करने पर चोट सहनी पड़ेगी। रुलाने से रोना पड़ेगा।

—तैलंग स्वामी

दूसरों से मृदु वचन बोलना जप है, एकमात्र तप है।

—बसवेश्वर

मृदु वचनवे सकल जपंगलय्या,
मृदु वचनवे सकल तपंगलय्या।

मधुर वाणी ही जप है, मधुर वाणी ही तप है।

[कन्नड़] —बसवेश्वर

भगवान ने मानव को वाणी दी है। उसे छीन लेने का सरकार को कोई अधिकार नहीं है। मुख से प्रकट होने वाले विचारों को पेट में ही ठूँसे रखना अनर्थकारी है।

— लोकमान्य तिलक

थोड़ा बोलो, थोड़े शब्दों में अधिक कहो।

—एपोक्रिफा (पुरोहित, ३२।८)

मनुष्य की जिह्वा छोटी होती है, परन्तु वह बड़े-बड़े दोष कर बैठती है।

—इस्माईल इब्न अबीबकर (अरबी-काव्य-दर्शन, पृ० ११०)

जिस प्रकार किसी-किसी समय चुप रहने में भलाई है, उसी प्रकार किसी-किसी समय बोलने में भी बुराई है।

—सल्लतान-उल-अबदी (अरबी-काव्य-दर्शन, पृ० ६२)

Speech is the small change of silence.

वाणी मौन की छोटी रेज़गारी है।

—जार्ज मेरेडिथ (दि आर्डियल आफ रिचर्ड फेवेरल, अध्याय ३४)

If thou thinkest twice before thou speakest once, thou wilt speak twice the better for it.

यदि तुम एक बार बोलने से पूर्व दो बार सोच लेते हो तो तुम अच्छा बोलोगे।

—विलियम पेन्न (सम फ्रूट्स आफ सालिट्यूड, १।१३१)

When you have nothing to say, say mothing.

जब तुम्हारे पास कहने को कुछ न हो, तब कुछ मत कहो।

—चार्ल्स कैलेब कोल्टन (लैकोन, खंड १, क्र० १८३)

वाणी और मौन

Speech is of time, silence is of eternity.

वाणी समयपरक होती है, मौन अनंततापरक।

—कार्लाइल (सार्टर रेसार्टस, ३।३)

वात्सल्य

पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।

गृहस्थ लोग पहली बार पुत्री के वियोग के दुःख से कितने दुःखित होते होंगे?

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ४।६)

यां यामवस्थामवगाहमानमुत्प्रेक्षते स्वं तनयं प्रवासी।
विलोक्य तां तां च गतं कुमारं जातानुकम्पो
द्रवतामुपैति॥

प्रवासी अपने पुत्र को जिस-जिस अवस्था को प्राप्त हुए की कल्पना करता है, उसी-उसी अवस्था को प्राप्त हुए किसी के बालक को देखकर दया-भाव उमड़ आने से द्रवित हो जाता है।

—दिङ्नाग (कुन्दमाला, ५।१३)

पुत्तपेमा न इध परं अत्थि किंचि।

इस ससार मे पुत्र प्रेम से बढ़कर कुछ नहीं है।

[पालि] —जातक कण्हदी पायन जातक

वाद-विवाद

निवल जानि कीजै नहीं कबहुँक वाद-विवाद।
जीते कछु सोभा नहीं, हारे निंदा वाद॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

वायदा

दे० 'वचन-पालन' भी।

न आते हमें इसमें तकरार क्या थी,
मगर वादा करते हुए आर[1] क्या थी।

—इक़बाल

वह कह गए थे कि आएगे हम चिराग़ जले,
तमाम रात चिराग़ों से अपने दाग़ जले।

'नासिख़'

Vows made in storms are forgot in calms.

तूफ़ानों में किए गए वायदे तूफ़ान शांत होते ही भुला दिए जाते है।

—अंग्रेजी लोकोक्ति

वाल्मीकि

दे० *'रामायण'*, *'रामायण और महाभारत'*, 'वाल्मीकि और व्यास' भी।

श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः।

जिन[2] का शोक श्लोक बनकर प्रकट हुआ था।

—कालिदास (रघुवंश, १४।७०)

कूजन्तं राम-रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम्।

राम-राम इस प्रकार मधुर अक्षरो का मधुर कूजन करने वाले, कविता-शाखा पर आरूढ़, वाल्मीकि-रूपी कोकिल की मैं वन्दना करता हूं।

—अज्ञात

योगीन्द्रश्छन्दसां स्रष्टा रामायणमहाकविः।
वल्मीकजन्मा जयति प्राच्यः प्राचेतसो मुनिः॥

योगिराज छन्दों के निर्माता, रामायण के महाकवि, वाल्मीकि से उत्पन्न होने वाले प्राचीन प्राचेतस मुनि वाल्मीकि की जय हो।

—अज्ञात

वाल्मीकि हमारे राष्ट्रीय आदर्शों के आदि विधाता हैं। धर्म और सत्य-रूपी महावृक्षों के जो अमर बीज वाल्मीकि ने बोए हैं, वे आज भी फल-फूल रहे हैं। इस देवपूज्य पुण्य-भूमि में रहने योग्य देवकल्प मानव के निर्माण का श्रेय वाल्मीकि को ही है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (कल्पवृक्ष, पृ० १०६)

वाल्मीकि और व्यास

दे० 'रामायण और महाभारत' भी।

दोनों आर्ष कवियों[1] ने पूर्णता के विचार से धर्म की गति का सौन्दर्य दिखाते हुए उसकी सफलता में पर्यवसान किया है। ऐसा उन्होंने उपदेशक की बुद्धि से नहीं किया है, धर्म की जय के बीच भगवान की मूर्ति के साक्षात्कार पर मुग्ध होकर किया है।

—रामचन्द्र शुक्ल (रसमीमांसा, पृ० ४८)

वासना

सम्यगालोचनासत्याद्वासना प्रविलीयते।
वासनाविलये चेतः शममायाति दीपवत्॥

भली भांति विचार करने से सत्य के अभ्यास से वासनाओं का विनाश हो जाता है। वासनाओं के नाश से चित्त उसी प्रकार विलीन हो जाता है, जैसे तेल के समाप्त हो जाने पर दीपक बुझ जाता है।

—मुक्तिकोपनिषद् (२।१७)

भावसंवित्प्रकटितामनुरूपां च मारुते।
चित्तस्योत्पत्त्युपरमां वासनां मुनयो विदुः॥

हे हनुमान! भाव-सवित् जो सत्ता-बुद्धि से प्रकट होती है और उसी के अनुरूप होती है तथा जिसमें चित्त का उदय और लय भी होता है, मुनि लोग उसी वृत्ति को 'वासना' कहते हैं।

—मुक्तिकोपनिषद् (२।२३।२४)

---

१. लज्जा। २. वाल्मीकि ऋषि।

१. वाल्मीकि और व्यास।

वासनासंपरित्यागाच्चितं गच्छत्यचित्तताम् ।

वासना को भली-भांति त्याग देने पर, चित्त अचित्तता को प्राप्त होता है ।

—मुक्तिकोपनिषद् (२।२८)

वासना एव संसार इति सर्वा विमुंचताः ।
तत्यागो वासनात्यागात् स्थितिरद्य यथा तथा ॥

वासनाएं ही संसार है अतः उन सबको त्याग दो। वासना त्याग से संसार-त्याग होता है और अब तुम कहीं भी रह सकते हो ।

—अष्टावक्रगीता (६।८)

एकः प्रयात्युपरमं द्रविणं तदीयं,
हृत्वाऽहरः प्रसभमुद्वहति प्रमोदम् ।
नो वेत्ति तत् स्वनिधने परकोशगामि,
धिग् वासनामसममोहकृतांधकाराम् ॥

एक व्यक्ति मर जाता है। उसका धन लेकर दूसरा बहुत प्रमुदित होता है। वह नहीं जानता कि उसकी मृत्यु पर वह धन दूसरे के कोश में जाने वाला है। इस विषम मोह-अंधकार की रचना करने वाली वासना को धिक्कार है ।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ६।१७४)

जतन विन मृगनि खेत उजारे ।
टारे टरत नहीं निस वासरि, विडरत नहीं विडारे ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० २१६)

वासना का वार निर्मम आशाहीन, आधारहीन प्राणियों पर ही होता है। चोर की अँधेरे में ही चलती है, उजाले में नहीं।

—प्रेमचन्द ('आधार' कहानी)

जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न वासनाओं का प्रावल्य रहता है। वचपन मिठाइयों का समय है, बुढ़ापा लोभ का, यौवन प्रेम और लालसाओं का समय है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद १५)

विकल वासना के प्रतिनिधि वे
सव मुरझाये चले गये;
आह ! जले अपनी ज्वाला से,
फिर वे जल में गले, गये ।

— जयशंकर प्रसाद (कामायनी, चिन्ता सर्ग)

देहा भीतर श्वास है, श्वासा भीतर जीव ।
जीवे भीतर वासना, किस विध पाइये पीव ॥

—वावा लाल

वासना मोर यारेइ परश करे से
आलेटि तार निविये फैले निमेषे ।

मेरी वासना जिसका भी स्पर्श करती है, उसका प्रकाश क्षण भर में ही बुझा देती है ।

[बंगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गीतांजलि, ६)

वास्तविकता

वास्तविकताएँ नग्न रूप में प्रकट होकर कुत्सित बन जाती हैं।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० २८१)

वास्तुकला

मैं वास्तुकला को पाषाणीभूत संगीत कहता हूँ।

—गेटे

विकास

वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ।

वच्चा भी वृद्धि को प्राप्त होकर वृषभ से टक्कर लेता है ।

—ऋग्वेद (१०।२८।६)

न शालेः स्तम्बकरिता वप्तुर्गुणमपेक्षते ।

धान की वालियां वड़ी होने के लिए वोने वाले के गुणों की अपेक्षा नहीं करतीं ।

—विशाखदत्त (मुद्राराक्षस, १।३)

सुख-चैन की घड़ियां हमें जीवन में ऊँचा नहीं उठा सकतीं।

—वावा पृथ्वीसिंह आजाद
(क्रांति पथ का पथिक, भूमिका)

गुरु गुड़ रहे चेला चीनी हो गए।

—हिंदी लोकोक्ति

वरि मेक्यानिक् अल्ल
उत्पादकनागु
वरि पुराकिनल्लु
निज साधकनागु !

मैकेनिक पात्र न बनो, स्रष्टा बनो। पोथी-पण्डित मात्र न रहो, सत्य-साधक बनो।

[कन्नड़] —विनायक कृष्ण गोकाक (वैद्य विद्यालय)

Good qualities are the substantial riches of the mind; but it is good-breeding that sets them off to advantage.

उत्तम गुण मस्तिष्क की महत्त्वपूर्ण सम्पत्ति है किंतु उत्तम विकास ही उनको लाभप्रद बनाता है।

—जॉन लॉक

विक्रमादित्य

हम ऐसा अनुभव करते हैं कि हमारे अतीत के इतिहास में चक्रवर्ती की उपाधि वही प्रतापी व्यक्ति ग्रहण करता था जो अन्य हिन्दू नरेशों को पराजित करने में सफलता पा लेता था। किन्तु विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने का अधिकारी उसी को माना जाता था जो विदेशियों के प्रहारों से भी स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा करने में समर्थ सिद्ध होता था। जहां विक्रमादित्य प्रथम ने सीथियनों को निष्कासित किया था, वहाँ द्वितीय विक्रमादित्य ने हमारी मातृभूमि को पश्चिमी शकों से मुक्त कराया और तृतीय विक्रमादित्य ने हूणों को पलायन करने पर विवश कर एक महान् युद्ध में उनके राजा का शिरच्छेदन कर दिया था।

—विनायक दामोदर सावरकर (हिन्दू पद पादशाही पृ० २६४-२६५)

इत्रश्शफ़ाई सनतुल बिकरमतुन,
फहलमिन करीमुन यर्तफीहा वयोवस्सरू।
बिहिल्लाहायसमीमिन एला मोतकब्बेनरन,
बिहिल्लाहा यू हो कैद मिन होवा यफ़खरू।
फ़ज्जल-आसारि नहनो ओसारिम बेजेहलीन
युरीदुन बिआबिन कज़न बिनयख़तरू।
यह सब दुन्या कनातेफ़ नाते फ़ी बिजेहलीन,
अतदरी बिलला मसीरतुन फ़केफ़ तसबहू।
कउन्नी एज़ा माज़करलहदा वलहदा, अशमीमान,
बुरुकन, क़द् तोलुहो वतस्तरू।
बिहिल्लाहा यक़ जी बैनना वले कुल्लें अमरेना,
फ़हेया जाऊना बिल अमरे बिकरमतुन॥

वे लोग धन्य है जो राजा विक्रम के राज्य काल में उत्पन्न हुए, जो बड़ा दानी, धर्मात्मा और प्रजा-पालक था। परन्तु ऐसे समय हमारा अरब ईश्वर को भूल कर भोग-विलास में लिप्त था। छल-कपट को ही लोगों ने सबसे बड़ा गुण मान रखा था। हमारे तमाम देश में अविद्या ने अंधकार फैला रखा था। जैसे बकरी का बच्चा भेड़िये के पंजे में फँसकर छट-पटाता है, छूट नहीं सकता, ऐसे ही हमारी जाति मूर्खता के पंजे में फँसी हुई थी। संसार के व्यवहार को अविद्या के कारण हम भूल चुके थे, सारे देश में अमावस्या की रात की तरह अन्धकार फैला हुआ था, परन्तु अब जो विद्या का प्रातःकालीन सुखदायी प्रकाश दिखाई देता है, वह कैसे हुआ, यह उसी धर्मात्मा-राजा विक्रम की कृपा है। जिसने हम विदेशियों को भी अपनी दयादृष्टि से वंचित नही किया, और पवित्र धर्म का सन्देश देकर अपनी जाति के विद्वानों को यहाँ भेजा, जो हमारे देश में सूर्य की तरह चमकते थे। जिन पुरुषों की कृपा से हमने भुलाए हुए ईश्वर और उसके पवित्र ज्ञान को जाना, और सत्पथ-गामी हुए, वे लोग राजा विक्रम की आज्ञा से हमारे देश में विद्या और धर्म के प्रचार के लिए आए थे।

[अरबी] —जर्हम बिनतोई

विघ्न

प्रायेण सत्यपि हितार्थकरे विधौ हि,
श्रेयांसि लब्धुमसुखानि विनान्तरायैः॥

प्रायः हितकर विधि विधानों के होने पर भी बाधाओं के विना श्रेय प्राप्त करना असम्भव होता है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ५।४९)

विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः ।

अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्ति विघ्नों से युक्त होती है ।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ३।२१ के पश्चात्)

न खल्वविघ्नमभिलषितधन्यैः प्राप्यते ।

विना विघ्न मनोरथ का फल अभागों को नहीं मिलता है।

—हर्ष (प्रियदर्शिका, अंक २)

विचार

किन्नु मे स्यादिदं कृत्वा किन्नु मे स्यादकुर्वतः ।
इति कर्माणि संचिन्त्य कुर्याद् वा पुरुषो न वा ॥

इसे करने से मेरा क्या लाभ होगा और न करने से क्या हानि होगी—इस प्रकार कर्मों के विषय में भली-भाँति विचार करके फिर मनुष्य कोई कर्म करे अथवा न करे ।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३४।१६३)

[इसी से मिलता-जुलता निम्नलिखित श्लोक भी प्रसिद्ध है—

किन्नु मे स्यादिदं कृत्वा किन्न मे स्यादकुर्वतः ।
इति संचित्य मनसा प्राज्ञः कुर्वीत वा न वा ॥

यह करने से मेरा क्या होगा, यह न करने से मेरा क्या होगा—इस प्रकार विचार करके बुद्धिमान मनुष्य किसी काम को करे अथवा न करे।

—वल्लाल कवि (भोजप्रबंध, २३)]

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकरिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः ॥

सहसा कार्य नहीं करना चाहिए, अविवेक परम आपत्तियों का स्थान होता है। विचारपूर्वक कार्य करने वाले व्यक्ति को गुण की लोभी आपत्तियों स्वयं ही वरण करती हैं ।

—भारवि (किरातार्जुनीय, २।३०)

किं पाण्डित्यं परिच्छेदः ।

पाण्डित्य क्या है ? विचार ।

—नारायण पण्डित (हितोपदेश, १। १४७)

फल विचारि कारज करो, करहु न व्यर्थ अमेल ।
तिल ज्यो वारू पेरिए, नाही निकसै तेल ॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

विचार-शून्य जीवन पशु-जीवन जैसा है ।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ६७२)

जिस तरह अध्ययन करना अपने आप में कला है उसी प्रकार चिन्तन करना भी एक कला है।

—महात्मा गांधी (पत्र छगनलाल जोशी को, १० जून १९३२)

विचार ही कार्य का मूल है । विचार गया तो कार्य गया ही समझो ।

—महात्मा गांधी (बापू के पत्र मणिबहन पटेल के नाम, ४०)

हमारे मन के विचार कर्म के पथप्रदर्शक होते हैं ।

—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद ४७)

मैं एक छाया हूं, एक स्वप्न, एक निराकार आक्रोश, एक वियोग, एक रहस्य ··भावना से भावना तक भटकता हुआ एक विचार—हर जगह आग देता हुआ, और स्वयं ज्वाला में झुलसता हुआ, निरन्तर उठता हुआ, न बुझता हुआ, न मरता हुआ···।

—अज्ञेय (शेखर एक जीवनी, भाग २, पृ० २५२)

विचार में भूगोल के देश-विदेश का स्थान नहीं है, लेकिन स्तर-भेद अवश्य है ।

—जैनेन्द्र (समय, समस्या और सिद्धान्त, पृ० ७७)

उच्च विचारों में साधनहीनता पर विजय पाने की सामर्थ्य स्वतः सिद्ध होती है ।

—भोलानाथ शर्मा ('गांधी हृदय' निबन्ध)

मेरी हवा में रहेगी ख़याल की बिजली
यह मुश्ते ख़ाक है फ़ानी रहे न रहे ।

—भगतसिंह

यह रात वह है कि सूझे जहां न हाथ को हाथ
ख़यालो दूर न जाओ, बहुत अँधेरा है ।

—'फ़िराक़' गोरखपुरी (बज़्मे जिन्दगी रंगे शायरी, पृ० ९०)

विचार सदैव महत्त्वाकांक्षा का हो। सिद्ध न होने पर भी उसे न त्यागो।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ५९६)

धन, साधन, समय, कर्म तथा स्थान—इन पाँचों का स्पष्टत: विचार करके किसी कार्य में प्रवृत्त होना चाहिए।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६७५)

जहां विचार नहीं, वहां कार्य नही। अत: मस्तिष्क को उच्च विचारों से, उच्च आदर्शों से भर दो। उन्हें दिन-रात अपने सामने रखो और तब उसमें से महान कार्य निष्पन्न होगा।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत जाग्रत, पृ० १२७)

विचार ही हमारी मुख्य प्रेरणा-शक्ति होते है।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत जाग्रत, पृ० १४२)

पूरे सोच-विचार के पश्चात शास्त्र-शुद्ध ढग से बने विचारों को बदलने की शक्ति जेल के सींकचों में कदापि नहीं होती।

—लोकमान्य तिलक

काम करने से पूर्व सोचना बुद्धिमत्ता है। काम करते समय सोचना सतर्कता है। काम कर चुकने पर सोचना मूर्खता है।

—स्वामी शिवानन्द सरस्वती (दिव्योपदेश, ६।४५)

जीवन विचार का स्वामी है, विचार जीवन का स्वामी नहीं है।

—राधाकृष्णन् (दि प्रिंसिपल उपनिषद्स, भूमिका)

विचार तलवार की अपेक्षा अधिक तेज़ है। विचार नवजीवन प्रदान करता है।

—साने गुरुजी (भारतीय संस्कृति, पृ० ४१)

हमारा जीवन हमारे विचारों का प्रतिफल है।

—मारकस आरेलियस (मेडिटेशन)

अच्छाई कभी नही मरती। जीवन भी मृत्यु से समाप्त नहीं होता, केवल शरीर बदलता है। कोई भी अच्छा कार्य या आदर्श कभी नहीं मिटता, वह मानव जाति में सदा जीवित रहता है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी विचारों की अमिट छाप आने वाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन करती है। एक ही अच्छा कार्य सारे गांव, नगर या देश को ऊँचा उठा सकता है। मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ देन उसके श्रेष्ठ विचार हैं, जो हजारों वर्षों तक आने वाली पीढ़ियों को प्रभावित करते रहते हैं।

—सैमुअल स्माइल्स (कर्त्तव्य, पृ० ११)

शुद्ध विचारों से शुद्ध और सत्य कार्य उत्पन्न होते हैं, सत्य कार्यों से शुद्ध जीवन प्राप्त होता है और शुद्ध जीवन से सर्वानन्द प्राप्त होता है।

—जेम्स एलेन (आनन्द की पगडंडियां, पृ० ६)

Rama may not seem to finish the task in hand, but Rama knows, it will somtime be done all the better when he is gone. The ideas that saturate Rama's mind and have guided in life, will gradually in the fullness of time filter down to society.

हाथ में लिया हुआ काम राम से (मुझसे) पूरा होता न जान पड़ता हो, परन्तु राम जानता है (मैं जानता हूँ) कि मेरे चले जाने पर वह किसी समय अवश्य होगा और अधिक अच्छी रीति से होगा। जो विचार राम के (मेरे) मन में भरे हुए हैं और राम के (मेरे) जीवन के पथ-प्रदर्शक रहे है, वे धीरे-धीरे अवश्य समय पाकर समाज पर छा जायेंगे।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइज़ेशन, खण्ड १, पृ० ३)

Great is the life of ideas. Men die, that an idea may live...Thought may be enriched by the death of thinkers.

विचारों का विशाल जीवन होता है। विचारों को जीवित रखने के लिए मनुष्य प्राण दे देते हैं। चिन्तकों की मृत्यु से विचार की समृद्धि हो सकती है।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज़ वर्क्स, भाग ३, पृ० ४७४)

Thought feeds itself with its own words and grows.

विचार स्वयं को अपने शब्दों से पोषण देता है और विकास करता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रेबर्ड्स, १६६)

You are surrounded by an ocean of thought. You are floating in the ocean of thought. You are absorbing certain thoughts and repelling some in the thought-world.

तुम विचार के महासागर से घिरे हुए हो। तुम विचार के महासागर में बह रहे हो। तुम विचार-जगत में कुछ विचारों को आत्मसात कर रहे हो और कुछ को अपवारित कर रहे हो।

—शिवानन्द (थॉट पावर, पृ० ४)

Do not store in your brain useless information. Learn to unmind the mind. Unlearn whatever has been of no use to you. Then only can you fill your mind with divine thoughts.

अपने मस्तिष्क में व्यर्थ की जानकारी एकत्रित मत करो। अपने मन करना सीखो। जो कुछ तुम्हारे लिए अनुपयोगी रहा है, उसे भूल जाओ। तभी तुम अपने मन को दिव्य विचारों से भर सकते हो।

—शिवानन्द (थॉट पावर, पृ० ६)

Constructive thought transforms, renews and builds.

रचनात्मक विचार रूपान्तरित करता है, नवीनीकरण करता है और निर्माण करता है।

—स्वामी शिवानन्द (थॉट पावर, पृ० १०)

There is nothing either good or bad, but thinking makes it so.

अच्छा या बुरा कुछ नहीं है, केवल विचार ही किसी वस्तु को अच्छा या बुरा बनाता है।

—शेक्सपियर (हेमलेट, २।२)

My words fly up, my thoughts remain below:
Words without thoughts, never to heaven go.

मेरे शब्द उड़ते हैं किन्तु विचार नीचे रहते हैं। विचार, रहित शब्द स्वर्ग कभी नहीं जाते।

—शेक्सपियर (हैमलेट, ३।३)

Thought would destroy their paradise.
No more ; Where ignorance is bliss
'Tis folly to be wise.

विचार से उनका स्वर्ग नष्ट हो जाएगा। अधिक क्या जहां अज्ञान ही परम सुख है वहां बुद्धिमान होना मूर्खता है।

—टामस ग्रे (ओड आन ए डिस्टेंट प्रास्पेक्ट आफ़ एटन कालेज, १।६६)

Thought is often bolder than speech.

विचार प्रायः वाणी की अपेक्षा अधिक निर्भीक होता है।

—डिजरायली (इक्जियन इन हेविन, ०।३)

Thought is the seed of action.

विचार कर्म का बीज है।

—एमर्सन (सोसायटी ऐंड सालीट्यूड, सिविलाइज़ेशन)

The actions of men are the best interpreters of their thoughts.

मनुष्यों के कर्म उनके विचारों के सर्वोत्तम व्याख्याता हैं।

—जान लाक

Ideas in the mind are the transcript of the world ; words are the transcript of ideas ; and writing and printing are the transcript of words.

मन के विचार तो जगत की प्रतिलिपि हैं। शब्द विचारों की प्रतिलिपि हैं और लेखन व मुद्रण, शब्दों की प्रतिलिपि हैं।

—एडीसन

विचारक

The most fluent talkers or most plausible reasoners are not always the justest thinkers.

सर्वाधिक धाराप्रवाही वक्ता अथवा सर्वाधिक युक्तियुक्त तार्किक सदैव सर्वाधिक न्यायपूर्ण विचारक नहीं होते।

—हैज़लिट (स्केचिज़ एंड एसेज़)

विजय

दे० 'जय—पराजय' भी।

यतः सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीराजवं यतः।
ततो भवति गोविन्दो यतः कृष्णस्ततो जयः॥

जिस ओर सत्य, धर्म, लज्जा और सरलता है, उसी ओर भगवान श्रीकृष्ण रहते हैं, और जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व।६८।९)

न तथा बलवीर्याभ्यां जयन्ति विजिगीषवः।
यथा सत्यानृशंस्याभ्यां धर्मेणवोद्यमेन च ॥

विजय की इच्छा रखने वाले शूरवीर अपने बल और पराक्रम से वैसी विजय नहीं पाते, जैसी कि सत्य, सज्जनता धर्म तथा उत्साह से प्राप्त कर लेते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व।२१।१०)

त्यक्त्वा धर्मं च लोभं च मोहं चोद्यममास्थिता।
युद्धयध्वमनहंकारा यतो धर्मस्ततो जयः ॥

अधर्म, लोभ और मोह त्याग कर उद्यम का सहारा ले। अहंकार शून्य होकर युद्ध करो। जहां धर्म है उसी पक्ष की विजय होती है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व।२१।११)

यतो धर्मस्ततो कृष्णः यतः कृष्णस्ततो जयः।

जहां धर्म है, वहां कृष्ण हैं। जहां कृष्ण हैं, वहां जय है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व।२३।२८)

यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः।

जहां कृष्ण है, वहां धर्म है और जहां धर्म है वहां जय है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व।६६।३५)

यावत्प्राणिति तावदुपदेष्टव्यभूमिर्विजिगीषुः प्रज्ञावताम्।

विजयाभिलापी जब तक जीवित रहता है तब तक बुद्धिमानों के उपदेश का पात्र होता है।

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, ५।६ के पूर्व)

प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः।

युद्ध में विजयश्री उच्चतर शक्ति वालों की ही होती है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ३।१७)

विनिर्गतानां स्वभुवः सरितां सलिलाकरः।
न निर्व्याजजिगीषूणां दृश्यते ह्यवधिः क्वचित् ॥

अपनी भूमि से निकली हुई नदियों की सीमा सागर है परन्तु निर्व्याजि विजय-अभिलापियों का अन्त कहीं नहीं देखा जाता।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।३४३)

असमाप्तजिगीषस्य स्त्रीचिंता का मनस्विनः।
अनाक्रम्य जगत्कृत्स्नं नो संध्यां भजते रविः ॥

विजय की अभिलाषा को पूर्ण किए बिना मनस्वी के लिए स्त्री-चिंता कैसी? सूर्य सम्पूर्ण जगत् को आक्रांत किए बिना संध्या का सेवन नहीं करता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।४४१)

अक्कोधेन जिने कोधं असाधु साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं ॥

अक्रोध से क्रोध को जीते, दुष्ट को भलाई से जीते, कृपण को दान से जीते, झूठ बोलने वाले को सत्य से जीते।

[पालि] —धम्मपद (१७।३)

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति
सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति
सब्बं रतिं धम्मरती जिनाति
तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति।

धर्म का दान हमारे सारे दानों को जीत लेता है। धर्म रस सारे रसों को जीत लेता है। धर्म में प्रेम सब प्रेमों को जीत लेता है। तृष्णा का विनाश सारे दुःखों को जीत लेता है।

[पालि] —धम्मपद (२४।२१)

अदण्डेन असत्थेन, विजेय्य पथविं इमं।

बिना किसी दण्ड और शस्त्र के पृथ्वी को जीतना चाहिए।

[पालि] —अंगुत्तरनिकाय (७।६।९)

यस्स चेते न विज्जन्ति गुणा परमभद्दका।
सच्चं धम्मो धिति चागो दिट्ठं सो नातिवत्तति ॥

जिसमें यह चार परम श्रेष्ठ गुण नहीं हैं—सत्य, धर्म, धृति और त्याग, वह शत्रु को नहीं जीत सकता।

[पालि] —जातक (कुम्भील जातक)

न तं जितं साधुजितं यं जितं अवजीयति ।
तं खो जितं साधुजितं यं जितं नावजीयति ॥

वह विजय अच्छी विजय नहीं, जिस विजय की फिर पराजय हो। वही विजय अच्छी विजय है, जिस विजय की फिर विजय न हो।

[पालि] —जातक (कुद्दाल जातक)

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिए।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो भओ ॥

भयंकर युद्ध में सहस्रों सहस्र दुर्जय शत्रुओं को जीतने की अपेक्षा अपने आपको जीत लेना ही सबसे बड़ी विजय है।

—उत्तराध्ययन (९।३४)

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
माया मज्जव भावेण, लोभं संतोसओ जिणे ॥

शान्ति से क्रोध को जीते। मृदुता से अभिमान को जीते। सरलता से माया को जीते। संतोष से लोभ को जीते।

[प्राकृत] —दशवैकालिक (८।३९)

सुनहु सखा कह कृपा निधाना।
जेहि जय होइ सो स्यंदन आना ॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल विवेक दम पर हित घोरे।
क्षमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजन सारथी-सुजाना।
विरति चर्म सन्तोष कृपाना ॥
दान परसु बुद्धि सक्ति प्रचंडा।
बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस)

विजय के सम्मुख पहुँच कर कायर भी वीर हो जाते हैं। घर के समीप पहुँच कर थके हुए पथिक के पैरों में भी पर लग जाते हैं।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० १०८)

विजय के लिए केवल एक सत्याग्रही ही काफ़ी है।

—महात्मा गांधी (पत्र नटेसन को, २५ जून १९१९)

शान्तिमय लड़ाई लड़ने वाला जीत से कभी फूल नहीं उठता और न मर्यादा ही छोड़ता है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४०, पृ० ७)

जीतता वह है जिसमें शौर्य होता है, धैर्य होता है, साहस होता है, सत्व होता है, धर्म होता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० ११)

बिना विनय के विजय टिकती नहीं।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (वीर शंख, ६७)

विजय उसी की जिसमें बल है,
संधि सदा करता दुर्बल है।

—सोहनलाल द्विवेदी (चेतना, पृ० २२)

सब देवता के उछल-कूद गनेस के घुड़कुनिया।

सभी देवताओं की उछल-कूद एक ओर और गणेश जी का घिसटते हुए चलना एक ओर।

—हिंदी लोकोक्ति (बिहार प्रदेश)

वाक्पटु, निरालस्य व निर्भीक व्यक्ति से विरोध करके उससे कोई नहीं जीत सकता।

—तिरुवल्लुर (तिरुक्कुरल, ६४७)

वही विजयी होते है जिन्हें विजयी होने का विश्वास है।

—वर्जिल

विजय सदा ही भव्य होती है चाहे वह संयोग से प्राप्त हो या दक्षता से।

—एरिओस्टो (सर्ग, १५)

वह विजय महान होती है जो बिना रक्तपात के मिलती है।

—स्पेन की लोकोक्ति

By force, who overcomes hath overcome but half his foe.

जो बल से विजय प्राप्त करता है, वह शत्रु पर आधी विजय ही प्राप्त करता है।

—मिल्टन (पैरेडाइज लास्ट, सर्ग १)

I am defeated all the time; yet to Victory I am born.

मैं हर बार हारा हूं फिर भी मैं विजय के लिए जन्मा हूं।

— एमर्सन

You ask ; What is our aim ? I can answer in one word : 'Victory !' Victory at all costs. Victory in spite of all terror, Victory however long and hard the road may be : for without victory there is no survival.

आप पूछते है, 'हमारा उद्देश्य क्या है ?' मैं एक शब्द में उत्तर दे सकता हूं : 'विजय' ! हर हालत में विजय, सारे आतंक (संत्रास) के होते हुए भी विजय, मार्ग कितना ही लम्बा और कठिन क्यों न हो फिर भी विजय क्योंकि विजय के बिना अस्तित्व बनाए रखना सम्भव नहीं है।

—विंस्टन चर्चिल (प्रधान मन्त्री के रूप में लोकसभा में प्रथम भाषण, १३ मई १९४०)

विजेता

अपने सम्मान, सत्य और मनुष्यता के लिए प्राण देने वाला वास्तविक विजेता होता है।

—हरिकृष्ण प्रेमी (अमर आन, पृ० ९३)

Even victors are by victories undone.

विजेता भी विजयों के द्वारा विनष्ट हो जाते हैं।

—ड्राइडेन

विज्ञान

प्रकृत शक्ति तुमने यन्त्रों से सबकी छीनी !
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी !

— जयशंकर प्रसाद (कामायनी, संघर्ष सर्ग)

अनात्म के वातावरण में पला हुआ यह क्षणिक विज्ञान, उस शाश्वत सत्ता में सन्देह करता है।

—जयशंकर प्रसाद (इरावती, पृ० ५८)

साध्य नहीं विज्ञान, मात्र साधन।

—सुमित्रानन्दन पंत (लोकायतन)

ओ विज्ञान,
देह भले ही
वायुयानों में उड़े
मन अभी
ठेले, बैलगाड़ी पर ही
धक्के खाता है !

—सुमित्रानन्दन पंत (कला और बूढ़ा चांद, पृ० ७६)

विज्ञान और बुद्धिवाद के यान पर चढ़कर विश्वविजय को निकला हुआ मनुष्य, अग-जग को छानकर, अन्त मे अपने घर वापस आ रहा है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (वेणु वन, पृ० ११०)

सावधान, मनुष्य ! यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक, तजकर मोह, स्मृति के पार।
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी नादान;
फूल कांटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (कुरुक्षेत्र, षष्ठ सर्ग)

यों व्यक्ति की तरह राष्ट्र भी धीरे-धीरे जिये, तो श्रेयस्कर है, पर सभ्यता और विज्ञान दोनों ही उसे आज तेज़ी दे रहे हैं, जो सुविधा भले ही दें, सुख कहां दे पाते हैं।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (ज़िंदगी मुसकराई, पृ० ३०)

मूल्यों की स्थापना करने की शक्ति विज्ञान में नही होती। विज्ञान जीवन का बाहरी नक़्शा बदल सकता है, संस्कृति का आशय बदलने की शक्ति विज्ञान में नही है।

— दादा धर्माधिकारी (सर्वोदय दर्शन, पृ० २७५)

विज्ञान एकत्व की खोज के सिवा और कुछ नही है। ज्यों ही कोई विज्ञान पूर्ण एकता तक पहुंच जायगा, त्यों ही उसकी प्रगति रुक जायगी, क्योकि तब वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड १, पृ० १६)

In fact, science has raised as many new problems, as it has solved.

वास्तव में विज्ञान ने जितनी समस्याएं हल की हैं, उतनी ही नयी समस्याएं खड़ी भी कर दी हैं।

—इन्दिरा गांधी (८ सितम्बर १९८१ का बम्बई में भाषण 'दि रोल आफ़ दि साइंटिस्ट')

कल्पना के बिना कोई विज्ञान नहीं है और तथ्यों के बिना कोई कला नहीं है।

—व्लादीमीर नवोकोव

विज्ञान व्यवस्थित ज्ञान है और बुद्धिमत्ता व्यवस्थित जीवन।

—कांट

Science is organized knowledge.

विज्ञान व्यवस्थित ज्ञान है।

—हर्बर्ट स्पेंसर

For science, God is simply the stream of tendency by which all things seek to fulfil the law of their being.

विज्ञान के लिए तो ईश्वर केवल प्रवृत्ति की वह धारा है जिसके द्वारा सभी वस्तुएं अपने अस्तित्व के नियम की परिपूर्ति का अन्वेषण करती हैं।

—मैथ्यू आर्नोल्ड ('लिटरेचर ऐंड डाग्मा' के वर्ष १८७३ संस्करण की भूमिका)

Science without religion is lame, religion without science is blind.

धर्म रहित विज्ञान लगड़ा है और विज्ञानरहित धर्म अंधा।

—आइन्स्टाइन (दि वर्ल्ड ऐज़ आइ सा)

The grand aim of all science is to cover the greatest number of empirical facts by logical deduction from the smallest number of hypotheses or axioms.

विज्ञान का महान उद्देश्य अनुभव-सिद्ध सत्यों की महत्तम संख्या को परिकल्पनाओं और स्वयंसिद्धियों की अल्पतम संख्या से तर्कपूर्वक निगमित करना है।

—आइंस्टाइन ('लाइफ़' पत्रिका, ९ जनवरी १९५०)

Science is always wrong. It never solves a problem without creating ten more.

विज्ञान सदैव ग़लत है। यह किसी भी समस्या को बिना दस नयी समस्याएं खड़ी किए हल नहीं करता है।

—जार्ज बर्नार्ड शा

Science is the great instrument of social change—the most vital of all revolutions which have marked the development of modern civilization.

विज्ञान सामाजिक परिवर्तन का एक महान उपकरण है—आधुनिक सभ्यता के विकास में सहयोगी सभी क्रांतियों में सबसे अधिक शक्तिशाली।

—आर्थर बाल्फ़ोर (भाषण, लंदन १९०८)

The great tragedy of Science—the slaying of a beautiful hypothesis by an ugly fact.

विज्ञान की बड़ी त्रासदी है सुन्दर परिकल्पना की एक कुरूप तथ्य से हत्या।

—हक्सले (कलेक्टिड एसेज़, ८, बायोजेनेसिस ऐंड एबिओजेनेसिस)

विज्ञापन

हम भूलवश मानते हैं कि विज्ञापनों के आधार पर हमें कम पैसों में समाचार मिल सकते हैं। लेकिन जिस वस्तु के सम्बन्ध में विज्ञापन दिये जाते हैं, उस वस्तु को खरीदने वाले भी हम लोग ही होते हैं और इस तरह अन्ततः हमें विज्ञापनों का ख़र्च भी देना पड़ता है। दवा की कीमत दवा बेचने में नहीं वरन् बोतल, कार्क, विज्ञापन और अन्त में औषध बेचने वाले के लाभ में रहती है।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, १४।९।१९१९)

वित्तमन्त्री

A minister of finance is a legally authorized pickpocket.

वित्त मन्त्री वैध रूप से अधिकृत जेबकतरा होता है।

—पाल रामेडियर (बवोट, ७ अक्तूबर १९५६)

विदेश

स्वदेशोऽयं विदेशोऽयमिति बुद्धेः प्रवर्तकः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां स्थित्यभ्यासः शरीरिणाम् ॥

प्राणियों के रहने के अभ्यास के कारण, अन्य और व्यतिरेक से 'यह स्वदेश है, यह विदेश' यह बुद्धि हो जाती है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।६०६)

अदेशस्थो हि रिपुणा स्वल्पकेनापि हन्यते।

दूसरे देश में स्थित व्यक्ति को छोटा शत्रु भी मार देता है।

—कामन्दकीय नीतिसार

विदेशे बंधुलाभो हि मरावमृतनिर्झरः।

विदेश में बन्धु का मिलना मरुस्थल में अमृत के निर्झर की प्राप्ति के समान होता है।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ५।२)

सका रट्ठा पब्बाजितो अञ्ञं जनपदं गतो,
महन्तं कोट्ठं कयिराथ दुरुत्तानं निधेतवे ॥
यत्थ पोसं न जानन्ति जातिया विनयेन वा,
न तत्थ मानं कयिराथ वसमञ्ञातके बने ॥
विदेसवासं वसतो जातवेदसमेनपि,
खमितब्बं सपञ्ञेन अपि दासस्स तज्जितं ॥

अपने देश से निकाल दिये जाने पर तथा दूसरे जनपद में जाने पर दुरुक्त वाणी को रखने के लिए आदमी अपने पास बड़ा कोठा रखे। अपरचित जनों में रहते समय, जहां कोई अपनी जाति तथा शील से परिचित न हो, मान न करे अग्नि के समान होने पर भी बुद्धिमान आदमी को चाहिए कि वह विदेश में रहते दास की घुड़की तक को भी क्षमा कर दे।

[पालि] —जातक (दद्दर जातक)

यस्यास्ति सर्वत्र गतिः स कस्मात्
स्वदेशरागेण हि याति नाशम्।
तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणा
क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति ॥

जिसकी सर्वत्र गति है, वह अपने देश की आसक्ति से ही क्यों नष्ट हो? यह मेरे पिता का कुआँ है, ऐसा कहकर खारी पानी कायर पीते हैं।

—बल्लाल कवि (भोजप्रबन्ध, १३५)

जैसे दूध में शक्कर मिलती है ऐसे विदेशी पुरुष जब स्वदेशी के साथ मिल जाता है, तब ही स्वागत सत्कार के योग्य बनता है।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ४३०)

यदि तू यात्रार्थ विदेश में जायेगा, तो कुटुम्बियों के बदले तुझे कुटुम्बी मिल जायेंगे।

—इब्न-उल-वर्दी (अरबी-काव्य दर्शन, पृ० १०३)

लोटा बेटा बाहर चमकिहै।

—हिंदी लोकोक्ति

विदेश नीति

भावनाओं के बुदबुदों और नेक शिष्टाचारों से विदेश-नीति का निर्माण नहीं होता।

—सुभाषचन्द्र वसु (एक पत्र)

विदेश नीति यथार्थवादी विषय है और उसका निर्धारण मुख्यता राष्ट्र के हित की दृष्टि से ही होना चाहिए।

—सुभाषचन्द्र बसु (पं० जवाहरलाल नेहरू को लिखा एक पत्र)

We have no eternal allies, and we have no prepetual enemies. Our interests are eternal, and those interests it is our duty to follow.

हमारे न तो कोई शाश्वत मित्र हैं और न कोई स्थायी शत्रु। शाश्वत तो हमारे हित है और उन हितों का अनुसरण करना हमारा कर्त्तव्य है।

—पामर्स्टन (हेनरी बुल्वर को पत्र, १ सितम्बर १८३९)

विदेशी भारतविद्

जिन विदेशी पण्डितों ने हमारे देश के जड़-चेतन के बारे में परिश्रमपूर्वक और ईमानदारी के साथ बहुत कुछ लिख रखा है, उनके हम अवश्य कृतज्ञ होंगे, पर उतने से ही हमें नहीं सन्तुष्ट होना है। हमें अपने देश को अपनी आँखों से देखना है।

—हजारी प्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० १६२)

विदेशी भाषा

सभी साहित्य-सम्बन्धी रत्न अंग्रेज़ी भाषा में ही नहीं है, अन्य भाषाओं में इन रत्नों की बहुलता है। ये सभी हमारे देश के आम लोगों के लिये उपलब्ध होने चाहिए। इसका मार्ग एक ही है और वह यह है कि इसमें से कुछ लोग, जिनमें उचित सामर्थ्य हो, उन-उन भाषाओं को सीखकर उनके उन रत्नों को हमारी भाषा के द्वारा उपलब्ध कराएं।

—महात्मा गांधी (बम्बई में भाषण, २० फ़रवरी १९१८)

विद्या

आचार्यद्ध्येव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापति।

आचार्य से जानी गयी विद्या ही अति साधुता को प्राप्त होती है।

—छान्दोग्योपनिषद् (४।९।३)

श्रद्दधानः शुभां विद्यां हीनादपि समाप्नुयात्।
सुवर्णमपि चामेध्यादाददीताविचारयन्॥

नीच वर्ण के पुरुष के पास भी उत्तम विद्या हो तो उसे श्रद्धापूर्वक ग्रहण करना चाहिए और सोना अपवित्र स्थान में भी पड़ा तो उसे बिना विचार के उठा लेना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१६५।३१)

नास्ति विद्यासमं चक्षुः।

विद्या के समान नेत्र नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१७५।३५)

विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं महत्।
सैव पूज्यार्चनीया च सैव तस्योपकारिका॥

जो जिस विद्या से युक्त है, वही उसके लिए परम देवता है। वह पूज्य और अर्चनीय है और वही उसके लिए उपकारिका है।

—विष्णुपुराण (५।१०।३०)

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरो-
स्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।
यस्यागमः केवलजीविकायै
तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति॥

मेरा पद तो सुरक्षित ही है, ऐसा समझकर जो शास्त्रार्थ से भागता है, और दूसरों की निन्दा को भी सहन करता है, जिसकी विद्या केवल आजीविका के लिए है, उसे ज्ञान बेचने वाला वनिया कहते है।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, १।१७)

मातेव का या सुखदा सुविद्या
किमेधते दानवशात् सुविद्या।

माता के समान सुख देने वाली कौन है? उत्तम विद्या। देने से क्या बढ़ती है? उत्तम विद्या।

—शंकराचार्य (प्रश्नोत्तरी, २५)

शोच्यतां यात्यशीलेन विद्वेषेणापवित्रताम्।

विद्या शील के अभाव में शोचनीय हो जाती है और द्वेष से अपवित्र हो जाती है।

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, ३।१५)

शीलं परहितासक्तिरनुत्सेकः क्षमाधृतिः।
अलोभश्चेति विद्यायाः परिपाकोज्ज्वलं फलम्॥

शील, परोपकार, विनय, क्षमा, धैर्य और अलोभ—ये विद्या की पूर्णता के उज्ज्वल फल हैं।

— क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, ३।२४)

विद्यादीपः कामकोपाकुलक्षणां
दर्पान्धानां निष्फलालोक एव।

काम-क्रोध रूपी नेत्र-विकारों से युक्त दर्पान्ध व्यक्ति के लिए विद्या रूपी दीप का प्रकाश निष्फल होता है।

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, ३।१५१)

अनव्यये व्ययं याति व्यये याति सुविस्तृतिम्।
अपूर्वस्तव कोशोऽयं विद्याकोशेषु भारति॥

हे सरस्वती! कोषों में तुम्हारा विद्याकोष अपूर्व है जो व्यय न करने पर घट जाता है लेकिन व्यय करने पर विशेष विस्तार को प्राप्त होता है।

—गदाधर भट्ट

कंठस्था या भवेद्विद्या सा प्रकाश्या सदा बुधैः।
या गुरौ पुस्तके विद्या तया मूढः प्रतार्यते ॥

जो विद्या कंठस्थ होती है, वह विद्वान जनों के द्वारा सदा प्रकाश्य होती है, किन्तु जो विद्या गुरु के समीप अथवा पुस्तक में होती है, उससे मूर्ख ठगा जाता है।

—वल्लाल कवि (भोजप्रबन्ध, ४)

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुंक्ते
कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम्।
कीर्ति च दिक्षु विमलां वितनोति लक्ष्मीं
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥

विद्या माता के समान रक्षा करती है, पिता के समान हित में लगाती है, प्रिया के समान खेद को दूर करके आनन्द प्रदान करती है। दिशाओं में विमल कीर्ति फैलाती है तथा लक्ष्मी प्रदान करती है। कल्पलता के समान विद्या क्या-क्या नहीं करती, अर्थात् सब कुछ करती है।

—वल्लाल कवि (भोजप्रबन्ध, ५)

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम्।
समुत्पन्नेषु कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम् ॥

जो विद्या केवल पुस्तकों में रहती है और जो धन दूसरे के हाथों में रहता है, समय पड़ने पर न वह विद्या है और न वह धन।

—लघुचाणक्य

कामधेनुगुणा विद्या, ह्यकाले फलदायिनी।
प्रवासे मातृ-सदृशी विद्या गुप्तं धनं स्मृतम् ॥

विद्या कामधेनु के गुणों से सम्पन्न है, वह सदा फल देने वाली है। परदेश में माता के समान है। विद्या को गुप्त धन कहा गया है।

—वृद्धचाणक्य

अनभ्यासैर्हता विद्या।

बिना अभ्यास के विद्या नष्ट हो जाती है।

—चाणक्यसारसंग्रह

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्,
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्यापरं दैवतम्,
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः।

विद्या पुरुष का श्रेष्ठ रूप और गुप्त धन है। विद्या भोग, यश और सुख देने वाली है और गुरुओं की भी गुरु है। विद्या परदेश में बन्धु है, परम देवता है। राजाओं में विद्या की ही पूजा होती है, धन की नहीं। विद्या से हीन मनुष्य पशु है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, २०)

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये,
गता कालेनासौ विषयसुखसिद्ध्यै विषयिणाम् ॥

पहले विद्वत्ता शान्त लोगों के क्लेश को दूर करने के लिए थी। कालान्तर में वह विषयी लोगों के विषय-सुख की प्राप्ति के लिए हो गई।

—भर्तृहरि (वैराग्यशतक, २८)

अनभ्यासे विषं विद्या।

अभ्यास न करने पर विद्या विष हो जाती है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, प्रस्ताविका, २२)

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति संचयात् ॥

हे सरस्वती! आपका यह कोई अपूर्व कोष है जो व्यय करने से बढ़ता है तथा संचय करने से घटता है।

—अज्ञात

क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत्।
क्षणत्यागे कुतो विद्या कणत्यागे कुतो धनम् ॥

प्रत्येक क्षण का उपयोग कर विद्या और प्रत्येक कण का ध्यान रख कर धन का अर्जन करना चाहिए क्योंकि क्षण का नाश होने पर विद्या कहां और कण का त्याग करने पर धन कहां?

—अज्ञात

विद्या नाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो
धेनुः कामदुधा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयं च सा।
सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणं
तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं विद्याधिकारं कुरु ॥

विद्या तो मनुष्य की अतुल कीर्ति है। भाग्य का नाश होने पर यह मनुष्य का आश्रय है। यह कामधेनु के समान है। विरह में रति के समान है। यह मनुष्य का तृतीय नेत्र है।

यह सत्कार का घर है, कुल की महिमा है और रत्नों के बिना ही आभूषण है। अतः अन्य सब विषयों की उपेक्षा कर विद्या प्राप्त करो।

—अज्ञात

विद्या शस्त्रं च शास्त्रं च द्वे विद्ये प्रतिपत्तये।
आद्या हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाद्रियते सदा॥

प्राप्त करने योग्य दो विद्याएं है—शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्या। इनमे से प्रथम तो वृद्धावस्था में हास्यास्पद बनाती है, दूसरी सदा आदर देती है।

—अज्ञात

बुद्धि बिना विद्या कहो, कहा सिखावै कोई।
प्रथम गाम ही नाहिं सो, सींव कहां ते होइ॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

धर्म की रक्षक विद्या ही है क्योंकि विद्या से ही धर्म और अधर्म का बोध होता है।

—दयानन्द (ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, पृ० २२)

विद्या जड़ों में भी सहज ही डालती चैतन्य है,
हीरा बनाती कोयले को, धन्य विद्या धन्य है॥

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती, पृ० १८४)

हमें विद्या जैसे पुण्यदान को मलिन हाथों से नही लेना चाहिए। जितने विद्यालय सरकार के असर में हैं, उनसे हमें विद्या नहीं लेनी चाहिए। जिस विद्यालय पर उसकी ध्वजा फहराती है, वहां विद्या-दान लेना पाप कर्म है।

—महात्मा गांधी (काशी विद्यापीठ के शिलान्यास के अवसर पर भाषण, १०-२-१९२१)

आयु की चिन्ता विद्या नहीं करती।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (चक्रव्यूह, दूसरा अंक)

विद्या बताती है तुझे, क्या धर्म और अधर्म है।
विद्या जताती है तुझे, क्या कर्म और अकर्म है॥
विद्या सिखाती है तुझे, कैसे छूटे संसार से।
विद्या पढ़ाती है तुझे, कैसे मिले भंडार से॥

—भोले बाबा

सूरबीर अरु साहसी रूपवंत दातार[1]।
विद्या बिन बिलखै वदन[2] जिम त्रिय बिन भरतार[3]॥

—अज्ञात

इल्म[4] से जाना था कि कुछ जानेंगे
जाना तो जाना कि न जाना कुछ भी।

—ज़ौक़

हर कि इल्म ख़वाँद व अ़मल न कर्द बदाँ मानद कि गाव राँद व तुख़्म नयफ़्शाँद।

जिसने विद्या पढ़ी और आचरण नहीं किया—वह उसके समान है जिसने बैल जोता है और बीज नहीं बखेरा।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

पिदर चूं इल्मो मादर हस्त आमाल।

विद्या तेरा पिता और कर्म तेरी माता है।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

पये इल्म चूं शमअ बायद गुदाख़्त।

विद्या के लिए मोमबत्ती की भांति पिघलना चाहिए।

[फ़ारसी] —अज्ञात

विद्यल लोपल नीतियु
वाद्यंबुललोन वीण वररसिकुलकुन्
हृद्यंबै विलसिल्लिन
विद्यललो ब्रह्मविद्य विद्यरा।

विद्या के लिए नीति आवश्यक है। संगीत-जगत् में वाद्य-तंत्र वीणा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सभी विद्याओं में ब्रह्मविद्या सर्वोत्तम मानी जाती है।

[तेलुगु] —वेमना (वेमनशतक)

विद्या न रहने से ही अविद्या आ घुसती है। उसके ही फलस्वरूप मनुष्य जिस बात को नहीं जानता, वही दूसरों को बता देना चाहता है। जो समझता नहीं, वही अधिक समझाना चाहता है।

—शरत्चन्द्र (चरित्रहीन, पृ० २७७)

---

१. उदार, दानी। २. कांतिहीन मुख वाला। ३. पति के बिना स्त्री। ४. विद्या।

विद्या-लाभ विद्यालय के ऊपर नहीं, बल्कि मुख्यत: छात्र के ऊपर निर्भर करता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (कलकत्ता में १ दिसम्बर १९०९ का भाषण 'तपोवन')

Art is long and Time is fleeting.

विद्या अनन्त है और समय उड़ रहा है।

—लांगफ़ेलो (ए साम आफ़ लाइफ़)

विद्याभिमानी

कीबे कहा, पढ़िबे को कहा फलु,
बूझि न वेद को भेदु बिचारैं।
स्वारथ को, परमारथ को कलि
कामद राम को नामु बिसारैं॥
बाद-बिवाद विषादु बढ़ाइकै,
छाती पराई औ आपनी जारैं।
चारिहु को, छहु को, नव को,
दस-आठ को पाठु कुकाठु ज्यों फारैं॥

—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, १०४)

विद्यार्थी

कामं क्रोधं तथा लोभं, स्वादु-शृंगारकौतुके।
अतिनिद्रातिसेवे च, विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत्॥

विद्यार्थी को ये आठ बातें छोड़ देनी चाहिएं—१. काम, २. क्रोध, ३. लोभ, ४. स्वाद, ५. शृंगार, ६. तमाशे, ७. अधिक निद्रा और ८. अत्यधिक सेवा।

—वृद्धचाणक्य

सुखार्थिनः कुतो विद्या, कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां, विद्यार्थी वा त्यजेत सुखम्॥

सुख चाहने वाले को विद्या और विद्या चाहने वाले को सुख कहां? सुख चाहने वाले को विद्या और विद्यार्थी को सुख की कामना छोड़ देनी चाहिये।

—चाणक्यनीति

इन बेचारे पेटार्थियों को विद्या के बड़े-बड़े विषयों में श्रम कराना मानो चींटी पर हाथी का हौदा रखना है।

—प्रतापनारायण (प्रतापनारायण ग्रंथावली, प्रथम भाग)

अशुद्ध हृदय लेकर अपनी पुस्तकों या अपने शिक्षकों के पास मत जाइए। शुद्ध हृदय लेकर उनके पास जाइए, तभी आपको जो कुछ आप चाहते हैं वह प्राप्त होगा।

—महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४०, पृ० १२७)

किसी विद्यार्थी को जब भाषा की पकड़ आ जाती है, वह भाषाशास्त्र में पारंगत हो जाता है, और तब कोई भी नयी भाषा सीख लेना उसके लिए बहुत आसान हो जाता है।

—महात्मा गांधी (सरलादेवी चौधरानी को पत्र, २९-११-१९२०)

विद्यार्थियों को दल-बन्दी से दूर रहना चाहिए। तटस्थ या निष्पक्ष रहकर जनता के नेताओं के प्रति पूज्य भाव रखना चाहिए। उनके गुण-दोषों की तुलना करने का काम उनका नहीं।

—महात्मा गांधी (भागलपुर में १७ अक्तूबर १९१७ का भाषण)

भये न जो पढ़ि सत्यव्रत, सबल शूर स्वाधीन।
तो विद्या लगि वादि धन, समय, शक्ति व्यय कीन॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई, ७।७०)

आमरा शक्ति आमरा बल
आमरा छात्रदल।
मोदेर पायेर तलाय मूर्च्छे तुफान,
ऊर्ध्वे बिमान झड़-बादल।

हम शक्ति है, हम बल है, हम छात्रगण हैं। हमारे पैरों तले तूफान शान्त हो जाता है। हमारे ऊपर आंधी बादल रहते हैं। हम छात्रगण है।

[बँगला] —काजी नजरुल इस्लाम

विद्यार्थी के गुण

First religious and moral principles; secondly gentlemanly conduct; thirdly, intellectual ability.

प्रथम है धार्मिक और नैतिक सिद्धांत, द्वितीय है सत्पुरुषोचित व्यवहार और तृतीय है बौद्धिक क्षमता।

—टामस आर्नोल्ड (अपने विद्यार्थियों के बीच में भाषण)

विद्रोह

यश वैभव सुख की चाह नहीं,
परवाह नहीं जीवन न रहे।
यदि इच्छा है यह है जग में
स्वेच्छाचार दमन न रहें॥

—'तरुण राजस्थान' पत्र का ध्येय-वाक्य

कहा जाता है कि सच्चे प्यार के लिए संसार में दुःख भोगना पड़ता है। कोई न करे तो समाज के वेतुके अन्याय का प्रतिकार कैसे होगा ? समाज के विरुद्ध जाना और धर्म के विरुद्ध जाना, एक वस्तु नहीं है। इस बात को लोग भूल जाते हैं।

—शरतचन्द्र (पत्रावली –हरिदास शास्त्री को पत्र)

राजा यदि प्रजाद्रोह करता हो तो उसे राजद्रोह के बारे में शिकायत करने का कोई अधिकार नहीं।

—लोकमान्य तिलक [राजद्रोह पर चले मुक़दमे में वक्तव्य (१९०८)]

मैं सशस्त्र विद्रोह को भी वैधानिक मानता हूं। बात इतनी ही है कि आज वह संभव नहीं है।

—लोकमान्य तिलक

Rebellion to tyrants is obedience to God.

तानाशाहों के विरुद्ध विद्रोह ईश्वर की आज्ञा का पालन है।

—जान ब्रेडशॉ

अत्याचारियों का प्रतिरोध ईश्वर की आज्ञा का पालन है।

—टामस जेफ़रसन

विद्रोही

तुम्हारी दृष्टि में मैं विद्रोही हूँ
क्योंकि मेरे सवाल तुम्हारी मान्यताओं का उल्लंघन करते हैं।

—कुंवरनारायण (आत्मजयी, पृ० १०)

विद्रोही बनते नहीं, उत्पन्न होते हैं।

—अज्ञेय (शेखर: एक जीवनी, भाग १, पृ० २७)

आमि झंझा, आमि घूर्णि,
आमि पथ-सम्मुखे याहा पाइ याइ चूर्णि।
आमि नृत्य-पागल छन्द,
आमि आपनार ताले नेचे याइ, आमि मुक्त जीवनानन्द।

जो भी मेरे रास्ते में आता है, उसे चूर्ण करता हुआ मैं आगे बढ़ जाता हूं। मैं तेज़ आँधी हूँ, आवर्त्त पवन, जिसे भी रास्ते में पाता हूं, चूर्ण कर डालता हूँ। मैं पागल की तरह नाचता हुआ एक छन्द हूं, अपनी ही तलवार पर नाचता हूं, मैं मुक्त जीवन का आनन्द हूं।

[बंगला] —काज़ी नज़रुल इस्लाम

आमि चिर-विद्रोही वीर—
आमि विश्व छाड़ाये उठियाछि एका चिर उन्नत शिर।

मैं चिर-विद्रोही हूं। अकेला ही संसार से ऊपर उठ आया हूँ। मेरा मस्तक सदैव ऊंचा है।

[बंगला] —काज़ी नज़रुल इस्लाम

यबे उत्पीड़ितेर क्रन्दन-रोल आकाशे बातासे ध्वनिबे ना,
अत्याचारीर खड्ग कृपाण भीम रण-भूम रणिबे ना—
विद्रोही रण-क्लांत
आमि सेइदिन हब शांत।

जब पीड़ित मानवता का रुदन-स्वर नभमण्डल में, हवा में नहीं गूंजेगा, अत्याचारियों की तलवारें महायुद्ध-स्थल में नहीं झनकेंगी, तभी मेरा विद्रोही मन युद्ध से थकेगा, तभी विश्राम लेगा।

[बंगला] —काज़ी नज़रुल इस्लाम

समाज के अविचार-अत्याचार का जो पहले प्रतिवाद करता है, उसी को दुःख भोगना पड़ता है।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ७५)

विद्वत्ता

लुक़मान हकीम रा गुप़्तमन्द—"हिकमत अज़ कि आमोख़्ती ?" गुफ़्त—"अज़ नाबीनायान—कि ता जाये नै बीनन्द पाय नै निहन्द।" क़द्दिमि' ल् ख़ुरुज क़ब्ल ल् वुलूजि।

लुक़मान पंडित से पूछा गया कि "आपने विद्वत्ता किससे सीखी ?" उसने कहा—"अन्धों से, जो कि जब तक जगह को टटोल नहीं लेते, पैर नहीं रखते। घुसने से पहले निकलने का इन्तज़ाम कर।"

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, भूमिका)

Wear your learning, like your watch, in a private pocket ; and do not merely pull it out and strik it, merely to show that you have one.

अपनी विद्वता को, अपनी घड़ी की तरह, अपनी अन्दर की जेब में रखो और उसे केवल यह दिखाने के लिए कि तुम्हारे पास भी है न बाहर निकालो और पटको।

—लार्ड चेस्टरफ़ील्ड (पुत्र को पत्र, २२।२।१७४८)

Learning teacheth more in one year than experience in twenty.

अनुभव बीस वर्ष में जितना सिखाता है, विद्वत्ता एक वर्ष में उससे अधिक सिखा देती है।

—रोगर ऐस्कम (दि स्कूल मास्टर)

विद्वान

दे० 'विद्वत्ता', 'विद्वान और मूर्ख' भी।

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते॥

सर्दी-गर्मी, भय-अनुराग, सम्पत्ति अथवा दरिद्रता जिसके कार्य में विघ्न नहीं डालते, वही पण्डित कहलाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३३।१९)

प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत।
तानहं पण्डितान् मन्ये विशेषा हि प्रसंगिनः॥

हे भारत ! जो लोग जितना आवश्यक है, उतने ही काम में लगे रहते हैं, अधिक में हाथ नहीं डालते, उन्हें मैं पण्डित मानता हूं, क्योंकि अधिक में हाथ डालना संघर्ष का कारण होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३८।४४)

अलब्ध्वा यदि वालब्ध्वा नानुशोचति पण्डितः।

अभीप्ट फल की प्राप्ति हो या न हो विद्वान पुरुष उसके लिए शोक नहीं करता।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, १३३।१७)

यस्य सर्वे समारम्भाः काम संकल्प-वर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः॥

जिसके सम्पूर्ण कार्य कामना और संकल्प से रहित हैं, ऐसे उस ज्ञान रूप अग्नि द्वारा भस्म हुए कर्मों वाले पुरुष को ज्ञानी लोग पण्डित कहते है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २८।१९
अथवा गीता, ४।१९)

हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानि शतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्॥

मूढ व्यक्ति को प्रतिदिन हर्ष के हजारों तथा भय के सैकड़ों अवसर प्राप्त होते रहते हैं किन्तु विद्वान के मन पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

—वेदव्यास (महाभारत, स्वर्गारोहण पर्व।५।६१)

श्रुतोन्नतस्यापि हि नास्ति बुद्धिर्नोत्पद्यते श्रेयसि यस्य बुद्धिः।

विद्वान होने पर भी यदि किसी को श्रेयस्कर बुद्धि न हो तो उसको बुद्धि नहीं है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १८।३५)

न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम।

विद्वानों के लिए निश्चय ही कोई चीज़ अज्ञात नहीं होती है।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ४।१८ से पूर्व)

सरस्वती-परिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिंगति जनम्।

लक्ष्मी तो सरस्वती द्वारा ग्रहण किए गए व्यक्ति का मानो ईर्ष्यावश ही आलिंगन नहीं करती है।

—बाणभट्ट (कादम्बनी, पूर्व भाग, पृ० ३२३)

जरां मरणं भयं व्याधिं यो जानाति स पण्डितः।

जो बुढ़ापा, मरण, भय, रोग को जानता है, वह पण्डित है।

—बल्लाल कवि (भोजप्रबन्ध, ३६)

अन्या जगद्धितमयी मनसः प्रवृत्ति—
रन्येव कापि रचना वचनावलीनाम्।
लोकोत्तरा च कृतिराकृतिरार्त्तहृद्या
विद्यावतां सकलमेव गिरां दवीयः॥

विद्यावानों की हर विशेषता अवर्णनीय होती है। संसार की भलाई के लिए सदैव तत्पर उनका मन असाधारण रूप से उदात्त होता है। उनके वचन असाधारण रूप से सुखद होते हैं। उनके कार्य लोकोत्तर होते हैं तथा आकृति दुःखी व्यक्तियों को प्रीतिकर होती है।

—पंडितराज जगन्नाथ (भामिनिविलास, १।६७)

कार्याण्येव गुरूणि पण्डितानाम्।

विद्वानों के कार्य बड़े ही होते हैं।

—अभिनन्द (रामचरित, १४।३५)

विद्वान् प्रशस्यते लोके, विद्वान् सर्वत्र गौरवम्।
विद्यया लभ्यते सर्वं, विद्या सर्वत्र पूज्यते॥

विद्वान की संसार में प्रशंसा होती है, विद्वान सारे भूमण्डल का गौरव है। विद्या से सभी-कुछ मिल जाता है और विद्या की सभी जगह पूजा होती है।

—चाणक्यनीति

अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः।

विद्वान लोग न कहे हुए अर्थ को भी समझ लेते हैं।

—विष्णु शर्मा (पंचतन्त्र, १।४४)

विद्वत्त्वं च नृपत्त्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान सर्वत्र पूज्यते॥

विद्वत्ता तथा राजत्व की कभी कोई समानता नहीं है। राजा का अपने देश में ही सम्मान होता है जबकि विद्वान सर्वत्र पूजा जाता है।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, २।५६)

यः क्रियावान् स पण्डितः।

जो क्रियावान है वह पण्डित है।

—नारायण पण्डित (हितोपदेश)

ज्ञातज्ञानं न खलु तुष्टये पिष्टपेषः।

ज्ञान हो जाने से विद्वान व्यक्ति को पिष्टपेषण सन्तोष प्रदान नहीं करता।

— हंससन्देश (६)

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥

विद्वान व्यक्ति को विद्या और भय का चिन्तन इस प्रकार करना चाहिए मानो वह अजर-अमर है और धर्म का आचरण यह समझकर करना चाहिए कि मृत्यु ने बालों को पकड़ लिया है।

—चाणक्यनीतिशास्त्र

सत्यं तपोज्ञानमहिंसता च
विद्वत्प्रमाणश्च सुशीलता च।
एतानि यो धारयते विद्वान्
न केवलं यः पठते स विद्वान्॥

केवल पढ़-लिख लेने से ही कोई विद्वान नहीं होता। जो सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा, विद्वानों के प्रति श्रद्धा और सुशीलता को धारण करता है, वही सच्चा विद्वान है।

— अज्ञात

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्।

विद्वानों के परिश्रम को विद्वान ही जानता है।

—अज्ञात

कविः करोति काव्यानि रसं जानन्ति पण्डिताः।

कवि काव्यों की रचना करता है किन्तु उनका रस तो विद्वान ही जानते हैं।

—अज्ञात

न वे रुदन्ति मतिमन्तो सपञ्ञा
बहुस्सुता ये बहुठानचिन्तिनो।
दीपं हि एतं परमं नरानं
यं पण्डिता सोकनुप्त भवन्ति॥

बुद्धिमान, प्रज्ञावान, बहुत श्रुत तथा बहुत बातों का विचार करने वाले रोते नहीं हैं। आदमियों का यही परम द्वीप (शरणस्थान) है कि पण्डित शोक को जीत लेते हैं।

[पाली] —जातक (महासुतसोम, जातक)

सिद्धि चरमेकतो वसं
मिस्सो अञ्ञानेन वेदगू।
विद्धा पजहाति पापकं
कोंचो खीरपको व निन्नगं ॥

विद्वान लोग अज्ञ जनों के साथ हिल-मिलकर रहते हैं, साथ-साथ चलते हैं, फिर भी उनके दुर्विचार को वैसे ही छोड़े रहते हैं, जैसे क्रौंच पक्षी दूध पीकर पानी को छोड़ देता है।
[पालि] —उदान (८।७)

पण्डित पण्डित सौं मिलै, संसो मिटत न वेर।
मिले दीप दुइ दुहुन को, होत अँधेर निवेर॥
—वृन्द (वृन्द सतसई)

विद्वान तो बहुत होते हैं लेकिन विद्या के साथ जीवन का आचरण करने वाले कम होते हैं।
—सरदार पटेल (भारत की एकता का निर्माण, पृ० २१३)

आँहाँ कि मुहीते फ़ज्ल व आदाब शुदन्द,
दर कश्फ़े उलूम शंमए असहाब शुदन्द।
रहे जीं शबे तारीक न बुरदन्द बुरूँ,
गुफ़्तन्द फ़िसाना व दर ख़्वाब शुदन्द।

संसार में साहित्य और बड़प्पन में अत्यन्त गहरे विद्वान हो चुके हैं। उन्होंने विद्याओं के मार्ग में नया प्रकाश दिखाया है। इस अंधकारपूर्ण रात्रि में वे लोग भी मार्ग नहीं पा सके। उन्होंने केवल एक कहानी सुनाई और सो गए।
[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रूबाइयात, २५९)

आलिमे ना परहेज़गार कूरे मशअलह दारस्त।

असंयमी विद्वान अंधा मशालदार है।
[फ़ारसी] —शेख सादी (आठवाँ अध्याय)

भगवद्स्वरूपंबेव्वंडेरुंगुनु वाडु विद्वांसुडु।

जो भगवान् के स्वरूप को जानता है वही विद्वान माना जा सकता है।
[तेलुगु] —पोतना (भागवतमु)

Ful wys is he that can him selven knowe.

पूर्ण विद्वान वह है जो स्वयं को जान सकता है।
—चाउसर (कैंटरबरी टेल्स, दि मांक्स टेल)

विद्वान का काम इतना ही है कि उसका आनन्दप्रद मिलन बिछुड़ते समय मन में यह व्यथा उत्पन्न कर दे कि फिर न जाने कब मिलेंगे।
—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ३९४)

श्रेष्ठ विद्वानों की सभा का प्रभावी वक्ता मूर्खों की सभा में भूलकर भी न बोले।
—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ७१९)

विद्वान और मूर्ख

व्युत्पत्तिरावर्जितकोविदापि न रंजनाय क्रमते जडानाम्।
न मौक्तिकच्छिद्रकरी शलाका प्रगल्भते कर्मणि टंकिकायाः॥

विद्वानों का मनोरंजन करने वाली शास्त्र ज्ञान-गरिमा मूर्खों का मनोरंजन नहीं कर सकती। मोतियों में छेद करने वाली सलाई पाषाणों के छेदन में काम नहीं आ सकती।
— बिल्हण (विक्रमांकदेवचरित, १।१६)

एको बहूनां मूर्खाणां मध्ये निपतितो बुधः।
पद्मः पायस्तरंगाणामिव विप्लवते ध्रुवम्॥

बहुत से मूर्खों के मध्य पड़ा हुआ एक बुद्धिमान जल तरंगों के बीच पड़े हुए कमल की भाँति निश्चय ही विपत्ति-ग्रस्त होता है।
—सोमदेव (कथासरित्सागर, ६।६)

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥

विद्वानों का समय काव्य और शास्त्रों के अध्ययन में व्यतीत होता है और मूर्खों का व्यसनों में, नींद में तथा लड़ाई-झगड़े में बीतता है।
—नारायण पण्डित (हितोपदेश, १।१)

कोलाहले काककुलस्य जाते
विराजते कोकिलकूजितं किम्।
परस्परं संवदनां खलानां,
मौनं विधेयं सततं सुधीभिः॥

क्या कौवों की कांव-कांव में कोकिल के मधुर कूजन की सुनवाई होगी ? मूर्खों के परस्पर वार्तालाप के समय बुद्धिमानों को सदा मौन धारण करना ही उचित है।

—अज्ञात

एकंगदस्सी दुम्मेधो, सतदस्सी च पण्डितो।

मूर्ख सत्य का एक ही अंग देखता है और पण्डित सत्य के सौ अंगों को देखता है।

[पालि] —थेर गाथा (१।१०६)

न गोयन्द अज़ सरे बाज़ीचे हरफ़े
कज़ां पन्दे न गीरद साहिबे होश।
वगर सद बाबे हिकमत पेशे नादां
बिख़्वानन्द आयदश् बाज़ीचे दरगोश।

महान लोग खेल में भी ऐसा शब्द नहीं कहते कि जिससे चैतन्यशील उपदेश न ले ले। लेकिन बुद्धिमत्ता के सौ अध्याय भी नादान के सामने पढ़ें तो उसके कानों को खेल ही लगते हैं।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, दूसरा अध्याय)

शिक्षित व्यक्ति यदि चरित्रहीन हो तब भी क्या उसे विद्वान कहेंगे ? कभी नहीं !

—सुभाषचन्द्र वसु (माता श्रीमती प्रभावती को पत्र, १९१२ ई०)

जो व्यक्ति मूर्खों के सामने विद्वान लगने की कामना करते हैं, वे विद्वानों के सामने मूर्ख लगते हैं।

—क्विन्टिलियन (इंस्टीट्युशियो ओरेटोरिया, १०।७)

विधवा

ऊत्सृष्टमामिषं भूमौ प्रार्थयन्ति यथा खगाः।
प्रार्थयन्ति जनाः सर्वे पतिहीनां तथा स्त्रियम् ॥

जैसे पक्षी पृथ्वी पर डाले हुए मांस के टुकड़े को लेने के लिए झपटते हैं, उसी प्रकार सब लोग विधवा स्त्री को वश में करना चाहते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, आदिपर्व, १५७।१२)

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर-काल-तांडव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (अपरा, पृ० ५७)

विधाता

निश्चिन्वते हि ज्ञंमन्या यमेवायोग्यमाग्रहात्।
जिगीषयैव तत्रैव निदधाति विधिः शुभम् ॥

अपने को विज्ञ मानने वाले जिसे हठात् अयोग्य सिद्ध करते हैं, उसी में विजय की इच्छा से विधाता शुभ रख देता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ३।४९१)

रोहत्यन्तिकसीमनि प्रतिविषावीरुद्विषक्ष्मारुहः
काले प्रावृडुपद्रुताच्छसलिले मूर्छत्यगस्त्योदयः।
सर्गच्छेदविधिक्षमानुदयतो दृष्ट्वा किलोपद्रवान्
संधत्ते प्रतीकारकल्पनमहो दीर्घावलोकी विधिः ॥

दूरदर्शी विधाता विषवृक्ष के समीप ही प्रतिविष लता उत्पन्न करता है। वर्षाकाल में जल मैला हो जाता है, उसकी निर्मलता के लिए अगस्त्य नक्षत्र का उदय करता है। सृष्टि के विनाश में समर्थ उपद्रवों को उत्पन्न देखकर उनके प्रतिकार की कल्पना करता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।२३७)

एकान्तवामहृदयो विधिरानुकूल्यं
मिथ्याप्रदर्श्य विशिनष्ट्यनुबंधि दुःखम्।

पूर्णतया कुटिल हृदय विधाता मिथ्या प्रदर्शित कर भारी दुःख उपस्थित कर देता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।१२१६)

स्पष्टदृष्टः स्फुटमिति गतीनामनियमः।

स्पष्टतः ही विधाता की गति में अनियम ही दिखाई देता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।१२७५)

कंचिन्निपातयति वद्धपदं क्षणेन
कंचित् परं पिपतिषुं नयति प्ररूढिम् ।
संकल्पनिर्विषयचित्रतरानुभाव
ओघोम्भसामिव तटं पुरुषं विधाता ॥

संकल्प से दूर, विचित्र कर्मकर्ता विधाता किसी बद्धमूल को इस प्रकार गिरा देता है और गिरे हुए किसी को इस प्रकार उठा देता है, जिस प्रकार जल-प्रवाह तट को।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।१४०१)

नोत्थानमस्ति तु विधिव्यपरोपितानाम् ।

विधाता द्वारा अवनति प्राप्त का फिर से उत्थान नहीं होता।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।१५६२)

अब समुझी यह निठुर विधाता।
ऐसेहि जगत-पिता कहावत, ऐसे घात करे सो धाता ॥
कैसो ज्ञान, चतुरई कैसी, कौन विवेक, कहां को ज्ञाता।
जैसो दुःख हमकौं इहि दीन्हो, तैसो याको होइ निपाता ॥

—सूरदास (सूरसागर, १०।२४६७)

ससि कलंक खारो समुद्र, कमलहि कटक नाल।
ज्ञानी दुःखी मूरख सुखी, दई[1] कूं बूझि जमाल ॥

—जमाल (जमाल दोहावली)

विध्वंस

तुम विनाश के रथ पर आओ,
गत युग का हत शव ले जाओ।

—सुमित्रानंदन पंत (उत्तरा, कविता 'युगछाया')

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र,
हे स्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण।

—सुमित्रानंदन पंत (युगांत, प्रथम कविता)

गा, कोकिल, बरसा पावक कण !
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस भ्रंस जग के जड़ बंधन !

—सुमित्रानन्दन पंत (युगांत, कविता २)

खंडहर ! खड़े हो तुम आज भी !
अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज !
विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यों हमें-
करुणाकर ! करुणामय गीत सदा गाते हुए ?

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (अपरा, पृ० १३२)

विनम्रता

कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् ।

विनयी जनों को क्रोध कहां ? और, निर्मल अन्तःकरण में लज्जा का प्रवेश कहां ?

—भास (प्रतिमा नाटक, ६।६)

अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः।

निश्चय ही विनम्रता, विक्रम का अलंकार होती है।

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, १।१७ के पश्चात्)

एतदेव कुलीनत्वमेतदेव गुणार्जनम् ।
यत् सदैव सतां सत्सु विनयावनतं शिरः ॥

सज्जनों की कुलीनता और गुणार्जन तो इसी में है कि सज्जनों के बीच सदैव इनका शिर विनय से झुका रहे।

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, १।२६)

केचिद् भये हि भजन्ति विनीतभाव-
मन्ये जना विभवलोभकृतप्रयत्नाः ।
केचिच्च साधुजनसंसदि कीर्तिलोभात्
सद्भाववांजगति कोऽपि न साधुरस्ति ।

कुछ लोग किसी बात से डरकर विनीत बन जाते हैं। कुछ दूसरे पैसे के लोभ से और कुछ सज्जनों की मण्डली में सुयश पाने के लोभ से। इस भांति इस संसार में स्वभावतः सद्भावना रखने वाला कोई सज्जन नहीं है।

—चन्द्रगोपी

ऐसी जगमगाती विद्वन्मंडली के बीच मेरा कर्त्तव्य केवल अपने दोनों कान खुले रखने का था, न कि मुंह खोलने का। पर आप लोग शायद इधर कार्यभार से थककर कुछ विनोद की सामग्री चाहते हैं। मूर्ख हास्य रस के बड़े प्राचीन आलंबन हैं। न जाने कब से वे इस संसार की रुखाई के बीच

---

१. दैव, विधाता।

लोगों को खुलकर हँसने का अवसर देते चले आ रहे हैं। यदि मुझसे इतना भी हो सके तो मैं इसको अपना सौभाग्य समझूँगा।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिंदी साहित्य सम्मेलन के २४वें अधिवेशन में हिन्दी परिषद् के सभापति पद से भाषण, १९३५)

जो जमीन पर बैठता है उसे कौन नीचे बिठा सकता है, जो सबका दास बनता है, उसे कौन दास बना सकता है?

— महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, २९९)

हर एक को ये दावा है कि हम भी हैं कोई चीज़
और हमको यह नाज़[1] कि हम कुछ भी नहीं हैं।

—अकबर इलाहाबादी

यथार्थ नम्रता सात्त्विकता के तेज से उज्ज्वल होती है, त्याग और संयम की कठोर शक्ति से दृढ़-प्रतिष्ठित होती है। उसका 'समस्त' के साथ अबाध मिलन होता है, और इसलिए वह सत्यभाव से, नित्यरूप से 'समस्त' को प्राप्त करती है। वह किसी को दूर नहीं करती; विच्छिन्न नहीं करती; वह आत्मत्याग करती है और दूसरों को अपनाती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (कलकत्ता में १ दिसम्बर १९०९ का भाषण—'तपोवन')

विनम्रता एक आध्यात्मिक शक्ति है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (कलकत्ता में १ दिसम्बर १९०९ का भाषण—'तपोवन'

जो तुम में बड़ा हो, वह तुम्हारा सेवक बने। जो कोई अपने आप को बड़ा बनाएगा, वह छोटा किया जाएगा और जो कोई अपने आप को छोटा बनाएगा, वह बड़ा किया जाएगा।

—नवविधान (मत्ती २३।११-१२)

यदि कोई बड़ा होना चाहे, तो सबसे छोटा और सबका सेवक बने।

—नवविधान (मार्क।९।३५)

Wisdom is not wisdom when it is not humble.

यदि विद्वत्ता विनम्र नहीं है तो वह विद्वत्ता नहीं है।

—साधु वासवानी (दि लाइफ़ ब्यूटिफ़ुल, पृ० ३०)

Nothing is more amiable than true modesty and nothing more contemptible than the false. The one guards virtue, the other betrays it.

जो नीचे है उसे गिरने का भय नहीं होता। जो निम्नस्थ होता है, उसे गर्व होने का भय नहीं होता। जो मनुष्य विनम्र है, उसे सदैव ईश्वर अपने पथप्रदर्शक के रूप में प्राप्त रहेगा।

—जान बनयन (पिल्ग्रिम्स प्राग्रेस, भाग २)

Modesty is the conscience of the body.

विनम्रता शरीर की अन्तरात्मा है।

—एडीसन

विनय

जनयति खलु रोषं प्रश्रयो भिद्यमानः।

जो विनय ठुकरा दी जाए, वह क्रोध को जन्म देती है।

—भास (चारुदत्त, १।१४)

उपदिशन्ति हि विनयमनुरूपप्रपत्त्युपपादनेन वाचा विनापि भर्तव्यानां स्वामिनः।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० ८१)

बड़ों की यही रीति है कि बिना मुख से बोले ही, व्यवहार से छोटों को विनय सिखा देते हैं।

अलंकारो हि परमार्थतः प्रभवतां प्रश्रयातिशयः, रत्नादिकस्तु शिलाभारः।

परमार्थतः बड़े लोगों का अलंकार विनियातिशय है, रत्नादिक तो शिलाभार हैं।

— बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० २३०)

विपदन्ता ह्यविनीतसम्पदः।

अविनयी लोगों की सम्पत्तियों का अन्त विपत्ति में होता है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, २।५२)

---

१. अभिमान।

विनयेन विना का श्रीः का निशा शशिना विना।

विनय के बिना सम्पत्ति क्या? चन्द्रमा के बिना रात क्या?

—भामह (काव्यालंकार १।४)

नयस्य विनयो मूलं विनयः शास्त्रनिश्चयात्।
विनयस्येन्द्रियजयस्तद्युक्तः शास्त्रमृच्छति॥

नीति का मूल विनय है। शास्त्र में निश्चय होने से विनय होता है। विनय का मूल इन्द्रियजय है। इन्द्रियजय शास्त्रज्ञान प्राप्त करता है।

—शुक्रनीति

विणओ वि तवो, तवो पि धम्मो।

विनय स्वयं एक तप है, और वह आभ्यंतर तप होने से श्रेष्ठ धर्म है।

[प्राकृत] —प्रश्नव्याकरणसूत्र, (२।३)

बलवान का बल उसकी विनयशीलता में है। शत्रुओं को परिवर्तित करने के लिए बुद्धिमान का शस्त्र यही है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६८५)

विनाश

खाततमूलमनिलो नदीरयैः पातयत्यपि मृदुस्तटद्रुमम्।

जिस तटवर्ती वृक्ष की जड़ें नदी की प्रचण्ड धारा ने पहले ही खोखली कर दी हों, उसे वायु का हल्का झोंका भी गिरा देता है।

—कालिदास (रघुवंश, १०।७६)

लतायां पूर्वलूनायां प्रसूनस्योद्भवः कुतः।

पहले ही छिन्न-भिन्न कर दी गयी लता पर पुष्पों का उद्गम कैसे हो सकता है।

—भवभूति (उत्तररामचरित, ५।२०)

अनिलैरनारलहतः क्रियाच्चिरं न महीरुहस्त्यजति मूलमात्मनः।

पवन से निरन्तर आहत वृक्ष कितनी देर तक मूल को नहीं त्यागता है?

—अभिनंद (रामचरित, २०।३१)

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।

विनाश के समय उल्टी बुद्धि हो जाती है।

—अज्ञात

अदिन आई जौ पहुँचै काऊ।
पाहन उड़ाइ वहै सो बाऊ॥

जब किसी का बुरा दिन आता है तो पत्थरों को उड़ाने वाली प्रचण्ड वायु बहने लगती है।

—जायसी (पद्मावत, ३८६।३)

Man marks the earth with ruin.

मनुष्य पृथ्वी पर विनाश की छाप लगा देता है।

—बायरन (चाइल्ड हेरॉल्ड, ४।१७०)

विनाश-काल

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति।
बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे समुपस्थिते।
अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति॥

देवता लोग जिस पुरुष को पराजय देना चाहते हैं, उसकी बुद्धि पहले ही हर लेते है, इससे वह सब कुछ उलटा ही देखने लगता है। विनाशकाल उपस्थित होने पर जब बुद्धि मलिन हो जाती है, उस समय अन्याय ही न्याय के समान जान पड़ता है और वह हृदय से किसी प्रकार नहीं निकलता।

—वेदव्यास (महाभारत, सभापर्व, ८१।८-९)

न कालो दण्डमुद्यम्य शिरः कृन्तति कस्यचित्।
कालस्य बलमेतावद् विपरीतार्थदर्शनम्॥

काल डंडा या तलवार लेकर किसी का सिर नहीं काटता। काल का बल इतना ही है कि वह प्रत्येक वस्तु के विषय में मनुष्य की विपरीत बुद्धि कर देता है।

—वेदव्यास (महाभारत, सभापर्व, ८१।११)

यदा पराभवो होति पोसो जीवितसंखये।
अथ जालं च पासं च आसज्जापि न बुज्झति॥

जब विनाश का समय आता है, जब जीवन पर संकट आता है, तब प्राणी पास के पड़े हुए जाल और फंदे को भी नहीं देखता।

[पालि] —जातक ('गिज्झ जातक' तथा 'हंस जातक')

विनोद

Total absence of humour renders life impossible.

हास्य का नितांत अभाव जीवन को असंभव बना देता है।

—कोलेट (चांस ऐक्वेंटेंसेज़)

Honest good humour is the oil and wine of a merry meeting, and there is no good companionship equal to that where the jokes are rather small and the laughter abundant.

निष्कपट उत्तम विनोद किसी भी मनोरंजन-गोष्ठी का स्नेह ओर मधु है। और जहां मज़ाक अपेक्षाकृत छोटे तथा हास्य प्रचुर होता है, उसके समकक्ष कोई भी आनन्दपूर्ण मंडली नहीं हो सकती।

—वाशिंगटन इर्विंग

विपत्ति

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचित् उद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः।
दुःखं च काले सहते महात्मा धुरन्धरस्तस्य जिताः सपत्नाः॥

जो धुरन्धर महापुरुष आपत्ति पड़ने पर कभी दु.खी नहीं होता, वल्कि सावधानी के साथ उद्योग का आश्रय लेता है तथा समय पर दुःख सहता है, उसके शत्रु पराजित ही हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व, ३३।१०७)

महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम्।
विपत्तौ तस्य सम्पत्तिर्भवेदित्याह शंकरः॥

जो पुरुष महाविपत्ति के अवसर पर भगवान का स्मरण करता है, उसके लिए वह विपत्ति सम्पत्ति हो जाती है, ऐसा शंकर जी का वचन है।

—देवीभागवतपुराण (६।४०।४१)

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

हे जगद्गुरु (श्रीकृष्ण)! सभी स्थानों में हम पर विपत्तियां आती रहें जिससे पुनर्जन्म-नाशक आपका दर्शन हमें मिला करे।

—भागवतपुराण (१।८।२५)

न शक्यं खलु विषमस्थैः पुरुषैरात्मबलाधानं कर्तुम्।

निस्सन्देह आपत्तिग्रस्त पुरुषों को अपना बलप्रदर्शन कर पाना सम्भव नही हे।

—भास (उरुभंग, १।१३ के पश्चात्)

संघचारिणो अनर्थाः।

अनर्थ संघचारी होते हैं।[1]

—भास (अविमारक, २।१ से पूर्व)

रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्थाः।

अनर्थ अवसर की ताक में रहते हैं।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुंतल, ६।८ से पूर्व)

विनिपतितानां नराणां प्रियकारी दुर्लभो भवति।

विपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों का प्रिय करने वाले दुर्लभ होते हैं।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, १०।१५)

गगनतले प्रतिवसन्तौ चन्द्रसूर्याविपि विपत्तिं लभेते,
किं पुनर्जना मरणभीरुका मानवा वा।

आकाश में स्थित चन्द्रमा और सूर्य भी विपत्ति में पड़ते हैं, फिर जननशील पशु-पक्षियों और मरण भीरु-मनुष्यों का क्या कहना?

—शूद्रक (मृच्छकटिक, १०।३६ के पूर्व)

परैरपर्यासितवीर्यसम्पदाम्।
पराभवोऽप्युत्सव एव मानिनाम्॥

शत्रुओं के द्वारा जिनकी शक्ति-सम्पत्ति का तिरस्कार नहीं हुआ है, ऐसे मानियों की विपत्ति भी उत्सव ही होती है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, १।४१)

---

१. विपत्ति कभी अकेली नही आती।

न युक्तं बन्धुव्यसनं विस्तरेणावेदयितुम् ।

वंधु की विपत्ति को विस्तार से कहना ठीक नहीं है।

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, ६।१५ से पूर्व)

आपदि प्रकृतिरुज्झिता वरं नाश्रयस्य
विसदृग्विचेष्टितम् ।

आपत्तिकाल में प्रकृति बदल देना अच्छा परन्तु अपने आश्रय के प्रतिकूल चेष्टा अच्छी नहीं।

—अभिनन्द (रामचरित, २।१८)

दोषाः परं वृद्धिमायन्ति संततं
गुणास्तु मुंचन्ति विपत्सु पुरुषम् ।

विपत्तियों में पुरुष के दोष बढ़ जाते हैं तथा गुण साथ छोड़ देते हैं।

—चन्द्रशेखर (सुर्जनचरित, १५।४)

विपदि विपरीतत्वं व्रजन्ति मित्राण्यपि ।

विपत्ति में मित्र भी विपरीत हो जाते है।

—नारायण शास्त्री (शर्मिष्ठा-विजय)

छिन्नोऽपि रोहति तरुः
क्षीणोऽपि उपचीयते पुनश्चन्द्रः ।
इति विमृशन्तः सन्तः
सन्तप्यन्ते न विप्लुता लोके ॥

कटा हुआ वृक्ष भी बढ़ता है। क्षीण हुआ चन्द्रमा भी पुनः बढ़कर पूरा हो जाता है। इस बात को समझकर सन्त पुरुष अपनी विपत्ति में नहीं घबराते।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ८८)

प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यांत्यापदः ।

भाग्यहीन मनुष्य जहाँ जाता है, प्रायः विपत्ति भी वहीं जाती है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ९१)

अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभाः मूषकाः शुकाः ।
असत्करश्च दण्डश्च परचक्राणि तस्कराः ॥
राजानीकप्रियोत्सर्गो मरकव्याधिपीडनम् ।
पशूनां मरणं रोगो राष्ट्रव्यसनमुच्यते ॥

अतिवृष्टि, अनावृष्टि, पतिंगे, चूहे, तोते, अनुचित कर, अनुचित दण्ड, शत्रुगण, चोर, सेना तथा प्रियों द्वारा राजा का परित्याग, महामारी रोगों से पीड़ा, पशुओं का मरण और भोग—ये राष्ट्र की विपत्तियां कही गई हैं।

—कामन्दकीयनीतिसार

एकस्य दुःखस्य न यावदंत गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य ।
तावद्द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवति ॥

एक दुःख रूपी समुद्र को पार कर ही नहीं पाता हूँ कि दुःख आ जाता है। विपत्तियों पर विपत्तियां आती ही रहती हैं।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।२०४)

कथमयं क्षते क्षारावसेकः ?

यह कटे पर नमक छिड़कना कैसा ?

—वायुराज (तापसवत्सराज)

अश्नुते स हि कल्याणं व्यसने यो न मुह्यति ।

आपत्ति पड़ने पर जो मोहित नहीं होता, वह कल्याण को प्राप्त करता है !

—सोमदेव (कथासरित्सागर)

छिद्रेष्वनर्था यान्ति भूरिताम् ।

आपत्तियों में बहुत से अनर्थ आ मिलते है।

—सोमदेव भट्ट (कथासरित्सागर, ६।२)

वर्धमानात्मनामेव भवन्ति हि विपत्तयः ।

उन्नति की क्षमता वालों पर ही विपत्तियाँ आती है।

—वल्लभदेव (सुभाषितावलि २७४६)

आपत्तौ पतितानां येषां वृद्धा न सन्ति शास्तारः ।
ते शोच्या बन्धूनां जीवन्तोऽपीह मृततुल्याः ॥

ऐसे व्यक्ति बन्धुओं द्वारा शोचनीय है जो विपत्ति में पड़े हैं तथा जिनको मार्ग दिखाने वाले वृद्ध व्यक्ति नहीं है। वे जीवित हुए भी मृतक के समान है।

—अज्ञात

क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णं
अन्नक्षये वर्धति जाठराग्निः ।
आपत्सु वैराणि समुल्लसन्ति,
छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥

घाव पर बार-बार चोट लगती है, अन्न की कमी होने पर भूख बढ़ जाती है, विपत्ति में वैर बढ़ जाते हैं—विपत्तियों में अनर्थ-बहुलता होती है।

—अज्ञात

बालत्वे च मृता माता वृद्धत्वे च मृताः सुताः।
यौवने च मृता भार्या पातकं किमतः परम्॥

बचपन में माता की मृत्यु, वृद्धावस्था में पुत्रों की मृत्यु और युवावस्था में पत्नी की मृत्यु—इनसे बड़ी और क्या विपत्ति हो सकती है?

—अज्ञात

आपत्स्वेव हि महतां शक्तिरभिव्यज्यते न संपत्सु।

आपत्तियों में ही महापुरुषों की शक्ति अभिव्यक्त होती है, सम्पत्ति में नहीं।

—अज्ञात

आपत्तिकाले मर्यादा नास्ति।

विपत्ति के समय मर्यादा का विचार नहीं किया जाता है।

—अज्ञात

प्रभवति कुतोऽनर्थः प्रज्ञा न चेदपथोन्मुखी।

यदि बुद्धि अनुचित पथ पर न चले तो अनर्थ कहाँ से उत्पन्न हो सकते हैं!

—शक्तिभद्र (आश्चर्यचूडामणि, ३।४२)

आकृष्यन्ते करिणः पंके निमग्ना महद्भिर्परेव।
प्रोप्तापदो महान्त उद्धरणीया महापुंभिः॥

पंक में फँसे हाथी शक्तिशाली हाथियों द्वारा ही निकाले जाते हैं, उसी प्रकार आपत्ति में फँसे महापुरुषों को महापुरुष ही उबारते हैं।

—अज्ञात

प्रायः समासन्नपराभवाणां
धियो विपर्यस्ततमा भवन्ति।
असंभवो हेममयस्य जन्तो-
स्तथापि रामो लुलुभे मृगाय॥

जिनके ऊपर शीघ्र ही विपत्ति आने वाली होती है, बहुधा उनकी बुद्धि पलट जाती है। यद्यपि सुवर्णमय प्राणी का जन्म संभव नहीं है। फिर भी राम सुवर्ण मृग (मारीच) को देखकर मुग्ध हो उठे।

—अज्ञात

आपत् तुला सहायानामात्मनः पौरुषस्य च।
अनापदि सुहृत् सर्वः स्वयं च पुरुषायते॥

आपत्ति मित्रों तथा अपने पौरुष की तुला है। आपत्ति न होने पर सभी मित्र हैं तथा वह स्वयं पौरुष-सम्पन्न है।

—अज्ञात

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपदकाल परखिअहिं चारी॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ३।४।४)

छुटै न विपति भजे बिनु रघुपति।

—तुलसीदास (विनय-पत्रिका, ८७)

संग सखा सभ तजि गए कोऊ न निबहिओ साथ।
कहु नानक इह विपत मैं टेक एक रघुनाथ॥

—गुरु तेगबहादुर (गुरु ग्रंथ साहब)

सुख दुख करि दिन काटे ही बनेंगे,
भूलि विपति परे पै द्वार मित्र के न जाइए।

—नरोत्तमदास (सुदामाचरित, १९)

पड़ कुदिन के बुरे झकोरों में
पाँव किसके भला नहीं उखड़े।
कौन बस जो विपद पड़े सिर पर
क्या करे जो गले पड़े दुखड़े॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(चोखे चौपदे, पृ० १९९)

विपत्ति में जिस हृदय में सद्ज्ञान उत्पन्न न हो वह सूखा वृक्ष है जो पानी पाकर पनपता नहीं बल्कि सड़ जाता है।

—प्रेमचन्द (प्रेमाश्रम, पृ० २३)

नौका पर बैठे हुए जल-विहार करते समय हम जिन चट्टानों को घातक समझते हैं और चाहते हैं कि कोई इन्हें खोदकर फेंक देता, उन्हीं से, नौका टूट जाने पर, हम चिमट जाते हैं।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० २९६)

विपत्ति में हमारी मनोवृत्तियां बड़ी प्रबल हो जाती हैं। उस समय बेमुरौती घोर अन्याय प्रतीत होती है और सहानुभूति असीम कृपा।

—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद १०)

कोऊ देत न साथ तब, कठिन परत जब दायँ।
मनुज मरन लखि पूतरी, आँखिन की फिरि जायँ॥

—किशोरीदास वाजपेयी (तरंगिणी, पृ० ४७)

जगता तभी जहान, उसे जब विपद जगाती है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० ४७)

विपत्ति में कोई न साथी हो सका
हाथ के हथियार हैं रूठे हुए।
रोम तन के भी गड़े काँटे हुए,
आज देवी-देवता झूठे हुए॥

—श्याम नारायण पांडेय (जौहर)

गये थे नमाज पढ़ने, रोज़े गले पड़े।

—हिन्दी लोकोक्ति

बिपद बराबर सुख नहीं, जो थोड़े दिन होय।

—हिन्दी लोकोक्ति

मुसीबत का हर इक से अहवाल[1] कहना
मुसीबत से है यह मुसीबत ज़ियादा।

—हाली

बाग़वां ने आग लगा दी जब आशियाने को मेरे
जिनपे तक़िया[2] था वही पत्ते हवा देने लगे।

—साक़िब

होता नहीं है कोई बुरे वक़्त का शरीक
पत्ते भी भागते है ख़िज़ां[3] में शजर[4] से दूर।

—आतिश

कौन होता है बुरे वक़्त की हालत का शरीक
मरते दम आँख को देखा है कि फिर जाती है।

—अज्ञात

आपदा ही एक ऐसी वस्तु है, जो हमें अपने जीवन को गहराइयों में अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७, पृ० ३७३)

जिस प्रकार खाल से हमारा शरीर मढ़ा हुआ है, उसी प्रकार आपदाओं से हमारा सबका जीवन भी मढ़ा हुआ है। हमारी साँसें आपदाएँ है, हमारा वस्त्राभूषण आपदा है। उसका रोना क्या रोना? दुनिया में सभी तो अंधे नहीं है। हाँ, कुछ-कुछ लोग अपनी आँखें जान-बूझकर मूंद लेते हैं। जो मूर्ख हैं, वे ही अपनी आपदाओं पर रोते और चिल्लाते है।

—मैक्सिम गोर्की (मां)

Misery acquaints a man with strange bedfellows.

विपत्ति मनुष्य को विचित्र साथियों से मिलाती है।

—शेक्सपियर (दि टेम्पेस्ट, २।२)

Sweet are the uses of adversity.

विपत्ति के लाभ मधुर होते हैं।

—शेक्सपियर (ऐज़ यू लाइक इट, २।१)

To Mercy, Pity, Peace, and Love
All pray in their distress

विपत्ति में सभी लोग करुणा, दया, शान्ति तथा प्रेम की स्तुति करते हैं।

—विलियम ब्लेक (सांग्स आफ़ इन्नोसेन्स, दि डिवाइन इमेज)

Prosperity is a great teacher; adversity is a greater. Possession pampers the mind; privation trains and strengthens it.

सम्पन्नता महान शिक्षक है पर विपत्ति महानतर शिक्षक है। सम्पत्ति मन को लाड़ से बिगाड़ देती है किन्तु अभाव उसे प्रशिक्षित करता है और शक्तिशाली बनाता है।

—हैज़लिट

Adversities do not make the man either weak or strong, but they reveal what he is.

विपत्तियाँ मनुष्य को न दुर्बल बनाती हैं, न सबल, वे तो केवल यह प्रकट करती हैं कि वह क्या है।

—अज्ञात

१. विवरण। २. भरोसा। ३. पतझर। ४. वृक्ष।

विपरीत बुद्धि

न भूतपूर्वो न च केन दृष्टो हेम्नः कुरंगो न कदापि वार्ता।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीत बुद्धिः॥

न पहले कभी हुआ और न किसी ने देखा, सोने के मृग की कभी बात भी नहीं हुई; फिर भी राम को सुवर्ण मृग का लोभ हुआ। विनाश-काल आने पर बुद्धि विपरीत हो जाती है।

—चाणक्यनीति

विभूति

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥

जो-जो वस्तु विभूतियुक्त, कांतियुक्त और प्रभावयुक्त है, उस-उसको तू मेरे (ईश्वरीय) तेज के अंश से ही उत्पन्न जान।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व ३४।४१ अथवा गीता १०।४१)

विमुग्धता

तुलसी विलोकि कैं तिलोक के तिलक तीनि
रहे नर-नारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं।

त्रिलोकी के इन तीनों तिलकों (राम, सीता, लक्ष्मण) को देखकर मार्ग के ग्रामवासी नर-नारी ऐसे स्तब्ध रह गए मानो चित्रशाला के चित्र हों।

—तुलसीदास (कवितावली, अयोध्याकाण्ड, १४)

तुलसी रही है ठाढ़ी, पाहन गढ़ी सी काढ़ी[1],
न जानैं कहां ते आई, कौन की[2], को ही॥

—तुलसीदास (गीतावली, १५)

वियोग

प्रकृत्या शीतलो वायुर्नानापुष्परजोवहः।
दावाग्निसदृशो मेऽद्य दन्दहीति शुभां तनुम्॥

जो स्वभाव से ही शीतल है और नाना प्रकार के पुष्पों की सुगन्धित रज लेकर बहती है, वही वायु आज मेरे लिए दावानल ही के समान होकर मेरे सुन्दर शरीर को अत्यन्त दग्ध किये देती है।

—हरिवंशपुराण (विष्णुपर्व, ६३।६०)

हृदयमिषुभिः कामस्यान्तः सशल्यमिदं सदा
कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम्।
न च सुवदनामालेख्येऽपि प्रियामसमाप्यतां
मम नयनयोरुद्बाष्पत्वं न भविष्यति॥

कामदेव मेरे हृदय को दिन-रात अपने बाणों से वेधता रहता है। इसलिए मुझे ऐसी नींद कहां आ पाएगी कि प्रिया से भेंट हो जाए। और प्रिया का चित्र भी नहीं बन सकता, क्योंकि बीच में आंखों में आंसू आ जाने से वह अधूरा ही रह जाएगा।

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, २।१०)

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।

बादल के दिखाई देने पर सुखी व्यक्ति का भी चित्त डांवाडोल हो जाता है, फिर गले लगने की अभिलाषा वाले व्यक्ति के दूर स्थित होने पर तो कहना ही क्या।

—कालिदास (मेघदूत, पूर्व ३)

आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यंगनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि।

स्त्रियों के प्रेम-भरे तथा फूल के सदृश कोमल हृदय को वियोग में आशा का तन्तु ही टूटने से बचाए रखता है।

—कालिदास (मेघदूत, पू० ६)

सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम्।

सूर्य के चले जाने पर कमल अपनी शोभा निश्चित ही धारण नहीं करता।

—कालिदास (मेघदूत, उ० २०)

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशी भवन्ति।

लोग विरह को प्रेम का नाश करने वाला कहते हैं किन्तु

१. पत्थर में गढ़कर बनाई हुई। २. कौन थी।

वास्तव में वह तो भोग न होने के कारण अभीष्ट के सम्बन्ध वस्तु में रस बढ़ाकर प्रेम को अधिक बढ़ा देता है !

—कालिदास (मेघदूत, उ० ५५)

तपति प्रावृषि नितरामभ्यर्णं जलागमो दिवसः।

ग्रीष्म की धूप उतना नही जलाती जितना वृष्टि से पूर्व की बरसाती धूप जलाती है।

—हर्ष (रत्नावली, ३।१०)

दारयति दारुणः क्रकचपात इव हृदयं संस्तुतजनविरहः।

अपने परिचितजनों का विरह दारुण आरे की तरह हृदय को विदीर्ण कर देता है।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १७)

प्रस्थानं वलयः कृतं प्रियसखैरस्रैरजस्रं गतं,
धृत्या न क्षणमासितं व्यवसितं चित्तेन गन्तुं पुरः।
यातुं निश्चितश्चेतसि प्रियतमं सर्वे समं प्रस्थिता,
गन्तव्ये सति जीवित प्रिय सुहृत्सार्थः किमु त्यज्यते॥

हे प्राण ! जब प्रियतम ने जाने की ही मन में ठानी तो सभी तो एक साथ चल पड़े। कंकण ने प्रस्थान किया। प्रियतम के मित्र आंसू भी निरन्तर गए। धैर्य क्षण भर भी नहीं ठहरा। चित्त ने आगे जाने का निश्चय किया। अब तुम्हें भी तो जाना ही है, अतः तो फिर यह प्रिय मित्रों का काफिला जा रहा है, उसको क्यों छोड़ रहे हो?

—अमरुक (अमरुकशतक, ३५)

प्रासादे सा दिशि दिशि च सा पृष्ठतः सा पुरः सा
पर्यंके सा पथि पथि च सा तद्वियोगातुरस्या।
हंहो चेतः प्रकृतिरपरा नास्ति मे कापि सा सा
सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवादः॥

वियोग की आतुरता में वह कहां नहीं दीखती है? वह महल में दीखती है, प्रत्येक दिशा में दीखती है। पीछे दीखती है, आगे दीखती है। पलंग पर दीखती है, हर पथ पर दीखती है। हाय, मैं क्या बतलाऊँ? मेरा चित्त उसको छोड़कर कुछ सोच ही नहीं पाता। लगता है कि उसको छोड़कर मेरी कोई प्रकृति नहीं है। समस्त जगत में वही है, वही है, वही है, वही है, वही है। यह जाने कैसा अद्वैतवाद है !

—अमरुक (अमरुकशतक, १०२)

अमनिगच्छन्ति युगानि न क्षणः कियत् सहिष्ये न हि मृत्युरस्ति में।
स मा न कान्तः स्फुटमन्तरुज्झिता न तं मनस्तच्च न कायवायवः॥

मेरा यह क्षण नही है पर क्षण रूप से युग बीत रहे हैं। कहां तक दुःख सहन करूं? मृत्यु भी तो नही आती क्योंकि यह स्पष्ट है कि मेरा प्रिय भीतर से मुझे नहीं छोड़ता, मन मेरे प्रिय को नहीं छोड़ता और मेरे प्राण मन को नहीं छोड़ते।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ६।६४)

प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति।

प्रिया का विनाश हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् ही अरण्य तुल्य हो जाता है।

—भवभूति (उत्तररामचरित, ६।३०)

सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति।

प्रिय व्यक्ति के वियोग सन्तापकारी होते है।

—भवभूति (उत्तररामचरित)

असारे संसारे विरसपरिणामे तु विदुषां
वियोगो वैराग्यं द्रढयति वितन्वन् शमसुखम्॥

संसार की सारहीनता तथा विरसपरिणामता जानने वाले विद्वानों के लिए वियोग शांति-सुख को वितरित करता हुआ वैराग्य को दृढ़ करता है।

—श्रीकृष्ण मिश्र (प्रबोध चन्द्रोदय, ५।२२)

चन्द्रश्चंडकरायते मृदुगतिर्वातोऽपि वज्रायते
माल्यं सूचिकुलायते मलयजो लेपः स्फुलिंगायते।
रात्रिः कल्पशतायते विधिवशात् प्राणोऽपि भारायते
हा हन्त प्रमदावियोगसमयः संहारकालायते॥

चन्द्रमा सूर्य के समान हो जाता है, कोमल वायु वज्र के समान हो जाती है, फूल सुई के समान चुभने वाला हो जाता है, चन्दन का लेप आग की चिंगारी के समान हो जाता है, रात्रि सौ कल्पों के समान हो जाती है, भाग्यवशात् प्राण भारी हो जाते है। प्रिया के वियोग का समय संहारकाल हो जाता है।

—हनुमान पंडित (हनुमन्नाटक, ५।२६)

सुनिचितमपि शून्यमाभसते परिजनविभवोऽपि सैकाकिता।
अरुचिरभवदस्य लक्ष्मीमुखे त्वदनभिगमनेन रिक्तं मनः॥

लोगों से परिपूर्ण भी उसे शून्य-सा लगता है, विभव और परिजनों से घिरे रहने पर भी वह अपने को एकाकी समझता है, सम्पत्ति और सुखो से इसे अरुचि हो गई है तथा तुम्हारे वियोग से इसका मन खाली हो गया है।

—धनंजय (द्विसंधान महाकाव्य, १३।४०)

हृदयं मदनायत्तं वपुरायत्तं च गुरुजनस्यैव।
चरणं देवायन्तं कथं न सीदन्तु कुलकन्याः॥

हृदय काम के अधीन है, शरीर गुरुजनों के अधीन है, मरण दैव के अधीन है, फिर कुल कन्यायें दुःखी क्यों न हों?

—वत्सराज (रुक्मिणीहरण, ३।१)

तावदेवामृतमयी यावल्लोचनगोचरा।
चक्षुःपथादपगता विषादप्यतिरिच्यते॥

स्त्री तभी तक अमृत तुल्य होती है जब तक नेत्रों के सामने रहे; आँख से दूर होने पर वह विष से भी बढ़ कर हो जाती है।

—भर्तृहरि (शृंगारशतक, ७४)

देव यदि ददासि जन्म महिलानां किमर्थं तत् प्रेम।
अथ प्रेम तत् किमर्थ न वितरसि विरहे मरणं च॥

हे देव! यदि महिलाओं को जन्म देते हो तो प्रेम क्यों देते हो? यदि प्रेम देते हो तो विरह में मरण क्यों नहीं देते?

—रुद्रदेव (ययातिचरित, ४।२८)

आहारे विरतिः समस्तविषयग्रामे निवृत्तिः परा
नासाग्रे नयनं तदेतदपरं यच्चैकतानं मनः।
मौनं चेदमिदं च शून्यमधुना यद्विश्वमाभाति ते
तद् ब्रूयाः सखि योगिनी किमसि भोः किं वा वियोगिन्यसि॥

हे सखी! तुझे आहार से विरक्ति हो गई। तुझे सभी भोग-विलास की वस्तुओं से परम निवृत्ति हो गयी। तेरी दृष्टि सदा नासाग्र रहती है। तेरा मन निरन्तर एक लक्ष्य में लीन हो रहा है। तू मौन साध रही है और तुझे अब यह विश्व शून्य प्रतीत हो रहा है। तो बता तो कि तू योगिनी है या वियोगिनी।

—अज्ञात

अज्ज व्वेअ पउत्थो अज्ज व्विअ सुण्ण आइँ जाआइं।
रत्थामुहदेउलचत्त राइँ अह्यं च हिअआइँ॥

उन्होंने आज ही प्रवास किया और आज ही गलियां, मन्दिर, चबूतरे और हमारे हृदय सूने हो गए।

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथा सप्तशती, २।९०)

धण्णा ता महिलाओ जा दइअं सिविणए वि पेच्छन्ति।
णिद्द व्विअ तेण विणा ण एइ का पेच्छए सिविणं॥

जिन्हें स्वप्न में भी प्रिय का दर्शन हो जाता है, वे स्त्रियां धन्य हैं। हम तो उनके बिना निद्रा ही नहीं आती, फिर स्वप्न कौन देखे?

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथा सप्तशती, ४।९७)

गरुअं पि विरहदुःखं आसाबन्धो सहावेदि।

आशा का बन्धन विरह के कठोर दुःख को भी सहन करा देता है।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ४।१६)

एक्किहिं अच्छिहिं सावणु अण्णहिं भद्दवउ
माहउ महिअलसत्थरि गंडत्थल सरउ।
अंगहिं गिम्ह सुहच्छिर तिलवण मग्गसिरु
मुद्धिहिं मुहपंकअसरि आवासिउ सिसिरु॥

इस मुग्धा की एक आँख में सावन और दूसरी में भादों है। पृथ्वी के बिछौने में वसन्त तथा कपोलों में शरद है। दूसरे अंगों में ग्रीष्म तथा सुखाश्रय रूप तिलवनों में मार्गशीर्ष तथा मुख रूपी पुष्करिणी में शिशिर ऋतु को बसा दिया गया है।

[प्राकृत] —अज्ञात

सखि! मोर पिया।
अबहु न आएल कुलिस हिया।
नखर खेअओलहुँ दिन लिखि-लिखि।
नयन अन्धाओलहुँ पिय-पथ-देखि।

—विद्यापति (विद्यापति पदावली)

अनुखन माधव-माधव सुमरइते, सुन्दरि भलि
मधाई ।
ओ निज भाव-सुभावहि बिसरल, अपनेहि गुन
लुबुधाई ॥
—विद्यापति (विद्यापति पदावली)

जिस घटि बिरह न संचरै, सो घर सदा मसान ।
—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ६)

बिरह अगिन तन में तपै, अंग सबै अकुलाय ।
घट सूना जिव पीव महँ, मौत ढूंढ फिरि जाय ॥
—कबीर

ज्यूं सुधि आवत पीव की, बिरह उठत तनि आगि ।
ज्यूं चूने की कांकरी, ज्यों छिरके त्यों आगि ॥
—रैदास

जोवन जलहिं विरह मसि छुवा ।
फूलहिं भँवर फिरहिं भा युवा ॥
—जायसी (पदमावत, १७२)

जोवन चाँद उवा जस बिरह भएउ संग राहु ।
—जायसी (पदमावत, १७२)

बिरह दवा अस को रे बुझावा ।
को प्रीतम सें करै मेरावा ॥
—जायसी (पदमावत, १९९)

आइ बसंता छपि रहा होइ फूलन्ह के भेस ।
केहि विधि पावौ भँवर होई कौनु सो गुरु उपदेस ॥
—जायसी (पदमावत, २००)

मुहम्मद चिनगी अनंग की सुनि महि गगन डेराइ ।
धनि विरही औ धनि हिया जेहि सब आगि समाइ ।
—जायसी (पदमावत, २०५)

जहँ लग चन्दन मलैगिरि औ साएर[1] सब नीर ।
सब मिलि आइ बुझावहिं बुझै न आगि शरीर ॥
—जायसी (पदमावत, २५३)

मिलि जौ पिरीतम बिछुरै काया अगिनि जराइ ।
के सो मिलै तन तपति बुझै कै मोहि मुएँ बुझाइ ।
—जायसी (पदमावत, २९४)

पिय सौं कहेहु संदेसरा ऐ भँवरा ऐ काग ।
सो धनि विरहैं जरि गई तेहिक धुआँ हम लाग ।
—जायसी (पदमावत, ३४९)

यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उड़ाउ !
मकु तेहि मारग होइ परौं कंत धरै जहँ पाउ ॥
—जायसी (पदमावत, ३५२)

हाड़ भए झुरि किंगरी नसैं भई सब ताँति ।
रोवँ रोवँ तन धुनि उठै कहेसु बिथा एहि भाँति ॥
—जायसी (पदमावत, ३६१)

जब लगि बिरह न होइ तन, हिये न उपजइ पेम ।
तब लगि हाथ न आव तप, करम धरम सत नेम ।
—जायसी (चित्ररेखा)

अनल तैं विरह-अगिनि अति ताती ।
—सूरदास (सूरसागर, १०।३५७९)

सखी इन नैननि तैं घन हारे ।
बिनहीं रितु बरषत निसि बासर, सदा मलिन
दोउ तारे ॥
—सूरदास (सूरसागर, १०।३८५२)

पिय बिनु नागिन कारी रात ।
जो कहुँ जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उलटी
ह्वै जात ॥
जत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी गात ।
—सूरदास (सूरसागर, १०।३८९०)

फूल बिनन नहिं जाऊँ सखी री, हरि बिनु कैसे फूल ।
सुन री सखि मोहिं राम दुहाई, लागत फूल त्रिसूल ॥
जब मैं पनघट जाऊं सखी री, वा जमुना कैं तीर ।
भरि भरि जमुना उमड़ि चलति है, इन नैननि के
नीर ॥
—सूरदास (सूरसागर, १०।३८९३)

बिरह बिथा अंतर की बेदन, सो जाने जिहिं होई ।
—सूरदास (सूरसागर, १०।३९९८)

१. सागर ।

नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू।
कालनिसा सम निसि ससि भानू॥
कुवलय बिपिन कुन्त बन सरिसा।
बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा।
उरग स्वास सम त्रिविध समीरा॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।१५।१-२)

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहि प्रान केहि बाट॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।३०)

विरह अगिनि तनु तूल समीरा।
स्वास जरइ छन माहि सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी।
जरैं न पाव देह बिरहागी॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।३१।४)

विरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
ये अँखियां दोउ वैरिनि देहिं बुझाइ॥
— तुलसीदास (बरवै रामायण, ३६)

डहकु न है उँजियरिया निसि नहिं धाम।
जगत जरत अस लाग मोहिं बिनु राम॥

हे सीता! धोखे में मत पड़ो, यह चाँदनी रात का चाँदना है, क्योंकि रात में धूप नहीं होती। यह सुनकर सीता ने कहा—मुझे तो श्री राम के बिना सारा जगत जलता हुआ जान पड़ता है।
—तुलसीदास (बरवै रामायण, ३७)

अब जीवन के है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया के मुंदरी कंकन होइ॥

हे हनुमा! अब मेरे जीने की कोई आशा नहीं है, क्योंकि कनिष्ठिका उंगली की मुद्रिका कंकण हो गयी है।
—तुलसीदास (बरवै रामायण, ३८)

जदपि गये घर सों निकरि मो मन निकरे नाहिं।
मनसो निकरहु ता दिनहि जा दिन प्रान नसाहिं॥
—रत्नावली

भरि भरि आवैं नैन चितहूं न परै चैन,
मुखहू न आवे बैन, तन की दसा कछु और भई री।
—नंददास (पदावली, ५४)

हौं जानौं पिय-मिलन ते विरह अधिक सुख होय।
मिलते मिलिये एक सों, बिछुरें सब ठां सोय॥
—नंददास (रूपमंजरी, दोहा ४६४)

बिनु देखें छिन कल न परत है, पल भरि कल्प बिहात॥
—चतुर्भुजदास

भूलि गई सुख, फूलि रह्यो दुख,
नैन लगे गिरि के झरना।
कवि गंग यों नारि विचारि करै,
पिय के बिछुरें तै भलो मरना॥
—गंग (गंग-कवित्त, क्र. १६८)

आयो है जु अंत पै न जानों तंत मंत कछू,
कंत सों बसाति न बसंत सों बसाति है।
—गंग (गंग-कवित्त, क्र. २२५)

कैसे प्रान पिया बिन राखूं जीवन-मूल जड़ी।
—मीरा (पदावली)

छांड़ि गयो अब कहां बिसासी, प्रेम की बाती बराय।
विरह समुद्र में छांड़ि गयो पिव, नेह की नाव चलाय॥
—मीरा (पदावली)

दरस बिन दूखन लागे नैन।
जब तें तुम बिछुरे पिय प्यारे कबहुँ न पायो चैन॥
—मीरा (पदावली)

कहा करों, कासों कहों, को बूझै, कित जाउं।
बन ही बन डोलत फिरौं, बोलत लै लै नाऊँ॥
—भट्ट जी

जब-जब वै सुधि कीजिये, तब सब ही सुधि जाहिं।
आँखिन आँखि लगी रहें, आँखौं लागति नाहिं॥
—बिहारी (बिहारी सतसई, ५१०)

साँसनि ही सौ समीर गयो अरु
आँसुन ही सब नीर गयो ढरि।

तेज गयो गुन लै अपनो अरु
भूमि गइ तन की तनुता फरि ॥
देव जियै मिलिबेही की आस कि
आसहू पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन ते मुख फेरि हरै हँसि
हेरि हियो जू लियो हरि जू हरि ॥

—देव (भाव-विलास, ४८)

पर-कारन देह कों धारे फिरौ परजन्म जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सबही विधि
सुन्दरता सरसौ ॥
'घन आनन्द' जीवन-दायक ह्वै कबौ मेरियौ पीर
हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मों अँसुवान को
लै बरसौ ॥

—घनआनंद (घनानंद कवित्त)

कोण सुणै कासूं कहूँ, को जाणै परपीर।
प्रीतम बिछुड़ै जीव कूं, कौन बँधावै धीर ॥

—गरीबदास

पी पी कहते दिन गया, रैन गई पिय ध्यान।
विरहिन के सहजै सधै, भगति जोग तप ध्यान ॥

—चरनदास

जा थल कीन्हे विहार अनेकन
ता थल कांकरी बैठि चुन्यो करै।
जा रसना सों करी बहु वातन
ता रसना सों चरित्र गुन्यो करै ॥
'आलम' जौन से कुंजन में करी
केलि तहां अब सीस धुन्यो करै।
आँखिन में जो सदा रहते,
तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करै ॥

—आलम

हम कौन सों पीर कहें अपनी
दिलदार तो कोऊ दिखातो नहीं।

—बोधा

सहते ही बनै, कहते न बनै
मन ही मन पीर पिरैबो करै।

—बोधा

जनि कोई विरह दुक्ख जिय मानै ओहिं जग आवा सुक्ख।
धनि जीवन जग ताकर जाहि बिरह दुख दुक्ख ॥

—मंझन (मधुमालती, २७)

जे दिन जाहिं वियोग महँ ते को आउ[1] कहाइ।

—मंझन (मधुमालती, २११)

सरग बुंद[2] सभ[3] होहिं न मोती।
सभ घट बिरह देइ नहिं जोती[4] ॥
कोटि माहिं बिरला जग कोई।
जाहि सरीर बिरह दुख होई ॥
रतन कि सायर सायरहिं[5] गज मुकुता गज कोइ[6]।
चंदन कि बन बन उपजै बिरह कि तन तन होइ ॥

—मंझन (मधुमालती, २३२)

बिरह समंद अथाह अति जग जानै सभ कोइ।
मानिक सो लै उभरे जो मरजीवा[7] होइ ॥

— मंझन (मधुमालती, २३४)

'मंझन' जो जग जनम ले बिरह न कीया घाव।
सूने घर का पाहुना ज्यों आवा त्यों जाव ॥

—मंझन (मधुमालती)

पलटू हरि से बीछुरे ये ना जीवैं तीन।
फनि से मनि जो बीछुरे जल से बिछुरे मीन ॥

—पलटू साहिब

मुख ग्रीषम, पावस नयन, तन भीतर जडकाल।
पिय बिन तिय तन तीन ऋतु, कबहुँ न मिटैं जमाल ॥

—जमाल (जमाल कृत दोहे, ३२)

मिलैं, प्रीत मन होत है, सब काहूँ कै लाल।
बिना मिलैं मन में हरष, साँची प्रीत जमाल ॥

—जमाल (जमाल कृत दोहे, ८२)

---

१. आयु। २. आकाश के बादलों की बूंदें। ३. सब। ४. ज्योति। ५. रत्न क्या प्रत्येक सागर में होते हैं। ६. क्या गज-मुक्ता प्रत्येक गज में होते हैं? ७. जीवन्मृत।

बीती औधि आवन की लाल मनभावन की।
डग भई बावन की सावन की रतियां॥

मेरे मनभावन प्रिय के आने की अवधि बीत गई है और अब विरह में सावन की रातें वामन भगवान के डग के समान विशाल हो गई हैं।

—सेनापति (कवित्त रत्नाकर, ३।२८)

बिना प्रान प्यारे भये दरस तिहारे हाय
देखि लीजो आँखैं ये खुली ही रहि जायँगी।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

तुम बिनु पिय को घर अँधियारो।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (कार्तिक स्नान, २०)

'हरिचंद' श्याम-सँग जीवन-सुख सब भागे।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (प्रेम-तरंग, ८७)

सब गुन होइँ जुपै तुम नाहीं तौ बिनु लौन रसोई।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (प्रेम-प्रलाप, २६)

यह भाग की मेरी सदा गतिरी अति रोवति प्यासी
रहैं अँखियां।
इनको न मिल्यौ सुपने सुख हाय ए पातकी चातकी
सी दुखियाँ॥
लगती नहिं बेर इन्हें लगते लखते जगमोहन की
सखियाँ।
सुख राम रच्यौ न इन्हैं कबहूँ समुझावति कोउ
नहीं सखियाँ॥

—ठाकुर जगमोहनसिंह (श्यामलता, ९)

दिननि के फेर सौं भयो है हेर-फेर ऐसौ
जाकों हेरि फेरि हेरिबोई हिरिबो करैं।
फिरत हुते जू जिन कुंजनि में आठौ जाम
नैननि में अब सोई कुंज फिरिबो करैं॥

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (उद्धव शतक)

विरह बिथा की कथा अकथ अथाह महा
कहत बनै न जो प्रवीन सुकबीनि सौं॥

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (उद्धव शतक)

ज्यों-ज्यों बसे जात दूरि-दूरि प्रिय प्रान-मूरि
त्यों-त्यों धँसे जात मन-मुकुर हमारे हैं।

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (उद्धव शतक)

भूख प्यास मन की उमंग सब, हरकर कहां गई
हे सुन्दरि !
मुझे असह्य विरह की पीड़ा, क्यों दे गई प्रिये !
प्राणेश्वरि॥
अब जाना, हे प्रिये ! तुम्हारे, तन में वह है
अद्भुत पावक।
समीपस्थ को शीतल है जो, किन्तु दूरवर्ती को दाहक॥

—रामनरेश त्रिपाठी ('हे प्राणेश्वरि' कविता)

पीवो करैं दिन रैनि सुधाधर भूख तृषा न सताइ
सकै जू।
अंक सो अंक लगाये रहैं गुर लोग की संक न आइ
सकै जू॥
तोष कवों तन न्यारोई होत नहीं ते कहूँ अब जाइ
सकै जू।
सांचो संयोग वियोग हि में हम ऊधौ विभूति न
लाइ सकैं जू॥

—तोष (सुधानिधि, ४४१)

विरह में आनन्द नष्ट नहीं हुआ करता, केवल आवृत्त रहता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (रस मीमांसा, ५९)

अभिलाषाओं की करवट
फिर सुप्त व्यथा का जगना,
सुख का सपना हो जाना
भीगी पलकों का लगना॥

—जयशंकर प्रसाद (आंसू, पृ० ११)

झंझा झकोर गर्जन था
बिजली थी, नीरद माला
पाकर इस शून्य हृदय को
सब ने आ डेरा डाला।

—जयशंकर प्रसाद (आंसू, पृ० १५)

हीरे-सा हृदय हमारा
कुचला शिरीष कोमल ने
हिमशीतल प्रणय अनल बन
अब लगा विरह से जलने।
—जयशंकर प्रसाद (आँसू, पृ० ३०)

मादकता से आये तुम
संज्ञा से चले गए थे।
हम व्याकुल पड़े बिलखते
थे, उतरे हुए नशे से।
—जयशंकर प्रसाद (आँसू, पृ० ३३)

बिरह है अथवा यह वरदान !
कल्पना में है सिसकती वेदना,
अश्रु में जीता सिसकता गान है।
सुमित्रानन्द पंत (पल्लव, पृ० ६५)

तुम छोड़ गये द्वार
तबसे यह सूना संसार।
—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (गीतिका, कविता २३)

तप वियोग की चिर ज्वाला से
कितना उज्ज्वल हुआ हृदय यह,
पिष्ट कठिन साधना-शिला से
कितना पावन हुआ प्रणय यह।
—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (परिमल, पृ० ६३)

निमिषों में ससार ढला है,
ज्वाला में उर-फूल पला है,
मिट-मिट कर नित मूल्य चुकाने
को सपनों का भार मिला है।
—महादेवी वर्मा (दीप-शिखा, पृ० १३४)

जल में शतदल तुल्य सरसते
तुम घर रहते, हम न तरसते
देखो दो दो मेघ बरसते
मैं प्यासी की प्यासी।
—मैथिलीशरण गुप्त (यशोधरा)

बहुत दिनों तक हुई परीक्षा,
अब रूखा व्यवहार न हो।
अजी बोल तो लिया करो तुम,
चाहे मुझ पर प्यार न हो॥
—सुभद्राकुमारी चौहान (मुकुल, प्रियतम से)

अलग-अलग ही अबसे हमको जीवन में
गाना-रोना है
साथी, हमें अलग होना है।
—बच्चन (निशा निमंत्रण, पृ० १०६)

मोम-सा तन घुल चुका अब दीप-सा मन जल
चुका है।
—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, कविता २३,)

करुणामय को भाता है
तम के परदों में आना,
हे नभ की दीपावलियों,
तुम पल भर को बुझ जाना।
—महादेवी वर्मा (नीहार, पृ० ३६)

मन में राखों मन जरै, कहों तो मुख जरि जाय,
अहमद बात न बिरह की, कठिन परी, दुहुँ भाय।
—अहमद

हाड़ चाम रग मांस, सो तो बिरहा ले गयो।
अहमद रह्यो जु सांस, ताही को सांसो पर्यो॥
— अहमद

बिन्दु से लेकर पर्वत तक एक ही व्याकुल वेदना समुद्र की लहरों की तरह पछाड़ खा-खाकर लौट रही है। एक तार को छूओ और सहस्रों तार छन-छना उठते हैं। सब तार मिलकर पूर्ण संगीत के निर्माण का कार्य करते हैं। नरलोक से लेकर किन्नर लोक तक एक ही व्याकुल अभिलाष उल्लसित हो रहा है। मिलन स्थितिबिन्दु है, विरह गति-वेग है। दोनों के परस्पर आकर्षण से रूप की प्रतीति होती रहती है, विचार मूर्त्त आकार ग्रहण करते हैं, भावना सौन्दर्य बनती है। विरह में सौभाग्य पनपता है, रूप निखरता है, मन निर्मल होता है, बुद्धि एकता का सन्धान करती है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कालिदास की लालित्य योजना)

नीले नभ की गहराई में
डूब लौट आती हैं आँखें।
होने पर भी दूर आज
तुम कितने निकट हो गई मेरे।

—गिरिजाकुमार माथुर (मंजीर)

पीतम तू मत जानियो भयो दूर को बास।
देह, गेह कित हूँ रहे प्रान तिहारे पास॥

—अज्ञात

डर न मरन विधि विनय यह, भूत मिलैं निज बास।
प्रिय हित बापी मुकुर मग, बीजन अँगन अकास॥

—अज्ञात

प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो कहुँ होय विदेस।
तनमें, मनमें, नैन में तासों कौन संदेस॥

—अज्ञात

विरह कमंडल कर लिए, वैरागी दोउ नैन।
माँगे दरस मधूकरी, छके रहैं दिन रैन॥

—अज्ञात

उर में दाह, प्रवाह दृग, रह-रह निकले आह।
मर मिटने की चाह हो, यही विरह की राह॥

—अज्ञात

नातवानी[1] ने बचाई जान मेरी हिज्र[2] में
कोने-कोने ढूंढ़ती फिरती क़ज़ा[3] थी मैं न था।

—बहादुरशाह 'ज़फ़र'

कावे-कावे सख़्त-जानीहा-ए-तनहाई न पूछ,
सुबह करना शाम का लाना है जू-ए-शीर का।

वियोग और विवशता से पथराए प्राण जो प्रचण्ड पीड़ा पा रहे है उसकी कथा कुरेद-कुरेदकर मत पूछ। उसका अंत कहीं ही नहीं दिखाई दे रहा है वियोग की रात्रि का प्रभाव करना वैसा ही कठिन काम हो रहा है जैसा फरहाद के लिए दूध की नहर तैयार करना था।

—ग़ालिब (दीवान)

१. दुर्बलता। २. वियोग। ३. मृत्यु।

दिल में जौक़े—वस्लो-यादे-यार तक बाक़ी नहीं,
आग इस घर में लगी ऐसी कि जो था जल गया।

मेरे हृदय-मन्दिर में ऐसी आग लगी, कि जो भी कुछ था, यहाँ तक कि प्रिय-मिलन की इच्छा और प्रिय से मिलन की स्मृति तक भस्म हो गई।

—ग़ालिब (दीवान)

जाते हुए कहते हो क़यामत[1] को मिलेंगे,
क्या खूब! क़यामत का है गोया[2] कोई दिन और।

—ग़ालिब (दीवान)

हमने माना कि तग़ाफ़ुल[3] न करोगे, लेकिन
ख़ाक हो जायेंगे हम, तुमको ख़बर होने तक।

—ग़ालिब (दीवान)

मेहरबाँ होके बुला लो मुझे चाहो जिस वक़्त,
मैं गया वक़्त नहीं हूं कि फिर आ भी न सकूं।

—ग़ालिब (दीवान)

कहते हैं क्यों ख़ुदा को किया याद हिज्र[4] में,
फ़ुर्सत बड़ी मिली तुझे मेरे ख़याल से'।

—दाग़

बरस ऐ अब्र[5]! जितना चाहे तू अब तेरी बारी है,
कभी दिल था तो मैं रो-रोके एक दरिया[6] बहाता था।

—ज़िया

जुदाई के ज़माने की सजन क्या ज़्यादती कहिए,
कि इस ज़ालिम की जो हम पर घड़ी गुज़री, सो जुग बीता।

—शाह आबरू

हर आन हमको तुझ बिन एक एक बरस हुई है
क्या आ गया ज़माना ऐ यार रफ्ता रफ्ता।

—मीर तक़ी 'मीर'

छूट जाए ग़म के हाथों से जो निकले दम कहीं
ख़ाक ऐसी ज़िन्दगी पर तुम कहीं और हम कहीं।

—ज़ौक़

१. प्रलय। २. मानो। ३. असावधानी। ४. वियोग। ५. बादल। ६. नदी।

इलाही[1] ! शबे-ग़म[2] में इतना तो हो,
कोई झट से कह दे सहर[3] हो गयी।

—अमीर मीनाई

इस परदानशी से कोई किस तरह बर आये ?
जो ख़्वाब में भी आए तो मुँह ढाँप कर आये।

—जुरअत

यूं जिन्दगी गुज़ार रहा हूँ तेरे बगैर,
जैसे करे खिज़ां[4] में कोई गुलसिता[5] की सैर।

—'फ़िराक' गोरखपुरी (बज़्मे-जिन्दगी, रंगे शायरी, पृ० ४७)

यार है दिल में मगर ढूंढते हम रहते हैं
वस्ल हासिल है मगर हिज्र के ग़म सहते है।

—अज्ञात

जो मज़ा इन्तज़ारी में देखा।
न वह मज़ा वस्ले यारी में देखा।

—अज्ञात

तुम्हारे नाम से ही लोग मुझको जान जाते है,
मैं इक खोयी हुई वह शै[6] हूं जिसका पता तुम हो।

—अज्ञात

जे हाल मिसकी मकुन तग़ाफ़ुल[7] दुराय नैना बनाए बतियां।
किताबे हिज्रां न दारम ऐ जां[8] न लेहु काहे लगाए छतियां।
शबान हिज्रां दराज चूं जुल्फ व रोज़े वसलत चू उम्र कोताह[9]।
सखी पिया को जो मैं न देखूं तो कैसे काटूं अँधेरी रतियां ॥

—अमीर ख़ुसरो

माराज आरज़ूए तू परवाएख़्वाब नेस्त,
बेरूए दिलफ़रेब तू बूदन सवाब नेस्त।

तुझसे मिलने की इच्छा में मुझे नींद की चिंता नहीं है। तेरे मोहक मुख के बिना अब अच्छा नहीं लगता है।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

आशिक़े ख़स्ता ज़े दर्दग़मे हिज्र तो व सोख़्त।
ख़ुद न पुरसी तु कि आ आशिक़े गमख़ार कुजा अस्त॥

बेचारा प्रेमी तेरे प्रेम और विरह में जल रहा है और तू यह भी नहीं पूछता कि वह दुखियां कहाँ है।

[फारसी] —हाफ़िज़

सीनाअम ज़े आतशे दिल दर ग़मे जानानां बसोख़्त
आतिशी बूद दरी ख़ाना कि काशाना बसोख़्त।

हृदय की अग्नि से मेरा सीना प्रिय के वियोग में जल गया है। इस घर की अग्नि ने सारे घर को जलाकर भस्म कर डाला है।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

दर ख़ानए आबो गिल बे तुस्त ख़राब ईं दिल।
या ख़ाना दर आ ऐ जाँ, या ख़ाना ब परदाज़म्॥

मिट्टी और पानी के घर में यह हृदय तेरे बिना मिटा जा रहा है। प्रियतम या तो तू इस घर में आ जा या मैं ही इस घर को त्याग कर पृथक् हो जाऊँ।

[फ़ारसी] —मौलाना रूम

जेकी फ़िराकां, सो विसालां न थिए,
अची ओताकां, मूंखे प्रियुनि परे कयो।

जो आनन्द वियोग से मिलता है, वह संयोग से नहीं। मेरे आवास में आकर प्रिय ने उलटा मुझे दूर कर दिया।

[सिंधी] —शाह अब्दुल्ल लतीफ़

ए वाड़ी ए वावड़ी, ए सर केरी पाल।
वै साजण वै दीहडा, रही संभाल संभाल॥

यह वाटिका, यह वावड़ी, यह तालाब की पाल, वे पति वे दिन इनको बार बार याद करती हूं।

[राजस्थानी] —ढोला मारू रा दूहा

यहु तन जारी मसि करूं, धुंआ जाहि सरग्गि।
मुझ प्रिय बद्दल होइ करि, बरसि बुझावइ अग्गि॥

यह तन जलाकर मैं कोयला कर दूं और उसका धुआँ स्वर्ग तक पहुँच जाए, मेरा प्रियतम बादल बनकर बरसे और बरसकर अग्नि को बुझा दे।

[राजस्थानी] —ढोला मारू रा दूहा (१८१)

---

१. हे भगवान। २. वियोग-रात्रि। ३. प्रभात। ४. पतझड़। ५. उपवन। ६. वस्तु। ७. इस गरीब की दशा को मत भुलाओ। ८. हे प्रियतम मैं अब विरह नहीं सह सकती। ९. विरह की रात्रियां तेरे केशों के समान बड़ी और मिलन के दिन तेरी वय के समान छोटे हैं।

तारा गिणतां मोहि विहावै, रैंणि निरासी।
बीरहणीं विल्लाप करै, हरि दरसन की प्यासी॥

[राजस्थानी] —चखना

साजन ऐसी प्रीत कर, निस और चंदे हेत।
चंदे बिन निस सांवली, निस बिन चंदो सेत॥

हे सज्जन, ऐसा प्रेम कर, जैसा प्रेम चांद और रात्रि में होता है। बिना चन्द्रमा के रात काली रहती है और रात के बिना चांद सफ़ेद लगता है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

साजन साजन म्हैं करूं, साजन जीव जड़ीह।
सुरत लिखावूं हीवडै़, निरखूं घड़ी घड़ीह॥

प्रतिपल मैं "साजन-साजन" कहती रहती हूँ। वे मेरे जीवन-आधार है। उनकी मूर्ति मेरे हृदय में बसी हुई है और प्रतिपल मैं उसे निहारा करती हूँ।

[राजस्थानी] — अज्ञात

सजण जेही मांछली, जेहा रखो सनेह।
जब ही जल थी बीछडै़, तब ही त्यागै देह॥

प्रिय! स्नेह रखो तो जल की मछली की भांति रखो। जल से वियोग होते ही मछली प्राण त्याग देती है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

सजण बोलावे हूँ खड़ी, ऊभी बजारां मज्झ।
लाख घरो री बसतड़ी, लगै बिरंगी अज्ज॥

प्रियतम को विदा देने मैं बाजार के बीच में खड़ी हूँ। यद्यपि लाख घरों की बस्ती है पर पिया बिना आज सूनी लग रही है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

सजण सिधाया हे सखी, हरियो दुपटो हाथ।
सूनी करगा सेजड़ी, तन-मन लेग्या साथ॥

सखी, प्रियतम चले गए, हरा दुपट्टा हाथ मे था। मेरी सेज तो सूनी कर ही गये पर साथ ही मेरा तन और मन लेते चले गये।

[राजस्थानी] —अज्ञात

डाढ खटक्के कांकरो, फूस खटक्के नैण।
कहियो खटक्के आकरो, बिछड्यां खटक्के सैण॥

दाढ़ में कंकड़ खटकता है, तिनका आंख में खटकता है, कहा हुआ कठोर वचन खटकता है तथा प्रेमी का वियोग हृदय में खटका करता है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

तिणको हूं तो तोड़ लूं, प्रीत न तोड़ी जाय।
प्रीत लगी छूटै नहीं, ज्यां लग जीव न जाय॥

तिनका हो तो उसे तोड़ डालू, प्रीत तो तिनके की भांति तोड़ी नही जा सकती। जब तक शरीर से प्राण नही छूटता तब तक लगी हुई प्रीत नही छूट सकती।

[राजस्थानी] —अज्ञात

नोज किसी सूं लागजो, वैरी छानो नेह।
धुकै न धूंवो नीसरै, जलै सुरंगी देह॥

भगवान न करे किसी के साथ यह वैरिन गुप्त प्रीति लगे। भीतर ही भीतर आग लगी रहती है। धुआं निकलता किसी को दिखलाई नही देता पर सुरंगी देह हर समय जलती रहती है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

एह ज मिंदर ये नगर, ये पिलंग ये ठौर।
मन मोणें सज्जण विनां, सह लागै कुछ और॥

यही महल, यही नगर, यही पलंग और यही स्थान जो पहले रमणीक लगते थे, आज प्रियतम के विना सभी कुछ और के और नजर आते हैं।

[राजस्थानी] —अज्ञात

जोबन की फौजां चढ़ी, कोयल बीण बीजारा।
बोल पपीहा पिया-पिया, औ दुख सह्यो न जाय॥

यौवन की सेना चढ़ी है, कोकिला वीन बजा रही है। पपीहा 'पिया-पिया' कर रहा है। विरहिनी से यह दुख सहा नहीं जाता।

[राजस्थानी] —अज्ञात

फौज घटा खग दामणी, बूंद तीर घण नेह।
बालम अकेली जाण के, मारण आयो मेह॥

घटा ने सेना का रूप धारण कर लिया है, बिजली तलवार बन गई है। बूंदें तार की सी चोट कर रही हैं। विरहिणी को अकेली देखकर मेह भी उसे मारने आया।

[राजस्थानी] —अज्ञात

मांणस सूं पंखी भला, जो विन उड़े मिलंत।
और सनेही बापड़ा, अलगा झूर मरंत।।

मनुष्य से पक्षी ही भले जो उड़कर अपने प्रिय से मिल तो आते हैं। वेचारा मनुष्य ! स्नेही हृदय अलग-अलग दूर वैठे रोते रहते हैं।

[राजस्थानी] —अज्ञात

विरह अगन भाटी जले, मनसा मद की धार।
जोवन झलं झलपटां, कौण वुझावण हार।।

विरहाग्नि की भट्टी जल रही है। इस भट्टी में तप कर मन की इच्छायें मद की धारा बन चू रही हैं। यौवन इस अग्नि में हवा झल उसे और प्रज्वलित किये जा रहा है। अब इस अग्नि को वुझाये कौन ?

[राजस्थानी] —अज्ञात

पूर्णतः हाथ की कलाई से न उतरने वाली मेरी चूड़ियां प्रियतम से मेरे वियोग को कैसे न घोषित करेंगी ?

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ११५७)

संयोग-सुख को त्याग कर गये हुए प्रियतम के प्रत्यागमन के स्मरण मात्र से मेरा हृदय वृक्ष की शाखा पर चढ़कर देखने लगता है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ११६४)

आँखें भरकर प्रियतम को देखूं। देखने पर मेरे कोमल स्कन्धों का पीलापन स्वतः दूर हो जाएगा।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ११६५)

मेरे प्रियतम एक दिन लौटकर आ जायें तो मैं उन्हें ऐसा देखूं कि सम्पूर्ण प्रेम-रोग उड़ जाये।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ११६६)

विरह की अधिकता से हृदय के विदीर्ण होने के पश्चात् प्राप्य या प्राप्त होने से प्रयोजन ही क्या ? और संयोग होने पर भी क्या प्रयोजन ?

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ११७०)

क्या अपने हृदय से मुझे अलग रखने वाले प्रियतम सतत मेरे हृदय में प्रवेश करते लज्जित नहीं होते ?

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १२०५)

Sometimes, when one person is missing, the whole world seems depopulated.

कभी-कभी एक व्यक्ति के न दिखाई देने पर समस्त संसार जनशून्य प्रतीत होता है।

—लामर्टाइन

विरह

दे० 'वियोग'।

विराट पुरुष

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्।।

विराट पुरुष हजारों सिर वाला, हजारों आँख वाला और हजारों पैर वाला है। वह विश्व को सर्वतः स्पर्श करता हुआ दस अंगुल आगे गया हुआ है।

—यजुर्वेद (३१।१)

विरोध

अहो दुरन्ता वलवद्विरोधिता।

अहो ! वलवानों से विरोध करने का परिणाम अच्छा नहीं होता।

—भारवि (किरातार्जुनीय, १।२३)

सामानाधिकारण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः।

तेज और अन्धकार की एक-आश्रयता कहां सम्भव है।

—माघ (शिशुपालवध, २।६२)

विलम्ब

रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि।
अप्रिये चैव कर्तव्ये चिरकारी प्रशस्यते।।

राग, दर्प अभिमान, द्रोह पापाचरण और किसी का अप्रिय करने में जो विलम्ब करता है, उसकी प्रशंसा की जाती है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।२६६।७०)

कस्तावदौषधमुपलभ्य मन्दी भवत्यातुरः।

कौन ऐसा रोगी होगा जो औषध के मिलने पर देर करे।

—भास (अविमारक, २।७ के पश्चात्)

आग लागते कुवो खोदवो
पच्छम बुद्धिया थावुं,
पाणी आवे पाल बांधवी,
तेमां ते शुं फाव्यु ?

आग लगने पर कुआं खोदने वाला 'पश्चात् बुद्धि' कहलाता हैं। बाढ़ आ जाने पर बाँध बनाने वाले को क्या कभी सफलता मिलेगी ?

—एक गुजराती गीत

पागु बांधु बांधु कचेरी बरखास्त।

पगड़ी बाँधते-बाँधते ही कचहरी का समय समाप्त हो गया।

[उड़िया] —लोकोक्ति

विलास

हम अन्तर के शृंगार को छोड़कर बाह्य सजावट के मोह में पड़ गये हैं जिसके फलस्वरूप हम अपना देश अपने हाथ से गँवा बैठे हैं, अपनी देह खो बैठे हैं तथा आत्मा को मूर्च्छित कर चुके है।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, २५-१२-१९२१)

विलास सच्चे सुख की छाया मात्र है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० ६३)

विवशता

मदधीनं तु यत् तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरी॥

जो मेरे अधीन है, वह मेरा हृदय सदा आप में ही लगा रहता है। पराधीन अंगों का मैं विवश क्या कर सकती थी।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकांड ११६।९)

भिन्नहस्ते मत्स्ये पलायिते निर्विण्णे धीवरो भणति—
गच्छ धर्मो मे भविष्यतीति।

हाथ से छूटकर मछली के भाग जाने पर खिन्न होकर धीवर कहता है—चलो मुझे पुण्य होगा।

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, ३।१४ से पूर्व)

मनुष्य को कभी-कभी अनिच्छा से भी कोई काम कर लेना ही पड़ता है।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० १६)

सिंह और मृग के एक साथ जल पीने का रूपक न्याय-व्यवस्था के प्रति आदर के लिए आवश्यक है परन्तु सिंह और मृग का एक साथ जल पीना दोनों की परवशता से ही सम्भव है।

—यशपाल (दिव्या, पृ० ३१)

विवाद

कार्यार्थिनां विमर्दो हि राज्ञां दोषाय कल्पते।

यदि कार्यार्थी पुरुषों का विवाद निर्णीत न हो तो वह राजाओं के लिए दोषकारक होता है।

—वाल्मीकि (रामायण, उत्तरकाण्ड, ५३।२५)

विक्रीते करिणि अंकुशे किं विवादः।

हाथी बेच डालने के बाद अंकुश पर क्या विवाद ?

—संस्कृत लोकोक्ति

सुनै तिन की कौन तुलसी जिन्हहि जीति न हारि।
सकति खारो कियो चाहत मेघहू को बारि॥

भला उनकी कौन सुने जिनके लिए जीत-हार है ही नहीं और जो अपने वाक् शक्ति से बादल के जल को भी खारा कर देना चाहते हैं।

—तुलसीदास (श्रीकृष्ण गीतावली, ५३)

कोई वाद जब विवाद का रूप धारण कर लेता है तो वह अपने लक्ष्य से दूर हो जाता है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद २६)

मत का उत्तर मत से, युक्ति का उत्तर युक्ति से दिया जा सकता है, परन्तु बुद्धि के विषय में क्रोध करके दंड देना बर्बरता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा, परिच्छेद ६१)

तुमसे विवाद करने वालों से तो तुम विवाद कर सकते हो किन्तु जो तुम्हारी बात पर हँस दे, उसका तुम क्या करोगे?

—डेल कार्नेगी (हाऊ टू स्टाप वरीयिंग एंड स्टार्ट लिविंग)

विवाह

यावज्जायां न विन्दते···
असर्वो हि तावद् भवति।

मनुष्य जब तक पत्नी नहीं पाता, तब तक अपूर्ण रहता है।

—शतपथ ब्राह्मण (५।२।१।१०)

नानुरूपाय पात्राय पिता कन्यां ददाति चेत्।
कामाल्लोभाद् भयान्मोहाच्छताब्द नरकं व्रजेत्॥

यदि पिता कामना, लोभ, भय अथवा मोह के वशीभूत हो सुयोग्य पात्र के हाथ में अपनी कन्या नहीं देता है तो सौ वर्षों तक नरक में पड़ा रहता है।

—ब्रह्मवैवर्तपुराण (श्रीकृष्णजन्म खण्ड, (४१।४६)

विवाहा नाम बहुशः परीक्ष्य कर्तव्या भवन्ति।

विवाह तो बहुत प्रकार से विचार कर करने होते हैं।

—भास (अविमारक, १।२ के पश्चात्)

जामातृसम्पत्तिमचिन्तयित्वा
पित्रा तु दत्ता स्वमनोभिलाषात्।
कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी
कूलद्वयं क्षुब्धजला नदीव॥

जामाता की सम्पति का विचार बिना किए यदि अपनी रुचि से कन्या किसी को दे दी गई तो वह नारी अपने दोष से श्वसुर-कुल तथा पितृ-कुल इन दोनों कुलों का नाश कर डालती है जैसे बाढ़ वाली नदी अपने दोनों कुलों का नाश कर डालती है।

—भास (अविमारक, १।३)

अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता।

उत्तम पति से अपनी पुत्री का विवाह करके पिता चिंता-रहित हो जाते हैं।

—कालिदास (कुमारसम्भव, ६।७६)

अन्योन्यप्रीतिकृतः समानरूपानुरागकुलवयसाम्।
केषांचिदेव मन्ये समागमो भवति पुण्यवताम्॥

ऐसा विवाह जो वर-कन्या के परस्पर प्रेम से सम्पन्न होता है और जिसमें दोनों के रूप, अनुराग, कुल और अवस्था की समानता होती है, किन्हीं भाग्यवानों का ही हुआ करता है।

—हर्ष (नागानन्द,२।१४)

इतरेतानुरागो हि विवाहकर्मणि पराध्यं मंगलम्।

वर और वधू में परस्पर का अनुराग विवाह-कर्म में उत्तम मंगल है।

—भवभूति (मालती माधव, द्वितीय अंक)

कुलंच शीलंच सनाथता च
विद्या च वित्तंच वपुर्वयश्च।
एतान् गुणान् सप्त विचिन्त्य देया
कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम्॥

बुद्धिमान व्यक्ति, कुल, शील, सनाथता, विद्या, धन, शरीर तथा आयु इन सात गुणों का विचार कर अपनी कन्या प्रदान करे, शेष बातों का विचार नहीं करना चाहिए।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, ३।२२०)

आदौ तातौ वरं पश्येत् ततो वित्तं ततः कुलम्।
यदि कश्चिद् वरे दोषः किं धनेन कुलेन किम्॥

कन्या का पिता पहले वर देखे, तदनन्तर धन और कुल देखे। यदि वर में कोई दोप है तो धन और कुल से क्या प्रयोजन?

—अज्ञात

आदौ कुलं परीक्षेत् ततो विद्यां ततो वयः।
शीलं धनं ततो रूपं देशं पश्चात् विवाहयेत्॥

पहले कुल की परीक्षा करे, फिर विद्या की, तदनन्तर आयु की, फिर शील, धन और रूप की, तथा बाद को देश की परीक्षा करे, तब विवाह करे।

—अज्ञात

रहिमन ब्याह बियाधि[1] है, सकहु तो जाहु बचाइ।
पाइन[2] बेरी[3] परत है, ढोल बजाइ बजाइ॥

—रहीम (दोहावली)

१. व्याधि। २. पैरों में। ३. बेड़ी।

वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्याह्न का मुखर ताप आता है, क्षण-क्षण पर बगूले उठते हैं और पृथ्वी कांपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय संध्या आती है, शीतल और शान्त, जब हम थके हुए पथिकों की भाँति दिन-भर की यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं तटस्थ भाव से, मानो हम किसी ऊँचे शिखर पर जा बैठे हैं जहाँ नीचे का जन-रव हम तक नहीं पहुँचता।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० ३७)

"आप श्रेष्ठ किसे समझते हैं, विवाहित जीवन को या अविवाहित जीवन को?"

"समाज की दृष्टि से विवाहित जीवन को, व्यक्ति की दृष्टि से अविवाहित जीवन को।"

— प्रेमचन्द (गोदान, पृ० ६५)

विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है न स्त्री को। समझौता करने के पहले आप स्वाधीन है, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० ६५)

स्त्री और पुरुष का परस्पर विश्वासपूर्वक अधिकार-रक्षा और सहयोग ही तो विवाह कहा जाता है। यदि ऐसा न हो तो धर्म और विवाह खेल है।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, तृतीय अंक)

विवाह-सम्बन्धी विधि-विधान रूढ़ियों से ही निकले हैं। उन्हें जांचने के लिए संयम की तुला का प्रयोग करना चाहिए। जो कर्म कुल मिलाकर संयम के पालन में सहायक हों, वे कर्म भले ही रूढ़ि-विरुद्ध हों फिर भी उन पर आचरण करना चाहिए।

—महात्मा गांधी (पत्र : नारायण मोरेश्वर खरे को १३-६-१९३२)

विवाहित जीवन वैसी ही साधनावस्था है, जैसी कोई दूसरी।

—महात्मा गांधी (स्त्रियों की समस्या, पृ० ८४)

आज हम जिसे विवाह कहते है, वह विवाह नहीं, उसका आडम्बर है। जिसे हम भोग कहते हैं, वह भ्रष्टाचार है।

—महात्मा गांधी (गांधी वाणी, १२१)

विवाह जिस आदर्श तक पहुँचाने का लक्ष्य सामने रखता है, वह है शरीरों के संयोग द्वारा आत्मा की संयोग-साधना। विवाह जिस मानव-प्रेम को मूर्त्त रूप प्रदान करता है, उसे दिव्य-प्रेम अथवा विश्व-प्रेम की दिशा में आगे बढ़ने की सीढ़ी बन जाना चाहिए।

—महात्मा गांधी (मोहनमाला, १०६)

बे पास के तो सास की भी अब नहीं है आस
मौकूफ़ शादियाँ भी है अब इम्तहान पर।

—अकबर इलाहाबादी

विवाह में प्रवेश करने से पहले सावधान होना चाहिए, परन्तु उसमें प्रवेश करने के पश्चात् उससे निकलने के विषय में सावधान रहना चाहिए।

—हरदयाल

विवाह बहुत कुछ मौसमी फूल की तरह है। वह ठीक अपनी ऋतु से आप ही खिलता है। मौसम के चले जाने पर फिर नहीं खिलता, तब वह दुर्लभ होता है।

—शरत्चन्द्र (शेष परिचय, पृ० २४२)

विवाह के मंत्र कर्त्तव्य-बुद्धि दे सकते हैं, भक्ति दे सकते हैं, सहमरण की प्रवृत्ति दे सकते हैं किन्तु माधुर्य देने की शक्ति उनमें नहीं है। वह शक्ति केवल उस प्रकृति के हाथ में है।

—शरत्चन्द्र (चरित्रहीन, पृ० २४७)

विवाह करना कामदग्ध रहने से अधिक अच्छा है।

—नवविधान (कुरिन्थियों के नाम प्रथम पत्र, ७।९)

सम्पूर्ण मानव-ज्ञान में विवाह-सम्बन्धी ज्ञान ही सबसे कम विकसित है।

—बालजाक

परस्पर विवाहित व्यक्तियों का एक-दूसरे पर ऋण अगण्य होता है। यह ऋण अनन्त होता है, जिसे अनन्त काल में ही चुकाया जा सकता है।

—गेटे (इलेक्टिव ऐफ़िनिटीज, ९)

अच्छी स्त्री से विवाह जीवन-रूपी तूफ़ान में बन्दरगाह के समान है, और बुरी स्त्री से विवाह बन्दरगाह में तूफ़ान के समान है।

—जान पेटिटसेन

आधी मानव जाति अपना नाम और कभी-कभी अपना राष्ट्र भी बिना कष्ट के परिवर्तित कर सकती है—कम से कम आधी।

—जीन ज़िरोद्रू (सीजफ्राइड, ३)

पत्नी कर्त्तव्यवश प्रेम करती है, कर्त्तव्य से नियन्त्रण होता है और नियन्त्रण से इच्छा मर जाती है।

—जीन ज़िरोद्रू (एम्फ़ीत्रायोन, ३८)

विवाह ही वह बुराई है जिसके लिए लोग भगवान से प्रार्थना करते हैं।

—यूनानी लोकोक्ति

अविवाहित मनुष्य मोर होता है, सगाई हो चुका सिंह होता है और विवाहित गधा होता है।

—जर्मन लोकोक्ति

जब कोई वृद्ध व्यक्ति विवाह करता है तो मृत्यु हँसती है।

—जर्मन लोकोक्ति

पहली बार विवाह कर्त्तव्य है, दूसरी बार मूर्खता और तीसरी बार पागलपन। **—डच लोकोक्ति**

ऐसी स्त्री से विवाह करना, जो तुमसे प्रेम करती है और जिससे तुम प्रेम करते हो, मानो एक शर्त लगाना है कि देखें कौन दूसरे से प्रेम करना पहले बन्द करता है।

—अलफ़्रेड कापस (नोट्स एट पेंशीज)

अच्छे विवाह की अपेक्षा अधिक सुन्दर, मैत्रीपूर्ण और आकर्षक सम्बन्ध, बन्धुत्व या संगति कोई नहीं है।

—मार्टिन लूथर (वार्तालाप में)

परस्पर विवाहित व्यक्ति एक-दूसरे के लिए उपहार रूप में झगड़ों को लाते हैं।

—ओविड (प्रेम की कला)

विवाह को एक पिंजड़े के सदृश कहा जा सकता है। इसके बाहर के पक्षी तो प्रवेश न कर पाने से परेशान रहते हैं और अन्दर के पक्षी बाहर न हो पाने से।

—मौंटेन (निबन्ध, वर्जिल के कुछ पद्यों पर)

हम लोग एक-दूसरे का तीन सप्ताह तक अध्ययन करते हैं, हम लोग एक-दूसरे से तीन मास तक प्रेम करते हैं, हम लोग एक-दूसरे से तीन वर्ष तू-तू, मैं-मैं करते हैं, हम लोग एक-दूसरे को तीस वर्ष तक सहन करते हैं और तब हमारी सन्तानें यही सब फिर करना प्रारम्भ कर देती हैं।

—हिप्पोलाटट टेन (वि एटशोपीनियन्स द तामस ग्रेनगार्ज)

Men are April when they woo, December when they wed, maids are May when they are maids, but the sky changs when they are wives.

पुरुष प्रणय-निवेदन के समय अप्रैल होते हैं और विवाह के समय दिसम्बर। कुमारियां जब तक कुमारियां होती हैं तब तक मई होती हैं, पर उनके पत्नी बनते ही आकाश बदल जाता है।

—शेक्सपियर (ऐज यू लाइक इट, ४।१)

He was reputed one of the wise men that made answer to the question when a man should marry ? "A young man not yet, an elder man not at all."

उस व्यक्ति को बुद्धिमान के रूप में कीर्ति मिली थी जिसने 'मनुष्य को कब विवाह करना चाहिए' प्रश्न का यह उत्तर दिया था—"युवक को अभी नहीं, बड़े को कभी नहीं।"

—फ़्रांसिस बेकन

Marriage has many pains, but celibaey has no pleasures

विवाहित जीवन में अनेक दुःख है किन्तु अविवाहित जीवन में कोई भी सुख नही है।

—जानसन (रेसिलास, अध्याय २६)

It is *not from* reason and prudence that people marry, but from inclination.

लोग बुद्धि और विवेक के कारण विवाह नहीं करते हैं अपितु प्रवृत्ति के कारण।

—जानसन (बासवेल कृत लाइफ़ आफ़ सैमुअल जानसन। २६ अक्तूबर, १७६६)

Every woman should marry, and no man.

प्रत्येक स्त्री को विवाह करना चाहिए और किसी पुरुष को नहीं।

—डिज़रायली (लोथेयर, अध्याय ३०)

Marriage is the perfection which love aimed at, ignorant of what it sought.

विवाह वह पूर्णता है जिसको प्रेम, विना समझे-बूझे ही, लक्ष्य बनाता है।

—एमर्सन (जर्नल्स १८५०)

One fool at least in every married couple.

प्रत्येक विवाहित युगल में कम से कम एक मूर्ख होता है।

—हेनरी फ़ील्डिंग (अमेलिया, ६।४)

Tho' marriage makes man and wife one flesh, it leaves 'em still two fools.

यद्यपि विवाह से पुरुष व पत्नी एक हो जाते हैं लेकिन फिर भी वे दो मूर्ख बने रहते हैं।

—विलियम कानग्रेव (दि डबिल डीलर, २।३)

Married in haste, we repent at leisure.

शीघ्रता में विवाह करने पर हम फुरसत से पश्चाताप करते हैं।

—विलियम कांग्रीव

An old man marrying a young girl is like buying a book for someone else to read.

वृद्ध व्यक्ति का नवयुवती से विवाह करना किसी और के पढ़ने के लिए पुस्तक ख़रीदने जैसा है।

—एच० डब्लू० थामसन (वाडी, वूड्स ऐंड ब्रिथिज)

We should marry to please ourselves, not other people.

हमें स्वयं को प्रसन्न रखने के लिए विवाह करना चाहिए, न कि दूसरों को प्रसन्न रखने के लिए।

—आइजक विकरस्टाफ़ (दि मेड आफ़ दि मिल, ३।४)

Marriage is the greatest educational institution on earth.

विवाह-संस्था पृथ्वी पर महत्तम शिक्षणात्मक संस्था है।

—चैनिंग पोलोक

Marriage is like life in this—that it is a field of battle, and not a bed of roses.

विवाह की जीवन से इस वात में समानता है कि यह गुलाब के फूलों की शय्या नहीं है, युद्ध-क्षेत्र है।

—राबर्ट लुई स्टोवेंसन (वर्जिनिवस प्योरिस्क)

Marriage is one long conversation, checkered by disputes.

विवाह एक लम्बा वार्तालाप है जिसमें झगड़ों से रुकावट आती रहती है।

—राबर्ट लुई स्टोवेंसन (टाक्स ऐंड टाकर्स, २)

Twenty years of romance makes a woman look like a ruin, but twenty years of marriage make her something like a public building.

बीस वर्ष की प्रेमलीलाओं से स्त्री खंडहर जैसी दिखने लगती है, किन्तु बीस वर्ष के विवाहित जीवन से वह राजकीय भवन जैसी हो जाती है।

—आस्कर वाइल्ड (ए वूमैन आफ़ नो इम्पार्टेन्स, १)

Choose a wife rather by your ear than your eye.

अपनी आंख की अपेक्षा अपने कान से पत्नी चुना करो।

—टामस फ़ुलर (नोनोलोजिया, ११०७)

Happiness in marriage is entirely a matter of chance.

विवाह से सुख पूर्णतया संयोग की ही वात है।

—जेन आस्टिन (प्राइड ऐंड प्रेज्युडिस, ६)

Marriage is a great civilizer of the world.

विवाह संसार को महान सभ्य बनाने वाला है।

—राबर्ट हाल

Hanging and marriage, you know, go by destiny.

फांसी और विवाह, आपको पता ही है कि, भाग्य की बात हैं।

—जार्ज फ़र्क्युहर (दि रेक्रूटिंग आफ़ीसर, ३।२)

Well-married a man is winged—illmatched, he is shackled.

ठीक पत्नी मिलने पर मनुष्य के पर लग जाते हैं परन्तु ग़लत पत्नी मिलने पर वह जंजीरों में बँध जाता है।

—हेनरी वार्ड बीचर (प्रावर्ब्स फ़्राम प्लाईमाउथ पल्पिट)

Never marry but for love; but see that thou lovest what is lovely.

केवल प्रेम के कारण विवाह करो, परन्तु यह अवश्य देख लो कि जो सुन्दर है, उसी से तुम प्रेम कर रहे हो।

—विलियम पेन (सम फ़्रूट्स आफ़ सालीट्यूड, १।७६)

In marriage do thou be wise; prefer the person before money, virtue before beauty, the mind before the body; then thou hast a wife, a friend, a companion, a second self.

विवाह करने में विवेकपूर्ण बनो। धन की अपेक्षा व्यक्ति को वरीयता दो, सौन्दर्य की अपेक्षा चारित्रिकता को और शरीर की अपेक्षा मन को। तब तुम्हें पत्नी, मित्र, साथिन और एक-दूसरे स्व की प्राप्ति होगी।

—विलियम पेन (सम फ़्रूट्स आफ़ सालीट्यूड, १।६२)

Between a man and his wife nothing ought to rule but love. Authority is for children and servants, yet not without sweetness.

किसी मनुष्य और उसकी पत्नी के मध्य केवल प्रेम का शासन होना चाहिए। अधिकार-भावना तो बालकों और नौकरों के प्रति होती है, और वह भी मधुरता से रहित नहीं।

—विलियम पेन (सम फ़्रूट्स आफ़ सालीट्यूड, १।१००)

Marriage is three parts love and seven parts forgiveness of sins.

विवाह तीन भाग प्रेम और सात भाग पापों की क्षमा है।

—लैंगडन माइकेल (दि न्यूयार्क आइडिया, २)

The modern American marriage is like a wire fence. The woman is the wire—the posts are the husbands.

आधुनिक अमरीकी विवाह तो एक तारों का बाड़ा है। स्त्री तार है और पति लोग खंभे हैं।

—लैंगडन माइकेल (दि न्यूयार्क आइडिया, ३)

It is a woman's business to get married as soon as possible, and a man's to keep unmarried as long as he can.

स्त्री का कर्त्तव्य है कि वह जल्दी से जल्दी विवाहित हो जाए, और पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह जितने अधिक समय तक अविवाहित रह सके, रहे।

—जार्ज बर्नार्ड शा (मैन एँड सुपरमैन, २)

Both marriage and death ought to be welcome, the one promises happiness, doubtless the asseres it.

विवाह और मृत्यु दोनों ही स्वागत-योग्य हैं। इनमें से पहला तो सुख का वचन देता है, किन्तु निस्सन्देह दूसरा सुख आश्वस्त करता है।

—मार्क ट्वेन (विल बोवेन को पत्र, ४ नवम्बर १८८८)

Marriage is a bribe to make a housekeeper think she's a householder.

विवाह वह रिश्वत है जिससे गृहदासी यह समझने लगती है कि वह गृहस्वामिनी है।

—थार्नटन वाइल्डर (दि मैचमेकर, १)

Marriage is that relation between man and woman in which the independence is equal, the dependence mutual and the obligation reciprocal.

विवाह पुरुष और स्त्री के बीच वह सम्बन्ध है जिसमें स्वतन्त्रता समान है, परतंत्रता पारस्परिक है तथा कर्त्तव्य अन्योन्याश्रित है।

—लुई काफ़मैन एंसपेकर

One was never married, and that's his hell; another is, and that's his plague.

कोई व्यक्ति विवाहित ही नहीं हुआ, तो यह उसका नरक है। दूसरा व्यक्ति विवाहित है तो यह उसकी विपत्ति है।

—राबर्ट बर्टन (दि एनाटॉमी आफ़ मेलंकोली, ३।४।२।१)

In matrimony, to hesitate is sometimes to be saved.

विवाह में संकोच करना कभी-कभी रक्षक सिद्ध होता है।

—सैमुअल बटलर (नोटबुक्स)

Though women are angels, yet wedlock's the devil.

यद्यपि स्त्रियां स्वर्गदूत हैं तथापि विवाह शैतान है।

—बायरन (आवर्स आफ़ आइडिलनेस, टू एलिजा)

Oh! how many torments lie in the small circle of a wedding-ring.

ओह! विवाह की अंगूठी के छोटे से वृत्त में यंत्रणाएं वास करती हैं!

—कोल्ले सिवर (दि डविल गैलेंट, १।२)

Marriage is a good deal like a circus, there is not as much in it as is represented in the advertising.

विवाह बहुत कुछ सरकस के समान होता है, क्योंकि उसमें जितना विज्ञापन में दिखाया जाता है, उतना उसमें वास्तव में होता नहीं है।

—एडगर वाटसन होवे (कंट्री टाउन सेइंग्स)

A man should be taller, older, heavier, uglier, and hoarser than his wife.

पुरुष अपनी पत्नी की अपेक्षा अधिक लम्बा, अधिक आयु का, अधिक भारी, अधिक कुरूप और अधिक कर्कश होना चाहिए।

—एडगर वाटसन होवे (कंट्री टाउन सेइंग्स)

It's a capital thing for a woman to wed
But a shocking bad thing for a man.

स्त्री के लिए विवाह करना महत्त्वपूर्ण वस्तु है परन्तु पुरुष के लिए विवाह करना एक धक्का पहुँचाने वाली बुरी वस्तु है।

—लूकास (रीडिंग, राइटिंग ऐंड रिमेम्बरिंग, ३)

Maidens! Why should you worry in choosing whom shall you marry?
Choose whom you may, you will find you have got somebody else.

कुमारियो! तुम्हें अपने विवाह-योग्य व्यक्ति चुनने में परेशानी क्यों उठानी चाहिए? तुम चाहे जिसको भी चुन लो, तुम्हें शीघ्र ही ज्ञात होगा कि तुम्हें कोई अन्य व्यक्ति ही मिला है।

—जान हे (डिस्टिक्स, १०)

An ideal wife is any woman who has an ideal husband.

आदर्श पत्नी कोई भी स्त्री है जिसे आदर्श पति प्राप्त है।

—बूथ टॅकिंगटन (लुकिंग फ़ारवर्ड टू दि ग्रेट एडवेंचर)

Most of the beauty of women evaporates when they achieve domestic happines at the price of their independence.

स्त्रियों का अधिकांश सौंदर्य तो उड़ जाता है जब वे घरेलू शान्ति को अपनी स्वतन्त्रता के मूल्य पर प्राप्त करती हैं।

—साइरिल कोन्नोली (दि अनक्वाइट ग्रेव, २)

The dread of loneliness is greater than the fear of bondage, so we get married.

एकाकीपन का भय बन्धन के भय से बड़ा होता है, अतः हम विवाह कर लेते हैं।

—साइरिल कोन्नोली (दि अनक्वाइट ग्रेव, १)

Marriage is a feast where the grace is sometimes better than the dinner.

विवाह एक ऐसी दावत है जहां भव्यता प्रायः भोजन सामग्री से अधिक अच्छी होती है।

—चार्ल्स कैलब काल्टन (लैकोन, २।४७)

Keep your eyes wide open before marriage, half shut afterwards.

विवाह के पहले अपनी आंखें पूर्णतया खुली रखो और बाद में आधी बन्द।

—बेंजमिन फ्रेंकलिन (पुअर रिचर्ड्स आलमेनेक)

A man's best fortune, or his worst, is his wife.

मनुष्य का सर्वोत्तम भाग्य या निकृष्टतम दुर्भाग्य उसकी पत्नी ही होती है।

—टामस फ़ुलर (दि होली स्टेट ऐंड दि प्रोफ़ेन स्टेट, दि गुड हस्बैंड)

Wedlock, a padlock,

विवाह एक प्रकार का ताला है।

—अंग्रेजी लोकोक्ति

विविधता

नानानं वा उ नो धियो वि व्रतानि जनानाम्।

हमारी बुद्धियां विविध प्रकार की हैं। मनुष्य के कर्म भी विविध प्रकार के हैं।

—ऋग्वेद (९।११२।१)

वैराग्ये संचरत्येको नीतौ भ्रमति चापरः।
श्रृंगारे रमते कश्चिद्भुविभेदाः परस्परम्॥

संसार में परस्पर मनुष्यों में भेद है। कोई विरक्ति में लीन रहता है, कोई नीति में निमग्न रहता है और कोई श्रृंगार में रमण करता रहता है।

—भर्तृहरि (श्रृंगारशतक, ९९)

पुढो छंदा इह माणवा।

संसार में मानव भिन्न-भिन्न विचार वाले हैं।

[प्राकृत] —आचारांग (१।५।२)

अणुसासणं पुढो पाणी।

एक ही धर्मतत्त्व को प्राणी पृथक्-पृथक् रूप में ग्रहण करते हैं।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।१५।११)

मधुकुंभे नामं एगे मधुपिहाणे,
मधुकुंभे नामं एगे विसपिहाणे।
वि सुकुंभे नामं एगे मधुपिहाणे,
विसकुंभे नामं एगे विसपिहाणे॥

चार तरह के घड़े होते हैं—

मधु का घड़ा, मधु का ढक्कन। मधु का घड़ा, विष का ढक्कन। विष का घड़ा, मधु का ढक्कन। विष का घड़ा, विष का ढक्कन[1]।

[प्राकृत] —स्थानांग (४।४)

एकता का सिद्धान्त अन्तर्मन का सिद्धान्त है, विविधता का सिद्धान्त बहिर्मन तथा जीवन के स्तर का, दूसरे शब्दों में एकता का दृष्टिकोण ऊर्ध्व दृष्टिकोण है और विभिन्नता समदिक्।

—सुमित्रानंदन पंत ('उत्तरा', भूमिका, पृ० १७)

जैसे-जैसे हम बाह्य रूपों की विविधता में उलझते जाते हैं, वैसे-वैसे उनके मूलगत जीवन को भूलते जाते हैं।

—महादेवी वर्मा (अतीत के चलचित्र, पृ० १०)

गुरु-गुरु विद्या, सिर-सिर ज्ञान।

हर गुरु की पृथक् विद्या होती है, हर व्यक्ति की पृथक् समझ होती है।

—हिंदी लोकोक्ति

The great source of pleasure is variety.

सुख का बड़ा स्रोत विविधता है।

—डा० जानसन (हिल द्वारा संपादित 'लाइव्स आफ़ दि इंग्लिश पोइट्स, खण्ड १, पृ० २१२)

Variety is the mother of enjoyment.

विविधता सुखों की जननी है।

—डिज़रायली (विवियन ग्रे, ५।४)

Variety is the soul of pleasure.

विविधता सुख का प्राण है।

—अफ़रा बेन (दि रोवर, भाग २, अंक १)

We are strong in our unity. But we are stronger still because of our diversity.

हमारी एकता के कारण हम शक्तिशाली हैं परन्तु हम अपनी विविधता के कारण और भी अधिक शक्तिशाली हैं।

—रिचर्ड निक्सन (१८ अक्तूबर १९५९ को एक प्रीतिभोज में भाषण)

---

1. यहां मनुष्य-पक्ष में हृदय घट है और वचन ढक्कन है।

विवेक

क्वासे क्व च गमिष्यामि कोन्वहं किमिहास्थितः।
कस्मात् किमनुशोचेयमित्येवं स्थापयेन्मनः॥

विवेकी पुरुष को अपने मन में यह विचार करना चाहिए कि 'मैं कहां हूँ' कहां जाऊंगा, कौन हूं, यहाँ किसलिए आया हूं और किसलिए किसका शोक करूं।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व २८।४०)

ऐश्वर्यमदमत्तानां क्षुधितानांच कामिनाम्।
अहंकाररतानांच विवेको नहि जायते॥

जो ऐश्वर्य के मद से मत्त हैं, भूख से पीड़ित हैं, जो कामी हैं अथवा जो अहंकारयुक्त हैं, उन मनुष्यों में विवेक नहीं होता।

—बृहन्नारदीयपुराण (पूर्व भाग, ८।१०३)

नित्यमात्मस्वरूपं हि दृश्यं तद्विपरीतगम्।
एवं यो निश्चयः सम्यग्विवेको वस्तुनः स वै॥

आत्मा स्वरूपतः नित्य है और दृश्य (विश्व) अनित्य है। इस प्रकार का सम्यक् निश्चय ही वस्तुओं का निश्चित रूप से उससे विपरीत अर्थात् विवेक है।

—शंकराचार्य (अपरोक्षानुभूति, ५)

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव संपदः॥

सहसा कार्य न करे। अविवेक विपत्तियों का आश्रय है। गुण से प्रेम करने वाली सम्पत्तियां स्वयं विचारशील पुरुष का वरण कर लेती हैं।

—भारवि (किरातार्जुनीय, २।३०)

भ्रान्तिभाजि भवति क्व विवेकः।
भ्रम में पड़े हुए व्यक्ति को विवेक कहां?

—माघ (शिशुपालवध, १०।५)

प्रभवति मनसि विवेको विदुषामपि शास्त्रसंभवस्तावत्।
निपतन्ति दृष्टिविशिखा यावन्नेन्दीवराक्षीणाम्॥

विद्वानों के मन में शास्त्रोत्पन्न विवेक भी तभी तक अपना प्रभाव रखता है, जब तक कमलनयनाओं के दृष्टिवाण नहीं पड़ते है।

—श्रीकृष्ण मिश्र (प्रबोधचन्द्रोदय, १।११)

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।

विवेक से रहित लोगों का सैकड़ों प्रकार से पतन होता है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, १०)

अतिक्रांतं तु यः कार्यं पश्चाच्चिन्तयते नरः।
तच्चास्य न भवेत् कार्यं चिन्तया तु विनश्यति॥

जो मनुष्य कार्य समाप्त होने पर, वाद में, उसकी चिन्ता करता है, उसका वह कार्य तो सफल होता ही नहीं, और वह स्वयं भी चिन्ता से नष्ट हो जाता है।

—अज्ञात

यस्य नास्ति विवेकस्तु केवलं यो वहुश्रुतः।
स न जानाति शास्त्रार्थान् दर्वी पाकरसानिव॥

जिसको विवेक नहीं है और जो केवल वहुश्रुत है, वह शास्त्र के अर्थों को उसी प्रकार नहीं जानता, जिस प्रकार चमचा रसोई के रस को नहीं जानता।

—अज्ञात

निज हित अनहित पसु पहिचाना॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।१६।१)

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अविवेक॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।४१)

तुलसीदास हरि गुरु-करुना विनु विमल विवेक न होई।
बिनु बिबेक संसार घोर-निधि पार न पावै कोई॥

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, ११५)

गहि न जाइ रसना काहू की कहो जाहि जोइ सूझै।
किसी की भी जीभ पकड़ी नहीं जा सकती। जिसको जैसा समझ में आए, वैसा कहता रहे।

—तुलसीदास (गीतावली, अयोध्याकांड, ६२)

सकुच सिंधु बोहित विवेक करि वुधि वल बचन निवाहैं।
संकोच रूपी सागर में विवेक को बड़ी नाव वनाकर उस पर अपने वचन रूपी पथिक को वुद्धि रूपी केवट के वल से पार करना चाहते हैं।

—तुलसीदास (गीतावली, ७३)

कहत कठिन समुझत कठिन, साधत कठिन बिवेक।
होइ घुनाच्छर न्याय[1] जौं, पुनि प्रत्यूह[2] अनेक॥

—तुलसीदास (दोहावली, २७३)

बिन विवेक कीजें न कछु, तापे जो फिर होय।
वह इत्सा[3] भगवंत की, अपने दोख[4] न कोय॥

—दयाराम (दयाराम सतसई, दोहा ३६०)

संदेह के गर्त में गिरने से पहले विवेक का अवलंबन ले लो।

—जयशंकर प्रसाद (स्कंदगुप्त, तृतीय अंक)

विवेकहीन बल काल के समुद्र में डोंगी की भांति डूब जाता है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (सरयू की धार, पृ० ७०)

Be in the world, but do not let the world into you. That is the sign of Vivek.

संसार में रहो परन्तु संसार को अपने अन्दर मत रहने दो। यही विवेक का लक्षण है।

—सत्यसाईं बाबा (सत्यसाईं स्पीक्स, भाग ४, पृ० १३६)

The better part of valour is discretion.

विवेक वीरता का श्रेष्ठतर भाग है।

—शेक्सपियर (किंग हैनरी फ़ोर्थ, खण्ड १, ५।४)

Between craft and credulity, the voice of reason is stifled.

धूर्तता और भोलेपन के मध्य विवेक का स्वर रुद्ध हो जाता है।

—एडमंड बर्क (एक पत्र में)

विवेकानन्द

अभिनव भारत को जो कुछ कहना था, वह विवेकानंद के मुख से उद्गीर्ण हुआ। अभिनव भारत की जिस दिशा की ओर जाना था, उसका स्पष्ट संकेत विवेकानन्द ने दिया। विवेकानन्द वह समुद्र है जिसमें धर्म और राजनीति, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता तथा उपनिषद और विज्ञान, सबके सब समाहित होते हैं।

—रामधारी सिंह 'दिनकर' (संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४९७)

विशालता

एकाम्बुबिन्दुव्ययमम्बुराशेः
पूर्णस्य कः शंसति शोषदोषम्।

समुद्र की एक बूंद व्यय हो जाने पर उसके सूखने का दोष कौन कहेगा ?

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, १०।६४)

विशालहृदयता

बड़ा काम करने के लिए बड़ा हृदय होना चाहिए।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० १८)

करि दुनिया में दिलि वदेरी—तूंबि रहु मां भी रहां,
आणि मन-वृतीअ में फेरो—तू बि रहु मां भी रहां,
अण अजाजत खां न आहे, शख़्सियत में जाइ जे,
दिलि जे कंहि हमिदर्द भाङे में भला थोरी त दे,
तुंहिजी मुंहिजी करि झकेरी तूंबिरहु मां भी रहां।

संसार में अपने हृदय को विशाल बनाओ। तुम भी रहो और मैं भी रहूं। अपनी मनोवृत्ति में परिवर्तन लाओ—तुम भी रहो, मैं भी रहूं। यदि कुटुम्ब-सम्बन्ध न होने के कारण तुम्हारे निजी जीवन में मेरा कोई स्थान नहीं तो भी सहानुभूतिपूर्ण हृदय के किसी कोने में थोड़ा स्थान तो दे दो। 'तेरी' और 'मेरी' को कुछ सीमित करके तुम भी रहो और मैं भी रहूं।

[सिन्धी] —किशिनचन्द 'बेबस' (कविता 'वदी दिलि')

जब तुम अपने आपको शरीर समझते हो, तुम विश्व से अलग हो। जब तुम अपने आपको जीव समझते हो, तब तुम अनन्त अग्नि के एक स्फुलिंग हो। जब तुम अपने आपको आत्मस्वरूप मानते हो, तभी तुम विश्व हो।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १० पृ० २१३)

१. बिना प्रयत्न, संयोगवश। २. बाधाएं।
३. इच्छा। ४. रोष।

सौ फूलों को खिलने देने और सौ विचारधाराओं को फलने-फूलने देने की नीति हमारे देश में कलाओं और विज्ञानों की प्रगति तथा समृद्ध संस्कृति की उन्नति के लिए है।

—माओ-त्से-तुंग (पेकिंग में भाषण, २७ फ़रवरी १९५७)

विशेषज्ञ

विशेषज्ञों में एक संकीर्णता होती है, जो उनकी दृष्टि को सीमित रखती है। वह किसी विषय पर स्वाधीन होकर विस्तीर्ण दृष्टि नहीं डाल सकते। नियम, सिद्धांत और परम्परागत व्यवहार उनकी दृष्टि को फैलने नहीं देते।...... सहजबुद्धि अगर सूक्ष्मदर्शी नहीं होती, तो संकुचित भी नहीं होती। वह हर एक विषय पर व्यापक रीति से विचार कर सकती है, ज़रा-ज़रा-सी बातों मे उलझकर नहीं रह जाती।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद ४१)

विश्राम

सभी सच्चा काम आराम है।

—रामतीर्थ (राम हृदय, पृ० १३३)

अपनी धूल भरी धरती का अंक छोड़कर मुझे उन्हीं तुषार-धौत चरणों में विश्राम मिलता है, जिन्होने साधना से धूल के विशाल दुर्ग बनाकर अपनी करुणा को हमारे लिए सुरक्षित रखा है।

—महादेवी वर्मा (अतीत के चलचित्र, पृ० ४९)

इस समय विश्राम की बात तुम कैसे कर सकते हो? जब हम लोग इस शरीर को त्यागेंगे, तभी विश्राम करेंगे।

— विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड २, पृ० ३४९)

मन को विश्राम देने का एक तरीका है मन के कार्य को बदलते रहना, परन्तु सबसे अधिक विश्राम की सम्भावना विद्यमान है निश्चल नीरवता के अन्दर।

—श्रोमां (शिक्षा, पृ० ४९)

जिस तरह आपका हृदय काम करता है उसी तरह आप भी काम कीजिए। थकने से पूर्व ही विश्राम कर लीजिए। इससे आप अधिक काम कर सकेंगे।

—डेल कार्नेगी (हाऊ टू स्टाप वरीयिंग ऐण्ड स्टार्ट लिविंग)

Rest belongs to the whrk as the eyelids to the eyes.

जैसे नेत्रों के लिए पलक, वैसे ही काम के लिए विश्राम।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रे बर्डस, २४)

The time to relax is when you do not have time for it.

विश्राम करने का समय वही होता है जब तुम्हारे पास उसके लिए समय न हो।

—अज्ञात

विश्व

दे० 'संसार'।

विश्वप्रेम

आत्मसमर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर
प्रकृति मिला दो विश्व प्रेम में विश्व स्वयं ही ईश्वर है।

—जयशंकरप्रसाद (प्रेमपथिक, पृ० १०१)

तुलसी को जल चढ़ाए बिना भोजन नहीं करेंगे—यह वनस्पति-सृष्टि के साथ हमने प्रेम सम्बन्ध जोड़ा है। तुलसी को भूखा रखकर मैं पहले कैसे खा लूं? इस तरह गाय के साथ एकरूपता, वनस्पति के साथ एकरूपता साधते-साधते हमें सारे विश्व से एकरूपता साधनी है।

—विनोबा (गीता प्रवचन, पृ० ४१)

विश्व में प्रेम ही सर्वाधिक महत्त्व की वस्तु है। यह महान चिंतकों के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकता है कि वे विश्व की व्याख्या करें और उससे घृणा करें। लेकिन मैं सोचता हूं कि विश्व से प्रेम करना ही महत्त्वपूर्ण है, उसका तिरस्कार नहीं।

—हरमन हेस (सिद्धार्थ, पृ० ११९)

विश्वबन्धुत्व

एक्का मणुस्सजाई ।

समग्र मानव जाति एक है ।

[प्राकृत] —आचार्य भद्रबाहु (आचारांग निर्युक्ति, गाथा १९)

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।।

जो सब प्राणियों को ब्रह्म में ही निरन्तर देखता है और सब प्राणियों में ब्रह्म को ही देखता है, वह उस कारण से किसी से घृणा नहीं करता ।

—ईशावास्योपनिषद् (मंत्र ६)

अयं बंधुरयं नेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।

यह मेरा बंधु है और यह नहीं है, यह क्षुद्र चित्त वालों की बात होती है। उदार चरित्र वालों के लिए तो सारा संसार ही अपना कुटुम्ब होता है ।

—महोपनिषद् (६।७१-७२)

जैसे बिन्दु का समुदाय समुद्र है, इसी तरह हम मैत्री करके मैत्री का सागर बन सकते है। और जगत में सब एक दूसरे से मित्र भाव से रहें तो जगत् का रूप बदल जाय ।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ३५)

मेरा लक्ष्य संसार से मैत्री है और मैं अन्याय का प्रबलतम विरोध करते हुए भी दुनिया को अधिक से अधिक स्नेह दे सकता हूं ।

—महात्मा गांधी (वक्तव्य, ७ मार्च १९२०)

मनुज एकता ही
भावी की आध्यात्मिकता,
देह-प्राण मन-आत्मा
जिससे होंगे उपकृत !

—सुमित्रानन्द पंत (आस्था, पृ० २०१)

है बहुत बरसी धरित्री पर अमृत की धार,
पर नहीं अब तक सुशीतल हो सका संसार ।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (कुरुक्षेत्र, षष्ठ सर्ग)

घरे घरे मोर घर आछे आमि सेइ घर मरि खूंजिया ।
देशे देशे मोर देश आछे आमि सेइ देश नीबो जूझिया ।।

प्रत्येक घर में मेरा घर है, मैं उसी घर की खोज कर रहा हूं। प्रत्येक देश में मेरा देश है, मै उसी देश की प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहा हूं ।

[बांगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

एल्ल लोकमु वक्क इल्ले
वर्णभेदमु लेल्ल कल्ले
वेल नेरुगनि प्रेम बंधमु
वेडुकलु कुरियु ।

समग्र विश्व एक ही परिवार है । वर्णभेद सब असत्य है। प्रेम बंधन बहुमूल्य है ।

[तेलुगु] —गुरजाडा अप्पाराव (मुत्यालसरालु)

जो लोग धर्म, जाति, राष्ट्र या राजपद्धति के नाम पर अपने आपको शेष संसार से पृथक् कर लेते है, वे मानव-विकास में सहायता नहीं देते, अपितु उसमें बाधा डाल रहे होते है ।

—राधाकृष्णन् (धर्म और समाज, पृ० २०)

एक पन्थ बनाते ही तुम विश्वबन्धुता के विरुद्ध हो जाते हो। जो सच्ची विश्वबन्धुता की भावना रखते है वे अधिक बोलते नहीं, उनके कर्म ही स्वयं ज़ोर से बोलते हैं ।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० २१४)

विशाल संसार मेरा घर है और उपकार करना मेरा धर्म है ।

—रामतीर्थ (स्वामी रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० १९)

My country is the world and my religion is to do good.

विश्व मेरा देश है और भलाई करना मेरा धर्म ।

—टामस पेन (दि राइट्स आफ़ मैन, भाग २)

विश्वविद्यालय

लड़कों को देखता हूँ तो जी चाहता है कि यह यूनीवर्सिटी में न पढ़ते तो अच्छा होता। मुदम्मिग़[1], बदतमीज़, कजखुल्क़[2], मिज़ाज में हद दर्जा रुऊनत[3], नाहमदर्द[4], खुदपसंद और ख़ुदखर[5]। यह आम रविश है। मुसतसनियात[6] भी हैं, लेकिन बहुत कम। लड़कियों में भी यह नक़ाइस[7] नुमायां हैं। आखिर इन्होंने अपने भाइयों ही से तो सबक़ लिया है।

—प्रेमचंद (चिट्ठी पत्री, १, पृ० २१३)

विचारहीन रूढ़ियों के पालन-पोषण का भार विश्वविद्यालय को देना पुत्र को राक्षसी के हाथ में देने के बराबर है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (रिपन कालेज में २६ सितम्बर १९११ का भाषण—'हिन्दू विश्वविद्यालय')

Universities should never be made into mechanical organisations for collecting and distributing knowledge. Through them the people should offer their intellectual hospitality, their wealth of mind to others, and earn their proud right in return to receive gifts from the rest of the world.

विश्वविद्यालयों को ज्ञान का संग्रह व वितरण करने वाले मशीनी संस्थान कदापि नही बनाया जाना चाहिए। उनके माध्यम से लोग अपना बौद्धिक सेवाभाव तथा मानसिक सम्पत्ति दूसरों को अर्पित करें और प्रतिफल में शेष विश्व से उपहारों को पाने का अपना गौरवपूर्ण अधिकार प्राप्त करें।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (क्रिएटिव यूनिटी, ऐन ईस्टर्न यूनिर्वासिटी, पृ० १७८)

For our Universities we must claim, not labelled packages of truth and authorised agents to distribute them, but truth in its living association with her lovers and seekers and discoverers.

अपने विश्वविद्यालयों में हमें सत्य के लेबिल लगे पैकिटों और उनके वितरण हेतु अधिकृत एजेंटों की नहीं अपितु सत्य के प्रेमियों, अन्वेषकों तथा अनुभवकर्ताओं के जीवन्त साहचर्य से युक्त सत्य की माँग करनी चाहिए।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (क्रिएटिव यूनिटी, ऐन ईस्टर्न यूनिर्वासिटी, पृ० १८८)

A university should be a place of light, of liberty, and learning.

विश्वविद्यालय तो प्रकाश, स्वाधीनता और ज्ञान का स्थान होना चाहिए।

—डिज़रायली (ब्रिटिश लोक सभा में भाषण, ११ मार्च १८७३)

विश्वास

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नमपि मूलानि कृन्तति॥

जो विश्वासपात्र न हो, उस पर कभी विश्वास न करे और जो विश्वासपात्र हो उस पर भी अधिक विश्वास न करे क्योंकि विश्वास से उत्पन्न हुआ भय मनुष्य का मूलोच्छेद कर देता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १३८। १४४-४५)

विश्वासयत्याशु सतां हि योगः।

सज्जनों का सम्मिलन विश्वास उत्पन्न कर ही देता है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ३। ३१)

बहुभाषिणः न श्रद्दधाति लोकः।

लोग बहुत बोलने वाले व्यक्ति का विश्वास नहीं करते।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्व भाग, पृ० ५९८)

मर्यादातीनं न कदाचिदपि विश्वसेत्।

कभी भी मर्यादा से अधिक विश्वास न करे।

—चाणक्य

अकालमृत्युर्विश्वासो विश्वसन् हि विपद्यते।

—सूर्य (सूक्तिरत्नहार)

---

१. घमंडी। २. दुःशील। ३. उद्दण्डता। ४. सहानुभूति-शून्य। ५. उजड्ड। ६ अपवाद। ७. दोष।

विश्वास करना अकाल मृत्यु है क्योंकि विश्वास करने पर विपत्ति में पड़ता है।

न विश्वसेत् कुमित्रे न मित्रे चापि विश्वसेत्।
कदाचित् कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत्॥

कुमित्र पर विश्वास न करे और मित्र पर भी विश्वास न करे क्योंकि कदाचित् क्रुद्ध कुपित हुआ मित्र सभी गोपनीय बातों को प्रकट कर दे।

—अज्ञात

यस्मिं मनो निवसति चित्तं चापि पसीदति।
अदिट्ठपुब्ब के पोसे कामं तस्मिम्पि विस्ससे॥

जिस मनुष्य पर मन ठहर जाता है, अथवा चित्त प्रसन्न होता है, पहले न देखा रहने पर भी, उसमें विश्वास कर लिया जाता है।

[पालि] —जातक (साकेत जातक)

कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।९०।४)

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह विश्रामु॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।९०)

पेखत[1] प्रगट प्रभाउ प्रतीति[2] न आवइ।

—तुलसीदास (पार्वती मंगल, ४३)

सुमार्ग पर चलने, कुमार्ग से बचने और जगत के प्रबन्ध की उत्तमता के लिए विश्वास एक मात्र सहारा है।

—बालकृष्ण भट्ट (भट्ट निबंधावली, पृ० ३३)

किसी भी चीज़ पर एकदम विश्वास कर लेने की जरूरत नहीं है। मगर बारीकी से जाँच करने के बाद जिस चीज़ पर विश्वास जम जाये, उससे तो उसी तरह चिपटे रहना चाहिए जैसे चींटा गुड़ से चिपटा रहता है।

—महात्मा गांधी (पत्र चमन कवि को, १६-११-१९३२)

छलना थी तब भी मेरा
उस पर विश्वास घना था।
उस माया की छाया में
कुछ सच्चा स्वयं बना था॥

—जयशंकर प्रसाद (आंसू)

विश्वास तो क्रय नहीं किया जाता!

—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, तृतीय अंक)

जिसे धर्म की शक्ति पर, धर्मस्वरूप भगवान की अनंत करुणा पर, पूर्ण विश्वास है, नैराश्य का दुःख उसके पास नहीं फटक सकता।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ३३)

साधन की सफलता विश्वास पर ही निर्भर करती है।

—स्वामी अशोकानंद (तत्त्व-चिंतन के कुछ क्षण, पृ० ९७)

चोर जुआरी गठकटा जार अरु नार छिनार।
सौ सौगंधें खाएं जो, भूल न कर इतबार॥

अज्ञात

तेरे वादे पर जिये हम, तो यह जान, झूठ जाना,
कि ख़ुशी से मर न जाते, अगर एतबार होता।

—ग़ालिब

उम्र भर करते रहे दावा वफ़ा का हम अबस
बाद मरने के किसी को एतबार आया तो क्या?

—नाशाद

किस बात पर तेरी मैं करूं एतबार हाय
इक़रार इक तरफ़ है तो इनकार इक तरफ़।

—क़ायम

ऐनवारलंचु नाप्तुवुलटंचुनु
बंदुगुलनु नम्म बाडि गादु।

ये हमारे अपने हैं, ये हमारे आत्मीय हैं, ऐसा सोचकर रिश्तेदारों पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

—वेमना (वेमनशतकमु)

नम्मिकचे गानि नडुवदेपनियु।

विना विश्वास के कोई भी काम हो ही नहीं सकता है।

[तेलुगु] —आदिभट्ल नारायणदासु (वेल्युमाट)

---

१. देखता है। २. विश्वास।

जब तक तुम स्वयं अपने में विश्वास नहीं करते, परमात्मा में तुम विश्वास नहीं कर सकते।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, भाग १०, पृ० २१३)

सच्चा विश्वास जगत में व्यर्थ नहीं होता।

—शरत्चन्द्र (शेष परिचय, पृ० १७२)

मनुष्य, मनुष्य ही है, देवता तो नहीं है। अपने सब भले बुरे, दोष गुण, बलिष्ठता और दुर्बलता को लेकर ही उसका समग्र रूप है। अतएव उसके ऊपर क्या इतना अधिक विश्वास रखना संगत है?

—शरत्चन्द्र (शेष परिचय, पृ० २७९)

किसी मनुष्य का स्वभाव उसे विश्वसनीय बनाता है, न कि उसकी सम्पत्ति।

—अरस्तू

यदि तुम्हारा विश्वास राई के दाने के बराबर भी हो, तो इस पहाड़ से कह सकोगे कि यहां से सरक कर वहां चला जा, तो वह वहां चला जाएगा, और कोई बात तुम्हारे लिये अनहोनी न होगी।

—नवविधान (मत्ती।१७।२०)

विश्वास करने वाले के लिये सब बातें सभव हैं।

—नवविधान (मार्क।९।२३)

यदि अपने वक्तव्य के विषय में दृढ़ विश्वास हो तो क्या कहीं शब्दों के विषय में माथापच्ची करने की आवश्यकता पड़ती है?

—गेटे (फ़ाउस्ट)

दयालुता से दयालुता और विश्वास से विश्वास का जन्म होता है।

—सैमुअल स्माइल्स (कर्तव्य, पृ० ११)

मनुष्य पर विश्वास करो ये सचमुच स्वर्णिम शब्द हैं।

—सैमुअल स्माइल्स (कर्तव्य, पृ० १५२)

There are no tricks in plain and simple faith.

निष्कपट और सरल विश्वास में छल नहीं होते।

—शेक्सपियर (जूलियस सीजर, ४।२)

Trust not him that hath once broken faith.

जिसने एक बार विश्वास भंग किया है, उस पर विश्वास मत करो।

—शेक्सपियर (किंग हेनरी सिक्स्थ, खण्ड ३, ४।४)

Man prefers to believe what he prefers to be true.

मनुष्य जिस बात के सत्य होने को वरीयता देता है, उसी में विश्वास को भी वरीयता देता है।

—बेकन (एफोरिज्म्स)

It is easier to believe than to doubt.

संदेह करने की अपेक्षा विश्वास करना अधिक सरल है।

—एवेरेट डीन मार्टिन (दि मीनिंग आफ़ ए लिबरल एड्युकेशन, अध्याय ५)

Strong beliefs win strong men, and then make them stronger.

प्रबल विश्वास प्रबल व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं और उन्हें और भी प्रबल बना देते है।

—वाल्टर बेजट

They can conquer who believe they can.

वे विजय कर सकते हैं जिन्हें विश्वास है कि वे कर सकते हैं।

—एमर्सन (सोसायटी एँड सालिट्यूड)

There lives more faith in honest doubt.

निष्कपट सशय में ज्यादा विश्वास रहता है।

—टेनिसन ('इन मेमोरियम')

The majority of people live below the level of belief or doubt. It takes application and a kind of genius to believe anything.

अधिकांश मनुष्य विश्वास अथवा संदेह के स्तर के नीचे रहते हैं। किसी बात पर विश्वास करने के लिए अध्यवसाय और एक विशिष्ट प्रकार की प्रतिभा आवश्यक है।

—टी० एस० इलियट (दि एनिमी, जनवरी १९२७)

Trust the man who hesitates in his speech and is quick and steady in action, but beware of long arguments and long beards.

उस मनुष्य पर विश्वास करो जो बोलने में संकोच करता है और कार्य में परिश्रमी व तत्पर है, परन्तु लम्बे तर्कों और लम्बी दाढ़ियों से सावधान रहो।

—जार्ज सांतायना (सालिलाक्वीज इन इंग्लैड)

विश्वासघात

यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निसेवते।
स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात् तैरेव हन्यते॥

जो व्यक्ति अपना पक्ष छोड़कर दूसरे पक्ष से मिल जाता है, वह अपने पक्ष के नष्ट हो जाने पर स्वयं भी पर-पक्ष द्वारा नष्ट कर दिया जाता है।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकांड, ८७।१६)

तुम विश्वास करो तो कोई
क्यों न करेगा घात?

—मैथिलीशरण गुप्त (द्वापर, पृ० ११७)

विष

अनभ्यासे विषं शास्त्रं अजीर्णे भोजनं विषम्।
मूर्खस्य च विषं गोष्ठी वृद्धस्य तरुणी विषम्॥

अभ्यास न करने पर शास्त्र विष हो जाता है। अजीर्ण होने पर भोजन विष हो जाता है। मूर्ख के लिए गोष्ठी विष हो जाती है। वृद्ध के लिए तरुणी विष हो जाती है।

—अज्ञात

विषं कुपठिता विद्या विषं व्याधिरनौषधः।
विषं व्याधिर्दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम्॥

कुपठित विद्या विष है। असाध्य रोग विष है। दरिद्र का रोग विष है। और, वृद्ध पुरुष के लिए तरुणी विष है।

—अज्ञात

विषमता

विषमता की पीड़ा से व्यस्त
हो रहा स्पंदित विश्व महान;
यही दुःख सुख विकास का सत्य
यही भूमा का मधुमय दान।

—जयशंकरप्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

आर्थिक विषमता के आगे राजनीतिक समता की एक नहीं चलती।

—सम्पूर्णानन्द (समाजवाद, पृ० ७५)

विषय

विषं विषयवैषम्यं न विषं विषमुच्यते।
जन्मान्तरघ्ना विषया एकजन्महरं विषम्॥

विषयवासना के कारण चित्त की विषमता ही विष है, विष विष नहीं कहलाता है क्योंकि विष तो एक जन्म का ही विनाश करता है, विषय तो जन्म-जन्मान्तर को नष्ट कर देते हैं।

—महोपनिषद् (३।५४-५५)

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है। कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अविवेक उत्पन्न होता है अविवेक से स्मृति-विभ्रम होता है स्मृति-विभ्रम से बुद्धि का नाश हो जाता है। और बुद्धि-नाश होने से उसका पूर्ण नाश हो जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।६-२६३)
अथवा गीता, २।६२-६३)

सुखमिच्छति चेत् प्राज्ञो विविवद् विषयांस्त्यजेत्।
विषवद् विषयानाहुर्विषयै र्यैर्निहन्यते॥
जनो विषयिणा साकं वार्तातः पतति क्षणात्।
विषयं प्राहुराचार्याः सितालिप्तेन्द्रवारुणीम्॥

विद्वान पुरुष यदि सुख चाहता है तो वह विषयों को विधिपूर्वक त्याग दे। विषयों को विष के समान बताया गया है, जिनके द्वारा मनुष्य मारा जाता है। विषयी के साथ वार्ता करने मात्र से मनुष्य क्षण में पतित हो जाता है। आचार्यों ने विषय को मिश्री मिली हुई वारुणी कहा है।

—शिवपुराण (रुद्रसंहिता, पार्वती खण्ड)

अनर्थमूला विषयाश्च केवलाः।

विषय केवल अनर्थ के मूल में हैं।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ९।४६)

कामानां प्रार्थना दुःखा प्राप्तौ तृप्तिर्न विद्यते।
वियोगान्नियतः शोको वियोगश्च ध्रुवो दिवि॥

विषयों की खोज में दुःख है। उनकी प्राप्ति होने पर तृप्ति नहीं होती है। उनका वियोग होने पर शोक होना निश्चित है। और, स्वर्ग मे उनका वियोग निश्चित है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ११।३८)

अभूतपरिकल्पेन विषयस्य हि बध्यते।
तमेव विषयं पश्यन् भूततः परिमुच्यते॥

विषय की अयथार्थ कल्पना से मनुष्य बांधा जाता है और उसी विषय को ठीक-ठीक देखता हुआ मुक्त होता है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १३।५१)

दृष्ट्वेकं रूपमन्यो हि रज्यतेऽन्यः प्रदुष्यति।
कश्चिद्भवति मध्यस्थस्तत्रैवान्यो घृणायते॥
अतो न विषयो हेतुर्बन्धाय न विमुक्तये।
परिकल्पविशेषेण संगो भवति वा न वा॥

एक ही रूप को देखकर कोई अनुराग करता है, कोई दोष देखता है, कोई उदासीन रहता है और कोई घृणा करता है। अतः बन्धन या मुक्ति का हेतु विषय नहीं है। कल्पना विशेष से ही विषय मे आसक्ति होती है या नहीं होती है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १३।५२-५३)

अस्वादमल्पं विषयेषु मत्वा संयोजनोत्कर्षमतृप्तिमेव।
सद्भ्यश्च गर्हां नियतं च पापं कः कामसंज्ञं विषमाददीत॥

विषयों में स्वाद कम है, बन्धन अधिक है, केवल अतृप्ति है, सज्जनों द्वारा निन्दा होती है, और पाप निश्चित है—ऐसा समझकर कौन व्यक्ति काम नामक विष को ग्रहण करे?

—अश्वघोष (बुद्धचरित, ११।१९)

दुर्जया हि विषया विदुषाऽपि।

विद्वानों को भी विषयों पर विजय प्राप्त करना कठिन है।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ५।१०९)

विषस्य विषयाणां च दूरमत्यन्तमन्तरम्।
उपभुक्तं विषं हन्ति विषयाः स्मरणादपि॥

विष और विषयों में बहुत बड़ा अन्तर है। विष खाने पर मनुष्य को मारता है किन्तु विषय तो स्मरण से भी मनुष्य को मार देते है।

—चन्द्रगोपी (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, ३३६८)

कामं विषं च विषयाश्च निरीक्ष्यमाणाः
श्रेयो विषं न विषयाः परिसेव्यमानाः।
एकत्र जन्मनि विषं विनिहन्ति पीतं
जन्मान्तरेषु विषयाः परितापयन्ति॥

विषय और विष के निर्णय में देखने पर यह लगता है कि विष कल्याणकारी है और विषय सेव्य नहीं है क्योंकि पिया हुआ विष एक जन्म ही बिगाड़ता है किन्तु विषय तो दूसरे जन्मों में भी कष्ट देते हैं।

—चन्द्रगोपी (वल्लभदेव कृत सुभाषितावली, ३३८४)

जिसमें विष होता है अर्थात् जो हानि पहुँचाता है और मृत्यु की ओर खीचकर ले जाता है, वही विषय है।

—आनन्दमयी मां (अमरवाणी, पृ० २०४)

विषयभोग

भोगा भवमहारोगाः तृष्णाश्चमृगतृष्णिकाः।

विषयभोग संसार के महारोग हैं और तृष्णाएं मृगतृष्णा है।

—योगवासिष्ठ (१।२६।१०)

आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः।

विषय-भोग तत्काल ही रमणीय प्रतीत होते हैं, अन्ततः वे ताप ही पहुँचाते हैं।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ११।१२)

जणेण सिद्धि होक्खामि, इइ बाले पगब्भइ।
कामभोगाणुराएणं, केसं संपडिवज्जइ॥

मूर्ख कहा करते हैं—"मैं तो सामान्य लोगों के साथ ही रहता हूं" और काम भोगासक्ति के कारण अन्त में क्लेश पाते हैं।

[पालि] —बालसुत्तं

खणमेत्तसोक्खा वहुकालदुक्खा, पगाम दुक्खा
अणिगाम सोक्खा।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ
कामभोगा॥

काम-भोग क्षण मात्र सुख और चिरकाल तक दुःख देने वाले है। उनमें सुख बहुत थोड़ा और दुःख अत्यधिक है। वे मोक्ष-सुख से भयंकर शत्रु और अनर्थों की खान हैं।
[प्राकृत] —कामसुत्तं

खणिमित्तसुक्खा वहुकालदुक्खा।

संसार के विषय-भोग क्षण भर के लिए सुख देते हैं, किन्तु चिरकाल तक दुःखदायी होते है।
[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (१४।१३)

विषय-त्याग

तजेउ भोग जिमि रोग, लोग अहिगन[1] जनु[2]।
—तुलसीदास (पार्वतीमंगल, २१)

विषयासक्ति

नित्यमस्नान-शौच-बाध्यो वलवान् रागमलावलेपः।

विषयासक्ति रूपी मल का लेप नित्य स्नान और शुद्धता से भी नष्ट नही होता।
—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ३१४)

नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः
पुरुषमत्यासंगो विषयेषु।

विषयों में अधिक आसक्ति भी उसी प्रकार मनुष्य को कुमार्ग पर ले जाकर नष्ट कर देती है जिस प्रकार दिग्भ्रम।
—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ३१६)

सप्पि मुक्की कंचुलिय जं विसु तं ण मुएइ।
भोयहं भाउ ण परिहरइ लिंग् गहण करेइ॥

सांप केंचुली को त्याग देता है परन्तु विष को नहीं त्यागता। इसी प्रकार यदि विषय-भोगों के परित्याग से भोग-भाव नहीं छूटा तो अनेक चिह्नों को ग्रहण करने से क्या लाभ?
[अपभ्रंश] —मुनिरामसिंह (पाहुड दोहा, १५)

१. सर्पगण। २. मानो।

विषाद

न विषादे मनः कार्यं विषादो दोषवत्तरः।
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इवोरगः॥

तुम्हें मन में विषाद नहीं करना चाहिए क्योंकि विषाद वहुत वड़ा दोष है। वह उसी प्रकार मनुष्य का नाश कर देता है जिस प्रकार क्रुद्ध सर्प पास आए बालक को डस लेता है।
—वाल्मीकि (रामायण, किष्किन्धाकांड, ६४।९)

Ay, in the very temple of delight
Veiled melancholyh as her sovran shrine.

सुख के मंदिर में ही अवगुण्ठित विषाद की सर्वश्रेष्ठ समाधि है।
— कीट्स (ओड आन मेलंकोली)

विष्णु

किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र यद्ववक्षे शिपि-
विष्टो अस्मि।

हे विष्णु! क्या तेरा वह नाम प्रसिद्ध होने योग्य है जो 'किरणों से व्याप्त मैं हूं' ऐसा अर्थ दिखाता है।
—सामवेद (१६२५)

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।

विद्वान लोग विष्णु के उस श्रेष्ठ स्थान को सदा देखते हैं।
—सामवेद (१६७२)

येनोत्पाप्य समूलमन्दरगिरिश्छत्रीकृतो गोकुले—
राहुर्येन महावलः सुररिपुः कार्यदशेषीकृतः।
कृत्वा त्रीणि पदानि येन वसुधा बद्धो वलिर्लीलया—
सोऽयं पातु युगे युगे युगपतिस्त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

जिसने पर्वत को मूल से उठाकर गोकुल पर छत्र वना दिया, जिसने महावलशाली देवताओं के शत्रु राहु को समाप्त कर दिया, जिसने पृथ्वी को तीन डगों में नापकर बलि को लीला-पूर्वक बांध लिया; वह यह युगपति, तीनों लोकों का स्वामी विष्णु युग-युग में रक्षा करे।
—अज्ञात

विस्मरण

बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेय।

—हिंदी लोकोक्ति

आए थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास।

—हिंदी लोकोक्ति

तुझे भूल जाना तो है ग़ैरमुमकिन[1]
मगर भूल जाने को जी चाहता है।

—'जिगर' मुरादाबादी

सुबह को देखते ही भूल गये शाम को हम।

—आतिश

हर एक शाख़ पे ढूंढा किए नशेमन[2] को
पले थे जिसमें उसी आशियां[3] को भूल गये।

—राजबहादुर वर्मा 'राज' (राजो नियाज)

कुछ होश ठिकाने हों तो लें नाम किसी का
हम देके कहीं दिल की रक़म भूल गए हैं।

—अज्ञात

दूसरे के उपकार का विस्मरण उचित नहीं होता, पर दूसरे पर उपकार को उसी दम भूल जाना ही उचित है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुलर, १०८)

आदमी तारों को पकड़ने के लिए हाथ फैलाता है और अपने ही कदमों में उगे हुए फूलों को भी भूल जाता है।

—जर्मी बेंथैम

वीर

दे० 'वीर और कायर', 'वीरगति', 'वीर-वाणी', 'वीरांगना' भी।

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उतस्थिरः। एवा ते राध्यं मनः।

तू युद्ध में वीरों का उपयोग करने वाला है, क्योंकि तू शूर है और युद्ध में स्थिर रहने वाला है, इसलिए तेरा मन आराधना करने के योग्य है।

—सामवेद (८२४)

१. असम्भव। २. घोंसला। ३. घोंसला।

गर्जन्ति न वृथा शूरा निर्जला इव तोयदाः।

शूर जन जलहीन बादल के समान व्यर्थ गर्जना नहीं किया करते।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकाण्ड।६५।३)

न मर्षयन्ति चात्मानं संभावयितुमात्मना।
अदर्शयित्वा शूरास्तु कर्म कुर्वन्ति दुष्करम्॥

शूर जनों को अपने मुख से अपनी प्रशंसा करना सहन नहीं होता। वे वाणी के द्वारा प्रदर्शन न करके दुष्कर कर्म ही करते हैं।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकाण्ड।६५।४)

नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वः कदाचन।
परैर्वा हन्यते वीरः परान् वा हंति संयुगे।

युद्ध में किसी को सदैव विजय मिले ऐसा पहले कभी नहीं हुआ है। वीर पुरुष संग्राम में या तो शत्रुओं द्वारा मारा जाता है या स्वयं ही शत्रुओं को मार गिराता है।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकाण्ड।१०६।१७)

शूरान् महाशूरतमोऽस्ति को वा
मनोजवाणैर्व्यथितो न यस्तु।
प्राज्ञोऽथ धीरश्च समस्तु को वा
प्राप्तो न मोहं ललना-कटाक्षैः॥

वीरों में सबसे बड़ा वीर कौन है? जो काम वाणों से पीड़ित नहीं होता। बुद्धिमान, धीर और समदर्शी कौन है? जो स्त्रियों के कटाक्षों से मोह को प्राप्त न हो।

—शंकराचार्य (प्रश्नोत्तरी, १२)

यशस्तु रक्ष्यं परतो यशोधनैः।

यशस्वियों को शत्रुओं से अपने यश की रक्षा करनी ही चाहिए।

—कालिदास (रघुवंश, ३।४८)

अंगणवेदिर्वसुधा कुल्या जलधिःस्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य धीरस्य॥

कृतप्रतिज्ञ वीर के लिए पृथ्वी आंगन की वेदी के समान, समुद्र कुल्या (नहर, नाला) के समान, पाताल स्थली (ऊंची सम भूमि) के समान और सुमेरु पर्वत वल्मीक के समान हो जाता है।

—बाणभट्ट (हर्षचरित)

वीराणां त्वपुनरुक्ता परोपकाराः।

वीर लोग परोपकार की प्रतिज्ञा करके कभी नहीं मुकरते।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० ११५)

पुरः प्रवृत्तप्रतीपप्रहताः पन्थानः पौरुषस्य।

पौरुष के मार्ग आगे-आगे चलने वाले प्रताप के द्वारा प्रशस्त होते हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १९१)

यशः पुण्यैरवाप्यते।

यश की प्राप्ति पुण्यों से ही होती है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा)

नीतिरापदि यद् गम्यः परस्तन्मानिनो ह्रिये।
विधुर्विधुन्तुदस्येव पूर्णस्तस्योत्सवाय सः॥

शत्रु के आपत्तिकाल में उस पर अभियान की जो नीति है, वह शौर्याभिमानी पुरुष के लिए लज्जाजनक है। राहु के लिए पूर्णिमा के चन्द्र की भाँति सुस्थिर शत्रु आनन्ददायक होता है।

—माघ (शिशुपालवध, २।६१)

अनुहुंकुरुते धनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी।

सिंह मेघ-गर्जन के प्रति गर्जन करता है, गीदड़ के बोलने पर नहीं।

—माघ (शिशुपालवध, १६।२५)

आक्रान्तितो न वशमेति महान् परस्य।

आक्रमण करने से महान व्यक्ति शत्रुओं के वश में नहीं आते।

—माघ (शिशुपालवध, ५।४१)

दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्।
कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतां दधानो
वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव॥

इस[1] की दृष्टि ऐसी है जिसके आगे त्रिभुवन का उत्साह-संचय तृणवत् हैं। इसकी चाल ऐसी है जिससे पृथ्वी नीचे झुक रही है। इसकी कुमारावस्था की गंभीरता ऐसी है जो पर्वत की गंभीरता की बराबरी कर रही है। ओह! यह तो ऐसा लगता है मानो साक्षात् वीररस अथवा मूर्तिमान अभिमान चल-फिर रहा हो।

—भवभूति (उत्तररामचरित, ६।१९)

सुलभद्वेषं हि वीरक्रतम्।

वीरों में परस्पर द्वेष बहुत हुआ करता है।

—भवभूति (महावीरचरित, ३।३)

कः खगौघाङचिच्छौजा झाञ्ज्ञोऽटौठीडडंढणः।
तथोद्धीन्पफर्बाभीर्मयोऽरिल्वाशिषां सहः॥[2]

यह कौन है जो पक्षी समुदाय को एकत्र करता है, जिसमें संवित् को नष्ट करने का ओज नहीं है, जो दूसरे के बल का भक्षण करने वाला पंडित है, जो रणक्षेत्र में घूमने वाले योद्धाओं का बाध करने वालों का स्वामी है, जो स्थिर है तथा जिसने निर्मम होकर इन समुद्रों को परिपूर्ण किया? वह शत्रुओं को समाप्त करा देने वाले आशीर्वादों का पात्र 'मय' है।

—अज्ञात (भोज कृत सरस्वतीकंठाभरण में उद्धृत, २।२६३)

सुरअरु सुरही परसमणि, णहि वीरेस समाण।
जो वक्कल अरु कठिण तणु, ओ पसु ओ पासाण॥

कल्पवृक्ष, सुरभि और पारसमणि—ये तीनों पदार्थ वीर की समानता नहीं कर सकते। इनमें से एक तो वल्कल युक्त और कठोर शरीर वाला है, दूसरा पशु है और तीसरा पाषाण है।

[अपभ्रंश] —प्राकृतपैंगल

सूरा तबही परषिये, लड़ै धणीं कै हेत।
पुरिजा पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छांड़ै खेत॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ६९)

दुर्जन को काल सो कराल पाल सज्जन को।

—तुलसीदास (हनुमान बाहुक, १०)

१. वीर बालक 'कुश'। २. इस श्लोक में क्रम से सभी व्यंजनों का प्रयोग द्रष्टव्य है।

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु॥

—तुलसीदास (दोहावली, ४३९)

सती सूरमा संत जन इन समान नहिं और।
अगम पंथ पै पग धरैं डिगे न पावै ठौर॥

—हरीराम व्यास

सूरन की नहिं रीति, अरि आये घर में रहै।
कै हारे कै जीति, जैसी ह्वै तैसी बनै॥

—भैया भगवतीदास (चेतन कर्म चरित्र)

सच्चे वीर पुरुष धीर, गंभीर और आज़ाद होते हैं। उनके मन की गंभीरता और शांति समुद्र की तरह विशाल और गहरी, या आकाश की तरह स्थिर और अचल होती है। वे कभी चंचल नहीं होते।

—सरदार पूर्णसिंह ('सच्ची वीरता' निबंध)

सच्चे वीरों की नींद आसानी से नहीं खुलती। ये सत्व-गुण के क्षीर समुद्र में ऐसे डूबे रहते हैं कि उनको दुनिया की खबर ही नहीं होती। वे संसार के सच्चे परोपकारी होते हैं।

—सरदार पूर्णसिंह ('सच्ची वीरता' निबंध)

वीर कभी बड़े मौकों का इंतज़ार नहीं करते, छोटे मौकों को ही बड़ा बना देते हैं।

—सरदार पूर्णसिंह ('सच्ची वीरता' निबंध)

वीरों के बनाने के कारखाने कायम नहीं हो सकते। वे तो देवदार के दरख़्तों की तरह जीवन के अरण्य में ख़ुद-ब-ख़ुद पैदा होते हैं और बिना किसी के पानी दिये तैयार होते हैं।

—सरदार पूर्णसिंह ('सच्ची वीरता' निबंध)

वीर तो अपने अन्दर ही 'मार्च' करते हैं क्योंकि हृदयाकाश के केन्द्र में खड़े होकर वे कुल संसार को हिला सकते हैं।

—सरदार पूर्णसिंह ('सच्ची वीरता' निबंध)

वीरों की मृत्यु पर आँसू नहीं बहाए जाते, उत्सव के राग गाए जाते हैं।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद ४३)

वीर पुरुष यों ही मरते हैं। अभिलाषाएं उनके गले की जंजीर नहीं होतीं। उन्हें इसकी चिन्ता नहीं होती कि मेरे पीछे कौन हँसेगा और कौन रोयेगा। उन्हें इसका भय नहीं होता कि मेरे बाद काम कौन सँभालेगा। यह सब संसार से चिपटने वालों के बहाने हैं। वीर पुरुष मुक्तात्मा होते हैं। जब तक जीते हैं, निर्द्वन्द्व जीते हैं। मरते हैं, तो निर्द्वन्द्व मरते हैं।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद ४३)

वीरात्माएं सत्कार्य में विरोध की परवा नहीं करतीं और अन्त में उस पर विजय ही पाती हैं।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, सर्ग ५)

सम्पूर्ण संसार कर्मण्य वीरों की चित्रशाला है।

—जयशंकर प्रसाद (स्कंदगुप्त, द्वितीय अंक)

समर में भाग्य का नाम नहीं लेते···भाग्य की चिन्ता जिस पल वीर करेंगे, वीर का धर्म डूब जाएगा।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (अपराजित, पहला अंक)

सहज सूर रण चूर-उर चाहिय चातक-चाह।
चाहिय हारिल हठ वहै, चाहिय सती-उमाह॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई, प्रथम शतक, १२)

कहां सूर समरत्थ, जो समर-दान वढ़ि लेत।
कौन काल-करवाल को किलकि कलेऊ देत॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई, प्रथम शतक, ६१)

पावस हीं में धनुष अब, सरित-तीर हीं तीर।
रोदन हीं में लाल दृग नौरस ही में वीर॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई, सातवां शतक, ४३)

जो देश जाति के लिए, शत्रु के
सर काटे, कटवा भी दे
उसको कहते हैं वीर, आन
हित अंग-अंग छँटवा भी दे॥

—श्यामनारायण पाण्डेय (शिवाजी)

जो करता अत्याचार और
जो सहता दोनों पापी हैं
उत्तर अनीति के देते जो
वे ही यशवीर प्रतापी हैं।

—श्यामनारायण पाण्डेय (शिवाजी)

कटि में तलवार बाँधने से
कोई वर वीर नहीं होता।
शेख़ी बघारने से घर में
कोई रणधीर नहीं होता।
—श्यामनारायण पाण्डेय (शिवाजी)

वीर को मौत से हमने नहीं डरते देखा,
तख़्त ये मौत पे भी खेल ही करते देखा।
—अशफ़ाक़ उल्ला खाँ

चुं शेरे जियां ज़िन्दा मानद हमे
जि वो इन्तक़ामे सितानद हमे।

जब तक वीर शेर जिएगा तब तक वह तुझ से बदला लेता रहेगा।
[फ़ारसी] —गुरु गोविन्दसिंह (ज़फ़रनामा, १५)

दर केश जाँ फ़रोशाँ फ़ज़लो अदब न बाशद
ईजाँ नसब न गुंजद ईंजाँ हसब न बाशद।

अपने प्राणों पर खेलने वालों को बुद्धि और ज्ञान शोभा नहीं देता। इस स्थान पर प्रतिष्ठा और मान का भी काम नहीं है।
[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

ओर मुवा सुण ओहड़ै, बरखां पाँच विचाल।
घर में मायड़ घातियो, बरकै पूंचां वाल।।

दूसरों की मृत्यु की सूचना पाकर माँ ने अपने एक पंचवर्षीय बालक को युद्ध मे जाने से रोक दिया। इस पर उसने अपने दाँतों से पहुँचो को काट-काट कर घर पर ही आत्महत्या कर ली।
[राजस्थानी] —सूरजमल

नर जिण सिर ग़ालिब नहीं, दुसमण-रा सौ दाव।
बे-पढियां ही वाकलां, वै पढ़ियां-रा राव।।

जिन पर शत्रु के सैकड़ों दाँव-पेंच भी विजय नहीं पाते, वे मनुष्य बिना पढ़े ही पढ़े हुओं के राजा हैं।
[राजस्थानी] —बांकीदास

जिव जायै तो जाण दै, जस जाये डरिये।
माल कहै, क्यूं भज्जियें, भी भग्गाँ मरियैं।।१८।।

यदि प्राण जाते हैं तो जाने दो। यश जाता हो तो डरना चाहिए। माल कवि कहता है कि युद्ध से क्यों भागा जाय? भागने पर भी तो मरना निश्चित है।
[राजस्थानी] —माल

नह मूंघा धन-धान-सूं, नह मूंघा घर हूंत।
सूंघा मरही देस हित, वै मूंघा रजपूत।।

अधिक धन-संपत्ति या ऊँचे महलों के द्वारा राजपूत मूल्यवान (महत्त्वशाली) नहीं होते और न ज़मीन के द्वारा मूल्यवान होते हैं। प्राणों को सस्ता समझकर जो देश के लिए मरते हैं, वे ही राजपूत मूल्यवान होते हैं।
[राजस्थानी] —अज्ञात

मरदां मरण हक्क है, ऊबरसी गल्लांह।
सापुरसां-रा जीवणा थोड़ा ही भल्लाह।।

वीरों के लिए मरना उचित है। उनकी बातें उनके पीछे रह जाएंगी। सच्चे पुरुषों का जीवन थोड़ा हो तो भी अच्छा।
[राजस्थानी] —अज्ञात

सीहां देस-विदेस सम, सीहां किसा वतन्न।
सींह जका वन संचरै, वै सीहां-रा बन्न।।

सिंहों के लिए देश और परदेश दोनों समान हैं। सिंहों के कौन से स्वदेश? सिंह जन वनों में जाते हैं। वे ही सिंहों के स्वदेश हो जाते हैं।
[राजस्थानी] —अज्ञात

झालर वाज्याँ भगतजन, ब्रंब वज्याँ रजपूत।
एतां ऊपर ना उटै, आठूं गांठ कपूत।।५।।

मंदिर में घटे—घड़ियाल की आवाज सुनते ही भक्त उठ खड़ा होगा। रणभेरी की आवाज सुनते ही राजपूत कट मरने को उद्यत हो जायगा। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो उन्हें सच्चा भक्त और राजपूत समझना ही नहीं चाहिए।
[राजस्थानी] —अज्ञात

परगट दीसै अचपला, जोधाँरा रा जाम।
खड्ग उठावै खेल में, गणवै अरियाँ गाम।।

योद्धा पुरुषों के पुत्र स्पष्ट ही वंशानुगत शौर्य का परिचय देते रहते हैं। वे खेल में भी तलवार उठाकर शत्रु राज्य पर आक्रमण करने के खेल खेलते हैं।
[राजस्थानी] —अज्ञात

सुत मायड़ हूँता सुणै, वीरां रा वाखाण।
ओज भर्योड़ो अंजसै, कर झालै केवांण॥

पुत्र जब माता के मुंह से, अपने वीर पूर्वजों की शौर्य-गाथाएं सुनता है, तब गौरव से उमंगित हो, ओजस्वी पुत्र हाथ में तलवार उठा लेता है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

सूरा सोई पिछाणिये, लड़ै धरम के हेत।
पुरजा पुरजा कट पड़ै, कदै न छांडे खेत॥

जो धर्म के लिए लड़ता है और टुकड़े-टुकड़े होकर गिरने पर भी रणक्षेत्र को छोड़कर नहीं भागता है वही सच्चा शूरवीर है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

हें नारीव आमुचें—म्हणुनी न वा
वीरांच्या वदति न वाचा।
ते स्वतांच्याच रुधिरानें
लिहिति लेख निज नाशि वाचा।
स्वातंत्र्यसाधनीं देती
मोबदला ते जीवाचा॥

जो वीर होते हैं वे कभी यह नहीं कहते कि हमारे भाग्य में ऐसा ही लिखा था। वे अपने ही रक्त से अपने भाग्य का लेख लिखा करते हैं और स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाते हैं।

[मराठी] —यशवन्त दिनकर पेंढरकर
('देहाचा पूल' कविता)

Cowards die many time before their deaths.
The valiant never taste of death but once.

कायर मनुष्य अपनी मृत्यु से पहले अनेक बार मरते हैं किन्तु वीर व्यक्ति केवल एक बार मृत्यु का आस्वादन करते हैं।

—शेक्सपियर (जूलियस सीजर, २।२)

वीर और कायर

एषा कापुरुषासेव्या धीराणां नैव पद्धतिः।
यदायासलवत्रासात् सौख्यवैमुख्य भागिता॥

थोड़े से कष्ट के त्रास से सुख विमुख हो जाना, यह कायरों की पद्धति है, वीरों की नहीं।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।२८२२)

कायर बहुत पमांवहीं, वहकि न बोलै सूर।
कांम पडया ही जाणिये, किसके मुख परि नूर॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ६६)

सीहण हेको सीह जण छापर मंडै आल।
दूध विटालण कापुरुष बौहला जणै सियाल॥

सिंहनी केवल एक सिंह को जन्म देती है जो खुले मैदान में घेरा डालता है परन्तु सियारी दूध को लज्जित करने वाले अनेक कायरों को जन्म देती है।

[राजस्थानी] —ईसरदास

वीरगति

आहवे तु हतं शूरं न शोचेत कथंचन।
अशोच्यो हि हतः शूरः स्वर्गलोके महीयते॥

युद्धस्थल में मारे गये शूरवीर के लिए किसी प्रकार भी शोक नहीं करना चाहिए। वह मारा गया शूरवीर स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है, अतः कदापि शोचनीय नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।९८।४४-४५)

वीरता

अनुहुंकुरुते धनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी।

सिंह मेघ का गर्जन सुनकर ही दहाड़ता है, सियारों की आवाज सुनकर नहीं।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, २।८७)

वसुंधरेयं जह वीर भोज्जा।

यह वसुंधरा वीरभोग्या है।

[प्राकृत] — बृहत्कल्पभाष्य

वीर की कभी नक़ल नहीं हो सकती। वीरता देशकाल के अनुसार संसार में जब कभी प्रकट हुई तभी एक नया

स्वरूप लेकर आई, जिसके दर्शन करते ही सब लोग चकित हो गये—कुछ बन न पड़ा और वीरता के आगे सिर झुका दिया।

—सरदार पूर्णसिंह ('सच्ची वीरता' निबंध)

अपने आपको हर घड़ी और हर पल महान्-से-महान् बनाने का नाम वीरता है।

—सरदार पूर्णसिंह ('सच्ची वीरता' निबंध)

वीरता कभी-कभी हृदय की कोमलता का भी दर्शन कराती है। ऐसी कोमलता देखकर सारी प्रकृति कोमल हो जाती है; ऐसी सुंदरता देखकर लोग मोहित हो जाते हैं।

—सरदार पूर्णसिंह ('सच्ची वीरता' निबंध)

कायरता की भाँति वीरता भी संक्रामक होती है।

—प्रेमचंद (कर्मभूमि, पृ० २१२)

वीरता भी एक सुन्दर कला है, उस पर मुग्ध होना आश्चर्य की बात नहीं।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, द्वितीय अंक)

वीरता उन्माद नहीं है, वह आँधी नहीं है, जो उचित-अनुचित का विचार न करती हो। केवल शस्त्र-बल पर टिकी हुई वीरता बिना पैर की होती है। उसकी दृढ भित्ति है—न्याय।

— जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, द्वितीय अंक)

प्राणों का मोह त्याग करना वीरता का रहस्य है।

—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, द्वितीय अंक)

बहादुरी का अर्थ उद्दण्डता नहीं है। जो अपनी शक्ति से दूसरे को कुचलता है वह बहादुर नहीं है। बहादुर वह है जो शक्ति होने पर भी किसी को नहीं डराता और निर्बल की रक्षा करता है।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, १६ जनवरी १६२१)

लाठियाँ खाकर बहादुरी से मरना न आए, तो भी कायर बनकर भागना नहीं चाहिए। अहिंसा से या हिंसा से दुश्मन का सामना करना सीखना चाहिए।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ४६६)

बिना विवेक के वीरता महासमुद्र की लहर में डोंगी-सी डूब जाती है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (चक्रव्यूह, पहला अंक)

दम्भ करने का स्वभाव कायर का है और वीर अपने विनय में भी आगे है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (चक्रव्यूह, दूसरा अंक)

नभ जिमि बिन ससि सूर के, जिमि पंछी बिन पाँख।
बिना जीव जिमि देह तिमि बिना ओज यह आँख॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई, सातवां शतक, ५५)

धर कर चरण विजित श्रृंगों पर झण्डा वही उड़ाते हैं,
अपनी ही उँगली पर जो खंजर की जंग छुड़ाते है॥

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (चक्रवाल, पृ० ५४)

छीनता हो स्वत्व कोई, और तू
त्याग-तप से काम ले यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे
बढ़ रहा तेरी तरफ जो हाथ है॥

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग)

जब तक प्रसन्न यह अनल, सुगुण हँसते हैं,
है जहाँ खड्ग, सब पुण्य वहीं बसते हैं।
वीरता जहाँ पर नहीं, पुण्य का क्षय है,
वीरता जहाँ पर नहीं, स्वार्थ की जय है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० ४)

वैराग्य छोड़ बाँहों की विभा संभालो,
चट्टानों की छाती से दूध निकालो।
है रुकी जहां भी धार, शिलाएं तोड़ो,
पीयूष चन्द्रमाओं को पकड़ निचोड़ो।
चढ़ तुंग शैल-शिखरों पर सोम पियो रे।
योगियों नहीं, विजयी के सदृश जियो रे॥

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० १८)

अरि को भी धोखा देना,
शूरों की रीति नहीं हैं।

—श्यामनारायण पाण्डेय (हल्दीघाटी)

लगा दे आग न दिल में तो आरजू क्या है
न जोश खाय जो ग़ैरत से वह लहू क्या है।

—ब्रजनारायण 'चकबस्त' (सुबह वतन, पृ० १८)

खाटी कुल-री खोपणा ने पै घर घर नींद ।
रसा कंवारी रावतां, वीर तिको ही वींद ॥

कुल की कमाई को खोने वाले घर-घर में सोये पड़े हैं। सरदारो ! पृथ्वी कुमारी कन्या है, जो वीर है वही उसका पति है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

कुतुबशहा यानें जावसाल केला की, पटेल, हमारे साथ तुम और लड़ेंगे ? म्हणोन दम बांधोन जावसाल केला कीं, "निशा अकताला ! बचेंगे तो और भी लड़ेंगे।"

कुतुबशाह ने दत्ताजी शिंदे से व्यंग्यपूर्वक कहा —"पटेल, क्या तुम हमारे साथ फिर लड़ोगे?" मरणोन्मुख शिंदे ने उत्तर दिया—हाँ, यदि बचे रहे तो और भी लड़ेंगे।'

[मराठी] —जनवरी १७६० में पानीपत युद्धभूमि में मरणोन्मुख मराठा सेनापति दत्ताजी शिंदे का क़ुतुबशाह को उत्तर

अपणांस राखून गनीम ध्यावा स्थलास मनिमांचा बेढ़ा पडला तो रोज सूंजून स्थल जतन करावें, निदान येऊन पडलें तरी परिच्छिन्न वार होऊन लोकीं मरावें, पण सल्ला देऊन, स्थल देऊन, जीव वाचविला असे सर्वथा न घड़ावें।

यदि शत्रु द्वारा हमारे देश पर आक्रमण किया जाए तो हमें अहर्निश अपने आपको सुरक्षित रखकर उससे लोहा लेना चाहिए। यदि विपत्ति शीश पर ही मंडराने लगे तो कदापि अपना पग पीछे न धरना चाहिए, अपितु युद्ध करते-करते अपने प्राण विसर्जित कर देने चाहिए जिससे बाद में विश्व को यह कहने का साहस न हो सके कि हमने अपने देश के सम्मान की बलि चढ़ाकर अपने प्राण बचाये हैं।

[मराठी] —महाराष्ट्र में पेशवा-काल की एक राजाज्ञा

हम अपनी तलवारों को शत्रुओं में बड़ी बुरी तरह से बांटते हैं। नतीजा यह होता है कि हमारे हिस्से में तलवारों के दस्ते और शत्रुओं के हिस्से में तलवारों के फल होते है।

—जाफ़र बिन-उलवत-उल-हारसी
(अरबी-काव्य-दर्शन, पृ० ३९)

In a false quarrel there is no true valour.

झूठे झगड़े में सच्ची वीरता नहीं होती।

—शेक्सपियर (मच एडो एवाउट नथिंग, ५।१)

वीररस

अपरिमितयशः प्रकरवर्षी विकासी वीररसः।

वीररस अपरिमित यशसमूह बरसाने वाला एवं विकासशील होता है।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १९१)

छाँड़ि वीर रस अब हमैं नहि भावत रस आन।
सूझत सावन-आँधरैहि हरो-हरो हि जहान॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई, प्रथम शतक, ८)

कहा करौं माधुर्य लै मृदुल मंजु बिनु ओज।
दिपैं न ज्योति-विकास-विनु सुन्दर नैन-सरोज॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई, प्रथम शतक, १०)

वीरवाणी

वयं च शक्तिसम्पन्ना अकाले त्वामघृष्णुम।
अशक्ता हि रणो क्रूर युष्मानर्चन्ति मानवाः।

अरे क्रूर ! हम शक्ति-सम्पन्न हैं। असमय मे भी तुम्हें कुचल सकते हैं। जो युद्ध करने में असमर्थ हैं, ऐसे दुर्बल मनुष्य ही तुम लोगों की पूजा करते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, आदिपर्व, १६९।१८)

वीरांगना

मरु मरीं, आऊं रुएं, मोटी आउम, कांध !
कचनि बड़ा पांद, जिअण थोरा डींहुंड़ा॥

हे स्वामी ! तुम्हारे प्राण भले ही चले जाएं और मुझे रोना पड़े परन्तु रणभूमि से लौटकर न आना। उपालंभ और अपयश के आँचल बड़े होते है और यह जीवन थोड़े दिनों का है।

[सिंधी] —शाह अब्दुल लतीफ़

भाभी हूं डोढ़ी खड़ी, लीधां खेटक रूक।
ये मनुहारौ पावणां, मेड़ी झाल बंदूक॥

हे भामी ! मैं ढाल-तलवार लेकर ड्योढी पर खड़ी हूं। तुम बंदूक लेकर मेड़ी पर जाओ और अतिथियों (शत्रुओं) का स्वागत करो।

[राजस्थानी] —सूरजमल

जलम दिखायो जलम-दिन, परण दिखायो आज।
बेटा ! हरख दिखावजे मरण देस-रै काज ॥४॥

हे बेटा ! जन्म लेकर तुमने जन्मोत्सव का दिन दिखाया। विवाह करके आज विवाहोत्सव का दिन दिखाया। हे पुत्र ! देश के लिए मर कर मरणोत्सव का दिन भी दिखाना।

[राजस्थानी] —अज्ञात

इला न देणी आपणी, रण-खेतां भिड़ जाय।
पूत सिखावै पालणै मरण-बड़ाई माय॥

अपनी भूमि को किसी को न देना, उसके लिए रण-भूमि में भिड़ जाना। माता इस प्रकार पुत्र को झूले में झुलाते समय ही मरने की महिमा सिखाती है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

कंथ ! लखीजै उभय कुल, नांह घिरंती छाँह।
मुड़िया मिळसी गींदवों, मिळै न धणरी बाँह ॥१२॥

हे पति ! दोनों कुलों (की प्रतिष्ठा) की ओर देखना। जीवन तो घिरती-घिरती छाया है, उसकी ओर मत देखना। यदि लौटकर आ गए तो सोते समय सिर रखने के लिए तुम्हें तकिया ही मिलेगा, तुम्हारी प्रियतमा की बाँह नहीं मिलेगी।

[राजस्थानी] —अज्ञात

धन विधना ! तो लेखणी, धन तो हाथ विसेस।
परण लिख्यो भड़ पीव-सूं मरण लिख्यो हित देस॥

हे विधाता। तेरी कलम धन्य है, तेरा हाथ विशेष रूप से धन्य है जो तूने मेरे भाग्य में वीर पति के साथ विवाह होना लिखा और देश के लिए मरना लिखा।

[राजस्थानी] —अज्ञात

हेली ! तिल-तिल कंत रै अंग विलग्गा खाग।
हूं बलिहारी नींबड़ै, दीधो फेर सुहाग ॥२॥

हे सखी ! पति के शरीर में तिल-तिल में तलवार के घाव लगे। मैं नीम पर बलिहारी जाती हूं, जिसने मुझे सुहाग वापस दे दिया मेरे सुहाग को लौटा दिया।

[राजस्थानी] —अज्ञात

भोला जाणै भूलिया परखां आठां वाल।
एथ घराणै सिंघणी, कँवर जणै सोई काल ॥७॥

भोले शत्रु यह समझकर धोखे में आ गये कि बालक आठ ही वर्ष का है। पर उनको नहीं मालूम था कि इस घराने में सिंहनी है, जो-जो भी पुत्र जनती है, वही काल के समान होता है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

सुत ! करजे हित देस-रो, झड़जे खागां-हूत।
बूढापा-री चाकरी जद भर पाऊं पूत ॥३॥

हे पुत्र ! देश का हित करना, तलवारों से कटकर गिर जाना। बेटा ! ऐसा करोगे तभी मैं बुढ़ापे की सेवा पाऊंगी (तभी समझूंगी कि तुमने बुढ़ापे में मेरी सेवा की)।

[राजस्थानी] —अज्ञात

जे मूवा तो अत भला, जे उवर्‌या तो सार।
बिहूं प्रकारां हे सखी ! मादल घूमै बार ॥२१॥

पति यदि मारे गये तो बहुत अच्छा और यदि बच गये तो सबसे अच्छा। हे सखी ! दोनों ही प्रकार से द्वार पर बाजे बजेंगे।

[राजस्थानी] —अज्ञात

वृन्दावन

धनि यह वृन्दावन की रेनु।

—सूरदास (सूरसागर)

वृन्दावन के रूख हमारे मात पिता सुत बंध।
गुरु गोविन्द साधु गति मति सुख, फल फूलन की गंध॥
इनहिं पीठि दै अनत डीठि करै सो अंधन में अंध।
व्यास इनहिं छोड़ै और छड़ावै ताको परियो कंध॥

—हरीराम व्यास

वृक्ष

दे० 'नीम वृक्ष' भी।

छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसंभाव्यफलेष्वमीषु।
तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु॥

अपनी छाया से मार्ग के परिश्रम को दूर करने वाले, प्रचुर मात्रा में अत्यधिक मधुर फलों से युक्त, सुपुत्रों के

समान आश्रय के वृक्षों पर उनके अतिथियों की पूजा का भार स्थित है।

—कालिदास (रघुवंश, १३।४६)

मधुरमिव वदन्ति स्वागतं भृंगशब्दै-
नतिमिव फलनम्रैः कुर्वतेऽमी शिरोभिः।
मम ददत इवार्घ्यं पुष्पवृष्टिं किरन्तः
कथमतिथिसपर्य्यां शिक्षिताः शिखिनोऽपि॥

वृक्ष भ्रमरों की झंकार से हमारा कर्ण-मधुर स्वागत-सा कर रहे हैं। फलावनत डालियों के अग्रभाग से मानों हमें प्रणाम कर रहे हैं। पुष्पवृष्टि करते हुए हमें अर्घ्य-सा दे रहे हैं। यह कैसा आश्चर्य का विषय है कि मुनियों ने इन वृक्षों को भी अतिथि-पूजा सिखा दी है।

—हर्ष (नागानन्द, १।११)

शब हो, हवा हो, धूप हो, तूफ़ां हो, छेड़-छाड़,
जंगल में पेड़ कब इन्हें लाते हैं ध्यान में?
गर्दिश से रोजगार की हिल जाये जिसका दिल
इन्सान है कि कम है दरख्तों से शान में।

चाहे रात हो, चाहे हवा हो, चाहे धूप हो, चाहे आंधी हो और उसके झोंके, जंगल के वृक्ष इनकी कुछ परवाह नहीं करते। और समय के हेर-फेर से जिसका चित्त अस्थिर हो जाये, वह चाहे मनुष्य हो परन्तु वृक्षों की अपेक्षा तुच्छ है।

—रामतीर्थ (स्वामी रामतीर्थ ग्रन्थावली, भाग ७, पृ० ८२)

वृद्ध

दे० 'वृद्धावस्था' भी।

मान्याश्चैवाभिगम्याश्च वृद्धास्तात यथाग्नयः।
क्रोधो हि तेषां प्रदहेल्लोकानन्तर्गतानपि॥

तात! वृद्ध पुरुष अग्नियों के समान आदरणीय तथा सेव्य होते हैं, उनका क्रोध आन्तरिक साधनाओं से प्राप्त हुए लोकों को भी जलाकर भस्म कर सकता है।

—हरिवंशपुराण (विष्णु पर्व।२३।१२)

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः॥

केश श्वेत होने से कोई वृद्ध नहीं होता। जो युवा होता हुए भी अध्ययनशील है, देवगण उसी को वृद्ध मानते हैं।

—मनुस्मृति (२।१५६)

उत्साहशक्तिहीनत्वाद् वृद्धो दीर्घामयस् तथा।
स्वैरेव परिभूयेते द्वावप्येतावसंशयम्॥

वृद्ध व्यक्ति और दीर्घरोगी उत्साह एवं शक्ति से रहित होने के कारण स्वजनों द्वारा ही तिरस्कृत होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

—अज्ञात

वृद्धवाक्यैर्विना नूनं नैवोत्तारं कथंचन।

वृद्ध लोगों के वाक्यों के बिना किसी प्रकार भी निस्तार नहीं है।

—अज्ञात

मुहमद बिरिध जो नै चलै काह चलै भुइं टोह।
जोबन रतन हेरान है मकु धरती महँ होइ॥

वृद्ध व्यक्ति जो झुककर चलता है, वह धरती में क्या खोजता चलता है? उसका जो यौवन रूपी रत्न खो गया है, उसे ही खोजता है कि शायद धरती पर गिरा हुआ हो।

—जायसी (पदमावत, ५८६)

बिरिध जो सीस डोलावै सीस धुनै तेहि रीस।
बूढ़े आढ़े होहु तुम्ह केइँ यह दीन्ह असीस॥

—जायसी (पदमावत)

युवकों के प्रेम में उद्विग्नता होती है, वृद्धों का प्रेम हृदय-विदारक होता है। युवक जिससे प्रेम करता है, उससे प्रेम की आशा भी रखता है। अगर उसे प्रेम के बदले प्रेम न मिले, तो वह प्रेम को हृदय से निकाल कर फेंक देगा। वृद्धजनों को भी क्या वही आशा होती है? वे प्रेम करते हैं और जानते हैं कि इसके बदले में उन्हें कुछ न मिलेगा। या मिलेगी, तो दया।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० ३३४)

काम करने वाला मरने से कुछ घण्टे पूर्व ही बुड्ढा होता है।

—वृन्दावनलाल वर्मा (मृगनयनी, पृ० ४४६)

तरबे नौजवां जि पीर मजूय
कि दिगर नायद आबे रफ़्ता व जूय।

युवकों की उमंगों की वृद्धों से आशा मत कर क्योंकि नदी का प्रवाहित जल दुबारा नहीं आता।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, छठा अध्याय)

ज्यारते बुज़ुर्गां कफ़ारह्-ए-गुनाह्।

वयोवृद्ध का सम्मान करने से पापों का नाश होता है।

[फ़ारसी] —लोकोक्ति

वृद्धावस्था

दे० 'वृद्ध' भी।

मिनाति श्रियं जरिमा तनूनाम्।

जरा शरीर के सौन्दर्य को नष्ट कर देती है।

—ऋग्वेद (१।१७९।१)

नरस्तु मत्तो बलरूपयौवनैर-
न कश्चिद्प्राप्य जरां विमाद्यति।

बल, रूप और यौवन से मत्त कोई भी मनुष्य वृद्धावस्था को प्राप्त हुए बिना मद से मुक्त नहीं होता है।

—अश्वघोष (सौंदरनन्द, ९।३०)

स्मृतेः प्रमोषो वपुषः पराभवो
रतेः क्षयो वाच्छ्रुतिचक्षुषां ग्रहः।
श्रमस्य योनिर्बलवीर्ययोर्वधो
जरासमो नास्ति शरीरिणां रिपुः॥

बुढ़ापा स्मरण शक्ति का हरण करने वाला, रूप का पराभव करने वाला, आनन्द का विनाशक, वाणी-कान-नेत्र को जकड़ने वाला, थकावट उत्पन्न करने वाला तथा बल एवं वीर्य की हत्या करने वाला है। शरीरधारियों के लिए बुढ़ापे के समान कोई शत्रु नहीं है।

—अश्वघोष (सौन्दरनंद, ९।३३)

अलंकरोति हि जरा राजामात्यभिषग्यतीन्।
विडम्बयति पण्यस्त्री मल्लगायनसेवकान्॥

राजा, मंत्री, वैद्य तथा संन्यासी को वृद्धावस्था अलंकृत करती है तथा वेश्या, योद्धा, गायक एवं सेवक को विडम्बित करती है।

—हेमविजय (कथारत्नाकर)

गात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलिर्-
दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नाद्रियते च बान्धवजनो भार्या न शुश्रूषते
हा कष्टं पुरुषस्य जीर्णवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते।

शरीर पर झुर्रियाँ पड़ गई हैं, चलने फिरने की सामर्थ्य समाप्त हो गयी है, दाँत टूट गये हैं, दृष्टि नष्ट हो गयी है, बहरापन बढ़ गया है और मुख से लार बहती रहती है, बन्धुजन बात का आदर नहीं करते, पत्नी सेवा नहीं करती ओह ! पुरुष की वृद्धावस्था का कैसा कष्ट है कि पुत्र भी शत्रु जैसा व्यवहार करता है !

—भर्तृहरि (वैराग्यशतक, १११)

आत्मजादिपरिक्लेशं आत्मन्यारोप्यमूढधीः।
प्रतिकर्तुमशक्तोऽपि वार्द्धक्ये शोचते परम्॥

मूर्ख व्यक्ति वृद्धावस्था में सन्तानादि के कष्ट को अपने में आरोपित करके प्रतिकार में असमर्थ होने पर भी अत्यधिक शोक करता है।

—अज्ञात

स्वस्ति सुखेभ्यः सम्प्रति
सलिलांजलिरेव मन्मथकथायाः।
ता मामतिवयसं बत
तरलदृशः स्खलितमीक्षते॥

अब इस समय सुखों के लिए आशीर्वाद है और काम-चर्चा को तिलांजलि है। क्योंकि वे चंचल नयनों वाली सुन्दरियां मुझे अपने मार्ग से विलग मानती है। (अर्थात् मैं उनके योग्य नही रहा, इस दृष्टि से देखती हैं।)

—अज्ञात

से ण हासाए, ण कीड्डाए, ण रतीए, ण विभूसाए।

वृद्ध हो जाने पर मनुष्य न हास-परिहास के योग्य रहता है, न क्रीड़ा के, न रति के और न शृंगार के।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।१)

बुढ़ापा नातवानी ला रहा है।
जमाना जिन्दगी का जा रहा है।
किया क्या खाक ? आगे क्या करेगा ?
अख़ीरी वक्त दौड़ा आ रहा है॥

—नाथूराम शंकर शर्मा

बुढ़ापा मरी हुई अभिलाषाओं की समाधि है या पुराने पापों का पश्चाताप।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० ४६)

बूढ़ों के लिए अतीत के सुखों और वर्तमान के दु.खों और भविष्य के सर्वनाश से ज्यादा मनोरंजक और कोई प्रसंग नहीं होता।

—प्रेमचन्द (गोदान, २७)

बुढ़ापा तृष्णा रोग का अन्तिम समय है, जब संपूर्ण इच्छाएं एक ही केन्द्र पर आ लगती हैं।

—प्रेमचन्द ('बूढ़ी काकी' कहानी)

श्रुति हुई शिथिला, स्मृति भी मिटी,
गति हुई कुटिला, द्विज भी गिरे।
विरस गो-गरिमा अब हो गई,
जरठता कलिकाल समान है।

—अनूप शर्मा (सिद्धार्थ, पृ० १२७)

सरद जुन्हाई अब कहां, कहां वसन्त उछाह।
जीवन में अब बचि रह्यौ, चिर निदाघ कौ दाह॥

—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ('बालकृष्ण शर्मा नवीन' सम्पादक भवानीप्रसाद मिश्र, पृ० ८४)

बुढ़ापा शरीर का उतना धर्म नहीं है. जितना मन का।

—विद्यानिवास मिश्र (परम्परा बन्धन नहीं, पृ० ८७)

तन सूखा, कुबड़ी पीठ हुई, घोड़े पर जीन धरो बाबा।
अब मौत नकारा बाज चुका, चलने की फ़िक्र करो बाबा॥

—अज्ञात

आस बुढ़ापा आइयां, हुआ सूत-कुसूत।
या हो पैसा गांठ का या हो पूत सपूत॥

—हिन्दी लोकोक्ति

मनुष्य की जितनी उम्र बढ़ती है, उतना ही वह अतीत की ओर लौट जाता है। सामने का भविष्यत् उसके सामने अस्पष्ट हो जाता है। इसीलिए शायद सब लोग अतीत के विषय में ही बुढ़ापे में ज्यादा हलचल करते हैं।

—विमलमित्र (परस्त्री, पृ० ३०)

वृद्धावस्था से पूर्व मुझे भली प्रकार जीवित रहने की चिन्ता थी; वृद्धावस्था में भली प्रकार मरने की।

—सेनेका

जवानी के दिन हल्के-फुल्के थे, और अब बुढ़ापे का बोझ तुझ पर भारी है।

—अल मुक़न्नआ उल किन्दी (अरबी काव्य-दर्शन, पृ० ११९)

वृद्धावस्था विचार करती है, यौवन साहस करता है।

—राउपाल

तरुण वृक्ष झुक जाता है, वृद्ध वृक्ष टूट जाता है।

—यूरोपीय लोकोक्ति

Some smack of age in you, some relish of the saltness of time.

कुछ तुममें वृद्धता की गंध पाते हैं, किन्तु कुछ समय के सलोनेपन का स्वाद लेते हैं।

—शेक्सपियर (हेनरी चतुर्थ, द्वितीय खण्ड, १।२)

An old man is twice a child.

वृद्ध व्यक्ति दुगुना बच्चा होता है।

—शेक्सपियर (हैमलेट, २।२)

When the age is in, the wit is out.

जब वृद्धावस्था आती है तो बुद्धि चली जाती है।

—शेक्सपियर (मच एडो एबाऊट नथिंग, ३।५)

Men shut their doors against a setting sun.

डूबते सूरज के प्रति लोग अपने द्वार बन्द कर लेते हैं।

—शेक्सपियर (टाइमन आफ़ एथेंस, १।२)

Youth is a blunder, Manhood a struggle; Old Age a regret.

यौवन भारी भूल है, पुरुषत्व संघर्ष है, वृद्धावस्था पश्चात्ताप है।

—डिजरायली (कनिंग्सबाई, ३।१)

वृद्धि

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।
स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च ॥

जैसे पानी की बूंद-बूंद गिरने से क्रमशः घड़ा भर जाता है, उसी तरह सब विद्याएं, धर्म और धन भी धीरे-धीरे बढ़ते हैं।

—नारायण पण्डित (हितोपदेश, २।१०)

वेद

यस्तित्याज्य सचिविदं सखायं
न तस्य वाच्यपि भागोऽस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं श्रृणोति
न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥

साथ रहने वाले मित्र की भाँति वेद को जो छोड़ देता है, उसकी वाणी में सफलता नहीं होती है। वह जो सुनता है, व्यर्थ सुनता है। वह पुण्य-पथ को नहीं जानता।

—ऋग्वेद (१०।७१।६)

श्रुत्या यदुक्तं परमार्थमेतत्
तत्संशयो नात्र ततः समस्तम्।
श्रुत्या विरोधे न भवेत् प्रमाणं
भवेदनर्थाय विना प्रमाणम् ॥

श्रुति का कथन निस्सन्देह परमार्थ रूप ही है। श्रुति का विरोधी होने पर कुछ भी प्रमाण नहीं है। जो अप्रमाण होगा, वह अनर्थकारी होगा।

—ब्रह्मविद्योपनिषद् (श्लोक ३२)

तत्र त्रयीमयं शास्त्रमाद्यं सर्वार्थदर्शनम्।
ऋग्यजुः सामरूपत्वात् त्रयीति परिकीर्तिता ॥
(हेतुना) कार्यसिद्धेन चतुर्धा परिकीर्तिता।
ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वांगिरसस्तथा ॥
चातुर्होत्रप्रधानत्वाल्लिंगादित्रितयं त्रयी।
अथर्वांगिरसं रूपं सामऋग्यजुरात्मकम् ॥
तथाऽऽदिशन्त्याभिचारसामान्येन पृथक्-पृथक् ॥

वेदत्रयीस्वरूप सर्वार्थ को प्रकट करने वाला आदिशास्त्र है। उस आदिशास्त्र को ऋक् यजुः एवं सामात्मक होने से त्रयी कहा जाता है। कार्य-सिद्धि के लिए चार नामों से उसका वर्णन होता है। अर्थात् देवस्वरूप वर्णन के मन्त्र, यज्ञ-विधि-निर्देशक मन्त्र तथा यज्ञ में गान के मन्त्र—ये ही तीन प्रकार के मन्त्र होने से वेदों को त्रयी कहते हैं किन्तु यज्ञ में ब्रह्मा आदि के कार्य की दृष्टि से वेदों को चार नामों से सम्बोधित किया जाता है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्वांगिरस वेद।

—सीतोपनिषद्

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।

सब वस्तुओं के दान से ब्रह्मदान अर्थात् वेद का दान अधिक श्रेष्ठ है।

—मनुस्मृति (४।२३३)

सर्वथा वेद एवासौ धर्ममार्गप्रमाणकः।
तेनाविरुद्धं यत्किंचित् तत् प्रमाणं न चान्यथा ॥

सर्वथा वेद ही धर्म के मार्ग का प्रमाणकर्ता है। अतः वेद के अविरुद्ध जो है, वही प्रमाण है, अन्य नहीं।

—देवीभागवत (११।१।२६)

वेदप्रणिहितो धर्मो वेदो नारायणः परः।
तत्राश्रद्धापरा ये तु तेषां दूरतरो हरिः ॥

धर्म वेद में प्रतिपादित है। वेद साक्षात् परम नारायण हैं। वेद में जो अश्रद्धा रखते हैं, उनसे भगवान बहुत दूर हैं।

— नारदपुराण (पूर्व भाग, ४।१७)

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥

वेद को इतिहास तथा पुराणों द्वारा उपबृंहित करे। अल्पश्रुत से वेद डरता है कि यह मुझपर प्रहार करेगा।

—ब्रह्माण्डपुराण (प्रक्रि० १।१७१)

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥
चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति ॥

सेनापति का कार्य, राज्य-शासन, दण्डनीति का व्यवहार तथा सब लोकों पर अधिकार के सभी कार्य वेद जानने वाला सुगमता से कर सकता है।...चार वर्ण, तीन लोक, चार आश्रम और भूत, वर्तमान व भविष्य काल में होने वाले सब कर्तव्य वेद से सिद्ध होते हैं।

—मनुस्मृति (१२।९७, १००)

श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव बलीयसी।
अविरोधे सदा कार्यं स्मृतं वैदिकवत् सताम्॥

श्रुति एवं स्मृति में परस्पर विरोध होने पर श्रुति अधिक बलवती होती है। विरोध न होने पर सज्जनों को स्मृति-निर्दिष्ट कर्म वैदिक कर्मों के समान करने चाहिए।

—जाबालिस्मृति

अतुलित महिमा वेद की, तुलसी किए विचार।
जो निंदत निंदित भयो, विदित बुद्ध अवतार॥

—तुलसीदास (दोहावली, ४६४)

ब्रह्मरूप अहै ब्रह्मवित, ताकी वाणी वेद।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम खेद॥

—साधु निश्चलदास

जिनकी महत्ता का न कोई पा सका है भेद ही,
संसार में प्राचीन सबसे हैं हमारे वेद ही।

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत भारती, पृ० ३१)

कार्यों और कारणों के सम्बन्ध को बताने वाले सच्चे ज्ञान का नाम 'वेद' है। 'अनंता वै वेदाः' यह तैत्तिरीय श्रुति है। इस विस्तृत अर्थ में, (विद् धातु से निकली हुई) जितनी सच्ची विद्या हैं, सभी वेद की अंगोपांग हैं, उसके शरीर की अंश, अवयव हैं, उससे पृथक् नहीं हैं, सभी सच्चे 'सायंस' उसमें शामिल है।

—भगवानदास (समन्वय, पृ० १६२)

मन की समाधि के अनुरूप ही वेदार्थ ज्ञान की क्षमता मानव को प्राप्त होती है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (वेद-विद्या, भूमिका)

वेद-विद्या बुद्धि का कुतूहल नहीं। वह पाण्डित्य का विलास भी नहीं है। वेद-विद्या का लक्ष्य प्राण या चैतन्य अमृत तत्त्व का साक्षात्कार है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (वेद-विद्या, भूमिका)

वेद का भारतीय अर्थ है विश्वात्मक ज्ञान। यह ठीक है कि शब्द-राशि की संज्ञा भी वेद है, पर यह स्थूल अर्थ उसका एक अंशमात्र है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (वेद-विद्या, भूमिका)

वेद 'एक सत्' कहता है, लेकिन साथ-साथ 'विप्रा बहुधा वदन्ति' भी कहता है। 'मूढ़ा बहुधा वदन्ति' कहने को वह तैयार नहीं है। इसमें वेद की अविरोध-वृत्ति दिखाई देती है।

—विनोबा (विचारपोथी, ४०५)

जीवन को सुन्दर बनाने वाला प्रत्येक विचार ही मानो वेद है।

— साने गुरुजी (भारतीय संस्कृति, पृ० ३०)

वेदों का अर्थ है, भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक सत्यों का संचित कोष।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड, १, पृ० ८)

वेद मुख्यतया आध्यात्मिक प्रकाश और आत्म-साधना के लिए अभिप्रेत हैं।

—अरविन्द (वेद-रहस्य)

In the history of the world, the Veda fills a gap which no literary work in any other language could fill.

विश्व के इतिहास में वेद ऐसी रिक्तता की पूर्ति करता है जिसे किसी अन्य भाषा की कोई साहित्यिक कृति पूर्ण नहीं कर सकती।

—मैक्स म्यूलर

They are the oldest of books in the library of mankind.

वे (वेद) मानव जाति के पुस्तकालय में प्राचीनतम ग्रंथ हैं।

—मैक्स म्यूलर

वेदज्ञ

छन्दोविदस्ते य उत नाधीतवेदा
न वेदवेद्यस्य विदुर्हि तत्त्वम्।

सम्पूर्ण वेद पढ़ लेने पर भी जो वेदों के द्वारा जानने योग्य परमात्मा के तत्त्व को नहीं जानते, वे वास्तव में वेद के विद्वान् नहीं हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व।४३।५०)

यो वेद वेदान् स च वेद वेद्यं
न तं विदुर्वेदविदो न वेदाः।
तथापि वेदेन विदन्ति वेदं
ये ब्राह्मणा वेदविदो भवन्ति।

जो महापुरुष वेदो के रहस्य को जानता है, वह जानने योग्य परमात्मा को भी जानता है, परन्तु उस ज्ञेय को न तो वेदों के शब्दों को जानने वाला जानता है और न वेद ही जानते है। तथापि वेद के रहस्य को जानने वाले जो ब्रह्मवेत्ता महापुरुष है, वे उस वेद के द्वारा ही वेद के रहस्य को जान लेते है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व।४३।४५)

यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्परः।
न च ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञस्तस्य तद्धारणं वृथा॥

जो वेद और शास्त्र के ग्रंथों को याद रखने में तत्पर है किन्तु उनके यथार्थ तत्त्व को नहीं समझता, उसका वह याद रखना व्यर्थ है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।३०५।१३)

वेदना

घायल की गति घायल जानै की जिन लाई होय।
जौहर की गति जौहरी जानै की जिन जौहर होय।

—मीरा (पदावली)

अंग छीन, व्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी हो।
अंतर वेदन विरह की, वह पीर न जानी हो॥

—मीराबाई (पदावली)

इस करुणा-कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती?

—जयशंकर प्रसाद (आँसू, पृ० ७)

शीतल ज्वाला जलती है
ईंधन होता, दृग-जल का
यह व्यर्थ साँस चल-चल कर
करती है काम अनिल का।

—जयशंकर प्रसाद (आँसू, पृ० १०)

वेदना विकल फिर आई,
मेरी चौदहों भुवन में
सुख कहीं न दिया दिखाई
विश्राम कहां जीवन में?

—जयशंकर प्रसाद (आँसू, पृ० ५३)

वेदने! तुम विश्व की कृश दृष्टि हो।

—सुमित्रानन्दन पंत (ग्रंथि)

जीवन चिरकालिक क्रन्दन।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (अपरा, पृ० ७१)

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूं आज, जो नहीं कही।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (अपरा, सरोजस्मृति)

अश्रु पी-पीकर खिली जो
वह अधर मुसकान हूँ मैं
जानकर अनजान हूँ
भूली हुई पहचान हूँ मैं।

—सोहनलाल द्विवेदी (चित्रा, पृ० ३६)

दिल नहीं, तुझको दिखाता वरना दाग़ों की बहार
इस चिराग़ां का करूं क्या, कारफ़र्मा जल गया।

—ग़ालिब

मेरे दिल में बर्छी चुभो कर कहा
ख़बरदार! तूने अगर आह की।

—दाग़

ख़ुदा की शान वह मेरा तड़पना दिल्लगी समझें
किसी की जान जाती है किसी का जी बहलता है।

—अकबर इलाहाबादी

सबको अपने-अपने दुख हैं, सबको अपनी-अपनी पड़ी है
ऐ दिले ग़मगीं! तेरी कहानी कौन सुनेगा किसको सुनायें?

—'फ़िराक' गोरखपुरी (बज़्मे ज़िंदगी रंगे शायरी, पृ० २१०)

दिल बहलने को लोग सुनते हैं
दर्दे दिल दास्तान है गोया।

—जलील

तेरा दर्द दर्दे तनहा[1] मेरा ग़म ग़मे ज़माना[2]।

—'जिगर' मुरादाबादी

इससे बढ़कर दोस्त कोई दूसरा होता नहीं,
सब जुदा हो जाएं लेकिन ग़म जुदा होता नहीं।

—'जिगर' मुरादाबादी

सुनता है कौन ? किससे कहूँ दर्द बेकसी।
हमदम नहीं है कोई मेरा हमनशीं नहीं॥

—जुरअत

नहीं है दोस्त अपना, यार अपना, मिहरबां अपना।
सुनाऊँ किसको ग़म अपना, अलम अपना, बयां अपना॥

—तांबा

जमीं दुश्मन जमां दुश्मन, जो अपने थे पराए है
सुनोगे दास्तां क्या तुम मेरे हाले-परीशां की।

—अशफ़ाक़ उल्ला खां (अमर शहीद
अशफाक उल्ला खां, पृ० ९३)

ख़ुदा वाकिफ़ है जैसी भी गुजरती है गुजरती हैं
सुनोगे दास्तां क्या यार तुम बीमारे हिजरां[3] की।

—अशफ़ाक़ उल्ला खाँ

सुनाएं ग़म की किसे कहानी हमें तो अपने सता रहे हैं
हमेशा सुबहो शाम दिल पर सितम के खंजर चला रहे हैं।

—अशफ़ाक़ उल्ला खाँ

वेदव्यास

दे० 'व्यास'।

वेद-शिक्षक

य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभो।
स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत् कदाचन॥

जो दोनों कानों को अवितथ[4] वेद से परिपूर्ण करता है, उसे माता-पिता के समान समझना चाहिए और उससे कभी भी द्रोह नहीं करना चाहिए।

—मनुस्मृति (२।१४४)

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता।
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम्॥

उत्पादक पिता और वेदोपदेशक आचार्य में से वेदोपदेशक आचार्य ही श्रेष्ठ है क्योंकि ब्रह्मजन्म ही विप्र के लिए इस लोक व परलोक में कल्याणप्रद है।

—मनुस्मृति (२।१४६)

आचार्यस्त्वस्य या जातिं विधिवद् वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजरामरा॥

वेद का पारंगत आचार्य बालक की जिस जाति को विधिपूर्वक उत्पन्न करता है, वह जाति सत्य, अजर तथा अमर है।

—मनुस्मृति (२।१४८)

अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः।
तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रियया तया॥

जो थोड़ा या बहुत वेद-उपदेश के द्वारा उपकार करता है, उसे भी उस वेदोपदेश-क्रिया के कारण 'गुरु' जानना चाहिए।

—मनुस्मृति (२।१४९)

षट्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति॥

कोई ब्राह्मण गृहस्थ षट्कर्म (अर्थात् ऋत, अयाचित, भैक्ष्य, खेती, व्यापार और सूद) से जीविका चलाता है, अन्य कोई ब्राह्मण तीन कर्मो (यज्ञ कराना, पढ़ाना, दान लेना) से जीविका चलाता है, अन्य कोई ब्राह्मण दो कर्मो (यज्ञ कराना व पढ़ाना) से जीविका चलाता है और अन्य कोई केवल वेदाध्यापन से जीता है।

—मनुस्मृति (४।९)

वेदांग

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः।
ज्योतिषामयनंचैव षडंगो वेद उच्यते॥

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दःशास्त्र तथा ज्योतिष—इन छह वेदांगों के कारण वेद को षडंग कहते हैं।

—अज्ञात

---

१. व्यक्तिगत पीड़ा। २. युग की पीड़ा। ३. वियोग।
४. स्वर आदि दोषों से रहित।

वेदांत

तिलेषु तैलवद् वेदे वेदान्तः सुप्रतिष्ठितः।

तिलों में तेल की भाँति वेदों में वेदांत सुप्रतिष्ठित है।

—मुक्तिकोपनिषद् (१।९)

वेदान्तो नाम उपनिषत् प्रमाणम्। तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च।

प्रमाणस्वरूप उपनिषदों को वेदान्त कहते हैं। उनके अनुकूल शारीरक सूत्र आदि को भी वेदान्त कहते हैं।

—सदानन्द (वेदान्तसार)

प्रमाणोत्पादिता विद्या प्रमाणं प्रबलं विना।
न नश्यति न वेदान्तात् प्रबलं मानमीक्ष्यते॥

ब्रह्म का ज्ञान वेद-प्रमाण पर आधारित है जो किसी प्रबलतर प्रमाण के बिना नष्ट नहीं होता है किन्तु वेदान्त से अधिक प्रबल प्रमाण है ही नहीं।

—विद्यारण्य स्वामी (पंचदशी, २।१०८)

हम आज जितने पूजा के प्रतीकों का व्यवहार करते हैं, वे सबके सब वेदान्त से आए हैं, क्योंकि वेदान्त में उनका रूपक भाव से प्रयोग किया गया है, फिर क्रमशः वे भाव जाति के मर्मस्थान में प्रवेश कर अन्त में पूजा के प्रतीकों के रूप में उसके दैनिक जीवन के अंग बन गए हैं।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य खंड ५, पृ० २०)

वेदान्त में अन्यान्य धर्मों की तरह भक्ति, उपासना आदि की भी अनेक बातें हैं—यथेष्ट मात्रा में हैं, परन्तु मैं जिस आत्मतत्त्व की बात कह रहा हूँ, वही जीवन है, शक्तिप्रद है और अत्यन्त अपूर्व है। केवल वेदान्त में वह महान तत्त्व है जिससे सारे संसार के भावजगत में क्रान्ति होगी और भौतिक जगत के ज्ञान के साथ धर्म का सामंजस्य स्थापित होगा।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खंड ५ पृ० ३०)

निरन्तर उन्नति के लिए चेष्टा करते रहना होगा। ऊँची से ऊँची जाति से लेकर नीची से नीची जाति के लोगों को भी ब्राह्मण होने की चेष्टा करनी होगी। वेदान्त का यह आदर्श केवल भारतवर्ष के लिए ही नहीं, वरन सारे संसार के लिए उपयुक्त है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खंड ५, पृ० ९४)

वेदान्त का आलोक घर-घर ले जाओ, प्रत्येक जीवात्मा में जो ईश्वरत्व अन्तर्निहित है, उसे जगाओ।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खंड ५, पृ० ९५)

तुम कोई भी काम करो, तुम्हारे लिए वेदान्त की आवश्यकता है। वेदान्त के इन सब महान तत्त्वों का प्रचार आवश्यक है, ये केवल अरण्य में या गिरि-गुहाओं में आबद्ध नहीं रहेंगे। वकीलों और न्यायाधीशों में, प्रार्थना-मन्दिरों में, दरिद्रों की कुटियों में, मछुओं के घरों में, छात्रों के अध्ययन-स्थानों में—सर्वत्र ही इन तत्त्वों की चर्चा होगी और ये काम में लाए जाएंगे।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खंड ५, पृ० १४०)

वेदान्त 'पाप' स्वीकार नहीं करता, 'भ्रम' स्वीकार करता है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, खंड ८, पृ० ७)

विशुद्ध ईसाई धर्म और वेदान्त में बहुत कम अन्तर है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य खंड ८, पृ० ५८)

अलमारियों में बंद वेदान्त की पुस्तकों से काम न चलेगा, तुम्हें उसको आचरण में लाना होगा।

—रामतीर्थ (स्वामी रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० १६)

सच्चा वेदांत व्यावहारिक है। वह जीवन-समुद्र आत्मा को उसकी सम्पूर्ण विभूतियों के साथ समझता है।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० ९५)

वेदान्त कोई दार्शनिक सिद्धान्त नही है, वह आत्म-साक्षात्कार का क्रियात्मक रूप है।

— शिवानन्द (दिव्योपदेश, २।२४)

Not universal toleration merely, this (Vedenta) is the doctrine of universal inspiration.

यह (वेदान्त) विश्व के सभी धर्म-सम्प्रदायों के प्रति सर्वव्यापक सहिष्णुता मात्र का सिद्धान्त नही है अपितु सर्वव्यापी प्रेरणा का सिद्धान्त है।

—भगिनी निवेदिता (दि ब्रह्मवादिन्, अक्तूबर १८९८ ई०)

Rama brings Vedanta to you, not with the intention of nicknaming you Vedantins, no, take all that, assimilate it, make it your own, you may call it Christianity—names are nothing to us.

राम आपके पास वेदान्त आपको 'वेदान्ती' कहलाने के उद्देश्य से नहीं लाया है। आप उसे ग्रहण करें, आत्मसात करें और अपना बना लें। आप उसे ईसाई धर्म कह सकते हैं, नाम हमारे लिए महत्त्वहीन हैं।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइज़ेशन, खंड २, पृ० २४)

We might not call it Vedanta, we might call it by some other name—the term Vedanta simply means the fundamental truth. The truth is your own. It is not Rama's more than your's. It does not belong to the Hindu more than to you. It belongs to nobody, everybody and every thing belongs to it.

हम इसे 'वेदान्त' न कहें, हम इसका दूसरा नाम भी रख सकते हैं। 'वेदान्त' का अर्थ केवल मूलभूत सत्य है। सत्य तुम्हारा अपना है। राम का अधिकार उस पर तुमसे अधिक नही है। हिन्दू का अधिकार उस पर तुमसे अधिक नहीं है। वह किसी एक का नहीं है, हर वस्तु और हर प्राणी उसका है।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइज़ेशन, खंड २, पृ० २५)

वेश्या

दरिद्रपुरुषसंक्रान्तमना खलु गणिका लोके अवाच्यनीया भवति।

निर्धन पुरुष में आसक्त होने वाली वेश्या संसार में निन्दनीय नहीं होती।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, अंक २)

वेश्या सा मदनज्वाला रूपेंधनसमन्विता।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च॥

वेश्या अपने रूप के ईंधन से जलने वाली कामज्वाला है जिस पर उसके प्रेमी अपने धन व यौवन की उसमें आहुति देते हैं।

—अज्ञात

आंख फेरे तोता की सी,
बात फेरे मैना की सी।

—हिंदी लोकोक्ति

बालू की भीत, ओछे का संग,
पुतरिया की प्रीत, तितली का रंग।

—हिंदी लोकोक्ति

कसबिणीच्या पोरास दिवसा बाप नाही व रात्री आई नाहीं।

वेश्या के बालकों का दिन में पिता नहीं, रात्रि में माता नहीं।

—मराठी लोकोक्ति

वेष

वयसोनुरूपो वेषः।

वय के अनुसार ही वेष होना चाहिए।

—चाणक्यसूत्राणि

किं वाससा तत्र विचारणीयं
वासः प्रधानं खलु योग्यतायाः।
पीतांबरं वीक्ष्य ददौ स्वकन्यां
दिगम्बरं वीक्ष्य विषं समुद्रः॥

वस्त्र से क्या विचार करना चाहिए? उच्च व निम्न योग्यता की परख के लिए वस्त्र का महत्त्व है। समुद्र ने विष्णु को पीताम्बरधारी देखकर अपनी कन्या दे दी तथा शिव को दिगम्बर देखकर विष दिया।

—अज्ञात

वेषं न विश्वसेत् प्राज्ञो वेषो दोषाय जायते।

बुद्धिमान को चाहिए कि किसी का वेष देखकर विश्वास न करे। वेष तो दोष के लिए भी ग्रहण कर लिया जाता है।

—अज्ञात

भेष लियो पै भेद न जान्यो इमृत[1] लेइ विषै सौ
सान्यो।

—रैदास

The apparel oft proclaims the man.

वेशभूषा प्रायः मनुष्य को घोषित कर देती है।

—शेक्सपियर (हैमलेट, १।३)

वैदर्भी रीति

**अनभ्रवृष्टिः श्रवणामृतस्य सरस्वतीविभ्रमजन्म-
भूमिः।
वैदर्भरीतिः कृतिनामुदेति सौभाग्यलाभ-प्रतिभूः
पदानाम् ॥**

जो वैदर्भी रीति कानों के लिए अमृत की मेघरहित वर्षा है और वाणी के विलासों की जन्मभूमि है तथा पदों के लिए सौभाग्य समाप्ति प्राप्ति कराने की प्रतिभू है, उस वैदर्भी रीति में रचना की निपुणता किन्हीं भाग्यवान कवियों को प्राप्त होती है।

— बिल्हण (विक्रमांकदेवचरित, १।६)

वेदिक धर्म

वैदिक धर्म में परिवर्तन तो सदैव ही होते आये हैं। यह धर्म तो गतिशील है, गंगा के समान चैतन्ययुक्त है, जीवित है, जोहड़ के जल के समान स्थिर, जड़ एवं मृत नहीं। धर्म में सदैव ही नवीन विचारों का आगमन होता रहा है तथा पुरानों में परिवर्तन एवं विकास होता रहा है। किन्तु प्रत्येक नवीन परिवर्तन प्राचीन से सम्बन्धित रहा। प्रत्येक नवीन आन्दोलनकारी ने अपने पूर्वजो के प्रति श्रद्धा का भाव रखा।

—दीनदयाल उपाध्याय

वैद्य

यमस्तु हरते प्राणान् वैद्यः प्राणान् धनानि च।

यम तो प्राणों का हरण करता है किन्तु वैद्य प्राणों व धन दोनों का हरण करता है।

—अज्ञात

**आतुराद् वित्तहरणं मृताच्च प्रपलायनम्।
एतद् वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः॥**

रोगी से धन खींचना तथा मृतक से दूर भाग जाना ही वैद्य का वैद्यत्व है। वैद्य आयु का स्वामी नहीं है।

—अज्ञात

**आतुरे च पिता-वैद्यः स्वस्थीभूते च बान्धवः।
गते रोगे कृते स्वास्थ्ये वैद्यो भवति पालकः॥**

रोगी होने पर वैद्य ही पिता होता है, स्वस्थ हो जाने पर वही बान्धव होता है, रोग समाप्त हो जाने तथा स्वास्थ्य-लाभ होने पर वैद्य ही पालक होता है।

—अज्ञात

वैभव

अहो भंगुरस्वभावता विभवानाम्।

वैभव की नश्वरता विलक्षण है।

—धनपाल (तिलकमंजरी, २४४)

जासु भवनु सुरतरु तर होई।
सहि कि दरिद्र जनित दुखु सोई॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१०८।२)

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।२३।३)

Riches have wings.

वैभव के पंख होते हैं।

—विलियम कूपर (दि टास्क, सर्ग ३)

वैयाकरण

अर्द्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः।

आधी मात्रा को भी कम कर पाने पर वैयाकरण पुत्रोत्सव जैसा आनन्द मानते हैं।

—संस्कृत लोकोक्ति

वैर

मत्स्य एवं मत्स्यं गिलति।

मछली ही मछली को निगलती है।

—शतपथ ब्राह्मण (१।८।१।३)

---

१. अमृत।

मरणान्तानि वैराणि।

वैर का अन्त मरने के साथ हो जाता है।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकांड, १११।१००)

वैरं पंचसमुत्थानं तच्च बुध्यन्ति पण्डिताः।
स्त्रीकृतं वास्तुजं वाग्जं ससापत्नापराधजम्॥

राजन्! वैर पाँच कारणों से होता है, इस बात को विद्वान लोग अच्छी तरह जानते हैं—स्त्री के लिए, घर और जमीन के लिए, कठोर वाणी के लिए, जातिगत द्वेष के कारण और किसी समय किए हुए अपराध के कारण।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १३९।४२)

वद्धवैरा वै रागेण किं न कुर्वन्ति।

वैर बांधने वाले व्यक्ति क्रोध से क्या-क्या नहीं कर डालते!

—कर्णपूर (आनन्दवृंदावनचम्पू, १४।११४)

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥

यहाँ संसार में वैर से वैर कभी शांत नहीं होता, अवैर से ही शांत होता है, यही सनातन धर्म है।

[पालि] —धम्मपद (१।५) तथा जातक (कोसम्वी जातक)

वैमनस्य में अन्धविश्वास की चेष्टा होती है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद १०)

दरिया[1] में रहना और मगरमच्छ से वैर।

—हिन्दी लोकोक्ति

वैराग्य

निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः।

पुरुष के लिए आशा-पाश को काटने के लिए वैराग्य ही तलवार है।

—भागवत (११।८।२८)

मृत्युव्याधिजराधर्मा मृत्युव्याधिजरात्मभिः।
रममाणो ह्यसंविग्नः समानो मृगपक्षिभिः॥

१. नदी।

मृत्यु, व्याधि व जरा के अधीन रहने वाला मनुष्य यदि मृत्यु-व्याधि-जरा के अधीन रहने वालों के साथ रमण करता हुआ संविग्न[1] न हो तो वह पशु-पक्षियों के समान है।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, ४।८९)

यो हि यस्माद्विरक्तः स्यान्नासौ तस्मै प्रवर्तते।
लोकत्रयाद्विरक्तत्वन्मुमुक्षुः किमितीहते॥

जो पुरुष जिससे विरक्त होता है, उसके प्रति वह प्रवृत्त नहीं हुआ करता। फिर तीनों लोकों से विरक्त होने के कारण मुमुक्षु किस वस्तु की इच्छा करेगा?

—शंकराचार्य (उपदेशसाहस्री, २।१८।२३१)

श्रियो दोलालोला विषयजरसाः प्रान्तविरसा
विपद्गेहं देहं महदपि धनं भूरिनिधनम्।
वृहच्छोको लोकः सततमबलानर्थबहुला
तथाप्यस्मिन् घोरे पथि वत रता नात्मनि रताः॥

लक्ष्मी हिंडोले की तरह चंचल है। विषयों से उत्पन्न सुख अंततः दुखप्रद हैं। देह विपत्ति का घर है। अत्यधिक धन मृत्यु का प्रचुर साधन है। संसार अत्यधिक शोकपूर्ण है। स्त्रियां अनर्थ की जड़ हैं। फिर भी लोग इस घोर संसार-पथ में ही रत रहते हैं, आत्मा में रत नहीं होते।

—श्रीकृष्ण मिश्र (प्रबोधचन्द्रोदय, ५।२४)

न कति पितरो दाराः पुत्राः पितृव्यपितामहा
महति वितते संसारेऽस्मिन् गतास्तव कोटयः।
तदिह सुहृदां विद्युत्पातोज्ज्वलान् क्षणसंगमान्
सपदि हृदये भूयो भूयो निवेश्य सुखी भव॥

न जाने तुम्हारे कितने करोड़ माता, पिता, पत्नी, पुत्र, चाचा, पितामह, इस अत्यन्त संसार-चक्र में हो चुके। अतः यहाँ सुहृदयों की संगति बिजली की चमक की तरह क्षणभंगुर है, इस बात को बार-बार हृदय में बैठाकर सुखी रहो।

—श्रीकृष्ण मिश्र (प्रबोध चन्द्रोदय, ५।२७)

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद् भयं
माने दैन्यभयं वले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद् भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

१. विरक्त, भयभीत।

भोग में रोग का भय है, कुल में आचार-भ्रष्टता का भय है, धन में राजा का भय है, अभिमान में दीनता का भय है, सामर्थ्य में शत्रु का भय है, सौन्दर्य में वृद्धावस्था का भय है, शास्त्रज्ञान में तर्कशील विवादी का भय है, गुण में दुष्ट का भय है और शरीर में यमराज का भय है। इस संसार में सभी वस्तुएँ भययुक्त हैं, वैराग्य ही अभय है।

—भर्तृहरि (वैराग्यशतक, ३५)

सत्यासत्य-विवेकं तु प्राहुर्वैराग्यसाधनम्।

सत्य तथा असत्य के विवेक को वैराग्य का साधन कहते हैं।

—श्री रमण गीता (१।१०)

लोभमलोभेण दुगुछमाणे, लद्धे कामे नाभि गाहइ।

जो लोभ के प्रति अलोभवृत्ति के द्वारा विरक्ति रखता है, वह और तो क्या, प्राप्त काम-भोगों का भी सेवन नहीं करता है।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।२)

विरागं रूवेहि गच्छिज्जा,
मह्या खुड्डएहि य।

महान हो या क्षुद्र हो, अच्छे हो या बुरे हों, सभी विषयों से साधक को विरक्त रहना चाहिए।

[प्राकृत] —आचारांग (१।३।३)

वैराग्य

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडबियं।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा॥

सभी गीत विलाप हैं। सभी नृत्य विडम्बन हैं। सभी आभूषण भार हैं और सभी काम दुखदायी हैं।

[प्राकृत] —कामसुत्तं

विरागा विमुच्चति।

विराग से ही मुक्ति मिलती है।

[पालि] —विसुद्धिमग्ग (१६।६४)

तन कौं जोगी सब करैं, मन कौं विरला काइ।
सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४६)

जग वांध्यो जिह जेवरी तिह मत बँधुह कबीर।
जैहहि आटा लौन ज्यों सोन समान शरीर॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० २५३)

जानिअ तबहिं जीव जग जागा।
जब सब विषम बिलास बिरागा॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।९३।२)

को है सुत को है तिया, काको धन परिवार।
आके मिले सराय में, बिछुरैंगे निरधार॥

—बुधजन (बुधजन सतसई)

निर्बल क्रोध ही वैराग्य है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० ११३)

संसार की समस्त जटिल समस्याएँ नित्य-प्रति और भी जटिलतर इसलिए होती जाती है कि इन पर विचार करने वालों में मानसिक और बौद्धिक वैराग्य का अभाव है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० ८७)

बौद्धिक वैराग्य ही मनुष्य को संस्कृत बनाता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० ८७)

वैराग्य भीरु की आत्म-प्रवंचना मात्र है। जीवन की प्रवृत्ति प्रबल और असंदिग्ध सत्य है।

—यशपाल (दिव्या, पृ० १८)

गर जे सूरत बगुजरेद ऐ दोस्तां
जन्नत अस्तो गुलसितां दर गुलसितां।

मित्रो, यदि तुम इस प्रत्यक्ष दुनिया से सम्बन्ध त्याग दो तो फिर स्वर्ग और आनन्द के अतिरिक्त कुछ नहीं।

[फ़ारसी] —रूमी

सच्चा विरक्त उसी को कहना चाहिए जो मान के स्थान से दूर रहता है।

—एकनाथ

वैराग्य के बिना कोई भी अपने सम्पूर्ण अन्तःकरण को परोपकार में नहीं उंडेल सकता।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत जाग्रत, पृ० ५०)

वैराग्य का अर्थ है आत्मत्याग और आत्मविजय।

—अरविन्द (भारतीय संस्कृति के आधार)

वैष्णव

चंदन की चुटकी भली, नां बूबर अवराँउ।
वैश्नों की छपरी भली, नां साषत वड़ गाउं ॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५२)

वैष्णव धर्म का मूल दया है।
—महात्मा गांधी ('वैष्णवों से', नवजीवन, ३-७-१९२१)

माधवे बोलन्त श्रुति स्मृति मोर आज्ञा-वाणी जाना निष्ठि जिटोजने आके उलंघिया प्रवर्तय।

भैल सिटो मोर आज्ञा—छेदो मोक द्वेष करिलेक अति मोर भक्त हन्तो वैष्णव सिटो नोहय।

भगवान कहते हैं—श्रुति, स्मृति ये दोनों मेरी ही आज्ञा-वाणी है, यह अच्छी तरह जान लो। जिसने श्रुति-स्मृति के अनुसार व्यवहार नहीं किया, उसने मेरी आज्ञा को भंग किया, मुझसे द्वेष ही किया। वह मेरा भक्त होने पर भी वैष्णव नहीं।
[असमिया] —माधवदेव (नामघोषा, २०।१३४।३५१)

वैष्णव जन तो तेने रे कहिये, जे पीर पराई जाणे रे।
पर दुःख उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे॥
सकल लोक मां सहुने बंदे, निन्दा करे न केनी रे।
वाच काछ मन निरमल राखे, धन-धन जननी तेनी रे॥
समदृष्टि ने तृष्णा-त्यागी, परस्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे॥
मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे।
राम नाम सुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे॥
वण लोभी ने कपट रहित छे, काम क्रोध निवार्या रे।
भणे नरसैंयो ते नुं दरसन करतां, कुल एकोतेर तार्या रे॥
[गुजराती] —नरसी मेहता

विष्णुमय जग वैष्णवांचा धर्म।
भेदाभेदभ्रम अमंगल॥

वैष्णव का धर्म है संसार को विष्णुमय देखना। भेदाभेद भ्रम है और अकल्याणकारी है।
[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ४६)

वैष्णवाचे घरी देवाची वसति।

वैष्णव जन के घर प्रभु वास करते हैं।
[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ३३३८)

वोट

दे० 'मतदान'।

व्यंग्य

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तमाभाति लावण्यमिवांगनासु॥

महाकवियों की वाणी में वाच्य अर्थ से भिन्न अतिशय आह्लादकार प्रतीयमान व्यंग्य रूप अर्थ कुछ दूसरा ही होता है जिस प्रकार सर्वसाधारण के समान ही अंगों के होने पर भी किन्हीं अंगनाओं में विद्यमान 'लावण्य' कुछ अनिवर्चनीय ही होता है।
—आनन्दवर्धन (ध्वन्यालोक)

अज्ञोऽसि किं किमबलोऽसि किमाकुलोऽसि
व्यग्रोऽसि किं किमघृणोऽसि कितक्षमोऽसि।
निद्रालसः किमसि किं मदघूर्णितोऽसि
क्रन्दन्तमन्तकभयार्तमुपेक्षसे यत् ॥

हे प्रभो ! क्या आप परपीड़ा से अनभिज्ञ हैं ? या निर्बल हैं ? या व्याकुल हैं ? या किसी कार्य में व्यग्र हैं ? या अत्यन्त निर्दय हैं ? या असमर्थ है ? या निद्रा से अलसाए हुए हैं ? या मदोन्मत्त है ? जो इस प्रकार क्रन्दन करते हुए, यमराज के भय से आर्त्त मेरी उपेक्षा कर रहे हैं।
—जगद्धर भट्ट (स्तुतिकुसुमांजलि, ११।१०३)

यस्य कस्य तरोर्मूलं येन केनापि मिश्रितम्।
यस्मै कस्मै प्रदातव्यं यद्वा तद्वा भविष्यति॥

जिस किसी भी वृक्ष की जड़, जिस किसी भी वस्तु से मिलाकर, जिस किसी को भी दे दो, कुछ न कुछ तो होगा ही।
—अज्ञात

चतुरः सखि मे भर्ता यल्लिखति च तत् परो न वाचयति।
तस्मादप्यधिको मे स्वयमपि लिखितं स्वयं न वाचयति॥

हे सखि ! मेरा पति बड़ा चतुर है, उसका लिखा हुआ दूसरा नहीं पढ़ सकता। (दूसरी सखि का कथन) मेरा पति तो इससे भी अधिक है—वह अपना लिखा हुआ स्वयं ही नहीं पढ़ सकता।

—अज्ञात

रोगिया की को चालै वैदहि जहाँ उपास।

—जायसी (पद्मावत, २०३)

सूर सिकत हठि नाव चलावत, ये सरिता हैं सूखी।

—सूरदास (सूरसागर, १०।४१७५)

हित की कहत कुहित की लागति, कत वेकाज ररौ।

—सूरदास (सूरसागर, १०।४२२९)

कहिए तासौ होइ विवेकी।
एतौ अलि उनही के संगी, अपनी गौं के टेकी ॥
ऐसी को ठाली बैठी है, तुम सौं मूड़ झुरावै।
झूठी बात तुसी-सी विन कन, फटकत हाथ न आवै ॥

—सूरदास (सूरसागर, १०।४५१६)

कान्ह पियारे तिहारे लिये
सिगरे जग को हँसिवो सहनी हैं।

—नेवाज

हाथ तसवीह लिये प्रात उठै बंदगी को,
आप ही कपट रूप कपट सुजप के।
आगरे में जाय दारा चौक मैं चुनाय लीन्हों,
छत्र हू छिनायो मारो मरे वूढ़े बप के।
कीन्हों है सगोत घात सो मैं नाहिं कहौं फेरि,
पील पै तुरायो चार चुगल के गप के।
'भूषन' भनत घरघंटी मतिमन्द महा
सौ-सौ चूहे खाइ कै बिलारी बैठी तपके ॥

—भूषण का औरंगजेब पर व्यंग्य (शिवाबावनी, १३)

किवले की ठौर बाप बादसाह साहजहाँ,
ताको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है।
वड़ो भाई दारा वाको पकरि कै मारि डार्‌यो,
मेहर हू नाहिं माँ को जायो सगो भाई है।
बन्धु तौ मुरादबकस बादि चूकि करिबे को
बीच दै कुरान खुदा की कसम खाई है।
'भूषण' सुकवि कहै सुनो नवरंगजेब
एते काम कीन्हे तब पातसाही पाई है।

—भूषण का औरंगजेब पर व्यंग्य (शिवाबावनी, ९२)

व्यंग्य की विष-ज्वाला रक्त-धारा से भी नहीं बुझती।

—जयशंकर प्रसाद (स्कंदगुप्त, द्वितीय अंक)

सुख अपमानित करता-सा
जब व्यंग हँसा हँसता है।
चुपके से तब मत रो तू
यह कैसी परवशता है?

— जयशंकरप्रसाद (आँसू, पृ० ५७)

संसार भर के उपद्रवों का मूल व्यंग्य है। हृदय में जितना यह घुसता है उतनी कटार नहीं।

जयशंकर प्रसाद (अजातशत्रु, १।३८)

अबे, सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पाई ख़ुशबू रंगो आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है कैपीटलिस्ट।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (कुकुरमुत्ता)

फिर गया था सिर उभर खैयाम का, जिसने कहा,
आज आओ मौज कर लें, कल तो मरना है हमें।
साथियों, इतिहास का सन्देश है बहुजन हिताय,
आज मर लें, मार लें, कल मौज करना है हमें ॥

—विजयदेव नारायण साही (तीसरा सप्तक, पृ० ३१४)

बूए गुल, नालए दिल, दूदे[1] चिराग़े महफ़िल
जो तेरी बज़्म[2] से निकला सो परीशां निकला।

—ग़ालिब (दीवाने ग़ालिब)

नही शिकवा मुझे कुछ बेवफ़ाई का तेरी हरगिज
गिला[3] तब हो अगर तूने किसी से भी निबाही हो।

—दर्द

जो सुन चुके मेरी ग़ज़लें बोले ला चन्दा
जो हिनहिनाया है आज इतना तो लीद भी कर।

—अकबर इलाहाबादी

१. धुआँ। २. सभा। ३. शिकायत।

हमें तो चाहते हैं खींचना, खुद हम से खिंचते हैं
ये उनकी पालिसी के बाग़ किस पानी से सिंचते हैं।

—अकबर इलाहाबादी

जिधर साहब उधर दौलत जिधर दौलत उधर चन्दा
जिधर चन्दा उधर आनर जिधर आनर उधर बन्दा।

—अकबर इलाहाबादी

सरविस में मैं दाखिल नहीं, हूं कौम का ख़ादिम
चन्दा की फक़त आस है तनख़्वाह कहां है।

—अकबर इलाहाबादी

क़ौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ
रंज लीडर को बहुत है मगर आराम के साथ।

—अकबर इलाहाबादी

लीडरों की धूम है और फ़ालोअर कोई नहीं
सब तो जनरल हैं यहां आखिर सिपाही कौन है ?

—अकबर इलाहाबादी

हम आह भी करते हैं तो हो जाते हैं बदनाम
वह क़त्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होता।

—अकबर इलाहाबादी

हुए इस कदर मोहज्ज़िब[1] कभी घर का मुंह न देखा
कटी उम्र होटलों में मरे अस्पताल जाकर।

—अकबर इलाहाबादी

दिल खुश हुआ है मस्जिदें वीरान देखकर,
मेरी तरह खुदा का भी ख़ाना ख़राब है।

—अब्दुल हमीद 'अदम'

अच्छे ईसा हो, मरीजों का ख्याल अच्छा है
हम मर जाते हैं, तुम कहते हो हाल अच्छा है।

—अमीर मीनाई

नहीं अचरज अगर लें हाथियों से काम बैलों का
सुना है वे गधों से अफसरों का काम लेते हैं।

—अज्ञात

1. सभ्य।

आखे धी नू, सुनावे नूह नू।
कहती पुत्री को है, सुनाती बहू को है।

[पंजाबी] —लोकोक्ति

For what were all these country patriots born?
To hunt, and vote and raise the price of corn?

इन सारे देशभक्तों का जन्म किसलिए हुआ? लोगों को सताने, वोट लेने और अनाज का मूल्य बढ़ाने के लिए?

—बायरन (दि एज आफ ब्रांज, १४)

व्यक्ति

व्यक्तियों ने इतिहास बनाए हैं, व्यक्तियों के कारण मरी हुई जातियों में जान आयी है, व्यक्तियों के कारण ही जीती हुई जातियां नष्ट हो गयी हैं। सही बात तो यह है कि व्यक्तियों के बिना जाति का कोई अर्थ नहीं होता।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कल्पलता, पृ० १६१-६२)

व्यक्ति की पूजा के बजाय गुण-पूजा करनी चाहिए। व्यक्ति तो ग़लत साबित हो सकता है और उसका नाश तो होगा ही, गुणों का नाश नहीं होता।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की डायरी भाग १, ३३१)

विश्वातीत ब्रह्म विश्व को परिग्रहण किए हैं, उसके साथ एकरूप है और उसका बहिष्कार नहीं करता, वैसे ही विश्व भी व्यक्ति का परिग्रहण किए है, उसके साथ तादात्म्य रखता है और उसे बहिष्कृत नहीं करता। व्यक्ति समग्र विश्व-चेतना का एक केन्द्र है; विश्व एक नाम और रूप है जो नामरहित और रूपरहित ब्रह्म की समग्र सर्वव्यापकता द्वारा व्याप्त है।

—अरविन्द (दिव्य जीवन)

व्यक्ति और समाज

हाय, व्यक्ति, क्या तुम
समूह में खो जाओगे ?

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था, कविता १०८)

लोक के संगम में व्यक्ति की स्वतन्त्र इच्छा, पराजय का कारण बनती है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (अपराजित, दूसरा अंक)

व्यक्ति की अत्यधिक प्रतिष्ठा सदैव लोकक्षय का कारण बनी है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (धरती का हृदय, तीसरा अंक)

केवल अकेले अपनी काया लेकर हममें कोई सत्य नहीं होगा। हम जहां हैं, अपने लोक का अंग बनकर हैं।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (कल्पतरु, दूसरा अंक)

व्यक्तियों के अच्छे जीवन से ही सामाजिक जीवन ऊँचा होता है। जिनके पास कम शक्ति हो, शक्ति वालों को उसे ऊँचा उठाना चाहिए। समाज में से ऊँच-नीच के भेद मिटा देने चाहिए।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ५७३)

सेवा व्यक्ति की, भक्ति समाज की।

—विनोबा (विचारपोथी, ७३५)

समाज के उत्कर्ष का भार प्रत्येक व्यक्ति पर है।

—माधव स० गोलवलकर (श्री गुरुजी समग्र दर्शन, खंड ३, पृ० ७३)

व्यक्ति पर होने वाले संस्कार, उसके आस-पास का वातावरण, उसकी दृष्टि के सम्मुख रहने वाले आदर्श आदि सब कुछ समाज का ही ऋण है। उस समाज के हेतु व्यक्ति को अपना जीवन समर्पित करना चाहिए।

—उमाकान्त केशव आप्टे (हमारे राष्ट्रीय जीवन की परम्परा, पृ० १४५-१४६)

व्यष्टि मरणशील है जबकि समष्टि अमर है।

—दीनदयाल उपाध्याय

यदि व्यक्ति को स्वतन्त्र होना है तो समाज स्वतन्त्र होना चाहिए। यदि व्यक्ति को अमर होना है तो समाज अमर होना चाहिए।

—दीनदयाल उपाध्याय

भारत में व्यक्ति को भी मान्यता है और समाज को भी दोनों में परस्पर कोई विरोध नहीं। जहाँ यह सिद्धान्त माना गया कि प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण सुख और सम्पूर्ण विकास प्राप्त हो—इस तरह की पूरी सुविधा समाज को देनी चाहिए, वहां यह भी माना गया कि समाज का अनुशासन प्रत्येक व्यक्ति पर लागू हो।

—दत्तोपंत ठेंगड़ी (एकात्म मानववाद एक अध्ययन)

इस समय तो लगता है कि इस देश में पृथ्वी पर केवल व्यक्ति रहता है समाज नहीं।

—अमृतलाल नागर (बूंद और समुद्र, पृ० ५८३)

आग जब एक व्यक्ति के लगाये लग सकती है तो एक ही युक्तिशाली बुद्धिमान मनुष्य उसे बुझा भी लेता है। यदि अकेला नहीं बुझा सकता, तो समाज को अपना सहयोगी बना लेता है। ··युक्ति व्यक्ति की होती है और शक्ति समाज की।

—अमृतलाल नागर (एकदा नैमिषारण्ये, पृ० ४६६)

व्यक्ति के उत्थान से देश और संस्थानों का भी उत्थान अवश्य होता है।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, भाग १०, पृ० २१६)

समाज में रहकर समाज को हानि पहुँचाना और आत्म-हत्या कर लेना दोनों ही समान हैं।

—शरत्चन्द्र (चरित्रहीन, पृ० ३१८)

समाज नाम के राक्षस को प्रतिदिन मनुष्य बलि देकर उसे प्रसन्न रखना होगा, और जैसे भी हो उसी के शासन की फांसी को कंठ में डाले रहना होगा; चाहे रहें या न रहें—यह मैं किसी तरह नहीं स्वीकार कर सकूंगा।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा, परिच्छेद ६१)

समाज का दावा मैं उसी समय तक मानूंगा जिस समय तक वह मेरे उचित अधिकारों की रक्षा करेगा। यदि वह मुझे मनुष्य नहीं समझता, मुझे मशीन का पुर्जा बनाकर रखना चाहता है, तो मैं भी फूल-चंदन से उसकी पूजा नहीं करूंगा, उसे लोहे की मशीन-भर मानूंगा।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा, परिच्छेद ६१)

यदि मैं अपनी चिन्ता न करूं, तो और कौन करेगा? किन्तु यदि मैं केवल अपनी ही चिंता करूं तो मेरा अस्तित्व ही किसलिए है?

—मैक्सिम गोर्की

No one can be perfectly free till all are free; no one can be perfectly moral till all are moral; no one can be perfectly happy till all are happy.

कोई भी मनुष्य तब तक पूर्णतया स्वतंत्र नहीं हो सकता जब तक सभी स्वतंत्र नहीं हो जाते। कोई भी मनुष्य तब तक पूर्णतया नैतिक नहीं हो सकता जब तक सभी नैतिक नहीं हो जाते। कोई भी मनुष्य तब तक पूर्णतया प्रसन्न नहीं हो सकता जब तक सभी प्रसन्न नहीं हो जाते।

—हर्बर्ट स्पेंसर

No man grows roses and cabbages for himself alone. You have to share to enjoy.

कोई भी मनुष्य केवल अपने लिए ही गुलाब और करमकल्ला उत्पन्न नहीं करता। आनन्द-प्राप्ति के लिए तुम्हें उसे आपस में बांटना ही होगा।

—चेस्टर चार्ल्स (फ़ार्म क्वार्टर्ली)

व्यक्तित्व

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः॥

महाराजा दिलीप के आकार के समान उनकी बुद्धि थी, बुद्धि के समान शास्त्र-ज्ञान था, शास्त्र-ज्ञान के समान कार्यो का आरम्भ था तथा आरम्भ के समान ही फल की प्राप्ति थी।

—कालिदास (रघुवंश, १।१५)

योग्यता एक चौथाई व्यक्तित्व का निर्माण करती है। शेष पूर्ति प्रतिष्ठा द्वारा होती है।

—मोहन राकेश (आषाढ़ का एक दिन, पृ० ३४)

सचमुच बहुत निराला है व्यक्तित्व तुम्हारा
देह वज्र से और प्राण निर्मित पराग से।

—अज्ञात

पसे मर्ग न समझ में आएंगे हम कौन हमदम थे
समर ओ गुल ख़िज़ां में, गरमियों में आवे जमज़म थे।

—अज्ञात

व्यथा

ऐसो को पर-वेदन जानै, जासौं कहि जु सुनावैं।
तातैं मौन भलौ सबही तैं, कहि कै मान गँवावैं॥

—सूरदास (सूरसागर, १०।२८७४)

अंतर दाव लगी रहै धुआं न प्रगटै कोय।
कै जिय जाने आपनो; जा सिर बीती होय॥

—रहीम (दोहावली, २१)

रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय॥

—रहीम (दोहावली, २००)

पिव कारण सब अरपिया, तन मन जोबन लाल।
पिव पीड़ा जाणी नही, किण सूं कहूँ जमाल॥

—जमाल

हमें आपसे—अपने बड़े और ज्यादा स्वतन्त्र भाइयों से संरक्षण की प्रार्थना करने का अधिकार है। अत्याचारों के जुये में जकड़े हुए हम केवल दर्द से कराह सकते हैं। आपने हमारी क़राह सुन ली है। अब अगर जुआ हमारे कंधों से हटाया नहीं जाता तो दोष आपके मत्थे होगा।

—महात्मा गांधी (मद्रास की जनसभा में भाषण, २६ अक्तूबर १८९६)

मेरी कैसी, अहह कितनी मर्म-वेधी व्यथा है!

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (प्रियप्रवास, १०।६६)

सब गर्व, सारी वीरता, अनन्त विभव, अपार ऐश्वर्य, हृदय की एक चोट से—संसार की एक ठोकर से—निस्सार लगने लगा।

—जयशंकर प्रसाद (राज्यश्री, तृतीय अंक)

सजनि मैं उतनी करुण हूं, करुण जितनी रात!
सुभग मैं उतनी मधुर हूं, मधुर जितनी प्रात!
सजनि मैं उतनी सजल हूं जितनी सजल बरसात!

—महादेवी वर्मा (सान्ध्य गीत)

जाहि परो दुख आपनो, सो जानै पर पीर।

—धरनीदास (धरनीदास जी की बानी, १५)

मैं जहां होता हूँ
वहाँ से चल पड़ता हूँ
अवसर एक व्यथा
यात्रा बन जाती है।

—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (एक सूनी नाव, पृ० २)

ऐ 'राज' क्या बताएं तबीयत का माजरा,
दिल मुजमहिल[1], दिमाग परेशां है और हम।

— राजबहादुर वर्मा 'राज' (राजो नियाज, पृ० ३३)

ज़िन्दगी ग़म का नाम है, ज़िन्दगी ग़म में कट गई
जिसमें ख़ुशी का जिक्र हो वह मेरी दास्तां[2] नहीं।

— राजबहादुर वर्मा 'राज' (राजो नियाज, पृ० ८२)

व्यय

दे० 'आय-व्यय'।

व्यर्थता

अप्रगल्भस्य या विद्या, कृपणस्य च यद्धनम्।
यच्च बाहुबलं भारो व्यर्थमेतत् त्रयं भुवि॥

पृथ्वी पर ये तीनों व्यर्थ हैं—प्रतिभाशून्य की विद्या, कृपण का धन और डरपोक का बाहुबल।

—बल्लाल कवि (भोजप्रबंध, ४८)

तुषवुषघाततो न कदापि फलोपगमः।

केवल तुष वाले भुस के कूटने से फल की प्राप्ति कभी नहीं होती।

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावन चम्पू, ७।११२)

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु, वृथा तृप्तेषु भोजनम्।
वृथा दानं धनाढ्येषु, वृथा दीपो दिवापि च॥

समुद्रों में वृष्टि निरर्थक है, तृप्तों को भोजन देना वृथा है, धनाढ्यों को दान देना तथा दिन के समय दिए का जला लेना निरर्थक है।

—चाणक्यनीति

१. थका हुआ। २. कहानी।

विक्रीणीते करिणि किमंकुशे विवादः।

हाथी बिक गया तो अंकुश के लिए झगड़ा कैसा?

—संस्कृत लोकोक्ति

प्रदीपे प्रदीपं प्रज्वाल्य तमोनाशाय यतमानः।

दीपक के नीचे के अंधकार का नाश करने के लिए दूसरा दीपक जलाने का प्रयत्न करना।

—संस्कृत लोकोक्ति

नष्टमपात्रे दानं नष्टं हितमफलबुद्ध्यवज्ञाने।
नष्टो गुणोऽगुणज्ञे नष्टं दाक्षिण्यमकृतज्ञे॥

अपात्र को दिया गया दान व्यर्थ है। अफल बुद्धि वाले और अज्ञानी के प्रति की गई भलाई व्यर्थ है। गुण को न समझ सकने वाले के लिए गुण व्यर्थ है। कृतघ्न के लिए उदारता व्यर्थ है।

—अज्ञात

मुक्ताफलैः किं मृगपक्षिणां च मृष्टान्नपानं
किमु गर्दभानाम्।
अन्धस्य दीपो बधिरस्यगीतं मूर्खस्य
किं धर्मकथाप्रसंगः॥

पशुओं और पक्षियों को मोतियों से क्या? गधों को स्वादिष्ट भोजन और स्वादु पेय से क्या? अंधे को दीपक, बधिर को गीत तथा मूर्ख को धर्म-कथाओं से क्या?

—अज्ञात

कृतशतमसत्सु नष्टं सुभाषितशतं च नष्टमबुधेषु।
वचनशतमवचनकरे बुद्धिशतमचेतने नष्टम्॥

असत् पुरुषों के प्रति किया गया सैकड़ों प्रकार का कार्य व्यर्थ होता है। मूर्खों के लिए सैकड़ों सुभाषित व्यर्थ होते हैं। जो आज्ञाकारी नहीं है, उसके लिए सैकड़ों बार का कथन भी व्यर्थ होता है। और जो जड़ है, उसके प्रति अनेक प्रकार का भी बुद्धि-कौशल व्यर्थ होता है।

—अज्ञात (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, ३४०)

किं घिउ होइ विरोलिए पाणिए।

क्या पानी मथने से घी हो सकता है?

[अपभ्रंश] —धनपाल (भविसयत्त कहा, २।७।८)

आपदा मूर्च्छितो वारि चुलूकेनापि जीवति।
अंभः कुंभसहस्राणां गतजीवः करोति किम्॥

आपत्तियों से मूर्च्छित मनुष्य चुल्लू भर पानी से होश में आ जाता है। प्राणहीन मनुष्य पर हज़ारों घड़े पानी डालें तो भी क्या होगा ?

[अपभ्रंश] —मुनि रामसिंह (पाहुड दोहा, ८८८)

सठ सन विनय, कुटिल सन प्रीती।
सहज कृपन सन सुन्दर नीति॥
ममता रन सन ज्ञान कहानी।
अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सन कामिहि हरि कथा।
ऊसर बीज बएँ फल जथा।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।५७)

रैन दिना बस दाम सों कामु है,
काहू सो लैकरि काहू को दीबो।
'ब्रह्म' भनै जगदीस न जान्यो,
न जानियो जी करि जे लगि जीवो॥
भोर तें राति लौ राति तें भोर लौं,
कालि कियो सु तो आज ही कीवो।
खाइबो सोइबो वार ही बार,
चमार के चामहि ज्यो जल पीबो॥

—बीरबल

नीको हू फीको लगै, जो आवे नहिं काज।
फल आहारी जीव के, कौन काम को नाज॥

—नागरीदास

मस्तक ऊँचा हुआ तुम्हारा कभी जाति-गौरव से।
अगर नहीं तो देह तुम्हारी तुच्छ अधम है शव से!

—रामनरेश त्रिपाठी (पथिक, पृ० ३१)

उघरे ज्ञान नयन नहिं जासू।
व्यर्थहि जन्म अवनि-तल तासू॥

—द्वारिका प्रसाद मिश्र (कृष्णायन, पृ० १६६)

ईमानदारी और बुद्धिमानी के साथ किया हुआ काम कभी व्यर्थ नहीं जाता।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० २०)

और जो अनिवार्य है, उसके लिए
खिन्न या परितप्त होना व्यर्थ है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग)

अधकचरी विद्या दहे, राजा दहे अचेत्।
ओछे कुल तिरिया दहे दहे कलर का खेत॥

अनुभवहीन विद्या व्यर्थ है। असावधान राजा व्यर्थ है। नीच कुल की स्त्री व्यर्थ है। कपास का खेत व्यर्थ है।

—घाघ

अंधे के आगे रोए, दोनों दीदे[1] खोये।

—हिंदी लोकोक्ति

क्याह करि दंदरोस्तुय डूनिस
क्याह करि रेनिस तीरकमान,
क्याह करि सोनसदि बस्ति हूनिस
क्याह करि अनिस शील पदमान॥

जिसके दांत न हों, वह अखरोट लेकर क्या करेगा? अपाहिज तीर-कमान को लेकर क्या करेगा? अन्धा शीलवती सुन्दर को लेकर क्या करेगा?

[कश्मीरी] —शेख नूरुद्दीन

पंचागम् चिंपिते ग्रहालु आगिपोताया।

क्या पंचाग को फाड़ने से ग्रह रुकेंगे?

[तेलुगु] —लोकोक्ति

स्वयं अध्ययन किए हुए ग्रन्थों को दूसरों को समझाने की शक्ति जिनमें नहीं होती, वे गुच्छे के समान पुष्पित होने पर भी गन्धहीन पुष्प के समान होते है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६५०)

पिये हुए व्यक्ति को कारण दिखाकर ठीक मार्ग पर लाने का प्रयत्न करना पानी के नीचे डूबे हुए व्यक्ति को दीपक लेकर ढूंढने के समान होता है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६२९)

व्यवसाय

उत्तम खेती मध्यम बान[2]।
निषिद चाकरी[3] भीख निदान॥

—घाघ

१. आँखें। २. वाणिज्य। ३. नौकरी अधम है।

It is well for a man to respect his own vocation whatever it is, and to think himself bound *to uphold it, and to claim for it the respect it* deserves.

मनुष्य का जो भी व्यवसाय हो उसे उसके प्रति आदर-भाव रखना, उसकी मर्यादा बनाए रखने के लिए अपने को बाध्य समझना और उसका जितना आदर होना चाहिए उतने का दावा करना उचित है।

—चार्ल्स डिकिंस

व्यवस्था

बुराई तो व्यवस्था में ही है। अब व्यवस्था पगड़ी बाँधे है या टोप लगाये है—इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० ३५५)

स्थान, काल और अवस्था के अनुसार एक ही व्यवस्था किसी समय में जैसे मंगल करने वाली होती है, वैसी ही अन्य किसी समय उससे अमंगल भी होता है।

—शरत्चन्द्र (शेष परिचय, पृ० २३९)

व्यवहार

दे० 'नीति' और 'सद्व्यवहार' भी।

देशाचारान् समयांजातिधर्मान् बुभूषते यः स परावरज्ञः।
स यत्र तत्राभिगतः सदैव महाजनस्याधिपत्यं करोति॥

जो मनुष्य देश के आचारों, समयों तथा जातिधर्मों को तत्त्व से जान लेता है, उसे उत्तम और अधम का विवेक हो जाता है। वह जहाँ कहीं भी जाता है, सदा महान जन-समूह पर अपनी प्रभुता स्थापित कर लेता है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व, ३३।११४)

यो यथा वर्तते यस्मिंस्तस्मिन्नेव प्रवर्तयन्।
नाधर्मं समवाप्नोति न चाश्रेयश्च विन्दति॥

जो जैसा व्यवहार करता है, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करने वाला पुरुष न तो अधर्म को प्राप्त होता है और न अमंगल का ही भागी होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व, १७८।५३)

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य—
स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया बाधितव्यः
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः॥

जो मनुष्य जिसके साथ जैसा व्यवहार करे उसके साथ भी उसे वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, यह धर्म है। कपटपूर्ण आचरण करने वाले को वैसे ही आचरण के द्वारा दबाना उचित है और सदाचारी को सद्व्यवहार के द्वारा ही अपनाना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १०९।३०)

धर्मस्याख्या महाराज व्यवहार इतीष्यते।
तस्य लोपः कथं न स्याल्लोकेष्वहितात्मनः॥
इत्येवं व्यवहारस्य व्यवहारत्वमिष्यते।

महाराज! धर्म का दूसरा नाम व्यवहार है। लोक में सतत सावधान रहने वाले पुरुष के धर्म का किसी तरह लोप न हो इसलिए दण्ड की आवश्यकता है और यही उस व्यवहार का व्यवहारत्व है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १२१।९-१०)

भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतसां
वपुर्विशेषेष्वतिगौरवाः क्रियाः।

समता में प्रतिष्ठित चित्त वाले लोगों का भी विशेष व्यक्तियों के प्रति अति गौरवमय व्यवहार होता है।

—कालिदास (कुमारसंभव, ५।३१)

सर्वत्र खल्वात्मानुमानेन वर्तितुं युक्तम्।

निश्चय ही सर्वत्र मनुष्य को आत्मानुमान[1] से व्यवहार करना चाहिए।

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय)

१. अपने को उस स्थिति में रखकर।

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवम्
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधान्
असंवृतांगान्निशिता इ षवः।।

विचारहीन बुद्धिवाले ऐसे लोग विपत्ति में पड़ते हैं, जो मायावी लोगों के साथ मायावी नहीं बन जाते। शठ लोग ऐसे लोगों को आत्मीय बनाकर वैसे ही मार डालते हैं, जैसे कवचरहित शरीर वालों को प्रखर बाण।

—भारवि (किरातार्जुनीय, १।३०)

एवं वशीकृतस्वात्मा नित्यं स्मितमुखो भवेत्।
त्यजेत् भ्रकुटि-संकोचं पूर्वाभाषी जगत्सुहृत्।।

इस प्रकार अपने को वश में करके नित्य ही प्रसन्न मुख रहे। भौंहें टेढ़ी न करे। पहले ही बोलना चाहिए। संसार का मित्र बनना चाहिए।

—बोधिचर्यावतार (५।७१)

सशब्दपातं सहसा न पीठादीन् विनिक्षिपेत्।
नास्फालयेत् कपाटं च स्यान्निः शब्दरुचिः सदा।।

पीढ़े आदि को सहसा न रखे, जिससे शब्द हो। किवाड़ न पीटे। सदा निःशब्दता में रुचिशील होना चाहिए।

—बोधिचर्यावतार (५।७२)

अबुद्ध्वा चित्तमप्राप्य विस्रम्भं प्रभविष्णुषु
न स्वेच्छं व्यवहर्त्तव्यमातमनो भूतिमिच्छता।।

अपना कल्याण चाहने वाले को चित्त को जाने बिना तथा विश्वास को प्राप्त किए बिना सत्ताधारियों के साथ स्वच्छन्द व्यवहार नहीं करना चाहिए।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, १।४)

माधुर्यं प्रमदाजने सुललितं दाक्षिण्यमार्यजने
शौर्यं शत्रुषु मार्दवं गुरुजने धर्मिष्ठता साधुषु।
मर्मज्ञेष्वनुवर्तनं बहुविधं मानं जने गर्विते,
शाठ्यं पापजने नरस्य कथिताः पर्यन्तमष्टौ गुणाः।।

मनुष्य के पास आठ गुण कहे गए हैं यथा तरुणी स्त्रियों के साथ मधुर व्यवहार, शिष्ट समुदाय के साथ अनुकूल व्यवहार, शत्रुओं पर पराक्रम दिखाना, पूज्य एवं श्रेष्ठ व्यक्तियों से नम्रता, सज्जनों के साथ धर्मिष्ठता, रहस्य जानने वालों के साथ उनके मनोनुकूल आचरण करना, अभिमानियों के साथ बहुविध मान करना, और शठों के साथ शठता का व्यवहार करना।

—शुकसप्तति (कहानी २१, श्लोक ११९)

पर-कार्येषु युक्तात्मा, स्वकार्ये क्षिप्र-साधनम्।
सुहृत्कार्येषु निर्वृत्ति राज-कार्येषु विक्रमः।।

दूसरे के कामों में पूरे मन से लगना चाहिए। अपने काम में जल्दी सफलता प्राप्त करनी चाहिए, मित्र के कामों में निर्वृत्ति[1] और राज्य के कामों में वीरता को अपनाना चाहिए।

—चाणक्यसारसंग्रह

जातिमात्रेण किं कश्चिद्धन्यते पूज्यते क्वचत्।
व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवा भवेत्।।

क्या कोई जातिमात्र से मार डाला या पूजा जाता है? समझदार व्यक्ति को चाहिए कि पहले उसका व्यवहार समझे, तब मारे या उसकी पूजा करे।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।५८)

न कश्चितकस्यचिन्मित्रं न कश्चितकस्यचिद्रिपुः।
व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते रिपवस्तया।।

न कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का शत्रु। संसार में व्यवहार से ही लोग मित्र और शत्रु होते रहते हैं।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।७१)

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा
यस्तुक्रियावान्पुरुषः स विद्वान्।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां
न नाममात्रेण करोत्यरोगम्।।

बहुत से लोग शास्त्र पढ़कर भी मूर्ख होते हैं। वास्तव में विद्वान् वही हैं जो क्रियावान है क्योंकि सचिंतित औषधि भी नाम मात्र से रोगी को नीरोग नहीं कर देती है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।१६७)

न कस्यचित्कश्चिदिह स्वभावाद्भवत्युदारोऽभिमतः खलो वा।
लोके गुरुत्वं विपरीततां वा स्वचेष्टितान्येव नरं नयन्ति।।

---

१. कार्यों की पूर्णता।

इस संसार में कोई मनुष्य स्वभावतः किसी के लिए उदार, प्रिय या दुष्ट नहीं होता। अपने कर्म ही मनुष्य को संसार में गौरव अथवा पतन की ओर ले जाते हैं।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, २।४६)

शठे शाठ्यं समाचरेत्।

शठ के साथ शठता ही करनी चाहिए।

—संस्कृत लोकोक्ति

यादृशो यक्षस्तादृशो बलिः।

जैसा यक्ष, वैसी बलि।

[इसी को इस प्रकार भी कहते हैं—

यथा यक्षस्तथा बलिः।

जैसा यक्ष, वैसी बलि।]

—संस्कृत लोकोक्ति

यादृशं मुखं, तादृशी चपेटा।

जैसा मुख, वैसा थप्पड़।

—संस्कृत लोकोक्ति

विरोधं नोत्तमैर्गच्छेन्नाधमैश्च सदा बुधः।
विवाहश्च विवादश्च तुल्यशीलैर्नृपेष्यते॥

हे राजन्! बुद्धिमान मनुष्य कभी उत्तम और अधम व्यक्तियों से विरोध न करे। विवाह और विवाद सदा समान व्यक्तियों से ही होना चाहिए।

—अज्ञात

कृते प्रति कृतिं कुर्याद्धिंसने प्रति हिंसितम्।
तत्र दोषं न पश्यामि शठे शाठ्यं समाचरेत्॥

उपकारी के प्रति उपकार करना चाहिए और हिंसक कर्म के प्रति हिंसा। इसमें मैं दोष नहीं देखता कि शठ के साथ शठता का व्यवहार किया जाए।

—अज्ञात

बालः पायसदग्धो दध्यपि फूत्कृत्य भक्षयति।

दूध से जला हुआ बालक दही को भी फूंक-फूंककर खाता है।

—अज्ञात

उग्रत्वं च मृदुत्वं च समयं वीक्ष्य संश्रयेत्।
अन्धकारमसंहृत्य नोग्रो भवति भास्करः॥

उग्रता और मृदुता समय देखकर अपनानी चाहिए। अन्धकार को मिटाये विना ही सूर्य उग्र (अग्निवर्षी) नहीं हो जाता।

—अज्ञात

अकुले पतितो राजा मूर्खपुत्रो हि पण्डितः।
निर्धनस्य धनप्राप्तिस्तृणवन्मन्यते जगत्॥

नीच कुल में उत्पन्न राजा, मूर्ख पिता के विद्वान पुत्र और निर्धन से धनवान बनने वाले को संसार तिनके के समान समझता है।

—अज्ञात

आत्मनः प्रतिकूलानि परेभ्यः यदि नेच्छसि।
परेषां प्रतिकूलेभ्यो निवर्तय ततो मनः॥

यदि दूसरों से अपने प्रतिकूल नहीं चाहते हो तो अपने मन को दूसरों के प्रतिकूल कार्यों से हटा लो।

—अज्ञात

उत्तमं प्रणिपातेन शूरं भेदेन योजयेत्।
नीचमल्पप्रदानेन इष्टं धर्मेण योजयेत्॥

श्रेष्ठ को प्रणाम करके अपने अनुकूल कर लेना चाहिए। शूरवीर को भेद-नीति से अपना बना लेना चाहिए। नीच को थोड़ा धन देकर अपना बना लेना चाहिए। इष्ट वस्तु को धर्म से संयुक्त कर लेना चाहिए।

—अज्ञात

अज्ञेष्वज्ञो गुणिषु गुणवान् पण्डिते पण्डितोऽसौ
दीने दीनः सुखिनि सुखवान् भोगिनो भोगिभावः।
ज्ञाता ज्ञातुर्युवतिषु युवा वाग्मिनां तत्त्ववेत्ता
धन्यः सोऽयं भवति भुवने योऽवधूतेऽवधूतः॥

वह मनुष्य इस संसार में धन्य है जो अज्ञ के साथ अज्ञ, गुणियों के साथ गुणी विद्वानों में विद्वान, दरिद्रों के साथ दरिद्र, सुखियों के साथ सुखी, भोगियों में भोगी, बुद्धिमानों में बुद्धिमान, युवतियों में युवा, वाग्मियों में तत्त्ववेत्ता और अवधूतों मे अवधूत बनकर रहता है।

—अज्ञात

न लोकद्विष्टमाचरेत् ।

लोक-विरुद्ध आचरण न करे ।

—अज्ञात

यस्मिन् देशे य आचारः स्थाने-स्थाने यथा स्थितिः ।
तथैव व्यवहर्तव्यं पारम्पर्यागतो विधिः ॥

जिस देश में स्थान-स्थान पर यथा स्थिति जो आचार है, जो परम्परा से आई विधि है, उसी का व्यवहार करना चाहिए ।

—अज्ञात

नमे नमन्तस्स भजे भजन्तं
किच्चानुकुब्बस्स करेय्य किच्चं,
नानत्थकामस्स करेय्य अत्थं
असम्भजन्तम्पि न सम्भजेय्य ।

झुकने वाले के सामने झुके ।संगति करने वाले के साथ संगति करे । जो अपने काम आता हो, उसका काम करे । अनर्थ चाहने वाले का अर्थ न करे जो सगति करना न चाहता हो, उससे संगति न करे ।

[पालि] —जातक (पुटभत्त जातक)

मा जातिं पुच्छ, चरणं च पुच्छ ।

जाति मत पूछो, आचरण पूछो ।

[पालि] —संयुत्तनिकाय (१।७।९)

प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं ।
ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥
बचन परम हित सुनत कठोरे ।
सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ६।९।४-५)

चुपकि न रहत, कह्यौ कछु चाहत,
ह्वै है कीच कोठिला धोए ।

तुम चुप नहीं रहते, कुछ न कुछ कहना ही चाहते हो परन्तु याद रखो कुठिला (अनाज रखने की मिट्टी की कोठी) धोने से कीचड़ ही होगी ।

—तुलसीदास (श्रीकृष्ण गीतावली, पद ११)

सदा न जे सुमिरत रहहिं, मिलि न कहहिं प्रिय पैम ।
ते पै तिन्ह के जाहिं घर, जिन्ह के हिए न नैन ॥

—तुलसीदास (दोहावली, ३२९)

बोल न मोटे मारिए, मोटी रोटी मारु ।
जीति सहस सम हारिबो, जीतें हारि निहारु ॥

—तुलसीदास (दोहावली, ४२९)

अनहित भय परहित किए, पर अनहित हितहानि ।
तुलसी चारु बिचारु मल, करिअ काज सुनि जानि ॥

—तुलसीदास (दोहावली, ४२९)

रहिमन यहि संसार में, सब सों मिलिये धाइ ।
ना जानै केहि रूप में, नारायन मिलि जाइ ॥

—रहीम (दोहावली)

औषधि खाइ न पछि रहै, विषम व्याधि क्यों जाइ ।
दादू रोगी बावरा, दोस वैद को लाइ ॥

— दादू दयाल (श्री दादूदयाल जी की वाणी, पृ० २९)

दया दृष्टि नित राखिए, करिए पर उपकार ।
माया खरचो हरि निमित, राखो चित्त उदार ॥
जाति पाँति का भरम तज, उत्तम करणी देख ।
सुपात्र को पूजिए, कहा गृहस्थ कहा भेख ॥
जल कूं पीजै छानकर, छान वचन मुख बोल ।
दृष्टि छानकर पांव धर, छान मनोरथ तोल ॥

—परसराम

आचार से बढ़कर और कोई प्रचार हो ही नहीं सकता । जो काम मनुष्य दूसरों से कराना चाहता है, उसे वह स्वयं करे । उसका यह सबसे बढ़कर असरदार प्रचार होगा ।

— महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, ३१-१०-१९२९)

जो व्यवहार तत्त्व के निकट नहीं जाता वह अशुद्ध और त्याज्य है ।

—महात्मा गांधी (बापू के पत्र प्रेमा बहन के नाम)

जब दूसरे के पाँवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है ।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० ९)

पंखहीन पक्षी पिंजरबद्ध रहने में ही अपनी कुशल समझता है ।

—प्रेमचंद (सेवासदन, परिच्छेद ५१)

ताल ताल पर चलो नहीं लय छूटे जिसमें,
तुम न विवादी स्वर छेड़ो अनजाने इसमें ।।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, संघर्ष सर्ग)

जगत में जो कुछ है सब भगवान् की ही मूर्ति है—यह समझकर सबसे प्रेम करो, सबकी पूजा करो, अपना जीवन सबके लाभ के लिए समर्पित कर दो। भूलकर भी ऐसा काम न करो, जिससे सबमें से किसी एक का भी अहित हो, एक के भी कल्याण में बाधा पहुंचे।

—हनुमान प्रसाद पोद्दार

जब तक तुम्हें अपनी प्रशंसा और दूसरे की निंदा प्यारी लगती है, तब तक तुम निन्दनीय ही रहोगे।

जब तक तुम्हें अपने सम्मान और दूसरे का अपमान सुख देता है, तब तक तुम अपमानित ही होते रहोगे।

जब तक तुम्हें अपने लिए सुख की और दूसरे के लिए दुःख की चाह है, तब तक तुम सदा दुःखी ही रहोगे।

—हनुमान प्रसाद पोद्दार

सारे आचरण-सिद्धांत का मूल तत्त्व यह है कि जो आचरण चिन्मुख है, वह श्रेष्ठ है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (सहज साधना, पृ० १०१)

किसी तरह भी मर्यादा में जो तुम से बड़े हैं, वे तुम्हारे साथ समानता का व्यवहार करते हैं, तो उसे उनकी कृपा समझो, अपना अधिकार नहीं।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (जिंदगी मुसकराई, पृ० ६३)

उदार रहो, कृपा करो, सबके साथ समानता निबाहो, पर सस्ते न बनो, अपना भेद न दो कि दूसरे सिर पर रास्ता करने की ठानें।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (जिन्दगी मुसकराई, पृ० ६८)

रार[1] करो तो बोलो आड़ा[2]।
कृषी करो तो रक्खो गाड़ा[3]।।

—भड्डरी (भड्डरी की कहावतें)

जितना बता सकते हो उतना कभी मत बताओ। जितना कर सकते थे, उतना कभी मत करो। जितना सुनते हो, उस सब पर विश्वास कभी मत करो।

—अज्ञात

१. झगड़ा। २. उल्टा-सीधा। ३. गाड़ी।

सबसे रसिये सबसे बसिये हरि का लीजिये नाम।
हां जी हां जी करते रहिए बैठिये अपने ठाम।।

—अज्ञात

सब धान बाइस पसेरी।

—हिंदी लोकोक्ति

नापे सौ गज़, फाड़े न एक गज़।

—हिंदी लोकोक्ति

सेर का जवाब सवा सेर।

—हिंदी लोकोक्ति

जैसे को तैसो।

—हिंदी लोकोक्ति

लातों के देवता बातों से नहीं मानते।

—हिंदी लोकोक्ति

जैसी बहे बयार, पीठ तब तैसी दीजे।

—हिंदी लोकोक्ति

सुख़ नश तल्ख़ न ख़्वाही—दहनश् शीरीं कुन्।

उसके वचन यदि तू कड़वे न चाहे तो उसका मुंह मीठा कर।

[फ़ारसी] — शेख़ सादी (गुलिस्तां, प्रथम अध्याय)

सुख़ुने दर निहां न बायद गुफ़्त।
कि ब हर अंजुमन न शायद गुफ़्त।।

छिपी हुई वह बात जो हर सभा में नहीं कही जा सके, कहना उचित नहीं है।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

बा दर्द क़नाअत कुन व आज़ाद बज़ी,
दर बन्दे फ़ज़ूनी मशो आज़ाद बज़ी,
मुनिगर बफ़ज़ूनी जे ख़ुद व ग़ुस्सा मख़ुर,
दर कम जे ख़ुदी निगह कुनो शाद बज़ी।

विपत्तियों को धैर्य के साथ सहन कर और स्वतन्त्र हो जा। अधिक धन कमाने की चिन्ता मत कर और स्वतन्त्र

बनकर रह। ऐसे मनुष्य को देखकर जो तुमसे बढ़कर है ईर्ष्या मत कर। जो तुझसे कम है, उसकी ओर देख और प्रसन्न रह।

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रूबाइयात, ७४५)

सुन लाख जो कोई सुनाए
कीजै वही जो समक्ष में आए।

—दयाशंकर नसीम

सभना मन माणिक ठाहणु भूलि न चांगवा।
ते तउ परी आसिक हियाउ न ठाहे कहीदा॥

हर मन एक माणिक्य है, उसे दुखाना किसी भी तरह अच्छा नहीं यदि तू प्रियतम का प्रेमी है तो किसी के हृदय को न सता।

[सिन्धी] —शेख़ फ़रीद

परुन स्वलभ पालुन द्वर्लभ्।

पढ़ना सुलभ है पर उसका पालन करना दुर्लभ है।

[कश्मीरी] —लल्लेश्वरी (लल्लवाख)

कांच कटोरा नैण जल, मोती अरु मनन।
अतरा फाट्यां ना संघे, पेली राख जतन्न॥

कांच का कटोरा, नेत्रों का जल, मोती और मन, यह एक बार टूटने पर पहले जैसी स्थिति नहीं होती, अतः पहले ही सावधानी बरतनी चाहिए।

[राजस्थानी-मेवाड़ी] —लोकोक्ति

रामनामाचेनि वळें नका करूं अधर्म।
देव विषयीं तुमचें शुद्ध नोहे कर्म॥

राम नाम के वल पर अधर्म मत करो। रामनाम स्मरण के साथ-साथ शुद्ध कर्म भी करना आवश्यक है।

[मराठी] —एकनाथ

दुर्जनासि पंचानन। तुका रजरेणु संतांचा।

तुकाराम दुष्ट व्यक्तियों के लिए सिंह के समान है, परन्तु संतों के चरणों की धूलि है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ४४५५)

स्वपरतये जीव स्वभावम्बु गान
वरुनि वल्लेत्तु माटयु वलुक दगदु।

जीव के दो स्वभाव हैं—अपना-पराया। स्व और पर दोनों में भी जीव के अस्तित्व होने के कारण दूसरों के प्रति बुरी बात करना शोभायमान नहीं है।

[तेलुगु] —पानुगंटि (विजय राघव)

तनकधिकुल कति भक्तियु
मनमुन नेय्यंबु दन समानुलकुनु ही
नुनि यंदु गृपयु जेकोनु
मनुजुनकु वगयु गलदे मदि वरिकिंपन्।

अपने से वड़ों के प्रति भक्ति-भाव रखने वाले, अपने समान वालों से स्नेह-भाव रखने वाले, और अपने से छोटों के प्रति कृपा-भाव रखने वाले मानव को किसी बात का दुःख नहीं होगा।

[तेलुगु] —नन्नेचोड्डु (कुमारसंभवमु)

कूडुने ! तिंडि पट्लु
मरियु व्यवहारपुं बट्ल माट कुरुच।

खाने के विषय में और व्यवहार के विषय में बात से पक्का होना चाहिए।

[तेलुगु] —तिरुपति वेंकटकवलु (पांडव प्रवासमु, ३।६६)

ऊँची स्थिति में होने पर भी उच्च आचरण न हो तो वह श्रेष्ठ नहीं होता। नीची स्थिति में होने पर भी निम्न आचरण न हो तो वह नीचा नहीं होता।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ९७३)

कोई भी आपके पास आवे, ईश्वर समझ कर उसका स्वागत करो, परन्तु उस समय साथ-साथ अपने को भी अधम मत समझो।

—रामतीर्थ (स्वामी रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० १५)

इस कारण जो कुछ तुम चाहते हो कि मनुष्य तुम्हारे साथ करे, तुम भी उनके साथ वैसा ही करो, क्योंकि व्यवस्था और भविष्यवक्ताओं को शिक्षा यही है।

—नवविधान (मत्ती।७।१२)

अपने पिता और अपनी माता का आदर कर, और अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम कर।

—नवविधान (मत्ती।१९।१९)

भले ही हमारे पास सही सिद्धान्त हो, परन्तु यदि हम उसका जाप मात्र करते रहेंगे, उसे उठाकर ताक पर रख देंगे और उसे उपयोग में नहीं लाएंगे, तो उस सिद्धान्त का, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, कोई मूल्य नहीं रह जाएगा।

—माओ-त्से-तुंग (अध्यक्ष माओ-त्से-तुंग की रचनाओं के उद्धरण)

अपने साथियों के साथ शत्रुओं जैसा व्यवहार करने का अर्थ होगा शत्रु के दृष्टिकोण को अपना लेना।

—माओ-त्से-तुंग (अध्यक्ष माओ-त्से-तुंग की रचनाओं के उद्धरण)

मैं मानव जाति से प्रेम करता हूं और चाहता हूँ कि उसे किसी भी तरह से दुःख न पहुंचाऊं, परन्तु इसके लिए न तो हमें भावुकता का दामन पकड़ना चाहिए और न ही चमकीले शब्द-जाल और सुन्दर झूठ की टट्टी खड़ी करके जीवन के भयानक सत्य को हमें छिपाना चाहिए। जरूरी है कि हम जीवन की ओर मुँह करें और हमारे हृदय तथा मस्तिष्क में जो कुछ भी शुभ और मानवीय है, उसे जीवन में उंडेल दें।

—मैक्सिम गोर्की (जीवन की राहों पर, पृ० ४५४-४५५)

Love all, trust a few, do wrong to none.

सबसे प्रेम करो, कुछ पर विश्वास करो, अन्याय किसी के साथ मत करो।

—शेक्सपियर (आल्स वेल दैट एंड्स वेल, १।१)

In necessary things, unity; in doubtful things, liberty; in all things charity.

आवश्यक बातों में एकता; संदिग्ध बातों में स्वतन्त्रता तथा सभी बातों में उदारता।

—रिचर्ड बाक्स्टर (ध्येय वाक्य)

Towards the superiors be humble, yet generous. With thine equals, familiar, yet respective. Towards thine inferiors shew much humanity, and some familiarity.

अपने बड़ों के प्रति विनयशील बनो परन्तु उदार रहो। अपने समवयस्कों के घनिष्ठ मित्र बनो परन्तु उनके प्रति आदर भाव रखो। अपने छोटों के प्रति प्रचुर दयाभाव परन्तु कुछ घनिष्ठता रखो।

—विलियम सेसिल (पुत्र को परामर्श)

A little commonsense, a little tolerance, a little good humour, and you do not know how comfortable you can make yourself on this planet.

थोड़ी-सी सामान्य बुद्धि, थोड़ी-सी सहनशीलता, थोड़ा सा शिष्ट हास्य—और आप नहीं जानते कि आप इस ग्रह पर अपने को कितना सुखी बना सकते हैं।

—सामरसेट माम

Softly speak and sweetly smile.

कोमलता से बोलो और मधुरता से मुस्कराओ।

— एडीसन (दि स्पेक्टेटर, क्रमांक २२९)

व्यसन

व्यसनानि सन्ति बहुधा व्यसनद्वयमेव केवलं व्यसनम्।
विद्याभ्यसनं व्यसनं अथवा हरिपादसेवनं व्यसनम्॥

व्यसन तो बहुत प्रकार के होते हैं परन्तु दो व्यसन ही सच्चे व्यसन हैं—विद्याभ्यास का व्यसन और भगवत्सेवा का व्यसन।

—अज्ञात

व्याकरण

कानि पुनः शब्दानुशासनस्य प्रयोजनानि। रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्॥

शब्दानुशासन शास्त्र के क्या प्रयोजन हैं? रक्षा[1], ऊह[2], आगम[3], लाघव[4], सन्देहनिवृत्ति[5]—यह प्रयोजन है।

—पतंजलि (व्याकरण महाभाष्य, प्रथम आह्निक)

शब्दस्मृतेः शब्दशुद्धिः।

शब्दस्मृति (व्याकरण) से शब्द की शुद्धि होती है।

—वामन (काव्यालंकारसूत्र, १।३।४)

१. वेदों की रक्षा। २. वेदमन्त्रों की विभक्ति, लिंग आदि का परिवर्तन कर पढ़ना। ३. आगम शास्त्र के निर्देशानुसार वेदाध्ययन। ४. शब्दज्ञान में लाघव। ५. वेदार्थ में सन्देह-निवृत्ति।

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत्॥

हे पुत्र, चाहे बहुत मत पढ़ो, फिर भी व्याकरण पढ़ लो जिससे 'स्वजन' श्वजन' (कुत्ता) न हो जाय, 'सकल' (सम्पूर्ण) 'शकल' (टुकड़ा) न हो जाय तथा 'सकृत् (एक बार) 'शकृत' (विष्ठा) न हो जाय।

—अज्ञात

आपः पवित्रं प्रथमं पृथिव्याम्,
अपां पवित्रं परमं च मंत्राः।
तेषां च सामर्ग्यजुषां पवित्रं
महर्षयो व्याकरणं निराहुः॥

पृथ्वी पर जल सबसे प्रथम पवित्र करने वाला है, मंत्र जलों को परम पवित्र करने वाले हैं और ऋक्, यजु और साम मंत्रों को भी व्याकरण पवित्र करती है, ऐसा महर्षियों ने कहा है।

—अज्ञात

काल गलन्तए णाहु णिय-देइ-रिद्धि परियड्ढइ।
विवरिण्णन्तु कईहिं, वायरणु गन्धु जिह वड्ढइ॥

समय बीतने पर स्वामी (ऋषभ) के शरीर की कान्ति वैसे ही बढ़ने लगी जैसे पण्डितों द्वारा व्याख्या करने पर व्याकरण का ग्रंथ विकसित होने लगता है।

[अपभ्रंश] —स्वयम्भूदेव (पउमचरिउ, २।७।६)

मानव-मस्तिष्क को जड़ व्याकरण की निरंकुशता का दास बनाना बुरा है।

—एफ़० डब्ल० फेरर (ऐन एसे आन दि ओरिजिन आफ़ लैंग्वेज, पृ० १७५)

व्याकुलता

पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव।

जैसे कोई प्यास से व्याकुल मनुष्य सूखी नदी की ओर दौड़ता जा रहा हो, उसी प्रकार मैं उस ओर जा रहा हूं।

—भास (प्रतिमानाटक, ३।१०)

रुरोद मम्लौ विरुराव जग्लौ
बभ्राम तस्थौ विललाप दध्यौ।
चकार रोषं विचकार माल्यं
चकर्त वक्त्रं विचकर्ष वस्त्रम्॥

वह[1] रोई, कुम्हलाई, चिल्लाई, इधर-उधर घूमी, खड़ी रही, उसने विलाप किया, ध्यान किया, क्रोध किया, मालाओं को विखेरा, अपने मुख को काटा और वस्त्र को फाड़ा।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ६।३४)

तस्कीन[2] दर्दे दिल को न आज हो न कल हो
बेयार[3] बेकली है वही मिले तो कल हो।

—वजीह

व्याख्या

उपादेयस्य सम्पाठः तदन्यस्य प्रतीकनम्।
स्फुट-व्याख्या विरोधानां परिहारः सुपूर्णता॥
लक्ष्यानुसरणं श्लिष्ट-वक्तव्यांशविवेचनम्।
संगतिः पौनरुक्त्यानां समाधानसमाकुलम्॥
संग्रहश्चेत्ययं व्याख्या-प्रकारोऽत्र समाश्रितः॥

उपादेय पाठ का ग्रहण करना, उससे भिन्न पाठों का परित्याग करना, स्पष्ट व्याख्या करना, (ग्रंथ में प्रतीत होने वाले) विरोधों का परिहार करना, विषय की पूर्णता का प्रतिपादन करना, उदाहरणों का अनुसरण करना[4], उनसे सम्बद्ध वक्तव्य अंश की विवेचना करना[5] और ग्रंथ में प्रतीत होने वाली पुनरुक्तियों के समाधानपूर्वक संगति लगाना तथा संग्रह करना[6]—इस व्याख्या-शैली का यहां अवलम्बन किया गया है।

—अभिनवगुप्त (अभिनवभारती, १।५-७)

---

१. राजकुमार सौन्दरनन्द के अचानक प्रवज्याग्रहण का समाचार पाकर दुःखग्रस्त उसकी तरुण पत्नी। २. सान्त्वना। ३. मित्र के बिना। ४. उचित स्थानों पर उदाहरण देना। ५. उदाहरणों की संगति दिखलाना। ६. विस्तृत व्याख्या में कहे हुए विषय का संक्षेप रूप में श्लोकों द्वारा संग्रह करना।

व्याधि

द्विविधो जायते व्याधिः शारीरो मानसस्तथा।
परस्परं तयोर्जन्म निर्द्वन्द्वं नोपलभ्यते॥

मनुष्य को दो प्रकार की व्याधियां होती हैं—एक शारीरिक और दूसरी मानसिक। इन दोनों की उत्पत्ति एक दूसरे के आश्रित है, एक के बिना दूसरी का होना सम्भव नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१६।८)

व्यापक दृष्टि

इसी शाखो-गुल में उलझ कर न रह जा
तेरे सामने आशियाँ और भी हैं।

—इक़बाल

व्यापारी

हम सारा दिन अपने व्यापार का ही विचार करने के लिए पैदा नहीं हुए हैं। व्यापार एक साधन है। जब वह साध्य के रूप में हमारे उपर छा जाता है, तब हम गुलाम बन जाते हैं।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, २१-६-१९१९)

हम सब व्यापारी बन गये हैं। हम प्राणों का व्यापार करते है, गुणों का व्यापार करते हैं, धर्म का व्यापार करते हैं। आह ! हम प्रेम का भी व्यापार करते हैं।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत जाग्रत, पृ० १३२)

A true-bred merchant is the best gentleman in the nation.

सुसंस्कारित व्यापारी राष्ट्र का सर्वश्रेष्ठ भद्रपुरुष होता है।

—डेनियल डीफ़ो (रॉबिसन क्रूसो, दि फ़ारदर एडवेंचर्स)

There are three things in particular that, you (businessmen) can do; be competitive, through lower costs and prices and better products and productivity; be export-minded. And, finally, be calm.

आप व्यापारी लोग विशेषतः तीन बातें कर सकते हैं—काम लागतों व कीमतों तथा श्रेष्ठतर उत्पादनों व श्रेष्ठतर उत्पादक-क्षमता द्वारा प्रतिस्पर्धात्मक बनें, निर्यातशील बनें और अन्ततः, शांत बने।

—केनेडी

व्यायाम

लाघवं कर्मसामर्थ्यं स्थैर्यं क्लेश-सहिष्णुता।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते॥

व्यायाम से शारीरिक हल्कापन, कर्म-सामर्थ्य, दृढ़ता, कष्ट-सहिष्णुता, दोषों की क्षीणता तथा जठराग्नि की वृद्धि उत्पन्न होते है।

—चरकसंहिता (सूत्रस्थान, सप्तम अध्याय)

श्रमः क्लम क्षयस्तृष्णा रक्तपित्तप्रतामकः।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते॥

अतिव्यायाम से थकावट, क्लांति, क्षीणता, प्यास, रक्तपित्त, साँस चढ़ना, खांसी, ज्वर तथा वमन—ये उपद्रव होते हैं।

—चरकसंहिता (सूत्रस्थान, सप्तम अध्याय)

व्यावहारिकता

डाक्टरी पेशे में अधिक मित्र न बनाना ही बुद्धिमानी है।

—शिवानी (करिए छिमा)

Never complain and never explain.

कभी शिकायत मत करो और कभी सफ़ाई मत दो।

—डिज़रायली

व्यास

विव्यासैकं चतुर्धा यो वेदं वेदविदां वरः।
परावरज्ञो ब्रह्मर्षि कविः सत्यव्रतः शुचिः॥

महर्षि व्यास ने एक ही वेद को चार भागों में विभक्त किया। वह व्यास वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि, परब्रह्म और अपरब्रह्म के ज्ञाता, कवि (त्रिकालदर्शी), सत्यव्रतपरायण तथा परम पवित्र हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, आदिपर्व।६०।५)

मुनीनामप्यहं व्यासः।

मुनियों में भी मैं[1] व्यास हूं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व। ३४।३७ अथवा गीता, १०।३७)

कृष्णद्वैपायनो व्यासः विष्णुर्नारायणस्स्वयम्।

कृष्ण द्वैपायन व्यास स्वयं नारायण विष्णु हैं।

—कूर्मपुराण (१।४९।४८)

कृष्णद्वैपायनं व्यासं सर्वभूतहिते रतम्।
वेदाब्जभास्करं वन्दे शमादिनिलयं मुनिम्॥

सब प्राणियों के हित में संलग्न, वेदरूपी कमल के लिए सूर्य स्वरूप, शमादि के निलय, कृष्ण द्वैपायन व्यास मुनि की वन्दना करता हूं।

—शंकराचार्य (विष्णुसहस्रनामभाष्य)

व्यासः क्षमाभृतां श्रेष्ठो वन्द्यः स हिमवानिव।
सृष्टा गौरीदृशी येन भवे विस्तारिभारता॥

क्षमाभृतों (पर्वतों) में श्रेष्ठ तथा वन्दनीय हिमालय के समान व्यास क्षमाभृतों (क्षमाशीलों) में श्रेष्ठ तथा वन्दनीय है, जिन्होंने संसार में प्रसिद्ध कान्तिस्वरूपिणी इस प्रकार की गौरी (वाणी) की सृष्टि की।

—त्रिविक्रम भट्ट (नलचम्पू, १।१२)

नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्॥

उस सर्वज्ञ, कवि ब्रह्मा व्यास को नमस्कार है, जिसने सरस्वती से पवित्र भारतवर्ष के समान पवित्र भारत ग्रन्थ की रचना की।

—बाणभट्ट (हर्षचरित)

नमो ज्ञानानलशिखापुंजपिंगजटाभृते।
कृष्णायाकृष्णमहसे कृष्णद्वैपायनाय ते॥

ज्ञानाग्नि के शिखा-पुंज जैसी पीली जटाओं को धारण करने वाले, धवल यश वाले, कृष्ण वर्ण उन कृष्ण द्वैपायन के लिए नमस्कार है।

—क्षेमेन्द्र (भारतमंजरी)

अज्ञानतिमिरान्धानां विभ्रान्तानां कुमेधसाम्।
ज्ञानांजनशलाकाभिर्व्यासेनोन्मीलितं जगत्॥

अज्ञानान्धकार से अन्धे, विभ्रान्त तथा दुष्ट बुद्धि वाले व्यक्तियों के जगत् को व्यास ने ज्ञानांजन की शलाका से जगा दिया।

—अज्ञात

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लार-
विन्दायतपत्रनेत्रम्।
येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितो
ज्ञानमयः प्रदीपः॥

जिन्होंने महाभारतरूपी तेल से परिपूर्ण ज्ञानमय प्रदीप प्रज्वलित किया, ऐसे विशाल बुद्धि वाले और प्रफुल्लित कमल जैसे दीर्घ नेत्रों वाले व्यास जी! आपको प्रणाम है।

—अज्ञात

अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः।
अफाललोचनः शंभुः भगवान् बादरायणः॥

भगवान् व्यास चार मुखरहित ब्रह्मा हैं, दो भुजा वाले विष्णु हैं तथा त्रिलोचन न होते हुए भी शंकर हैं।

—अज्ञात

व्यास ने भी अपने 'जयकाव्य' (महाभारत) में अधर्म के पराभव और धर्म की जय का सौन्दर्य प्रत्यक्ष किया था।

—रामचन्द्र शुक्ल (रस-मीमांसा, पृ० ४७)

जिस प्रकार भारतवर्ष की प्राकृतिक सम्पदा का अपरिमित विस्तार है, उसी प्रकार कालक्रम से वेदव्यास की साहित्यिक सृष्टि भी लोक के देश-व्यापी जीवन में अनन्त बनकर समा गई है। एक प्रकार से सारे राष्ट्र का जीवन ही आज व्यासरूपी महान वटवृक्षकी छाया के आश्रय में आ गया है। व्यास भारतवर्षीय ज्ञान के सर्वोत्तम प्रतिनिधि बन गए हैं।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (कल्पवृक्ष, महर्षि व्यास)

भानुतेजें धवललें। जैसें त्रैलोक्य दिसे उजळिलें।
तैसें व्यासमती कवळिलें। मिरवे विश्व॥

जिस प्रकार सूर्य के तेज से त्रिभुवन उज्ज्वल होता है, उसी प्रकार व्यासदेव की बुद्धि से व्याप्त यह विश्व शोभित ही हुआ है।

—ज्ञानेश्वर (ज्ञानेश्वरी, १।३९)

१. भगवान।

व्यास की धर्मावगुण्ठित कला की यह विशेषता है कि वह गुफ़ा के शिल्प के समान है, वह दर्शकों, पाठकों अथवा श्रोताओं के सामने उनके अनुकूल एक आन्तरिक विश्व का उद्घाटन करती हैं। जिसमें जैसी पात्रता होगी, जो जैसा देखना चाहेगा, वह वैसा ही और उतना ही देखेगा। यदि व्यास की प्रतिभा क्रान्तिदर्शी है तो इस अर्थ में कि वह क्षुद्र, संकुचित, दोषपूर्ण, पापपूरित, कुरूप व्यक्तियों और घटनाओं को सीधे आत्मसात कर लेती है। ऐसी नहीं कह सकते कि उसे नैतिकता, सौन्दर्य, और भव्यता ही प्रिय है। ऐसी समदर्शिता वही प्रतिभाशाली कलाकार पा सकते हैं जो अपनी रचना को अत्यन्त तटस्थ और अत्यन्त जागृत दृष्टि से देखते हैं।

—दुर्गा भागवत (व्यास पर्व, पृ० ११-१२)

व्रत

मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः।

व्रतशील ज्ञानी कभी जीर्ण नहीं होते।

—ऋग्वेद (१।१२५।७)

अप्रमूरा महोभिः व्रता रक्षन्ते विश्वाहा।

ज्ञानी लोग आत्मतेजों से अपने व्रतों की रक्षा करते हैं।

—ऋग्वेद (१।९०।२)

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

व्रत से दीक्षा प्राप्त होती है। दीक्षा से दक्षिणा प्राप्त होती है। दक्षिणा से श्रद्धा प्राप्त होती है। श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है।

—यजुर्वेद (१९।३०)

अव्रतो हिनोति न।

जो व्रत का आचरण नहीं करता, उसे कुछ भी नहीं मिलता।

—सामवेद (४४१)

त्रीण्येव पदान्याहुः पुरुषस्योत्तमं व्रतम्।
न द्रुह्येच्चैव दद्याच्च सत्यं चैव परं वदेत्॥

मनुष्य के लिए तीन बातों को ही उत्तम व्रत बताया गया है—किसी से द्रोह न करे, दान दे तथा दूसरों से सत्य बोले।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासनपर्व, १२०।१०)

व्रताभिरक्षा हि सतामलंक्रिया।

व्रत का पालन करना सज्जनों का आभूषण है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, १४।१४)

प्रतिपन्नार्थनिर्वाहः सहजं हि सतां व्रतम्।

स्वीकृत विषय का निर्वाह करना सज्जनों का स्वाभाविक व्रत है।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ३।४)

सुद्धस्स सुचिकम्मस्स सदा सम्पज्जते वतं।

शुद्ध और पवित्रकर्मी के व्रत सदा ही पूर्ण होते रहते हैं।

[पालि] —मज्झिमनिकाय (१।७।६)

यं अकुसलं तं अभिनिवज्जेय्यासि,
यं अकुसलं तं समादाय वत्तेय्यासि,
इदं खो, तात, तं अरियं चक्कवत्तिवतं।

हे तात! जो बुराई है उसका त्याग करो और जो भलाई है उसको स्वीकार कर पालन करो—यही श्रेष्ठ चक्रवर्ती व्रत है।

[पालि] —दीघनिकाय (३।३।१)

व्रत-पालन करने वाला यदि मन में अपने व्रत-पालन का गर्व रखे तो व्रतों का मूल्य खो देगा और समाज में विष रूप हो जाएगा। उसके व्रत का मूल्य न समाज ही करेगा, न वह खुद ही उसका फल भोग सकेगा।

—महात्मा गांधी (मंगल प्रभात)

व्रत बंधन नहीं, बल्कि स्वतंत्रता का द्वार है।

—महात्मा गांधी (आत्मकथा, १७८)

व्रत से रहित जीवन उस जहाज़ की तरह है जिसके नाविक ने अपने गन्तव्य स्थान का निश्चय न किया हो।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (वेद-विद्या, पृ० १९८)

□

श

शंका

दे० 'सन्देह' भी।

स्वैर्दोषैर्भवति हि शंकितो मनुष्यः।

अपने दोषों के कारण ही मनुष्य शंकित होता है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, ४।२)

किसी आदमी में स्वभाव के विपरीत आचरण देखकर शंका होती ही है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० ८६)

प्रजाहित के लिए कोई काम कीजिए तो उसमें भी लोगों को शंका होती है।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० ६३)

शंका के मूल में श्रद्धा का अभाव रहता है।

—महात्मा गांधी (आत्मकथा, पृ० ३९५)

विश्वासी बुद्धि और विवेकी हृदय अपने आप में सब शकाओं का समाधान है।

—महादेवी वर्मा (संभाषण, पृ० ९६)

दही में जितना भी दूध डालिए, दही होता जाएगा। शंकाशील हृदयों में प्रेम की वाणी भी शंका उत्पन्न करती है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० १७५)

मनसा डाइन शंका भूत।

मन में भ्रम उत्पन्न होने से डायन लगती है और शंका से भूत लगता है।

—हिन्दी लोकोक्ति

जब शंका हो तो काम करने से रुक जाओ।

—जरथुस्त्र

शंका का अन्त शान्ति का प्रारंभ है।

—पेट्रार्क

यदि तुम्हारे कुछ विश्वास हों तो मुझे अपने विश्वासों का लाभ तो दो परन्तु अपनी शंकाओं को अपने पास ही रखो क्योंकि मेरे पास अपनी शंकाएँ पहले से ही पर्याप्त हैं।

—गेटे

हम ठीक-ठीक तभी जानते हैं जब हम कम जानते हैं, ज्ञान के साथ शंका भी बढ़ती है।

—गेटे

The mind that doubted—earnestly doubted—was the mind that lived.

गंभीरता से शंका करने वाला मन सजीव मन है।

—भगिनी निवेदिता (भाषण, २८ मई १८९८)

Our doubts are traitors,
And make us lose the good we oft might win,
By fearing to attempt.

हमारी शंकाएँ हमारे प्रति विश्वासघाती हैं और वे हमें प्रयत्न करने में डराकर उन अच्छी बातों से वंचित कर देती हैं जिन्हें हम प्रायः प्राप्त कर सकते हैं।

—शेक्सपियर (मेजर फ़ार मेजर, अंक, १, दृश्य ४)

Human knowledge is the parent of doubt.

मानव-ज्ञान शंका का जन्मदाता है।

—फ़ल्के ग्रेविले

Where doubt is, there truth is—it is her shadow.

जहां शंका है, वहां सत्य है—यह तो उसकी छाया है।

—गेमेलील बेली

To have doubted one's own first principles, is the mark of a civilized man.

अपने ही मूल सिद्धान्तों पर शंका करके देखना एक सभ्य व्यक्ति का लक्षण है।

—ओलिवर वेण्डेल होल्मेस

Doubt comes in at the window when inquiry is denied at the door.

जब द्वार पर पूछताछ की मनाही होती है तो अन्दर खिड़की पर शंका आ खड़ी होती है।

—बेंजमिन जोवेट

I respect faith, but doubt is what gets you an education.

मैं विश्वास का आदर करता हूँ परन्तु शंका ही है जो तुम्हें शिक्षा प्राप्त कराती है।

—विलसन मिज़नर

शकुन

ग्रहाणां चरितं स्वप्नो निमित्तान्युपयाचितम्।
फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञो न बिभ्यति॥

ग्रहों की गति, स्वप्न, अपशकुन और मनौती काकतालीयन्याय से (अर्थात् संयोगवश ही) फल देती है अतएव विद्वान इनसे भयभीत नहीं होते।

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, २।१५)

शक्ति

दे० 'सामर्थ्य' भी।

कस्यचिच्च क्वचिद्दृष्टं सामर्थ्यं न तु सर्वतः।

किसी की भी शक्ति किसी विशेष कार्य में ही दिखाई पड़ती है, सभी कार्यों में नहीं।

—मत्स्यपुराण (१५३।२२०)

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने।
नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता॥

वन में न तो सिंह का राज्याभिषेक किया गया, न कोई संस्कार। शक्तिसम्पन्न सिंह का पशुराजत्व तो स्वयं ही है।

—गरुडपुराण (१।११५।१५)

एवं परस्परापेक्षा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता।
न शिवेन विना शक्तिर्न शक्तया बिना शिवः॥

इस प्रकार शक्ति और शक्तिमान को सदा एक-दूसरे की अपेक्षा रहती है। न तो शिव के बिना शक्ति रह सकती है और न शक्ति के बिना शिव ही रह सकते हैं।

—शिवपुराण (वायवीय संहिता, उत्तर खण्ड, ४)

वेदान्तो विज्ञानं विश्वासश्चेति शक्त्यास्तिस्रः।
यासां स्थैर्ये नित्यं शान्तिसमृद्धी भविष्यतो जगति॥

वेदान्त (आत्मज्ञान), विज्ञान और विश्वास—ये तीन शक्तियां हैं। ये होंगी तो संसार में नित्य शान्ति व समृद्धि स्थापित होगी।

—विनोबा

अन्तरंगबहिरंगयोरन्तरंगं बलीयः।

अन्तरंग और बहिरंग में अन्तरंग अधिक बलवान् है।

—अज्ञात

ततेहि माने अनल पजारहअ
जेहे निझाइअ पानी।

उतने ही परिमाण में अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए जितनी पानी से बुझायी जा सके।

—विद्यापति (विद्यापति पदावली, दूसरा भाग, पृ० ७६)

नशे का जोश ताक़त नहीं है। ताक़त वह है जो अपने वदन में हो।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० ६५)

साधना मात्र ही शक्ति की आराधना है।

—गोपीनाथ कविराज (तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि, पृ० ७२)

पशु का नियंत्रण गीता पढ़ने से नहीं होता, दण्ड-प्रयोग से ही होता है।

—माधव स० गोलवलकर (भाषण, कानपुर, २२ फ़रवरी १९७२ ई०)

हमें केवल शारीरिक शक्ति ही अर्जित नहीं करनी है। शक्ति के साथ यह ज्ञान भी चाहिए कि शक्ति वही अच्छी है जो सद्गुण, शील, पवित्रता, सब पर उपकार करने की प्रेरणा तथा जनता के प्रति प्रेम से युक्त हो।

—माधव स० गोलवलकर (श्री गुरु जी समग्र दर्शन, खण्ड ६, पृ० २५)

छुई-मुई की तरह मुरझा सकना कितनी बड़ी शक्ति का सुप्त रूप है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ० २६८)

जो निरामय शक्ति है तप, त्याग में,
व्यक्ति का ही मन उसे है मानता,
योगियों की शक्ति से संसार में,
हारता लेकिन, नहीं समुदाय है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (कुरुक्षेत्र, द्वितीय सर्ग)

सहनशीलता, क्षमा, दया को
तभी पूजता जग है,
बल का दर्प चमकता उसके
पीछे जब जगमग है।

—रामधारीसिंह दिनकर' (कुरुक्षेत्र, तृतीय सर्ग)

सामर्थ्य केवल इच्छा का दूसरा नाम है।

—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (एक सूनी नाव, पृ० ७)

जिसकी लाठी, उसकी भैंस।

—हिंदी लोकोक्ति

सौ सुनार की, एक लोहार की।

—हिंदी लोकोक्ति

कहा न अबला करि सकै, कहा न सिंधु समाय ?
कहा न पावक में जरै, कहा काल न खाय ?

—अज्ञात

शक्ति 'शिव'-ता में है, पवित्रता में है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १० पृ० २१३)

शक्ति क्या कोई दूसरा देता है ? वह तेरे भीतर ही मौजूद है। समय आने पर वह स्वयं ही प्रकट होगी। तू काम में लग जा, फिर देखेगा, इतनी शक्ति आएगी कि तू उसे संभाल न सकेगा। दूसरों के लिए रत्ती भर काम करने से भीतर की शक्ति जाग उठती है। दूसरों के लिए रत्ती भर सोचने से धीरे-धीरे हृदय में सिंह का बल आ जाता है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ६, पृ० १२६)

न्याय और धर्म की प्रतिष्ठा के लिए जैसे संत की पवित्रता आवश्यक है, वैसे ही योद्धा की तलवार भी।

—अरविंद (दि डाक्ट्रिन आफ़ पैसिव रेसिस्टेंस, दी मारलिटी आफ़ बायकाट)

भय पर विजय प्राप्त करने का उपाय है शक्ति। विशेष रूप से दुर्गा, काली, आदि शक्ति की साधना करना। शक्ति के किसी भी रूप की मन में कल्पना करके प्रार्थना करने और उनके चरणों में मन की दुर्बलता और मलिनता को अर्पित कर देने से मनुष्य शक्ति प्राप्त कर सकता है।

—सुभाषचन्द्र वसु (मांडले जेल से श्री हरिचरण बागची को पत्र, १९२६ ई०)

हृदय से शक्ति आती है, बुद्धि से नहीं।

—मैक्सिम गोर्की (माँ)

Force is only well used by the man who has an idea beyond force. Force is meant to be used, nor to carry us away on its flood... Restraint is the highest expression of strength. But strength must first be present to be restrained.

शक्ति का सम्यक् प्रयोग वही व्यक्ति कर सकता है जिसके पास शक्ति से परे का विचार हो। शक्ति प्रयोग करने के लिए है, हमें अपनी बाढ़ में बहा ले जाने के लिए नहीं। ...संयम शक्ति की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति है, लेकिन पहले शक्ति होनी तो चाहिए जिसे संयमित किया जा सके।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज वर्क्स, भाग ३, पृ० ४३८)

The strength of numbers is the delight of the timid. The valiant of spirit glory in fighting alone.

संख्याओं की शक्ति पर कायर प्रसन्न होते हैं। वीरात्मा तो अकेले युद्ध करने में गौरव अनुभव करते है।

—महात्मा गांधी (यंग इण्डिया, १७ जून १९२६)

O ! it is excellent
To have a giant's strength, but it is tyrannous
To use it like a giant.

अहो, यह अच्छी बात है कि दैत्य जैसी शक्ति हो किन्तु यह अत्याचारपूर्ण है कि उसका दैत्य सदृश उपयोग किया जाए।

—शेक्सपियर (मेजर फार मेजर, २।२)

The greater the power, the more dangerous the abuse.

जितनी बड़ी शक्ति होती है, उतना ही बड़ा उसका दुरुपयोग होता है।

—एडमंड बर्क (एक चुनाव-भाषण, १७७१ ई०)

My strength is as the strength of ten.
Because my heart is pure.

मेरी शक्ति दस लोगों की शक्ति के बराबर है क्योंकि मेरा हृदय पवित्र है।

—टेनिसन (सर गेलेहड)

शक्तिशाली

सर्वै र्गुणैर्विहीनोऽपि वीर्यवान् हि तरेद् रिपून्।

बलवान पुरुष सब गुणों से हीन होने पर भी शत्रुओं के संकट से पार हो सकता है।

— वेदव्यास (महाभारत, सभापर्व १५।१०)

प्रतापसहाया हि सत्त्ववन्तः।

शक्तिशाली लोग प्रताप की ही सहायता लेते हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १८२)

नम्रता कठोरता से अधिक शक्तिशाली है, जल चट्टान से अधिक शक्तिशाली है, प्रेम बल से अधिक शक्तिशाली है।

—हरमन हेस (सिद्धार्थ, पृ० ९९)

शत्रु

दे० 'शत्रु-मित्र' भी।

अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात्।
नवसंरोपणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम्॥

जो शत्रु अभी-अभी गद्दी पर बैठा हो और जो प्रजा में अभी जड़ न जमा सका हो, वह नए रोपे हुए दुर्बल पौधे के समान सरलता से उखाड़ा जा सकता है।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, १।८)

उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वत्स्र्यन्तावामयः स च॥

अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए क्योंकि नीतिज्ञों ने बढ़ते हुए शत्रु और रोग को समान कहा है।

—माघ(शिशुपालवध, २।१०)

विधाय वैरं सामर्षे नरोऽनरौ य उदासते।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम्॥

जो मनुष्य पहले से ही क्रुद्ध वैरी के साथ वैर ठानकर उसकी उपेक्षा करता है, वह वायु के सम्मुख तृण-समूह में आग लगाकर सोता है।

—माघ (शिशुपालवध, २।४२)

परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः।

शत्रुओं द्वारा किया हुआ अपमान अत्यन्त असह्य होता है।

—माघ (शिशुपालवध, ६।४५)

गुप्त्या साक्षान्महानल्पः स्वयमन्येन वा कृतः।
करोति महती प्रीतिमपकारोऽपकारिषु॥

गुप्त या प्रकट रूप से, बहुत या थोड़ा, स्वयं या दूसरे के द्वारा किया गया शत्रुओं का अपकार बहुत आनंद देता है।

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, २।३)

प्राणेभ्योऽपि हि धीराणां प्रिया शत्रु-प्रतिक्रिया।

धीर पुरुषों को शत्रु के प्रतिकार की क्रिया प्राणों से भी प्रिय होती है।

— सोमदेव (कथासरित्सागर, १।४)

मायया शत्रवो वध्या अवध्याः स्युर्बलेन ये।

जिन शत्रुओं को बल से न मारा जा सकता हो, उन्हें छल से मारे।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, ३।२९)

वैरं विरोधिषु दृढं न पराजितेषु।

महान लोगों की पराजित शत्रुओं से दृढ़ या स्थायी शत्रुता नहीं होती।

—भट्टाचार्य (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १८२०)

आचरन् बहुभिर्वैरम् अल्पकैरपि नश्यति।

बहुतों से वैर का आचरण करने वाला क्षुद्र व्यक्तियों द्वारा भी नष्ट हो जाता है।

—अज्ञात

बलोपपन्नोऽपि हि बुद्धिमान् नरः
परं नयेन्न स्वमेव वैरिताम्।
भिषङ् ममास्तीति विचिन्त्य भक्षयेद-
कारणात् को हि विचक्षणो विषम्॥

स्वयं सामर्थ्यवान होकर भी बुद्धिमान मनुष्य दूसरे को अपना शत्रु न बना ले। मेरा चिकित्सक है ऐसा सोचकर भला कौन समझदार आदमी अकारण विष खाता है।

—अज्ञात

यत्थ वेरी निवसति न वसे तत्थ पंडितो।
एकरत्तिं दि रत्तं वा दुक्खं वसति वेरिसु॥

पंडित को चाहिए कि जहां वैरी रहता हो, वहाँ एक रात, दो रात भी वास न करे क्योंकि वैरी के साथ रहने से दुःख होता है।

—जातक (कपि जातक)

का रस में का रोस में, अरि सों जनि पतियाय।
जैसे सीतल तप्त जल, डारत आगि बुझाय॥

— वृन्द (वृन्द सतसई)

शत्रु की उचित प्रशंसा करना मनुष्य का धर्म है।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, तृतीय अंक)

जात[1] के दुश्मन जात काठ के दुश्मन काठ।

—हिंदी लोकोक्ति

अहिंसा अच्छी चीज है कोई शक नहीं, लेकिन शत्रुहीन होना और बड़ी बात है।

—विमलमित्र (साहब बीवी गुलाम, पृ० १७०)

यदि तुम्हारा शत्रु भूखा हो तो उसे खाने को रोटी दो, और यदि वह प्यासा हो तो उसे पानी पीने को दो।

—पूर्वविधान (लोकोक्तियां।२५।२१)

The only enemies we want to attack are poverty, disease, ignorance and fear.

हम जिन पर प्रहार करना चाहते है, वे शत्रु केवल ये हैं दरिद्रता, रोग, अज्ञान और भय।

—रिचर्ड निक्सन (सितम्बर १९५६ का एक वक्तव्य)

१. जाति।

शत्रु-मित्र

श्रेष्ठो हि पण्डितः शत्रुर्न च मित्रमपण्डितः।

विद्वान् शत्रु भी अच्छा होता है, किन्तु मूर्ख मित्र नहीं।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१३८।४६)

न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं
न कश्चित् कस्यचिद् रिपुः।
अर्थतस्तु निबद्ध्यन्ते
मित्राणि रिपवस्तथा॥

न कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का शत्रु। स्वार्थ से ही मित्र और शत्रु एक-दूसरे से बँधे हुए हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१३८।११०)

न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं
न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः।
कारणादेव जायन्ते
मित्राणि रिपवस्तथा॥

न कोई किसी का मित्र होता है और न कोई किसी का शत्रु होता है। कारणवश ही मित्र और शत्रु हो जाते हैं।

— गरुडपुराण (१।११४।१)

उपकर्त्रारिणा संधिर्न मित्रेणापकारिणा।
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः॥

उपकार करने वाले शत्रु से संधि करनी चाहिए किन्तु अपकार करने वाले मित्र से नहीं, क्योंकि इन दोनों के यही दो लक्षण जानने चाहिए—उपकार और अपकार।

— माघ (शिशुपालवध, २।३७)

उपकारफलं मित्रं अपकारोऽरिलक्षणम्।

उपकार मित्र होने का फल है तथा अपकार शत्रु होने का लक्षण है।

—अज्ञात

क्षणाद् वैमुख्यमायान्ति
सांमुख्यं यान्ति च क्षणात्।
न हेतु किंचिदीक्षन्ते
पशुप्रायाः पृथग्जनाः॥

पशुप्राय क्षुद्रजन क्षण-भर में विमुख और क्षण भर में अनुकूल हो जाते हैं, कोई विशेष हेतु नहीं देखते।

—अज्ञात

सेय्यो अमित्तो मतिया उपेतो
नत्वेव मित्तो मतिविप्पहीनो।

बुद्धिमान शत्रु भी अच्छा होता है। मूर्ख मित्र अच्छा नहीं होता।

[पालि] —जातक (मकस जातक)

प्राणी की देह अकेले जन्म लेती है और अकेले मर भी जाती है। जन्म और मृत्यु इस जीवन के दो छोर अकेले मिलते है। इन दोनों के बीच में शत्रु-मित्र का मेला है—जो न इस छोर को छू पाता है, न उस छोर को।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (धरती का हृदय, दूसरा अंक)

जोर अज़ हबीब खुशतर कज़ मुद्दई रियायत।

शत्रु की वृथा से मित्र का अत्याचार अधिक अच्छा होता है।

—हाफ़िज़ (दीवान)

He makes no friend who never made a foe.

जिसने कभी कोई शत्रु नहीं बनाया। उसका कोई मित्र भी नहीं बनता है।

—टेनिसन

शब्द

निमित्तं किंचिदाश्रित्य खलु शब्दः प्रवर्तते।
यतो वाचो निवर्तन्ते निमित्तानामभावतः॥
निर्विशेषे परानन्दे कथं शब्दः प्रवर्तते।

शब्द की प्रवृत्ति किसी निमित्त को लेकर होती है। परम तत्त्व में निमित्त का अभाव होने से वाणी वहाँ से लौट आती है। जो निर्विशेष, परम आनन्दरूप ब्रह्म है, वहाँ शब्द की प्रवृत्ति कैसे हो?

—कठरुद्रोपनिषद् (३१-३२)

एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति।

एक भी शब्द यदि सम्यक् रीति से ज्ञात हो तथा सुप्रयुक्त हो तो वह इस लोक में व स्वर्ग में कामधुक्[1] होता है।

—पतंजलि (पातंजल महाभाष्य, प्रथम आह्निक)

इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते॥

ये तीनों भुवन गाढ़ान्धकार से व्याप्त हो जाते, यदि 'शब्द' नामक ज्योति सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित नहीं करती।

—अज्ञात

सबदहिं ताला सबदहिं कूँची, सबदहिं सबद जगाया।
सबदहिं सबद सूँ परचा हूआ, सबदहिं सबद समाया॥

—गोरखनाथ (गोरखबानी, सबदी २१)

सबदहिं ताला सबदहिं कूँची,
सबदहिं सबद भया उजियाला।

—गोरखनाथ (गोरखबानी, ग्यानतिलकी)

सबदु बीचारि भउसागरु तरै।

शब्द को विचारने से भवसागर को पार किया जा सकता है।

—गुरु नानक

वेद सूँ बाणी कूप जल दुख सूँ प्रापति होइ।
सबद साखि सरवर सलिल सुख पीवै सब कोइ॥

—रज्जब

वचन अमोल पदारथ बरन न सकउं उरेखि[2]।
वचन ऐस विधना[3] कर[4] जाके रूप न रेख॥

—मंझन (मधुमालती, २६)

सब्दु सकल घट ऊचरे, धरनी बहुत प्रकार।
जो जाने निज सब्द को, तासु सब्द टकसार॥

—धरनीदास (धरनीदास की बानी, पृ० ४७)

शब्दों में चमत्कार भरा होता है। शब्द भावना को देह देता है और भावना शब्द के सहारे साकार बनती है।

—महात्मा गांधी (खादी, २०८)

---

१. मनोरथ पूर्ण करने वाला। २. रेखाओं द्वारा चित्रित। ३. विधाता। ४. का।

शब्द बड़ी साधना से उठ पाते हैं; उन्हें गिराने की चेष्टा नहीं होनी चाहिए।

—जैनेन्द्र (समय, समस्या और सिद्धान्त, पृ० १०२)

शब्दों का सामर्थ्य भी हो जाता है व्यर्थ,
आगे-पीछे कीजिये, बदल जाएगा अर्थ।

—काका हाथरसी ('शब्द-सामर्थ्य' कविता)

किसी शब्द का प्रयोग तब करो जब समझ लो कि दूसरा कोई शब्द इस पर विजय प्राप्त नहीं कर पावेगा।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६४५)

प्रिय शब्द स्वयं कहकर दूसरो के शब्दों के प्रयोजन को हृदयंगम करना निर्मल स्वभाव वाले महान व्यक्तियों का सिद्धांत है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६४६)

थोड़े से निर्दोष शब्दों में कहना जो नही जानते वे ही अनेक शब्दों को कहने के इच्छुक होंगे।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६४९)

दोस्त बडा प्यारा शब्द था, साथी बड़ा प्यारा शब्द था, कामरेड बड़ा प्यारा शब्द था, पर ये सब शब्द इन्सान के साथ कितनी दूर तक चल सके। इन्सान चलता रहा, ये सब शब्द थक गए।

—अमृता प्रीतम (जेबकतरे, पृ० १२१)

शब्द विचारों को बहुत साफ़ ढंग से व्यक्त करने में असमर्थ होते है। व्यक्त करने के शीघ्र बाद वे सदैव कुछ भिन्न हो जाते है, कुछ विकृत हो जाते हैं, कुछ मूर्खतापूर्ण लगते हैं।

—हरमन हेस (सिद्धार्थ, पृ० ११८)

एक शब्द 'यदि' की सहायता से तुम पेरिस नगर को बोतल में रख सकते हो।

—फ्रांसीसी लोकोक्ति

Words are but ghosts—unless they speak the heart.

शब्द तो प्रेत मात्र हैं, यदि वे हृदय की बात न कहें।

—अरविन्द (एरिक, १।४)

Words are dangerous things, the greatest danger being that they make us imagine that we understand things when we really do not understand them.

शब्द खतरनाक वस्तु हैं। सर्वाधिक खतरे की बात तो यह है कि वे हमसे यह कल्पना करा लेते हैं कि हम बातों को समझते हैं, जबकि वास्तव में हम नहीं समझते।

—चक्रवती राजगोपालाचार्य (राजाजीज स्पीचिज, भाग २, पृ० ३५)

Soft words are hard arguments.
कोमल शब्द कठोर तर्क होते हैं।

—टामस फ़ुलर (नोमोलोजिया)

Words are the only things that last for ever.

सब वस्तुओं में से केवल शब्द अमर होते है।

—हैज़लिट (वार्तालाप में)

शब्द और अर्थ

वक्ता श्रोता च वाक्य च यदा त्वविकलं नृप।
सममेति विवक्षायां तदा सोऽर्थः प्रकाशते॥

राजन! बोलने की इच्छा होने पर जब वक्ता, श्रोता और वाक्य तीनों अविकल भाव से सम स्थिति मे आ जाते है, तब वक्ता का कहा हुआ अर्थ प्रकाशित होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, ३२०।९१)

उपक्रमोपसंहारावभ्यासोऽपूर्वताफलम्।
अर्थवादोपपत्ती च लिंगं तात्पर्यनिर्णये॥

उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति—ये किसी ग्रन्थ के तात्पर्य-निर्णय के चिह्न हैं।

—अज्ञात

यत्परः शब्दः सः शब्दार्थः।

जिस तात्पर्य से शब्द का उच्चारण किया जाता है वही शब्दार्थ है।

—संस्कृत लोकोक्ति

सभी बातों का अर्थ मुख से नहीं कहना चाहिए। मुख की भाषा में इसका अर्थ विकृत हो जाता है।

—शरत्चन्द्र (शेष परिचय, पृ० १७३)

शब्दों का अर्थ हमेशा स्पष्ट होता है जब तक कि हम जानबूझ कर उनको झूठा अर्थ न प्रदान करें।

—तॉल्स्तॉय (ह्वाट शैल वी डू देन)

I am not yet so lost in lexicography, as to forget that words are the daughters of earth, and that things are the sons of heaven.

मैं अभी शब्दकोश-रचना में इतना अधिक खो नहीं गया हूं कि यह भूल जाऊँ कि शब्द पृथ्वी की पुत्रियां हैं और अर्थ (वस्तुएं) स्वर्ग के पुत्र हैं।

—जानसन (ए डिक्शनरी आफ़ दि इंग्लिश लैंग्वेज, भूमिका)

शब्दकोश

अभिधानकोशतः पदार्थनिश्चयः।

अभिधानकोश से पदों के ठीक अर्थ का निश्चय होता है।

—वामन (काव्यालंकारसूत्र, १।३।५)

Dictionaries are like watches; the worst is better than none, and the best can not be expected to go quite true.

शब्दकोश घड़ियों के समान होते हैं। सबसे खराब भी न होने से अच्छा ही है और सर्वोत्तम से भी यह आशा नहीं की जा सकती कि पूर्णतया सही हो।

—जानसन (हेस्टर लिंच पिओज़ी कृत एनिकडोट्स आफ़ जानसन में उद्धृत)

Lexicographer: a writer of dictionaries, a harmless drudge.

शब्दकोशकार—शब्दकोशों का निर्माता, एक अ-हानिकारक नौकर।

—जानसन (बासवेल कृत लाइफ़ आफ़ सैमुअल जानसन में उद्धृत)

Neither is a dictionary a bad book to read. There is no cant in it, no excess of explanation, and it is full of suggestion, the raw material of possible poems and histories.

शब्दकोश पढ़ने के लिए बुरी पुस्तक नहीं है। इसमें न तो शब्दाडम्बर है, न व्याख्या की अधिकता है, और यह सुझावों से परिपूर्ण भी होता है। संभव कविताओं और इतिहासों के लिए यह कच्चा माल होता है।

—एमर्सन (दि कंडक्ट आफ़ लाइफ़, इन प्रेज़ आफ़ बुक्स)

शरणागत

भक्तं च भजमानं च तवास्मीति च वादिनम्।
त्रीनेतांश्छरणं प्राप्तान् विषमे न संत्यजेत्॥

भक्त, सेवक तथा मैं आपका ही हूं, ऐसा कहने वाले इन तीन प्रकार के शरणागत मनुष्यों को संकट पड़ने पर भी नहीं छोड़ना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३३।६८)

क्षुद्रेऽपि नूनं शरणं प्रपन्ने
ममत्वमुच्चैः शिरसां सतीव।

बड़े लोगों को शरण में आए हुए नीच जनों के प्रति भी अवश्य ही ममता होती है।

—कालिदास (कुमारसंभव, १।१२)

शरणागतेन सार्द्धं विपदपि तेजस्विनां श्लाघ्या।

तेजस्वी व्यक्तियों पर शरणागत के साथ आने वाली विपत्ति भी प्रशंसनीय है।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, १।२२७)

सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पांवर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।४३)

शरद्ऋतु

क्षीरिण्यो द्विगुणं गावः प्रमत्ता द्विगुणं वृषाः।
वनानां द्विगुणा लक्ष्मीः सस्यैर्गुणवती मही॥
ज्योतींषि घनमुक्तानि पद्मवन्ति जलानि च।
मनांसि च मनुष्याणां प्रसादमुपयान्ति वै॥
असृजत् सविता व्योम्नि निर्मुक्तो जलदैर्भृशम्।
शरत्प्रज्वलितं तेजस्तीक्ष्णरश्मिर्विशोषयन्॥

शरद् ऋतु में गौएं पहले से दूना दूध देने लगी हैं। सांड दुगुने मतवाले हो उठे हैं। वनों की श्री दुगुनी हो गयी है और पृथ्वी शस्यों से गुणवती हो गयी है। ग्रह-नक्षत्र घनमुक्त हैं। जल कमल-मण्डित हैं तथा मनुष्यों के मन प्रसाद (स्वच्छता एवं प्रसन्नता) को प्राप्त हो रहे हैं। आकाश में मेघमुक्त हुआ सूर्य शरद् ऋतु के प्रभाव से अधिक प्रज्वलित तेज (धूप) की सृष्टि करता है तथा अपनी किरणों को और भी तीखी करके वसुधा के रस का शोपण कर रहा है।

—हरिवंशपुराण (विष्णु पर्व, १६।३२-३४)

काशांशुका विकचपद्‌ममनोज्ञवक्त्रा
सोन्मादहंसरवनूपुरनादरम्या।
आपक्वशालिरुचिरानतगात्रयष्टिः
प्राप्ता शरन्नवधूरिवरूपरम्या॥

फूले हुए कांस के वस्त्र धारण किए हुए, मतवाले हंसों की रम्य बोली के बिछुए पहने, पके हुए धान के मनोहर व नीचे झुके हुए शरीर धारण किए हुए तथा खिले हुए कमल रूपी सुन्दर मुख वाली, यह शरद् ऋतु नव-विवाहिता सुन्दरी वधू के समान आ गई है।

—कालिदास (ऋतुसंहार, ३।१)

विकचकमलवक्त्रा फुल्लनीलोत्पलाक्षी
विकसितनवकाशश्वेतकासो वसाना।
कुमुदरुचिरकान्तिः कामिनीवोन्मदेयं
प्रतिदिशतु शरद्वश्चेतसः प्रीतिमग्र्याम्॥

खिले कमल रूपी मुख वाली, प्रफुल्ल नील कमल रूपी नेत्रों वाली, विकसित नव कास रूपी साड़ी पहने हुई, सुन्दर कुमुद के समान सुन्दर रूप वाली, कामिनी स्त्री के समान मतवाली शरद् ऋतु आप सबके मन में नवप्रीति की उमंगें भरने वाली हो।

—कालिदास (ऋतुसंहार, ३।२८)

चन्द्रायते शुक्लरुचापि हंसो
हंसायते चारुगतेन कान्ता।
कान्तायते स्पर्शसुखेन वारि
वारीयते स्वच्छतया विहासः॥

इस समय हंस अपनी शुक्ल कान्ति से चन्द्रमा-सा लग रहा है। यह सुन्दरी अपनी सुन्दर गति से हंस-सी लग रही है। यह जल अपने आनन्ददायक स्पर्श से सुन्दरी-सा लग रहा है और यह आकाश अपनी निर्मलता से जल जैसा लग रहा है।

—अज्ञात (साहित्य दर्पण में १०।२५ कारिका के पश्चात् उद्धृत)

बरषा बिगत सरद रितु आई।
लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूलें कास सकल महि छाई।
जनु बरषां कृत प्रगट बुढ़ाई॥
उदित अगस्ति पंथ जल सोषा।
जिमि लोभहि सोसइ संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा।
संत हृदय जस गत मद मोहा॥
रस रस सूख सरित सर पानी।
ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद ऋतु खंजन आए।
पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥
पंक न रेनु सोह असि धरनी।
नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥
जल संकोच बिकल भइँ मीना।
अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा।
हरिजन इव परिहरि सब आसा॥

(श्री राम ने कहा—) हे लक्ष्मण! देखो वर्षा बीत गई और परम सुन्दर शरद् ऋतु आ गई। फूले हुए कास से सारी पृथ्वी छा गई, मानो वर्षा ऋतु ने अपनी वृद्धावस्था प्रकट की है। अगस्त्य के तारे ने उदित होकर मार्ग के जल को सोख लिया, जैसे संतोष लोभ को सोख लेता है। नदियों और तालाबों का निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा है जैसे मद और मोह से रहित संतों का हृदय। नदी व तालाबों का जल धीरे-धीरे सूख रहा है, जैसे ज्ञानी पुरुप ममता का त्याग कर देते हैं। शरद् ऋतु जानकर खंजन पक्षी आ गए, जैसे समय पाकर पुण्य प्रकट हो जाते हैं। न कीचड़ है न धूल, इससे धरती ऐसी शोभित हो रही है जैसे नीति निपुण राजा के कृत्य। जल कम हो जाने से मछलियां व्याकुल हो रही हैं, जैसे मूर्ख गृहस्थ धन के बिना व्याकुल होता है। मेघरहित निर्मल

आकाश ऐसा शोभित हो रहा है जैसे भगवान का भक्त सब आशाओं को छोड़कर सुशोभित होता है।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।१६।१-५)

भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सदगुर मिलें जाहि जिमि संसय भ्रम समुदाइ॥

वर्षा ऋतु के कारण पृथ्वी पर जो जीव (कीटाणु) भर गए थे, वे शरद ऋतु को पाकर वैसे ही नष्ट हो गए, जैसे सद्गुरु के मिल जाने पर सन्देह और भ्रम के समूह नष्ट हो जाते हैं।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।१७)

पावस निकास तातैं पायो अवकास भयौ
जोन्ह को प्रकास सोभा ससि रमनीय कौं।
बिमल अकास होत वारिज विकास, सेना-
पति फूले कास हित हंसन के हीय कौं।
छिति न गरद, मानौं रँगे है हरद सालि
सोहत जरद, कौं मिलावै हरि पीय कौं।
मत्त हैं दुरद, मिट्यौ खजन-दरद, रितु
आई है सरद सुखदाई सब जीय कौं॥

—सेनापति (कवित्त रत्नाकर, ऋतुवर्णन)

आमरा वेंधेछि काशेर गुच्छ
आमरा गेंथेछि शेफालि माला
नवीन धानेर मंजरि दिये साजिये एनेछि डाला
एसो गो शरद लक्ष्मी तोमार शुभ्र मेघेर रेखे
एसो निर्मल नीलपथे
एसो धौत श्यामल आलो झलमल वनगिरि पर्वते
एसो मुकल परिया श्वेत शतदल शीतल
शिशिर ढाला।

मैंने कांस के गुच्छे बांध लिए हैं। मैंने शेफाली की माला गूंथ ली है। नयी धान मंजरियों से मैंने डाली सजाली है। हे शरद् लक्ष्मी! तुम अपनी शुभ्र मेघ-रेखाओं में आना, निर्मल नीलपथ पर आना। वनगिरि-पर्वत में झिलमिलाती हुई, शुभ्र श्यामल प्रकाश में मुकुट पहने हुए, श्वेत कमलों पर शिशिर ढालती हुई आना।

[बांगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

शराव

दे० 'मद्य'।

शरीर

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः
तत्र जाग्रतोऽस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥

प्रत्येक शरीर में सात ऋषि[1] हैं। ये सातों प्रमाद-रहित होकर उसका रक्षण करते हैं। ये सात जलप्रवाह जब सोने वाले के स्थान को जाते हैं तब भी देव जागते रहते हैं और इस यज्ञ शाला (शरीर) का रक्षण करते हैं।

—यजुर्वेद (४।५५)

अश्मा भवतु नस्तनूः।

हमारे शरीर पत्थर के समान दृढ़ होवें।

—यजुर्वेद (२९।४९)

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्या हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥

आठ चक्र और नौ द्वारों वाला यह मानव शरीर देवों की अयोध्यापुरी है। इसमें स्वर्ण का दिव्य कोष है और प्रकाश से परिपूर्ण स्वर्ग है।

—अथर्ववेद (१०।२।३२)

मर्त्यं वा इदं शरीरमात्तं मृत्युना तदस्यामृतस्याशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न है व सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिय योरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः।

यह शरीर मरणशील ही है। यह इस अमृत और अशरीरी आत्मा का अधिष्ठान है। शरीरयुक्त आत्मा निश्चय ही प्रिय और अप्रिय से ग्रस्त है। शरीरयुक्त रहते हुए इसके प्रिय और अप्रिय का नाश नहीं हो सकता। और, शरीर-रहित होने पर इसे प्रिय और अप्रिय स्पर्श नहीं कर सकते।

—छान्दोग्योपनिषद् (८।१२।१)

१. दो नेत्र, दो कान, दो नासिका-रंध्र तथा एक मुख—ये सात ऋषि।

देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः।

शरीर को देवालय कहा गया है क्योंकि जीव केवल शिव है।

—स्कन्दोपनिषद् (१०)

देहस्य पंच दोषा भवन्ति कामक्रोधनिःश्वासभयनिद्राः।
तन्निरासस्तु निःसंकल्पक्षमालघ्वाहाराप्रमादतातत्त्वसेवनम्॥

काम, क्रोध, निःश्वास, भय और निद्रा—ये शरीर के पाँच दोष हैं। संकल्परहितता, क्षमा, अल्पाहार, अप्रमादता और तत्त्वचिन्तन—ये उपर्युक्त दोषों को दूर करने के क्रमशः उपाय हैं।

—मण्डलब्राह्मणोपनिषद्

तीर्थे दाने जपे यज्ञे काष्ठे पाषाणके सदा।
शिवं पश्यति मूढात्मा शिवे देहे प्रतिष्ठिते॥

शिवस्वरूप परमात्मा के इस शरीर में प्रतिष्ठित होने पर भी मूढ़ व्यक्ति तीर्थ, दान, जप, यज्ञ, लकड़ी और पत्थर में शिव को खोजा करता है।

—जाबालदर्शनोपनिषद् (४।५७)

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।

नाश रहित, अप्रमेय, नित्य स्वरूप जीवात्मा के ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व २६।१८
अथवा गीता, २।१८)

अमृतं चैव मृत्युश्च द्वयं देहे प्रतिष्ठितम्।
मृत्युमापद्यते मोहात् सत्येनापद्यतेऽमृतम्॥

अमृत और मृत्यु दोनों इस शरीर में ही स्थित हैं। मनुष्य मोह से मृत्यु को और सत्य से अमृत को प्राप्त होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१७५।३०)

बाल्यं वृद्धिश्छविर्मेधा
त्वग्दृष्टिः शुक्रविक्रमौ।
बुद्धिः कर्मेन्द्रियं चेतो
जीवितं दशतो ह्रसेत्॥

जन्म से क्रमशः दस-दस वर्षों के बाद इनका ह्रास होता है—

बाल्यावस्था, शरीर की वृद्धि, शरीर की छवि, मेधा, त्वचा, दृष्टि, वीर्य, बुद्धि, कर्मेन्द्रिय, स्मरणशक्ति और जीवन।

—शार्ङ्गधर संहिता (पूर्व खण्ड, ६।१९)

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।

निश्चय ही शरीर सर्वश्रेष्ठ धर्म-साधन है।

—कालिदास (कुमारसंभव, ५।३३)

जातस्य जन्तोः संसारे भंगुरः कायकंचुकः।
अहंताममताख्याभ्यां शंकुभ्यामेव बध्यते॥

संसार में उत्पन्न प्राणी का भंगुर कायकंचुक अहंता एवं ममता नामक दो शंकुओं द्वारा आबद्ध है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।६८)

अकार्याण्यपि पर्याप्य कृत्वाऽपि वृजिनार्जनम्।
विधीयते हितं यस्य स देहः कस्य सुस्थिरः॥

जिसके लिए अकरणीय भी करके प्रचुर पाप अर्जित किया जाता है, वह देह किसका स्थिर रहता है?

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।३८३)

सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः।
शरीरकस्यापि कृते मूढ़ाः पापानि कुर्वते।

सब अपवित्र वस्तुओं के घर, कृतघ्न और नश्वर इस तुच्छ शरीर के लिए भी मूर्ख लोग पाप किया करते हैं।

—हर्ष (नागानन्द, ४।७)

मेदोऽस्थि-मांस-मज्जा-सृक्-संघातेऽस्मिंस्त्वगावृते।
शरीरनाम्नि का शोभा सदा बीभत्सदर्शने॥

त्वचा से आवृत्त मेद, अस्थि, मांस, मज्जा और रक्त के समुदायरूप बीभत्स इस शरीर नामक वस्तु में शोभा ही क्या है?

—हर्ष (नागानन्द, ५।२४)

प्रतिक्षणमयं कायः क्षीयमाणो न लक्ष्यते।

प्रतिक्षण यह शरीर नष्ट होता रहता है किन्तु दीखता नहीं।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ४।६६)

क्वचित्काणो भवेत्साधुः खल्वाटो निर्धनः क्वचित् ।

कदाचित् ही कहीं काना व्यक्ति सज्जन हो और कदाचित ही कहीं गंजा व्यक्ति निर्धन हो ।

—अज्ञात

निर्गुणस्य शरीरस्य प्रतिक्षणविनाशिनः ।
गुणोऽस्ति सुमहानेकः परोपकरणाभिधः ॥

गुण-रहित शरीर प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है । इसका एक ही महान गुण है कि यह परोपकार का साधन है ।

—अज्ञात

अट्ठीनं नगरं कतं मंसलोहितलेपनं ।
यत्थ जरा च मच्चू च मानो मक्खो च ओहितो ॥

हड्डियों का एक नगर बनाया गया है, जो मांस और रक्त से लेपा गया है, जिसमें जरा, मृत्यु, अभिमान और डाह छिपे हुए हैं ।

[पालि] —धम्मपद (११।५)

धिरत्थु तं आतुरं पूतिकायं
जेगुच्छियं असुचिं व्याधिधम्मं,
यत्थप्पमत्ता अधिमुच्छिता पजा
हापेन्ति मग्गं सुगतुपपत्तिया ॥

इस नित्य रोगी, गन्दे, जुगुप्सित, अपवित्र तथा व्याधि-स्वभाव शरीर को धिक्कार है, जिसके प्रति आसक्त होकर बदहवास जन सुगति-प्राप्ति के मार्ग को छोड देते हैं ।

[पालि] —जातक (कायविच्छिन्द जातक)

अनंतादीनको कायो विसरुक्खसयूपमो
आवासो सब्बरोगानं पुंजो दुक्खसस् केवलो ॥
सचे इमसस् कायस्स अन्तो बाहिरतो सिया
दंडं नून गहेत्वान काके सोणे च वारये ॥
दुग्गन्धो असुची कायो कुणपो उक्करूपमो
निंदितो चक्खूभूतेहि कायो बालाभिनंदितो ॥

यह विषवृक्ष सदृश शरीर अनेक दोषों से युक्त है । सब रोगों का घर है । केवल दुःख का पुंज है । यदि इस शरीर के अन्दर का भाग बाहर आ जाए, तो निश्चय से डंडा लेकर कौओं और कुत्तों को हटाना पड़े । इसीलिए पंडितों ने इस दुर्गंधयुक्त, अशुचिपूर्ण कचरा सदृश गन्दे शरीर की निंदा की है । मूर्ख ही इस पर रीझते हैं ।

[पालि] —जातक (निग्रोध मृग जातक)

विनु जिय पिंड छार कर कूरा ।
छार मिलाव सोइ हितु पूरा ॥

—जायसी (पदमावत, ९६)

जब हुत जीव रतन सब कहा ।
जौं भा विन जिय कौड़ि न लहा ॥

—जायसी (पदमावत, ६४७)

जो तनु धरि हरिपद साधहिं जन,
सो बिनु काज गँवावौं ।

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, १४२)

लाभ कहा मानुष तनु पाये ।
काय-वचन-मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये ॥

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, २०१)

रैंन गँवाई सोइ करि, दिवस गँवायो खाइ ।
हीरा यह तन पाइ करि, कौड़ी बदले जाइ ॥

—रैदास (रैदास जी की बानी, पृ० ३४)

नानक जन कहत बात, बिनसि जैहे तेरो गात
छिनु छिनु करि गइओ कालु तैसे जात आज है ।

—गुरु तेगबहादुर (गुरु ग्रंथ साहब)

यह माटी का महल है छार मिलै छन माहिं ।
चार सकस[1] कांधे धरे मरघट कूं ले जाहिं ॥

—गरीबदास (गरीबदास जी की बानी, पृ० ४)

द्वै बिन एक न काम को, यह मन लेहु विचार ।
तन माटी बिन प्रान के, बिन तन प्रान बयार ॥

—नागरीदास

पाँच तत्त्व गुन तीनि लै, रच्यो सकल ब्रह्माण्ड,
पिंड माँह सो देखिये, भुवन सहित नवखंड ॥

—किनाराम अघोरी

सुन्दर देही देखि के, उपजत है अनुराग ।
मढ़ी न होती चाम की, जीवत खाते काग ॥

—मलूकदास (मलूकदास जी की बानी, पृ० ३५)

1. शख्स, मनुष्य ।

इक अंगुल परमान, रोग छानवें भर रहे।
कहा करै अभिमान, देख अवस्था नरक की ॥

—भैया भगवतीदास (ब्रह्म विलास, पंचेन्द्रिय संवाद)

हमारा शरीर महामन्दिर है। हम उसमें बाहर से कोई मैल न भरें। भीतर मन को कुविचारों से मलिन न करें। इस शुचिता को साधने वाला अपने हर एक काम में स्वच्छता प्रकट करेगा।

—महात्मा गांधी (भड़ौंच में भाषण, २० अक्तूबर १९१७)

मनुष्य देह का गौरव केवल ब्रह्म को प्रत्यक्ष जानने में नहीं है, केवल ब्रह्मानन्द का स्वयं भोग करने में नहीं है, बल्कि निर्विशेष रूप ब्रह्मानन्द को सबमें वितरण करने का अधिकार प्राप्त करने में है।

—गोपीनाथ कविराज

देह व्यक्ति की नहीं······
वह केवल सामाजिक-तन की लघु प्रतीक भर !
व्यक्ति देह नश्वर, पर मानव अविनश्वर है
निज समाज-तन में, शाश्वत निज विश्व देह में !

—सुमित्रानन्दन पंत (पतझर, पृ० २०५)

देह रक्षा योग्य है, निज इष्ट-साधन के लिए,
है असंभव कार्य सब तन की बिना रक्षा किये।

—मैथिलीशरण गुप्त (रंग में भंग, पद ९४)

तन की तनक सराय में, नेक न पावो चैन।
सांस नगाड़ा कूच का, बाजत है दिन रैन ॥

—अज्ञात

नक़्शे-फ़रियादी है किसकी शोख़ी-ए-तहरीर का
काग़ज़ी है पैरहन, हर पैकरे-तसवीर का।

सृष्टि के प्रत्येक मानव-चित्र में किसने अपनी अद्भुत लिखावट से वह वक्रता भर दी है जिससे हर चित्र काग़ज़ी वेष में प्रार्थी बना हुआ है ?[1]

—ग़ालिब (दीवान की प्रथम शेर)

दर से गज तन आलमे पिनहां शुदा।

तीन हाथ के शरीर में सम्पूर्ण संसार छिपा है।

[फ़ारसी] —मौलाना रूम

इहलोकी आम्हां वस्तीचें पेणें।

यह देह आत्मा-रूपी अतिथि का विश्रामालय है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, २४०८)

देह मृत्याचें भातुकें।

देह मृत्यु का कलेवा है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ३१७७)

देहम् निमित्तमहमवुद्धि कैक्कोंटु
माहम् फलन्नु जन्तुक्कल् निरुप्पिकुम्
ब्राह्मणोहम् नरेन्द्रोहमाढ्योहमेन्-
नम्रिडितम् फलन्नीटम् दशान्तरे
जन्तुक्कल भक्षिच्चु काष्ठिच्चु पोकिलाम्
वेन्तु वेण्णाराय् चमञ्ञपोयीडिलाम्
मण्णिन्नु कीषाय कृमिकलाय् पोकिलाम्
नन्नल्ल देहम् निमित्तम् महामोहम् ॥

देह के निमित्त अहंबुद्धि पाकर, मोह में पड़े जीव सोचा करते हैं कि मैं ब्राह्मण हूं, राजा हूं, धनी हूं—परन्तु क्या वे जानते है कि उनके इस प्रकार रत रहते ही कभी ऐसा हो जाता है कि वे दूसरे जीव का आहार बन जाते हैं और वे जीव उन्हें खाकर मल के रूप में विसर्जित करते हैं, या वे जलकर राख बन जाते हैं या मिट्टी के अन्दर गड़ जाते हैं और कांटे बन जाते हैं ? देह के निमित्त अधिक मोह कभी अच्छा नहीं होता।

[मलयालम] —एषत्तुछन

यदि यह शरीर परमार्थ में लगाया जाय, तब तो यह सार्थक होता है, और नहीं तो अनेक प्रकार के आघातों के कारण व्यर्थ ही मृत्यु-पथ में चला जाता है।

—समर्थ रामदास (दासबोध, पृ० १४)

सन्तों की संगति करके यह नर-देह सार्थक कर लेना चाहिए।

—समर्थ रामदास (दासबोध, पृ० ५७)

---

१. प्राचीन ईरान में सम्राट के सामने प्रार्थी काग़ज़ का वस्त्र पहन कर जाते थे, उस काग़ज़ पर प्रार्थना लिखी होती थी। सृष्टि में प्रत्येक मनुष्य का क्षणभंगुर शरीर भी काग़ज़ी वेष के तुल्य ही है मानो वह प्रार्थी होकर विश्व सम्राट की सभा में आया हो।

जीवात्मा की वासभूमि इस शरीर से ही कर्म की साधना होती है—जो इसे नरककुण्ड बना देते हैं, वे अपराधी हैं और जो इस शरीर की रक्षा में प्रयत्नशील नहीं होते, वे भी दोषी है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य खण्ड १, पृ० ३६६)

शरीर और मन साथ ही साथ उन्नत होने चाहिये।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ६, पृ० ११३)

तुम्हारा शरीर तुम्हारी आत्मा का सितार है। और यह तुम्हारे हाथ की बात है कि तुम उससे मधुर स्वर झंकृत करो या बेसुरी आवाजें निकालो।

—खलील जिब्रान (जीवन सन्देश, पृ० ८३)

He is a real cobbler who always thinks of his body.

जो सदैव अपने शरीर के विषय में सोचता है, वह वास्तविक चमार है।

—शिवानन्द

A healthy body is the guest chamber of the soul; a sick, its prison.

स्वस्थ शरीर आत्मा का अतिथि-भवन है और अस्वस्थ शरीर इसका कारागार।

—बेकन

शल्य

शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी
सरो विगतवारिजं मुखमनक्षरं स्वाकृतेः।
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो
नृपांगनगतः खलो मनसि सनसि सप्त शल्यानिमे।

मेरे मन में ये सात कांटे चुभे हुए हैं—दिन में शोभाहीन चन्द्रमा, नष्ट-यौवना कामिनी, कमलविहीन सरोवर, मूर्खता झलकाता मुख, धन-लोलुप राजा, दुर्गति-ग्रस्त सज्जन तथा राजदरबार में पहुंच वाला दुष्ट।

—अज्ञात

शहीद

शहीद की मृत्यु मरने के लिए हम सबको साहसी होना चाहिए; परंतु किसी को भी शहादत के लिए लालायित नहीं होना चाहिए।

—महात्मा गांधी (सिलेक्शंस फ़ाम गांधी, २४४)

'निष्ठा से शहीद बनते हैं' कहने की अपेक्षा 'शहीदों से निष्ठा बनती है' कहना अधिक सत्य है।

—माइग्वेल डि यूनामुनो ('ट्रैजिक सेन्स आफ़ लाइफ़' नाम से अंग्रेजी में अनूदित कृति)

The martyr cannot be dishonoured.

शहीद का अनादर नहीं किया जा सकता।

—एमर्सन (एसेज, कम्पेंसेशन)

शांत मनुष्य

अन्धवत् पश्य रूपाणि शब्दं बधिरवच्छृणु।
काष्ठवत् पश्य वै देहं प्रशान्तस्येति लक्षणम्॥

रूपों को अंधे के समान देखे। शब्द को बहरे के समान सुनो। शरीर को लकड़ी के समान देखे। यह प्रशान्त व्यक्ति का लक्षण है।

—अमृतनादोपनिषद् (१५)

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च भुक्त्वा च
दृष्ट्वा ज्ञात्वा शुभाशुभम्।
न हृष्यति ग्लायति यः
स शान्त इति कथ्यते॥

शुभ-अशुभ को सुनकर, स्पर्श कर, खाकर, देखकर तथा जानकर जो व्यक्ति न हर्षित होता है, न ग्लानि करता है, उसे 'शान्त' कहा जाता है।

—महोपनिषद (४।३२)

पूर्वे वयसि यः शान्तः स शान्त इति मे मतिः।
धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते॥

जो व्यक्ति युवावस्था में शान्त है, वही वास्तव में शांत है। धातुओं के क्षीण हो जाने पर कौन शान्त नहीं हो जाता ?

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, १।१७६)

शांत रस

सबते हो उदास मन बसै एक ही ठौर।
ताही सो समरस कहत केशव कवि सिरमौर ।।

—केशवदास (रसिकप्रिया, १४।३७)

अभ्यपरिपाटिकामधिकरोति शृंगारिता
परस्परं तिरस्कृति परिचिनोति वीरायितम्।
विरुद्धगतिरद्भुतस्तदलमल्पसारैः परैः
शमस्तु परिशिष्यते शमितचित्तखेदो रसः ।।

शृंगार रस असभ्यों के व्यवहार का प्रतीक है। वीररस परस्पर तिरस्कार का परिचायक है। अद्भुत रस विरोधी बातों का आश्रय लेता है। अन्य रस वाले को अन्य रसों से क्या लाभ हो सकता है। चित्त के खेद को शांत करने में केवल शांत रस शेष रह जाता है।

—वेंकटनाथ वेदान्तदेशिक (संकल्पसूर्योदय नाटक, १।१६)

क्षणभंगिनि जन्तूनां स्फुरिते परिचिन्तिते।
मूर्धाभिषेकः शान्तस्य...... ।।

क्षणभंगुर प्राणियों के स्फुरण के विषय में जब परिचिंता करता हूं, तब यही परिणाम निकलता है कि रसों मे शांत रस श्रेष्ठ है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, १।२३)

शांति

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शांतिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथिवी शान्तिरूप हो। जल, ओषधि, वनस्पति, विश्वेदेव, परब्रह्म और सब संसार शान्ति रूप हो। जो स्वयं साक्षात् स्वरूपतः शांति है, वह भी मेरे लिए शान्ति करने वाली हो।

—यजुर्वेद (३६।१७)

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्
तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ।।

जो नित्यों का भी नित्य है, चेतनों का भी चेतन है, अकेला ही इन अनेक के कर्णफल भोगों का विधान करता है, उस अपने अन्दर रहने वाले (परमात्मा) को जो ज्ञानी निरन्तर देखते रहते हैं, उन्हीं को शांति प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं।

—कठोपनिषद् (२।२।१३)

चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम्।
प्रसन्नात्मनि स्थित्वा सुखमक्षयमश्नुते ।।

चित्त के प्रशान्त हो जाने पर शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं। प्रशान्त मन वाला पुरुष आत्मा में स्थित होकर अक्षय आनन्द की प्राप्ति करता है।

—मैत्रेयी उपनिषद् (१।६)

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।

जैसे सब ओर से परिपूर्ण और अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में नदियों के जल उसको चलायमान न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही जिस मनुष्य में संपूर्ण भोग किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वह पुरुष परम शान्ति को प्राप्त होता है, न कि भोगों को चाहने वाला।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व २६।७०
अथवा गीता २।७०)

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छतिः ।।

जो मनुष्य संपूर्ण कामनाओं को त्याग कर ममता-रहित, अहंकार-रहित और स्पृहारहित हुआ वर्तता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व,
२६।७१ अथवा गीता, २।७१)

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥

अभ्यासयोग से ज्ञानयोग अधिक श्रेयस्कर है। ज्ञान योग से ध्यानयोग अधिक श्रेयस्कर है, ध्यानयोग से कर्मफल-त्याग की विशेषता अधिक है। कर्मफल-त्याग से शीघ्र ही शान्ति प्राप्त हो जाती है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व ।३६।१२ अथवा गीता १२।१२)

न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वेऽर्थाः सान्त्वया यथा ।

क्रोध से सब काम वैसे नहीं बनते, जैसे शान्ति से।

—भागवत (८।६।२४)

अन्तःशीतलतायां तु लब्धायां शीतलं जगत् ।

अपने भीतर शांति प्राप्त हो जाने पर सारा संसार भी शांत दिखाई देने लगता है।

—योगवासिष्ठ (५।५६।३३)

व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः ।
शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः ॥

निःस्पृह मुनि शत्रुओं की उपेक्षा करके शान्ति से सफलता प्राप्त करते है, किन्तु राजा नहीं।

—भारवि (किरातार्जुनीय, १।४२)

अहः समुत्तीर्य निशा प्रतीक्ष्यते
शुभे प्रभाते दिवसोऽनुचिन्त्यते ।
अनागतार्थान्यशुभानि पश्यतां
गतं गतं कालमवेक्ष्य निर्वृत्तिः ॥

दिन बीत जाने पर रात्रि की प्रतीक्षा की जाती है। कुशलपूर्वक प्रभात होने पर फिर दिन की चिन्ता होती है। भविष्य के अनिष्टों की चिन्ता करने वालों को शान्ति तो बीते समय का स्मरण करके ही मिलती है।

—भास (प्रतिज्ञायौगन्धरायण, ३।२)

नहि स्वयमुत्तप्ताः परं शीतलयितुमर्हन्ति ।

जो स्वयं सन्तप्त हैं, वे दूसरों को शीतल नहीं भी कर सकते।

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावनचम्पू, १८।२१)

ईश्वरानुगृहीतो हि कश्चित् बालोऽपि शाम्यति।
वृद्धोऽपि न शमं याति कश्चित् कापुरुषः पुनः॥

ईश्वर-कृपा से कोई बालक भी शान्ति प्राप्त कर लेता है जबकि कोई कुपुरुष बूढ़ा होकर भी शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ६।५१। ३४)

आ कल्याद् आ निशीथाच्च कुक्ष्यर्थं व्याप्रियामहे।
न च निर्वृणुमो जातु शान्तास्तु सुखमासते॥

हम प्रातः से निशा पर्यन्त क्षुधा-शान्ति हेतु प्रयास करते हैं, किन्तु कभी भी तृप्त नहीं होते, जबकि शान्त व्यक्ति सदा सुखी रहते हैं।

—अज्ञात

सातदीप नवखंड लौं, तीनि लोक जगमाहिं।
तुलसी सांति समान सुख, अपर दूसरो नाहिं॥

—तुलसीदास (वैराग्यसंदीपनी, ५०)

शांतितुल्यं तपो नास्ति, न संतोषात् परं सुखम्।
न तृष्णायाः परो व्याधिर्न च धर्मो दयापरः॥

शांति जैसा तप नहीं है। संतोष से बढ़कर सुख नहीं है। तृष्णा से बढ़कर रोग नहीं है और दया से बढ़कर धर्म नहीं है।

— चाणक्यनीति

संसार-ताप-दग्धानां, त्रयो विश्रान्तिहेतवः।
अपत्यं च कलत्रं च, सतां संगतिरेव च॥

संसार के संतापों से संतप्त मनुष्यों के लिए तीन ही शांति के कारण हैं—संतान, माया और सज्जनों की संगति।

—अज्ञात

मैं उस तरह की शान्ति नहीं चाहता जो हमें क़ब्रों में मिलती है। मैं तो उस तरह की शान्ति चाहता हूं जिसका निवास मनुष्य के हृदय में है।

—महात्मागांधी (भाषण, अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन, २८-१२-१९२१)

त्याग और उद्यमविहीन शान्ति तो मृत्यु है। शव जैसी शान्ति से क्या लाभ है? ऐसी शान्ति का क्या उपयोग हो सकता है।

—महात्मा गांधी (पूजा का अधिकार, नवजीवन, १-८-१९२१)

शांति को मैंने देखा है, कितने शवों में वह दिखाई पड़ी! शांति को मैंने देखा है, दरिद्रों के भीख मांगने में। मैं उस शांति को धिक्कारता हूं। धर्म को मैंने खोजा—जीर्ण पत्रों में, पंडितों के कूट तर्क में उसे विलखते पाया, मुझे उसकी आवश्यकता नहीं।

—जयशंकर प्रसाद (राज्यश्री, तृतीय अंक)

श्रेय होगा सुष्ठु-विकसित मनुज का वह काल,
जब नहीं होगी धरा नर के रुधिर से लाल।

—रामधारीसिंह दिनकर (कुरुक्षेत्र, षष्ठ सर्ग)

मनुष्य का हृदय बड़ा शांतिप्रिय है। वह प्रत्येक अवस्था में शांति चाहता है। बड़े से बड़ा दुखी मनुष्य घोर दुःख में भी कोई ऐसी बात ढूंढ लेता है कि उससे उसे कुछ न कुछ शांति मिलती है।

—विशम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक'('मां' कहानी)

मानव को अशांति उत्पन्न करने के लिए सक्रिय होना पड़ता है, शान्ति के लिए तो शान्त रहना—निष्क्रिय होना भर—पर्याप्त है।

—भोलानाथ शर्मा('मुरलिका' पत्रिका में, शांति के सम्बन्ध में कुछ विचार')

दो मुरादें[1] जो मिलीं चार तमन्नायें[2] की
हमने खुद क़ल्ब[3] में आराम को रहने न दिया।

—अकबर इलाहाबादी

वायु का जो नित्य प्रवाह है उसमें शांति है और इसीलिए उसमें आंधी से अधिक शक्ति है। आंधी बहुत समय तक नहीं टिकती, एक संकीर्ण स्थान को कुछ देर तक के लिए क्षुब्ध अवश्य कर सकती है। लेकिन शांत वायु-प्रवाह समस्त पृथ्वी में सदा के लिए व्याप्त है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (रवीन्द्रनाथ के निबन्ध, पृ० १०३)

१. मनौतियां। २. इच्छाएं। ३. हृदय।

अपने में ही चेतना को केन्द्रित रखने और आत्मविश्वास के स्रोत में जीवन-नैया को बहाने में परम शान्ति है।

—सुभाषचन्द्र वसु (इनसीन जेल से श्री गोपाल लाल सान्याल को पत्र, ५।४।२७)

शांति का सीधा सम्बंध हमारे हृदय से है। सहृदय होकर शांति की खोज कीजिए।

—चिदानन्द

जब विचार चंचल होता है, तब वह अस्तव्यस्त और शक्तिहीन हो जाता है, सजग शांति के अंदर ही ज्योति प्रकट हो सकती है और मनुष्य की क्षमताओं के नवीन क्षेत्रों को उन्मुक्त कर सकती है।

—श्रीमां (शिक्षा, पृ० ४९)

Peace at any price is not always good. Life is the real thing, not peace and quiet.

किसी भी मूल्य पर शांति सदा अच्छी नहीं होती। वास्तविक वस्तु जीवन है न कि शांति और नीरवता।

—लाला लाजपतराय

There is only one chaos in the world, the chaos of conflicting interests among those who serve their egos. There is only one peace—the peace of those who serve Srikrishna who dwells in all men.

संसार में एक ही अव्यवस्था है—अपने अहं की पूर्ति करने वालों के टकराते स्वार्थों की अव्यवस्था। एक ही शान्ति है—उनकी शांति जो श्रीकृष्ण की सेवा करते हैं जो सब मनुष्यों में निवास करते है।

—श्रीकृष्णप्रेम (एक पत्र, १४ मई १९४६)

Peace hath her victories.
No less renowned than war.

शांति की अपनी विजयें होती हैं जो युद्ध की अपेक्षा कम कीर्तिमयी नहीं होतीं।

—मिल्टन (सॉनेट्स, १६)

There is no joy but calm.

शान्ति के अतिरिक्त दूसरा कोई आनन्द नही है।

—टेनिसन (दि लोटस ईटर्स)

The noblest answer unto such
Is perfect silence when they brawl.

ऐसे लोगों के लिए जबकि वे झगड़ रहे हों, पूर्ण मौन ही सर्वोत्तम उत्तर है।

—टेनिसन (लिटरेरी एक्वेविलस)

Mark where his carnage
and his conquests cease !
He makes a solitude
and calls it—peace.

देखो ! जहां उसके हत्याकांडों और विजयों की समाप्ति हो जाती है, और वह एकाकी हो जाता है तो वह उसे 'शांति' कहता है।

—बायरन (दि ब्राइड आफ़ एबिडोस, २।२०)

I like the silent church before the service begins, better than any preaching.

मैं किसी भी धर्मोपदेश की अपेक्षा धर्मानुष्ठान प्रारम्भ होने से पहले के शांत गिरजाघर को अधिक पसन्द करता हूं।

—एमर्सन (एसेज, सेल्फ़ रिलाएंस)

Peace with honour.

शांति परन्तु सम्मान सहित।

—डिज़रायली (डोवर में भाषण, १६ जुलाई १८७८)

In moderating, not in satisfying desires lies peace.

इच्छापूर्ति में नहीं अपितु संयम में शांति मिलती है।

—रेजिनाल्ड हेवर

Right is more precious than peace.

अधिकार शांति से अधिक मूल्यवान है।

—विल्सन

If Peace cannot be maintained with honour, it is no longer Peace.

यदि शान्ति सम्मानपूर्वक नहीं रखी जा सकती, तो वह शांति ही नहीं है।

—जान रसेल

When peace has been broken anywhere, the peace of all countries everywhere is in danger.

जब शांति कहीं भी भंग हुई है, तो सर्वत्र सब देशों की शांति संकट में है।

—रूज़वेल्ट

शाखा

रूखी री यह डाल, वसन वासन्ती लेगी।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (गीतिका, कविता १४)

शादी

दे० 'विवाह'।

शाप

त्राणाभावे हि शापास्त्राः
कुर्वन्ति तपसो व्ययम्

तपस्वी लोग किसी रक्षक के न होने पर ही शाप देने में अपनी तप की शक्ति व्यय करते हैं।

—कालिदास (रघुवंश, १५।३)

जइसन दाह ओइं मोहि दीन्हां, तइसन दाह
ओहि होइ।

जैसा दाह उसने मुझे दिया है, वैसा ही दाह उसे भी हो।

—दाऊद (चांदायन, पद्य ३९१)

शासक

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम्।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः॥

आत्मवानों का शासक गुरु होता है। पापियो का शासक राजा होता है। और, गुप्त पापियों का शासक यमराज होता है।

—अज्ञात

नया शासक आने पर ही पुराने शासक का मूल्य पता चलता है।

—बर्मी लोकोक्ति

शासक को सुनते हुए भी बहरा होना चाहिए और देखते हुए भी अंधा होना चाहिए।

—जर्मन लोकोक्ति

The subject's love is the king's best guard.

प्रजा का प्रेम राजा का सर्वोत्तम रक्षक है।

—टामस फ़ुलर (नोमोलोजिया)

शासन

महलों में रहने वाला आदमी राज्य नही चला सकता।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन, भाग १, पृ० ११६)

जो हुकूमत अपना गान करती है, वह चल नहीं सकती।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन, भाग २, पृ० १२३)

हुकूमत तो हम हैं।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन, भाग २, पृ० ३०३)

हम प्रजातांत्रिक प्रणालियों को अपनाकर स्वतन्त्र भारत की समस्याओं को नहीं सुलझा सकते।

—सुभाषचन्द्र बसु (टोकियो विश्वविद्यालय के छात्रों में भाषण, नवम्बर १९४४)

जो बुद्धिमान शासन में भाग लेना अस्वीकृत करते हैं, इस दण्ड के भागी होते हैं कि बुरे व्यक्तियों के शासन में रहें।

—प्लेटो

सभी राज्यों का मूलभूत अधिष्ठान अच्छे क़ानून और अच्छे शस्त्रास्त्र हैं।

—मैकियावेली (राजा)

वही पूर्णतम शासन है जिसमें क्षुद्रतम व्यक्ति के प्रति किया गया अनुचित कार्य सबका अपमान माना जाता है।

—सोलोन

हर शासन का अपकर्ष सदैव ही उन सिद्धान्तों के पतन से प्रारम्भ होता है जिन पर यह अधिष्ठित किया गया था।

—चार्ल्स दि सेकंदेत

For forms of government let fools contest.
That which in best administered is best.

शासन-प्रणालियों के विषय में मूर्खों को विवाद करने दो। सर्वोत्तम शासन तो वही है जो सर्वोत्तम रीति से संचालित हो।

—अलेक्जेंडर पोप

The less government we have the letter—the fewer laws and the less confided power. The antidote to this abuse of formal government is the influence of private character, the growth of the individual.

हम पर जितना कम शासन हो, उतना अच्छा—कम क़ानून और कम सौंपी गई शक्ति। विधिवत् सरकार के इस दुरुपयोग का प्रतिकारक है व्यक्तिगत चरित्र का प्रभाव, व्यक्ति का विकास।

—एमर्सन

Few consider how much we are indebted to government, because few can represent how wretched mankind would be without it.

लोग प्राय: यह नही समझते हैं कि हम शासन के प्रति कितने ऋणी हैं क्योंकि लोग यह नहीं दिखा सकते कि मानव जाति शासन के बिना कितनी अधम होगी।

—एडीसन

Government is a contrivance of human wisdom to provide for human wants. Men have a right that these wants should be provided for by this wisdom.

शासन तो मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव की बुद्धिमत्ता का एक आविष्कार है। मनुष्यों का अधिकार है कि इस बुद्धिमत्ता से इन आवश्यकताओं की पूर्ति की जाए।

—एडमंड बर्क

No government ought to exist for the purpose of checking the prosperity of its people or to allow such a principle in its policy.

अपने लोगों की समृद्धि के नियन्त्रण के लिए या ऐसे सिद्धान्त को अपनी नीति में स्वीकार करने के लिए किसी भी शासन को अस्तित्त्वयुक्त नहीं होना चाहिए।

—एडमंड वर्क

The guilt of a government is the crime of a whole country.

शासन को दोष समस्त देश का अपराध है।

—टामस पेन (दि अमेरिकन क्राइसिस)

Governments arise either out of the people or over the people.

शासनों का उदय या तो लोगों के बीच से होता है या उनके ऊपर होता है।

—टामस पेन (दि राइट्स आफ़ मैन)

Nothing is as dangerous for the state as those who would govern kingdoms with maxims found in books.

राज्य के लिए सबसे अधिक खतरनाक वस्तु वे लोग हैं जो पुस्तकों में प्राप्त नियमों से ही राज्य संचालन करते है।

—कार्डिनल रिशेल्यू (पोलिटिकल टेस्टामेंट)

Society is produced by our wants and government by our wickedness.

समाज हमारी आवश्यकताओं की देन है और शासन हमारी दुष्टता की।

—टामस पेन (कामन सेंस, आन दि ओरिजिन ऐंड डिजाइन आफ़ गवर्नमेंट)

Society in every state is a blessing, but government, even in its best state, is but a necessary evil, in its worst of state an intolerable one.

हर अवस्था में समाज एक वरदान है, परन्तु शासन अपनी सर्वोत्तम स्थिति में भी एक आवश्यक बुराई है और अपनी सबसे अधम स्थिति में असह्य बुराई है।

—टामस पेन (कामन सेंस, आन दि ओरिजिन ऐंड डिजाइन आफ़ गवर्नमेंट)

The worst thing in this world, next to anarchy, is government.

विश्व में अराजकता के पश्चात सबसे खराब चीज शासन है।

—हेनरी वार्ड बीचर (प्रावर्ब्स फ्राम प्लाइमाउथ पल्पिट)

The firm basis of government is justice, not pity.

शासन का सुदृढ़ आधार न्याय है, करुणा नहीं।

—विल्सन (उद्‌घाटन भाषण, ४ मार्च, १९१२)

No responsiblity of government is more fundamental than the responsiblity of maintaining the higher standards of ethical behaviour by those who conduct the public business.

लोक-कार्य को चलाने वाले लोगों के द्वारा नैतिक व्यवहार के उच्चतम स्तरों के बनाए रखने के उत्तरदायित्व से अधिक आधारभूत शासन का कोई दायित्व नहीं है।

—कैनेडी

शास्त्र

दे० 'शास्त्र और आचार्य', 'शास्त्रभेद' भी।

अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम्।

जो अध्येता पुष्प एवं फल से हीन शास्त्र-वाणी[1] सुनते हैं, वे वंध्या गाय के समान आचरण करते हैं।

—ऋग्वेद (१०।७१।५)

यावन्न लभ्यते शास्त्रं तावद् गां पर्यटेद् यतिः।
यदा संलभ्यते शास्त्रं तदा सिद्धिः करे स्थितः॥

जब तक शास्त्र की प्राप्ति न हो, तब तक पर्यटन करते हुए प्रयत्नशील रहे। जब शास्त्र मिल जाएगा, तब सिद्धि हाथ में ही है।

—योगकुण्डल्युपनिषद् (२।११)

न शास्त्रेण विना सिद्धिर्दृष्टा चैव जगत्त्रये।

त्रिलोक में कहीं भी शास्त्र के बिना सिद्धि दिखाई नहीं देती।

—योगकुण्डल्युपनिषद् (२।१२)

१. अर्थबोध किए बिना।

ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी ज्ञानविज्ञानतत्त्वतः।
पलालमिव धान्यार्थी त्यजेद् ग्रंथमशेषतः॥

विद्वान व्यक्ति ग्रन्थ का अभ्यास करके उससे ज्ञान-विज्ञान के तत्त्व को ग्रहण कर ले, फिर समस्त ग्रन्थ को वैसे ही त्याग दे जैसे अन्न चाहने वाला मनुष्य पुआल को छोड़ देता है।

—**अमृतबिंदु उपनिषद् (श्लोक १८)**

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।

शब्दब्रह्म में पारंगत व्यक्ति परम ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

—**ब्रह्मविन्दु उपनिषद् (१७)**

शास्त्राण्यधीत्य मेधावी अभ्यस्य च पुनः पुनः।
परमं ब्रह्म विज्ञाय उल्कावत्तान्यथोत्सृजेत्॥

बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि शास्त्रों का अध्ययन करके और बार-बार उनका अभ्यास करके परम ब्रह्म को जानकर उल्का के समान उनको त्याग दे।

—**अमृतनादोपनिषद् (१)**

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

जो मनुष्य शास्त्र की विधि को त्याग कर मनमाना आचरण करता है, उसे न तो सिद्धि ही मिलती है, न सुख मिलता है और न परम श्रेष्ठ गति ही प्राप्त होती है।

—**वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व।४०।२३ अथवा गीता, १६।२३)**

अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं चेद्युक्तिबोधकम्।
अन्यत्वार्षमपि त्याज्यं भाव्यं न्याय्यैकसेविना॥

यदि युक्ति व ज्ञान से पूर्ण शास्त्र मनुष्यकृत भी हो तो वह ग्रहण करने योग्य है, परन्तु ऋषिकृत शास्त्र भी युक्ति-विरुद्ध होने से न्याय-सेवी व्यक्ति द्वारा त्याज्य है।

—**योगवासिष्ठ (२।१८।२)**

गुणदोषानशास्त्रज्ञः कथं विभजते जनः।
किमन्धस्याधिकारोऽस्ति रूपभेदोपलब्धिषु।

शास्त्र को न जानने वाला मनुष्य काव्य के गुणों तथा दोषों को किस प्रकार जान सकता है? सुन्दर और असुन्दर का रूपभेद विचार करने का अंधे मनुष्य को क्या अधिकार है?

—**दण्डी (काव्यादर्श, १।८)**

आगमीदीपदृष्टेन खल्वध्वना सुखेन वर्तते लोकयात्रा। दिव्यं हि चक्षुर्भूतभवद्भविष्यत्सु व्यवहितविप्रकृष्टादिषु च विषयेषु शास्त्रं नामाप्रतिहतवृत्ति। तेन हीनः सतोरप्यायतविशालयोर्लोचनयोरन्ध एव जंतुरर्थदर्शनेष्वसामर्थ्यात्।

शास्त्र रूपी दीपक से देखे गए रास्ते से चलकर ही लोक-स्थिति सुखपूर्वक रह पाती है। शास्त्र-निश्चय ही ऐसी अलौकिक दृष्टि है, जिसकी पहुँच भूत, वर्तमान और भविष्य में ओट में पड़े हुए, अनुपस्थित आदि विषयों तक अप्रतिहत होती है। उससे रहित पुरुष फैली हुई तथा बड़ी आँखों के होने पर भी अंधा ही है। विषयों और विचार में असमर्थ होकर पुरुष साधारण प्राणी मात्र रह जाता है।

—**दण्डी (दशकुमारचरित, अष्टमोच्छ्वास)**

न शास्त्रयद्रव्येष्वर्थवत्।

अविवेकी मनुष्यों में शास्त्र सफल नहीं हो सकता है।

—**वामन (काव्यालंकार सूत्र, १।२।४)**

दुर्गृहीतं क्षिणोत्येव शास्त्रं शस्त्रमिव बुधम्।
सुगृहीतं तदेव ज्ञं शास्त्रं शस्त्रं च रक्षति॥

असम्यक् रीति से पढ़ा हुआ शास्त्र अज्ञानी को ऐसे नष्ट कर देता है जैसे बुरी तरह से पकड़ा हुआ शस्त्र अज्ञान आदमी को नष्ट कर देता है। परन्तु सुगृहीत शास्त्र और शस्त्र ज्ञानवान मनुष्य की रक्षा करते है।

—**चरक संहिता (सिद्धि स्थान, द्वादश अध्याय)**

यथा खरश्चन्दनभारवाही
भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य।
एवं हि शास्त्राणि बहून्यधीत्य
चार्थेषु मूढाः खरवद् वहन्ति।

जैसे चन्दन को ढोने वाला गधा बोझे को जानता है पर चन्दन को नहीं, उसी प्रकार अनेक शास्त्रों को पढ़कर भी उनके व्यावहारिक अर्थ के विषय में मूर्ख लोग बोझे के समान ही शास्त्रों को ढोते रहते हैं।

—**सुश्रुत संहिता (सूत्र स्थान, चतुर्थ अध्याय।४)**

सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः।

सबका नेत्र स्वरूप शास्त्र जिसके पास नहीं है, वह अंधा ही है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, प्रस्ताविका, १०)

शास्त्रात् रूढिर्बलीयसी।

शास्त्र से रूढ़ि[1] बलवती होती है।

—अज्ञात

सरितामिव प्रवाहास्तुच्छाः प्रथमं यथोत्तरं विपुलाः।
ये शास्त्रसमारम्भा भवन्ति लोकस्य ते वन्द्याः॥

जैसे नदियों के प्रवाह प्रारम्भ में अत्यल्प होते हैं और आगे बढ़ने पर क्रमशः उत्तरोत्तर विस्तृत होते हैं, उसी प्रकार शास्त्रों के प्रारम्भ भी पहले अल्प और फिर उत्तरोत्तर विस्तृत हो जाते हैं। ऐसे शास्त्र सभी के लिए समादरणीय हैं।

—अज्ञात

सुबहुंपि सुय महीयं, किं काही चरणविप्पहीणस्स ?
अंधस्स जह पलित्ता दीव सयसहस्स कोडीणि।

शास्त्रों का बहुत सा अध्ययन भी चरित्र हीन के लिए किस काम का ? क्या करोड़ों दीपक जला देने पर भी अंधे को कोई प्रकाश मिल सकता है।

[प्राकृत] —भद्रबाहु आचार्य (आवश्यक निर्युक्ति, ९८)

अप्पं पि सुयमहीयं, पयासयं होइ चरणजुत्तस्स।
इक्को वि जह पईवो, सचक्खुअस्सा पयासेइ।

शास्त्र का थोड़ा सा अध्ययन भी सच्चरित्र साधक के लिए प्रकाश देने वाला होता है। जिसकी आँखें खुली है उसको एक दीपक भी काफ़ी प्रकाश दे देता है।

[प्राकृत] —भद्रबाहु आचार्य (आवश्यक निर्युक्ति, ९९)

नैतिकता के विश्वमान्य मूल सिद्धान्तों से जिसकी संगति नहीं बैठती, वह शास्त्र मेरे लिए प्रमाण नहीं हैं। शास्त्र उन मूल सिद्धान्तों के उल्लंघन के लिए नहीं, वल्कि उनकी पुष्टि के लिए बने हैं।

—महात्मा गांधी (अस्पृश्यता पर वक्तव्य, १७-११-१९३२)

सारे शास्त्रों का सभी जगह आदर हो यह कोई ज़रूरी बात नहीं है।

—महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४०, पृ० २९२)

मैंने शास्त्र शब्द का अर्थ भगवद्गीता में, जहां केवल एक ही सन्दर्भ में आता है, कोई ग्रन्थ या गीता से वाहर की कोई आचार संहिता नही किया है, वल्कि उसका अर्थ है—एक सजीव अधिकारी में मूर्त हुआ सदाचार।

—महात्मा गांधी (अस्पृश्यता पर वक्तव्य, १७-११-१९३२)

हम शास्त्र का अर्थ करने की झंझट में इतना ज्यादा फँस गये हैं कि हमने धूल का धान करने के बजाय धान की धूल कर दी है।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, २१-८-१९२१)

विधीनें सेवन। विषयत्यागातें समान।

शास्त्रानुमोदित कर्म विषय-त्याग के सदृश हैं।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंगगाथा, ३१६)

यदि शास्त्र सव व्यक्तियों को, सव परिस्थितियों में, सव समय उपयोगी न हों, तो वे किस काम के हैं।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० २२६)

वास्तव में यदि कोई शास्त्र पुरुषों के आन्तरिक अभिप्रायों के साथ मेल न खाता हो, तो फिर पुरुष उसे अधिक दिनों तक नहीं मानते। जो शास्त्र उनके अभिप्रायों से मेल खा जाता है वह तो तुरन्त ही टकसाली हो जाता है।

—शरत्चन्द्र (नारी का मूल्य, पृ० २७)

ये ब्राह्मण पंडित किस प्रकार जान सकेंगे कि शास्त्र क्यों शास्त्र हैं या कौन-से शास्त्र सच्चे और कौन से प्रतारणा-मात्र हैं ? ये पंडित लोग किस तरह ये बातें समझेंगे कि उस ज़माने में समाज में कौन से गुण और दोष विद्यमान थे और इस समय कौन से गुण तथा दोष हैं ? किन स्मृति-रत्नों में इस प्रकार की आलोचना का धैर्य अथवा साहस है ?

—शरत्चन्द्र (नारी का मूल्य, पृ० २६)

---

1. प्रथा, प्रचलित रीति, परंपरा।

शास्त्रों ने उन लोगों की दृष्टि क्षीण कर रखी है। शास्त्रों के बाहर वे लोग देख नही पाते हैं। और शास्त्रों के बाहर अपने पैर भी नहीं बढ़ा सकते। वे लोग कंठस्थ करने को ही ज्ञान कहते हैं।

—शरत्चन्द्र (नारी का मूल्य, पृ० २३)

शास्त्रों के सिद्धान्त किसी देश और काल की सीमाओं में मर्यादित नहीं रहते।

—विनायक दामोदर सावरकर (मैजिनी के आत्म-चरित्र के अनुवाद की प्रस्तावना)

शास्त्र-प्रामाण्यवाद ही वास्तविक बुद्धिवाद है।

—करपात्रीजी (कल्याण के 'मानवता अंक' में लेख)

शास्त्रानुसारी धार्मिक नियंत्रण उच्छृंखलता में बाधक अवश्य है किन्तु वही वास्तविक स्वाधीनता का मूल मत्र है।

—करपात्रीजी (कल्याण के 'मानवता अंक' में लेख)

शास्त्र और आचार्य

धर्म हमारे भीतर ही है। कोई गुरु या कोई शास्त्र हमें उसकी प्राप्ति में सहायता मात्र दे सकते हैं, इसके अतिरिक्त वे और कुछ भी नहीं कर सकते, और तो क्या, इनकी सहायता के बिना भी हम अपने भीतर सभी सत्यों को उपलब्ध कर सकते हैं। तथापि शास्त्र और आचार्यों के प्रति कृतज्ञ रहो, किन्तु देखो, ये तुम्हें कहीं बद्ध न कर लें, गुरु को ईश्वर समझ कर तुम उनकी उपासना करो, किन्तु अन्ध भाव से उनका अनुसरण न करो। जहाँ तक हो सके, उनसे प्रेम रखो, किन्तु स्वाधीन भाव से विचार करो।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७, पृ० १०१)

शास्त्रभेद

सूत्राणां सफलसारविवरणं वृत्तिः।
सूत्रवृत्तिविवेचनं पद्धतिः। आक्षिप्य भाषणाद्भाष्यम्।
अन्तर्भाष्यं समीक्षा। अवान्तरार्थ विच्छेदश्च सा।
यथासम्भवमर्थस्य टीकनं टीका। विषमपदभंजिका
पंजिका। अर्थप्रदर्शनकारिका कारिका। उक्तानुक्त-
दुरुक्तचिन्ता वार्तिकमिति शास्त्रभेदाः।

सूत्रों के समस्त सार-भाग का विवरण करने वाली व्याख्या 'वृत्ति' कही जाती है। सूत्र पर की गई वृत्ति की विवेचना का नाम 'पद्धति' है। ऊपर से अनेक शंकाओं को उठा (आक्षेप) करके उनका समुचित उत्तर देते हुए विस्तृत विवेचन करना 'भाष्य' कहा जाता है। भाष्य के अवान्तर और गर्भित अर्थों के स्पष्टीकरण 'समीक्षा' कहलाते है। यथा-संभव सरल अर्थों का सकेत करना 'टीका' है। केवल कठिन शब्दों का सरल शब्दो द्वारा स्पष्टीकरण 'पंजिका' है। सूत्र के अर्थ का सरल प्रदर्शन मात्र करना 'कारिका' है। इसी प्रकार सूत्रों के उक्त अनुक्त एवं दुरुक्त विषयों का विवेचन 'वार्तिक' कहा जाता है—ये शास्त्रों के भेद हैं।

—राजशेखर (काव्य मीमांसा, १।द्वितीय अध्याय)

शास्त्रार्थ

दार्शनिक विवाद में अधिकतम लाभ उसे होता है जो हारता है क्योंकि वह अधिकतम सीखता है।

—एपिक्युरस

शिक्षक

शिलष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था
संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां
धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव॥

किसी शिक्षक में तो स्वयं उत्तम गुण की पात्रता होती है और किसी शिक्षक को दूसरे को वह गुण सिखाने में विशेष प्रवीणता होती है। जिसमें दोनों ही बातें ठीक से हों, वही शिक्षकों में सर्वश्रेष्ठ माना जाना चाहिए।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, १।१६)

हम जहाँ-जहाँ नजर डालते हैं, वहाँ-वहाँ दिखाई पड़ता है कि कच्ची नींव पर भारी इमारतें खड़ी की गई हैं। प्रारम्भिक शिक्षा के लिए चुने हुए शिक्षकों को शिष्टाचार-वश भले ही शिक्षक कहा जाये, परन्तु यथार्थ में उन्हें यह नाम देना शिक्षक शब्द का दुरुपयोग करना है।

—महात्मा गांधी (भड़ौंच में २० अक्तूबर, १९१७ का भाषण)

शिक्षा का मुख्य साधन उत्तम गुरु है।

—हजारी प्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल पृ० ६१)

अध्यापक-जीवन का एक बड़ा भारी अभिशाप यह है कि आपको ऐसी सैकड़ों बातों को पढ़ना-पढ़ाना पड़ेगा जिन्हें आप न तो हृदय से स्वीकार करते हैं और न साहित्य के लिए हितकर मानते है। यहां आदमी को आपा खोकर ही सफलता मिलती है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ०१४६)

कभी-कभी ऐसे शिक्षक देखने में आते हैं जिनके लिए शिक्षा-दान स्वभाव-सिद्ध होता है। वे अपने गुण से ही ज्ञान-दान करते हैं, अपने अन्तःकरण से शिक्षा को निजी सामग्री बनाते हैं, उनकी प्रेरणा से छात्रों में मनन-शक्ति का संचार होता है। विश्वविद्यालय के बाहर, जीवन के क्षेत्र में, उनके छात्रों की विद्या फलवती होती है। सार्थक विश्वविद्यालय वही है जो ऐसे शिक्षकों को आकर्षित करता है, जहां शिक्षा की सहायता से मनोलोक की सृष्टि होती है। यह सृष्टि ही सभ्यता का मूल है। लेकिन हमारे विश्वविद्यालयों में इस श्रेणी के शिक्षक न होने से भी काम चलता है—शायद और भी अच्छी तरह चलता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३२ का भाषण)

जो अध्यापक अपने अनुगामियों में मंदिर की छाया तले विचरण करता है, वह उन्हें अपने ज्ञान का अंश नहीं, बल्कि अपना विश्वास और वात्सल्य प्रदान करता है।

—ख़लील जिब्रान (जीवन-सन्देश, पृ० ६७)

Headmasters have powers at their disposal with which Prime Ministers have never yet been invested.

प्रधानाचार्यों के हाथों में वे शक्तियां हैं जो अभी तक प्रधानमंत्रियों को कभी नहीं मिल पाई हैं।

—विंस्टन चर्चिल (माई अर्ली लाइफ़, अध्याय २)

A teacher affects eternity, he can never tell where his influence stops.

शिक्षक अनन्त काल को प्रभावित करता है, वह कभी नहीं बता सकता कि उसका प्रभाव कहां तक जाता है।

—हेनरी एडम्स (दि एज्यूकेशन आफ हेनरी एडम्स २०)

We must develop teaching scholars, not teaching technicians. Moreover, we must give teachers that salary, prestige and backing to enable us to attract the best minds to this honoured profession.

हमें शिक्षक विद्वान विकसित करने चाहिए, न कि शिक्षण-शिल्पी। साथ ही हमें शिक्षकों को वह वेतन, सम्मान और समर्थन भी देना चाहिए जिससे हम इस सम्मानित वृत्ति की ओर सर्वोत्तम बुद्धिमानों को आकर्षित कर सकें।

—रिचर्ड निक्सन (वक्तव्य, १५ दिसम्बर) १९५७)

शिक्षा

दे० 'शिक्षक' भी।

शिक्षां रक्षितुकामेन चित्तं रक्ष्यं प्रयत्नतः।
न शिक्षा रक्षितुं शक्या चलं चित्तमरक्षता॥

शिक्षा-पालन की इच्छा रखने वाले के द्वारा चित्त की रक्षा प्रयत्न से करनी चाहिए। चंचल चित्त की रक्षा शिक्षा की रक्षा के बिना नहीं सम्भव है।

—बोधिचर्यावतार (५।१)

अपरिनिष्ठितस्योपदेशस्य पुनरन्यायं प्रकाशनम्।

शिक्षित विषय में (शिष्य के) पूर्ण कुशल न होने पर भी उसका प्रदर्शन करना अनुचित है।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, १।१७ के बाद)

उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः।
श्यामायते न युष्मासु यः कांचनमिवाग्निषु॥

श्रेष्ठ लोग शिक्षक की उस शिक्षा को ही शुद्ध कहते हैं जो आप लोगों के सम्मुख काली नहीं पड़ती[1] जैसे अग्नि में कंचन काला नही पड़ता।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, २।९)

१. दोष युक्त नहीं पाई जाती।

सुशिक्षिताः कर्तुमनुत्तमौजसां महान्तं एवापदि पर्युपासनम्।

सुशिक्षित ही आपत्तिकाल में तेजस्वी पुरुषों की सेवा करना सीखे हैं।

—अभिनंद (रामचरित, १८।७)

अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई।
थम्भा कोहा पमाएणं, रोगेणलस्सएण वा॥

अहंकार, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य—इन पांच कारणों से व्यक्ति शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (११।३)

सीख कुमानुष को नहिं भावै।

—गंग (गंगकवित्त, पृ० १२५)

आजीविका का साधन शरीर है और पाठशाला चरित्र-निर्माण की जगह है। उसे शरीर की जरूरतें पूरी करने का साधन समझना चमड़े की ज़रा-सी रस्सी के लिए भैंस को मारने के बराबर है। शरीर का पोषण शरीर द्वारा ही होना चाहिए।

—महात्मा गांधी (भागलपुर में भाषण, १७ अक्तूबर १९१७)

जहां धर्म नहीं वहां विद्या, लक्ष्मी, स्वास्थ्य आदि का भी अभाव होता है। धर्मरहित स्थिति बिल्कुल शुष्क होती है, शून्य होती है। हम धर्म की शिक्षा खो बैठे हैं। हमारी पढ़ाई में धर्म को जगह नहीं दी गई। यह तो बिना दूल्हे की बारात जैसी बात है।

—महात्मा गांधी (भागलपुर में भाषण, १७ अक्तूबर १९१७)

शिक्षा स्वराज्य की कुंजी है।

—महात्मागांधी (भड़ौंच में भाषण, २० अक्तूबर १९१७)

मां के दूध के साथ जो संस्कार और मीठे शब्द मिलते हैं, उनके और पाठशाला के बीच जो मेल होना चाहिए, वह विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने में टूट जाता है। इस सम्बन्ध को तोड़ने वालों का हेतु पवित्र ही क्यों न हो, फिर भी वे जनता के दुश्मन हैं। हम ऐसी शिक्षा के वशीभूत होकर मातृद्रोह करते हैं।

—महात्मा गांधी (भड़ौंच में भाषण, २० अक्तूबर १९१७)

विदेशी माध्यम के द्वारा वास्तविक शिक्षा असम्भव है।

—महात्मा गांधी (यंग इंडिया, १ सितम्बर १९२१)

सच्ची शिक्षा तो वह है जिसके द्वारा हम अपने को, आत्मा को, ईश्वर को, सत्य को पहचान सकें।

—महात्मा गांधी (लेख 'शिक्षा', १० जुलाई १९३२)

अक्षर-ज्ञान कभी-कभी हिरण्यमात्र का काम करता है और सत्य का मुंह ढंक देता है। यह कहकर मैं अक्षर-ज्ञान की निन्दा नहीं करता, लेकिन उसे उसके उचित स्थान पर रखता हूं। अनेक साधनों में यह भी एक साधन है।

—महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४९ पृ० १०४)

जीवन को सफल बनाने के लिए शिक्षा की ज़रूरत है, डिग्री की नहीं। हमारी डिग्री है—हमारा सेवा-भाव, हमारी नम्रता, हमारे जीवन की सरलता। अगर यह डिग्री नहीं मिली, अगर हमारी आत्मा जागृत नहीं हुई, तो काग़ज़ की डिग्री व्यर्थ है।

—प्रेमचंद (कर्मभूमि, पृ० १०६)

जिसके पास जितनी ही बड़ी डिग्री है, उसका स्वार्थ भी उतना ही बड़ा हुआ है। मानो लोभ और स्वार्थ ही विद्वत्ता का लक्षण है।

—प्रेमचंद (कर्मभूमि, पृ० १०७)

कभी-कभी हमें उन लोगों से शिक्षा मिलती है, जिन्हें हम अभिमानवश अज्ञानी समझते हैं।

—प्रेमचंद (सेवासदन, परिच्छेद ४४)

मैं ऊंची शिक्षा का विरोधी नहीं हूं, किन्तु मैं चाहता हूं कि शारीरिक और बौद्धिक श्रम के बीच संतुलन हो। इन दोनों चीज़ों में जितना समन्वय होगा, उतना ही आदमी

जीवन के निकट होगा, और उतना ही उसका जीवन सर्वांग-पूर्ण होगा।

—जवाहरलाल नेहरू (नेहरू और नई पीढ़ी, हरिदत्त शर्मा, पृ० २११

वर्तमान शिक्षा युवको में
कृत्रिमता को जन्म दे रही !
सत्य जगत् से हटा उन्हें हम
कृत्रिम जग में भटका देते।
शिक्षित यौवन
अपनी या अपने समाज की
सेवा के भी
योग्य नहीं रह जाता।

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था, कविता ८६)

जो शिक्षा धरती की जीवन-वास्तवता से
सम्बन्धित ही न हो, न जन-भू की संस्कृति से,
जिसे प्राप्त कर युवक न अपना घर सँजो सकें
औ न देश सेवा कर पाएं—किसे लाभ
उस रिक्त ज्ञान से ? जो बाह्यारोपित अनुकृति भर !

—सुमित्रानंदन पंत (किरण वीणा, पृ० २२१)

शिक्षा क्या, हम
मात्र सूचनाएं भर देते
विविध विषय की नवयुवकों को।

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था, कविता ८६)

मन और शरीर का, चरित्र के भावों का परिष्कार हो, शिक्षा का यही प्रयोजन है।

—सम्पूर्णानन्द (अधूरी क्रांति, पृ० १३५)

वह शिक्षा किस काम की जो दूसरों के शोषण में, अपने स्वार्थ-साधन में ही अपनी चरम सार्थकता समझती हो।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचार-वितर्क, पृ० ६०)

हम ऐसी कुल किताबें क़ाबिले जब्ती समझते हैं
कि जिनको पढ़के लड़के बाप को खब्ती समझते हैं।

—अकबर इलाहाबादी

जौहर अगर दरखिलाब उफ़्तद—हमां नफीस'स्त—व ग़ुबार अगर बर फ़लक रवद—हमा ख़सीस । इस्तेदाद बेतरबियत दरेग़ अस्त—व तरबियते ना मुस्तअ जाए।

रत्न यदि कीचड़ में गिर जाए तो भी मूल्यवान ही रहता है और धूल यदि आकाश पर भी चढ़ जाय तो भी मूल्यहीन है। योग्यता बिना के शिक्षा तत्त्वहीन है और शिक्षा भी अयोग्य की व्यर्थ है।

[फ़ारसी] —शेख सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

पृथ्वी में कुआं जितना ही गहरा खुदेगा, उतना ही अधिक जल निकलेगा। वैसे ही मानव की जितनी अधिक शिक्षा होगी, उतनी ही तीव्र बुद्धि बनेगी।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ३९६)

शिक्षित के लिए सभी देश और सभी नगर अपने बन जाते हैं।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ३९७)

अपने लिए आनन्दप्रद 'शिक्षा' से ही संसार को भी आनन्दित देखकर बुद्धिमान उसके अधिकाधिक उपार्जन की इच्छा करेंगे।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ३९९)

अनश्वर महान सम्पत्ति 'शिक्षा' ही है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ४००)

अशिक्षितों की तुलना में विशद ज्ञान-ग्रन्थों की शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ठीक उसी प्रकार ठहरते हैं, जैसे पशुओं की तुलना में मानव।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ४१०)

शिक्षा का अर्थ है उस पूर्णता की अभिव्यक्ति, जो सब मनुष्यों में पहले से ही विद्यमान है।

—स्वामी विवेकानंद (सिंगारावेलु मुदालियार को पत्र में, ३ मार्च १८९४)

सच्ची शिक्षा का प्रथम लक्षण यह होना चाहिए कि वह कभी युक्ति-तर्क की विरोधी न हो।

—स्वामी विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, तृतीय खंड, पृ० १५३)

सारी शिक्षा का ध्येय है मनुष्य का विकास। वह मनुष्य जो अपना प्रभाव सब पर डालता है, जो अपने संगियों पर जादू-सा कर देता है, शक्ति का एक महान केंद्र है और जब

वह मनुष्य तैयार हो जाता है, तो वह जो चाहे कर सकता है। यह व्यक्तित्व जिस पर अपना प्रभाव डालता है, उसी को कार्यशील बना देता है।

—स्वामी विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, चतुर्थ खंड, पृ० १७२)

यदि शिक्षा मुझे स्वतंत्रता तथा मोक्ष की प्राप्ति नहीं करा देती, तो उसे धिक्कार है।

—रामतीर्थ (स्वामी रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० १८)

हर व्यक्ति में दिव्यता का अंश है, कुछ विशेषता है—और शिक्षा का यही कार्य है कि इसको खोज निकाला जाए, विकसित किया जाए और प्रयोग में लाया जाए।

—अरविन्द (निबन्ध 'राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली')

चित्त-संयम के लिए शिक्षा ही मूल आधार है। किन्तु केवल गुरु-उपदेश को ही शिक्षा मानना भूल है। अन्तःकरण को बल देने के लिए दुःखों का झेलना प्रधान शिक्षा है।

—बंकिमचन्द्र (विषवृक्ष, पृ० १११)

आजकल शिक्षा तो रोटी कमाने का एक धंधा-सा हो बैठी है। यह शिक्षा नहीं, मज़दूरी है। उससे राष्ट्र की उन्नति नहीं, उलटे अवनति ही होगी।

—लोकमान्य तिलक

बीती पीढ़ी का अनुभव आगामी पीढ़ी के लिए उपलब्ध कराने का नाम ही शिक्षा है फिर वह पुस्तकों से मिलती हो या अन्य किसी माध्यम से।

—लोकमान्य तिलक

पांच आदमियों को यदि यथार्थ में सिखाया-पढ़ाया जा सके, अनुदारता के अत्याचार आदि के विरुद्ध स्वर ऊँचा किया जाए, तो इससे बढ़कर आनन्द की बात और क्या है? आज लोग ऐसे क्षुद्र व्यक्ति की बात न भी सुनें, लेकिन एक दिन सुनेंगे।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ३१-३२)

मातृभाषा में शिक्षा की धारा प्रशस्त न हो तो इस क्रियाहीन देश के मरुवासी मन का क्या होगा?

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (कलकत्ता विश्वविद्यालय में भाषण, फ़रवरी १९३३)

श्रेष्ठ शिक्षा वह नहीं जो केवल जानकारी दे। सच्ची शिक्षा वह है जो हमारे जीवन और वातावरण में सामंजस्य स्थापित करे।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दि स्प्रिट आफ़ जापान, पृ० ११६)

साहित्य-शिक्षा का मुख्य कार्य भाषा-तत्त्व सिखाना नहीं, साहित्य के जटिल प्रश्नों का विवेचन नहीं, बल्कि रस का परिचय देना और रचना में भाषा का व्यवहार समझाना है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (कलकत्ता विश्वविद्यालय में १९३२ का भाषण 'विश्वविद्यालयों के रूप')

साहित्य और भाषा का स्वरूप-बोध—उसके 'टेकनीक' का परिचय और विवेचन—साहित्य शिक्षा का प्रधान उद्देश्य है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (कलकत्ता विश्वविद्यालय में १९३२ का भाषण 'विश्वविद्यालयों के रूप')

मनुष्य की शिक्षा उसके जन्मकाल से ही आरम्भ हो जानी चाहिए और उसके समूचे जीवन भर चलती रहनी चाहिए। बल्कि, सच पूछा जाय तो, यदि शिक्षा को अत्यधिक मात्रा में फलदायक होना हो तो उसे जन्म से पहले ही आरंभ हो जाना चाहिए।

—श्रीमां (शिक्षा, पृ० १२)

शिक्षा 'जीवन' के लिए है, 'जीविका' के लिए नहीं।

—सत्य साईं बाबा

शिक्षित मनुष्य अशिक्षित मनुष्यों से उतने ही श्रेष्ठ हैं जितने जीवित मनुष्य मृतकों से।

—अरस्तू

शिक्षा का सबसे बड़ा उद्देश्य आत्मनिर्भर बनाना है।

—सेमुअल स्माइल्स (कर्तव्य, पृ० १६)

We are provided with buildings and books and other magnificent burdens calculated to suppress our mind. All this has cost us money, and also our fine ideas, while our intellectual vacancy has been crammed with what is described

in official reports as Education. In fact we have bought our spectacles at the expense of our eyesight.

हमें ऐसे भवन, पुस्तकें और अन्य भव्य बोझ दिए गए हैं जो हमारे मस्तिष्क को दबा देने के लिये पर्याप्त हैं।...इस सबमें हमें धन और अपने श्रेष्ठ विचारों से हाथ धोना पड़ा है। साथ ही, हमारी बौद्धिक रिक्तता में वह वस्तु ठूंस दी गयी है जिसका उल्लेख सरकारी रिपोर्टों में 'शिक्षा' नाम से किया गया है। वस्तुत: हमने अपने चश्मे को नेत्र-ज्योति की क़ीमत पर खरीदा है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (क्रिएटिव यूनिटी, ऐन ईस्टर्न यूनिवर्सिटी, पृ० १७७)

Our educated community is not a cultured community, but a community of qualified candidates.

हमारा शिक्षित वर्ग सुसंस्कृत वर्ग नही है अपितु उपाधि-धारी उम्मीदवारों का वर्ग है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (क्रिएटिव यूनिटी, ऐन ईस्टर्न यूनिवर्सिटी, पृ० १८०)

National education, the surest and most profitable national investment, is as necessary for national safety as the military provision for physical defence.

जो अमोघ और अधिकतम राष्ट्रीय शिक्षा, लाभकारी राष्ट्रीय निवेश है, राष्ट्र की सुरक्षा के लिए उतनी ही आवश्यक है जितनी भौतिक प्रतिरक्षा के लिए सैन्य-व्यवस्था।

—लाला लाजपतराय

Real education aims at controlling the mind annihilating egoism, cultivating divine virtues, and attaining knowledge of the self or Brahma Jnana.

वास्तविक शिक्षा का उद्देश्य मन को नियंत्रित करना, अहंकार नष्ट करना, दैवी गुणों का संवर्धन करना और ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त करना होता है।

—शिवानन्द

Education makes a people easy to lead but difficult to drive, easy to govern, but impossible to enslave.

शिक्षा लोगों को सरलता से नेतृत्व किए जाने योग्य बनाती है, परन्तु उनका हांका जाना कठिन बना देती है। उन पर शासन करना सरल हो जाता है परन्तु उन्हें दास बनाना कठिन हो जाता है।

—बैरन ब्रूघम हेनरी

There are obviously two educations, one should teach us how to make a living and the other how to live.

स्पष्ट ही दो प्रकार की शिक्षाएं हैं। एक तो हमें यह बताएगी कि जीवन-निर्वाह कैसे हो और दूसरी यह कि जीवन यापन कैसे किया जाए।

—एडम्स जेम्स ट्रसलो

Education is what survives when what has been learnt has been forgotten.

सीखे गये को भूल जाने पर जो कुछ बच रहता है, वही शिक्षा है।

—स्किनर ('न्यू साईटिस्ट' पत्रिका, २१ मई १९६४)

What sculpture is to a block of marble, education is to the human soul.

मानव-जीवन के लिए शिक्षा वैसी ही है जैसे किसी संगमरमर खण्ड के लिए मूर्तिकला।

—एडीसन

Education......has produced a vast population able to read but unable to distinguish what is worth reading.

शिक्षा ने .....एक विशाल जनसंख्या तैयार कर दी है जो पढ़ तो सकती है परन्तु जिसमें यह विवेक नहीं है कि क्या पढ़ने योग्य है।

—जार्ज मैकाले ट्रेवेल्यन

Academic freedom in a free society is the greatest single advantage in its competition with totalitarion societies.

एकदलीय शासनतंत्र वाले समाजों की प्रतिस्पर्द्धा में स्वतंत्र समाज का सबसे बड़ा लाभ शैक्षिक स्वतंत्रता है।

—रिचर्ड निक्सन (भाषण, ५ जून १९६६, रोशेस्टर विश्वविद्यालय)

शिल्प

साधु खो सिप्पकं नाम अपि यादिसकीदिसं।

जैसा कैसा भी शिल्प हो, उसे सीखना अच्छा है।

[पालि] —जातक (सालित्त जातक)

शिव

दे० 'शिव और विष्णु', 'शिव और शक्ति' तथा 'शिव-पार्वती' भी।

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे॥

शिव के समान कोई देवता नहीं है, शिव के समान कोई गति नहीं है, शिव के समान कोई दानी नहीं है तथा शिव के समान कोई योद्धा नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासनपर्व।५।११)

वन्दे शिवं तं प्रकृतेरनादिं
प्रशान्तमेकं पुरुषोत्तमं हि।
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा
नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः॥

मैं स्वभाव से ही उन अनादि, शान्तस्वरूप, एकमात्र, पुरुषोत्तम शिव की वन्दना करता हूं, जो अपनी माया से इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि करके आकाश की भाँति इसके भीतर और बाहर स्थित हैं।

—शिवपुराण (रुद्रसंहिता, सृष्टि खण्ड)

देवं देवानां पावनं पावनानां
कृतिं कृतीनां महतो महान्तम्।
शतात्मानं संस्तुतं गोपतीनां
पतिं देवं शरणं यामि रुद्रम्॥

जो देवताओं के भी देवता, पावनों के भी पावन, कृतियों की भी कृति, यज्ञों के भी यज्ञ—अर्थात् यजनीयों के भी यजनीय हैं, जो महान से भी महान् शान्तस्वरूप तथा इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं के लिए भी स्तवनीय है, उन सब के पालक रुद्र देव की मैं शरण लेता हू।

—हरिवंशपुराण (विष्णु पर्व।७२।४९)

अन्तश्चरं पुरुषं गुह्यसंज्ञं
प्रभास्वन्तं प्रणवं विप्रदीपम्।
हेतुं परं परमस्याक्षरस्य
शुभं देवं गुणिनं संनतोऽस्मि॥

जो सबके अन्तःकरण में विचरने वाले अन्तर्यामी पुरुष हैं, जिन्हें गुह्य कहा गया है, जो स्वयं प्रकाशरूप हैं, प्रणव (ऊंकार) जिनका नाम है, जो परम अक्षर अर्थात् जीव के भी परम कारण हैं, उन मंगलकारी गुणवान् देव भगवान् शिव को मैं प्रणाम करता हूं।

—हरिवंशपुराण (विष्णु पर्व।७२।५०)

भूतं यस्माज्जगदत्यन्त धीर
त्वत्तो व्यक्तदक्षरादक्षरेश।
तस्मात् त्वामाहुर्भव इत्येव भूतं
सर्वेश्वराणां महतामप्युदारम्॥

हे अत्यन्त[1]! हे धीर! हे अक्षरेश्वर! आप अव्यक्त अविनाशी परमेश्वर से ही जगत उत्पन्न हुआ है, अतः विद्वान पुरुष आपको 'भव' कहते हैं। वास्तव में तो आप 'भूत' (नित्यसिद्ध) हैं। आप महान् सर्वेश्वरों के लिए भी अत्यन्त उदार हैं।

—हरिवंशपुराण (विष्णु पर्व।७४।२५)

एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतबहुफले यः स्वयं कृत्तिवासाः
कान्तासंमिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः परस्ताद्यतीनाम्।
अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः
सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीशः॥

जो भगवान शिव भक्तों को बहुत फल देने वाले हैं, जो अनुपम ऐश्वर्यशाली होते हुए भी गजचर्मधारी हैं, अर्ध शरीर में पत्नी को धारण करने पर भी सांसारिक विषयों से मन को विरक्त किए हुए है और यतियों में अग्रगण्य हैं, जो अपने अष्ट रूपों से सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हुए भी

१. अन्त अर्थात मृत्यु को लांघने वाला।

अभिमानयुक्त नहीं हैं, वे हमें श्रेष्ठ मार्ग को दिखाने के लिए हमारी तामसी वृत्ति को मिटा दें।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, १।१)

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

जो विधाता की आद्य सृष्टि है (अर्थात् जल), जो विधिपूर्वक होम किए गए हवि को धारणा करता है (अर्थात् अग्नि), जो होम का होता है (अर्थात् यजमान), जो दो काल का विभाजन करते है (अर्थात् सूर्य और चन्द्र), जो श्रुति-विषय का गुण होकर विश्व को व्याप्त कर स्थित है (अर्थात् वायु), जिसको सभी का बीज 'प्रकृति' कहा गया है तथा जिससे प्राणी प्राणवान् हैं—अपने इन प्रत्यक्ष आठ शरीरों द्वारा वह ईश आपकी रक्षा करे।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, १।१)

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले
गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजंगतुंगमालिकाम्।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम्॥

जिन्होंने जटारूपी वन से निकलती हुई गंगाजी की गिरती हुई धाराओं से पवित्र किए गए गले में सर्पों की लटकती हुई विशाल माला को धारण कर, डमरु के डम-डम शब्दों से मंडित प्रचण्ड ताण्डव नृत्य किया, वे शिव हमारे कल्याण का विस्तार करें।

—रावण (शिवताण्डवस्तोत्र, १)

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मलेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः।
अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मंगलमसि॥

हे कामदेव-नाशक शिव ! आपके सहचर पिशाच हैं, आप श्मशान में नृत्य करते हैं, आप चिता की भस्म को शरीर पर लगाते हैं और नरमुंडों की माला धारण करते हैं—इस प्रकार का आपका अमंगल शील तो नाममात्र को है। अपना स्मरण करने वाले भक्तों के लिए तो हे वरदाता शिव ! आप परम मंगल ही हैं।

—पुष्पदन्त (शिवमहिम्नस्तोत्र, २४)

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः॥

हे महेश्वर ! मैं तुम्हारे तत्त्व को नहीं जानता हूं कि किस प्रकार के हो। आप जिस प्रकार के भी हो, हे महादेव ! आपको बार-बार प्रणाम है।

—पुष्पदन्त (शिवमहिम्नस्तोत्र, ४१)

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्मांगरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगंबराय तस्मै नकाराय नमः शिवाय॥

सापों का हार पहने, त्रिलोचन, भस्म लपेटे हुए, महेश्वर, नित्य शुद्ध, दिगम्बर, 'नकारा' रूपी उन शिव के लिए नमस्कार है।

—शंकराचार्य (शिवपंचाक्षरस्तोत्र)

दुग्धाब्धिदोऽपि पयसः पृषतं वृणोषि
दीपं त्रिधामनयनोऽप्युररीकरोषि।
वाचां प्रसूतिरपि मुग्धवचः श्रृणोषि
किं किं करोषि न विनीतजनानुरोधात्॥

हे प्रभो ! क्षीरसमुद्र का दान करने वाले भी आप भक्तों द्वारा दिए गए दुग्ध-विन्दु को ग्रहण कर लेते है। तीन नेत्रों में सूर्य, चन्द्र और अग्नि को धारण करते हुए भी आप भक्तों द्वारा दिए गए दीपक को स्वीकार कर लेते हैं। वाणियों के उत्पत्तिस्थान होकर भी अज्ञानी भक्तों की वाणियों (स्तुतियों) को सुन लेते हैं। विनीतों के आग्रह से आप क्या-क्या नहीं करते !

—जगद्धर भट्ट (स्तुतिकुसुमांजलि, ११।१४)

केचिद् वरस्य भगवन्नभयस्य केचित्
सान्द्रस्य केचिदमृतस्य करस्थितस्य।
प्रापुः कृपाप्रणयिनस्तव भाजनत्वं
शूलस्य केवलमभाग्यपरिक्षतोऽहम्॥

हे भगवान् शिव ! (आपके एक हाथ में वर, दूसरे में अभय, तीसरे में अमृत-कलश और चौथे हाथ में त्रिशूल है)। आपकी कृपा चाहने वाले कोई भक्त आपके 'वर' के पात्र बने, कोई भक्त 'अभय' के पात्र बने और कोई हाथ में स्थित घनीभूत 'अमृत' के पात्र बने। किन्तु अभागा मैं केवल आपके 'शूल' ही का पात्र बना।

—जगद्धर भट्ट (स्तुतिकुसुमांजलि, ११।८७)

त्वं निर्गुणः शिव तथाहमथ त्वदीयं
शून्यं परं किमपि धाम तथा मदीयम्।
त्वं चेद् गवि प्रविदधासि धृतिं तथाहं
कष्टं शिवस्त्वमशिवस्तु विधिक्षतोऽहम्॥

हे शिव ! जैसे आप निर्गुण (प्रकृति के तीनों गुणों से रहित) है, वैसे ही मैं भी निर्गुण (सद्गुणों से रहित) हूँ। जैसे आपका धाम परम शून्य है, वैसे ही मेरा धाम भी परम शून्य (अत्यन्त दरिद्रता के कारण खाली) है। जैसे आप गौ में धृति वाले (वृषभ पर स्थित) हैं, वैसे ही मैं भी गौ में धृति वाला (वाणी में प्रीति वाला) हूँ। इतनी समानता होने पर भी आप 'शिव' (कल्याणस्वरूप) हैं और मैं अभागा 'अशिव' हूँ।

—जगद्धर भट्ट (स्तुतिकुसुमांजलि, ११।९३)

नमो वाङ्मनसातीतमहिम्ने परमेष्ठिने।
त्रिगुणाष्टगुणानन्तगुणानिर्गुणमूर्त्तये॥

जिसकी महिमा वाणी और मन से परे है, जो परम व्योम अर्थात् चिदाकाश में स्थित है, जो सत्, रज, तम इन तीन गुणों से सम्पन्न है, जो जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्र, आकाश, वायु और पृथ्वी इन आठ गुणों से युक्त है अथवा तद्रूप है, पुनः अनन्तगुण रूप है, फिर निर्गुणमूर्ति है ऐसे उस शिवतत्त्व को नमस्कार है।

—जगद्धर भट्ट (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १५)

नमः शिवाय निःशेषक्लेशप्रशमशालिने।
त्रिगुणग्रन्थिदुर्भेदभवबन्धविभेदिने॥

शास्त्रों में प्रतिपादित अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश रूप समस्त क्लेशों का शमन कर सुशोभित होने वाले तथा सत्व, रज और तम इन गुणों की गांठ में गुंथे हुए अतएव दुर्भेद्य संसार के बन्धन का भेदन अर्थात् नाश करने वाले शिवतत्त्व को नमस्कार है।

—जगद्धर भट्ट (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १६)

आसन्नाय सुदूराय गुप्ताय प्रगटात्मने।
सुलभायातिदुर्गाय नमश्चित्राय शम्भवे॥

जो समीप होते हुए भी अत्यन्त दूर है, गुप्त होते हुए भी प्रकट है, सुलभ होते हुए भी अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसे विचित्र शम्भु को नमस्कार है।

—हेमाचार्य (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, २२)

गंगाधरोऽपि वृणुषे पयसोऽभिषेकं
गृह्णासि चार्घ्यकणिकां स्वयमप्यनर्घ्यः।
ज्योतिः परं त्वमसि दीपमुरीकरोषि
किं किं करोषि न विनीतजनानुरोधात्॥

हे भगवान शिव ! सिर पर गंगा को धारण करते हुए भी आप भक्तों द्वारा दिए जलाभिषेक को ग्रहण कर लेते हैं। स्वयं अनर्घ्य (साक्षात् अद्वितीय भगवान) होकर भी भक्तों द्वारा दिए अर्घ्य के कण को ग्रहण कर लेते हैं। और परम ज्योति होकर भी भक्तों द्वारा दिए गए दीपक को ग्रहण कर लेते हैं। प्रभो ! विनीत लोगों के आग्रह से आप क्या-क्या करने को तैयार नहीं रहते हैं ?

—राजानक रत्नकण्ठ

हा हा महार्त्याऽस्मि विमोहितोऽहं
जरादि दुःखेन सदैकशूली।
त्रिशूलिनं तं त्रिजगत्प्रसिद्धं
चिकित्सकं यामि यदस्य शान्त्यै॥

हाय ! हाय ! जरा-मरण आदि दुःख से सदा एक शूल वाला मैं महाव्यथा से कितना मोहित हुआ हूं जो सदा एकशूली (शूल रोगी) होकर उसकी निवृत्ति के लिए तीनों लोकों में प्रसिद्ध त्रिशूली (तीन शूल वाले अथवा त्रिशूल को धारण करने वाले) चिकित्सक की शरण में जा रहा हूं।

—राजानक रत्नकण्ठ

यस्यांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु माम्॥

जिनकी गोद में पार्वती, मस्तक पर गंगा, ललाट पर बाल चन्द्रमा, कण्ठ में हलाहल विप और वक्षःस्थल पर सर्पराज शोभित हैं, वे भस्म से विभूषित, देवताओं में श्रेष्ठ, सर्वेश्वर, संहारकर्ता, सर्वव्यापक, कल्याणरूप, चन्द्रमा के समान शुभ्रवर्ण श्री शंकर सदा मेरी रक्षा करें।

—तुलसी (रामचरितमानस, २/मंगलाचरण)

चिन्ता चक्रिणि हन्त चक्रिणिभिया, कुब्जासनेऽब्जासने
नश्यद् धामनि तिग्मधामनि धृताशंके शशांके भृशम्।
भ्रश्यच्चेतसि च प्रचेतसि शुचा तान्ते कृतान्ते च यो
व्यग्रोऽभूत् कटुकालकूटकवलीकाराय पायात् स वः॥

यह खेद का विषय है कि चक्रधारी विष्णु को भय हो किन्तु जब उनको भी चिन्ता हुई और कमलासन ब्रह्मा का भी आसन उलटने लगा, सूर्यलोक नष्ट हो चला, चन्द्रमा अत्यन्त भयभीत हो गया, वरुण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए यमराज शोक से अभिभूत हो उठे तब जो कटु कालकूट विष का पान करने के लिए व्यग्र हुए वह आप की रक्षा करें।

—अज्ञात (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, ८८)

संसारैकनिमित्ताय संसारैकविरोधिने।
नमः संसाररूपाय निःसंसाराय शम्भवे॥

संसार के एकमात्र निमित्त अर्थात् कारण होते हुए भी जो संसार के एकमात्र विरोधी है तथा संसाररूप होते हुए भी जो निःससार अर्थात् ससार से परे है उन शम्भु को नमस्कार है।

—अज्ञात

समस्तलक्षणायोग एव यस्योपलक्षणम्।
तस्मै नमोऽस्तु देवाय कस्मैचिदपि शम्भवे॥

समस्त प्रकार के लक्षणों का जिसमें घटित न होना ही जिसका लक्षण है ऐसे किसी अनिर्वचनीय देवता शम्भु को नमस्कार है।

—अज्ञात

जगद्भर्ताऽपि यो भिक्षुः भूतावासोनिकेतनः।
विश्वगोप्ताऽपि दिग्वासा तस्मै कस्मै नमो नमः॥

जो जगत् का भरण करता है स्वयं पर भिक्षु है, जो सब प्राणियों को निवास देता है पर स्वय गृहहीन है, जो विश्व को ढकता है, परन्तु स्वयं नंगा रहता है, उसको बारम्बार प्रणाम है।

—सम्पूर्णानन्द (समाजवाद, समर्पण)

तेरो कह्यो सिगरो मैं कियो निसि-द्यौस तप्यो तिहुं तापनि पाई।
मेरो कह्यो अब तू करि जो सत, बाह मिटै परिहै सियराई।
संकर-पायनि मैं लगि रे मन, थोरे ही बातनि सिद्धि सुहाई।
आक-धतूरे के फूल चढ़ाए तें, रीझत हैं तिहुँ लोक के साँई॥

—मतिराम (मतिराम ग्रंथावली, पृ० ३६०)

कोई भी नहीं समझता कि तुम्ही ने सच्चा अमृतपान किया। जो अमृत देवों ने पिया, वह झूठा है, क्योंकि कल्पांत में उन्हें मरना पड़ेगा। किन्तु जो मृत्यु को ही पी गया, उसे मृत्यु कहां!

—रायकृष्णदास (छायापथ, पृ० ५५)

शिव और विष्णु

शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णोश्च हृदयं शिवः।

शिव का हृदय विष्णु हैं और विष्णु का हृदय शिव हैं।

—स्कन्दोपनिषत् (८)

ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्।
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम॥

मेरे हृदय में विष्णु है और विष्णु के हृदय मे मैं हूं। जो इन दोनों में अन्तर नही समझता वही मुझे विशेष प्रिय है।

—शिवपुराण (रुद्रसंहिता, सृष्टि खंड)

शिव और शक्ति

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

माया तो प्रकृति को समझना चाहिए और मायापति महेश्वर को समझना चाहिए। उसी के अंगभूत कारण-कार्य-समुदाय से यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त हो रहा है।

—श्वेताश्वतर उपनिषद् (४।१०)

माता देवी बिन्दुरूपा शिवः पिता।

बिन्दुरूपा देवी उमा माता है और नाद स्वरूप भगवान् शिव पिता है।

—शिवपुराण (विद्येश्वर संहिता, १६।९१)

शिवोऽपि शवतां याति कुंडलिन्या विवर्जितः।

'शिव' भी कुण्डलिनी[1]-विहीन होने पर 'शव' हो जाता है।

—देवीभागवत

शिव-पार्वती

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

मैं श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप पार्वती और शिव की वन्दना करता हूं जिनके विना सिद्धजन अपने अन्तःस्थ ईश्वर को नहीं देख सकते।

—तुलसी (रामचरितमानस, प्रारम्भिक मंगलाचरण २)

कस्त्वं ? शूली, मृगय भिषजं, नीलकण्ठः प्रियेऽहं
केकोमेकां वद, पशुपतिर्नैव दृश्ये विषाणे।
मुग्धे स्थाणुः, स चरति कथं ? जीवितेशः शिवाया
गच्छाटव्यामिति हतवचा पातु वश्चन्द्रचूडः॥

शंकर ने अपने घर का द्वार खोलने हेतु आवाज दी। पार्वती ने पूछा—तुम कौन हो? शंकर ने कहा—मैं शूली (त्रिशूल-धारी) हूं। पार्वती ने कहा शूली (शूल रोग से पीडित) हो तो वैद्य को खोजो। शंकर ने कहा—प्रिये! मैं नीलकंठ हूं। पार्वती ने कहा (मयूर अर्थ में)—तो एक बार केका-ध्वनि करो। शंकर ने कहा—मैं पशुपति हूं। पार्वती ने कहा—पशु-पति (बैल) हो, तुम्हारे सींग तो दिखाई नहीं देते। शंकर ने कहा—मुग्धे! मैं स्थाणु हूं। पार्वती ने कहा—स्थाणु (ठूंठ) चलता कैसे है? शंकर ने कहा—मैं शिवा (पार्वती) का पति हूं। पार्वती ने कहा—शिवा (लोमड़ी) के पति हो तो जंगल में जाओ। इस प्रकार निरुत्तर हुए शिव आप सबकी रक्षा करें।

—अज्ञात

शिवाजी

प्रतिपच्चंद्ररेखेव वर्धिष्णु विश्ववन्दिता।
शाह सूनोः शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते॥

प्रतिपदा के चन्द्रमा की रेखा के समान बढ़ने की इच्छा वाली, विश्वन्द्या, शाह के पुत्र शिव की यह मुद्रा कल्याणार्थ शोभित होती है।

—शिवाजी की राजमुद्रा पर अंकित श्लोक

इन्द्र जिम जंभ पर बाड़व सुअंभ पर
रावन सदंभपर रघुकुलराज हैं।
पौन वारिवाह पर संभु रतिनाह पर
ज्यौं सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुमदंड पर चीता मृगझुंड पर
भूषन बितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर
त्यौं मलेच्छ बंस पर सेर सिवराज है।

—भूषण (शिवभूषण, ५०)

ऊंचे घोर मंदर के अन्दर रहनवारी
ऊंचे घोर मंदर के अन्दर रहाती हैं।
कंद मूल भोग करैं कंद मूल भोग करैं
तीन बेर खातीं ते वै तीन बेर खाती हैं।
भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग
बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं।
भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास
नगन जुड़ातीं ते वै नगन जुड़ाती हैं॥

—भूषण (भूषण ग्रंथावली)

गरुड़ को दावा जैसे नाग के समूह पर
दावा नागजूह पर सिंह सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर
दावा सबै पच्छिन के गोल पर बाज को।
भूषन अखंड नवखंड महिमंडल में
तम पर दावा रवि किरन समाज को।

[1] 'इ' की मात्रा, शक्ति।

पूरब पछांह देस दच्छिन तें उत्तर लौं
जहां पातसाही तहां दावा सिवराज को।।
—भूषण (भूषण ग्रंथावली)

राखी हिंदुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो
अस्मृति पुरान राखे बेदबिधि सुनी मैं।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की
धरा मैं धरम राख्यो गुन राख्यो गुनी मैं।
भूषण सुकवि जीति हद्द मरहट्ठन की
देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी
दिल्ली दल दाबिकै दिवाल राखी दुनी मैं।।
—भूषण (भूषण ग्रंथावली)

वेद राखे विदित पुरान परसिद्ध राखे
राम-नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की
कांधे में जनेऊ राख्यो माला रखी घर में।
मीड़ि राखे मुगल मरोडि राखे पातसाह
वैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेगबल सिवराज
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में।
—भूषण (भूषण ग्रंथावली)

कासी हू की कला गई मथुरा मसीत भई,
सिवाजी न होतो तो सुनति[1] होती सबकी।
—भूषण (शिवाबावनी, १९)

साहसी सिवा के बांके हल्ला को धड़ल्ला देखि,
अल्ला अल्ला करत मुसल्ला भगे जात हैं।
—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (वीराष्टक, छत्रपति शिवाजी, छन्द १)

मात-भूमि भक्ति-सक्ति अविचल साहस की,
सहित प्रमान प्रतिपादि छिति छाजी है।
राना मूल-मन्त्र जो स्वतंत्रता प्रकास किजो,
ताको महाभास कियो सरजा सिवाजी है।।
—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (वीराष्टकति, छत्रप, शिवाजी, ८)

फिर भी दिखाई देश में जिसने महाराष्ट्र-छटा-
दुर्दान्त आलमगीर का भी गर्व जिससे था घटा।
उस छत्रपति शिवराज का है नाम ही लेना अलम्,
है सिंह-परिचय के लिए बस 'सिंह' कह देना अलम्।।
—मैथिलीशरण गुप्त (भारत भारती, पृ० ८४)

निराशा के अन्धकार से उबार कर स्वातंत्र्य-सूर्य का दर्शन कराने वाले अतुलित साहसी श्री शिवाजी ने मानो असम्भव को सम्भव कर दिखाया। निष्प्राण जाति में नव-जीवन फूंककर उनके अवरुद्ध पौरुष-प्रवाह को बहाया।
—माधव स० गोलवलकर (श्यामनारायण पाण्डेय कृत 'शिवाजी' की भूमिका, पृ० ११)

शिवाजी महाराज का स्मरण करो। उनकी वाणी, उनका व्यवहार, उनका उद्देश्य, उनके प्रयत्न आदि का स्मरण करो। उससे तुम्हें *यह ज्ञात होगा कि विजयशाली* पुरुष का व्यवहार किस प्रकार होना चाहिए।
— समर्थ रामदास (शंभाजी को पत्र)

शिशिर ऋतु

सीत को प्रबल सेनापति कोपि चढ्यौ दल
निबल अनल गयो सूर सियराइ कैं।
हिम के समीर तेई बरसैं बिषम तीर,
रही है गरम भौन कोनन में जाइ कैं।
धूम नैन बहैं लोग आगि पर गिर रहै,
हिये सों लगाए रहैं नैंकु सुलगाइ कैं।
मानो भीत, जानि महासीत तैं पसारि पानि
छतियां की छांह राख्यो पाउक छिपाइ कैं।।
—सेनापति (कवित्तरत्नाकर, ऋतुवर्णन)

सिसिर मैं ससि को सरूप पावै सविताऊ
घामहूं मैं चांदनी की दुति दमकति है।
सेनापति होत सीतलता है सहसगुनी
रजनी की झाईं वासर मैं झमकति है।।
—सेनापति (कवित्तरत्नाकर, ऋतुवर्णन)

1. सुन्नत।

शिशु

दे० 'शैशव' भी।

प्रत्येक नया शिशु जग में
नयी कल्पना को ईश्वर की
मूर्तित करता।

—सुमित्रानंदन पंत (आस्था, कविता ५८)

वह[1] है अकाम, दाम से है उसे काम नहीं,
माता जिसे जो दे, उसे देता वही नाम है।
उसकी उपासना में लीन रहता है लोक,
किंतु वह वासना-विहीन अविराम है॥

—गोपालशरण सिंह (आधुनिक कवि)

There is no finer investment for any community than putting milk into babies.

किसी भी समाज के लिए शिशुओं के शरीर में दुग्ध पहुँचाने से अधिक सुन्दर पूंजी-निवेश नहीं है।

—विंस्टन चर्चिल (रेडियो पर भाषण, २१ मार्च १९४३)

शिष्टाचार

मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः।

हे देवगण ! मैं बड़ों की प्रशंसा को कभी न काटूं।

—ऋग्वेद (१।२७।१३)

शिष्टाः खलु विगतमत्सरा निरंहकाराः कुम्भी धान्या अलोलुपा दम्भदर्पलोभमोहक्रोधविवर्जिताः।

ईर्ष्या-डाह से रहित, अहंकारविहीन, छह मास भर के उपयोगी धान्य के संग्रही, लोलुपतारहित, पाखण्ड, अहंकार, लोभ, मोह और क्रोध से जो विमुख हैं, वे शिष्ट कहलाते हैं।

—बौधायनधर्मसूत्र (१।१।५)

भीता अथवा प्रर्धाषिता अथवा आपन्ना अथवा सुलभचारित्रवंचना अपराधयितुं समर्था भवन्ति।

भयभीत, तिरस्कृत, विपत्ति-ग्रस्त अथवा चरित्रभ्रष्ट व्यक्ति शिष्टता के व्यवहार में अपराध कर जाते हैं।

—भास (चारुदत्त, अंक २)

अनुल्लंघनीयः सदाचारः।

शिष्टाचार का उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, ५।२६ के पश्चात्)

हसतो नाभिगच्छेज्जा।

मार्ग में हँसते हुए नहीं चलना चाहिए।

[प्राकृत] —दशवैकालिक (५।१।१४)

उपफुल्लं न विणिज्झाए।

आंखें फाड़ते हुए नही देखना चाहिए।

[प्राकृत] —दशवैकालिक (५।१।२३)

जो जिहि विधि तासौं तैसैही, मिलि कहियौ कुसलात।

—सूरदास (सूरसागर, १०।४०६६)

शिष्य

दे० 'गुरु-शिष्य' भी।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

कायरता रूप दोष से उत्पन्न हुए स्वभाव वाला और धर्म के विषय में मोहित चित्त वाला मैं आपसे पूछता हूं। जो कुछ निश्चय किया हुआ श्रेयस्कर हो वह मुझसे कहिये। मैं आपका शिष्य हूं, मुझ शरणागत को आप शिक्षा दीजिए।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, २६।७ अथवा गीता, २।७)

आयरियस्स वि सीसो सरिसो सव्वेहि वि गुणेहिं।

यदि शिष्य गुण सम्पन्न है, तो वह अपने आचार्य के समकक्ष माना जाता है।

[प्राकृत] —भद्रबाहु आचार्य (उत्तराध्ययननिर्युक्ति, ५८)

---

१. शिशु।

मा गलियस्सेव कसं, वयणमिच्छे पुणो पुणो।

बार-बार चाबुक की मार खाने वाले गलिताश्व की तरह कर्त्तव्य पालन के लिए बार-बार गुरुओं के निर्देश की अपेक्षा मत रखो।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (१।१२)

शिष्य के लिए यह आवश्यक है कि उसमें पवित्रता, सच्ची ज्ञान-पिपासा और अध्यवसाय हो। अपवित्र आत्मा कभी यथार्थ धार्मिक नहीं हो सकती। धार्मिक होने के लिए तन, मन और वचन की शुद्धता नितान्त आवश्यक है।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, चतुर्थ खंड, पृ० २०)

शिष्यत्व यानी जिज्ञासा। बोध की उत्कट इच्छा। स्वरूप की खोज की छटपटाहट, आकुलता। जिज्ञासा और अनुभूति का जहां मिलन होता है, वहीं गुरु और शिष्य का मिलन है।

—विमला ठकार (जीवनयोग, पृ० ३१)

शीघ्रता

अत्वरा सर्वकार्येषु त्वरा कार्याविनाशिनी।

कार्यों में शीघ्रता नही करनी चाहिए, शीघ्रता कार्य-विनाशिनी होती है।

—अज्ञात

सहसा करि पाछें पछिताहीं।
कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२३१।२)

तुरत दान, महाकल्यान।

—हिंदी लोकोक्ति

शील

शीलं प्रधानं पुरुषे तद् यस्येह प्रणश्यति।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न वन्धुभिः॥

पुरुष में शील ही प्रधान है, जिसका वही नष्ट हो जाता है, इस संसार में उसका जीवन, धन और बन्धुओं से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व।३४।४८)

तस्मान्मैत्रं समास्थाय शीलमापद्य भारत।
दमस्त्यागोऽप्रमादश्च ते त्रयो ब्रह्मणो हयाः॥
शीलरश्मि-समायुक्तः स्थितो यो मानसे रथे।
त्यक्त्वा मृत्युभयं राजन् ब्रह्मलोकं स गच्छति॥

भरतनन्दन! इसीलिए सर्वत्र मैत्रीभाव रखते हुए शील प्राप्त करना चाहिए। दम, त्याग और अप्रमाद—ये तीन परमात्मा के धाम में ले जाने वाले घोड़े हैं जो मनुष्य शील रूपी लगाम को पकड़कर इन तीनों घोड़ों से जुते हुए मन रूपी रथ पर सवार होता है, वह मृत्यु का भय छोड़कर ब्रह्मलोक में चला जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, स्त्रीपर्व।७।२३-२४)

शीलेन हि त्रयो लोकाः शक्या जेतुं न संशयः।
न हि किंचिदसाध्यं वै लोके शीलवतां भवेत्॥

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व।१२४।१५)

यद्यप्यशीला नृपते प्राप्नुवन्तिश्रियं क्वचित्।
न भुंजते चिरं तात समूलाश्च न सन्ति ते॥

राजन्! यद्यपि कहीं-कहीं शीलहीन मनुष्य भी राज्य-लक्ष्मी प्राप्त कर लेते हैं तथापि वे चिरकाल तक उसका उपभोग नहीं कर पाते और मूल सहित नष्ट हो जाते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१२४।६९)

धर्मः सत्यं तथा वृत्तं बलं चैव तथाप्यहम्।
शीलमूला महाप्राज्ञ सदा नास्त्यत्र संशयः॥

महाप्राज्ञ! धर्म, सत्य, सदाचार, बल और मैं (लक्ष्मी) ये सब सदा शील के आधार पर रहते है, इसमें सशय भी नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१२४।६२)

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते॥
यदन्येषां हितं न स्यादात्मनः कर्म पौरुषम्।

अपत्रपेत वा येन न तत् कुर्यात् कथंचन ।।
तत्तु कर्म तथा कुर्याद् येन श्लाघ्येत संसदि ।

मन, वाणी और क्रिया द्वारा सभी प्राणियों से अद्रोह, सब पर दया करना और यथाशक्ति दान देना शील कहलाता है, जिसकी सब लोग प्रशंसा करते हैं। अपना जो भी पुरुषार्थ और कर्म दूसरों के लिए हितकर न हो अथवा जिसको करने में संकोच का अनुभव होता हो, उसे किसी तरह नहीं करना चाहिए। जो कर्म जिस प्रकार करने से सभा में मनुष्य की प्रशंसा हो, उसे उसी प्रकार करना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१२४।६६-६८)

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ।।

अभिवादनशील और नित्य वृद्धों की सेवा करने वाले व्यक्ति के आयु, विद्या, यश और बल—ये चार बढ़ते हैं।

—मनुस्मृति (२।१२१)

विना पक्षैर्न डीयन्ते विना नावा न तार्यते ।
विना शीलेन निर्वाणो लभ्यते न कदाचन ।।

पंखों के बिना उड़ा नहीं जा सकता। नाव के बिना पार नहीं उतर सकते। शील के बिना कभी भी निर्वाण प्राप्त नहीं किया जा सकता।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, २३।१९)

धनिनो रूपिणो वापि विना शीलेन मानवाः।
फलपुष्पयुताश्चापि कंटकाढ्या द्रुमा इव ।।

धन और रूप से सम्पन्न होने पर भी शील के अभाव में मनुष्य फल और पुष्पों से युक्त होने पर भी कटकों से भरे हुए वृक्षों की भांति है।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, २३।२०)

शीलमेव परं ज्ञानं शीलमेव परं तपः।
शीलमेव परो धर्मः शीलश्च मोक्षश्च नैष्ठिकः ।।

शील ही परम ज्ञान है। शील ही परम तप है। शील ही परम धर्म है और शील से ही नैष्ठिक निर्वाण की प्राप्ति होती है।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, २६।३४)

किं कुलेनोपादिष्टेन शीलमेवात्र कारणम् ।

कुल की प्रशंसा करने से क्या? इस लोक में शील ही महानता का कारण है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, ८।२९)

किं भूषणाद् भूषणमस्ति शीलं।

भूषणों में उत्तम भूषण क्या है? शील।

—शंकराचार्य (प्रश्नोत्तरी, ८)

शमक्षमादानदयाश्रयाणां शीलं विशालं कुलमायनन्ति ।

शांति, क्षमा, दान और दया का आश्रय लेने वाले लोगों के लिए शील ही विशाल कुल है, ऐसा विद्वानों का मत है।

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन, १।८१)

प्रागुन्मीलति दुर्यशः सुविषमं गर्ह्योभिलाषस्ततो
धर्मः पूर्वमुपैति संक्षयमथो श्लाघ्योऽभिमानक्रमः।
संदेहं प्रथमं प्रयात्यभिजनं पश्चात्पुनर्जीवितं ।
किं नाभ्येति विपर्ययं विगलने शीलस्य चिन्तामणे ।।

पहले अत्यन्त विषम अपयश का उदय होता है, पश्चात् निन्दनीय अभिलाषा प्रकट होती है। पहले धर्म का नाश होता है, पश्चात् कुल-परम्परागत स्पृहणीय अभिमान नष्ट होता है। पहले पूर्वजों का गौरव संशय में पड़ जाता है, फिर जीवन का भी सन्देह उपस्थित होता है। शील रूपी चिंतामणि का विनाश होने पर कौन-सी वस्तु है जो नष्ट नहीं हो जाती है?

—कल्हण (राजतरंगिणी, कलश।३१६)

उपनयन्ति हि हृदयमदृष्टमपि जनं शीलसंवादाः।

शील की सदृशता पहले कभी न देखे हुए व्यक्ति को भी हृदय के समीप कर देती है।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १०१)

शीलं हि विदुषां धनम् ।

शील ही विद्वानों का धन है।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, १।५)

विप्राणां भूषणं विद्या पृथिव्या भूषणं नृपः।
नभसो भूषणं चन्द्रः शीलं सर्वस्य भूषणम् ॥

विप्रों का आभूपण विद्या है, पृथ्वी का आभूपण राजा है, आकाश का आभूपण चन्द्रमा है, शील सबका आभूषण है।

—बृहस्पतिनीतिसार (१३)

न भूषयत्यलंकारो न राज्यं न च पौरुषम्।
न विद्या न धनं तादृग् यादृक् सौजन्य भूषणम् ॥

जैसा मनुष्य के लिए सौजन्य रूपी अलंकार है, वैसा न तो आभूषण है, न राज्य, न पौरुष, न विद्या और न धन है।

—शुक्रनीति (३।२३६)

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः।
अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥

ऐश्वर्य का आभूपण सज्जनता है, शौर्य का वाक् संयम्, ज्ञान का शान्ति, ज्ञान का विनय, धन का सत्पात्र में व्यय, तप का अक्रोध सामर्थ्य का क्षमा तथा धर्म का आभूषण सरलता है। सभी के मध्य सबका कारण स्वरूपशील सर्व-श्रेष्ठ आभूपण है।

[इस श्लोक की अशरूप निम्नलिखित सूक्ति भी प्रसिद्ध है—

शीलं परं भूषणम्।

शील सर्वोत्तम आभूपण है।]

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ८३)

हिरोत्तप्पे हि सति सीलं उप्पज्जति चेव तिट्ठति च।

लज्जा और संकोच होने पर ही शील उत्पन्न होता है और ठहरता है।

[पालि] —विसुद्धिमग्ग (१।२२)

सीलं किरेव कल्याणं सीलं लोके अनुत्तरं।

शील ही कल्याणकर है। लोक में शील से बढ़कर कुछ नही है।

[पालि] —जातक (सीलवीमंस जातक)

सीलं बलं अप्परिमं, सीलं आवुधमुत्तमं।
सीलमाभरणं सेट्ठं, सीलं कवचमब्भुतं ॥

शील अपरिमित बल है। शील सर्वोत्तम शस्त्र है। शील श्रेष्ठ आभूषण है और रक्षा करने वाला अद्भुत कवच है।

[पालि] —थेर गाथा (१२।६१४)

सग्गेण वि काइँ जहिं चारित्तहो खण्डणउ।
किं समलहणेण महु पुणु सीलु जे मण्डणउ ॥

उस स्वर्ण से भी क्या जहाँ चारित्र्य का खण्डन हो? यदि मै शील से विभूपित हूँ तो मुझे और क्या चाहिए?

[अपभ्रंश] —स्वयम्भूदेव (पउमचरिउ, ४२।७)

सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई।

विद्वानों की सेवा बिना क्या शील प्राप्त हो सकता है?

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।९०।३)

ऐसा विनय प्रवंचकों का आवरण है, जिसमें शील न हो। और शील परस्पर सम्मान की घोषणा करता है।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, प्रथम अंक)

शील हृदय की वह स्थायी स्थिति है, जो सदाचार की प्रेरणा आप-से-आप करती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ५१-५२)

केवल नाम की इच्छा रखने वाला पाखण्डी भी नियम का पालन कर सकता है और पूरी तरह कर सकता है पर शील के लिए सात्त्विक हृदय चाहिए।

—रामचन्द्र शुक्ल (गोस्वामी तुलसीदास, पृ० १०८-१०९)

गिरिते गिरि परिबो भलो भलो पकरिबो नाग।
अगिन माहि जरिबो भलो, बुरो शील को त्याग ॥

—अज्ञात

शील और प्रज्ञा

सीलपरिधोता पञ्ञा, पञ्ञापरिधोतं सीलं।
यत्थ सीलं तत्थ पञ्ञा यत्थ पञ्ञा तत्थ सीलं ॥

शील से प्रज्ञा प्रक्षालित होती है, प्रज्ञा से शील प्रक्षालित होता है। जहाँ शील है, वहाँ प्रज्ञा है और जहाँ प्रज्ञा है वहां शील है।

[पालि] —दीघनिकाय (१।४।४)

शुद्धता

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भुतात्मा शुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ।।

जल से शरीर शुद्ध होता है, मन सत्य से शुद्ध होता है, विद्या और तप से भूतात्मा तथा ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है ।

—मनुस्मृति (५।१०९)

शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः ।
शौचाचारविहीनस्य समस्तं कर्म निष्फलम् ।।

शौच[1] के लिए सदा यत्न करना चाहिए । शौच ही द्विजत्व का मूल है । जो शौचाचार से रहित है उसके सब कर्म निष्फल होते है ।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, प्रथम पाद, २७।८)

कम्मं विज्जा च धम्मो च सीलं जीवितमुत्तमं ।
एतेन मच्चा सुज्झन्ति, न गोत्तेन धनेन वा ।।

कर्म, विद्या, धर्म, शील और उत्तम जीवन—इनसे ही मनुष्य शुद्ध होते है, गोत्र और धन से नही ।

[पालि] —मज्झिमनिकाय (३।४३।३)

शुभ

शुभं ब्रूयाच्छुभं ध्यायेच्छुभमिच्छेच्च शाश्वतम् ।

सदैव शुभ बोलना चाहिए, सदैव शुभ का ध्यान करना चाहिए और सदैव शुभ इच्छा करनी चाहिए ।

—अज्ञात

शुभ-अशुभ

यद् यद् भवे भवति तत् परमेश्वरेच्छामालम्ब्य
सर्वमशुभं च शुभं सर्वम् ।
तस्मादवाप्तमशुभं शुभमेव मन्ये नेच्छा
यतोऽस्य निजभक्तजनाशुभाय ।।

जो-जो भी इस संसार में होता है, वह ईश्वर की इच्छा से होता है, फिर वह शुभ हो या अशुभ इसलिए अशुभ भी प्राप्त करके शुभ ही मानता हूँ क्योंकि उसकी अपने भक्त के अशुभ की इच्छा नहीं होती ।

—शंकरलाल

[1] पवित्रता, शुद्धता ।

वास्तव में शुभ और अशुभ दोनों एक ही है और हमारे मन पर अवलंबित हैं । मन जब स्थिर और शान्त रहता है, तब शुभाशुभ कुछ भी उसे स्पर्श नहीं कर पाता । शुभ और अशुभ दोनों के बंधन को काटकर सम्पूर्ण रूप से मुक्त हो जाओ तब इन दोनों से कोई भी तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकेगा और तुम मुक्त होकर परम आनन्द का अनुभव करोगे ।

—विवेकानंद (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७, पृ० ९)

शूर

दे० 'वीर' ।

शृंगार

स्वभावशुद्धं हि न संस्कारमपेक्षते । न मुक्तामणेः शाण-स्तारतायै प्रभवति ।

जो स्वभाव से शुद्ध हैं, उनके लिए संस्कार की अपेक्षा नही होती । मोती का संस्कार करने पर भी उसे अधिक सुन्दर या शुद्ध नहीं बनाया जा सकता ।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, पंचम अध्याय)

शृंगार और वैराग्य

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंचारजनितं
तदा सर्वं नारीमयमिदमशेषं जगदभूत ।
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकांजनदृशां
समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्मनुते ।।

जब तक मुझ में कामदेव-रूपी अंधकार से उद्भूत अज्ञान था तभी तक समस्त विश्व स्त्रीमय दिखलाई पड़ता था । अब विवेकरूपी अंजन लगने के कारण समदृष्टि हो गई है और तीनों लोक ब्रह्ममय प्रतीत होते हैं ।

—भर्तृहरि (शृंगारशतक, ९८)

शृंगारिकता

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेमप्रसन्नं मुखं
घ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपवनः श्राव्येषु किं तद्वचः ।
किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तत्तनु-
र्ध्येयं किं नवयौवनं सुहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः ।।

रसिकों के लिए उत्तम क्या-क्या है ? देखने योग्य वस्तुओं में मृगनयनी का प्रेम से प्रफुल्लित मुख, सूंघने की वस्तुओं में उसका उच्छ्वास, सुनने की वस्तुओं में उसकी वाणी, स्वाद लेने योग्य वस्तुओं में उसके अधरपल्लवों का रस, स्पर्श की वस्तुओं में उसका शरीर और ध्यान करने योग्य वस्तुओं में उसका यौवन और सतत विलास।

—भर्तृहरि (शृंगारशतक, ७)

शेक्सपियर

शेक्सपियर ने 'टाइमन एथेन्स' में धन की सच्ची प्रकृति का उत्कृष्ट चित्रण किया है।

—मार्क्स (१८४४ की पांडुलिपियों से 'दि विज़डम आफ़ कार्ल मार्क्स' में उद्धृत)

बाइबिल के बाद यदि सबसे अधिक अंग्रेज़ी मुहावरे किसी साहित्य में मिल सकते हैं, तो वे शेक्सपियर के नाटकों में ही।

—लोगन पियरसाल स्मिथ (वर्ड्स ऐंड ईडियम्स, पृ० २२७)

I believe Shakespeare wos not a whit more intelligible in his own day than he is now to an educated man, except for a few local allusions of no consequence He is of no age nor of any religion, or party or profession. The body and substance of his works came out of the unfathomable depths of his own oceanic mind : his observation and reading, which was considerable, supplied him with the drapery of his figures.

मेरा विश्वास है कि शेक्सपियर अपने युग मे इसकी अपेक्षा किंचित् भी अधिक समझे नहीं जा सके थे जितने आज वह एक शिक्षित व्यक्ति के लिए हैं, अपवादस्वरूप कुछ संकेतित प्रसंगों को छोड़कर जो महत्त्वहीन हैं। वह न किसी युग के हैं, न किसी एक धर्ममत के, न किसी एक दल के, न किसी एक पेशे के। उनकी कृतियों की सामग्री व आकार उनके अपने महासागरीय मानस की अतल गहराइयों से प्रकट थे। उनका निरीक्षण व अध्ययन, जो पर्याप्त था, उनके पात्रों के अलंकरण की सामग्री प्रदान करते थे।

—कालरिज (१५ मार्च १८३४ की एक बातचीत में)

We can say of Shakespeare, that never has a man turned so little knowledge to such great account.

शेक्सपियर के विषय में हम कह सकते हैं कि किसी व्यक्ति ने कभी इतने अल्पज्ञान का इतना अधिक लाभ नही उठाया।

—टी० एस० इलियट (भाषण, दि क्लासिक्स ऐंण्ड दि मैन आफ़ लेटर्स)

शेष

ऋणशेषं चाग्निशेषं व्याधिशेषं तथैव च।
पुनः पुनः प्रवर्धते तस्माच्छेषं न कारयेत् ॥

शेष ऋण, शेष अग्नि तथा शेष रोग पुन पुन: बढ़ते हैं, अत: इन्हें शेष नहीं छोड़ना चाहिए।

—शौनकीयनीतिसार

शैतान

God seeks comrades and claims love,
The devil seeks slaves and claims obedience.

परमेश्वर साथियों को खोजता है और प्रेम के अधिकार का दावा करता है। शैतान दासों को खोजता है और आज्ञा पालन के अधिकार का दावा करता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (फ़ायर फ़्लाइज़)

No sooner is a temple built to God, but the devil builds a chapel hard by.

जैसे ही कहीं पर भगवान का मन्दिर बनकर तैयार होता है, शैतान उसके पास ही अपना प्रार्थना-गृह बना लेता है।

— जार्ज हर्बर्ट

We may not pay Satan reverence for that would be indiscreet, but we can at best respect his talents

हम शैतान का सम्मान भले ही न करें क्योंकि यह अविवेकपूर्ण बात होगी परन्तु हम कम से कम उसकी योग्यताओं का सम्मान तो कर ही सकते है।

—मार्क ट्वेन (हार्पर्स मैगजीन, सितम्बर १८९९)

शैली

इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासधारणम् ।

संसार में विद्वान पुरुष संक्षेप और विस्तार दोनों ही रीतियों को पसन्द करते हैं ।

—वेदव्यास (महाभारत, आदिपर्व १।५१)

इत्येषमार्गो विदुषां विभिन्नोऽप्यभिन्नरूपः
प्रतिभासते यत् ।
न तद्विचित्रं यदमुत्र सम्यग्विनिर्मिता
संघटनैव हेतुः ॥

इस प्रकार विद्वानों का भिन्न भिन्न प्रतीत होने वाला यह काव्य-मार्ग भी, जो अभिन्न-सा प्रतीत हो रहा है, कोई विचित्र बात नहीं है क्योंकि भली प्रकार से की हुई रचना ही उसका कारण है ।

—मम्मट (काव्यप्रकाश, अन्तिम श्लोक)

शैली स्वयं व्यक्ति ही है ।

—बफ़न (डिस्कोर्स सर ले स्टाइल)

शैशव

दे० 'बचपन' भी ।

बड़ा सुखद होता निःसंशय
शैशव का जग,—
सभी नया लगता,
सबसे मिलता दुलार है !

—सुमित्रानन्द पंत (आस्था, कविता ४७)

कितना सुन्दर, निश्छल होता
शैशव का जग !

—सुमित्रानन्द पंत (आस्था, कविता ८२)

शैशव की स्मृतियों में एक विचित्रता है। जब हमारी भावप्रवणता गम्भीर और प्रशांत होती है, तब अतीत की रेखाएं कुहरे में से स्पष्ट होती हुई वस्तुओं के समान अनायास ही स्पष्ट से स्पष्टतर होने लगती हैं, पर जिस समय हम तर्क से उनकी उपयोगिता सिद्ध करके स्मरण करने बैठते है, उस समय पत्थर फेंकने से हटकर मिल जाने वाली की काई के समान विस्मृति उन्हें फिर-फिर ढक लेती है ।

—महादेवी वर्मा (अतीत के चलचित्र, पृ० ९-१०)

बीते हुए बालपन की यह
क्रीडापूर्ण वाटिका है।
वही मचलना, वही किलकना
हँसती हुई नाटिका है ॥

—सुभद्राकुमारी चौहान (मुकुल, बालिका का परिचय)

शोक

तरति शोकमात्मविद् ।

आत्मवेत्ता शोक को पार कर जाता है ।

—छान्दोग्योपनिषद् (७।१।३)

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।

तू न शोक करने योग्यों के लिए शोक करता है और पण्डितों जैसे वचनों को कहता है ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २६।११ अथवा गीता, २।११)

शोकस्यान्तं न पश्यामि पारं जलनिधेरिव ।
चिन्ता मे वर्धतेऽतीव मुमूर्षा चापि जायते ॥

जैसे समुद्र का पार नहीं दिखाई देता, उसी प्रकार मैं इस शोक का अन्त नहीं देख पाता हूँ । मेरी चिंता अधिक बढ़ती जाती है और मरने की इच्छा प्रबल हो उठी है ।

—वेदव्यास (महाभारत, कर्णपर्व।६।६)

न शोचन् मृतमन्वेति न शोचन् म्रियते नरः ।
एवं सांसिद्धिके लोके किमर्थमनुशोचसि ॥

शोक करने वाला मनुष्य न तो मरे हुए के साथ जाता है और न स्वयं ही मरता है । जब लोक की यही स्वाभाविक स्थिति है तब आप किस लिए बार-बार शोक कर रहे हैं ।

—वेदव्यास (महाभारत, स्त्रीपर्व।६।१२)

क्रोडीकरोति प्रथमं यदा जातमनित्यता ।
धात्रीव जननी पश्चात् तदा शोकस्य कः क्रमः ॥

जब उत्पन्न होते ही शिशु को पहले अनित्यता अपनी गोद में ले लेती है, माता भी धाय की तरह उसके बाद ही अपनी गोद में धारण करती है, तब फिर शोक करने की क्या बात है ?

—हर्ष (नागानन्द, ४।८)

संक्रामी प्रमुखे हि शोकवेगः।

प्रमुख व्यक्ति का शोकावेग संक्रामक होता है। (सभी को अभिभूत कर लेता है)

—अभिनंद (रामचरित, १४।१२)

अद्यैके प्रातरपरे वितते्ऽहनि तथा परे।
यान्ति निःसीम्नि संसारे कः स्याता ननु शोचति॥

इस अपार संसार में आज एक, प्रातःकाल दूसरे तथा अगले दिन अन्य चले जाते हैं, शोक करने के लिए कौन स्थिर है ?

—सूर्य

शोको हि नाम पर्यायः पिशाचस्य।

शोक पिशाच का ही दूसरा नाम है

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० २५३)

काहि न सोक समीर डोलाना।

—तुलसी (रामचरितमानस, ७।७१।२)

दीन जानि सब दीन, एक न दीन्यो दुसह दुःख,
सो अब मोको दीन्ह कछु न राख्यौ बीरवर॥

—अकबर (बीरबल की मृत्यु पर रचित)

सुमन भर न लिये
सखि, वसन्त गया।
हर्ष-हरण-हृदय
नहीं निर्दय क्या ?

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ('अपरा', शेष कविता)

मुर्ग़े कि बाग़मेदिल शुद उल्फ़तेश हासिल
बर शाख़सारे उम्रश बर्गे तरब न बाशद।

जिसको हृदय के शोक के साथ एक प्रेम हो गया है, उस पक्षी की आयु की शाखा पर प्रसन्नता का पता न होगा।

—हाफ़िज़ (दीवान)

To mourn a mischief that is past and gone,
Is the next way to draw mischief on.

जो हानि हो चुकी है, उसके लिए शोक करना, अधिक हानि को निमंत्रित करना है।

—शेक्सपियर (ओथेलो, १।३)

शोभा

दरिद्रता धीरतया विराजते, कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते।
कदन्नता चोष्णतया विराजते, कुरूपता शीलतया विराजते॥

धीरज होने से दरिद्रता भी शोभा देती है, धुले हुए होने से जीर्ण वस्त्र भी अच्छे लगते हैं, घटिया भोजन भी गर्म होने से स्वादु लगता है और सुन्दर स्वभाव के कारण कुरूपता भी शोभा देती है।

—चाणक्यनीति

समाने शोभते प्रीतिः राज्ञि सेवा च शोभते।
वाणिज्यं व्यवहारेषु, स्त्री दिव्या शोभते गृहे॥

समान अवस्था वालों में प्रेम शोभा देता है, राजा की सेवा शोभा देती है, व्यवहारों में वाणिज्य शोभा देता है और घर में दिव्य-सद्‌गुणों से युक्त स्त्री शोभा देती है।

—अज्ञात

गुणो भूषयते रूपं, शीलं भूषयते कुलम्।
सिद्धिर्भूषयते विद्यां, भोगो भूषयते धनम्॥

गुण से रूप की, सदाचार से कुल की, सफलता से विद्या की तथा भोग से धन की शोभा होती है।

—अज्ञात

नभोभूषा पूषा कमलवनभूषा मधुकरो।
वचोभूषा सत्यं वरविभवभूषा वितरणम्॥
मनोभूषा मैत्री मधुसमयभूषा मनसिजः।
सदोभूषा सूक्तिः सकलगुणभूषा च विनयः॥

आकाश का भूषण सूर्य है, कमल वन का भूषण भ्रमर है, वाणी का भूषण सत्य है, संपन्नता का भूषण दान करना है, मन का भूषण मित्रता है, मधुमास का भूषण कामदेव है, सभा का भूषण सूक्ति है और समस्त गुणों का भूषण विनय है।

—अज्ञात

श्रुतेन वुद्धिर्व्यसनेन मूर्खता,
मदेन नारी सलिलेन निम्नगा।
निशा शशांकेन धृतिः समाधिना,
नयेन चालंक्रियते नरेन्द्रता॥

शास्त्र से वुद्धि, व्यसन से मूर्खता, मद से नारी, पानी से नदी, चन्द्रमा से रात्रि, समाधि से धैर्य तथा नीति से राजापन शोभायमान होता है।

—अज्ञात

सत्य सरस वानी रतन सील लाज जे तीन।
भूषन साजति जो सती सोभा तासु अधीन॥

—रत्नावली

शोभाहीन

सूने परे सून से मनो मिटाए अंक के।

वे मानो अक के मिटाए जाने पर शून्य के समान शून्य[1] हो गए थे।

—तुलसीदास (गीतावली, वालकाण्ड, पद ९४)

शोषण

भेड़ तो जहां जाएगी मुंड़ेगी।

— हिंदी लोकोक्ति

अतिरिक्त मूल्य की दर, पूंजी द्वारा श्रम-शक्ति के शोषण या पूंजीपति द्वारा मज़दूर के शोषण की मात्रा के लिए, यथार्थ व्यंजक है।

— मार्क्स (कैपिटल, भाग १)

धार्मिक और राजनीतिक भ्रांतियों से आवृत्त शोषण के स्थान पर वुर्जुआ नग्न, निर्लज्ज, प्रत्यक्ष, और क्रूर शोषण करता है।

—मार्क्स (कम्युनिस्ट घोषणापत्र)

तुमने जीवन का नहीं, जेलख़ाने का निर्माण किया है। तुमने व्यवस्था नहीं की वल्कि आदमी के पांवों में जंजीरें डाल दी हैं। जानते हो कि तुम केवल आदमी के धैर्य के सहारे जी रहे हो? तुम दूसरों का खून चूसते हो। दूसरों की कमाई पर गुज़ारा करते हो। दूसरे के हाथों से काम करते हो। तुम्हारे इन वड़े कामों से कितनों की आंखों से आंसू वहे हैं!

—गोर्की (फ़ोमा गोरदयेव)

Democracies are notoriously ungrateful. They use m·n to the utmost limit for their physical and mental power and then discard them and throw them on the scrap heap. Younger men striving for personal success are for ever trying to throw down the elders, and in their turn they learn something of the cruelty with which popular parties destroy their leaders when their usefulness is held to be at an end.

जनतंत्र कुख्यात कृतघ्न होते हैं। वे मनुष्यों का शारीरिक व मानसिक शक्ति के लिए उनकी अधिकतम सीमा तक उपयोग करते हैं और तव उन्हें निकाल देते हैं तथा रद्दी के ढेर पर फेंक देते है। निजी सफलता के लिए प्रयत्नशील कम आयु के लोग सदैव ही वड़ों को फेंकने का प्रयत्न करते रहते हैं, और जब उन्हें फेंके जाने की वारी आती है तब उन्हें उस क्रूरता का ज्ञान होता है जिससे लोकप्रिय दल अपने उन नेताओं को नष्ट कर देते हैं जिनकी उपयोगिता समाप्त समझ ली जाती है।

—दि स्टेट्समैन (२२ मई १९३२ का सम्पादकीय लेख 'डेमोक्रेसीज़ इनग्रेटीट्यूड')

शौर्य

दे० 'वीरता'।

श्मशान

संसार का मूक शिक्षक 'श्मशान' क्या डरने की वस्तु है? जीवन की नश्वरता के साथ ही सर्वात्मा के उत्थान का ऐसा सुन्दर स्थल और कौन है?

—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, तृतीय अंक)

---

१. शोभाहीन।

श्रद्धा

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥

श्रद्धा से अग्नि को प्रज्वलित किया जाता है। श्रद्धा से ही हवन मे आहुति दी जाती है। हम सब प्रशंसापूर्ण वचनों से श्रद्धा को उत्कृष्ट ऐश्वर्य मानते है।

—ऋग्वेद (१०।१५१।१)

श्रद्धां हृदय्य याकूत्या,
श्रद्धया विन्दते वसु।

सब लोग हृदय के दृढ संकल्प से श्रद्धा की उपासना करते हैं, क्योंकि श्रद्धा से ही ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

—ऋग्वेद ((१०।१५१।१४)

श्रद्धे श्रद्धापयेह नः।

हे श्रद्धा ! हमें इस विश्व में अथवा कर्म में श्रद्धावान् कर।

—ऋग्वेद (१०।१५१।५)

श्रद्धा पत्नी सत्यं यजमानः
श्रद्धा सत्यं तदित्युत्तमं मिथुनम्।
श्रद्धया सत्येन मिथुनेन
स्वर्गाल्लोकांजयतीति॥

श्रद्धा पत्नी है और सत्य यजमान है। श्रद्धा और सत्य का यह अत्यंत उत्तम जोड़ा है। श्रद्धा और सत्य के जोड़े से मनुष्य स्वर्ग को जीत लेता है।

—ऐतरेय ब्राह्मण (७।१०)

श्रद्धायां ह्येव दक्षिणा प्रतिष्ठिता हृदये ह्येव श्रद्धा प्रतिष्ठिता भवति।

श्रद्धा में ही दक्षिणा प्रतिष्ठित है। हृदय में ही श्रद्धा प्रतिष्ठित है।

—बृहदारण्यक उपनिषद् (३।६।२१)

यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन् मनुते।
श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्येति॥

जब श्रद्धा करता है, तभी मनन करता है। श्रद्धा किए बिना मनन नहीं करता। श्रद्धा करते हुए ही मनुष्य मनन करता है इसलिए श्रद्धा के विषय में ही जिज्ञासा होनी चाहिए।

—छान्दोग्योपनिषद् (७।१९।१)

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।

हे अर्जुन ! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व।४१।३ अथवा गीता, १७।३)

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।

यह पुरुष श्रद्धामय है। जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व।४१।३ अथवा गीता, १७।३)

अश्रद्धा परमं पापं श्रद्धा पापप्रमोचिनी।

अश्रद्धा सबसे बड़ा पाप है और श्रद्धा पाप से छुटकारा दिलाने वाली है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।२६४।१५)

श्रद्धैव सर्वधर्मस्य चातीव हितकारिणी।
श्रद्धैव नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः॥
श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी।
मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति सिद्धिदः॥

श्रद्धा ही समस्त धर्मों के लिए हितकर है। श्रद्धा से ही मनुष्य को दोनों लोको में सिद्धि प्राप्त होती है। श्रद्धापूर्वक पूजन करने वाले को पत्थर की मूर्ति भी फल देने वाली होती है। भक्ति से पूजने पर अज्ञानी गुरु भी सिद्धिदायक हो जाता है।

—स्कन्दपुराण

श्रद्धापूर्वाः सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदाः।
श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुष्यते हरिः॥

नारद ! श्रद्धापूर्वक आचरण में लाए हुए सब धर्म मनोवांछित फल देने वाले होते है। श्रद्धा से सब सिद्ध होता है और श्रद्धा से ही भगवान सन्तुष्ट होते हैं।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, प्रथम पाद।४।१)

श्रद्धावाँल्लभते धर्मान्श्रद्धावानर्थमाप्नुयात् ।
श्रद्धया साध्यते कामः श्रद्धावान् मोक्षमाप्नुयात् ॥

श्रद्धालु पुरुष को धर्म का लाभ होता है। श्रद्धालु ही धन पाता है, श्रद्धा से ही कामनाओं की सिद्धि होती है तथा श्रद्धालु पुरुष ही मोक्ष पाता है।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, प्रथम पाद, ४।६)

श्रद्धाधनं श्रेष्ठतमं धनेभ्यः।

धनों में श्रद्धारूपी धन श्रेष्ठतम है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ५।२४)

व्याकुलं दर्शनं यस्य दुर्बलो यस्य निश्चयः।
तस्य पारिप्लवा श्रद्धा न हि कृत्याय वर्तते ॥

जिसकी विचार-दृष्टि व्याकुल है जिसका निश्चय दुर्बल है, उसकी चंचल श्रद्धा सफलता के लिए नहीं है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १२।४२)

यावत्तत्त्वं न भवति हि दृष्टं श्रुतं वा,
तावच्छ्द्धा न भवति बलस्था स्थिरा वा।
दृष्टे तत्त्वे नियमपरिभूतेन्द्रियस्य
श्रद्धावृक्षो भवति सफलश्चाश्रयश्च ॥

जब तक मनुष्य तत्त्व को देख या सुन नहीं लेता है, तब तक उसकी श्रद्धा बलवती या स्थिर नहीं होती है। संयम द्वारा इन्द्रियों को जीतने पर जिसको तत्त्व का दर्शन होता है, उसका श्रद्धा रूपी वृक्ष फल और आश्रय देता है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १२।४३)

श्रद्धागौरवादेव देवतातुष्टिः।

देवता की प्रसन्नता तो श्रद्धा के गौरव से होती है।

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावनचम्पू, १०।१७)

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये।
भावेषु विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम् ॥

देवता न तो काष्ठ में विद्यमान रहता है, न पाषाण में और न मिट्टी की मूर्ति में। देवता भाव[1] में रहता है, अतः भाव ही कारण है।

—चाणक्यनीति

श्रद्धा बीजं तपो वुट्ठि।

श्रद्धा बीज है, तप वर्षा है।

[पालि] —सुत्तनिपात (१।४।२)

सद्धाय तरती ओघं।

मनुष्य श्रद्धा से संसार-प्रवाह को पार कर जाता है।

[पालि] —सुत्तनिपात (१।१०।४)

जाए सद्धाए निक्खंते तमेव अणुपालेज्जा, विजहित्ता विसोत्तियं ।

जिस श्रद्धा के साथ घर त्याग कर निकले हो, उसी श्रद्धा के साथ मन की शंका से दूर रह कर उसका पालन करना चाहिए।

[प्राकृत] —आचारांग (१।१।३)

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।९०।२)

श्रद्धा से मनुष्य पहाड़ों का उल्लंघन करता है।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, १८)

श्रद्धा में निराशा का कोई स्थान नहीं।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ३१८)

हमारी श्रद्धा अखंड बत्ती जैसी होनी चाहिए। हमको तो प्रकाश देती है, लेकिन आसपास भी देती है।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ४६७)

श्रद्धा ही जिन्दगी का सूरज है।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ६८२)

मेरी श्रद्धा तो ज्ञानमयी और विवेकपूर्ण है। जो बुद्धि का विषय है, वह श्रद्धा का विषय कदापि नहीं हो सकता। इसलिए अन्धश्रद्धा श्रद्धा ही नहीं है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड ४१, पृ० ३८३)

भक्ति से, सत्संग से, श्रद्धा प्राप्त होती है।

—महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० ४८२)

जिसमें शुद्ध श्रद्धा है, उसकी बुद्धि तेजस्वी रहती है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खंड ४१, पृ० ४८२)

---

1. श्रद्धा।

जहां बुद्धि नहीं पहुंचती वहां श्रद्धा पहुँच जाती है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड ४१, पृ० ४८२)

श्रद्धावान को कोई परास्त नहीं कर सकता। बुद्धिमान को हमेशा पराजय का डर रहता है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड ४१, पृ० ४८२)

श्रद्धा में विवाद को स्थान ही नहीं है। इसलिए एक की श्रद्धा दूसरे के काम नहीं आ सकती।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड ४१, पृ० ४८२)

श्रद्धा और बुद्धि के क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं। श्रद्धा से अन्तःज्ञान, आत्मज्ञान की वृद्धि होती है इसलिए अन्तः शुद्धि तो होती ही है। बुद्धि से बाह्य ज्ञान की, सृष्टि के ज्ञान की वृद्धि होती है परन्तु उसका अन्तः शुद्धि के साथ कार्य-कारण जैसा कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अत्यन्त बुद्धिशाली लोग अत्यन्त चारित्र्य-भ्रष्ट भी पाये जाते हैं। मगर श्रद्धा के साथ चारित्र्यशून्यता का होना असम्भव है।

— महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० ४८२)

ईश्वर में श्रद्धा न होने से आत्म-विश्वास का अभाव होता है।

—महात्मा गांधी (बापू के पत्र मीरा के नाम, २३९)

श्रद्धा के अनुसार ही बुद्धि सूझती है।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, ५९)

जहां बड़े-बड़े बुद्धिमानों की बुद्धि काम नहीं करती वहां एक श्रद्धालु की श्रद्धा काम कर जाती है।···जहां श्रद्धा है, पराजय नहीं। श्रद्धालु का अकर्म भी कर्म हो जाता है।

—महात्मा गांधी (गांधी वाणी, ८२)

मनुष्य की श्रद्धा जितनी तीव्र होती है, उतनी ही अधिक वह मनुष्य की बुद्धि को पैनी और प्रखर बनाती है। जब श्रद्धा अंधी हो जाती है, तब वह मर जाती है।

—महात्मा गांधी (मोहनमाला, ४७)

सच्ची श्रद्धा का अर्थ है ऐसे लोगों के ज्ञानपूर्ण अनुभव का उपभोग करना, जिनके बारे में हमारा यह विश्वास है कि उन्होंने प्रार्थना और तपस्या से शुद्ध और पवित्र बना हुआ जीवन बिताया है।

— महात्मा गांधी (मोहनमाला, ४७)

सच्चा मूल्य तो उस श्रद्धा का है, जो कड़ी-से-कड़ी कसौटी के समय भी टिकी रहे।

—महात्मा गांधी (मोहनमाला, ४८)

अनुभव तर्कातीत है। श्रद्धा अनुभव के आधार पर रहने वाली, पर उससे भी परे की वस्तु है।

—विनोबा (विचार पोथी, २०)

किसी मनुष्य में जन साधारण से विशेष गुण तथा शक्ति का विकास देख उसके सम्बन्ध में जो एक स्थायी आनन्द-पद्धति हृदय में स्थापित हो जाती है, उसे श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति के साथ-साथ पूज्य बुद्धि का संचार है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, श्रद्धा-भक्ति)

श्रद्धा के विषय तीन हैं—शील, प्रतिभा और साधन-सम्पत्ति। शील या धर्म से समाज की स्थिति, प्रतिभा से रंजन और साधन-सम्पत्ति से शील-साधन और प्रतिभा-विकास दोनों की संभावना है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, श्रद्धा-भक्ति)

यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण है।

— रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, श्रद्धा-भक्ति)

श्रद्धा सामर्थ्य के प्रति होती है और दया असामर्थ्य के प्रति।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, श्रद्धा-भक्ति)

श्रद्धालु महत्त्व को स्वीकार करता है, पर भक्त महत्त्व की ओर अग्रसर होता है। श्रद्धालु अपने जीवन-क्रम को ज्यों का त्यों छोड़ता है, पर भक्त उसकी काट-छांट में लग जाता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, श्रद्धा-भक्ति)

श्रद्धा धर्म की अनुगामिनी है। जहां धर्म का स्फुरण दिखाई पड़ता है, वहीं श्रद्धा टिकती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४७)

चैतन्य को बन्धन में लाने के लिए प्रकृति ने श्रद्धा के अतिरिक्त और कोई रस्सी बनाई ही नहीं। बाँधने के लिए मनुष्य के हाथ केवल एक यही रस्सी आई है। मन को चाहे देवता के साथ बाँधो, चाहे मातृभूमि या राष्ट्र के साथ, श्रद्धा या प्रेम की दामरी के सिवा और कोई उपाय नहीं है। लोभ या बल के बंधन सब निकृष्ट हैं।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (कल्पवृक्ष, कृष्ण का लीलावपु)

जिज्ञासा का अभाव अश्रद्धा है। जिज्ञास्य विषय को अपने अध्यवसाय की क्षमता से अनुभव का विषय बना सकना यही श्रद्धा का लक्षण है। आत्म-विश्वास ही श्रद्धा है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (वेद-विद्या, पृ० १३२)

अपने में अविश्वास का होना अश्रद्धा का रूप है। प्रश्नों का उत्पन्न न होना तो तम या मूर्च्छा है। संदेह या प्रश्नों को परास्त करने की शक्ति ही जिज्ञासु की श्रद्धा कहलाती है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (वेद-विद्या, पृ० १३२)

श्रद्धा या आस्था के बिना जीवन-दृष्टि तो नहीं होती, जीने का ढर्रा या नक्शा-भर बन सकता है।

—अज्ञेय (भवन्ती, पृ० ९२)

श्रद्धा—वह भोग्य है, अनुभव के क्षेत्र में है।

धर्म, सम्प्रदाय—वह केवल जाना जा सकता है, भोगा नहीं जा सकता।

भगवान को—कभी पहचान सकते हैं।

मठ या चर्च—उन्हें केवल जाना जाता है।

—अज्ञेय (भवन्ती, पृ० ९४)

अश्रद्धा की अपेक्षा श्रद्धा अच्छी है। लेकिन बेवक़ूफी की अपेक्षा तो अश्रद्धा ही अच्छी है।

—काका कालेलकर (युगानुकूल हिन्दू जीवन दृष्टि, पृ० ३०३)

मानो तो देवता न मानो तो पत्थर।

—हिन्दी लोकोक्ति

ठाकुर पत्थर, माला लक्कड़, गंगा जमुना पानी।
जब लग मन में साँच न उपजै, चारो वेद कहानी॥

—अज्ञात

तुं काष्ठमां, पथ्थर वृक्ष सर्वमां,
श्रद्धा ठरी ज्यां जई त्यां बधे जतुं।
तने नमुं, पथ्थर ने य हुं नमुं,
श्रद्धातणुं आसन ज्यां नमुं तहीं।

तू लकड़ी, पत्थर, वृक्ष में और सबमें है! जहाँ जाकर श्रद्धा स्थित होती है, उन सब स्थानों पर तू है। मैं तुझे नमन करता हूं। मैं पत्थर को भी नमस्कार करता हूं। जहाँ-जहाँ श्रद्धा का आसन है, वहाँ नमन करता हूं।

[गुजराती] —सुन्दरम् ('नमुं' कविता)

मन में प्रसन्नता और बड़ी आकांक्षा पैदा कर देना श्रद्धा की पहचान है।

—मिलिन्दप्रश्न (२।१।८)

चाहे गुरु पर हो और चाहे ईश्वर पर हो, श्रद्धा अवश्य रखनी चाहिए, क्योंकि बिना श्रद्धा के सब बातें व्यर्थ होती हैं।

—समर्थ रामदास (दासबोध, पृ० २०१)

अन्तर की श्रद्धा-भक्ति तथा संस्कारगत धारणा और हृदय का प्रेम एक ही वस्तु नहीं है।

—शरत्चन्द्र (शेष परिचय, पृ० २७७)

पवित्र स्थान को ख़ाली नहीं रहना चाहिये। ईश्वर दर्द की जगह में रहता है। ईश्वर दिल से निकल गया तो दिल में एक बड़ा घाव हो जायेगा। दिल में निरा दर्द ही दर्द रह जायगा, याद रखो। अस्तु, एक नई श्रद्धा उत्पन्न करने की ज़रूरत है।

—मैक्सिम गोर्की

Distinguish between creed and faith.

साम्प्रदायिक मत और श्रद्धा में अन्तर समझो।

—स्वामी रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइजेशन, खण्ड २, पृ० १६०)

To believe only possibilities is not faith, but mere Philosophy.

केवल संभावनाओं में विश्वास करना श्रद्धा नहीं, मात्र दर्शनशास्त्र है।

—सर टामस ब्राउन (रेलिजियो मेडिसी, १।४६)

श्रम

देहवाक्चेतसां चेष्टाः प्राक् श्रमाद् विनिवर्त्तये।

देह, वाणी तथा चित्त के व्यापार को श्रम होने के पहले ही बन्द कर देना चाहिए।

—शुक्रनीति (३।२६)

जिन देशों में हाथ और मुँह पर मज़दूरी की धूल नहीं पड़ने पाती वे धर्म और कलाकौशल में कभी उन्नति नहीं कर सकते।

—सरदार पूर्णसिंह ('मज़दूरी और प्रेम' निबंध)

आनन्द और प्रेम की राजधानी का सिंहासन सदा से प्रेम और मज़दूरी के ही कंधों पर रहता आया है।

—सरदार पूर्णसिंह ('मज़दूरी और प्रेम' निबंध)

श्रम पूंजी से कहीं श्रेष्ठ है। मैं श्रम और पूंजी का विवाह करा देना चाहता हूं। वे दोनों मिलकर आश्चर्यजनक काम कर सकते हैं।

—महात्मा गांधी (सर्वोदय, पृ० ११४)

विचारपूर्वक किया हुआ श्रम उच्च से उच्च प्रकार की समाजसेवा है।

—महात्मा गांधी (शरीर-श्रम, पृ०२६)

समय पड़ने पर मेहनत-मजूरी करके खाने से जनेऊ नीचा नहीं हो जायगा।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० २१६)

हम सब का अभ्युदय एक क्रम से ही होगा,
बातों से कुछ नहीं काम श्रम से ही होगा।
रहे रक्त वा अश्रुपात के हम अभ्यासी,
पर अब अपनी भूमि पसीने की ही प्यासी।

—मैथिलीशरण गुप्त (राजा प्रजा, पृ० ४२)

जिस देह से श्रम नहीं होता···पसीना नहीं निकलता, सौन्दर्य उस देह को छोड़ देता है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (कल्पतरु, पहला अंक)

जो श्रम नहीं करता, दूसरों के श्रम से जीवित रहता है, सबसे बड़ा हिंसक होता है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (कालविजय, तीसरा अंक)

श्रम-साध्य पसीना मोती की बूंद बनता है।

—अमृतलाल नागर (एकता नैमिषारण्ये, पृ० ४३६)

है मनुष्य की देह में, कैसा एक रहस्य
शत्रु मित्र हैं संग ही, श्रम एवं आलस्य।

—रुद्रदत्त मिश्र

इरुंद काल मूदेवि, नडंद माल शीदेवि।

स्थिर रहने वाले के पैर में दुर्भाग्य देवी, चलने वाले के पैर में श्री देवी।

—तमिल लोकोक्ति

सम्पूर्ण प्रेरणा अंधी है, सिवा उन घड़ियों के जिनमें श्रम का अस्तित्व है।

—खलील जिब्रान (जीवन-सन्देश, पृ० ३६)

जब तुम प्रेमपूर्वक श्रम करते हो तब तुम अपने-आप से, एक-दूसरे से और ईश्वर से संयोग की गाँठ बांधते हो।

—खलील जिब्रान (जीवन-सन्देश, पृ० ३६)

श्रम प्रेम को प्रत्यक्ष करता है।

—खलील जिब्रान (जीवन-सन्देश, पृ० ३६)

श्रम करने वाले मनुष्य की निद्रा मधुर होती है।

—पूर्वविधान (पुरोहित, ५।१२)

जिस अन्न का मनुष्य उपभोग करता है उसकी सहायता से उसे ऐसे श्रम करने चाहिए जिनसे अन्न की पुनः उत्पत्ति हो।

—तोलस्तोय (ह्वाट शैल वी डू देन)

No form of labour is degrading which serves social ends and which society needs.

ऐसा कोई भी श्रम-रूप अपयशकर नहीं है जो सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो और समाज को जिसकी आवश्यकता हो।

—लाला लाजपतराय

Such hath it been—shall be—beneath the sun.
The many still must labour for the one.

संसार में ऐसा होता रहा है और होता रहेगा कि एक के लिए अब भी अनेक लोग श्रम करें।

—बायरन (दि कोर्सेयर, १।८)

Honest labour bears a lovely face

ईमानदारी से परिश्रम करने पर मुख सुन्दर लगता है।

—टामस डेक्कर (पेशेण्ट ग्रिस्सेल)

We put our love where we have put our labour.

हमने जहाँ श्रम किया है वहाँ प्रेम भी करते हैं।

—एमर्सन (जर्नल्स, १८४३)

No race can prosper till it learns there is as much dignity in tilling a field as in writing a poem.

कोई जाति भी तब तक प्रगति नहीं कर सकती जब तक वह यह न सीख ले कि खेत जोतना कविता लिखने के समान ही सम्मान की बात है।

—बुकर टी० वाशिंगटन (भाषण, १८ सितम्बर १८९५)

श्रमिक

अपनी खेती अपने काम आए, अपनी मेहनत अपनी रोटी कमा लाये, इसी का नाम स्वराज्य है। मजदूरी जब इस भावना के बिना होती है तब पशु की मेहनत के बराबर होती है।

—लोकमान्य तिलक (१५ दिसम्बर १९०७ को बम्बई में मजदूरों की सभा में भाषण)

संसार के मज़दूरों! एक बनो।

—मार्क्स व एंगेल्स (कम्युनिस्ट घोषणापत्र के अन्तिम शब्द, १९२८)

कारखाने में उपकरण मज़दूर का उपयोग करते हैं।

—मार्क्स (कैपिटल, भाग १)

वे अपने कन्धों पर उठाकर हजारों मन अनाज जहाज पर लादते हैं ताकि अपना पेट पालने के लिए एक-दो सेर अनाज उपलब्ध कर सकें।

—मैक्सिम गोर्की (कहानी चेल्काश)

हमारा जीवन एक अंधियारी रात की तरह है, एक भयंकर स्वप्न-सा है। हमारा खून चूसने वालों ने हमारा इतना खून पी लिया है कि उन्हें अपच हो गया है और उल्टी होने लगी है। परन्तु फिर भी वे लोभ के कीड़े जोकों की तरह हमारे शरीर से चिपट रहे हैं।

—मैक्सिम गोर्की (माँ)

सारी दुनिया ही हमारी है। श्रमजीवियों का सारा संसार है। हमारा न तो कोई एक राष्ट्र है और न हमारी कोई एक जाति है। दुनिया भर में ही हमारे बन्धु हैं और शत्रु हैं। सारे श्रमजीवी हमारे बन्धु है और सारे सरमायेदार और उनके साथी सभी अधिकारी हमारे शत्रु हैं। जब हम श्रमजीवियों को दुनिया में बसने वाली अपनी महान संख्या का ज्ञान होता है, तब हम लोगों को अपने भावों की विशाल शक्ति का पता चलता है, जिससे हमारे हृदय में ऐसा आनन्द आता है, ऐसा आह्लाद होता है, हृदय ऐसा आनन्दोन्मत्त हो जाता है कि हमारी अन्तरात्मा के सारे तार झंकार उठते हैं।

—मैक्सिम गोर्की (माँ)

हम लोग जिन्दगी भर अपना खून, पसीना करते हैं, परन्तु हम हमेशा गन्दगी में ही पड़े-पड़े सड़ते है। दूसरे हमें धोखा देकर हमारी मेहनत के बल पर मोटे बनते हैं, आनंद मनाते है, और हम अज्ञानता की जंजीरों से जकड़े हुए कुत्तों की तरह जीवन बिताते है। हम अज्ञान के घोर अन्धकार में पड़े हैं और दिन रात भय से अपना जीवन बिताने के कारण हर आदमी और हर चीज से डरते हैं।

—मैक्सिम गोर्की (माँ)

हमेशा और जगह काम करने में तो सबसे आगे, परन्तु जीवन में सबसे पीछे हम रहते है। किसे हमारी चिन्ता है?

किसे हमारे हितों की फिक्र है? कौन हमें समझता है? कोई नहीं।

—मेक्सिम गोर्की (माँ)

कामगारों उठो! तुम्हीं जीवन के मालिक हो। सभी तुम्हारे परिश्रम पर निर्भर हैं। परिश्रम के लिए ही बस तुम्हारे हाथ खोले जाते हैं। वरना तुम उनके बन्दी हो। उन्होंने तुम्हारी आत्मा को मार दिया है। तुम्हें सब तरह से लूट लिया है। अपने दिल और दिमाग़ को मिलाकर एकता की शक्ति उत्पन्न करो, जिससे तुम सारी दुनिया पर विजय प्राप्त कर लोगे। तुम्हारे सिवाय और कोई तुम्हारा इस दुनिया में मददगार और मित्र नहीं है।

—मैक्सिम गोर्की (माँ)

श्राद्ध

सर्वं श्रद्धया दत्तं श्राद्धम्।

जो कुछ श्रद्धा से किया जाय, वह सब श्राद्ध कहलाता है।

—भास (प्रतिमा नाटक, अंक ५)

श्रीमद्भगवद्गीता

दे० 'गीता'।

श्रीमद्भागवत

दे० 'भागवत (पुराण)'।

श्रुति और स्मृति

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे प्रकीर्तिते।
काणः स्यादेकहीनोऽपि द्वाभ्यमन्धः प्रकीर्तितः॥

'श्रुति और स्मृति' ब्राह्मणों के दो नेत्र कहे गये हैं, एक से हीन होने पर काना और दोनों से हीन होने पर अन्धा कहा जाता है।

—अत्रि-संहिता (३४९)

श्रेय और प्रेम

श्रेयो हि धीरोऽपि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।

धीर पुरुष श्रेय को ग्रहण करता है और मन्दबुद्धि पुरुष योगक्षेम की इच्छा से प्रेय को ग्रहण करता है।

—कठोपनिषद्

यावद् वयो योगविधौ समर्थं
बुद्धिं कुरु श्रेयसि तावदेव।

जब तक वय योगाभ्यास करने में समर्थ है, तब तक अपनी बुद्धि को श्रेय में लगाओ।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ५।४९)

श्रेष्ठता

अक्रोधनः क्रोधनेभ्यो विशिष्टस्-
तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः।
अमानुषेभ्यो मानुषश्च प्रधानो
विद्वांस्तथैवाविदुषः प्रधानः।

क्रोधशीलों से अक्रोधशील मनुष्य श्रेष्ठ हैं। असहनशीलों से सहनशील मनुष्य श्रेष्ठ है। मनुष्येतरों से मनुष्य श्रेष्ठ है और अविद्वानों से विद्वान श्रेष्ठ हैं।

—मत्स्यपुराण (३६।६)

तस्मात् प्रमाणं न वयो न वंशः
कश्चित् क्वचिच्छ्रैष्ठ्यमुपैति लोके।

अतः न तो वय प्रमाण है, न वंश। संसार में कोई भी, कहीं भी श्रेष्ठता प्राप्त कर सकता है।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, १।४६)

नास्त्यर्घः पुरुषरत्नस्य।

पुरुष रत्न का कोई मूल्य नहीं होता।

—चाणक्यसूत्राणि (३१२)

कवयो ह्यर्थं विनापीश्वराः।

कविजन तो बिना धन के भी श्रेष्ठ ही होते हैं।

—भर्तृहरि (नीतिशतक)

तं कव्वं जं सहाए पढ़ो अदि, तंसुवण्णं जं कसवट्टए णिवट्टेदि, सा घरिणी जा पिअं रंजेदि, सो पुत्तो जो कुलं उज्जलेदि।

कविता वही है, जो सभा में पढ़ी जाय। सोना वह है जो कसौटी पर कसने से शुद्ध सिद्ध हो। स्त्री वही है जो पति को प्रसन्न करे। पुत्र वही अच्छा है जो कुल को उज्ज्वल करे।

[प्राकृत] —राजशेखर (कर्पूरमंजरी, १।१९ के पश्चात्)

तन्मानुष्यं प्रभवति सतामुत्तमा यत्र जातिः
सैका जातिः प्रसरति यशो यत्र पांडित्यहेतु।
तत् पाण्डित्यं सरसमधुरा जृम्भते यत्र वाणी
वाणी सापि प्रथयति रतिं शांकरी यत्र भक्तिः॥

मनुष्य-जन्म भी वही श्रेष्ठ है जिसमें सज्जनों की उत्तम जाति उत्पन्न होती है। वही एक जाति भी श्रेष्ठ है जिसमें विद्वत्ता के कारण सुयश फैलता है। पांडित्य भी वही श्रेष्ठ है जिसमें सरस व मधुर वाणी प्राप्त होती है। और वाणी भी वही धन्य है जिसमें भगवान शिव की भक्ति आनन्द का विस्तार करती है।

—जगद्धर भट्ट (स्तुतिकुसमांजलि, १७।५)

इह हि गिरिषु प्रालेयाद्रिर्महः सु विभावसुर्-
गुरुषु जननी मंत्रेष्वेकाक्षरं परमं पदम्।
सखिसु सुकृतं वैरिष्वंहो नदीसु नभोनदी
प्रभुषु च परः स्वामी देवः शशांकशिखामणिः॥

इस संसार में समस्त पर्वतों में हिमालय श्रेष्ठ है। तेजस्वियों में सूर्य श्रेष्ठ है। गुरुजनों में माता श्रेष्ठ है। मंत्रों में एकाक्षर मंत्र 'ओम्' श्रेष्ठ है। मित्रों में पुण्य श्रेष्ठ है। शत्रुओं में पाप सबसे बड़ा है और नदियों में आकाशगंगा श्रेष्ठ है। इसी प्रकार सम्पूर्ण देवों में भगवान शिव सर्वश्रेष्ठ हैं।

—जगद्धर भट्ट (स्तुतिकुसुमांजलि, १८।२३)

दया धर्म हिरदै बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन॥

—मलूकदास (मलूकदास जी की बानी, पृ० ३३)

चांवल तो चढ़ियो भलो, पड़ियो भलो ज मेह।
भाग्यो तो वैरी भलो, लाग्यो भलो ज नेह॥

चावल का पकना शुभ है और मेह का बरसना अच्छा है। शत्रु का रणक्षेत्र से भागना अच्छा है और प्रेम का लगना अच्छा है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

बलता तो दीपक भला, टलता भला विघन।
गलता तो वैरी भला, वलता भला सुदिन्न॥

दीपक का जलना अच्छा है, विघ्नों का टलना अच्छा है, वैरियों का नष्ट होना भला है तथा अच्छे दिनों का वापस लौटना भला है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

रिण तूटा सूरा भला, फाटा भला कपास।
भांगा भला अबोलणा, लागा चंदण वास॥

वीर का युद्ध में काम आना अच्छा है, कपास के डोडे का फटना अच्छा है, बोलचाल बन्द होने पर फिर से बोलचाल शुरू होना अच्छा है और चंदन की सुगन्ध लगाना अच्छा है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

मैं अपनी जाति के कारण श्रेष्ठ नहीं हुआ बल्कि मेरे कारण मेरी जाति श्रेष्ठ हुई है। और मुझे अपने आप पर गर्व है, न कि अपने बाप-दादों के कारण।

—मुतनब्बी (अरबी-काव्य-दर्शन, पृ० ११)

श्रेष्ठ मनुष्य

दे० 'श्रेष्ठता' भी।

निर्वीर्ये तु कुले जातो वीर्यवांस्तु विशिष्यते।

निर्बल कुल में जन्म लेकर भी जो बलवान और पराक्रमी है, वही श्रेष्ठ है।

—वेदव्यास (महाभारत, सभापर्व।१६।६)

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्॥

शूर, विद्वान और सेवा धर्म को जानने वाले—ये तीन

प्रकार के मनुष्य पृथ्वी रूप लता से सुवर्ण रूपी पुष्प का संचय करते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व।३५।७५)

भावमिच्छति सर्वस्य श्रेष्ठ मनुष्य नाभावे कुरुते मनः।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपुरुषः॥

जो सभी का शुभ चाहता है, किसी के अशुभ की कामना नहीं करता है, सत्यवादी है, कोमल है और जितेन्द्रिय है, वही उत्तम पुरुष है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व।३६।१६)

धर्ममूला सतां कीर्तिर्मनुष्याणाम्।

श्रेष्ठ पुरुषों की कीर्ति का मूल कारण धर्म ही है।

—वेदव्यास (महाभारत, शल्यपर्व।३२।१६)

येषां गुणेष्वसंतोषो रागो येषां श्रुतं प्रति।
सत्यव्यसनिनो ये च ते नराः पशवोऽपरे॥

जिनका इन (शम-दामादि) गुणों के विषय में संतोष नहीं है, जिनका ज्ञान के प्रति अनुराग है तथा जिनको सत्य के आचरण का ही व्यसन है, वे ही वास्तव में मनुष्य हैं, दूसरे पशु ही हैं।

—योगवासिष्ठ (स्थितिप्रकरण, ३२।४२)

इहार्थमेवारभते नरोऽधमो विमध्यमस्तूभयलौकिकीं क्रियाम्।
क्रियाममुत्रैव फलाय मध्यमो विशिष्ट-धर्मापुनरप्रवृत्तये॥

नीच मनुष्य इस लोक के लिए ही कार्यारम्भ करता है। मध्यम श्रेणी का मनुष्य परलोक में फल पाने के लिए ही और विशिष्ट धर्म वाला (उत्तम श्रेणी) मनुष्य पुनर्जन्म से मुक्ति के लिए कार्य करता है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १८।५५)

वीतस्पृहाणामपि मुक्तिभाजाम्
भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः।

मुक्ति चाहने वाले विरक्त लोगों का भी अच्छे लोगों के प्रति पक्षपात होता है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ३।१२)

आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च।
महारम्भाः कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः॥

अज्ञानी लोग छोटे काम ही आरम्भ करते है और अत्यन्त व्यग्र हो जाते है, बुद्धिमान लोग महान कार्य हाथ में लेते हैं परन्तु व्याकुल नही होते।

—माघ (शिशुपालवध, २।७९)

वज्राद्वज्रकृतं भयं विरमति श्रीः पद्मरागाद्भवेन्—
नानाकारमपि प्रशाम्यति विषं गारुत्मतादश्मनः।
एकैकं क्रियते प्रभावनियमात् कर्मेति रत्नैः परं
पुंरत्नैः पुनरप्रमेयमहिमोन्नद्धैर्न किं साध्यते॥

हीरे से बिजली का भय नष्ट होता है। पद्मराग से श्री बढ़ती है। पन्ना से अनेक प्रकार का विष दूर होता है। इस प्रकार रत्न तो प्रभाव-नियम से एक-एक कार्य करते हैं परन्तु अपरिमित महिमा वाले पुरुष-रत्न क्या सिद्ध नहीं कर लेते हैं?

—कल्हण (राजतरंगिणी, ४।३२१)

तुंगात्मनां तुंगतराः समर्थाः मनोरथान्
पूरयितुं न नीचाः।

श्रेष्ठ पुरुषों के मनोरथों को पूर्ण करने में नीच नहीं, श्रेष्ठ पुरुष ही समर्थ होते हैं।

—अज्ञात

अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति।

पुण्यवान लोग जिसको स्वीकृत कर लेते है, उसका पालन करते है।

—अज्ञात

द्वेमे भिक्खवे, पुग्गला दुल्लभा लोकस्मि।
कतमे द्वे?
यो च पुब्बकारी, यो च कतञ्ञू कतवेदी।

भिक्षुओं! संसार में दो व्यक्ति दुर्लभ है। कौन से दो? उपकारी और कृतज्ञ।

[पालि] —अंगुत्तरनिकाय (२।११।२)

द्वेमे, भिक्खवे, प्रग्गाला दुल्लभा लोकस्मिं।
कतमे द्वे तित्तो च तप्पेता च।

भिक्षुओं! संसार में दो व्यक्ति दुर्लभ हैं। कौन से दो? तृप्त और तृप्तिप्रदाता।

[पालि] —अंगुत्तरनिकाय (२।११।३)

विज्जाचरण सम्पन्नो, सो सेट्ठो देवमानुसे।

जो विद्या और सदाचार से सम्पन्न है, वह सब देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ है।

[पालि] —मज्झिमनिकाय (२।३।५)

यम्ही न माया वसती न मानो,
यो वीतलोभो अममो निरासो।
पनुण्णकोधो अभिनिव्वुतत्तो
सो ब्राह्मणों सो समणो स भिक्खू॥

जिसमें न दम्भ है, न अभिमान है, न लोभ है, न स्वार्थ है, न तृष्णा है और जो क्रोध से रहित तथा प्रशान्त है, वही ब्राह्मण है, वही श्रमण है, और वही भिक्षु है।

[पालि] —उदान (३।६)

जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी।
नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी।
मगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं।
ते नरबर थोरे जग माहीं॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२३१।४)

कसे मर्द तमामस्त कज तमामी
कुनद वा खाजगी कारे गुलामी।

पूर्ण मनुष्य वही है जो पूर्ण होने पर और बड़ा होने पर भी नम्र रहता हो और सेवा में निमग्न रहता हो।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

धन-वैभव और इन्द्रिय-विषयों पर उत्तम जन आसक्त नहीं होते और वे यह मानते हैं कि इनसे बढ़कर अन्य कोई अन्धकार इस संसार में नहीं है। वे मानते हैं कि दान, करुणा, ध्यान तथा विषयों से विरक्ति इनके अतिरिक्त और किसी के द्वारा सत्य ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं।

—कम्ब (कंब रामायण, सुन्दरकाण्ड)

वही मनुष्य श्रेष्ठ है जो पराये को अपना बना ले।

—विमलमित्र (चलते-चलते, पृ० ४६)

तुम पृथ्वी के नमक हो परन्तु यदि नमक अपना स्वाद खो बैठे तो उसे किस वस्तु से नमकीन किया जाएगा?

—नवविधान (मत्ती।५।१३)

श्रोता

Philosophers and clergymen are always discussing why we should be good—as if anyone doubted that he ought to be.

दार्शनिक लोग और पादरी लोग सदैव ही यह विवाद करते रहते हैं कि मनुष्य को अच्छा क्यों होना चाहिए मानो कि किसी को इस विषय मे सन्देह रहता हो कि उसे अच्छा होना चाहिए।

—जार्ज मैकाले ट्रेवेल्यन

शुश्रूषुरपि दुर्मेधाः पुरुषो नियतेन्द्रियः।
नालं वेदयितुं कृत्स्नो धर्मार्थाविति मे मतिः॥

मेरा विचार है कि जिस मनुष्य की बुद्धि दुर्भावना से युक्त है तथा जिसने अपनी इन्द्रियो को वश मे नहीं रखा है, वह धर्म और अर्थ की बातों को सुनने की इच्छा होने पर भी उन्हें पूर्ण रूप से समझ नही सकता।

—वेदव्यास (महाभारत, सौप्तिकपर्व, ५।१)

मीनालिनो महिषहंसबकस्वभावा
मार्जारिकाकवृककंकजलौकतुल्यः।
सच्छिद्रकुम्भजलसिन्धुशिलोपमाश्च
ते श्रावकाश्च सुचतुर्दशधा भवन्ति॥

वे भले-बुरे श्रोता चौदह प्रकार के होते है मीन, भ्रमर, महिष, हंस, बक, काक,वृक,कक, जोंक, छिद्रयुक्त घट, जल, सिन्धु और शिला। इनके समान स्वभाव वाले होने के कारण वे इन्हीं नामों से कहे गए हैं।

—हरिवंशपुराण (श्रीहरिवंशमाहात्म्य, ४।६५)

प्रभुर्वीतक्षान्तिः सुहृदतिशठः स्त्री परुष-
वाक्सुतो गर्वोन्निद्धः परिजन उदात्तप्रतिवचाः।
इयान्सोढुं शक्यो ननु हृदयदाही परिकरो
न तु श्रोतावज्ञालुलितनयनान्तं परिभवन्॥

क्षमाहीन स्वामी, अत्यन्त शठ सुहृत्, कटुभाषिणी स्त्री, गर्व से उद्दण्ड पुत्र तथा आज्ञा न मानकर उत्तर देने वाला सेवक—यह हृदय से दग्ध कर देने वाला उपकरण सह लिया

जा सकता है, परन्तु श्रोता के अवज्ञापूर्ण चंचल कटाक्ष से प्राप्त होने वाला अनादर कदापि सह्य नहीं है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, कलश।६१६)

विपुलहृदयाभियोग्ये खिद्यति काव्ये जडो न मौर्ख्ये स्वे।

अति उदार एवं विशाल हृदय द्वारा अभिनन्दनीय काव्य पर तो मूर्ख खेद प्रकट करता है किन्तु अपनी मूर्खता पर उसे कोई खेद नहीं होता।

—अर्गट (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १५३)

बहूनि नरशीर्षाणि लोमशानि बृहन्ति च।
ग्रीवासु प्रतिबद्धानि किंचित् तेषु सकर्णकम्॥

घने बालों वाले बहुत से बड़े-बड़े नरमुंड गर्दनों से चिपके हुए हैं लेकिन उनमें कानों वाले कुछ ही होते है।

—अज्ञात

श्लोक

पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा॥

मुझ शोक-पीड़ित के मुख से निकला यह चरण-बद्ध, सम अक्षर युक्त तथा वीणा की लय से समन्वित श्लोक अन्यथा न होवे।

— वाल्मीकि (रामायण, १।२।१८)

समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा।
सोऽनुव्याहरणाद् भूयः शोकः श्लोकत्वमायतः॥

महर्षि वाल्मीकि ने क्रौंच पक्षी के दुःख से दुखी होकर जिस समान अक्षरों वाले चार चरणों से युक्त वाक्य का गान किया था, वह था तो उनके हृदय का शोक, किन्तु उनकी वाणी द्वारा उच्चरित होकर श्लोक रूप (काव्यरूप) हो गया।

—वाल्मीकि (रामायण, १।२।४०)

ष

ष

पकारं शृणु चार्वंगि अष्टकोणमयं सदा।
रक्तं चन्द्रप्रतीकाशं स्वयं परमकुण्डली॥
चतुर्वर्गमयं वर्णं पंचप्राणमयं सदा।
रजः सत्त्वतमोयुक्तं त्रिशक्तिसहितं तदा॥
त्रिविन्दुसहितं वर्णम् आत्मादितत्त्वसंयुतम्।
सर्वदेवमयं वर्णं हृदि भावय पार्वति॥

हे सुन्दरी पार्वती! 'ष' अक्षर सदा अष्टकोणमय है, रक्तवर्ण तथा चन्द्रप्रतीकाश है। यह स्वयं परमकुण्डली है। चतुर्वर्गमय है, सदा पंचप्राणमय हैं। रज, सत्, तम से युक्त तथा त्रिशक्ति सहित, त्रिविन्दुसहित तथा आत्मादितत्त्व से युक्त है। इस सर्वदेवमय वर्ण को हृदय में धारण करो।

—कामधेनुतंत्र

षट्कर्म

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्माण्यग्रजन्मनः॥

ब्राह्मणों के षट्कर्म ये है—अध्यापन, अध्ययन, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना तथा दान लेना।

—मनुस्मृति (१०।७५)

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिर्नौलिकी त्राटकस्तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्॥

धौति, वस्ति, नेति, नौली, त्राटक और कपालभाति—इस (योगियों के) षट्कर्म का आचरण करना चाहिए।

—घेरंड सहिता

शान्ति-वश्य-स्तंभनानि विद्वेषोच्चाटने ततः।
मारणान्तानि शंसन्ति षट्कर्माणि मनीषिणः॥

शान्ति, वशीकरण, स्तंभन, विद्वेष, उच्चाटन और मारण को (तांत्रिक) मनीषी षट्कर्म कहते हैं।

—शारदातिलक

इज्याध्ययनदानानि याजनाध्यापने तथा।
प्रतिग्रहश्च तैर्युक्तः षट्कर्मा विप्रउच्यते॥

यज्ञ करना, यज्ञ कराना, अध्ययन, अध्यापन, दान देना और दान लेना ये (ब्राह्मणों के) षट्कर्म कहे जाते हैं।

—अज्ञात

षट्चक्र

सप्तपद्मानि तत्रैव सन्ति लोका इव प्रभो।
गुदे पृथ्वीसमं चक्रं हरिद्वर्णं चतुर्दलम्॥
लिंगे तु षड्दलं चक्रं स्वाधिष्ठानमिति स्मृतम्।
त्रिलोकवह्निनिलयं तप्तचामीकरप्रभम्॥
नाभौ दशदलं चक्रं कुण्डलिन्यां समन्वितम्।
नीलांजननिभं ब्रह्मस्थानं पूर्वकमन्दिरम्॥
मणिपूराभिधं स्वच्छं जयस्थानं प्रकीर्तितम्।
उद्यदादित्यसंकाशं हृदि चक्रमनाहतम्॥
कुंभकाख्यं द्वादशारं वैष्णवं वायुमन्दिरम्॥
कंठे विशुद्धशरणं षोडशारं पुरोदयम्।
शांभवीवरचक्राख्यम् चन्द्रविन्दुविभूषितम्॥
षष्ठमाज्ञालयं चक्रं द्विदलं श्वेतमुत्तमम्।
राधाचक्रमिति ख्यातं मनः स्थानं प्रकीर्तितम्॥
सहस्रदलमेकार्णं परमात्मप्रकाशकम्॥
नित्यं ज्ञानमयं सत्यं सहस्रादित्य-सन्निभम्।
षट्चक्राणि भेद्यानि नैतद् भेद्यं कथंचन॥

शरीर में सात कमल सात लोकों के समान होते हैं। गुदा में पृथ्वी के समान हरितवर्ण और चार दल वाला 'मूलाधार चक्र' होता है। लिंग में 'षड्दल चक्र' होता है जिसे 'स्वाधिष्ठान चक्र' कहते हैं, जो त्रिलोक में व्याप्त अग्निकर निवास है और तप्त स्वर्ण के समान प्रभावाला है। नाभि में दशदलचक्र कुण्डलिनी में समन्वित हैं। यह नीलांजन के समान, ब्रह्मस्थान और उसका मन्दिर है। इसे 'मणिपूर चक्र' कहते हैं, जो स्वच्छ जप के समान प्रसिद्ध है। हृदय में 'अनाहत चक्र' है जो उदय होते सूर्य के समान प्रकाशमान है। इसका नाम 'कुंभक' भी है, यह द्वादश अक्षरों वाला वैष्णव और वायुमंदिर है। कंठ में 'विशुद्धशरण चक्र' है, जिसमें सोलह अरे हैं। यह पुरोदय, 'शांभवी वर चक्र' कहा जाता है

जो चन्द्रबिन्दु से सुशोभित है। छटा 'आज्ञालय चक्र' है जो दो दल वाला और श्वेतवर्ण है। यह 'राधाचक्र' नाम से भी प्रसिद्ध है और मन का स्थान है। ये ही पट्चक्र (ज्ञानार्थ) क्रमशः भेदन करने योग्य हैं। 'सहस्रदलचक्र' परमात्मा से प्रकाशित है। यह नित्य, ज्ञानमय, सत्य और सहस्रसूर्यो के के समान प्रकाशमान है। इसका भेदन नहीं होता।

—पद्मपुराण (स्वर्गखण्ड, अध्याय २७)

षडंग

दे० 'वेदांग'।

षोडशमातृका

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः॥
शान्तिः पुष्टिर्धृतिस्तुष्टिरात्मदेवतया सह।
आदौ विनायकः पूज्यः अन्ते च कुलदेवता॥

गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, लोकमाताएं, शांति, पुष्टि, धृति, तुष्टि तथा आत्मदेवता (इन षोडश मातृकाओं) के साथ सर्वप्रथम विनायक (गणेश) का पूजन करे तथा अन्त में कुल-देवता का।

—श्राद्धतत्त्व

स

संकट

ख़तरा हमारी छिपी हुई हिम्मतों की कुंजी है। ख़तरे में पड़कर हम भय की सीमाओं से आगे बढ़ जाते है और वह कुछ कर गुज़रते है जिस पर हमें ख़ुद हैरत होती है।

—प्रेमचन्द (गुप्तधन, भाग २, पृ० ५२)

आसमान से गिरे, खजूर में अटके।

—हिन्दी लोकोक्ति

आगे कुआं, पीछे खाई।

—हिन्दी लोकोक्ति

संकट ही चरित्र को निखार कर नैतिक बल प्रदान करते हैं।

—सैमुअल स्माइल्स (कर्त्तव्य, पृ० १७)

संकट पहले अज्ञान और दुर्बलता से उत्पन्न होते हैं और फिर ज्ञान और शक्ति की प्राप्ति कराते हैं।

—जेम्स एलेन (आनन्द की पगडंडियां, पृ० २३)

Dangers by being despised grow great.

संकटों से घृणा की जाए तो वे बड़े हो जाते हैं।

—एडमंड बर्क (यूनिटेरियनों के पेटीशन पर भाषण, १७९२)

संकल्प

उदारतां सूनृता उत पुरन्धी रुदग्नयः शुशुचानासो अस्थिः।

हमारे मुख से प्रिय एवं सत्य वाणी निकले। हमारी प्रज्ञा प्रवुद्ध हो। सत्कर्म के लिए हमारा दीप्त संकल्प बल पूर्ण रूप से प्रज्वलित हो।

—ऋग्वेद (१।१२३।६)

मनसः काममाकूति वाचः सत्यमशीय।

मेरे मन के संकल्प पूर्ण हों। मेरी वाणी सत्य व्यवहार वाली हो।

—यजुर्वेद (३९।४)

संकल्पो वाव मनसो भूयान्।

संकल्प ही मन से बढ़कर है।

—छान्दोग्योपनिषद्

ना यथा यतते नित्यं यद्भावयति यन्मयः।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवतिनान्यथा॥

मनुष्य जैसा नित्य यत्न करता है, जिसमे तन्मय होकर जैसी भावना करता है और जैसा होना चाहता है, वैसा ही हो जाता है. अन्य प्रकार का नहीं।

—योगवासिष्ठ (६ उ०।१५७।३१)

सर्वः स्वसंकल्पवशाल्लघुभवति वा गुरुः।

सब कुछ अपने संकल्प द्वारा ही छोटा या बड़ा बन जाता है।

—योगवासिष्ठ (३।७०।३०)

संकल्पमात्रकलनैव जगत् समग्रं मनोविलासः।

संकल्प मात्र की रचना ही यह समग्र जगत् है। संकल्प मात्र की रचना ही मनोविलास है।

—योगवासिष्ठ

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसंभवाः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥

इच्छा का मूल संकल्प है। यज्ञ संकल्प से होते है। सब व्रत, यम-धर्म आदि संकल्प से ही होते हैं।

—मनुस्मृति (२।३)

अंगणवेदी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य धीरस्य॥

अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कृतप्रतिज्ञ धीर मनुष्य के लिए पृथ्वी आँगन की वेदी के समान, समुद्र नहर के समान पाताल स्थल के समान है तथा सुमेरु वल्मीक के समान है।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, ७।१)

तं परिण्णाय मेहावी,
इयाणिं णो, जमहं पुव्वमकासी पमाएणं।

मेधावी साधक को आत्म-परिज्ञान के द्वारा यह निश्चय करना चाहिए कि मैंने पूर्व जीवन में प्रमादवश जो कुछ भूलें की हैं, वे अब कभी नहीं करूँगा।

[प्राकृत] —आचारांग (१।१।४)

संकल्प तो संकल्पकर्त्ता रूपी नाविक के लिए दीपक रूप है। दीपक की ओर लक्ष्य रखे तो अनेक तूफानों में से गुजरते हुए भी मनुष्य उबर सकता है।

—महात्मा गांधी (हिंदी नवजीवन, ५ अगस्त १९२६)

जब तक हमारे शरीर मे अक्ल है, और अक्ल में तमीज करने की शक्ति, जब तक हमारे हृदय में भाव है और भावों में आगे बढ़ने का बल, जब तक हमें अपनी मातृभूमि का ज्ञान है और हमारी मातृभूमि में हमें उत्साहित करने की शक्ति, जब तक हमारे नेत्र संसार की ओर हैं और संसार में आगे बढ़ने के लिए रास्ते, तब तक हम कदापि पीछे नहीं देखेंगे, पीछे कदम नहीं रखेंगे, और पीछे नहीं मुड़ेंगे।

—गणेश शंकर विद्यार्थी (साप्ताहिक प्रताप, १६ नवम्बर १९१३)

महान संकल्प ही महान फल का जनक होता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (चारु चन्द्र लेख, पृ० ८९)

संकल्प से कर्ता बने, संकल्प से भोक्ता बने।
संकल्प से दुःखी सुखी, संकल्प से भर्ता बने॥
सकल्प से ऊँचा चढ़े, संकल्प से नीचे पड़े।
संकल्प से रोवे हँसे, संकल्प से जन्मे मरे॥

—भोले बाबा (वेदान्त छन्दावली, भाग ४)

संकल्प और भावना जीवन-तखड़ी के दो पलड़े हैं। जिसको अधिक भार से लाद दीजिए वही नीचे चला जाएगा। संकल्प कर्तव्य है और भावना कला। दोनों के समान समन्वय की आवश्यकता है।

—वृन्दावनलाल वर्मा (मृगनयनी, पृ० ४८७)

'ज़फर' क्या पूछता है राह मुझसे उसके मिलने की
इरादा हो अगर तेरा तो हर जानिब[1] ही रस्ता है।

—बहादुरशाह 'ज़फ़र'

[1]. दिशा।

महापुरुषों के संकल्प होते हैं, दुर्बलों की केवल इच्छाएं।

—चीनी लोकोक्ति

Will is the king of mental powers.

संकल्प-शक्ति तो मानसिक शक्तियों की शिरोमणि है।

—शिवानन्द (थॉट पॉवर, पृ० ५६)

...What though the field be lost?
All is not lost, the unconquerable will
And study of revenge, immortal hate
And courage never to submit or yield.

युद्धक्षेत्र मे मेरी हार हो गई है तो क्या हुआ? सर्वस्व तो नही चला गया है। मेरी अजेय संकल्प शक्ति, प्रतिशोध की तैयारी, अमर घृणा और कभी भी समर्पण न करने और कभी भी न झुकने का साहस तो है।

—मिल्टन (पैरेडाइज़ लास्ट, १।१०५)

People do not lack strength, they lack will.

मनुष्य में शक्ति की कमी नही होती, संकल्प की कमी होती है।

—विक्टर मेरी ह्यूगो

Will is Character in action.

संकल्प कार्यशील चरित्र है।

—विलियम मैक्डूगल

संकुचितता

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः
क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति।

'यह कुआं हमारे पिता का है', ऐसा कहते हुए कापुरुष खारी जल पीते हैं।

—योगवासिष्ठ (६।उ०।१६३।५६)

कुतो नाम गंगावगाहनं कूपमण्डूकानाम्।

कूप-मण्डूकों को गंगा-स्नान का पुण्य कहां?

—हरिदास सिद्धांतवागीश (वंगीय प्रताप नाटक)

संकेत

सुज्ञं प्रतींगितविभावनमेव वाचः ।

बुद्धिमान व्यक्ति को संकेत करना ही कहना है ।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ११।१०१)

अरुण इव पुरः सरो रविं पवन इवातिजवो जलागमम् ।
शुभाशुभमथापि वा नृणां कथयति पूर्वनिदर्शनोदयः ॥

जैसे आगे उदित होने वाला अरुण सूर्य को और पवन का झंकोरा वर्षा को सूचित करता है, उसी प्रकार पहले देखा गया शुभ या अशुभ लक्षण मनुष्यों के होने वाले शुभ या अशुभ को कह देता है ।

—वाणभट्ट (हर्षचरित, चतुर्थ उच्छ्‌वास)

उदीरितोऽर्थः पशुनापि गृह्यते,
हयाश्च नागाश्च वहन्ति मोदिताः ।
अनुक्तमप्यूहति: पण्डितो जनः
परेंगितज्ञानफला हि बुद्धयः ॥

संकेत रूप से व्यक्त किए भाव को पशु भी ग्रहण कर लेता है घोड़े-हाथी संकेत द्वारा प्रेरित हो एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचाते हैं। पंडित बिना कहे हुए भाव को भी तर्क द्वारा जान लेता है क्योंकि दूसरों के संकेतित अभिप्राय को जानना ही बुद्धि का फल है ।

—शुकसप्तति (११।८६)

The greatest thing in family life is to take a hint when it is intended—and not to take a hint when it is not intended.

पारिवारिक जीवन में सबसे बड़ी बात यह है कि जब संकेत अभिप्रेत हो, तो उसे ग्रहण करें और जब अभिप्रेत न हो, तो न ग्रहण करे ।

—रावर्ट ली फ्रास्ट

संकोच

एक लालसा वड़ि उर माहीं ।
सुगम अगम कहि जात सो नाहीं ॥

—तुलसीदास (रामचरित मानस, १।१४२।२)

कौन संकोच रह्यो है नेवाज
जो तू तरसै उनहूँ तरसावति ।
बावरी जो पै कलंक लग्यो तो
निसंक ह्वै क्यों नहिं अंक लगावति ॥

—नेवाज

नचण बीठी त घूंघट केहा ?

नाचना प्रारम्भ किया तो घूंघट किस लिए ?

[सिंधी] —लोकोक्ति

He who hesitates is sometimes saved.

संकोची व्यक्ति कभी-कभी वच जाता है ।

—जेम्स टर्बर (दि टर्बर कार्निवाल)

संक्षेप

अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः ।

आधी मात्रा की बचत होने पर भी वैयाकरण पुत्र-जन्मोत्सव मनाते हैं ।

—अज्ञात

तुलसी अधिक कहें न रहे रस,
गूलरि को सो फल फौरें ।

अधिक कहने से रस नहीं रह जाता जैसे गूलर के फल को फोड़ने से रस नहीं निकलता ।

—तुलसीदास (श्रीकृष्णगीतावली, पद ४४)

नैतिक शिक्षा देते समय संक्षेप में कहो ।

—होरेस

वाणी का सर्वोत्तम गुण संक्षिप्तता है, चाहे वह सभासद में हो या वक्ता में ।

—सिसरो

जितने कम शब्द होंगे, प्रार्थना उतनी ही अधिक अच्छी होगी ।

—मार्टिन लूथर

इतनी संक्षिप्तता मत रखो कि अस्पष्ट हो जाओ ।

—ट्रायोन एडवर्ड्स

Brevity to writing is what clarity is to all other virtues; righteousness is nothing without the one, nor authorship without the other.

लेखन के लिए संक्षेप वैसा वही है जैसा अन्य गुणों के लिए दानशीलता। एक के विना धार्मिकता कुछ भी नहीं है और दूसरे के विना लेखन।

—राबर्ट सदे

संग

भावाभावे पदार्थानां हर्षामर्षविकारदा।
मलिना वासना यैषा सा संग इति कथ्यते॥

....

संगत्यागं विदुर्मोक्षं संगत्यागादजन्मता।
संगं त्यज त्वं भावानां जीवन्मुक्तो भवानघ॥

पदार्थों के होने में हर्ष और न होने में शोक रूपी विकार उत्पन्न करने वाली जो मलिन वासना है, उसे संग कहते हैं। *संग के त्याग को मोक्ष कहते हैं, संग के त्याग से जन्म से* छुटकारा मिलता है। अतएव हे अनघ समस्त पदार्थों में संग का त्याग करके जीवन्मुक्त हो जाओ।

—अन्नपूर्णोपनिषद्

संगठन

दे० 'एकता' भी।

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

हे मनुष्यो! आप लोग परस्पर अच्छी प्रकार मिलकर रहो। परस्पर मिल कर प्रेम से बातचीत करो। आप लोगों के चित्त एक समान होकर ज्ञान प्राप्त कर। जिस प्रकार पूर्व के विद्वान जन सेवनीय और भजन करने योग्य प्रभु को ज्ञान-सम्पादन करते हुये अच्छी प्रकार उपासना करते रहे, उसी प्रकार आप लोग भी सेवनीय प्रभु की उपासना करो।

—ऋग्वेद (१०।१९१।२)

समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जहोमि॥

इन सबका विचार एक समान हो। परस्पर संगति भी एक समान हो। इनका अन्तःकरण एक समान हो। इनका चित्त एक दूसरे के साथ हो मैं आप लोगों को एक समान विचारवान् करता हूं और एक समान् अन्न से आप लोगों को पालित-पोषित करता हूं।

—ऋग्वेद (१०।१९१।३)

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

आप लोगों का संकल्प, निश्चय और भाव अभिप्राय एक समान रहें। आप लोगों के हृदय एक समान हों। आप लोगों के मन समान हों जिससे आप लोगों का परस्पर का कार्य सर्वत्र एक साथ अच्छी प्रकार हो सके।

—ऋग्वेद (१०।१९१।४)

महानपि एकजो वृक्षो बलवान सुप्रतिष्ठितः।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितं क्षणात्॥
अथ ये सहिता वृक्षाः संघशः सुप्रतिष्ठिताः।
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात्॥

अकेला वृक्ष महान, बलवान और सुदृढ़ होने पर भी वायु के द्वारा बलपूर्वक स्कन्ध सहित उखाड़ कर फेंका जा सकता है परन्तु जो वृक्ष मिलकर संघटित रूप से रहते हैं, वे तीव्र आंधी को सरलता से सह लेते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व ३६।६२-६३)

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ॥

भरतकुलभूषण धृतराष्ट्र! जैसे जलते हुए काष्ठ अलग-अलग कर दिए जाने पर जल नहीं पाते, केवल धुआँ देते हैं और परस्पर मिल जाने पर प्रज्वलित हो उठते हैं, उसी प्रकार कुटुम्बी जन आपसी फूट के कारण अलग-अलग रहने पर अशक्त हो जाते हैं तथा परस्पर सगठित होने पर बलवान एवं तेजस्वी होते है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व।६४।१४)

महोदयानामपि संघवृत्तितां सहायसाध्याः प्रविशन्ति सिद्धयः।

सहायक सामग्री से साध्य सिद्धियां महापुरुषों को भी संगठित होकर प्रवृत्त होने की प्रेरणा देती हैं।

—भारवि (किरातार्जुनीय, १४।४४)

सुसंहतैर्दधदपि धाम नीयते तिरस्कृतिं बहुभिरसंशयं परैः।

तेजस्वी व्यक्ति भी संगठित होकर आए हुए बहुत से शत्रुओं द्वारा निश्चित रूप से तिरस्कृत कर दिया जाता है।

—माघ (शिशुपाल वध, १७।५९)

नासमंजसशीलैस्तु सहासीत कथंचन ।
सदवृत्तसन्निकर्षो हि क्षणार्धमपि शस्यते ॥

संशय में पड़े लोगों के साथ कभी न बैठे। सदाचारियों का आधे क्षण का साथ भी प्रशंसनीय है।

—विष्णुपुराण (३।१२।२१)

अल्पनामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ॥

छोटी भी वस्तुओं का समूह कार्य-साधक होता है। तिनकों से बनी रस्सी से मतवाले हाथी बाँध लिए जाते हैं।

—नारायण पंडित (हितोपदेश १।३५)

संघे शक्तिः कलौ युगे।

कलियुग में शक्ति संगठन में होती है।

—अज्ञात

एक्कम्मि हीलियंमि सव्वे ते हीलिया हुंति ।
एक्कम्मि पूइयंमि सव्वे ते पूइया हुंति ॥

जो एक मुनि की अवहेलना करता है, वह सम्पूर्ण संघ की अवहेलना करता है। जो एक मुनि की प्रशंसा करता है, वह सम्पूर्ण संघ की प्रशंसा करता है।

[प्राकृत] —ओघनिर्युक्ति (गाथा, ५२६-५२७)

वर्ण-व्यवस्था के विशाल संगठन के द्वारा समाज की केवल धार्मिक ही नहीं राजनीतिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति हो जाती थी। गांव के लोग अपना आन्तरिक काम-काज जाति-संगठन के द्वारा चलाते थे और उसी के द्वारा ही शासकों के अत्याचारों का मुक़ाबला करते थे। जिस राष्ट्र में जाति-संगठन के द्वारा अपनी संगठन-शक्ति का ऐसा अच्छा परिचय दिया गया हो, उसकी अद्भुत संगठन-क्षमता से इनकार करना संभव नहीं। जिसने पिछले वर्ष हरद्वार का कुम्भ मेला देखा हो वह आसानी से समझ सकता है कि जो सगठन बिना किसी विशेष प्रयास के सहज ही लाखों तीर्थ-यात्रियों के खान-पान की उत्तम व्यवस्था कर सकता है, वह कितना कौशलपूर्ण होगा।

—महात्मा गांधी (भाषण, मद्रास में 'स्वदेशी' पर, १४ फ़रवरी १९१६)

वास्तविक एकता उन्हीं लोगों की हो सकती है जो कि समान आचार-विचार वाले, समान परम्परा वाले, समान संस्कृति वाले और समान ध्येयुक्त होते हैं।

—केशव बलीराम हेडगेवार

संगठन में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से कुछ कहता नहीं, केवल स्वयं कार्य करता जाता है। जहाँ बार-बार कहने-सुनने के मौक़े आते हों, वहां यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि काम नहीं हो रहा है।

—केशव बलीराम हेडगेवार

संघ में ही शक्ति, गति एक वही सबकी।

—मैथिलीशरण गुप्त (सिद्धराज, पंचम सर्ग)

लोकसंगठन तथा मनःसंगठन एक दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि वे एक ही युग (लोक)-चेतना के बाहरी और भीतरी रूप हैं।

—सुमित्रानन्दन पंत ('उत्तरा' की भूमिका, पृ० ११)

रायि रायि गूर्चि रायगा रायगा
नुन्ननैनयद्दु लन्नि पनुलु
पाटु चेसिनंत वरिपाटि यगुनया ॥

दो पत्थरों को एक दूसरे से रगड़ते रहने से उनके उपरितल का खुरदरापन मिट जाता है। दोनों में चिकनाहट आती है। इसी तरह धैर्य के साथ मिलकर काम करते रहने से असाध्य कार्य भी सहज बन जाते हैं।

[तेलुगु] —वमना

किसी का किसी से मेल नहीं है—इसके कितने ही प्रकार के मतभेद हैं, कितने प्रकार के मान-अभिमानों की अनबन है कमल के पत्ते में पानी की बूंदों की तरह यह अस्थिर है, कभी भी गिरकर कोई अलग हो जाएगा। क्या इस तरह बाहर से एकत्रित की गई भीड़ का नाम 'आर्गनाइज़ेशन (संघटन) है? आर्गेनिक' (सजीव) वस्तु की तरह क्या इसके पैर के नाखून में सुई चुभोने से सिर के केश तक सिहर उठते हैं?

—शरत्चन्द्र (तरुणों का विद्रोह, पृ० २६७)

Organisation is power and the secret of that is obedience.

संगठन शक्ति है और उसका रहस्य आज्ञापालन है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, चतुर्थ खंड, पृ० ४०६)

संगति

दे० 'कुसंगति', 'सत्सगति' भी।

बुद्धिश्च हीयते पुंसां नीचैः सह समागमात्।
मध्यमैर्मध्यतां याति श्रेष्ठतां याति चोत्तमैः॥

नीच पुरुषों का साथ करने से मनुष्यों की बुद्धि नष्ट होती है। मध्यम श्रेणी के मनुष्यों का साथ करने से मध्यम होती है और उत्तम पुरुषों का संग करने से उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होती है।

—वेदव्यास (महाभारत, वन पर्व,१।३०)

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं
तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रंगवशं प्रयाति
यथा स तेषां वशमभ्युपेति॥

जैसे वस्त्र जिस रंग में रंगा जाय, वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार यदि कोई संत या असंत अथवा तपस्वी या चोर की सेवा करता है तो वह उन्हीं के वश में हो जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३६।१०)

वासो न संगः वह कैर्विधेयो
मूर्खैश्च नीचैश्च खलैश्च पापैः।

किन के साथ निवास और संग नहीं करना चाहिए? मूर्खों, नीचों, दुष्टों और पापियों के साथ।

— शंकराचार्य (प्रश्नोत्तरी, १७)

मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः।
पंकच्छिदः फलस्येव निकषेणाविलं पयः॥

विद्वानों की संगति से मूर्ख भी विद्वान बन जाता है जैसे निर्मली के बीज से मटमैला पानी स्वच्छ हो जाता है।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, २।७)

मधुराऽपि हि मूर्च्छयते विषविटपिसमाश्रिता वल्ली।

मधुरलता भी विष वृक्ष पर आश्रित होने से मूर्च्छाकारक हो जाती है।

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, १।२०)

रत्नं रत्नेन संगच्छते।

रत्न रत्न के साथ जाता है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, १।३२ के बाद)

गुणिनः समीपवर्ती पूज्यो लोकस्य गुणविहीनोऽपि।

गुणी के समीप रहने वाला गुणहीन भी संसार के द्वारा पूजनीय होता है।

—अर्गट (वल्लभदेवकृत सुभाषितावली, २४७)

क्षीराश्रितमुदकं क्षीरमेव भवति।

दूध का आश्रय लेने वाला पानी दूध हो जाता है।

—चाणक्यसूत्राणि

असतां संगदोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम्।

दुष्टों की संगति के दोष से सज्जन भी बिगड़ जाते हैं।

—विष्णु शर्मा (पंचतन्त्र, १।७४)

साधुः सत्कृतिसाधुमेव भजते नीचोऽपि नीचं जनं।
या यस्य प्रकृतिः स्वभावजनिता केनापि न त्यजते॥

साधु सत्कार्य करने वाले साधु पुरुष की ही संगति करता है और नीच पुरुष नीच की ही संगति करता है। जिसकी जो स्वाभाविक प्रकृति है उसे कोई भी त्याग नहीं सकता है।

—अज्ञात

पुष्पाणामनुषंगेण सूत्रं शिरसि धार्यते।

फूलों की संगति से सूत्र सिर पर धारण किया जाता है।

— अज्ञात

दोषो गुणाय गुणिनां महदपि दोषाय दोषिणां सुकृतम्।
तृणमिव दुग्धाय गवां दुग्धमिव विषाय सर्पाणाम्॥

गुणियों में दोष भी गुण हो जाते हैं, जबकि महान गुण भी दुष्ट व्यक्ति में दोष हो जाता है, जिस प्रकार से गायों द्वारा खायी गई घास दूध बन जाती है और सांपों द्वारा पिया गया दूध विष बन जाता है।

—अज्ञात

असाधुः साधुर्वा भवति खलु जात्यैव पुरुषो न
संगाद्दौर्जन्यं न हि सुजनता कस्यचिदपि।
प्ररूढे संसर्गे मणिभुजगयोर्जन्मजनितेमणिर्नहिर्-
दोषान् स्पृशति न तु सर्पो मणिगुणान्।

असाधु हो या साधु, निश्चय ही पुरुष तो जाति से ही साधु का असाधु होता है, संगति से दुर्जनता या सज्जनता नहीं होती। मणि और सर्प का जन्मजात साथ है किन्तु मणि सर्प के दोषों को स्पर्श नही करती, न सर्प ही मणि के गुणों को ग्रहण करता है।

—अज्ञात

अनुरूपेण संसर्गं प्राप्य सर्वोऽपि मोदते।

अनुरूप व्यक्ति का संग पाकर सब प्रसन्न होते हैं।

—अज्ञात

यस्य यत्संगतिः पुंसो
मणिवत् स्यात् स तद्गुणः।

जिस पुरुष की, जिसके साथ संगति होती है, वह उसके गुण को मणि के समान धारण करने वाला बन जाता है।

—हरिभक्तिसुधोदय

यादिसं कुरुते मित्तं यादिसं चूपसेवति।
सोपि तादिसको होति सहवासो हि तादिसो॥

जैसे आदमी से मित्रता करता है, जैसे आदमी की संगति करता है, वह भी वैसा ही हो जाता है, क्योंकि उसकी संगति ही वैसी है।

[पालि] —जातक (सत्तिगुम्बजातक)

आवायभद्दए णामं एगे णो संवासभद्दए।
संवासभद्दए णामं एगे यो आवायभद्दए।
एगे आवायभद्दए वि संवासभद्दए वि।
एगे जो आवायभद्दए, णो संवासभद्दए।

कुछ व्यक्तियों से भेंट अच्छी होती है किन्तु सहवास अच्छा नहीं होता। कुछ का सहवास अच्छा रहता है, भेंट नहीं। कुछ से भेंट भी अच्छी होती है और सहवास भी कुछ का न सहवास ही अच्छा होता है और न भेंट ही।

[प्राकृत] —स्थानांग (४।१)

रज्जन्ति छेआ समसंगमम्मि।

विद्वान बराबर वालों का परस्पर संगम देखकर प्रसन्न होते हैं।

[प्राकृत] —राजशेखर (कर्पूरमंजरी, ३।६)

दोस वि गुण हवन्ति संसग्गिए।

[अपभ्रंश] —स्वयम्भूदेव (पउमचरिउ, २६।३)

कबीर तन-पंषी भया, जहँ मन तहँ उड़ि जाइ।
जो जैसी संगति करै, सो तैसे फल खाइ।

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ४८)

संत संग अपबर्ग कर, कामी भव पंथ।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।३३)

तुलसी गुरु लघुता लहत, लघु संगति परिनाम।
देवी देव पुकारिअत, नीच नारि नर नाम॥

नीच मनुष्यों की संगति का यह परिणाम होता है कि बड़े महत्त्व वाले पुरुष भी लघुता को प्राप्त हो जाते हैं। नीच स्त्री-पुरुषों के नाम होने से देवी-देवता भी लघुता से ही पुकारे जाते हैं।

— तुलसीदास (दोहावली, ३६०)

ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग॥

—तुलसीदास (दोहावली, ३६४ तथा
रामचरितमानस १।७क)

पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी।

निषिद्ध लकड़ी—बबूल, बहेड़ा आदि की भी अग्नि में पड़ने पर अग्निरूप ही हो जाती है यह संपूर्ण जग जानता है।

—तुलसीदास (कृष्ण गीतावली, ४८)

सील फिरैं नहिं संग तें, नित्य निकट असि ढाल।
घातक इक त्रातक लिखौ, दुहकी न्यारी चाल॥

संगत से चरित्र में परिवर्तन नहीं होता। ढाल और तलवार सदा एक साथ रहती हैं, पर फिर भी एक घातक है और दूसरी रक्षक। दोनों का स्वभाव भिन्न है।

—दयाराम (दयाराम सतसई, ६२६)

नीचहु उत्तम संग मिलि, उत्तम ही ह्वै जाय।
गंग-संग जल निंद्यहू, गंगोदक के भाव।।

—वृन्द (वृन्द सतसई)

भवसागर में दुइ भँवर, कनक कामिनी संग।

—रसरंगमणि

सोने को रंग कसौटी लगै,
पै कसौटी को रंग लगै नहीं सोने।

—अज्ञात

उत्तम से उत्तम मिले, मिले नीच से नीच।
पानी से पानी मिले, मिले कीच से कीच।।

—अज्ञात

ख्वाही कि बेदानी व यक़ीं दोजख रा
दोजख बजहाँ सोहबते नाअहल बुवद।

यदि तुम चाहते हो कि यह निश्चित रूप से जानो कि नरक क्या है तो जान लो अज्ञानी व्यक्ति की संगति ही नरक है।

[फ़ारसी] —उमर खैयाम (रुबाइयात २३९)

ऐक संगाचें महिमान। ज्याची संगती घडे पूर्ण।।
तरी त्याचेंही छेऊन उढेचिह्न। अपुला निज गुण आच्छादी।।

मनुष्य जिस संगति में रहता है, उसकी छाप उस पर पड़ती है। उसका निज का गुण छिप जाता है और वह संगति का गुण प्राप्त कर लेता है।

[मराठी] —रंगनाथ

Tell me whom you live with, and I will tell you who you are.

मुझे बताओ कि तुम किनके साथ रहते हो और मैं तुम्हें बता दूंगा कि तुम कौन हो।

—लार्ड चेस्टरफ़ील्ड द्वारा पुत्र को पत्र, ९।१०।१७४७ में उद्धृत स्पेनी लोकोक्ति

संगीत

अन्तर्गतैर्गुणैः किं द्वित्रा अपि यत्र साक्षिणो विरलाः।
स गुणो गीतेर्यदसौ वनेचरं हरिणमपि हरति।।

उन आन्तरिक गुणों का क्या लाभ जबकि उनके लिए दो-तीन साक्षी मिलना भी कठिन है? संगीत का यही गुण है कि वह तो वन में विचरण करते हरिण को भी आकर्षित कर लेता है।

—आर्यासप्तशती (२।१७)

अधमो मातुकारश्च धातुकारश्च मध्यमः।
धातुमातुक्रियाकार उत्तमः परिकीर्तितः।।

जो केवल कण्ठ-संगीत में निपुण है, वह अधम कहा जाता है। जो केवल वाद्य-संगीत में निपुण है, वह मध्यम कहा जाता है। परन्तु जो कण्ठ-संगीत तथा वाद्य-संगीत दोनों में निपुण है, उसे उत्तम कहा जाता है।

शार्ङ्गधरपद्धति (१९५६)

अधमो लक्षणज्ञः स्यात् मध्यमो लक्ष्यमाचरेत्।
लक्ष्यलक्षणसंयुक्त उत्तमः परिकीर्तितः।।

जो संगीत-सिद्धान्त का ही ज्ञाता है, वह अधम कहा जाता है और जो संगीत-व्यवहार मे ही निपुण है वह मध्यम कहा जाता है। परन्तु, संगीत के सिद्धान्त तथा व्यवहार दोनों मे निपुण व्यक्ति ही उत्तम कहा जाता है।

—शार्ङ्गधर पद्धति (१९५७)

न नादेन बिना ज्ञानं न वादेन विना शिवः।
नादरूपं परं ज्योतिर्नादरूपी स्वयं हरिः।।

नाद के बिना ज्ञान नहीं होता। वादन के बिना शिव नहीं होते। परम् ज्योति नादरूप है। स्वय विष्णु नादरूप हैं।

—पराशर

न नादेन विना गीतं न नादेन विना स्वरः
न नादेन विना रागस्तस्मान्नादात्मकं जगत्।।

नाद के बिना न तो गीत होता है, न स्वर और न राग अतः जगत् नादात्मक है।

—पराशर

संगीत गले से ही निकलता है ऐसा नही। मन का संगीत है, इन्द्रियों का है, हृदय का है।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ४५९)

बया ता गुल बर अफ़शानेन व मैदर सागर
अन्दाजेम
फ़ल्क रा सक्फ बशिगाफेम व तरह नो दर
अन्दाजेम।
चूं दर दस्त अस्त रूदये खुश बजन मुतरिब
सरूदेखुश
कि दस्त अफ़शां गजल ख़ानेम व पाकोबांसुर अन्दाजेम।

आओ, हम सब मिलकर फूल बरसायें और प्यालों में शराब उंडेलें। सब मिलकर आसमान की इस छत को फाड़ डालें और एक नयी दुनिया बसा दें। ऐ गाने वाले, जब तुम्हारे हाथों में एक सुंदर साज है, तो क्यों न एक ऐसा सुर मिलाओ कि मतवाले बनकर हम अपने हाथ-पांव पटककर बेसुध हो जायें?

—अज्ञात

सुरेर घोरे आपनाके जाइ भूले
बन्धु ब' ले डाकि मोर प्रभुके।

आनन्दमय संगीत से मस्ती एवं आत्मविस्मृति को पाकर मैं अपने प्रभु को भी 'मित्र कह डालता हूं।'

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गीतांजलि, २)

नादसुधा रसंबिलनु नराकृति आये मनसा।
वेद पुराणागम शास्त्रादुलकाधारमौ॥
स्वरमुलारुन्नोकरि घंटलु, वर रागमु कोदण्डमु।
दुर नय देश्यमु त्रिगुणमु, निरत गति शरमु रा॥
सरस संगति संदर्भमुगल गिरमुलु रा।
धर भजन भाग्यमुरा रा त्यागराजु सेविंचु॥

त्यागराज नाद-सुधा के जिस रस का सेवन करता है, वही मनुष्य रूप धारण कर राम के रूप में अवतरित हुआ है। यही नाद-सुधा वेद, पुराण, आगम और शास्त्रों का आधार है। नाद का व्यक्त रूप 'राग' ही राम का कोदण्ड है। सातों स्वर (षड्ज और उससे निकले छह स्वरों को मिलाकर) उस धनुष मे लगी छह घंटियां हैं। दुर, नय, और देश नाम की तीनों शैलियां उसकी तीन डोरियां हैं। उसकी गतिशीलता ही तीर है। स्वर के संचार में प्रकट उतार-चढ़ाव और संगतियां ही राम की रमणीय सूक्तियां हैं। राम का भजन ही जीवन में सच्चा भाग्य है।

[तेलुगु] —त्यागराज

मोदामु गलदा? भुविलो जीवन्मुक्तुलु गानिवारलकु
साक्षात्कार नी सद्भक्ति संगीत ज्ञान विहीनुलकु?

जो लोग भक्ति-भावना से प्रेरित होकर संगीत की साधना नहीं करते और नादब्रह्म के साक्षात्कार से जीवन्मुक्त नहीं होते, उनको क्या कभी मुक्ति मिलेगी?

[तेलुगु] —त्यागराज

प्राणानल संयोगमु वल्ल
प्रणव नादमु सप्त स्वरमुलै बरग
वीणा-वादन लोलुडो शिव मनो विध मेरुगरु।

प्राण और अनल के संयोग से उत्पन्न प्रणव नाद ही सात स्वरों के रूप में फैला हुआ है। इस रहस्य के ज्ञाता शंकर निरंतर वीणा-वादन में लगे रहते हैं। लेकिन जो इस बात को नहीं जानते हैं, वे न तो सद्भक्ति और संगीत के ज्ञाता हो सकते है और जीवन्मुक्त बन सकते हैं।

[तेलुगु] —त्यागराज

आकाश शरीरमु ब्रह्ममने
आत्मा रामुनि ता सरिजूचुचु
लोकादुलु चिन्मयमनु सुस्वर
लोलुडौ त्यागराग सन्नुत।

आकाश रूपी शरीर धारण करने वाले ब्रह्म को आत्माराम के रूप में अपने अन्दर समाहित देखकर उसी के चिन्मय व्यक्तित्व में समस्त ससार को प्रतिबिंबित पाने की क्षमता प्रदान करने वाला संगीतज्ञान सबके लिए सुलभ नहीं है। ब्रह्मा ने जिनके भाग्य में यह लिखा है, वही लोग जान सकते हैं।

[तेलुगु] —त्यागराज

मेरे विचार से जिस व्यक्ति के हृदय में संगीत का स्पन्दन नहीं है, वह चिंतन और कर्म द्वारा कदापि महान नहीं बन सकता।

—सुभाषचन्द्र बसु (मांडले जेल से दिलीपकुमार राय को पत्र, ९ अक्तूबर १९२५)

संगीत प्रार्थना का पुत्र है, धर्म का साथी।

—विकोम्टे फ्रैंक्वाइ रेनेदि शेतुब्रायंद

संगीत पैग़म्बरों की कला है। यह एकमात्र कला है जो आत्मा की उत्तेजनाओं को शान्त कर सकती है। यह हमारे लिए परमात्मा के भव्यतम और आह्लादकतम उपहारों में से एक है।

—मार्टिन लूथर

किसी देश का इतिहास उसके लोकप्रिय गीतों में अंकित रहता है।

—सिगमंड स्पेथ

संगीत के बिना जीवन एक ग़लती ही होगा। जर्मन व्यक्ति तो गीत गाते ईश्वर की ही कल्पना करता है।

—नीत्शे (अंग्रेजी में अनूदित कृति 'ट्वाइलाइट आफ दि आइडल्स, मैक्जिम्स एण्ड मिसाइल्स, ३३)

जहां संगीत होगा, वहां कोई बुराई नहीं हो सकती।

—सर्वेंटीज़ (डानक्विज़ोट २।४)

Music, moody food
Of us that trade in love.

संगीत हम प्रेमियों का भावुक भोजन।

—शेक्सपियर (एंटोनी एण्ड क्लियोपेट्रा, २।५)

The best sort of music is what it should be sacred; the next best, the military has fallen to the lot of the devil.

सर्वोत्तम प्रकार का संगीत वह है जो होना चाहिए—पवित्र। उससे द्वितीय स्थान पर है सैन्य-संगीत जो शैतान के हाथों पड़ गया है।

—सैमुअल टेलर कालरिज

Music is the only sensual gratification in which mankind may indulge to excess without injury to their moral or religious feelings.

संगीत एकमात्र ऐन्द्रिक सुख है जिसमें मनुष्य जाति अत्यधिक रम सकती है—बिना अपनी नैतिक या धार्मिक भावनाओं पर आघात किए।

—एडीसन

Movie music is noise.

चलचित्रों का संगीत तो शोर है।

—टामस बीचम

Music is the fourth great material want of our nature—first food, then raiment, then shelter, then music.

संगीत हमारी प्रकृति की चौथी महान भौतिक आवश्यकता है—प्रथम भोजन, द्वितीय परिधान, तृतीय आश्रय, और तब संगीत।

—क्रिश्चियन नेस्टेल बोवी

Music expresses that which can not be said and on which it is impossible be silent.

संगीत उसे अभिव्यक्त करता है जिसे कहा नहीं जा सकता और जिसपर मौन रहना असंभव है।

—विक्टर मेरी ह्यूगो

O Music! miraculous art! A blast of the trumpet, and millions rush forward to die; a peal of thy organ, and uncounted nations sink down to pray.

हे संगीत! हे आश्चर्यजनक कला।...तुम्हारे सूर्य का नाद हुआ और लाखों लोग मरने को दौड़ पड़े। तुम्हारे वाद्यराज का किंचित स्वर फूटा, और असंख्य राष्ट्र प्रार्थना करने को बैठ गए।

—बेंजमिन डिज़रायली

Music moves us, and we know not why.

संगीत हमें प्रभावित करता है, परन्तु हम नहीं जानते हैं कि क्यों?

—लेटिशिया एलिज़बेथ लैंडन

A good ear for music, and a taste for music are two very different things which are often confounded.

संगीत के लिए अच्छा कान और संगीत में रुचि दो बहुत भिन्न वस्तुएं हैं जिन्हें प्राय: मिला दिया जाता है।

—फ़ल्के ग्रेविले

Music is a friend of labour.

संगीत श्रम का मित्र है।

—विलियम ग्रीन

Such sweet compulsion doth in music lie.

संगीत में ऐसी मधुर विवश करने वाली शक्ति होती है।

—मिल्टन (आर्केडिज, १।६८)

What passion can not music raise and quell?

संगीत किस मनोवेग को जगा और शान्त नहीं कर सकता ?

—ड्राइडेन (सेंट सेसिलियाज डे)

Heard melodies are sweet, but those unheard are sweeter.

सुने हुए गीत मधुर लगते हैं किन्तु अनसुने मधुरतर।

—कीट्स (ओड आन ए ग्रेशियन अर्न)

Music is well said to be the speech of angels. ...It brings us near to the Infinite.

संगीतों को देवदूतों की वाणी ठीक ही कहा गया है। यह हमें अनंत के समीप लाता है।

—कार्लाइल (दि आपरा)

Music has charms to soothe a savage,
To soften rocks, and bend a knotted oak.

संगीत में ऐसा सम्मोहन होता है जो क्रूर हृदयों को भी शान्त कर दे, शिलाओं को भी पिघला दे अथवा गठीले बलूत वृक्ष को भी लचा दे।

—विलियम कान्ग्रीव (दि मोर्निंग ब्राइड)

संग्रह

दे० 'संग्रह और त्याग' भी।

कर्तव्यः संचयो नित्यं कर्तव्यो नाति संचयः।

मनुष्य को संचय सदा करना चाहिए पर अतिसंचय न करे।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।१६०)

यदि सब अपनी आवश्यकतानुसार ही संग्रह करें, तो किसी को तंगी न हो और सब संतोष से रहें।

—महात्मा गांधी (यरवदा मन्दिर से, पृ० ५३)

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।
स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च॥

—चाणक्यनीति

जल की बूंद-बूंद जिससे क्रमशः घड़ा भर जाता है। उसी प्रकार क्रमशः संग्रह सभी विद्याओं, धर्म व धन का हेतु है।

—चाणक्यनीति

संग्रह और त्याग

प्राज्ञस्तु जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः।
गुणवद् वाक्यमादत्ते हंसः क्षीरमिवाम्भसः॥

विद्वान पुरुष दूसरे वक्ताओं के शुभाशुभ वचनों को सुनकर उनमें से गुणयुक्त बातों को ही अपनाता है, ठीक उसी तरह, जैसे हंस पानी को छोड़कर केवल दूध ग्रहण कर लेता है।

—वेदव्यास (महाभारत, आदिपर्व।७४।९१)

नैकमिच्छेद् गणं हित्वा स्याच्चेदन्यतरग्रहः।
यस्त्वेको बहुभिः श्रेयान् कामं तेन गणं त्यजेत्॥

एक ओर एक व्यक्ति हो और दूसरी ओर एक समूह हो तो समूह को छोड़कर एक व्यक्ति को ग्रहण करने की इच्छा न करे। परन्तु जो एक मनुष्य बहुत मनुष्यों की अपेक्षा गुणों में श्रेष्ठ हो और इन दोनों में से एक को ही ग्रहण करना पड़े तो ऐसी स्थिति में कल्याण चाहने वाले पुरुष को उस एक के लिए समूह को त्याग देना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।८३।१२

संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।६।१)

संग्राम

दे० 'युद्ध'।

संघटन

दे० 'संगठन'।

संघर्ष

लोके भेदमूलो हि विग्रहः।

संसार में विग्रह[1] का मूल भेदभाव ही है।

—वेदव्यास (महाभारत, सभापर्व।४६।२८)

हार हार कर भी जो जीता
सत्य तुम्हारी गायी गीता।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (अर्चना, पृ० १७)

वड़ी बात होगी, इन तूफानों से अगर बचाकर
किसी भाँति अन-बुझे दीप वे वापस ले जायेंगे।

—रामधारी सिंह 'दिनकर' (परशुराम की प्रतीक्षा)

झगड़े की तीन जड़, जर[2] ज़मीन जोरू[3]।

—हिन्दी लोकोक्ति

रमजे हयात जोई जुज़दर तपिश नयावी
रदकुलजुम आरमीदन नंगस्त आबे जूरा।

अगर तुझे जीवन के रहस्य की खोज ही है तो वह तुझे संघर्ष के सिवा और कहीं नहीं मिलने का। सागर में जाकर विश्राम करना नदी के लिए लज्जा की बात है।

—इक़बाल

दूसरे आलम में हूं दुनिया से मेरी जंग है।

—'जोश' मलीहाबादी

Every man meets his Waterloo at last.

प्रत्येक मनुष्य को अन्ततोगत्वा अपना 'वाटरलू' मिलता ही है।

—वेंडेल फिलिप्स (भाषण, १ नवम्बर १८५९)

I have nothing to offer but blood, toil, tears and sweat.

मेरे पास देने के लिए रक्त, कठोर परिश्रम, आंसुओं और पसीने के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

—विंस्टन चर्चिल (ब्रिटिश लोकसभा में भाषण, १३ मई १९४०)

---

१. लड़ाई-झगड़ा। २. धन। ३. स्त्री।

संचय

दे० 'संग्रह'।

संत

दे० 'संत-असंत', 'सज्जन' भी।

गतिरात्भवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः।
असतां च गतिः सन्तो न त्वसन्तः सतां गतिः॥

आत्मवान मनुष्यों को सहारा देने वाले संत है। संतों के सहारे भी संत ही हैं, दुष्टों को भी सहारा देने वाले संत है, पर दुष्ट लोग सन्तों को सहारा नहीं देते।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व।३४।४६)

सर्वभूतदयावन्तो अहिंसानिरताः सदा।
परुषं च न भाषन्ते सदा सन्तो द्विजप्रियाः॥

जो सभी प्राणियों के प्रति दयालु हैं, जो सदा अहिंसा में निरत हैं, जो कभी कठोर वचन नहीं बोलते—ऐसे संतजन सभी द्विजों के प्रिय होते है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व।२०७।८४)

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥

पानी के तीर्थ, मिट्टी और पत्थर के बने देवता तो बहुत दिनों में पवित्र करते हैं। साधु दर्शन मात्र से पवित्र कर देते है।

—भागवत (१०।४८।३१)

क्षमासारा हि साधवः।

साधुओं का बल क्षमा है।

—विष्णुपुराण (१।१।२०)

के सन्ति सन्तोऽखिलवीतरागा
अपास्तमोहाः शिवतत्त्वनिष्ठाः।

संत कौन हैं? सम्पूर्ण संसार से जिनकी आसक्ति नष्ट हो गयी है, जिनका अज्ञान नष्ट हो चुका है और जो कल्याणस्वरूप परमात्मतत्व में स्थित है।

—शंकराचार्य (प्रश्नोत्तरी, ६)

के बलभाजः केवलभाजः के सन्त एव के सन्तः ।

संसार में बलवान कौन है ? जो केवल भगवान का ही भजन करते हैं। 'सन्त' अर्थात पण्डित कौन हैं ? जो सुख में ही वर्तमान हैं, अर्थात् किसी के द्वारा भी उद्विग्न नहीं किए जा सकते।

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावनचम्पू, १६।६१)

मलीमसानपि जनान् सन्तः कुर्वन्ति निर्मलान् ।

सन्त मलिन चित्त वाले मनुष्यों को भी निर्मल कर देते हैं।

—अचिन्त्यानन्द वर्णी (विवेकशतक, ५५)

करुणार्द्रा हि सर्वस्य सन्तोऽकारणबान्धवाः ।

करुणा से आर्द्र सज्जन सभी के अकारण बन्धु होते हैं।

—सोमदेव (कथासरित्सागर)

अनिन्दा परकृत्येषु स्वधर्मपरिपालनम् ।
कृपणेषु दयालुत्वं सर्वत्र मधुरा गिरः ॥
प्राणैरप्युपकारित्वं मित्रायाव्यभिचारिणे ।
गृहागते परिष्वंगः शक्त्या दानं सहिष्णुता ॥
बंधुभिर्बद्धसंयोगः सुजने चतुरश्रता ।
तच्चित्तानुविधायित्वम् इति वृत्तं महात्मनाम् ॥

दूसरों के कार्य की निन्दा न करना, अपने धर्म का पालन, कृपणों पर दयालुता, मधुर वाणी बोलना, विश्वासी मित्र का प्राणों द्वारा भी उपकार, घर आये शत्रु का सत्कार करना, यथाशक्ति दान देना, सहिष्णुता, बन्धुओं से मेल-मिलाप, सुजनों के साथ सद्व्यवहार और उनके चित्त के अनुकूल कार्य करना—ये महात्माओं के चरित्र की विशेषताएँ हैं।

—कामन्दकीयनीतिसार

उपचरितव्याः सन्तो यद्यपि कथयन्ति नैकमुपदेशम् ।
यास्तेषां स्वैरकथास्ता एव भवन्ति शास्त्राणि ॥

सन्तों की सेवा करनी चाहिए, भले ही वे एक भी उपदेश न दें। उनकी जो स्वतंत्र कथाएं हैं, वे ही शास्त्र होते हैं।

—अज्ञात

नान्तर्विचिन्तयति किंचिदपि प्रतीप—
माकोपितोऽपि सुजनः पिशुनेन पापम् ।
अर्कद्विषोऽपि हि मुखे पतिताग्रभागा—
स्तारापतेरमृतमेव कराः किरन्ति ॥

चुगली खाने वाले दुष्ट मनुष्य के द्वारा क्रोध दिलाए जाने पर भी सज्जन उसके विरुद्ध अमंगलमय प्रतिशोध की बात अपने मन में नहीं लाते। राहु चन्द्रमा का सहज विद्वेषी है किन्तु चन्द्रमा की सुधामयी किरणे उसके मुख में पड़कर भी अमृत की ही वर्षा करती हैं।

—अज्ञात

इयमत्र सतामलौकिकी महती कापि कठोरचित्तता ।
उपकृत्य भवन्ति दूरतः परतः प्रत्युपकारभीरवः ॥

सज्जनों की यह कोई बड़ी कठोर चित्तता है कि वे उपकार करके, प्रत्युपकार के भय से बहुत दूर हट जाते हैं।

—अज्ञात

पाणं चजन्ति सन्तो नापि धम्मं ।

सन्त जन प्राणों का त्याग कर देते हैं, किन्तु धर्म का नहीं।

[पालि] —जातक (महासुतसोम जातक)

विविहकुलुप्पण्णा साहवो कप्परूक्खा ।

विविध कुल एवं जातियों में उत्पन्न हुए साधु पुरुष पृथ्वी पर के कल्पवृक्ष हैं।

[प्राकृत] —नन्दीसूत्रचूर्णि (२।१६)

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं ।
अंक भरे भरि भेंटिया, पाप सरीरौं जाहिं ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५०)

खीर रूप हरि नांव है, नीर आन व्यौहार ।
हंस रूप कोई साध है, तत को जानन हार ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५)

संतन को कहा सीकरी सों काम ?
आवत जात पनहियां टूटीं, बिसरि गयो हरि नाम ॥
जिनको मुख देखे दुख उपजत तिनको करिबे परी सलाम ।
'कुंभनदास' लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम ॥

—कुंभनदास

साधु चरित सुभ चरित कपासू।
निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्रदुरावा।
वंदनीय जेंहि जग जस पावा॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२।३)

विधि वस सुजन कुसंगत परहीं।
फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।३।५)

बंदउं संत समान चितहित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगन्ध कर दोइ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।३)

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि विकार॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।६
तथा दोहावली, ३६६)

किएहुं कुबेपु साधु सनमानू।
—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।६।४)

गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं।
आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।११०।१)

बररै बालकु एकु सुभाऊ।
इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२७६)

दुखित दोष गुन गनहिं न साधू।
—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।१७७।४)

सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२८१)

बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता।
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।७।२)

उमा संत कइ इहइ बड़ाई।
मंद करत जो करइ भलाई॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।४१।४)

साधु-अवग्या तुरत भवानी।
कर कल्यान अखिल कै हानी॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।४२।१)

विषय अलंपट सील गुनाकर।
पर दुख-दुख सुख-सुख देखे पर॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी।
लोभामरष हरष भय त्यागी॥
कोमलचित दीनन्ह पर दाया।
मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी।
भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥
बिगत काम मम नाम परायन।
सांति बिरति बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मयत्री।
द्विजपद प्रीति धर्म जनयत्री॥
सब लच्छन बसहिं जासु उर।
जानिहु तात संत संतत फुर॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।३८।१-४)

पर उपकार बचन मन काया।
संत सहज सुभाउ खगराया॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२१।७)

संत मिलन सम सुख जग नाहीं।
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२१।७)

संत सहहिं दुख पर हित लागी।
परदुख हेतु असंत अभागी॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२१।७)

संत हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता।
पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२५।४)

तुलसी ऐसे कहुँ कहुँ, धन्य धरनि वह संत।
परकाजे परमारथी, प्रीति लिये निवहंत॥

ऐसे संत कहीं-कहीं ही होते हैं। वह पृथ्वी धन्य है जहां ऐसे संत होते हैं जो पराये काम में तथा परमार्थ-साधना में निमग्न रहते हैं और प्रीतिपूर्वक अपने इस व्रत का निर्वाह करते हैं।

—तुलसीदास (वैराग्य संदीपनी, १०)

सो जन जगत जहाज है, जागे राग न दोष।
तुलसी तृष्णा त्यागि कै, गहै सील संतोष॥

जिसके मन में राग-द्वेष नहीं है और जो तृष्णा को त्याग कर शील तथा संतोष को ग्रहण किए हुए है, वह संत पुरुष जगत के लिए जहाज है।

—तुलसीदास (वैराग्य संदीपनी, १६)

सील गहनि सब की सहनि, कहनि हीय मुख राम।
तुलसी रहिए एहि रहनि, संत जनन को काम॥

शील का ग्रहण, सब की बातों और व्यवहारों को सहना हृदय से और मुख से सदा राम कहते रहना—इस प्रकार रहना ही संत जनों का काम है।

—तुलसीदास (वैराग्य संदीपनी, १७)

कोमल वानी संत की, स्रवत अमृतमय आइ।
तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मैन होइ जाइ॥

संत की वाणी कोमल होती है। उससे अमृतमय रस झरा करता है। उसे सुनते ही कठोर मन भी मोम के समान कोमल हो जाता है।

—तुलसीदास (वैराग्य संदीपनी, १९)

मुख दीखत पातक हरै, परसत कर्म विलाहिं।
वचन सुनत मन मोहगत, पूरुब भाग मिलाहिं॥

जिनका मुख दीखते ही पाप नष्ट हो जाते हैं, जिनका स्पर्श होते ही कर्म विलीन हो जाते हैं, और जिनके वचन सुनते ही मन का मोह (अज्ञान) चला जाता है, ऐसे संत पूर्वजन्म में अर्जित भाग्य से ही मिलते हैं।

—तुलसीदास (वैराग्यसंदीपनी, २४)

कंचन कांचहिं सम गनै, कामिनि काष्ठ पषान।
तुलसी ऐसे संत जन, पृथ्वी ब्रह्म समान॥

जो सुवर्ण को मिट्टी के समान और स्त्री को काठ व पत्थर के समान मानते हैं, ऐसे संत जन पृथ्वी में ब्रह्म के समान ही हैं।

—तुलसीदास (वैराग्य संदीपनी, २७)

दादू चन्दन वन नहीं, सूरन के दल नाहि।
सकल खानि हीरा नहीं, त्यौं साधू जग मांहि॥

—दादूदयाल (श्री दादूदयालजी की वाणी, पृ० २८५)

दादू शीतल जल नहीं, हेम न शीतल होइ।
दादू शीतल संत जन, राम सनेही सोइ॥

—दादूदयाल (श्री दादूदयाल जी की वाणी, पृ० २९६)

जे पहुँचे ते कहि गये, तिनकी एकै बाति।
सबै सयाने एकमत, उनकी एकै जाति॥

—दादूदयाल

पंडित कोटि अनंत हैं ज्ञानी कोटि अनंत।
स्रोता कोटि अनंत हैं विरले साधू संत॥

—गरीबदास

साहिब जिनके उर बसै, झूठ कपट नहिं अंग।
तिनका दरसन न्हान है, कह परवी फिर गंग॥

—गरीबदास

'पलटू' तीरथ को चला, बीचे मिलिगे संत।
एक मुक्ति के खोजते, मिलि गई मुक्ति अनंत॥

—पलटूदास

सांचे संत हमारे संगी।
और सबै स्वारथ के लोभी चंचल मति बहुरंगी॥

—नागरीदास

तजि पर औगुन नीर को, छीर गुनन सों प्रीत।
हंस संत की सर्वदा, 'नारायन' यह रीति॥

—नारायण स्वामी

उदासीन जग सों रहै, जथा मान अपमान।
'नारायण' ते संत जन, निपुन भावना ध्यान॥

—नारायण स्वामी

कष्ट परे हूँ साधुजन, नैंकु न होत मलान।
ज्यों-ज्यों कंचन ताइये, त्यों-त्यों निर्मल जान॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

संतन के तन चन्दन रूप हैं शीतल बैन सुगंध है वाणी।
सांति करै उन्ह के ढिगि आवत पावत नाम सुधारस जाणी॥
पारस प्रेम को परस लगाइ कै ताहि करै निज आपसै ग्यानी।
राम ही जन वै संत सदा धनि मो मन बात ऐसि करि मानी॥

—रामजन

संत को दुःख देने वाला कभी सुखी नहीं हुआ।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ४७४)

इस लड़के को छोटे से बड़ा 'मैंने' किया और बाकी के लड़के? 'भगवान ने मारे'—यह कैसे कहा जा सकता है। या तो दोनों फल हम स्वीकार करें या दोनों भगवान को सौंप दें। सन्तों ने दूसरा मार्ग लिया है। जिसकी हिम्मत हो वह पहला मार्ग ले।

—विनोबा (विचारपोथी, २७)

जहँ तहँ नारायण लखै, व्यापक रूप अनंत।
प्रभुहिं समर्पै करम सब, सोई साँचो संत॥

—वियोगी हरि (अनुराग मंजरी, पृ० ३७)

जो मन में, सोई बैन में, जो बैननि सोइ कर्म।
कहिये ताकों संतवर, जाको ऐसो धर्म॥

—वियोगी हरि (अनुराग मंजरी, पृ० ३८)

लोह जो पारस संग करे, हैं कंचन सो सतसंग लहाँ लौं।
संत के संग ते सत भयो, दोउ एकहिं रूप स्वरूप सम्हालो॥

—योगेश्वराचार्य (स्वरूप गीता, पद ३८)

गृहस्थों के लिए सब नारी जननी नहीं, पर-नारी जननी-सम है। संत साधुओं के लिए नारी के साथ 'पर' का विधान नहीं, संतवेश धारण करने पर निज-नारी भी जननी-तुल्य होती है।

—रघुपतिदास

संतवचन यह सुधा देव भी जिसके सदा भिखारी,
संत वचन वह धन जिसका है नर प्रधान अधिकारी।
मर्त्य अमर बन जाता जिससे वह संजीवन रज है,
संत-वचन सब भव रोगों का राम बाण भेपज है॥

—रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

इन संतों[1] के ग्रंथों में आचरणीय और अनाचरणीय का विशद विचार है। किन से सामाजिक मंगल होता है और किन से व्यक्ति और समाज जड़िता के मोह से मुक्त होते है, उनकी ओर इंगित है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (सहज साधना, पृ० १०१)

सदा दीवाली संत घर।

—हिन्दी लोकोक्ति

दौलते रा के नवाशद ग़मज़ आसेबे ज़वाल
बे तकल्लुफ़ बिशनो दौलते दरवेशानस्त।

वह वैभव, जिसका पतन कभी सभव ही न हो, साधुओं का ही है।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

जैसे कमळ कळिका जालेपणें।
हृदयींचिया मकरंदातें राखों नेणें।
दे राया—रंका पारणें। आमोदाचें॥

जिस प्रकार कमल की कली खिलने के बाद अपना सौरभ अपने पास नहीं रखती बल्कि ग़रीब और अमीर सबको आनन्द से तृप्त करती है उसी प्रकार संत भी दूसरों का कल्याण करते हैं।

[मराठी] —ज्ञानेश्वर

कां फेडित पापातांप। पोखीत तीरींचे पादप।
समुद्र जाय आप। गंगे जैसे॥
कां जगाचें आँध्यफेडित। श्रियेचीं राउलें उघडीत।
निने जैसा भास्वत। प्रदक्षिणे॥
तैसीं बांधलीं सोडीत। बुडालीं काढीत।
सांकडी फेडीत। आर्तांचिया॥

गंगा सागर से मिलने जाती है परन्तु जाती हुई जगत् का पाप और ताप दूर करती जाती है और तट के वृक्षों का

1. मध्ययुगीन भारतीय सत।

पोषण करती जाती है। सूर्य नित्य की परिक्रमा करते हुए संसार का अंधकार दूर करते और कमलों को विकसित करते जाते हैं। उसी प्रकार आत्मस्वरूप को प्राप्त संत अपने सहज कर्मों से संसार में बँधे वन्दियों को छुड़ाते, डूबे हुओं को उवारते और आर्तों के दुःख दूर करते रहते हैं।
[मराठी] ज्ञानेश्वर (ज्ञानेश्वरी, १६।१९९-२०१)

चलां कल्पतारुचे अख। चेतना चिंतामणीचे गाँव।
वोलते जे अर्णव। पीयूणाचे ॥
चन्द्रमें जें अलांछन। मार्तंड जें तापहीन।
ते सर्वांही सदा सज्जन।। सोयरे हेतु ॥

ये संतजन मानो चलते फिरते कल्पवृक्षों के अंकुर हैं अथवा चैतन्य चितामणि का ग्राम हैं अथवा अमृत का वोलता हुआ समुद्र हैं। ये संतजन कलंकहीन चन्द्रमा हैं अथवा तापहीन सूर्य हैं और सभी लोगों के सदा के सगे सम्बन्धी है और प्रिय हैं।
[मराठी] —ज्ञानदेव (ज्ञानेश्वरी, १८।७८ श्लोक की व्याख्या)

पत्र पुष्प छाया फळ। त्वचा काष्ठ समूळ।
वृक्ष सर्वांगें सफळ। सर्वांसी केवळ उपकारी ॥

परोपकार संतों का सहज स्वभाव होता है। वे वृक्ष के समान हैं जो अपने पत्तों, फूल-फल, छाल, जड़ और छाया से सवका उपकार करते है।
[मराठी] —एकनाथ

दयार्णवे द्रवलीदृष्टि। तन-मन-धन वेंचूनि गांठी।
अनाथावरी करुणा मोठी। उद्धरी संकटीं हीनातें ॥

संत का हृदय नवनीत के समान दया से पिघल जाता है। उसकी अनाथों पर अत्यन्त करुणा होती है और वह दीन-दुःखियों के संकट दूर करने के लिए तन-मन-धन अर्पण कर देता है।
[मराठी] —एकनाथ

तुका म्हणे तीचि संत।
सोसीं जगाचे आघात ॥

जो अनेक आघात सहन करता है, वही संत है।
[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ५०)

साधु को दिन में देखना, रात में देखना और तव साधु पर विश्वास करना।
—रामकृष्ण परम हंस (श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग में पृ० १४८ पर उद्धृत)

महान सन्त पुरुष सिद्धान्त के दृष्टांतस्वरूप है, किन्तु शिष्य तो महात्माओं को ही सिद्धान्त बना लेते हैं और उस व्यक्ति विशेष को ही सव कुछ समझ कर सिद्धान्त को भूल जाते हैं।
—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७३, पृ०, ३०)

जिसके समीप जाने पर हृदय के श्रेष्ठ भाव प्रस्फुटित हो जाते हैं, भगवान का नाम अपने आप ही उच्चरित होने लगता है और पाप-वुद्धि लज्जित होकर भाग जाती है, वही साधु है।
—विजयकृष्ण गोस्वामी

उच्चकोटि के संतों ने चमत्कार किए हैं, उच्चतर कोटि के संतों ने उनकी निन्दा की है, उच्चतम कोटि के संतों ने उसकी निन्दी भी की है और उन्हें जिया भी है।
—अरविन्द (विचारमाला और सूत्रावली)

संत संचय नहीं करता। प्रत्येक वस्तु को दूसरे की समझते हुए भी उसके स्वयं के पास प्रचुरता है। प्रत्येक वस्तु दूसरों को देते हुए भी उसके स्वयं के पास उसका आधिक्य है।
—लाओ-त्स (पथ का प्रभाव, पृ० ७८)

A saint's life is one long prayer.
संत का जीवन एक लम्बी प्रार्थना होता है।
—शिवानन्द

The virtues of society are the vices of the saint.
सामाजिक गुण सन्त के लिए अवगुण होते हैं।
—एमर्सन (एसेज, 'सर्किल्स')

संत-असंत

दे० 'दुष्ट और सज्जन' भी।

क्षणकोपा महान्तो वै पापिष्ठाः कल्पकोपनाः।

महात्माओं का क्रोध क्षण में ही शान्त हो जाता है। पापी जन ही ऐसे हैं, जिसका कोप कल्पों तक भी दूर नहीं होता।

—देवीभागवत (३।१०।४७)

संत असन्तन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चन्दन आचरनी।
काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगन्ध बसाई॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।३७।४)

संतान

दे० 'पुत्र', 'पुत्री' भी।

संततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे।

अच्छी संतान इस लोक और परलोक दोनों में सुख देती है।

—कालिदास (रघुवंश, १।६४)

को हि नाम सहते सचेतनो विरहमपत्यानाम्।

कौन ऐसा सचेत प्राणी है जो अपनी सन्तानों के विरह सह सकता है?

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १४१)

अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रंथिरेकोऽयम् अपत्यमिति कथ्यते॥

यह संतान स्नेह के आश्रय से दम्पति के अन्तःकरण तत्त्व की आनन्दग्रंथि कही जाती है।

—भवभूति (उत्तररामचरित)

कुपुत्रोऽपि भवेत पुंसां हृदयानन्दकारकः।
दुर्विनीतः कुरूपोऽपि मूर्खोऽपि व्यसनी खलः॥

मनुष्य को दुखदायी, कुरूप, मूर्ख, व्यसनी एवं दुष्ट कुपुत्र भी हृदयानन्दकारी होता है।

— विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, ५।१६)

अपनी संतान के छोटे करों द्वारा घोला हुआ साधारण सत्तू अमृत से भी अधिक मधुर होता है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६४)

बाँसुरी व वीणा की ध्वनि को वे ही मधुर कहेंगे जिन्होंने अपने शिशु की तोतली बोली न सुनी हो।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६६)

तुम्हारे बालक तुम्हारे अपने बालक नहीं हैं। वे जीवन की—जन्म लेने की—लालसा की संतानें हैं।

वे तुम्हारे द्वारा आते है, लेकिन तुमसे नहीं, और यद्यपि वे तुम्हारे साथ हैं, फिर भी वे तुम्हारे नही हैं।

—खलील जिब्रान (जीवन सन्देश, पृ० २७)

संताप

अतिसुकुमारं च जनं सन्तापपरमाणवो मालतीकुसुममिव म्लानिमानयन्ति।

मालती के फूल की तरह अति सुकुमार लोगों को संताप के परमाणु मुरझा देते हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १६)

आतुरा परितावेंति।

विषयातुर मनुष्य ही दूसरे प्राणियों को परिताप देते हैं।

[प्राकृत] **—आचारांग (१।१।१६)**

संतुलन

संतुलित दृष्टि वह नहीं है जो अतिवादिताओं के बीच एक मध्यम मार्ग खोजती है, बल्कि वह है जो अतिवादिताओं की आवेग-तरल विचारधारा का शिकार नहीं हो जाती और किसी पक्ष के उस मूल सत्य को पकड़ सकती है, जिस पर बहुत बल देने और अन्य पक्षों की उपेक्षा करने के कारण

उक्त अतिवादी दृष्टि का प्रभाव बढ़ा है। संतुलित दृष्टि सत्यान्वेषी की दृष्टि है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचार और वितर्क, पृ० २५३)

संतोष

दे० 'तृप्ति' भी।

अप्राप्तं हि परित्यज्य संप्राप्ते समतां गतः।
अदृष्टखेदाखेदो यः संतुष्ट इति कथ्यते॥

जो अप्राप्त वस्तु के लिए चिंता नहीं करता और प्राप्त वस्तु के लिए सम रहता है, जिसने न दुःख देखा है, न सुख—वह संतुष्ट कहा जाता है।

—महोपनिषद् (४।३६)

असंतोषपरा मूढाः सन्तोषं यान्ति पण्डिताः।
असंतोषस्य नास्त्यन्तस्तुष्टिस्तु परमं सुखम्॥

मूढ़ मनुष्य असंतोषी होते हैं, ज्ञानवानों को संतोष प्राप्त होता है। असंतोष का अन्त नहीं है। सतोष ही परम सुख है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व २१६।२२-२३)

संतोषो वै स्वर्गतमः संतोषः परमं सुखम्।
तुष्टेर्न किंचित् परतः सा सम्यक् प्रतितिष्ठति॥

मनुष्य के मन में संतोष होना स्वर्ग की प्राप्ति से भी बढ़कर है, संतोष ही सबसे बड़ा सुख है। संतोष यदि मन में भली-भांति प्रतिष्ठित हो जाए तो उससे बढ़कर संसार में कुछ भी नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।२१।२)

सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयत्नैः
बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम्।
सत्यंजलौ किं पुरुधान्यपात्र्या।
दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः॥

पृथ्वी है तो पलंग के लिए प्रयत्न क्यों? बांह है तो तकिए से क्या प्रयोजन? अंजलि है तो बहुत से पात्रों की क्या आवश्यकता। दिगम्बर और वल्कल हैं तो कौशेय वस्त्रों से क्या?

—भागवत (२।२।४)

त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि।
यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम्॥

गृहस्थ मनुष्यों को भी धर्म, अर्थ और काम के लिए बहुत कष्ट नहीं उठाना चाहिए। यथा देश, यथा काल और यथा भाग्य जो मिल जाए उसी से संतोष करना चाहिए।

—भागवत (७।१४।१०)

सदा सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः।
शर्कराकंटकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम्॥

सन्तुष्ट मन वाले के लिए सदा सभी दिशाएं सुखमयी हैं जैसे जूता पहनने वाले के लिए कंकड़ और कांटे आदि से दुःख नहीं होता।

—भागवत (७।१५।१७)

संतोषादनुत्तमसुखलाभः।

संतोष से सर्वोत्तम सुख प्राप्त होता है।

—पतंजलि (योगसूत्र, २।४२)

प्रभूतेऽपि धनेऽतुष्टो दरिद्रः सोऽस्ति शाश्वतम्।
रिक्तेऽपि च धने तुष्टो धनिकः सोऽस्ति शाश्वतम्॥

अधिक धन-सम्पन्न होने पर भी जो असंतुष्ट रहता है, वह सदा निर्धन है। धन से रहित होने पर भी जो संतुष्ट है, वह सदा धनी है।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, २६।६०)

सद्दे अतित्ते य परिग्गहम्मि
सत्तोसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।

शब्द आदि विषयों में अतृप्त और परिग्रह में आसक्त रहने वाला व्यक्ति कभी संतोष प्राप्त नहीं करता है।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (३२।४२)

असंतुट्ठाणं इह परत्थ य भयं भवति।

असंतुष्ट व्यक्ति को यहां-वहां सर्वत्र भय रहता है।

[प्राकृत] —आचारांगचूर्णि (१।२।२)

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः,
श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः।

दरिद्र कौन है ? भारी तृष्णा वाला । और धनवान कौन है ? जिसे पूर्ण संतोष है ।

—शंकराचार्य (प्रश्नोत्तरी, ५)

संपदा सुस्थिरंमन्यो भवति स्वल्पयापि यः ।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम् ॥

मैं ऐसा मानता हूं कि जो अपनी थोड़ी-सी सम्पत्ति से ही संतुष्ट हो जाता है, विधाता भी स्वयं को कृतकृत्य मानकर उसकी सम्पत्ति को नहीं बढ़ाता ।

—माघ (शिशुपालवध, २।३२)

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।
स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ।

यहाँ हम इन वल्कलों से सन्तुष्ट है और तुम दुकूलों से। हमारे संतोष में और तुम्हारे संतोष में कोई अन्तर नहीं। वही दरिद्री होता है जिसकी तृष्णा विशाल होती है । मन के संतुष्ट होने पर कौन धनी है और कौन निर्धन ?

—भर्तृहरि (वैराग्यशतक, ५०)

फलं स्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षितिरुहां
पयः स्थाने शिशिरमधुरं पुण्यसरिताम् ।
मृदुस्पर्शा शय्या सुललितलतापल्लवमयी
सहन्ते संतापं तदपि धनिनां द्वारि कृपणाः ॥

हर वन में बिना कष्ट के वृक्षों के फल इच्छानुसार उपलब्ध हैं, स्थान-स्थान पर पवित्र नदियों का शीतल और मधुर जल उपलब्ध है, अत्यन्त सुन्दर लताओं और पल्लवों वाली मृदु स्पर्शी शय्या उपलब्ध है । तब भी धन-लिप्सा से परतन्त्र मनुष्य धनिकों के द्वार पर सन्ताप सहन करते रहते हैं ।

—अज्ञात

कृत्वा परसंतापम् अगत्वा खलनम्रताम् ।
अनुत्सृज्य सतां वर्त्म यत् स्वल्पमपि तद् बहु ॥

दूसरों को दु:ख दिए बिना, दुष्टों की विनय किए बिना और सज्जनों के मार्ग का त्याग किए बिना अत्यल्प जो कुछ भी है, वही बहुत है ।

—अज्ञात

असंतुष्टा द्विजा नष्टाः ।

असन्तुष्ट द्विज नष्ट हो जाते हैं ।

—अज्ञात

ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य संपद्यते सुखम् ।
दैवायत्तं यतः सर्वं तस्मात् संतोषमश्रयेत् ॥

किसी को अपने मन का इच्छित सब सुख प्राप्त हो सकता है ? चूंकि सब कुछ भाग्य के अधीन है अत: सदा सतोष करना चाहिए ।

—अज्ञात

संतोषामृततृप्तानां सुखं शांतिरेव च ।

संतोष रूपी अमृत से सतुष्ट मनुष्य के लिए सदा सुख और शांति ही है ।

—अज्ञात

सर्वाः सम्पत्तयस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम् ।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतैव भूः ॥

जिसका मन सन्तुष्ट है, सभी सम्पत्तियां उसकी हैं। उन्हें देखकर वह हाथ हाथ नहीं करता । जिसने पैरों में जूता पहना हुआ है, उसके लिए तो सारी पृथ्वी ही चमड़े से ढकी हुई है ।

—अज्ञात

यं लद्धं तेन तुट्ठब्बं अतिलोभो हि पापको ।

जो मिले उससे सन्तुष्ट रहना चाहिए । अतिलोभ करना पाप है ।

[पालि] —जातक (सुवण्णहंस जातक)

कोउ विश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु ।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।८९।ख)

बिनु संतोष न काम नसाहीं ।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।९०।१)

माँगि मधुकरी खात ते सोवत गोड़ पसारि ।
पाप प्रतिष्ठा बढ़ि परी ताते बाढ़ी रारि ॥

—तुलसीदास (दोहावली, ४९४)

जाहि विधि राखे राम वाहि विधि रहिए ।

—तुलसीदास

दीरघ साँस न लेहि दुःख सुख साऊं नहिं भल।
दई दई क्यों करत है, दई[1] दई[2] सो कबूल॥

—बिहारी (बिहारी सतसई, ६९२)

लोग गये ते आवई, महा बली संतोष।
त्याग सत्य कूं संग ले, कलह निवास सोक॥

—चरणदास

घट आवै संतोष ही, काहू चहैं जग भोग।
स्वर्ग आदि लौं सुख जिते, सब कूं जाने रोग॥

—चरणदास

काहू से नहिं राखिये, काहू विधि की चाह।
परम संतोषी हूजिये, रहिए बेपरवाह॥

—चरणदास

रूखी सूखी खाय के ठंडा पानी पी।
देख पराई चूपड़ी मत ललचावे जी॥

—हिंदी लोकोक्ति

गोधन गजधन बाजिधन और रतनधन खान।
जब आवै संतोष धन सब धन धूरि समान।

—अज्ञात

और ले आइए बाज़ार से जो टूट गया
तेरे जामे जम[3] से मेरा जामे सिफ़ाल[4] अच्छा है।

—ग़ालिब

गर यार की मर्ज़ी हुई घर जोड़ के बैठे।
घर-बार छुड़ाया तो वहीं छोड़ के बैठे।
मोड़ा उन्हें जिधर वहीं मुंह मोड़ के बैठे।
गुदड़ी जो सिलाई तो वहीं ओढ़ के बैठे।
और शाल उढ़ाई तो उसी शाल में खुश हैं।
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं।

—नज़ीर अकबराबादी

बहुत खुश हूं मुसीबत में ख़ुदा को याद करता हूं
मेरी कश्ती को ऐ तूफ़ां यूं ही ज़ेरो ज़बर[5] रखना।

—अज्ञात

१. देव। २. दिया। ३. ईरान के शासक जमशेद का प्याला जिससे संसार का हाल ज्ञात होता था। ४. मिट्टी का कुल्हड़। ५. नीचे-ऊपर, डगमगाती हुई।

मनशीं तुर्श तो अज़ गर्दिशे अय्याम कि सब्र
गर्चे तल्ख़स्त व लेकिन बरे शीरीं दारद।

दिनों के फेर से तू खट्टा होकर मत बैठ क्योंकि सन्तोष कड़वा होता है, परन्तु मीठा फल धारण करता है।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, प्रथम अध्याय)

दरवेशे क़नाअत विह् अज़ तवांगरे व बिज़ाअत।
सन्तोषी साधु लोभी धनिक से अधिक अच्छा।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

कि शह्वत आतिश' स्त अज़ वै बिपरहेज़
व खुद बर आतिशे दोज़ख़ मकुन तेज़।
दरां आतिश नयारी ताक़ते सोज़
व सब्र आबे बर ईं आतिश ज़न इमरोज़।

कामना तो अग्नि है। उससे बचना अच्छा है। अपने आप नरक की अग्नि को तेज़ मत कर! उस आग में जलने की शक्ति तू नहीं रखता। सन्तोष के द्वारा इस आग पर आज ही पानी डाल दें।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

सब्र तलख़ आमद व लेकिन आवकात
मेवारा शीरीं दहद पुर मनफ़अत।

यद्यपि संतोष कड़ुवा वृक्ष है, तथापि इसका फल बड़ा ही मीठा और लाभदायक है।

[फ़ारसी] —मौलाना रूमी

रज़ा बेदाद बदह् वज़े जबीं गिरह् बकुशा
के बर मनो तू दरे इख़्तियार न कुशादस्त।

यह एक रोचक बात मैंने एक ज्ञानी से सीखी थी। जो कुछ तुझे मिल गया है, उसी पर सन्तोष कर और सदैव प्रसन्न रहने की चेष्टा करता रह। यहाँ पर 'मेरी' और 'तेरी' का अधिकार किसी को भी नहीं दिया गया है।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़

शुनियो सज्जन शास्त्र-सार सकले सम्पत्ति जाना तार
हरि-भक्ति-रसे सन्तोष मन जाहार।
चर्मर निर्मित पाने जुडि चरण ढाकिले जिटोजने
जेन सबे चर्मावृत मैल तार।

हे सज्जनो ! शास्त्र का सारांश सुनो। सकल सम्पत्ति उसकी हो गई जिसके मन में संतोष है, जिसे हरि-भक्ति-रस चखने को मिल रहा है। जिसने अपने चरणों को चमड़े के जूतों से ढाँक लिया, उसके लिए सारी भूमि चमड़े से ढँक जाएगी।

[असमिया] —माधवदेव (नवघोषा, १९।१२४।३३४)

सन्तोष स्वाभाविक सम्पत्ति है, विकास कृत्रिम निर्धनता है।

—सुक़रात

जो भी घटित होता है, उससे मैं संतुष्ट रहता हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ कि परमात्मा द्वारा चयन मेरे द्वारा चयन से अधिक अच्छा है।

—एपिक्टेटस

Poor and content is rich and rich enough.

जो दरिद्र होकर भी संतुष्ट है, वह धनी है और पर्याप्त धनी है।

—शेक्सपियर (ओथेलो, ३।३)

My crown is in my heart, not on my head
Not deck'd with diamonds an Indian stones,
Nor to be seen my crown is called Content.
A crown it's that seldom kings enjoy.

मेरा मुकुट मेरे हृदय में है, न कि मेरे सिर पर। मेरा मुकुट न तो हीरों से जटित है और न ही भारतीय रत्नों से। मेरा मुकुट दिखाई भी नही देता है। मेरे मुकुट का नाम है 'सन्तोष' और राजा लोग कदाचित ही इसे धारण करते है।

—शेक्सपियर (किंग हेनरी सिक्स्थ, ३।१)

'Tis better to be lowly born,
And range with humble livers in content.
Than to be perk'd up in a glittering grief,
And wear a golden sorrow.

निम्न वंश में जन्म लेना और दीनता से रहने वालों के साथ संतोषपूर्वक रहना इससे अधिक अच्छा है कि चमकीले दुःख में इतराया जाए और स्वर्णिम पीड़ा को धारण किया जाए।

—शेक्सपियर (किंग हेनरी एर्थ, २।३)

Our content
Is our best having.

हमारा संतोष हमारी सर्वोत्तम सम्पत्ति है।

—शेक्सपियर (किंग हेनरी एर्थ, २।३)

Where wealth and Freedom reign, Contentment fails,
And honour sinks where commerce long prevails.

जहाँ सम्पन्नता और स्वतंत्रता का साम्राज्य रहता है, वहां सन्तोष असफल रहता है और जहाँ व्यापार अधिक दिन रहता है, वहाँ प्रतिष्ठा का लोप हो जाता है।

—गोल्डस्मिथ (दि ट्रेविलर)

The noblest mind the best contentment has.

सर्वोत्तम मन सर्वोत्तम संतोष से युक्त रहता है।

—एडमंड स्पेंसर

संदेश

खोज जिसकी वह है अज्ञात
शून्य वह है भेजा जिस देश,
लिए जाओ अनन्त के पार
प्राणवाहक सूना सन्देश !

— महादेवी वर्मा (नीहार, पृ० ५८)

संदेसा ही लख लहइ, जउ कहि जाणइ कोइ।
ज्यूं धणि आखइ नयण भरि, ज्यँउ जइ आखइ साइ॥

संदेशों से ही मन की दशा जानी जा सकती है, यदि कोई कहना जाने—जिस प्रकार प्रेयसी आँसुओं से आँखे भर कर कहती है उसी प्रकार यदि वह कहे।

[राजस्थानी] —ढोला मारू रा दूहा (१११)

संदेह

दे० 'शंका', 'संशय' भी।

वेदानुशिष्टे पथि शिष्टजुष्टे नास्त्येव सन्देहलवावतारः।

सज्जनों के वेद-सम्मत मार्ग में सन्देह का तनिक भी अवकाश नही।

—चन्द्रशेखर (सुर्जनचरित, ५।२७)

वहम की दवा तो हकीम लुकमान के पास भी नहीं है।

—हिन्दी लोकोक्ति

संदेह सच्ची मित्रता का विष है।

—सेंट आगस्टीन

Modest doubt is called the beacon of the wise.

विनम्र सन्देह बुद्धिमानों का प्रकाशस्तंभ है।

—शेक्सपियर (ट्रायलस ऐंड क्रेसिडा, २।२)

Doubt is an element of criticism.

सन्देह आलोचना का एक तत्व है।

—डिज़रायली

Suspicions amongst thoughts are like the bats amongst birds, they ever fly by twilight: certainly they are to be repressed, or at least well-guarded, for they cloud the mind, lose friends, check business, dispose kings to tyranny, husbands to jealousy, and wise men to irresolution and melancholy; they are defects, not in the heart, but in the brain.

विचारों में सन्देह पक्षियों में चिमगादड़ों के समान होते हैं, वे सदा धुंधले प्रकाश में ही उड़ते हैं। निस्सन्देह उन्हें दमित किया जाना चाहिए, या कम से कम उनसे बहुत सावधान रहना चाहिए, क्योंकि वे मन पर आवरण डाल देते हैं, मित्रों को गंवा देते हैं, व्यापार रुद्ध कर देते हैं, राजाओं को अत्याचार की ओर प्रवृत्त कर देते हैं, पतियों को ईर्ष्यालु बना देते हैं और बुद्धिमानों को अनिश्चयशील तथा उदासीन बना देते है। वे हृदय के नहीं, मस्तिष्क के दोष हैं।

—फ्रांसिस बेकन

Ignorance is the mother of suspicion.

अज्ञान सन्देह की जननी है

— विलियम राउन्सेविले एल्गर

Suspicion is the poison of true friendship.

सन्देह सच्ची मित्रता के लिए विष है।

—अज्ञात

संधि

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे।

किसी महान कार्य को करने के प्रसग में शत्रुओं से भी सन्धि कर लेना चाहिए।

—भागवत (८।६।२०)

ही ये मानान् किल रिपून्नृपाः संदधते कथम्।

राजा लोग दुर्बल शत्रु से सन्धि क्यों करेंगे?

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, ५।६)

उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा।
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः॥

उपकार करने वाले शत्रु के साथ सन्धि करनी चाहिए, परन्तु अपकार करने वाले मित्र के साथ नहीं; इस कारण इन दोनों के लक्षण उपकार और अपकार को लक्षित करना चाहिए।

—माघ (शिशुपालवध,२।३७)

संधियों का पालन तभी तक किया जाता है जब तक उनका हितों से सामंजस्य रहता है।

—नैपोलियन प्रथम

सन्धियां गुलाब के पुष्पों की तरह और युवतियों की तरह होती है। वे जब तक हैं तभी तक है।

—चार्ल्स दि गॉल

Treaties of friendship come from the heads of statesmen, but the will to abide by them must come from the hearts of the people.

मित्रता की संधियां तो राज्यों के प्रमुखों से आती हैं किन्तु उनका पालन करने की इच्छा तो लोगों के हृदयों से आनी चाहिए।

—रिचर्ड निक्सन (न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून फ़ोरम, १७ अक्तूबर १९५५)

संध्या

चंचत् चन्द्रकर स्पर्शहर्षोन्मीलिततारका।
अहो रागवती संध्या जहाति स्वयमम्वरम्॥

शोभाशाली चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से होने वाले हर्ष के कारण जिसके तारे किंचित प्रकाशित हो रहे है वह

रागयुक्त सन्ध्या स्वयं ही अम्बर का त्याग कर रही है, यह कैसे आश्चर्य की बात है !

—वाल्मीकि (रामायण, किष्किन्धाकांड, ३०।४५)

या भाति लक्ष्मीर्भुवि मन्दरस्था
यथा प्रदोषेषु च सागरस्था।
तथैव तोयेषु च पुष्करस्था
रराज सा चारुनिशाकरस्था ॥

भूतल पर मन्दराचल में, सन्ध्या के समय महासागर में और जल के भीतर कमलों में जो लक्ष्मी जिस प्रकार सुशोभित होती है, वही उसी प्रकार मनोहर चन्द्रमा में शोभा पा रही थी।

—वाल्मीकि (रामायण, सुन्दरकांड, ५।३)

प्रकाशचन्द्रोदयनष्टदोषः
प्रवृद्धरक्षः पिशिताशदोषः।
रामाभिरामेरितचित्तदोषः
स्वर्गप्रकाशो भगवान् प्रदोषः ॥

प्रकाशयुक्त चन्द्रमा के उदय से जिसका अन्धकाररूपी दोष दूर हो गया है, जिसमें राक्षसों के जीवहिंसा और मांस-भक्षण रूपी दोष बढ़ गए हैं तथा रमणियों के रमण-विषयक चित्तदोष निवृत्त हो गए हैं, वह पूजनीय प्रदोपकाल स्वर्ग-सदृश सुख का प्रकाश करने लगा।

—वाल्मीकि (सुन्दरकांड, ५।८)

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (अपरा, पृ० २२)

कहो, तुम रूपसि कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप,
सुनहली फैला केश कलाप
मधुर, मंथर, मृदु, मौन !

—सुमित्रानन्दन पंत (युगांत, पृ० ५६)

पति सेवा रत सांझ
उचकता देख पराया चांद
ललाकर ओट हो गयी।

—अज्ञेय ('पूनो की सांझ' कविता)

सांझ के आइल बरखा और पाहुन ना जाला।

सांयकाल को आई वर्षा और अतिथि रात भर नहीं जाते।

—हिन्दी लोकोक्ति (बिहार प्रदेश)

मोडगळ सिरिगॆंपु पंडितर पांडित्य
मेल्लमं बोधियुदु; मीरिरुवुदु !
सोबगिनलि शिवनेंदु सारूतिहुदु !

मेघमंडल पर आच्छादित यह मोहक संध्याराग पंडितों के सारे ज्ञान को परास्त कर देता है। वह संध्याराग यह घोषणा कर रहा है कि 'सुन्दर' में ही 'शिव' है, ईश्वर है।

[कन्नड़] —कुवेम्पु (कविता 'मोहिसुव संजे)

संन्यास

दे० 'संन्यासी' भी।

पुनरव्रती वा व्रती वा स्नातको वा स्नातको
वोत्सन्नग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत।

चाहे व्रती हो या अव्रती, स्नातक हो या न हो, चाहे अग्नि-ग्रहण करके स्त्री के मरने से त्याग किया हो अथवा अग्नि-ग्रहण कर सस्कार न किया गया हो, किसी भी अवस्था में जब मन में वास्तविक वैराग्य उत्पन्न हो जाये, उसी समय संन्यास ग्रहण किया जा सकता है।

—जाबालोपनिषद् (४)

यथा जातरूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहस्तत्तद्ब्रह्म
मार्गे सम्यक् सम्पन्नः
शुद्ध मानसः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले
विमुक्तो भैक्षमाचरन्नुदरपात्रेण
लाभालाभयोः समो भूत्वा शून्यागारदेवगृहतृणकूट
वल्मीकवृक्षमूलकुलाल शालाग्निहोत्रगृहनदीपुलिनगिरि

कुहरकन्दरकोटरनिर्झरस्यण्डिलेषु तेष्वनि-केतवास्यप्रयत्नो निर्ममः शुक्लध्यानपरायणोऽध्यात्म-निष्ठोऽशुभकर्मनिर्मूलनपरः संन्यासेन देहत्यागं करोति स परमहंसो नाम ।

संन्यासी प्राकृतिक रूप में निर्द्वन्द, परिग्रह-रहित और सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त रहता है। वह शुद्ध मन वाला होता है। उसे ब्रह्ममार्ग में निरंतर बढ़ते रहने का ध्यान रहता है। यद्यपि वह जीवन्मुक्त होता हैं, पर प्राणों की रक्षा के लिए उपयुक्त समय पर आहार को उदान रूपी पात्र में डाल देता है, पर किसी प्रकार के लाभ या अलाभ की चिन्ता नहीं होती। वह शून्य स्थान, देवगृह, तृण-समूह, साँप का बिल, वृक्षमूल, कुम्हार का स्थान, अग्निहोत्र का स्थान, नदी का तट, पहाड़ का खंड या गुफा, खोह-झरना आदि जहां भी हो, घर का ध्यान न रखकर रहता है। वह निर्मम होता है। शुक्ल (सात्विक) ध्यान में लगा रहता है। अध्यात्मनिष्ठ होता है। अशुभ कर्मों को निर्मूल करता रहता है। इस प्रकार संन्यास-धर्म का पालन करता हुआ जो देह त्याग करता है, वह परमहंस है।

—जाबालोपनिषद् (६)

**परेणौवात्मनश्चापि परस्यैवातमना तया ।
अभयं समवाप्नोति स परिव्राडिति स्मृतिः ।**

जो दूसरों से निर्भय है और दूसरों को भी अभय देता है, वही संन्यासी है, ऐसा स्मृति में कहा गया है।

—नारदपरिव्राजको उपनिषद् (३।१)

**यदा मनसि संजातं वैतृष्ण्यं सर्ववस्तुषु ॥
तदा संन्यासमिच्छन्ति स्याद्विपर्यये ।
विरक्तः प्रव्रजेद्धीमान् सरक्तस्तु गृह वसेत् ॥**

जब मन में सब पदार्थों की ओर से पूर्ण वैराग्य हो जाए, तभी संन्यास की इच्छा करनी चाहिए। इसके विपरीत आचरण करने से मनुष्य पतित हो जाता है। विरल बुद्धि-मान संन्यास ग्रहण करे और रागवान व्यक्ति घर पर ही निवास करे।

—नारदपरिव्राजक उपनिषद् (३।११-१२)

प्रवृत्तिलक्षणं कर्म ज्ञानं संन्यासलक्षणम् ।

कर्म ही प्रवृत्ति का लक्षण है और ज्ञान ही संन्यास का लक्षण है।

—नारदपरिव्राजक उपनिषद् (३।१५)

एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायकः ।

सिद्धिलाभ के लिए किसी दूसरे को साथी न बनाकर सदा अकेला ही विचरण करे।

—नारदपरिव्राजक उपनिषद् (३।५३)

**काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥**

कितने ही पंडितजन तो काम्य कर्मो के त्याग को संन्यास समझते हैं तथा विचारकुशल पुरुष सब कर्मों के फल के त्याग को 'त्याग' कहते है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, ४२।२ अथवा गीता, १८।२)

**परिव्रजन्ति दानार्थं मुण्डाः काषायवाससः ।
सिता बहुविधैः पाशैः संचिन्वतो बृथामिषम्**

बहुत से मनुष्य दान लेने के लिए सिर मुंडाकर, गेरुए वस्त्र पहन लेते हैं और घर से निकल जाते है। वे नाना प्रकार बन्धनों के बँधे होने के कारण व्यर्थ भोगो की ही खोज करते रहते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व।१८।३२)

**अनिष्कषाये काषायमीहार्थमिति विद्धि तम् ।
धर्मध्वजानां मुण्डानां वृत्त्यर्थमिति मे मतिः ॥**

यदि हृदय का कषाय (राग आदि दोष) दूर न हुआ हो तो काषाय (गेरुआ) वस्त्र धारण करना स्वार्थ-साधन की चेष्टा के लिए ही समझना चाहिए। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि धर्म का ढोंग रखने वाले मुंडों के लिए यह जीविका चलाने का एक धंधा मात्र है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१८।३४)

**संतोषमूलस्त्यागात्मा ज्ञानाधिष्ठानमुच्यते ।
अपवर्गमतिर्नित्यो मतिधर्मः सनातनः ॥**

सन्तोष ही जिसका मूल है त्याग ही जिसका स्वरूप है, जो ज्ञान का आश्रय कहा जाता है, जिसमे मोक्षदायिनी बुद्धि नित्य होती है, वह सनातन यति-धर्म है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।२७०।३१)

काषायधारणं मौण्ड्यं त्रिविष्टब्धंकमण्डलुम्।
लिंगान्युत्पथभूतानि न मोक्षायेति मे मतिः॥

मेरी धारणा है कि गेरुआ वस्त्र पहनना, मस्तक मुड़ा लेना तथा त्रिदण्ड और कमण्डलु धारण करना—ये सब उत्कृष्ट संन्यासमार्ग का परिचय देने वाले चिह्न मात्र है, इन के द्वारा मोक्ष की सिद्धि नहीं होती।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।३२०।४७)

जितात्मनः प्रवजनं हि साधु चलात्मनो न त्वजितेन्द्रियस्य।

जिसने अपने को जीत लिया है उसी का प्रव्रजित होना उचित है, न कि चंचलात्मा अजितेन्द्रिय व्यक्ति का।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १८।२३)

शिरो मुण्डितं तुण्डं मुण्डितं चित्तं न मुण्डितं किं मुण्डितम्?
यस्य पुनश्च चित्तं मुण्डितं साधु सुष्ठु शिरस्तस्य मुण्डितम्॥

जिसने सिर मुंडा लिया, दाढ़ी भी मुंडा ली किन्तु मन नहीं मुंडाया अर्थात् मन से विषय-वासनाओं को नहीं हटाया, उसने कुछ भी नही मुंडाया और जिसने अपने मन को उत्तम रीति से शुद्ध कर लिया है उसने शिर आदि भी अच्छी तरह मुंडा लिया है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, ६।३)

सर्वसत्वानुकम्पिनी प्रायः प्रव्रज्या।

प्रव्रज्या सब जीवों पर दया करने वाली है।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० २४४)

संन्यासो निर्मलम् ज्ञानं न काषायो न मुंडनम्।

संन्यास निर्मल ज्ञान है। वह न तो गेरुवा वस्त्र धारण करना है, न शिर मुंडाना है।

—श्रीरमणगीता (८।५)

उत्तमंगरुहा मय्हं इमे जाता वयोहरा।
पातुभूता देवदूता पब्बज्जासमयो मय॥

यह मेरी आयु का हरण करने वाले मेरे सिर के (श्वेत) केश उत्पन्न हो गए हैं। ये देवदूत प्रादुर्भूत हुए हैं। यह मेरी प्रव्रज्या का समय है।

[पालि] —जातक (मखादेव जातक)

अनिक्कवासो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति,
अपेतो दमसच्चेन न सो कासायमरहति॥
रहो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो,
उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरति॥

जो अपने मन को स्वच्छ किए विना काषाय वस्त्र को धारण करता है, सत्य और संयम से रहते वह व्यक्ति काषाय वस्त्र का अधिकारी नहीं है। जिसने अपने मन के मैल को दूर कर दिया है, जो शीलवान् है, सत्य और संयम से युक्त वह व्यक्ति ही काषाय वस्त्र का अधिकारी है।

[पालि] — जातक (कासाव जातक)

तणकणए समभावा, पव्वज्जा एरिसा भणिया।

तृण और कनक मे जब समान बुद्धि रहती है, तभी उसे प्रवज्जा कहा जाता है।

[प्राकृत] —कुन्दकुन्द आचार्य (बोध पाहुड, ४७)

निवृत्ति का स्थान प्रवृत्ति के बहुत ऊपर है।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (आधी रात, प्रथम अंक)

कर्म से हीन बन जाना संन्यास नहीं है। कर्म के समुद्र को पार कर जाना संन्यास है।

—लक्ष्मी नारायण मिश्र (जगद्गुरु, तीसरा अंक,)

धर्मराज, कर्मठ मनुष्य का
पथ सन्यास नहीं है,
नर जिस पर चलता वह,
मिट्टी है, आकाश नहीं है।

—रामधारी सिंह 'दिनकर' (कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग)

क़लंदरी न बरेशस्तो मूए या अवरु
हिसाबे राहे क़लंदर बदां के मूए बमूस्त।

सिर मुंडाने या दाढ़ी रखने से ही कोई संन्यासी नहीं हो जाता। बाल के समान पतले इस मार्ग पर चलना बहुत ही कठिन है।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

सच्चे संन्यासी तो अपनी मुक्ति की भी उपेक्षा करते हैं—जगत् के मंगल के लिए ही उनका जन्म होता है। यदि ऐसे संन्यासाश्रम के भी तुम कृतज्ञ न हो तो तुम्हें धिक्कार, कोटि-कोटि धिक्कार है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ६, पृ० ६६)

यथार्थ में त्याग ही सच्चा और पूर्ण संन्यास है।

—अरविन्द (गीता-प्रबन्ध, भाग १, पृ० १६६)

संन्यास का आधार वीरता है।

—चिदानंद

संन्यास का अर्थ है अपने अतीत के भ्रांतिपूर्ण अहं की चेतना का उन्मूलन। इसका अर्थ है परम त्याग की प्रचलित अग्नि में अपनी सम्पूर्ण कामनाओं और आसक्तियों को विदग्ध करना, इसका अर्थ है शारीरिक चेतना के अन्तिम अवशेष को भी भस्मीभूत कर डालना। यह एक भव्य नयी चेतना का प्रकटन है।

—चिदानंद

संन्यासी

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति।

जो मनुष्य न किसी से द्वेष करता है, और न किसी की आकांक्षा करता है, वह सदा संन्यासी ही समझने योग्य है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व २६।३ अथवा गीता, ५।३)

अनग्निरनिकेतश्च ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्।

संन्यासी कभी भी न तो अग्नि की स्थापना करे और न घर या मठ ही बनाकर रहे। केवल भिक्षा लेने के लिए ग्राम में जाए।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व।२४५।५)

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टितमः।
अशोकवन्तः करुणैकवन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥

वेदान्त वाक्यों में रमण करने वाले, भिक्षा के अन्न से ही सन्तुष्ट, शोकरहित, करुणाशील, कौपीनधारी ही भाग्यवान हैं।

—शंकराचार्य (कौपीनपञ्चक स्तोत्र)

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्य-मण्डल-भेदिनौ।
परिव्राट योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हतः॥

दो प्रकार के मनुष्य ही मरणोपरान्त सूर्यमंडल को भेदते हैं—परिव्राजक[1] योगी तथा रणभूमि मे शत्रु से लड़ता प्राणत्याग करने वाला व्यक्ति।

अज्ञात

पंच वलद्द ण रक्खियइं णंदण वणु ण गओ सि।
अप्पु ण जाणिउ ण वि परु वि एमइ पव्वइओ सि॥

न तो पाँच बैलों (पंचेन्द्रियों) से रक्षा की, न नन्दन वन (आत्मा) में गया। न आत्मा को जाना, न पर को जाना, ऐसे ही परिव्राजक (संन्यासी) हो गया।

[अपभ्रंश] —मुनि रामसिंह (पाहुड दोहा, ४४)

दुनिया में रहते हुए भी सेवा-भाव से और सेवा के लिए ही जो जीता है, वह संन्यासी है।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, ४८)

संन्यासी हिन्दूधर्म का ही नहीं, सभी धर्मों का है।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, ६८)

यथापि भमरो पुप्फं वण्णगंधं अहेठ्यं
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे।

जिस प्रकार फूल के रंग या गंध को बिना हानि पहुँचाए भ्रमर रस को लेकर चल देता है, उसी प्रकार मुनि ग्राम में विचरण करे।

[पालि] —जातक (इल्लीस जातक)

---

१. संन्यासी।

संन्यासी का कोई मत या सम्प्रदाय नहीं हो सकता, क्योंकि उसका जीवन स्वतंत्र विचार का होता है और वह सभी मत-मतान्तरों से उनकी अच्छाइयों को ग्रहण करता है। उसका जीवन साक्षात्कार का होता है, न कि केवल सिद्धांतों अथवा विश्वासों का, और रूढ़ियों का तो बिलकुल ही नहीं।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, तृतीय खण्ड, पृ० १८४)

पहले सुवर्ण के संन्यासी और लकड़ी के कमंडलु हुआ करते थे, किन्तु जब कमंडलु सोने के हो गए है और संन्यासी लकड़ी के।

—अज्ञात (तोल्स्तोय द्वारा उद्धृत)

संपत्ति

दे० 'संपत्ति और विपत्ति' भी।

या गम्या सत्सहायानां यासु खेदो भयं यतः।
तासां किं यन्न दुःखाय विपदामिव सम्पदाम्॥

जो सम्पत्तियां साधन-सम्पन्नों द्वारा ही प्राप्तव्य हैं, जिनकी रक्षा आदि मे खेद है, जिनसे भय है, उन सम्पत्तियों का कौन सा पक्ष विपत्तियों के समान दुःखदायी नही है?

भारवि (किरातार्जुनीय, ११।२२)

नये च शौर्ये च वसंति सम्पदः।

नीति और पराक्रम में ही संपत्तियों का वास होता है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ३।११६)

तेन न श्रियमिमां बहुमन्ये
स्वोदरंभरिकार्यकदर्याम्।

अपना पेट भरने के कार्य के कारण निन्दित इस लक्ष्मी को मैं बहुत नही मानता।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ५।१६)

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढ़सौहृदं च लक्ष्मीः स्वयं वांछति वासहेतोः॥

लक्ष्मी स्वयं ही उत्साही, कार्य करने में देर न लगाने वाले, कार्य की विधि जानने वाले, व्यसनों में अनासक्त, शूर, उपकार मानने वाले तथा मित्रता का निर्वाह दृढ़तापूर्वक करने वाले मनुष्यों के पास निवास करने की अभिलाषा करती है।

—अज्ञात (वल्लभदेव कृत सुभाषितावली ३१५)

दिए पीठि पाछे लगै सनमुख होत पराइ।
तुलसी संपति छांह ज्यों लखि दिन बैठि गँवाइ॥

सम्पत्ति शरीर की छाया के समान है। इसे पीठ देकर चलने से यह पीछे-पीछे चलती है और सामने होकर चलने से यह दूर भाग जाती है। इस बात को समझ कर घर बैठ कर (सन्तोषपूर्वक) ही दिन बिताओ।

—तुलसीदास (दोहावली, २५७)

कोठे मंडप माड़ीआ, एतु न लाए चित्तु।
मिट्टी पई अतोलवी, कोई न होसी मित्तु॥

इन मकानों, हवेलियों और ऊँचे-ऊँचे महलों में अपने मन को मत लगा। तेरे ऊपर बिन तोल मिट्टी पड़ेगी, तब वहां तेरा कोई भी मित्र नही होगा।

[पंजाबी] —शेख फ़रीद

आज सम्पत्ति ही सब बुराइयों की जड़ है। जो इससे सम्पन्न हैं वे और जो इससे वंचित हैं वे भी बस इसी से त्रसित है। यही उन व्यक्तियों की अन्तरात्मा के क्रन्दन की जड़ है जो इसका दुरुपयोग करते हैं और यही उन दो वर्गो के बीच के संघर्ष की जड़ है जिनमें से एक के पास इसकी बहुलता है और दूसरे के पास इसका अभाव। इस प्रकार बुराई की जड़ होते हुए भी सम्पत्ति ही आज हमारे समाज समस्त हलचलों का उद्देश्य है। यही सारी दुनिया की क्रिया का निर्देशन करती है।

—तोलस्तोय (व्हाट शैल वी डू देन)

यह सम्पत्ति है क्या? केवल कुछ चीजें, जिन्हें तुम, इस भय से कि इनकी कल तुम्हें जरूरत पड़ सकती है, संचित करते हो और जिनकी रखवाली करते हो।

—खलील जिब्रान (जीवन संदेश, पृ० २९)

सम्पत्ति चोरी है।

—प्रूधों

जहाँ तुम्हारा खजाना होगा, वहाँ तुम्हारा हृदय होगा।

—नवविधान (मत्ती, ६।२१)

सम्पत्ति अनेक मित्र बना देती है।

—नवविधान (कहावतें, १९।४)

सम्पत्तियां अपने पर अवश्य ही लगा लेती हैं, वे श्येनवत् आकाश की ओर उड़ जाती हैं।

—नवविधान (कहावतें, २३।५)

लोग सम्पत्ति का अन्य सब वस्तुओं से अधिक आदर करते हैं। मानव-जीवन में इसकी सर्वाधिक शक्ति होती है।

—यूरिपिडिस (दि फ़ीनीशियन वीमेन)

मनुष्य जाति की इच्छाओं को समान किए जाने की आवश्यकता है, न कि सम्पत्तियों को।

—अरस्तू (राजनीति, ४।७)

सम्पत्ति है इसी कारण युद्ध है, दंगे हैं और अन्याय हैं।

—फ़्रांसीसी विद्यार्थी विद्रोह (मई १९६८) में भित्तिचित्र रूप में अंकित एक वाक्य

Superfluous wealth can buy superfluities only.

फ़ालतू सम्पत्ति केवल फ़ालतू वस्तुएं खरीद सकती है।

—थोरो (वाल्डेन, कान्क्लूजन)

He that hath nothing is frightened at nothing.

जिसके पास कुछ नहीं है, उसे किसी बात से भय नहीं है।

—टामस फ़ुलर (नोमोलोजिया, २१५०)

Rich men feel misfortunes that fly over poor men's heads.

धनी व्यक्ति उन दुर्भाग्यों को भोगते हैं जो निर्धनों के सिर के ऊपर से निकल जाते हैं।

—टामस फ़ुलर (नोमोनोलोजिया, ४०४८)

Where there is no property, there is no injustice.

जहाँ सम्पत्ति नहीं होती, वहाँ अन्याय नहीं होता।

—जान लाक (ऐन एसे कन्सनिंग ह्यूमन अंडरस्टैंडिंग)

Riches attract the attention, consideration and congratulations of mankind.

सम्पत्तियाँ मनुष्य जाति के ध्यान, विचार तथा बधाइयों को आकर्षित करती है।

—जान एडम्स (डिस्कोर्सिज आन डेविला, २)

Of all obstacles to that complete democracy of which we dream, is there a greater than property ?

हम जिसका स्वप्न देखते हैं उस पूर्ण जनतंत्र में सम्पत्ति से बड़ी बाधा क्या है ?

—डेविड ग्रेसन (ऐडवेंचर्स इन कंटेटमेंट)

सम्पत्ति और विपत्ति

विपद्विपदं सम्पत् सम्पदमनुबध्नाति।

विपत्ति के पीछे विपत्ति और सम्पत्ति के पीछे सम्पत्ति आती है।

—बाण (कादम्बरी, पूर्व भाग, पृ० २२५)

सम्पत्ति के सब ही हितू, विपदा में सब दूर।
सूखो सर पंखी तजैं, सेवैं जल ते पूर॥

—बुधजन (बुधजन सतसई, पृ० १७)

Prosperity is not without many fears and distastes, and adversity is not without comforts and hopes.

सम्पन्नता अनेक भयों और रुचिकर बातों से रहित नहीं होती, और निर्धनता सांत्वनाओं और आशाओं से रहित नहीं होती।

—बेकन (एसेज़, आफ़ एडवर्सिटी)

सम्पादक

दे० 'पत्रकार', 'पत्रकारिता' भी।

संपादक पर पाठकों का चाबुक तो रहना ही चाहिए। मात्र चाबुक चलाने में उन्हें थोड़ी कला का परिचय देना चाहिए।

—महात्मा गांधी (नवजीवन, २५-१२-१९२१)

An editor is one who separates the wheat from the chaff and prints the chaff.

संपादक वह व्यक्ति है जो गेहूं को भूसी से अलग करता है और भूसी छापता है।

—एडलाई स्टीवेंसन (दि स्टीवेंसन विट)

Editing is the same as quarrelling with writers—same thing exactly.

संपादन ऐसा ही है जैसे लेखकों से झगड़ा करना—ठीक वैसा ही।

—हेराल्ड रॉस ('टाइम' पत्रिका, ६ मार्च १९५०)

Editing is the most companionable form of education.

सम्पादन सबसे अधिक सहचारितापूर्ण शिक्षा-रूप है।

—एडवर्ड वीक्स (इन फ्रैंडली कैन्डर)

Great editors do not discover nor produce great authors; great authors create and produce great publishers.

महान सम्पादक महान लेखकों को न खोजते हैं, न प्रस्तुत करते है। महान लेखक महान प्रकाशकों को रचते हैं और प्रस्तुत करते हैं।

—जान फ़रर (वाट हैप्पिस इन बुक पब्लिशिंग)

सम्पादन

दे० 'संपादक'।

सम्बन्ध

मातापितृसहस्त्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि कस्य ते कस्य वा वयम्॥

हमने संसार मे अनेक जन्म लेकर सहस्त्रों माता-पिता और सैकड़ों स्त्री-पुत्रों के सुख का अनुभव किया है परन्तु अब वे किसके हैं अथवा हम उनमें से किसके हैं?

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।२८।३८)

विक्रियायै न कल्पन्ते संबन्धा सदनुष्ठिताः।

सज्जनों द्वारा कराए गए सम्बन्धों से कोई बिगाड़ नहीं होता।

—कालिदास (कुमारसम्भव, ६।२९)

अस्माकं बदरीचक्रं बदरी च तवांगणे।
बादरायण-संबन्धाद् यूयं यूयं वयं वयं॥

हमारे रथ का चक्र बेर के वृक्ष का है। बेर का वृक्ष तुम्हारे भी आंगन मे है। अतः तुम्हारा-हमारा बादरायण सम्बन्ध है।

—अज्ञात

योग्यो योग्येन सम्बन्धः।

योग्य का योग्य के साथ सम्बन्ध उत्तम होता है।

—संस्कृत लोकोक्ति

वकस्य उज्जु अस्स अ सम्बन्धो किं चिरे होइ।

वक्र और सरल का सम्बन्ध क्या चिरस्थायी होता है?

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथासप्तशती, ५।२४)

देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो।
किये विचार सार कदलि ज्यों, मनि कनकसंग
लघु लसत बीच बिच काँचो॥

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद २७७)

टूटे सुजन मनाइए, जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिर फिरि पोइए, टूटे मुक्ताहार॥

—रहीम (दोहावली, ८५)

हमारे सम्बन्ध देश-विदेश में कितने ही नये ज्ञान-विज्ञान से जुड़े हैं, लेकिन परेशानी की बात यह है कि अन्दर-अन्दर हमारा सम्बन्ध अपने पास वाले मानव समाज से, अपने पास पड़ोस, गाँव-मुहल्ले मे टूटता जा रहा है। राजनीति का अपने मतदाता से, साहित्यिक का अपने पाठक से, शिक्षक का अपने छात्र से आत्मीयता भरा रिश्ता टूट रहा है।

—धर्मवीर भारती (कहनी अनकहनी, पृ० २५)

लाठी मारने से पानी अलग नहीं होता है।

—हिंदी लोकोक्ति

No poet, no artist of any sort; has his complete meaning alone. His significance, his appreciation is the appreciation of his relation to the dead poets and artists.

कोई भी कवि, किसी प्रकार का कोई भी कलाकार, स्वत: पूर्ण अर्थ नही रखता। उसकी सार्थकता, उसका मूल्यांकन दिवंगत कवियों और कलाकारों से उसके सम्बन्ध का मूल्यांकन होता है।

—टी० एस० इलियट (ट्रेडिशन एण्ड दी इंडिविजुअल टैलेण्ट)

संबंधी

विनाशमपि कांक्षन्ति ज्ञातीना ज्ञातयः सदा।

भाई-बन्धु सदा अपने सजातियों का विनाश ही चाहते हैं।

—अज्ञात

होते के बाप, अनहोते की मां,
आस की बहन, निरास को यार।

पुत्र पर धन हो तो पिता साथ देता है, धन न हो तो भी मां साथ देती है। भाई से कुछ प्राप्ति की आशा हो तो बहिन उसके पास जाती है किन्तु कुछ प्राप्ति की आशा न हो तो भी मित्र पास जाता है।

—हिंदी लोकोक्ति

सँभलना

इक संभलते हम नजर आते नहीं।
वरना गिर-गिरकर गये लाखों संभल।

—हाली

संभालना

उरग, तुरग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथियार।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगै न बार॥

—रहीम (दोहावली, १४)

संयम

दे० 'आत्मनिग्रह' भी।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहित:।
नाशान्तमनसो वापि प्रज्ञा प्रज्ञानेनैनमापनुयात्॥

अशान्त मन होने पर तो प्रज्ञान के द्वारा भी इस (परमात्मा) को मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकता है। उसे दुश्चरित्र या अशान्त या असंयत व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

—कठोपनिषद् (१।२।२४)

विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः।

विद्वान् को चाहिए कि मन को सावधान होकर वश में रखे।

—श्वेताश्वतर उपनिषद् (२।)

रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा
नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दान्तैः
सुखं याति रथीव धीरः॥

हे राजन्! मनुष्य का शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है और इन्द्रियां इसके घोड़े हैं। इनको वश में करके सावधान रहने वाला चतुर एवं धीर पुरुष वश में किये हुए घोड़ों से रथी की भांति सुखपूर्वक संसार-पथ का अतिक्रमण करता है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व, ३४।५९)

विषयेषु प्रसक्तिर्वा युक्तिर्वा युक्तिर्वा नात्मवत्तया।

आत्मवान संयमी पुरुषों को न तो विषयों में आसक्ति होती है और न वे विषयों के लिए युक्ति ही करते हैं।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, ४।९१)

नापनेयं ततः किंचित प्रक्षेप्यं नापि किंचन।
द्रष्टव्यं भूततो भूतं यादृशं च यथा च यत्॥

उस रूप से न कुछ हटाना चाहिए और न उसमें कुछ जोड़ना ही चाहिए। रूप को ठीक-ठीक वैसा ही देखना चाहिए, जैसा वह है, जैसे है और जो है।

—अश्वघोष (सौंदरनन्द, १३।४४)

आत्मेश्वराणां न हि जातु विघ्नाः समाधिभंगप्रभवो भवन्ति।

जितेन्द्रिय पुरुष के मन में विघ्नकार वस्तुएं थोड़ा भी क्षोभ उत्पन्न नहीं कर सकती हैं।

—कालिदास (कुमारसंभव, ३।४०)

जिह्वे प्रमाणं जानीहि भोजने भाषणेऽपि च।
अतिभुक्तिरतीवोक्तिः सद्यः प्राणापहारिणी ॥

हे जीभ! भोजन और भाषण दोनों में ही संयत हो क्योंकि अति भोजन और अति भाषण दोनों ही प्राणों की शीघ्र नाश करते हैं।

—अज्ञात

अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजेमा।

सब प्राणियों के प्रति स्वयं को सयत रखना ही अहिंसा की पूर्ण दृष्टि है।

[प्राकृत] **—दशवैकालिक (६।६)**

संयमतो वेरं न चीयति।

संयम करने से वैर नहीं बढ़ता है।

[प्राकृत] **—उदान (८।५)**

गोरष कहै सुणहु रे अवधू, जग मैं ऐसे रहणां।
आंखैं देखिबा, काणै सुणिबा, मुप थैं कछू न कहणां ॥

—गोरखनाथ

यदि इस देह रूपी वस्तु को मनुष्य जीत ले, तो फिर संसार में कौन उस पर सत्ता चला सकता है?

—विनोबा भावे (गीता-प्रवचन, पृ० २११)

इन्द्रिय-निग्रह कुछ समय के लिए होता है। इन्द्रिय-संयम सारे जीवन का तत्त्व है।

—विनोबा भावे (स्थितप्रज्ञदर्शन, पृ० २२)

संयम के द्वारा ही मनुष्य की अनुभव-शक्ति बढ़ती है, हर तरह का सामर्थ्य बढ़ता है। सार-असार का भेद-समझने की सूक्ष्म मे बुद्धि बढ़ती है और मनुष्य जीवन-साफल्य तक पहुँचता है। संयम में ही जीवन-साफल्य की पराकाष्ठा है।

—काका कालेलकर (युगानुकूल हिन्दू जीवनदृष्टि, पृ० २७५)

संयम का अर्थ घुटना और सड़ना नहीं है, स्वस्थ बहाव है।

—रांगेय राघव (राह न रुकी, पृ० १४०)

व्यक्ति दास ही नहीं देह का
स्वामी भी है
अनुशासित ही नही
मुक्त अनुशासक भी है इच्छाओं का।
लक्ष्य न ऐन्द्रिय विचरण तो
साधन का उपयोग नहीं—उपभोग मात्र है।

—कुंवर नारायण (आत्मजयी, पृ०७६)

कन्द्यो गेह् तंजि कन्द्यो वनवास्,
व्यफोल मन ना रॅटिथ तॅ वास।

कई ने घर त्याग दिए, कई वनवास करने लगे। यदि चंचल मन नियंत्रित न हुआ तो सब विफल है, कहीं भी सुख नही मिलेगा।

[कश्मीरी] **—लल्लेश्वरी (लल्लवाख)**

जी जो चाहता है, वह तो पशु भी करता है, फिर आदमी की अपनी विशेषता कहां है? संयम-शृंखला, साधना—यह सब तो मनुष्य के लिए ही है।

—विमल मित्र (साहब बीवी गुलाम, पृ० ४२३)

जो इन्द्रियों पर संयम रखता है, उसकी विजय होती है।

—गेटे (फ़ाउस्ट)

संयोग

शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते ॥

शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग को 'आयु' कहते हैं। 'धारि', 'जीवित', 'नित्यग' और 'अनुबन्ध'—ये 'आयु' के पर्यायवाची शब्द हैं।

—चरकसंहिता (सूत्रस्थान, अध्याय १)

दिष्ट्या धूमाकुलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावकएवाहुतिः पतिता।

सौभाग्य से धुएं से व्याकुल दृष्टिवाले यजमान की आहुति अग्नि में ही गिरी है।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ४।३ के पश्चात्)

अवश्यंभाव्यचिन्तनीयः समागमो भवति।

अवश्यम्भावी मिलन अचानक ही होता है।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ६।१० के पश्चात्)

घुणाक्षरमपि कदापि सम्भवति।

कहीं घुणाक्षर न्याय भी सहायता कर देता है।

—हर्ष (रत्नावली, २।१६ के पश्चात्)

कार्यं सुचरितं क्वापि दैवयोगाद्विनश्यति।

कभी-कभी अच्छी तरह किया हुआ काम भी दैवयोग से नष्ट हो जाता है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ४।२)

अंधे के हाथ बटेर।

—हिंदी लोकोक्ति

There is a meaning in each play of chance.

प्रत्येक संयोग अर्थपूर्ण होता है।

—अरविन्द (सावित्री, २।११)

संयोग-वियोग

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः॥

जैसे महासागर में एक काठ एक ओर से और दूसरा दूसरी ओर से आकर दोनों थोड़ी देर के लिए मिल जाते हैं तथा मिलकर फिर विछुड़ जाते हैं, इसी प्रकार यहाँ प्राणियों का संयोग-वियोग होता रहता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।२८।३६)

समेत्य च यथा भूयो व्यापयन्ति वलाहकाः।
संयोगो विप्रयोगश्च तथा मे प्राणिनां मतः॥

जिस प्रकार बादल एकत्र होकर फिर अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणियों का संयोग और वियोग है, ऐसा मैं समझता हूँ।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, ६।४७)

विहगानां यथा सायं तत्र तत्र समागमः।
जातौ जातौ तथाश्लेषो जनस्य स्वजनस्य च॥

जैसे सायंकाल में स्थान-स्थान पर पक्षियों का मिलन होता हैं, वैसे ही जन्म-जन्म में पराए जनों और अपने जनों का सम्बन्ध होता है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १५।३३)

कथमप्येकस्मिन् जन्मनि समागमः जन्मान्तरसहस्राणि च विरहः प्राणिनाम्।

प्राणियों का किसी एक जन्म में किसी प्रकार से मिलन हो जाता है किंतु विरह समग्र जन्मों तक रहता है।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ५११)

All days are nights to see till I see thee,
And nights bright days when dreams do show thee me.

जब तक मैं तुम्हें न देखूं, सभी दिन रात्रि हो जाते हैं और जब स्वप्न मुझे तुम्हारा दर्शन करा देते हैं तो रात्रियां भी प्रकाशमान दिन बन जाती हैं।

—शेक्सपियर (सानेट्स, ४३)

संरक्षक

एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम्।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः॥

जो अपने द्वारा भरण-पोषण के योग्य व्यक्तियों को बाँटे बिना अकेले ही उत्तम भोजन करता तथा अच्छा वस्त्र पहनता है, उससे बढ़कर क्रूर कौन होगा?

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व, ३३।४१)

संविधान

There is a conceit among many innocent people that if only we get a full-fledged Parliamentary Constitution, all the troubles of today will be over. But Parliamentary Constitutions

cannot create conditions of Parliamentary Government.

अनेक भोले-भाले लोगों की यह सनक है कि यदि हमें पूर्णतया संसदीय संविधान प्राप्त हो जाए तो हमारे आज के सब कष्ट मिट जायेंगे। परन्तु संसदीय संविधान तो संसदीय शासन के लिए वांछित स्थितियां नही बना सकते।

—विपिनचन्द्र पाल (१ सितम्बर १९२७ के 'दि इंग्लिशमैन' पत्र में लेख 'आवर अनफ़िटनेस फ़ार रियल रिस्पांसिबिल गवर्नमेंट')

संवेदना

यदि तुम्हारे घर के
एक कमरे में लाश पड़ी हो
तो क्या तुम
दूसरे कमरे में गा सकते हो?

—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

जिस धरती पर
फ़ौजी बूटों के निशान हों
और उन पर
लाशें गिर रही हों
वह धरती
यदि तुम्हारे खून में
आग बनकर नहीं दौड़ती
तो समझ लो
तुम बंजर हो गए हो।

—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

संशय

दे० 'शंका', 'संदेह' भी।

नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।

जिसके मन में संशय भरा हुआ है, उसके लिए न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है।

—वेदव्यास (महाभारत, वन पर्व।२००।११२)

संशयात्मुन कॆंदु मोक्षंबु लदु।

संशय से पीड़ित व्यक्ति को मोक्ष-प्राप्ति हो नही सकती है।

[तेलुगु] —शिवराम कवि (सानंदोपाख्यान, ४।८३)

संसै खाया सकल जुग, ससा किनहुँ न खद्ध।
जे वेधे गुर आषिरां तिनि संसा चुणि चुणि खद्ध।

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ३)

जिहि घट मैं संसौ वसै, तिहि घटि राम न जोइ।
राम सनेही दास विचि, तिणां न संचर होइ॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ५२)

संशय, निकष है
ऋत का भी।

—नरेश मेहता (संशय की एक रात, पृ० ६०)

संसद

संसदें हमारे युग का सबसे बड़ा झूठ है।

—कांस्तेन्तिन पोबेदोनोस्तसेव (मोस्कावस्की स्वोरनिक)

If a man will begin with certainties, he shall end in doubts. but if he will be content to begin with doubts, he shall end in certainties.

यदि कोई मनुष्य विश्वासों से प्रारंभ करेगा तो अन्त संदेहों में होगा, परन्तु यदि वह संदेहों से प्रारम्भ कर सके तो अन्त में उसे विश्वासों की प्राप्ति होगी।

—बेकन (ऐडवांसमेंट आफ लर्निंग, ५।८)

Parliament is not a congress of ambassadors from different and hostile interests; which interests each must maintain, as an agent and advocate, against other agents and advocates; but parliament is a deliberative assembly of one nation, with one interest, that of the whole. where, not local purposes. not local prejudices ought to guide, but the general good, resulting from the general reason of the whole. You

choose a member indeed; but when you have chosen him, he is not member of Bristol, but he is a member of parliament.

संसद विभिन्न और परस्पर विरोधी हितों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन नहीं है, जिन हितों का प्रतिपादन प्रत्येक को अभिकर्ता और समर्थक के रूप में अन्य अभिकर्ताओं व समर्थकों के विरुद्ध करना है, अपितु संसद, एक राष्ट्र की, एक हित में—वह भी सम्पूर्ण के हित में—विचारविमर्शात्मक सभा है, जहां पर स्थानीय उद्देश्यों व स्थानीय पूर्वाग्रहों को नहीं अपितु समष्टि की व्यापक बुद्धि से उत्पन्न सर्वकल्याण को मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए। आप अवश्य ही एक सदस्य को चुनते हैं, किन्तु जब आप उसको चुन चुके हैं, तब वह ब्रिस्टल का सदस्य नहीं है, अपितु वह संसद् का सदस्य है।

—एडमंड बर्क (ब्रिस्टल के मतदाताओं में भाषण, ३ नवम्बर १७७४)

संसर्ग

सांसर्गिकों दोष एव नूनमेकस्यापि
सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हति।

संसर्ग से उत्पन्न होने वाले दोष एक के भी होने पर सभी साथियों के हो सकते हैं।

—भागवत (५।१०।५)

संसार

दे० 'सृष्टि' भी।

देवस्य पश्यं काव्यं न ममार न जीर्यति।

देव का यह काव्य देखो जो न मरता है और न जीर्ण होता है।

—अथर्ववेद (१०।८।३२)

ईशावास्यमिदं सर्व यत्किंच जगत्यां जगत्।

इस गतिमान में जो कुछ भी है, वह सब ईश से व्याप्त है।

—ईशावास्योपनिषद् (१)

नेह नानास्ति किंचन।

यहां (इस जगत में) नाना (भिन्न-भिन्न भाव) कुछ भी नहीं है (अर्थात् सब कुछ परमात्मा का ही स्वरूप है।)

—कठोपनिषद् (२।१।११)

अक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्।

अक्षर (ब्रह्म) से यह विश्व उत्पन्न होता है।

—मुंडकोपनिषद् (१।१।७)

सर्वं ह्येतद् ब्रह्म।

यह सब (विश्व) ब्रह्म ही है।

—मांडूक्योपनिषद् (मंत्र २)

तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्।

उस पुरुष (परमात्मा) से यह सब (जगत्) पूर्ण है।

—श्वेताश्वतर उपनिषद् (३।९)

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्॥
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

माया तो प्रकृति को समझो और मायापति महेश्वर (ब्रह्म) को। उसके अवयवभूतों (कारण-कार्य समुदाय) से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है।

—श्वेताश्वतर उपनिषद् (४।१०)

क्वचिद् वा विद्यते येषा संसारे सुखभावना।

संसार में जो सुख-भावना की जाती है, वह कहां है?

—महोपनिषद् (३।३७)

अशाश्वतमिदं सर्वं चिन्त्यमानं नरर्षभ।
कदलीसंनिभो लोकः सारो ह्यस्य न विद्यते॥

नरश्रेष्ठ! विचार करने पर यह सारा जगत अनित्य जान पड़ता है। सारा संसार केले के समान सारहीन है, इसमें कुछ भी सार नहीं है।

— वेदव्यास (महाभारत, स्त्री पर्व।३।३)

अव्यक्तनाभं व्यक्तारं विकारपरिमण्डलम्।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं चक्रं स्निग्धाक्षं वर्तते ध्रुवम्॥

यह जन्ममरण का प्रवाह रूप संसार चक्र के समान घूम रहा है। अव्यक्त उसकी नाभि है, व्यक्त (देह इन्द्रिय आदि) उसके अरे हैं, सुख-दुःख-इच्छा आदि विकार उसकी नेमि हैं,

और आसक्ति धुरा है। यह चक्र निश्चित रूप से घूमता रहता है। क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) इस चक्र पर चालक बनकर बैठता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व।२११।८)

असारभूते संसारे सारमेतदजात्मज।
भगवद्भक्तसंगश्च हरिभक्तिस्तितिक्षुता॥

हे नारद ! इस असार संसार में तीन बातें ही सार हैं— भगवद्भक्तों का संगम, भगवान की भक्ति और तितिक्षा[1]।

—नारद पुराण (पूर्व भाग, प्रथम पाद, ४।१३)

जरासमा नास्त्यमृजा प्रजानां व्याधेः समो नास्ति जगत्यनर्थः।
मृत्योः समं नास्ति भयं पृथिव्यामेतत् त्रयं खल्ववशेन सेव्यम्॥

प्राणियों के लिए वृद्धावस्था के समान गन्दगी नहीं है, संसार में रोग के समान कोई अनर्थ नहीं है। पृथ्वी पर मृत्यु के समान कोई भय नहीं है। इन तीनों को लाचार होकर भोगना ही पड़ता है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, ५।२७)

अनित्यं तु जगन्मत्वा नात्र मे रमते मनः।

जगत् को अनित्य मानकर मेरा मन इसमें नही रम रहा है।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, ४।८५)

वासवृक्षे समागम्य विगच्छन्ति यथांडजाः।
नियतं विप्रयोगान्तस्तथा भूतसमागमः॥

जिस प्रकार वासवृक्ष पर समागम के पश्चात पक्षी पृथक्-पृथक् दिशाओं में चले जाते है, उसी प्रकार प्राणियों के समागम का अन्त वियोग है।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, ६।४६)

कास्ता दृशो यासु न संति दोषाः
कास्ता दृशो यासु न दुःखदाहः।
कास्ताः प्रजा यासु न नाम भंगुरत्वं
कास्ताः क्रिया यासु न नाम माया॥

ऐसी कौन सी दृष्टि है जो निर्दोष हो? ऐसी कौन सी दिशा है जिसमें दुःख की अग्नि न जल रही हो? ऐसी कौन सी उत्पन्न वस्तु है जो नाशवान न हो? ऐसा कौन सा कार्य है जिसमें माया (धोखा) न हो?

—योगवासिष्ठ (१।२७।३१)

जगच्छब्दस्य नामार्थो ननु नास्त्येव कश्चन।

'जगत्' नाम की कोई वस्तु ही नहीं है।

—योगवासिष्ठ (३।४।६७)

महाचित्प्रतिभासत्वान्महानियतिनिश्चयात्।
अन्योन्मेव पश्यंति मिथः संप्रतिबिम्बात्॥

महाचिति के प्रतिभासित होने के कारण तथा महा-नियति द्वारा नियंत्रित होने के कारण सब प्राणी एक दूसरे में प्रतिविम्बित होने से एक दूसरे को देखते हैं।

—योगवासिष्ठ (३।५३।२५)

वस्तुस्तु जगन्नास्ति सर्वं ब्रह्मैव केवलम्।

वास्तव में जगत् है ही नहीं। सब कुछ केवल ब्रह्म ही है।

—योगवासिष्ठ (४।४०।३०)

संसारोऽस्ति न तत्त्वतस्तनुभृतां बन्धस्य वार्तैव का
बन्धो यस्य न जातु तस्य वितथा मुक्तस्य मुक्तिक्रिया।
मिथ्यामोहकृदेषु रज्जुभुजगच्छायापिशाचभ्रमो
मा किंचित्त्यज मा गृहाण विहर स्वस्थो यथावस्थितः।

यदि वस्तुतः यह संसार है ही नहीं तो शरीरधारियों के बंधन की बात ही कैसी? और जिनका कभी बन्धन ही नहीं हुआ, उस मुक्त पुरुष का मोक्ष भी व्यर्थ है। यह जो प्रतीत हो रहा है, वह मिथ्या मोह को उत्पन्न करने वाला रज्जु और सर्प तथा छाया और पिशाच के समान भ्रम मात्र है, अतः न कुछ ग्रहण करो न छोड़ो, किन्तु स्वस्थ होकर यथावस्थित विचरण करो।

—अभिनवगुप्त (अनुत्तराष्टिका, २)

एकस्य कर्म संवीक्ष्य करोत्यन्योऽपि गर्हितम्।
गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः॥

एक का कर्म देखकर दूसरा भी निन्दनीय कर्म करता है। लोक गतानुगतिक होता है, वास्तविकता का विचार कर कार्य नहीं करता।

—विष्णुशर्मा (पंचतंत्र, १।३७३)

---

१. सुख-दुःख आदि को सहन करने का स्वभाव।

क्वचिद् विद्वद्गोष्ठी क्वचिदपि सुरामत्तकलहः
क्वचिद्वीणावाद्यं क्वचिदपि च हाहेति रुदितम्।
क्वचिद्रामा रम्या क्वचिदपि जराजर्जरतनुः
न जाने संसारः किममृतमयः किं विषमयः॥

कहीं विद्वानों की गोष्ठी हो रही है, कहीं नशे में मत्त लोगों की कलह। कहीं वीणा-वादन है और कही हा-हा करके रोदन। कहीं सुन्दर स्त्री है और कहीं बुढ़ापे से जर्जर शरीर। न जाने यह संसार अमृतमय है या विषमय।

—अज्ञात

वधू श्वश्रूस्थाने व्यवहरति पुत्रः पितृपदे
पदे रिक्ते रिक्ते विनिहितपदार्थान्तिरमिति।
नदीस्रोतोन्यायादकलितविवेकक्रमघनं
न च प्रत्यावृत्तिः प्रवहति जगत्पूर्णमथ च॥

यह विवेक-विकल संसार का प्रवाह, नदी-प्रवाह-न्याय से निरन्तर बहता जा रहा है। आज जो 'बहू' कही जाती है, कुछ दिनों के उपरांत उसे 'सास' कहा जाता है। आज जो 'पुत्र' कहा जाता है, कुछ दिनों के पश्चात वह 'पिता' कहलाने लगता है। इस प्रकार एक के पश्चात दूसरा रिक्त स्थान को ग्रहण करता चला जाता है। नदी-प्रवाह-न्याय से जो जाता है, वह लौटता नहीं, किन्तु संसार उसी प्रकार पूर्ण रहता है।

—अज्ञात

जीवितं व्याधि कालो च देहनिक्खेपनं गति।
पंचेते जीवलोकस्मिं अनिमित्ता न ञायरे॥

जीव-लोक में इन पाँच बातों का पता नहीं लगता—जीने की आयु, रोग, मृत्यु-समय, शरीर के पतन का स्थान, तथा मरने पर क्या गति होगी।

[पालि] —जातक (समिद्धि जातक)

सव्वं चिय पइसमयं, उप्पज्जइ नासए य निच्चं च।

विश्व का प्रत्येक पदार्थ प्रतिक्षण उत्पन्न भी होता है, नष्ट भी होता है और साथ ही नित्य भी है।

[प्राकृत] —विशेष आवश्यक भाष्य (५४४)

इ संसार हाट कए मानह
सवो लोक वनिजेआर।
जो जस वनिजए लाभ तस पाबए
मुरुख मरहि गमार॥

इस संसार को बाजार समझो। यहाँ सभी आदमी व्यापारी हैं। जो जैसा व्यापार करता है वैसा फल पाता है। मूर्ख और गँवार व्यर्थ ही मर जाते हैं लाभ नहीं पाते।

—विद्यापति (विद्यापति पदावली, प्रथम भाग, पद १३१)

यह ऐसा संसार है, जैसा सेंवल फूल।
दिन दस के व्योहार को, झूठे रंग न भूलि॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० २१)

माषी गुड़ में गड़ि रही, पंष रही लपटाइ।
ताली पीटै सिरि धुनै, मीठे बोई माइ॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ४८)

काजल केरी कोठरी, काजल ही का कोट।
वलिहारी ता दास की, जे रहै राम की ओट॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ५०)

हम देखत जग जात हैं, जग देखत हम जांह।
ऐसा कोई ना मिलै, पकड़ि छुड़ावै बांह॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ६७)

नानक सचे की साचि कार।
सत्यस्वरूप भगवान की कृति संसार भी सत्य है।

—गुरुनानक (जपुजी, ३१)

मुकाम करि घरि वैसणा नित चलणै की धोख।
मुकामु ता परु जाणीऐ जा रहे निहचलु लोक॥

हम इस संसार को ठहरने का घर बना कर बैठे हैं किंतु यहाँ से तो नित्य चलने का धोखा बना रहता है। ठहरने का पक्का स्थान तो इसे तभी जाना जा सकता है यदि यह लोक अचल हो।

—गुरुनानक (गुरुग्रंथसाहब)

जोग वियोग भोग मल मंदा।
हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।९२।३)

सपनें होइ भिखारि नृप रंक नाक पति होय।
जागें लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जग जोइ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।९२)

केशव ! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र हरि ! समुझि मनहिं मन रहिये॥
सून्य भीति पर चित्र, रग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुःख पाइअ एहि तनु हेरे॥

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद १११)

श्रुति-गुरु-साधु-समृति-संयत यह दृश्य असंत दुखकारी।
तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति, बिपति सकै को टारी॥

—तुलसीदास (विनयपत्रिका पद १२०)

जीव जहान में जायो जहां, सो तहां 'तुलसी' तिहुँ दाह दहो है।
दोस न काहू कियो अपनो, सनेहुँ नहो सुखलेस लहो है॥

संसार में जीव जहाँ भी उत्पन्न होता है, वहाँ तीनों तापों से जलता रहता है। इसमें किसी का दोष नही है। सब अपने ही कर्मों का फल है। स्वप्न में भी लेशमात्र सुख नहीं मिलता है।

—तुलसीदास (दोहावलो, उत्तरकांड, ९१)

कुल करतूति भूति कीरति सुरूप गुन
जोबन जरत जुर परै न कल कहीं।

सब लोग अपने कुल, कर्म, वैभव, कीर्ति, सुन्दर रूप, गुण और यौवन के ज्वर मे जल रहे है। कहीं भी शांति नहीं मिलती।

—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकांड, ९८)

झूठा नाता जगत का झूठा है घरवास।
यह तन झूठा देखकर सहजो भई उदास॥

—सहजोबाई

जिउ सुपना अरु पेखना ऐसे जग कई जानि।
इन मैं कछु साचो नहीं नानक बिनु भगवान॥

—गुरु तेगबहादुर (गुरुग्रंथसाहब)

देखा देखी करत सब, नाहिन तत्त्व बिचारि।
याको यह अनुमान है, भेड़ चाल संसार॥

—वृन्द (वृन्द सतसई, ५९८)

यह जग काँचो काँच सो, मैं समुझ्यो निरधार।
प्रतिबिंबित लखिये जहाँ, एकै रूप अपार॥

—बिहारी (बिहारी सतसई, ६८१)

जिमि अकास में नीलता, दूरि पाय दरसात।
नेर नील कतहूँ नही, तिमि, यह जगत लखात॥

—बनादास (तत्त्वप्रकाश, छन्द ११)

केरा तरु नहिं सार, तिमि यह जगत असार है।
जैसे भूमि दरार, देखि डर्यो अहि जानि कै।

—बनादास (तत्तु प्रकाश, छन्द १३)

जगत यह जान रैन का सपना।
मात पिता परिवार नारि नर, हरि बिन कोई न अपना।

—सरस माधुरी

उसे संसार का कुछ अनुभव न था। वह नहीं जानता था कि इस दरबार में बहुत सिर झुकाने की आवश्यकता है, यहाँ उसी की प्रार्थना स्वीकृत होती है जो पत्थर के निर्दय चौखटों पर माथा रगड़ना जानता है, जो उद्योगी है, निपुण है, नम्र है, जिसने किसी योगी के सदृश अपने मन को जीत लिया है, जो अन्याय के सामने झुक जाता है, अपमान को दूध के समान पी जाता है और जिसने आत्माभिमान को पैरों तले कुचल डाला है। वह नहीं जानता था कि वही सद्गुण जो मनुष्य को देवतुल्य बना देते है, इस क्षेत्र में निरादर की दृष्टि से देखे जाते है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद, ६४)

यह ब्रह्माण्ड एक विराट प्रयोगशाला के सिवा और क्या है?

—प्रेमचंद (कायाकल्प, ४९)

धर्म का प्रकाश अर्थात ब्रह्म के सत्स्वरूप का प्रकाश इसी नाम-रूपात्मक व्यक्त जगत् के बीच होता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग १, पृ० २०९)

यह नीड़ मनोहर कृतियों का
यह विश्व कर्म रंगस्थल हैं,
है परम्परा लग रही यहां
ठहरा जिसमें जितना बल है।
—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, काम सर्ग)

अपने दुख सुख से पुलकित
यह मूर्त विश्व सचराचर;
चिति का विराट वपु मंगल
यह सत्य सतत चिर सुन्दर।
—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आनन्द सर्ग)

संसार ही युद्ध-क्षेत्र है, इससे पराजित होकर शस्त्र अर्पण करके जीने से क्या लाभ?
—जयशंकर प्रसाद (स्कन्दगुप्त, द्वितीय अंक)

क्षणिक संसार! इस महाशून्य मे तेरा इन्द्रजाल किसे नहीं भ्रांत करता।
—जयशंकर प्रसाद (राज्यश्री, तृतीय अंक)

जगत कोई बुद्धि से नहीं चलता बल्कि हृदय से चलता है। इस जगत में बुद्धि नहीं बल्कि आत्मा राज्य करेगी। आत्मा राज्य करेगी अर्थात् सदाचार का राज्य होगा। सदाचार अर्थात धर्माचार।
—महात्मा गांधी (नवसारी में भाषण, २१-४-१९२१)

जगत हम ही हैं। हम उसके अन्दर हैं, वह हमारे अन्दर है।
—महात्मा गांधी (बापू का आशीर्वाद, २३७)

यही तो है जग का कम्पन—
अचलता में सुस्पन्दित प्राण—
अहंकृति में झंकृति-जीवन—
सरस अभिराम पतन-उत्थान।
—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (परिमल, १०६)

जगत की निद्रा, है जागरण
और जागरण, जगत का—इस संसृति का
अन्त—विराम—मरण।
—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (परिमल, १३३)

आदि में छिप जाता अवसान,
अन्त में बनता दिव्य विधान,
सूत्र ही है क्या यह ससार,
गुंथ जिसमें सुख दुख जय हार?
—महादेवी वर्मा (रश्मि, पृ० १६)

मुझे तो ऐसा लगता है कि या तो यह दुनिया मेरे लायक़ नही है या मैं ही इस दुनिया के योग्य नही हूँ। इस छल-कपट से परिपूर्ण संसार में मुझे भेज कर शायद विधाता ने उचित नहीं किया था।
—सुभद्राकुमारी चौहान (बिखरे मोती, पृ० १३५)

सृष्टि के मूल में ज्ञान की शक्ति है, वह ज्ञान जो विराट मन के अन्तहीन एवं देश और काल से अतीत किसी अचिन्त्य और अप्रतर्क्य केन्द्र में निहित है।
— वासुदेवशरण अग्रवाल (वेदविद्या, भूमिका)

विश्व है असि का?
नहीं, संकल्प का है।
—माखनलाल चतुर्वेदी (हिमकिरीटिनी, पृ० ११६)

चारों ओर वहां पर विस्तृत केवल दुख ही दुख है।
दुख का है वह जाल, दीखता वहां क्षणिक जो सुख है।
माया है, मिथ्या मृगतृष्णा, घोर प्रलोभन, पल है।
वह संसार विषाद, निराशा का बस क्रीड़ास्थल है॥
—रामनरेश त्रिपाठी (पथिक, पृ० २५)

संसार! तू ही कल्पवृक्ष है। जो तुझसे जिस दान की यांचा करता है, उसे तू वही देता है।
—रायकृष्णदास (छायापथ, पृ० १८)

धरती मनुष्य की बनेगी स्वर्ग प्रीति से।
—रामधारीसिंह 'दिनकर' (कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग)

संसार का पहला दर्शन सदा ही उसके पीड़ा भरे रूप का दर्शन होता है।
—अज्ञेय (शेखर: एक जीवनी, भाग १, पृ० २१६)

विजय और पराजय का क्षेत्र संसार है, निर्जन नहीं है।
—भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा, पृ० २७)

मेरे लिए श्रीकृष्ण अथवा श्रीराम के जन्म-भूमियों के नाम एक सीमित क्षेत्र का अर्थबोध नहीं कराते, वह समस्त सचराचर जगत ही भगवान का व्रज-अवध है।

—अमृतलाल नागर (मानस का हंस, ७७)

संसार किसी दर्पण में प्रतिबिम्बित माया।

—कुंवर नारायण (आत्मजयी, पृ० ४६)

यह संसार का नियम ही सा बन गया है कि रक्षक एक दिन भक्षक बन ही जाता है।

—शिवानी ('के' कहानी)

भगवान के लिए जगत् को छोड़ना पड़े तो आपत्ति नहीं, परन्तु जगत के लिए भगवान कभी न छूटे। यदि मनुष्य इस प्रकार निश्चय कर ले तो फिर जगत् के छोड़ने की भी जरूरत नहीं पड़ती, सारा जगत् भगवन्मय ही तो है— 'हरिरेव जगत्, जगदेव हरि'।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार (कल्याण कुंज, पृ० ७)

कुछ नहीं, बहरे-जहां[1] की मौज[2] पर मत भूल 'मीर'
दूर से दरिया[3] नजर आता है लेकिन है सुराब।[4]

—मीर (पहला दीवान)

आलम[5] है मुक़द्दर[6] कोई दिल साफ़ नहीं है
इस अहद[7] में सब कुछ है पर इंसाफ़[8] नहीं है।

—मीर अनीस

मैं हूं और अफ़सुर्दगी[9] की आरज़ू 'ग़ालिब' कि दिल
देखकर तर्जे-तपाके-अहले-दुनिया[10] जल गया।

—ग़ालिब (दीवान)

हम इतनी उम्र में दुनिया से हो गए बेज़ार[11]।
अजब है खिज्र[12] ने क्यों कर के जिन्दगानी की॥

—दर्द

तमाम दुनिया है खेल मेरा, मैं खेल सब को खिला रहा हूँ।
किसी को बेखुद बना रहा हूँ, किसी को ग़म में रुला रहा हूँ॥

—रामतीर्थ (राम वर्षा, भाग २ पृ० ३)

१. संसार.सागर। २. लहर। ३. नदी। ४. मृगमरीचिका। ५. संसार। ६. शत्रुतापूर्ण। ७. जमाना। ८. न्याय। ९. मृत्यु। १०. संसार-वासियों की व्यवहार-विधि। ११. विमुख, अप्रसन्न। १२. एक लम्बी आयु का फ़रिश्ता।

सब राम पसारा दुनिया का, जादूगर की उस्तादी है
नित फ़रहत[1] है नित राहत है, नित रंग नये आज़ादी है।

—रामतीर्थ (राम वर्षा, भाग २ पृ० १)

इसे हम आख़िरत[2] कहते हैं जो मशग़ूले-हक़[3] रक्खे
ख़ुदा से जो करे ग़ाफ़िल उसे दुनिया समझते है।

—अकबर इलाहाबादी

मज़ा भी आता है दुनिया से दिल लगाने में।
सज़ा भी मिलती है दुनिया से दिल लगाने की॥

—अकबर इलाहाबादी

यही बहसें रहीं सब में वो कैसे है वो कैसे थे
यही सुनते हुए गुज़री वो ऐसे है वो ऐसे थे।

—अकबर इलाहाबादी

यह मौजे हस्तिए बेदार[4] के अनासिर[5] हैं
सब एक क़ाफ़िलए शौक़ के मुसाफिर हैं।

—ब्रजनारायण चकबस्त (सुबह-वतन, पृ० ५१)

दौलते इल्मो हुनर[6] से नहीं दुनिया खाली
बज़्मे आलम[7] की यह रौनक़[8] नहीं जाने वाली।

—ब्रजनारायण चकबस्त (सुबह-वतन, पृ० ५५)

ग़रज़[9] की दुनिया है सारी दुनिया,
यहां वफ़ा[10] की चलन नहीं है
मुझे कहीं और ले चल ऐ दिल,
कि ये मेरी अंजुमन[11] नही है।

—शेख आशिक़ हुसेन 'सीमाब'

आसान नहीं इस दुनिया में ख़्वाबों[12] के सहारे जी सकना
संगीन हक़ीक़त[13] है दुनिया यह कोई सुनहरी ख्वाब[14] नहीं।

—सागर निज़ामी

दुनिया है अपनी मूनिस[15] हम थे इसी गुमां में,
आया न काम कोई, अफ़सोस, इस जहां में।

—राजबहादुर वर्मा 'राज' (राजो नियाज, पृ० १५)

१. प्रसन्नता। २. परलोक। ३. ठीक मार्ग पर। ४. जाग्रत। ५. पंचभूत। ६. विद्या व कौशल का धन। ७. विश्व की सभा। ८. शोभा। ९. स्वार्थ। १०. निष्ठा। ११. सभा। १२. स्वप्न। १३. कठोर यथार्थ। १४. स्वर्णिम स्वप्न। १५. सहानुभूतिपूर्ण।

यारे नापायेदार दोस्त मदार
दोस्ती रा न शायद ईं ग़द्दार ।

इस अस्थिर संसार को मित्र न बना, यह ग़द्दार मैत्री के योग्य नहीं है ।

[फ़ारसी] —शेख सादी (गुलिस्तां, भूमिका)

आलम चो मंजिलस्तो खलायक़ मुसाफ़िरन्द
दर वै मुजव्वरत मक़ामे मुक़ीमे मा ।।

संसार एक यात्रा है, और मनुष्य यात्री है । यहां पर किसी का विश्राम करना केवल एक धोखा है ।

[फ़ारसी] —सनाई

खेज रिहा कुन कमरे कुल जे दस्त
कूं कमरे खेश वखूने तो बस्त ।

इन सांसारिक प्रलोभनों में मत पड़, वे तुझे मिटा डालने पर तैयार है ।

[फ़ारसी] —निजामी

अरूसे खाक अगर बदरे मुनीरस्त ।
बदस्तो याद कुन अमरश कि पीरस्त ।।

संसार प्रलोभनों से परिपूर्ण है और यद्यपि पूर्णिमा के चन्द्र जैसी मुखवाली रमणी के समान है, परन्तु वह बूढ़ी है और उसमें कोई सार नहीं है ।

[फ़ारसी] —निजामी

बज्मे जमाना काबिले दीदन दोबारा नेस्त
रूपस न कर्द हर कि अर्जी खाकदां गुजस्त ।

जमाने की हालत दुबारा देखने के योग्य ही नहीं है । इसलिए जो दुनिया से गुजर गया, उसने दुबारा लौटकर आने की कोशिश नहीं की ।

—अबूतालिब कलीम

मुंझ न मजहब मुख्तिलफ़ खां घणि अंदरि घबराइजी,
बाग़ दुनिया जा जुदा सूंहं सोभ्या वासिते ।

विभिन्न धर्मों की बहुलता देखकर मत घबराओ । संसार रूपी उपवन के भिन्न-भिन्न फूल शोभा और सुन्दरता के लिए है ।

[सिंधी] —किशनचन्द 'बेवस'

जेन जीर्ण गाइ सिटो दुर्घोर संसार महापंके परिहोवय मगन ।

जैसे बूढ़ी गाय कीचड़ में फँस जाती है, वैसे ही लोग संसार में फँस जाते हैं ।

[असमिया] —माधवदेव (नामघोषा, १३।८८।२२७)

वास्तव विश्वर रूप विधिये सरजा महाप्रकृतिर गीत ।

वास्तव में विश्व का रूप, विधाता का रचा हुआ महाप्रकृति का गीत है ।

[असमिया] —नलिनीबाला देवी (कविता 'वास्तव आरू कल्पना')

प्रकटे तंव तंव न दिसे । लपे तंव तंव आभासे ।
प्रगट ना लपाला असे । न खोमतां जो ।।

जब-जब परमात्मा प्रकट होता है, तब तब जगत नहीं दिखाई देता । परमात्मा लुप्त होता है, वैसे-वैसे जगत भासित होता है । वास्तव में वह न प्रकट है, न लुप्त । ये दोनों अवस्थाएं वह सहन नहीं करता ।

[मराठी] —ज्ञानेश्वर (चांगदेव पासष्टी, २)

मूर्खामाजी परम मर्ख । जो या संसारीं मानी सुख ।

वह मूर्खों में भारी मूर्ख है, जो मानता है कि इस संसार में सुख है ।

[मराठी] —समर्थ रामदास

बड़ो दुःख, बड़ो व्यथा सम्मुखेते कष्टेर संसार ।
बड़ोइ दरिद्र, शून्य, बड़ो क्षुद्र, बद्ध, अंधकार ।।

बड़ा दुःख है, बड़ी व्यथा है । सामने यह कष्टों का संसार है । हाय, यहां तो बड़ी दरिद्रता है, शून्यता है, बड़ी क्षुद्रता है, बड़ा अंधकार है ।

[बंगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर (एकोत्तरशती, ६६)

यदि काज निते हय, कतो काज आछे
एकाकि पारिबो करिते ।
कांदे शिशिर-विन्दु जगतेर तृषा हरिते ।
केन आकुल सागरे जीवन सांपिवो एकेला जीर्ण
तरीते ।
शेष देखिबो पड़िल सुख-यौवन फुलेर भतन
खसिया ।
हाय वसन्त-वायु मिछे चले गेलो श्वसिया !
सेइ जेखाने जगत छिलो एक काले
सेई खाने आछे बोसिया ।

अगर काम मुझे लेना है, तो काम बहुत से हैं। मैं अकेला क्या कर सकता हूँ? मेरा यह प्रयत्न तो वैसा ही है जैसे संसार को प्यासा देखकर ओस की एक बूंद का रोना। क्यों मैं अकेला इस अछोर समुद्र की टूटी नाव पर चढ़कर जान दूं? परन्तु अन्त मे हाय! अन्त मे देखूंगा, यह सुख का यौवन फूल-सा झर गया है। और वसन्त की हवा वृथा ही सांस लेकर चली जा रही है। इतने पर भी देखूंगा, यह संसार एक समय जहाँ था वहीं बना हुआ है।

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

संसार तो प्रारम्भ से ही बुरा है, पर उसे विवेक से अच्छा बना लेना चाहिए। पर तमाशा यह है कि उसे जितना ही अच्छा बनाया जाय, वह उतना ही फीका होता जाता है। अच्छी तरह विचार करने पर संसार का यह रूप या स्वभाव समझ में आ जाता है, पर इसके लिए किसी को धैर्य न छोड़ना चाहिए।

—समर्थ रामदास (दासबोध)

विश्व है परमात्मा का व्यक्त रूप।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० २१३)

यह दुनिया एक बड़ी व्यायामशाला है, जहां हम अपने को बलवान बनाने के लिए आते है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० २१४)

जगत यथार्थ है क्योंकि वह केवल चेतना में अस्तित्ववान है, क्योंकि वह अपनी रचयिता सत्ता से एकरूप चेतन शक्ति है।

—अरविन्द (दिव्य जीवन)

इसका उत्तर यह है कि संसार में बहुतेरी विचित्र चीजें है और चेष्टा करने पर भी उनके कारण नही मिलते।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ५८)

जटिल है संसार,
ग्रंथि सुलझाने में उलझ जाता हूँ बार-बार।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर ('आरोग्य' गद्यकाव्य)

जो आदमी संसार में रमा हुआ है वही असली संसारी नहीं है, जो संसार से बाहर निकल आया है, वही संसारी है क्योंकि जो संसार में नहीं रहता, संसार उसी का होता है। वही सही तौर पर कह सकता है कि 'यह संसार मेरा है।'

—विमलमित्र (चलते-चलते, पृ० १६६-१६७)

विश्व एक विशाल ग्रन्थ है और जो कभी घर के बाहर नहीं जाते, वे उसका केवल एक पृष्ठ ही पढ़ पाते है।

—सेंट आगस्टीन

हर महापुरुष संसार की भर्त्सना करके उसे बाध्य कर देता है कि वह उसकी (महापुरुष की) भी व्याख्या करे।

—हीगेल

I hold the world but as the world, Gratiano;
A stage, where every man must play a part,
And mine a sad one.

ग्रैशियानो! मैं विश्व को एक रंगमंच मानता हूं जहां हर मनुष्य को भाग लेना होता है और मेरा भाग दुःखपूर्ण है।

—शेक्सपियर (दि मर्चेंट आफ़ वेनिस, १।१)

All the world's a stage,
And all the men and women merely players.

सम्पूर्ण जगत् एक रंगमंच है तथा समस्त नर-नारी केवल अभिनेता हैं।

—शेक्सपियर (ऐज यू लाइक इट, २।७)

The knowledge of the world is only to be acquired in the world, and not in a closet.

ससार का ज्ञान संसार में ही प्राप्त किया जा सकता है, कमरे में नहीं।

—लार्ड चेस्टरफ़ील्ड (पुत्र को पत्र, ४।१०।१७४६)

For the world, I count it not an inn, but an hospital and a place—not to live, but to die in.

क्योंकि विश्व को मैं एक सराय न मानकर चिकित्सालय मानता हूं, और एक ऐसा स्थान मानता हूं जो रहने के लिए नही, मरने के लिए है।

—टामस ब्राउन (रेलिजियो मेडिसी, २।१२)

One half of the world can not understand the pleasures of the other.

आधा संसार दूसरे आधे संसार के सुखों को नहीं समझ सकता।

—जेन आस्टिन (एम्मा, अध्याय ६)

There is not a joy the world can give like that it takes away.

संसार ऐसा कोई भी आनन्द दे नहीं सकता जैसा यह छीन लेता है।

—वायरन (स्टैन्ज़ाज फ़ार म्युजिक)

All experience is an arch wherethro,
Gleams that untravelled world, whose margin fades
Forever and forever when I move.

समस्त उपलब्धियां एक तोरण हैं जिसमें से वह अपरिचित संसार दिखाई पड़ता है जिसकी सीमाएं मेरी गति के साथ सदैव के लिए मिटती चली जाती है।

—टेनिसन (यूलीसिस)

The world is a comedy to those that think, a tragedy to those that feel.

संसार, उनके लिए जो विचार करते हैं, सुखांत नाटक है, अनुभव करने वालों के लिए एक दुखान्त नाटक है।

—होरेस वालपेल (एक काउंटेस को पत्र, १६ अगस्त १७७६)

संस्कार

स्वभावशुद्धं हि न संस्कारमपेक्षते।
न मुक्तामणेः शाणस्तारतायै प्रभवति॥

जो स्वभाव से शुद्ध हैं, उनके लिए संस्कार की अपेक्षा नहीं होती। मोती का संस्कार करने पर भी उसे अधिक सुन्दर या शुद्ध बनाया जा सकता।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, पंचम अध्याय)

हम सब कुछ विशेष संस्कार लेकर जन्म लेते हैं और उन संस्कारों के अनुसार बुद्धि का प्रयोग करते हैं। इन संस्कारों को धो डालने की शक्ति ईश्वर ने सबको दी है। जो उस शक्ति का उपयोग करता है, वह उन्हें मिटा सकता है।

—महात्मा गांधी (पत्र : केशव गांधी को)

यदि जीवन में संस्कारों का पवित्र प्रवाह सतत बहता रहा, तभी अन्त में मरण महाआनंद का विधान भी मालूम पड़ेगा।

—विनोबा (गीता-प्रवचन, पृ० ११८)

अपढ़ भी संस्कारपूर्ण हो सकता है और विद्वान भी संस्कारहीन।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (कल्पतरु, दूसरा अंक)

विना भित्ति के कोई घर नहीं टिकता और विना नींव की कोई भित्ति नही। उसी प्रकार सद्विचार के विना मनुष्य की स्थिति नहीं और धर्म-संस्कारों के विना सद्विचार टिकाऊ नही होते।

—जयशंकर प्रसाद (कंकाल, पृ० ३७)

संस्कार वड़े प्रवल होते हैं, वे विवेक को प्रायः ही दवोचते रहते हैं।

— हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचार-प्रवाह, पृ० १४६)

संस्कृत

भाषाणां भारतीयानां मूलमेकं हि संस्कृतम्।
मूललोपे च शाखेव सा सर्वा शोषमेष्यति॥

भारतीय भाषाओं का मूल एक मात्र संस्कृत ही है। मूल के लोप होने पर नष्ट हुई शाखा के समान वे सब लुप्त हो जाएंगी।

—हरिदास सिद्धान्तवागीश (शिवाजीचरित, २१५)

यया लोके वेदाः परिकलितभेदाः प्रकटिताः
स्मृतीनां धात्री या प्रसवनकरी योपनिषदाम्।
समस्तत्रैलोक्ये ह्युपदिशति याऽऽध्यात्मिकपथं
स्फुरद्दिव्यज्योतिर्जगति जयतान्निर्जरगिरा॥

जिसने लोक में शाखा-प्रशाखा सहित वेदों को प्रकट किया, जो स्मृतियों की धात्री और उपनिषदों की जन्मदात्री है, समस्त त्रिलोकी में आध्यात्मिक मार्ग का जो एक मात्र

उपदेश करने वाली है, दिव्यज्योति से प्रकाशमान उस देववाणी की जगत में विजय हो।

—भट्ट मथुरानाथ शास्त्री (गोविन्दवैभव, पृ० २५०)

यदि नो संस्कृता दृष्टि यदि नो संस्कृतं मनः।
यदि नो संस्कृता वाणी संस्कृताध्ययनेन किम्॥

सस्कृत के अध्ययन से क्या लाभ हुआ यदि दृष्टि संस्कृत नहीं हुई, मन सस्कृत नही हुआ और वाणी संस्कृत नहीं हुई?

— अखिल भारतीय संस्कृत परिषद (लखनऊ के कार्यालय के मुख्य द्वार पर अंकित)

यावदेव प्रतिष्ठा स्यात् भारतस्य महीतले।
ज्ञानामृतमयी तावत् सेव्यते सुरभारती॥

जब तक पृथ्वीतल पर भारत रहेगा, तब तक सस्कृत ज्ञानामृतमयी देववाणी सस्कृत सेव्य रहेगी।

— संस्कृत पत्रिका 'भवितव्यम्' का ध्येयवाचक श्लोक)

देवभाषाप्रसारस्य कार्यं यत् पुरतोऽस्ति नः।
न केवलं तदस्माकं कर्तव्यं धर्म एव वा॥
यत्सत्यं तत्तु पूर्वेषामृषीणामृणशोधनम्।
महाफलं महत्पुण्यमिति मे निश्चितं मतम्॥

संस्कृत भाषा के प्रसार का जो कार्य हमारे सामने है, वह न केवल हमारा कर्तव्य या धर्म है अपितु सत्य तो यह है कि वह पूर्व ऋषियों का ऋण चुकाना है, महाफलदायी है तथा बड़ा पुण्य है।

— विभूतिनारायणसिंह काशी-नरेश

इह सकल भाषाजन्मदा का? भास्वती सुरभारती
वद, वेदजननी का? जगत्योजस्वती सुरभारती।
अनुपमसरस-साहित्य-धनिका का? सती सुरभारती
वद, भारतानुगता भवेत् का भारती? सुरभारती॥

जगत में सब भाषाओं को जन्म देने वाली कौन है? चमकती हुई संस्कृत। कहो, वेद की जननी कौन है? ओजमयी संस्कृत। अनुपम व सरस साहित्य से सम्पन्न कौन है? श्रेष्ठ संस्कृत। कहो, भारत के अनुरूप भाषा कौन है? सुरभारती संस्कृत!

—अज्ञात

निकला जहाँ से आधुनिक यह भिन्न भाषा तत्त्व है,
रखती न भाषा एक भी संस्कृत-समान महत्त्व है।
पाणिनि-सदृश वैयाकरण संसार भर में कौन है?
इस प्रश्न का सर्वत्र उत्तर उत्तरोत्तर मौन है।

—मैथिलीशरण गुप्त (भारतभारती, पृ० ४०)

संस्कृत भाषा का-सा संगीत और किसी भाषा में नहीं होगा, और उसमें ब्रह्मचर्य के बारे में जो लिखा है, वह भी दूसरे किसी साहित्य में नही होगा।

—महादेव भाई (महादेव भाई की डायरी, भाग १ पृ० ३१३)

यह ठीक है कि उर्दू और फ़ारसी के कवियों ने बेल-बूटों का इस्तेमाल किया है, मगर उनके फूल पत्ते मुरझाए हुए, बेरंग और बेमज़ा हैं। उनकी कल्पना की उड़ानें उन्हें आसमान पर उड़ा ले गईं। संस्कृत कविता इतने ऊँचे न उड़ सकीं, मगर उसने इसी दुनिया की हर चीज को खूब ग़ौर से देखा-भाला और उसका अध्ययन किया। वह किसी मीनार की तरह ऊँची नहीं, बल्कि एक हरे-भरे मैदान की तरह फैली हुई है, जिसमें हिरन किलोलें करते हैं, रंग-बिरंगे पंछी चहचहाते हैं, हरियाली लहलहाती है और दर्पन-जैसे पानी के सोते बहते हैं। मतलब यह कि संस्कृत कविता को तीनों लोकों से समान रुचि है।

—प्रेमचन्द (विविध प्रसंग, २१७)

संस्कृत का साहित्य वह उच्च गिरिशृंग है, जिस पर चढ़कर मनुष्य काल के सुदीर्घ स्रोत को बड़ी दूर तक देख सकता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, संस्कृत का साहित्य)

संस्कृत की उपेक्षा करने से हम उस विशाल साहित्य को उत्पन्न करने में एकदम अशक्त हो जाएंगे जिसकी आज सर्वाधिक आवश्यकता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० १५०)

संस्कृत से निरन्तर प्रेरणा और शब्द-भण्डार पाते रहना परम सौभाग्य की बात है। परन्तु यह समझना कि संस्कृत कभी इस देश की राजभाषा बन सकेगी, गलत ढंग से सोचने का नतीजा है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० १४६)

संस्कृत में विविध भाषाओं के वैयक्तिक गुणों का समाहार है—ग्रीक भाषा की शब्द-बहुलता, रोमन भाषा की गंभीर स्वर-शक्ति और हिब्रू भाषा की विशेष दिव्य उत्प्रेरणा।

—श्लेगेल (हिस्ट्री आफ़ लिट्रेचर, पृ० १०५)

संस्कृत तो भाषाओं की भाषा है। यह ठीक ही कहा है गया कि जो महत्त्व ज्योतिष के लिए गणित का है, वही भाषा-विज्ञान के लिए संस्कृत का है।

—मैक्समूलर (साइंस आफ लैंग्वेज, पृ० २०३)

यूनानी भाषा संस्कृत से व्युत्पन्न है।

—पोकाक (इंडिया इन ग्रीस, पृ० १८)

संस्कृत भाषा चाहे जितनी पुरानी हो, उसकी रचना अद्भुत है। वह ग्रीक भाषा की अपेक्षा अधिक पूर्ण, लैटिन भाषा की अपेक्षा अधिक सम्पन्न और दोनों की तुलना में अधिक परिष्कृत है। परन्तु दोनों के साथ धातु, क्रियाओं और व्याकरण के रूप में इतनी मिलती-जुलती है कि यह मिलाप आकस्मिक नहीं हो सकता। यह मिलाप इतना गहरा है कि कोई भाषाशास्त्री इसकी परीक्षा करने पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकता कि ये सभी भाषाएं एक स्रोत से निकली हैं, जो शायद अब नहीं रहा।

—विलियम जोन्स (रायल सोसायटी कलकत्ता में भाषण)

संस्कृत और प्राकृत

केऽभूवन्नाढ्यराजस्य राज्ये प्राकृतभाषिणः।
काले श्रीसाहसांकस्य के न संस्कृतवादिनः॥

आढ्यराज शालिवाहन के राज्य में कौन प्राकृत भाषी न थे? और श्री साहसांक विक्रमादित्य के समय में कौन लोग संस्कृतभाषी नहीं थे?

—भोज (सरस्वतीकंठाभरण, २।१५)

परुसा संक्किअबंधा पाउदबंधो विहोई सु उमारो।
पुरुसमहिलाणं जेत्ति आमिहंतरं तेत्तिअमिमाणं॥

संस्कृत भाषा में की गयी रचनाएं नीरस तथा प्राकृत में की गयी रचनाएं मधुर होती हैं। पुरुष और महिलाओं में जितना अन्तर है, उतना ही प्राकृत और संस्कृत की रचनाओं में होता है।

[प्राकृत] —राजशेखर (कर्पूरमंजरी, १।८)

संस्कृति

दे० 'भारतीय संस्कृति', 'संस्कृति और सभ्यता', 'हिन्दू संस्कृति' भी।

जातिराष्ट्रादिसंघानां साकल्यं चरितस्य यत्।
व्यक्तं संस्कृति-शब्देन भाषाशास्त्रात्मकं ननु॥

जाति, राष्ट्र आदि संघों के चरित की जो सम्पूर्णता है, उसकी भाषाशास्त्रात्मक अभिव्यक्ति ही 'संस्कृति' शब्द द्वारा होती है।

—डॉ० श्रीधर व्यं० केतकर रचित 'महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश' में 'संस्कृति' शब्द पर उद्धृत

संस्कृति का मतलब है—मन और आत्मा की विशालता और व्यापकता। इसका मतलब दिमाग़ को तंग रखना या आदमी या मुल्क की भावना को सीमित करना कभी नहीं होता।

—जवाहरलाल नेहरू (जवाहरलाल नेहरू के भाषण, प्रथम खंड, ९७)

व्यक्तियों का सामुदायिक मरणोत्तर जीवन ही संस्कृति है। इसलिए संस्कृति को समाज की आत्मा कहना चाहिए।

—काका कालेलकर (परम सखा मृत्यु, पृ० १५)

संयम संस्कृति का मूल है। विलासिता, निर्बलता और अनुकरण के वातावरण में न संस्कृति का उद्भव होता है और न विकास ही।

—काका कालेलकर (जीवन-साहित्य, पृ० १७५)

संस्कृति का सामूहिक चेतनता से, मानसिक शील और शिष्टाचारों से, मनोभावों से मौलिक सम्बन्ध है। धर्मों पर

भी इसका चमत्कारपूर्ण प्रभाव दिखाई देता है।···संस्कृति सौन्दर्य-बोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है।

—जयशंकर प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० २८)

यंत्र-युग का मनुष्य की चेतना में अभी सांस्कृतिक परिपाक नहीं हुआ है।

—सुमित्रानंदन पंत (उत्तरा, भूमिका, पृ० १२)

प्रकृति यदि गति का उन्मेष है तो संस्कृति उस गति की दिशा-निबद्ध संयमित मर्यादा का पर्याय।

—महादेवी वर्मा (संभाषण, पृ० ५३)

एक जाति या एक राष्ट्र में जो एक सूत्र होता है, सबको बांध रखने वाला, वही संस्कृति है।

—किशोरीदास वाजपेयी (संस्कृति का पांचवा अध्याय, पृ० २४)

संस्कृति का अर्थ स्पष्ट है—संस्कारजन्य भावनाएँ और तदनुकूल आचार-व्यवहार, रहन-सहन, वेशभूषा आदि। परन्तु नाचने-गाने वालों की मंडली को जब 'सांस्कृतिक शिष्टमंडल' कहा जाता है तब क्या समझा जाए?

—किशोरीदास वाजपेयी (संस्कृति का पांचवा अध्याय, पृ० ९५)

मैं संस्कृति को किसी देश-विशेष या जाति-विशेष की अपनी मौलिकता नहीं मानता। मेरे विचार से सारे संसार के मनुष्यों की एक ही सामान्य मानव-संस्कृति हो सकती है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० ७७)

संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० ६४)

मनुष्य की संस्कृति क्या है? वह आत्मसंशोधन की, आत्मोद्धार की, अपने आपको मुक्त कराने की प्रक्रिया है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (साहित्यमुखी, पृ० २८)

संस्कृति का असली अर्थ है—'जीवन में साझेदारी'। दूसरे के जीवन में शामिल होना और दूसरे को अपने जीवन में शामिल करना संस्कृति है।

—दादा धर्माधिकारी (सर्वोदय दर्शन, पृ० २५७)

संस्कृतियां मूल्यों की सृष्टि करती हैं।

—सच्चिदानंद ही० वात्स्यायन, (अद्यतन, पृ० १३६)

अगर देश एक सांस्कृतिक इकाई नहीं है, और वैसी अस्मिता का बोध उसमें नहीं है, तो वह आर्थिक प्रगति के बावजूद वेध्य बना रहेगा—विघटन की प्रवृत्ति किसी भी समय उसके भीतर उभर सकेगी।

—सच्चिदानंद ही० वात्स्यायन (अद्यतन, पृ० १३)

सांस्कृतिक अस्मिता नक़ल से नहीं बनती, विदेशी मनोवृत्तियां और मनोभाव आयातित करके भी नहीं बनती, अपनी ही सही पहचान से बनती है। सांस्कृतिक जीवन के बारे में ही यह बात सबसे अधिक सत्य है कि 'हम वहीं बन सकते हैं जो हम हैं।'

—सच्चिदानंद ही० वात्स्यायन (अद्यतन, पृ० १३)

संसार में एकता के दर्शन कर उसके विविध रूपों के बीच परस्पर पूरकता को पहचान कर, उनमें परस्परानुकूलता का विकास करना तथा उसका संस्कार करना ही संस्कृति है। प्रकृति को ध्येय की सिद्धि के अनुकूल बनाना संस्कृति तथा उसके प्रतिकूल बनाना विकृति है।

—दीनदयाल उपाध्याय

धर्म और दर्शन, जो कि हमारी मूल्य-भावना को प्रभावित करते हैं, संस्कृति का एक आवश्यक अंग है।

—देवराज (संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० १७६)

संस्कृति उस प्रक्रिया का नाम है जिसके द्वारा विभिन्न चेतना-केन्द्रों से सम्बन्धित सृजनात्मक जीवन के अर्थपूर्ण क्षण, जो अतीत और वर्तमान में फैले हुए हैं, प्रत्यक्ष एवम् आत्मसात् किए जाते हैं। संस्कृति उस क्रिया-समूह का नाम है जिसके द्वारा विभिन्न व्यक्ति मानवजाति के सृजनात्मक जीवन में भाग लेते और उसे समृद्ध करते हैं।

—देवराज (संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० २०७)

मानव-शिशु को, उसके जन्म के बाद, जिस 'संस्कृति' में रख दिया जाए वह उसी के अनुरूप बन जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि विभिन्न संस्कृतियां एक ही मानव-प्रकृति की विभिन्न सृजनात्मक संभावनाएं प्रकट करती हैं।

—देवराज (संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० ३२१)

ईश्वरत्व और त्याग पर्यायवाची शब्द हैं। संस्कृति और सदाचार उसकी बाह्य अभिव्यक्तियां हैं।

—रामतीर्थ (राम हृदय, पृ० १६७)

यदि विश्व-रचना परमात्मा द्वारा सम्पन्न हुई है तो संस्कृति मानव-प्रकृति द्वारा की गई उसी की अनुकृति मात्र है। संस्कृति का सर्वोत्तम रूप प्रकृति और मानव पर मानव की आत्मा की पूर्ण विजय-प्राप्ति ही है।

—विनायक दामोदर सावरकर (हिन्दुत्व, पृ० ७६)

संस्कृति मानव द्वारा प्रकृति पर प्राप्त विजय की क्रम-बद्ध कहानी है।

—लक्ष्मणशास्त्री जोशी (वैदिक संस्कृति का विकास, पृ० २)

किसी भी देश की संस्कृति उस देश में मानव-द्वारा निर्मित साधन-सामग्री तथा उसके द्वारा निर्मित संस्थाओं, रूढ़ियों, धार्मिक परम्पराओं, विचारसरणियों, जीवन-मूल्यों आदि का समग्र योग है।

—उमाशंकर जोशी (श्री और सौरभ, पृ० ४८)

True culture is the discipline of head, heart and hand.

सच्ची संस्कृति मस्तिष्क, हृदय और हाथ का अनु-शासन है।

—शिवानंद

Culture is not just art or literature or dancing or music or painting as it prevails among a people. It is the pattern of behaviour generally accepted by people.

संस्कृति किसी समाज में प्रचलित कला या साहित्य या नृत्य या संगीत या चित्रकला नहीं है। यह तो समाज द्वारा सामान्य रूप से स्वीकृत आचार-पद्धति है।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य (राजाजीज स्पीचिज, भाग २, पृ० १७३)

Culture is activity of thought, and receptiveness to beauty and human feeling. Scraps of information have nothing to do with it.

संस्कृति तो विचार की सक्रियता तथा सौन्दर्य व मानव-अनुभूति के प्रति संग्राहयता है। जानकारियों को इससे कुछ लेना-देना नहीं है।

—ए० डब्लू० व्हाइटहेड (दि एम्स आफ़ एज्यूकेशन)

Culture, the acquainting ourselves with the best that has been known and said in the world, and thus with the history of the human spirit.

संस्कृति का अर्थ है संसार में जो कुछ सर्वोत्तम जाना गया और कहा गया है, उससे और इस प्रकार मानव-चेतना के इतिहास से स्वयं को परिचित कराना।

—मैथ्यू आर्नोल्ड (लिट्रेचर एंड डाग्मा, वर्ष १८७३ संस्करण की भूमिका)

The great aim of culture (is) the aim of setting ourselves to ascertain what perfection is and to make it prevail.

संस्कृति का महान उद्देश्य परिपूर्णता के स्वरूप को निश्चित करने और उसे सर्वोपरि बनाने मे स्वयं को लगाने का उद्देश्य है।

—मैथ्यू आर्नोल्ड (कल्चर एण्ड अनार्की, भूमिका, पृ० १२)

Culture opens the sense of beauty.

संस्कृति सौन्दर्य-भावना को जाग्रत करती है।

—एमर्सन (दि कंडक्ट आफ़ लाइफ़)

A cheerful, intelligent face is the end of culture.

हँसमुख तथा बुद्धिमान चेहरा ही संस्कृति का लक्ष्य है।

—एमर्सन (दि कंडक्ट आफ़ लाइफ़)

Culture is the one thing that we cannot deliberately aim at. It is the product of a variety of more or less harmonious activities, each pursued for its own sake.

संस्कृति एक ऐसी वस्तु है जिसे हम जान-बूझकर लक्ष्य नहीं बना सकते। यह तो विविध गतिविधियों की, जो कम

या अधिक सुसंगत होती हैं तथा जिनमें से प्रत्येक को उसी के लिए किया जाता है, रचना होती है।

—टी० एस० इलियट (नोट्स टुवार्ड्ज़ दि डेफ़िनिशन आफ़ कल्चर)

Culture is an instrument wielded by professors, who when their turn comes will manufacture professors.

संस्कृति तो शिक्षकों द्वारा प्रयुक्त एक उपकरण है जिससे वे शिक्षकों का निर्माण कर सकें जो अपनी बारी आने पर शिक्षकों का निर्माण करेंगे।

—साइमन वील (दि नीड फ़ार रूट्स)

संस्कृति और सभ्यता

प्रखर बुद्धि से भले
सभ्यता हो नव निर्मित,
संस्कृति के निर्माण के लिए
हृदय चाहिए !

—सुमित्रानन्द पंत (आस्था, कविता ८४)

सभ्यता का आन्तरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अन्तर के विकास का।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचार और वितर्क, पृ० १३१)

संस्कृति संस्कार से बनती है और सभ्यता नागरिकता का रूप है।

—किशोरीदास वाजपेयी (संस्कृति का पाँचवां अध्याय, पृ० २७)

संस्कृति का अति विकास सभ्यता को जन्म देता है। संस्कृति, असल में कृषि का नाम है। वह निश्चित रूप से कृषि से उत्पन्न होती है, धरती से जन्म लेती है, आत्मा के भीतर से पैदा होती है। किन्तु, सभ्यता महानगरों की वस्तु है। वह आत्मा नहीं, शरीर का उपकरण है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (आधुनिक बोध, पृ० १०६)

संस्कृति हमें राह बताती है तो सभ्यता हमें उस राह पर चलाती है। संस्कृति न हो तो मनुष्य और पशु के विचारों में कोई भेद न रहे और सभ्यता न हो तो मनुष्य और पशु का रहन-सहन एक-सा हो जावे।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (जियें तो ऐसे जियें, पृ० १८)

सभ्यता तथा संस्कृति दोनों मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया के कार्य या परिणाम हैं। जब यह क्रिया उपयोगी लक्ष्य की ओर गतिमान होती है, तब सभ्यता का जन्म होता है, और जब वह मूल्य-चेतना को प्रबुद्ध करने की ओर अग्रसर होती है, तब संस्कृति का उदय होता है।

—देवराज (संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० १७७)

सभ्यता सांस्कृतिक क्रिया की ही आनुषंगिक उपज या परिणाम है

—देवराज (संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० १७६)

संस्था

हरेक संस्था को सिद्धान्तवादियों की आवश्यकता होती है, वरना उसमें जीवन और दृढ़ता न आए। परंपराओं का भी संस्थाओं के जीवन में एक स्थान है। उन परंपराओं को छोड़ दीजिए और आपका व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है।

—प्रेमचंद (विविध प्रसंग, भाग २, पृ० २५)

किसी से कोई रक़म लेकर उसका 'नाम' संस्था को देने की कल्पना मुझे अटपटी लगती है—नाम लेना हो तो भगवान का ही लें। इंसानों के 'नाम' रखने की यह कल्पना किस शैतान ने खोज निकाली, यह मैं नहीं जानता। लेकिन वह शैतान हमारे धर्म का नहीं था, यह निश्चित है। हिन्दू धर्म में ऐसी व्यक्ति-पूजा कभी नहीं थी।

—विनोबा (विनोबा के पत्र)

किसी भी संगठन में सम्मिलित होने का अर्थ है, अपने आप पर बंधन लगाना, अपनी स्वतन्त्रता को सीमित करना।

—विवेकानन्द (विवेकानंद साहित्य, भाग १०, पृ० ३७)

संस्थाओं के दोष दिखाना आसान होता है क्योंकि सभी संस्थाएं थोड़ी बहुत अपूर्ण होती हैं परन्तु मानव जाति का सच्चा कल्याण करने वाला तो वह है, जो व्यक्तियों को, वे चाहे जिन संस्थाओं में रहते हों, अपनी अपूर्णताओं के ऊपर उठने में सहायता देता है।

— विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० २१९)

Philanthropic and religious bodies do not commonly make their executive officers out of saints.

परोपकारी और धार्मिक संस्थायें प्रायः अपने कार्यकारी अधिकारियों को संतों में से नहीं बनाती।

—एमर्सन (दि कंडक्ट आफ़ लाइफ़)

सगुण-उपासना

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्या शरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

चिन्मय, अद्वितीय, अवयव-रहित तथा शरीर-रहित ब्रह्म की रूप-कल्पना, उपासकों के कार्य के लिए है।

—श्रीरामपूर्वतापनीयोपनिषद् (१।७)

हम लखि लखहि हमार लखि हम-हमार के बीच।
तुलसी अलखहि का लखहि राम नाम जपु नीच॥

तू पहले अपने स्वरूप को जान, फिर अपने यथार्थ ब्रह्म स्वरूप का अनुभव कर, तदन्तर अपने और ब्रह्म के बीच में रहने वाली माया पहचान। अरे नीच, तू उस अलख परमात्मा को क्या समझ सकता है? अतः राम नाम का जप कर।

—तुलसीदास (दोहावली, १९)

सगुण-निर्गुण

दे० 'निर्गुण-सगुण'।

सज्जन

दे० 'संत' भी।

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।

श्रेष्ठ पुरुष दूसरे की बुराई करने वाले पापियों के पाप-कर्म को नहीं अपनाते हैं।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकाण्ड।११३।४४)

स्मरन्ति सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यपि।
सन्तः प्रतिविजानन्तो लब्धसम्भावनाः स्वयम्॥

प्रतिशोध का उपाय जानते हुए भी सत्पुरुष दूसरों के उपकारों को ही याद रखते हैं, उनके द्वारा किये हुए वैर को नहीं। उन साधु पुरुषों को स्वयं सबसे सम्मान प्राप्त होता रहता है।

—वेदव्यास (महाभारत, सभापर्व।७२।९)

यज्ञो दानं तपो वेदाः सत्यं च द्विजसत्तम।
पंचैतानि पवित्राणि शिष्टाचारेषु सर्वदा॥

हे द्विजश्रेष्ठ! यज्ञ, दान, तपस्या, वेदों का स्वाध्याय और सत्य-भाषण ये पाँच पवित्र वस्तुयें शिष्ट पुरुषों के आचार-व्यवहार में देखी गई है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व, २०७।९२)

न च प्रसादः सत्पुरुषेषु मोघो
न चाप्यर्थो नश्यति नापि मानः।
यस्मादेतन्नियतं सत्सु नित्यं
तस्मात् सन्तो रक्षितारो भवन्ति॥

सत्पुरुषों की प्रसन्नता कभी व्यर्थ नहीं जाता। वहाँ किसी के स्वार्थ की हानि नहीं उठानी पड़ती है और न मान-सम्मान ही नष्ट होता है। ये तीनों (प्रसन्नता, अर्थ और मान) संतो में नित्य-निरन्तर बने रहते हैं, इसलिए वे सम्पूर्ण जगत् के रक्षक होते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व।२९७।५०)

एतावान् साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम्।

वही साधुता है कि स्वयं समर्थ होने पर क्षमा भाव रखे।

—भागवत (६।५।४४)

किं दुःसहं साधूनां विदुषां किमपेक्षितम्।
किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम्॥

सज्जनों की सहनशक्ति से परे कुछ भी नहीं है। विद्वानों को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती। नीच पुरुष को न करने योग्य काम का विचार नहीं होता। अपने को वश में रखने वालों के लिए कोई वस्तु अपरित्याज्य नहीं रह जाती।

—भागवत (१०।१।५८)

यस्तु भावयते धर्मं योनिमात्रन्तितिक्षति।
यश्च तप्तो न तपति भृशं सोऽर्थस्य भाजनम्॥

जो धर्माचरण करता है, जीव मात्र के प्रति तितिक्षा रखता है, जो अन्यों से तप्त किए जाने पर भी तप्त नही होता, वही मनुष्य अत्यन्त श्रेय का पात्र है।

—मत्स्यपुराण (२८।५)

पुंसो ये नाभिनन्दन्ति वृत्तेनाभिजनेन च।
न तेषु निवसेत् प्राज्ञः श्रेयोऽर्थीपापबुद्धिषु।
ये नैनमभिजानन्तु वृत्तेनाभिजनेन च।
तेषु साधुषु वस्तव्यं स वासः श्रेष्ठ उच्यते॥

जो अपने पूज्यों का अपने व्यवहार से सम्मान नहीं करते, उन पाप-बुद्धि वालों के बीच में कल्याण के इच्छुक विद्वान को निवास नही करना चाहिए। जो अपने पूज्यों का अपने व्यवहार से सम्मान करते हैं, उन श्रेष्ठ जनों के बीच में ही निवास करना श्रेष्ठ कहा जाता है।

—मत्स्यपुराण (२८।१०।११)

सद्भिः पुरस्तादभिपूजितः स्यात्
सद्भिस्तथा पृष्ठतो रक्षितः स्यात्।
सदा सतामतिवादांस्तितिक्षेत्
सतां वृत्तं पालयन् साधुवृत्तः॥

श्रेष्ठ जनों को सदा सत्पुरुषों का प्रशंसाभाजन होना चाहिए, सदा सत्पुरुषों को अपना पृष्ठपोषक बनाना चाहिए, सदा सत्पुरुषों के कटु-वचनों को सहन करना चाहिए और सदा सत्पुरुषों के चरित्र का अनुकरण करना चाहिए।

—मत्स्यपुराण (३६।१०)

न तथा रत्नमासाद्य सुजनः परितुष्यति।
यथा च तद्गताकांक्षे पात्रे दत्त्वा प्रहृष्यति॥

सज्जन लोग रत्न पाकर उतने प्रसन्न नही होते, जितने प्रसन्न उस रत्न को किसी निर्लोभ पात्र को देकर होते हैं।

—भास (अविमारक, ४।१४)

छन्ना भवन्ति भुवि सत्पुरुषा कथंचित्
स्वैः कारणैर्गुरुजनैश्च नियम्यमानाः।
भूयः परव्यसनमेत्य विमोक्तुकामा
विस्मृत्य पूर्वनियमं विवृता भवन्ति॥

सत्पुरुष कुछ अपने विशेष कारणों से तथा गुरुजनों के नियंत्रण से पृथ्वी पर छिपे रहते हैं, परन्तु दूसरों को आपत्ति से मुक्त करने के समय अपने पूर्व नियम को त्याग कर प्रकट हो जाते हैं।

—भास (अविमारक, १।६)

जयन्ति जितमत्सराः परहितार्थमभ्युद्यताः,
पराभ्युदयसुस्थिताः परविपत्तिखेदाकुलाः।
महापुरुषसत्कथाश्रवणजातकौतूहलाः,
समस्तदुरितार्णवप्रकटसेतवः साधवः॥

मत्सर-भाव को जीतने वाले, परोपकार को सदा उद्यत, दूसरे की उन्नति से प्रसन्न, पर-विपत्ति से व्याकुल, महापुरुषों की सत्कथाओं के सुनने को लालायित तथा समस्त पापों रूपी समुद्र के हेतु प्रत्यक्ष सेतु के समान साधु पुरुषों की जय हो।

—अश्वघोष

स्त्री पुमानित्यनास्थैषा हि महितम् सताम्।

यह स्त्री है, यह पुरुष है—यह निरर्थक बात है। वास्तव में तो सत्पुरुषों का चरित्र ही पूजा के योग्य होता है।

—कालिदास (कुमारसंभव, ६।१२)

ब्रुवते हि फलेन साधवो
न तु कंठेन निजोपयोगिताम्।

सज्जन अपनी उपयोगिता कार्य से दिखाते हैं, कंठ से नहीं बताते हैं।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, २।४८)

धनिनामितरः सतां पुनर्
गुणवत्सन्निधिरेव सन्निधिः।

धनियों के लिए दूसरी निधियां हैं परन्तु सज्जनों के लिए गुणी मनुष्यों की सन्निधि (समीपता) ही सन्निधि (श्रेष्ठ निधि) है।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, २।५)

निर्वाहः प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेकं हि गोत्रव्रतम्।

आए हुए उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना सज्जनों का कुलव्रत है।

—विशाखदत्त (मुद्राराक्षस, २।१८)

पुण्यवन्तो हि दुःखभाजो भवन्ति।

पुण्यवान लोग ही दुःख पाते हैं।

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, ४।११ से पूर्व)

तीक्ष्णा नारुन्तुदा बुद्धिः कर्म शान्तं प्रतापवत्।
नोपतापि मनः सोष्म वागेका वाग्मिनः सतः॥

सत्पुरुष की बुद्धि तीक्ष्ण होती है परन्तु मर्मभेदी नहीं, कर्म तेजस्वी होता है परन्तु शान्त भी, मन उष्ण होता है पर ताप देने वाला नहीं और वाग्मी सत्पुरुष एकवाक्[1] होता है।

—माघ (शिशुपालवध, २।१०९)

महतीमपि श्रियमवाप्य विस्मयः
सुजनो न विस्मरति जातु किंचन।

अतिशय सम्पन्नता को पाकर भी गर्वरहित सज्जन किसी को थोड़ा भी नहीं भूलता।

—माघ (शिशुपालवध, १३।६८)

स्मर्तुमधिगतगुणस्मरणाः
पटवो न दोषमखिलं खलूत्तमाः।

परिचित गुणों[2] को स्मरण रखने वाले उत्तम लोग[3] सारे दोषों को स्मरण रखने में कुशल नहीं होते।

—माघ (शिशुपालवध, १५।४३)

उपकारपरः स्वभावतः सततं सर्वजनस्य सज्जनः।
असतामनिशं तथाप्यहो गुरुहृद्रोगकरी तदुन्नतिः॥

सज्जन स्वभावतः सतत सर्वसाधारण का उपकार करने में लगे रहते हैं। फिर भी उनकी उन्नति दुर्जनों के हृदय में भारी रोग पैदा करती है।

—माघ (शिशुपालवध, १६।२२)

प्रकटान्यपि नैपुणं महत्परवाच्यानि चिरस्य गोपितुम्।
विवरीतुमथात्मनो गुणान् भृशमाकौशलमार्यचेतसाम्॥

उदात्त चित्त वाले लोगों में दूसरों के प्रकट हुए दोषों को भी चिरकाल तक छिपाने की निपुणता होती है और अपने गुण को प्रकट करने में उन्हें अतिशय अकौशल होता है।

—माघ (शिशुपालवध, १६।३०)

उपदेशपराः परेष्वपि स्वविनाभिमुखेषु।

अपने विनाश की ओर जाने वाले शत्रुओं को भी सज्जन (दयालुतावश) उपदेश देते हैं।

—माघ (शिशुपालवध, १६।४१)

योग्येनार्थः कस्य न स्याज्जनेन।

योग्य व्यक्ति से किसका काम नहीं पूरा होता?

माघ (शिशुपाल वध, १८।६६)

न्यायाधारा हि साधवः।

सज्जन न्याय का ही अवलम्बन करते हैं।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ११।३०)

सतां हि प्रियंवदता कुलविद्या।

बोलना तो सज्जनों की कुलविद्या है।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० २६)

प्रतनुगुणग्राह्याणि कुसुमानीव हि भवन्ति सतां मनांसि।

सज्जनों के मन थोड़े से गुणों के कारण फूलों की भाँति ग्रहण करने योग्य हो जाते हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १०६)

अनुरक्तेष्वपि शरीरादिषु साधूनां स्वामिन एव प्रणयिनः।

जैसे शरीर बिना कहे ही अपने अधीन होता है, उसी प्रकार सज्जन लोग भी प्रेमी जनों के वश में रहते हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १०६)

---

१. एक बात ही बोलने वाला, सत्यवक्ता। २. उपकारों।
३. सज्जन।

स्वार्थलसाः परोपकारदक्षाश्च प्रकृतयो
भवन्ति भव्यानाम् ।

सज्जन लोग स्वभाव से ही स्वार्थसिद्धि में आलसी और परोपकार में दक्ष होते हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० १०८)

अदूरव्यापिन्यः फल्गुचेतसामलसानां मनोरथाः। सतां तु भुवि विस्तारवत्यः स्वभावेनैवोपकृतयः।

सारहीन चित्त वाले मन्द लोगों के मनोरथ दूर तक फैले हुए नही होते किंतु सज्जनों के उपकरण स्वभावतः पृथ्वी भर में फैले हुए होते हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० ११५)

सज्जनमाधुर्याणाममृतदास्यो दश दिशः।

दिशाएं सज्जनों के मधुर स्वभाव के कारण ही वेतन के बिना ही उनकी दासी बन जाती है।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० २२१)

प्रायेणाकारणमित्राण्यतिकरुणार्द्राणि च सदा खलु भवन्ति सतां चेतांसि।

सज्जनों के हृदय प्रायः सभी प्राणियों के प्रति सर्वदा निःस्वार्थ भाव से मित्रता का व्यवहार करने वाले तथा करुणा से आर्द्र होते है।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, कथामुख, पृ० ११४)

दुःखितमपि जनं रमयन्ति सज्जनसमागमाः।

दुःखी पुरुष को भी सज्जनों की संगति प्रसन्न कर देती है।

—बाण (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ५२५)

सत्कारधनः खलु सज्जनः।

सत्कार ही सज्जनों का धन है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, २।१५)

स्वभावं नैव मुञ्चन्ति सन्तः संसर्गतोऽसताम्।

सज्जन पुरुष दुष्टों के संसर्ग से अपना सहज स्वभाव नहीं छोड़ते।

—क्षेमेन्द्र (वल्लभदेव कृत सुभाषितावली, २९४)

सम्पत्तौ कोमलं चित्तं साधोरापदि कर्कशम्।

साधु पुरुष का हृदय समृद्धि में कोमल और आपत्ति के समय कठोर हो जाता है।

—क्षेमेन्द्र (वल्लभदेव कृत सुभाषितावली, २९५)

न कदाचित् सतां चेतः प्रसरत्यघकर्मसु।

सत्पुरुषों का चित्त पापकर्म में कभी भी नहीं प्रवृत्त होता।

—क्षेमेन्द्र (वल्लभदेव कृत सुभाषितावली, ३०५)

व्रते विवादं, विमतिं विवेके
सत्येऽतिशंका विनये विकारम्।
गुणेऽवमानं कुशले निषेधं
धर्मे विरोधं न करोति साधुः॥

किसी के द्वारा गृहीत व्रत पर विवाद करना, विवेकपूर्ण बात के विपरीत परामर्श देना, सत्य पर अत्यधिक शंका करना, किसी के विनयपूर्ण व्यवहार को विकृत बताना, गुण का अपमान करना, कुशल व्यक्ति का निषेध करना, धर्म का विरोध करना, इतनी बातें साधु पुरुष नहीं करता।

—क्षेमेन्द्र (वल्लभदेव कृत सुभाषितावली, पृ०३१८)

ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कंठेन
निजोपयोगिताम्।

सज्जन लोग अपनी उपयोगिता कार्यसिद्धि द्वारा कहते है, अपने कंठ से नहीं।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित २।४८)

स्वतः सतां ह्रीः परतोऽतिगुर्वी।

सज्जनों को दूसरों की तुलना में अपने से अधिक लज्जा होती है।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ६।२२)

महाजनाचारपरम्परेदृशी
स्वनाम्नामाददते न साधवः।

सज्जन अपना नाम नहीं लेते, श्रेष्ठ लोगों की यही आचार परम्परा है।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ६।१३)

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।
पुरो वा पश्चात् वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥

प्रेम से परिपूर्ण व्यवहार, विनय-मधुर वाणी में संयम, स्वभावतः कल्याणी बुद्धि, निर्दोष परिचय और मिलने के पहले या पश्चात् अपरिवर्तित स्नेह से युक्त सज्जनों का निष्कपट और विशुद्ध चरित्र सदा विजयी होता है।

—भवभूति (उतररामचरित, २।२)

सत्पक्षाणां द्रवति हि मनः संगमे बान्धवानाम्।

बन्धु-बाधवों का संग पाकर सज्जनों का मन द्रवित हो जाता है।

—हंससंदेश(३७)

परदुःखं समाकर्ण्य स्वभावसुजनो जनः।
उपकारसमर्थत्वात् प्राप्नोति हृदयव्यथाम् ॥

स्वभावतः सज्जन जन पर दुःख सुनकर उपकार करने में असमर्थ होने के कारण हार्दिक व्यथा का अनुभव करते हैं।

—कल्हण (राजतरंगिणी, १।२२७)

निर्मलेऽपि सुजनाः स्वचरित्रे
दोषमेव पुरतः प्रथयन्ते।
उज्ज्वलेऽपि सति धाम्नि पुरस्ताद्
धूममेव वमति स्फुटमग्निः ॥

अपना चरित्र निर्मल होने पर भी सज्जन अपना दोष ही सामने रखते हैं, अग्नि का तेज उज्ज्वल होने पर भी वह पहले धुआं ही प्रकट करता है।

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावन चम्पू, १।१०)

भजन्त्यात्मम्भरित्वं हि दुर्लभेऽपि न साधवः।

साधु जन दुर्लभ वस्तु प्राप्त करके भी स्वार्थ-साधन में प्रवृत्त नहीं होते।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ५।३)

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते संभ्रमविधिः
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथाः
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥

दान को गुप्त रखना, घर आए अतिथि का सत्कार करना, भलाई करके चुप रहना, दूसरे के उपकार को सभा के बीच कहना, संपत्ति प्राप्त कर घमंड न करना, परचर्चा में निन्दा को स्थान देना—तलवार की धार के समान कठिन इस व्रत का सज्जनों को किसने उपदेश दिया?

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ६४)

संपत्सु महतां चेतो भवत्युत्पलकोमलम्।
आपत्सु च महाशैल-शिला-संघातकर्कशम् ॥

महापुरुषों का चित्त संपत्तिशाली होने पर कमल के समान कोमल होता है तथा विपत्तियों में विशाल पर्वत के शिला-समूह के समान कठोर होता है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ६६)

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः।

सत्पुरुष सम्पत्ति पाकर उद्धत नहीं होते।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ७१)

सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः।

सन्त लोग स्वयं ही परहित का उद्योग करते हैं।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ७४)

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम्।
मान्यान् मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय प्रश्रयं
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत् सतां चेष्टितम् ॥

तृष्णा को नष्ट कर। क्षमा को धारण कर। पाप में अनुराग मत कर। सत्य बोल। सत्पुरुषों के पीछे चल विद्वानों की सेवा कर। माननीयों का आदर कर। शत्रुओं से भी प्रेम कर। पीड़ितों को प्रश्रय दे। कीर्ति बढ़ा। और दुखित पर दया कर। ये ही सब कार्य सत्पुरुषों के होते हैं।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ७८)

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यम्
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

जिनके मन, वचन और शरीर में पुण्य का अमृत भरा है, जो उपकार से तीनों लोकों को प्रसन्न करते हैं, जो दूसरों के अल्पगुण को भी पर्वत के समान बड़ा मानकर अपने हृदय में प्रफुल्लित होते हैं, ऐसे सन्त कितने है ?

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ७९)

सज्जनानां हि शैलीयं सक्रमारम्भशालिता।

अपने कार्य का क्रमिक विकास करना सज्जनों की रीति है।

—क्षत्रचूड़ामणि

प्रत्यक्षे च परोक्षे च सन्तो हि समवृत्तिकाः।

सज्जन प्रत्यक्ष और परोक्ष में समान व्यवहार करते हैं।

—क्षत्रचूड़ामणि

अतिकुपिता अपि सुजना योगेन मृदु भवन्ति
न तु नीचाः।

सज्जन अत्यन्त क्रुद्ध होने पर भी मिलने-जुलने से मृदु हो जाते हैं, किन्तु नीच नहीं।

—अमृतवर्धन (वल्लभदेव कृत सुभाषितावली, २४९)

प्राणबाधेऽपि सुव्यक्तमार्यो नायात्यनार्यताम्।

सभ्य पुरुष प्राण संकट उपस्थित हो जाने पर भी अपनी सभ्यता को नहीं त्यागता।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ४।२३)

उपकारिषु यः साधु साधुत्वे तस्य को गुणः।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते॥

जो उपकारियो के प्रति सज्जन है, उसकी सज्जनता में क्या ? जो अपकारियों के प्रति भी सज्जनता का व्यवहार करता है, सज्जन उसे ही साधु कहते हैं।

—विष्णु शर्मा (पंचतन्त्र, मित्रभेद, २७०)

उत्थापयन्ति पतितान् निमग्नान् तारयन्ति च।
प्रबोधयन्ति शयितान् ते नरा भुवि दुर्लभः॥

जो गिरे हुओं को उठाते हैं, डूबतों को तारते हैं और सोतों को जगाते है, वे सत्पुरुष संसार में दुर्लभ हैं।

—वासुदेव द्विवेदी शास्त्री

आक्रुष्टोऽपि व्रजति न रुषं भाषते नापभाष्यं
नोत्कृष्टोऽपि प्रवहति मदं शौर्यधैर्यादिधर्मैः।
यो यातोऽपि व्यसनमनिशं कातरत्वं न याति
सन्तः प्राहुस्तमिह सुजनं तत्त्वबुद्ध्या विवेच्य॥

जो बुरा-भला कहे जाने पर भी क्रोधित नहीं होता, न ही अनुचित बोलता है, शौर्य-धैर्यादि धर्मो से युक्त होने पर भी जो घमंड नहीं करता, निरन्तर विपत्तियां आने पर भी जो कातर नहीं होता, उसको सज्जन तत्त्वबुद्धि से विवेचना करके 'सुजन' कहते हैं।

—अज्ञात

अनिर्वाच्यमनिर्भिन्नम् अपरिच्छिन्नमव्ययम्।
ब्रह्मेव सुजनप्रेम दुःखमूलनिकृन्तनम॥

सज्जनों का प्रेम ब्रह्म के समान अनिर्वाच्य, अव्यक्त, असीम, अपरिवर्तनशील और दुःख के मूल को काटने वाला होता है

—अज्ञात

हृदयानि सतामेव कठिनानीति मे मतिः।
खलवाग्विशिखैस्तीक्ष्णैर्भिद्यन्ते न मनाग्यतः॥

मेरा अभिमत है कि सज्जनों के हृदय कठोर होते हैं, क्योंकि वे दुष्टों की वाणी रूपी तीक्ष्ण वाणों से थोड़े से भी दुःखी नहीं होते।

—अज्ञात वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, २१२

अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति।

श्रेष्ठ लोग अंगीकृत कार्य को पूरा करते है

— अज्ञात

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः
परोपकाराय सतां विभूतयः॥

न तो नदियां स्वयं ही अपना जल पीती हैं, न वृक्ष स्वयं ही अपने फल खाते हैं, और न बादल ही फ़सल खाते हैं। सज्जनों की विभूतियां परोपकार के लिए ही होती हैं।

—अज्ञात

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा ।
पापं तापं च दैन्यं च हन्ति सन्तो महाशयाः ॥

गंगा पाप को, चन्द्रमा ताप को तथा कल्पवृक्ष दैन्य को दूर कर देता है; किन्तु सन्त महापुरुष पाप, ताप और दैन्य तीनों को नष्ट कर देते हैं।

—अज्ञात

दीनानां कल्पवृक्षः सद्गुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
आदर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकष शीलवेलासमुद्रः ।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो
ह्येकः श्लाघ्य स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये ॥

दीनों का कल्पवृक्ष, सद्गुण रूपी फल से विनम्र, सज्जनों का कुटुम्बी, शिक्षित व्यक्तियों का आदर्श, सच्चरित्र की कसौटी, शील का सागर, सत्कार्यों का कर्ता, अनादर न करने वाला, गुणों का सागर, सरल, उदारसत्त्व, प्रशंसनीय पुरुष ही अपने अधिक गुणों के कारण जीवित है, अन्य तो उच्छ्वास मात्र लेते हैं।

—अज्ञात

गर्वं नोद्वहते न निन्दति परान्नो भाषते निष्ठुरं
प्रोक्तं केनचिदप्रियं च सहते क्रोधं च नालम्बते ।
श्रुत्वा काव्यमलक्षणं परकृतं संतिष्ठते मूकवद्दोषांश्
छादयते स्वयं न कुरुतेह्येतत्सतां लक्षणम् ॥

गर्व नही करता है, दूसरों की निन्दा नहीं करता है, कटु नहीं बोलता है, अप्रिय कथन को सहन कर लेता है, क्रोध का आश्रय नहीं लेता, दूसरों के लक्षणहीन काव्य को सुन कर मूकवत् स्थिर रहता है तथा दोषों को ढँक देता है—यह सज्जनों का लक्षण है।

—अज्ञात

मूकः परापवादे परदारनिरीक्षणेऽप्यन्धः ।
पंगुः परधनहरणे स जयति लोकत्रये पुरुषः ॥

जो व्यक्ति परापवाद में मूक है, परस्त्री को देखने में अन्धा है, तथा पर-धन का अपहरण करने में पंगु है, वह तीनों लोकों में जय पाता है।

—अज्ञात

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः ।
परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा ॥

यह पृथ्वी अप्रिय वचन न बोलने वाले, प्रिय वचन बोलने वाले, अपनी पत्नी से सन्तुष्ट और परनिन्दा न करने वाले व्यक्तियों से कहीं कहीं ही सुशोभित है।

—अज्ञात

विरला जानन्ति गुणान् विरलाः कुर्वन्ति निर्धनस्नेहम् ।
विरला रणेषु धीराः परदुःखेनापि दुःखिता विरलाः ।

दूसरों के गुणों को जानने वाले, निर्धनों से प्रेम करने वाले, युद्ध में धैर्यशाली तथा दूसरे के दुःख से दुःखी होने वाले विरले ही होते हैं।

—अज्ञात

यथा चित्ते तथा वाचि यथा वाचि तथा क्रियाः ।
चित्ते वाचि क्रियायां च साधूनामेकरूपता ॥

जैसा चित्त में है, वैसी वाणी है। जैसा वाणी में है, वैसी ही क्रियाएं हैं। सज्जनों के चित्त, वाणी और क्रिया में एकरूपता होती है।

—अज्ञात

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ।
साधवो नहि सर्वत्र चंदनं न वने वने ॥

प्रत्येक पर्वत पर माणिक्य नहीं होते। प्रत्येक हाथी में मोती नहीं होते। साधु सब जगह नहीं होते तथा प्रत्येक वन में चन्दन नहीं होता।

—अज्ञात

न सा सभा यत्थ न सन्ति सन्तो
सन्तो न ते ये न भणन्ति धम्मं ।
रागं च दोषं च पहाय मोहं
धम्मं भणन्ता व भवन्ति सन्तो ॥

वह सभा सभा नहीं जहां संत नहीं। वे संत संत नहीं जो धर्म की बात नहीं कहते। राग, द्वेष और मोह को छोड़ कर धर्म की बात कहने वाले ही संत होते हैं।

[पालि] —संयुत्तनिकाय (१।७।२२) तथा जातक (महासुतसोम जातक)

यो वे कतंञ्ञ् कतवेदि धीरो
कल्याणमित्तो दलहंभत्ति च होति
दुक्खितस्स सक्ककच्च करोति किच्चं
तथाविधं सप्पुरिसं वदन्ति।

जो कृतज्ञ हो, कृत उपकार का बदला चुकाने वाला हो, कल्याणप्रिय हो, दृढ़ भक्तिमान हो और दुखी का उपकार करने के लिए उद्यत हो, उस मनुष्य को सत्पुरुष कहते हैं।

[पालि] —जातक (सरभंग जातक)

ये च सीलेन सम्पन्न पञ्ञादुपसमे रता,
आरता विरता धीरा न होन्ति परपत्तिया॥

जो शीलवान है, जो प्रज्ञा द्वारा चित्ताग्नि को शान्त करने में रत है, जो पाप कर्मों से दूर हैं, जो विरत हैं, वे धीर-जन दूसरों का अन्धानुकरण करने वाले नहीं होते।

[पालि] —जातक (दद्दभ जातक)

सुअणो ण कुप्पइ व्विअ अह कुप्पिइ विप्पअं ण चिन्तेइ।
अह चिन्तेइ ण जम्पइ अह जम्पइ लज्जिओ होइ॥

अच्छा आदमी सामान्यतः कोप करता ही नहीं। यदि कोप करता है तो बुरा नहीं सोचता। यदि बुरा सोचता है तो भी कहता नही। और यदि कह भी देता है तो लज्जित होता है।

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथा सप्तशती, ३।५०)

वसणम्मि श्रणुव्विग्गा विहवम्मि अगिव्विआ भए धीरा।
होन्ति अहिण्णसहावा समेसु विसमेसु सप्पुरिसा॥

सत्पुरुष दुःख पड़ने पर नहीं घबराते, ऐश्वर्य पाकर गर्व नहीं करते, भय में धीर बने रहते है तथा अनुकूल और प्रतिकूल स्थितियों में समान स्वभाव रहते है।

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथासप्तशती, ४।८०)

सज्जणाण णेहो ण चलइ दूरट्ठिआणं पि।

दूर रहने पर भी सज्जनों का स्नेह नहीं जाता।

[प्राकृत] —हाल सातवाहन (गाथा सप्तशती, उत्तरार्द्ध, ७४७)

साधु ते होइ न कारज हानी।

—तुलसीदास (रामचरित मानस, ५।६।२)

ठीक प्रतीति कहे तुलसी, जग होइ भले को भलाई भलाई।

—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, १३१)

आप आप कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिअ सोइ॥

—तुलसीदास (दोहावली, ३५७)

भले भली ही कहत हैं, पैं न कहत है दोस।
सूरदास कह धन्य को, उपजावत है तोस॥

—वृन्द (वृन्द-सतसई)

सज्जन तो शब्द सत्य जो मानी।

जो सत्य का पालन करता है, वही सज्जन है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंगगाथा, १७८१)

मोदटनु मतमुन् वदलक
तुद नेव्वरि मतमु नेंन दूषिपकता
वदिलुडयि कोर्के गोरक
मुदमुन जरियिंचु वुधुडे मुह्यडु वेमा॥

मानव समाज में उसी विद्वान का जन्म सार्थक होगा जो अन्य धर्मो की निंदा से दूर रहकर स्वधर्म पर अटल रहे, समस्त कामनाओं से विरत रह कर सदा संतोष में जीवन व्यतीत करता रहे।

[तेलुगु] —वेमना

हीनुडेन्नि विद्य लिल नभ्यसिचिन
घनुडु गाडु मोरकु जनुडे मानि
परिमलमुल गर्दभमु मोय घनमौने॥

पोथों के पोथे पढ़ जाने मात्र से नीच, सुसंस्कृत तथा सभ्य नहीं बन सकता है। उसके मन का ओछापन दूर नहीं हो सकता। भला उसकी पीठ पर इत्र वगैरह सुगंधित वस्तुएं ढोने मात्र से गधा कहीं गौरवान्वित हो सकता है!

[तेलुगु] —वेमना

द्युमणि पद्माकरमु विकचमुग जेयु
गुमुद हर्षबुगाविंचु नमृत सूति
यीर्थ तुडु गाक जलमिच्चु नंबु धरुडु
सज्जनुलु दारे पर हिता चरण मतुलु।

सूर्य बिना मांगे ही पद्मों को विकसित करता है। चन्द्रमा भी इसी प्रकार कुमुदों को विकसित करता है। मेघ भी पानी देता रहता है। इसी प्रकार सज्जन भी बिना मांगे ही दूसरों का हित करते हैं।

[तेलुगु] —एनुगु लक्ष्मण कवि

He is gentil that doth gentil dedis.

सज्जन वह है जो सज्जनता के काम करे।

—चाउसर (कैंटरबरी टेल्स)

The best portion of goodman's life
His little, nameless, unremembered acts
Of kindness and of love.

दया व प्रेम के छोटे, नामरहित और विस्मृत कृत्य ही सज्जन के जीवन का सर्वोत्तम भाग होते हैं।

—वर्ड्सवर्थ

He is never mean or little in his disputes, never takes unfair advantage, never mistakes personalities or sharp sayings for arguments; or insinuate evil which he dare not say out.

वह (सज्जन) अपने विवादों में कभी क्षुद्र या हीन नहीं होता। कभी अनुचित लाभ नहीं उठाता। व्यक्तियों या कटूक्तियों को तर्क मानने की भूल नहीं करता और जिसे प्रकट कहने का साहस नहीं कर सकता, ऐसी दुष्ट बात को छिपे-छिपे भी नहीं करता।

—कार्डिनल न्यूमैन

The true standard of quality is seated in the mind; those who think nobly are noble.

गुण का सच्चा मानदण्ड मन में स्थित है। जिनके सत् विचार हैं, वे सत्पुरुष हैं।

—आइज़क विकरस्टाफ़ (दि मेड आफ़ दि मिल, २।१)

सतयुग

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा रविनन्दन॥

हे सूर्यपुत्र मनु! सतयुग की अवधि ४००० वर्ष है और उसकी संध्या की अवधि ८०० वर्षों की है।

—मत्स्यपुराण (१६४।१)

सती

पतिः सतीनां परमं हि दैवतम्।

सतियों के लिए पति ही सर्वश्रेष्ठ देवता है।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, २।५)

पेशलं हि सतीमनः।

सती का मन बड़ा सुकुमार होता है।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, २।६)

विपति कसौटी पै विमल जासु चरित दुति होइ।
जगत सराहन जोग तिय रतन सती है सोइ॥

—रत्नावली

सती बनत जीवन लगै असती बनत न देर।
गिरत देर लागे कहा चढ़िबो कठिन सुमेर॥

—रत्नावली

सुरपुर तक निभ जावसी, या जोड़ी या प्रीत।
सखी पिऊ रे देसड़ै, संग बळवा री रीत॥

हे सखी! मेरी और प्रीतम की यह जोड़ी और यह प्रेम स्वर्ग तक निभ जायेगा। क्योंकि मेरे पति के देश में साथ जलने (सती होने) की प्रथा है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

बीरा लेवण आवियौ, पिउ रण हुआ वहीर।
अब तो बळवा जावस्यां, अब नहँ आवां पीर॥

हे भाई! तू मुझे लेने को आया है। लेकिन मेरे पति रण की ओर प्रयाण कर चुके हैं। अब मैं तेरे साथ पीहर नहीं आऊँगी, सती होने को जाऊँगी।

[राजस्थानी] —अज्ञात

सतीत्व

सतीत्व को स्त्रियों के लिए जंजीर समझने वाला तार्किक विचार शास्त्रीय सत्य के विरुद्ध है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० ११६)

सतीत्व की रक्षा का अमोघ अस्त्र मृत्यु है।

—श्यामनारायण पाण्डेय (जौहर, भूमिका, पृ० १६)

सत् और असत्

नसतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

असत् वस्तु का तो भाव नहीं है और सत् का अभाव नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २६।१६ अथवा गीता, २।१६)

सत्कर्म

एक दिन सबको मरना है, परन्तु सत्कार्य में प्राण देना, भगवान का ध्यान करते-करते मरना, यह जन्मभर की अच्छी कमाई से ही प्राप्त होता है।

—वृन्दावनलाल वर्मा (झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ० ४१६)

वासनाओं से अलग रहकर जो कर्म किया जाता है, वही सुकर्म है।

—वृन्दावनलाल वर्मा ('कचनार')

क़तरा दरिया में जो मिल जाए तो दरिया हो जाए
काम अच्छा है वह, जिसका कि मआल अच्छा है।

बिन्दु समुद्र में विलीन हो जाए तो समुद्र बन जाए। वह काम अच्छा होता है जिसका परिणाम अच्छा होता है।

—ग़ालिब (दीवान)

मानव मात्र के लिए ग्रहण करने योग्य सत्कर्म ही है, और कुकर्म ही त्यागने योग्य है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ४०)

The greatest pleasure I know is to do a good action by stealth, and to have found it by accident.

मुझे लगता है कि महत्तम आनन्द किसी सत्कर्म को छिपाकर करने में होता है, और उसे अचानक जानने में होता है।

—चार्ल्स लैम्ब (टेबिल टाक बाइ दि लेट एलिया)

सत्कार

दे० 'आदर', 'सम्मान'।

सतर्कता

संकेथेव अमित्तस्मिं मित्तस्मिं पि न विस्ससे।
अभया भयमुपपन्नं अपि मूलं निकन्तति॥

शत्रु से सशंकित रहे। मित्र पर भी विश्वास न करे। अभय से जो भय पैदा होता है, वह जड़ भी खोद देता है।

[पालि] —जातक (नकुल जातक)

सत्ता

सत्ता की महत्ता तो मोहक भी बहुत होती है। एक बार हाथ में आने पर और कँटीली होने पर भी, छोड़ी नहीं जाती।

—वृन्दावनलाल वर्मा (माधवजी सिंधिया, पृ० २)

Power tends to corrupt and absolute power corrupts absolutely. Great men are almost always bad men, even when they exercise influence and not authority.

सत्ता भ्रष्ट करती है और परम सत्ता परम भ्रष्ट करती है। बड़े व्यक्ति प्रायः सदैव ही बुरे व्यक्ति होते हैं, यहां तक कि तब भी जब वे प्रभावी ही हों और पदाधिकारी न हों।

—जे० ई० ई० डेलबर्ग एक्टन (एक पत्र में)

सत्यं शिवं सुन्दरम्

अभिव्यक्ति के क्षेत्र में गत्यात्मक सौन्दर्य और गत्यात्मक मंगल ही है। सौन्दर्य मंगल की यह गति नित्य है। गति की यही नित्यता जगत् की नित्यता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग २, काव्य में रहस्यवाद)

काव्य में जो तत्त्व सौन्दर्य की सीमा में बँध गया है, वही दर्शन में सत्य के रूप में मुक्त हो सका है और पुनः वही नैतिक धरातल पर शिव की परिभाषा में अवतरित हुआ है।

—महादेवी वर्मा (संभाषण, पृ० ७०)

काव्य के निकष के रूप में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' विशेष महत्त्व पा गया है, परन्तु ये तीनों ही अपनी भिन्नता के कारण काव्य का खण्ड-खण्ड करके ही उसकी परीक्षा कर सकते हैं, उसकी समग्र अस्मिता की नहीं।

—महादेवी वर्मा (परिक्रमा, भूमिका, पृ० ७)

मानवीय संवेगों का उदात्तीकरण ही कवि का सत्य है, उससे उत्पन्न मूल्यात्मक भावना ही उसके लिए सुन्दर है और उससे मानव संस्कृति का जो उत्कर्ष होता है, वही उसके निकट शिव है।

—महादेवी वर्मा (परिक्रमा, भूमिका, पृ० ८)

सत्य

पश्यदक्षणवान्न वि चेतदन्धः ।

आंख वाला ही सत्य को देख सकता है, अन्धा नहीं ।

—ऋग्वेद (१।१६४।१६)

सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतो द्यावा
च यत्र ततनन्न हानि च ।
विश्वमन्यं निविशते यदेजति विश्वाहापो
विश्वाहोदेति सूर्यः ।।

जिसके आश्रय में दिन और रात्रियां भी उत्पन्न होती हैं, जो चल रहा है, जड़ से भिन्न चेतन भी जिसके आश्रय में बसा है और जिसके आश्रय पर नदी-समुद्रादि और समस्त प्रजाएं स्थित हैं, जिसके आश्रय पर सूर्य उदित होता है, वह सत्य वचन मेरी सब प्रकार से रक्षा करे ।

—ऋग्वेद (१०।३७।२)

सत्येनोत्तमिता भूमिः ।

भूमि सत्य द्वारा प्रतिष्ठित है ।

—ऋग्वेद (१०।८५।१)

सत्येनोर्ध्वस्तपति ।

सत्य से मनुष्य सबके ऊपर तपता है ।

—अथर्ववेद (१०।८।१९)

सत्यं वै चक्षुः ।

सत्य ही नेत्र है ।

—शतपथ ब्राह्मण (१।३।१।२७)

सत्यं वै श्रीर्ज्योतिः ।

सत्य ही श्री व ज्योति है ।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।

हिरण्मय (स्वर्णिम) पात्र से सत्य का मुख ढका हुआ है ।

— ईशावास्योपनिषद् (मंत्र १५)

कस्मिन्नु दीक्षा प्रतिष्ठित ? सत्ये ।
कस्मिन्नु सत्यं प्रतिष्ठतम् ? हृदये

दीक्षा किसमें प्रतिष्ठित है ? सत्य में । और सत्य किसमें प्रतिष्ठित है ? हृदय में ।

—बृहदारण्यक उपनिषद् (३।९।२३)

हृदयेन हि सत्यं जानाति हृदये ह्येव सत्यं
प्रतिष्ठितं भवति ।

पुरुष हृदय से ही सत्य को जानता है अतः हृदय में ही सत्य प्रतिष्ठित है ।

—बृहदारण्यक उपनिषद् (३।९।२३)

सत्यं ब्रह्मेति सत्यं ह्येव ब्रह्म ।

सत्य ब्रह्म है, सत्य ही ब्रह्म है ।

—बृहदारण्यक उपनिषद् (५।४।१)

सतामनृतमपिधानम् ।

सत्य को असत्य ढँक लेता है ।

—छान्दोग्योपनिषद् (८।३।१)

सत्यमेव जयति नानृतम् ।

सत्य ही विजयी होता है, असत्य नहीं ।

—मुंडकोपनिषद् (३।१।६)

सत्यमाभाति चिच्छाया दर्पणे प्रतिबिम्बवत् ।

दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान प्रकृति में पड़ी चेतना की छाया सत्य प्रतीत होती है ।

— सरस्वतीरहस्योपनिषद्

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ।।

सत्य बोले, प्रिय बोले । अप्रिय सत्य न बोले । प्रिय असत्य न बोले । यह सनातन धर्म है ।

—मनुस्मृति (४।१३८)

आहुः सत्यं हि परमं धर्मं धर्मविदो जनाः ।

धर्मज्ञ लोग सत्य को ही परमधर्म कहते हैं ।

— वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, १४।३)

सरितां तु पतिः स्वल्पां मर्यादां सत्यमान्वितः ।
सत्यानुरोधात् समये वेलां स्वां नातिवर्तते ।।

सरिताओं का सत्ययुक्त स्वामी समुद्र सत्य का पालन करने के कारण अवसर आने पर भी अपने तट की अपनी छोटी सी मर्यादा तक का उल्लंघन नहीं करता ।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, १४।६)

सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः।
सत्यमेववाक्षया वेदा सत्येनावाप्यते परम् ॥

सत्य प्रणवरूप शब्द ब्रह्म है, सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित है, सत्य ही अक्षय वेद है, सत्य से ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड १४।७)

सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः ॥

सत्य का पालन ही राजाओं का दयाप्रधान सनातन आचार है, इसलिए राज्य सत्यस्वरूप है। सत्य में ही लोक प्रतिष्ठित है।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, १०६।१०)

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥

जगत् में सत्य ही ईश्वर है। सदा सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है। सत्य ही सबका मूल है। सत्य से बढ़कर अन्य कोई परम पद नही है।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ठ, १०६।१३)

न हि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां सत्यवादिनः।

सत्यवादी पुरुष झूठी प्रतिज्ञा नहीं करते है।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकाण्ड।१०१।५२)

नास्ति सत्यसमो धर्मो न सत्याद् विद्यते परम्।
न हि तीव्रतरं किंचिदनृतादिह विद्यते ॥

सत्य के समान कोई धर्म नही है। सत्य से उत्तम कुछ भी नहीं है और झूठ से बढ़कर तीव्रतर पाप इस जगत् में दूसरा कोई नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, आदिपर्व।७४।१०५)

अहिंसा सत्यवचनं सर्वभूतहितं परम्।
अहिंसा परमो धर्मः स च सत्ये प्रतिष्ठितः।
सत्ये कृत्वा प्रतिष्ठां तु प्रवर्तन्ते प्रवृत्तयः ॥

अहिंसा और सत्य-भाषण समस्त प्राणियों के लिए अत्यन्त हितकर हैं। अहिंसा सबसे महान् धर्म है और वह सत्य में ही प्रतिष्ठित है। सत्य के आधार पर ही श्रेष्ठ पुरुषों के सभी कार्य आरम्भ होते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व।२०७।७४)

यद् भूतहितमत्यन्तं तत्सत्यमितिधारणा।
विपर्ययकृतोऽधर्मः पश्य धर्मस्य सूक्ष्मताम् ॥

जिससे प्राणियों का अत्यन्त हित होता हो, वह वास्तव में सत्य है। इसके विपरीत जिससे किसी का अहित होता हो वह अधर्म है। धर्म की सूक्ष्मता देखो।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व।२०६।४)

सत्येन सूर्यस्तपति सत्येनाग्निः प्रदीप्यते।
सत्येन मरुतो वान्ति सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥

सत्य से सूर्य तपता है, सत्य से आग जलती है, सत्य से वायु बहती है, सब कुछ सत्य में ही प्रतिष्ठित है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासनपर्व।७५।३०)

सत्यं हि परमं बलम्।

सत्य ही सबसे बड़ा बल है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व।१६७।४६)

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥

जिस सभा में बड़े-बूढ़े नहीं, वह सभा नही, जो धर्म की बात न कहें, वे बूढ़े नहीं, जिसमें सत्य नहीं, वह धर्म नहीं और जो कपटपूर्ण हो, वह सत्य नहीं है।

— वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व।३५।५८)

भवेत् सत्यं न वक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं वाप्यनृतं भवेत् ॥

जहां झूठ ही सत्य का काम करे (किसी प्राणी को संकट से बचावे) अथवा सत्य ही झूठ बन जाय (किसी के जीवन को संकट में डाल दे), ऐसे अवसरों पर सत्य नहीं बोलना चाहिये, वहाँ झूठ बोलना ही उचित है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१०६।५)

सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं ब्रह्म सनातनम्।
सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥

सत्य ही धर्म, तप और योग है, सत्य ही सनातन ब्रह्म है, सत्य को ही परम यज्ञ कहा गया है तथा सब कुछ सत्य पर ही टिका है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१६२।५)

सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्मः सनातनः।
सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः॥

सत्पुरुषों द्वारा सदा सत्यरूप धर्म का ही पालन किया जाता है। सत्य ही सनातन धर्म है। सत्य को ही सदा नमस्कार करना चाहिए क्योंकि सत्य ही जीव की परम गति है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१६२।४)

तस्मात् सत्यं वदेत्प्राज्ञो यत्परप्रीतिकारणम्।
सत्यं यत्परदुःखाय तदा मौनपरो भवेत्॥

वही सत्य कहना चाहिए जो दूसरों की प्रसन्नता का कारण हो। जो सत्य दूसरों के दुःख के लिए हो, उसके सम्बन्ध में बुद्धिमान मौन रहे।

—विष्णुपुराण (३।१२।४३)

सत्यं चोक्तं परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः।

सत्य-भाषण सबसे बड़ा धर्म है। सत्य पर ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है।

—मार्कण्डेयपुराण (८।४१)

व्रतानां सत्यमुत्तमम्।

व्रतों में सत्य सर्वोत्तम है।

—गरुडपुराण (१।११५।५३)

सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा
दयान्वितं चानृतमेव सत्यम।
हितं नराणां भवतीह येन
तदेव सत्यं न तथान्यथैव॥

वह सत्य सत्य नहीं है, जिसमें हिंसा भरी हो। यदि दया-युक्त हो तो असत्य भी सत्य ही कहा जाता है। जिससे मनुष्यों का हित होता हो, वही सत्य है।

—देवीभागवत (३।११।३६)

यथार्थकथनं यच्च सर्वलोकसुखप्रदम्।
तत्सत्यमिति विज्ञेयमसत्यं तद्विपर्ययम्॥

जो यथार्थ कथन है और सब लोकों को सुख देने वाला है, वही सत्य है, और उसके विपरीत असत्य होता है, यह जानना चाहिए।

—पद्मपुराण (७।१७।८५)

मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठंति तिष्ठति।

यदि सत्य जीवित रहता है तो सब लोग मरने के बाद भी यशः शरीर से जीवित रहते हैं।

—भास (पंचरात्र, ३।२५)

दग्धं जगत् सत्यनयं ह्यदृष्ट्वा
प्रदह्यते संप्रति धक्ष्यते च।

सत्य को न देखने के कारण यह संसार जला है, इस समय जल रहा है और जलेगा।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १६।४३)

नहि सत्यात् परो धर्मो न पापमनृतात् परम्।
तस्मात् सर्वात्मना मर्त्यः सत्यमेकं समाश्रयेत्॥
सत्यहीना वृथा पूजा सत्यहीनो वृथा जपः।
सत्यहीनं तपो व्यर्थमूषरे वपनं यथा॥

सत्य से बड़ा धर्म नहीं है तथा झूठ से बड़ा पाप नहीं है। इसलिए मनुष्य को सदा एक मात्र सत्य का आश्रय लेना चाहिए। सत्यहीन पूजा व्यर्थ है। सत्यहीन जप व्यर्थ है। सत्यहीन तप वैसे ही व्यर्थ है जैसे ऊसर भूमि में बीज बोना।

—महानिर्वाणतंत्र (४।७५-७६)

यतः सत्यं ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो धनम्।

जहां सत्य है, वहीं धर्म है। जहां धर्म है, वहीं धन है।

—अज्ञात

सच्चं हवे सादुतरं रसानं।

सब रसों में सत्य का रस ही अधिक स्वादिष्ट है।

[पालि] —सुत्तनिपात (१।१०।२)

एकं हि सच्चं न दुतियमत्थि।

सत्य एक ही है, दूसरा नहीं।

—सुत्तनिपात (४।५०।७)

अदुट्ठचित्तो भासेय्य गिरं सच्चूपसंहितं।

द्वेषरहित चित्त से सच्ची बात कह देनी चाहिए।

[पालि] —जातक(भरु जातक)

ये केचिमे अत्थि रसा पथव्या
सच्चं तेसे साधुतरं रसानं,
सच्चे ठिता समणब्रह्मणा च
तरन्ति जातिमरणस्सपारं॥

पृथ्वी में जितने भी रस हैं, सत्य का रस उन सब में श्रेष्ठ है। सत्य पर जो श्रमण-ब्राह्मण स्थित रहते हैं, वे जन्म-मरण के बन्धन को पार कर जाते हैं।

[पालि] **—जातक (महासुतसोम जातक)**

वीरेहि एवं अभिभूय दिट्ठं, संजतेहि सया अप्पमत्तेहि।

सतत जाग्रत रहने वाले जितेन्द्रिय वीर पुरुषों ने मन के समग्र द्वन्द्वों को अभिभूत कर, सत्य का साक्षात्कार किया है।

—आचारांग (१।१।४)

तं सच्चं भगवं।

सत्य ही भगवान है।

[प्राकृत] **—प्रश्नव्याकरण सूत्र (२।३)**

सच्चं च हियं च मियं च गहणं च।

ऐसा सत्य वचन बोलना चाहिए, जो हित, मित और ग्राह्य हो।

[प्राकृत] **—प्रश्नव्याकरण सूत्र (२।२)**

अप्पणट्ठा परट्ठा वा कोहा वा जइ वा भया।
हिंसगं न मुसंबूया नोवि अन्नं वयावए॥

स्वयं के लिए अथवा दूसरों के लिए, क्रोध अथवा भय से दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाला असत्य वचन, न तो स्वयं बोलना चाहिये और न दूसरों से बुलवाना चाहिए।

[प्राकृत] **—दशवैकालिक (६।१२)**

दुइ जग तरा सत्त जेइँ राखा।

—जायसी (पदमावत, ९२)

जौं जियं सत कायर पुनि सूरा।

—जायसी (पदमावत, १५०)

सत्य मूल सब सुकृत सुहाए।
वेद पुरान विदित मनु गाए॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२८।३)

धरम न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुरान बखाना॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।९५।३)

मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।

—दयानन्द सरस्वती (सत्यार्थप्रकाश, भूमिका)

असत वैन नहिं बोलिये, तातैं होत विगार।
वे असत्य नहिं सत्य हैं, जातैं ह्वैं उपकार॥

—बुधजन (बुधजन सतसई, पृ० ६८)

साँच बिना हरि हाथ न आवैं।

—भगवत रसिक

सत्य की खोज में जो रस मिले, उन्हें जी भरकर मैंने पिया है, और अब भी नया रस पीने को तैयार हूँ।

—महात्मा गांधी, (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४६, पृ० ३८

मेरे समक्ष सत्य से भिन्न कोई ईश्वर नहीं है। सत्य ही ईश्वर है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४६, पृ० २७५)

सच पर विश्वास रखो, सच ही बोलो, सच ही करो। असत्य कैसा भी जीतता-जागता लगे, सत्य का मुक़ाबला नहीं कर सकता।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, १६२)

सत्य ही परमेश्वर है।

—महात्मा गांधी (आश्रम की हस्तलिखित पत्रिका में लेख, जुलाई १९२०)

सत्य के कोरे सिद्धान्त का तब तक कुछ भी महत्त्व नहीं रहता जब तक वह उन मनुष्यों में, जो उसकी हिमायत के लिए अपने प्राणों को होम करने को तैयार रहते हैं, मूर्त रूप नहीं ग्रहण कर लेता।

—महात्मा गांधी (यंग इण्डिया, २२ दिसम्बर १९२१)

सत्य सर्वदा स्वालम्बी होता है और बल तो उसके स्वभाव में ही होता है।

—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, १४-२-१९२४)

सत्य ही सत्य का पुरस्कार है। क़ीमती से क़ीमती वस्तु बेचने वाले को जैसे उससे अधिक कीमती वस्तु नहीं मिल सकती, वैसे ही सत्यवादी भी सत्य से बढ़कर और क्या चीज़ चाहेगा?

—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, १९-१२-१९२१)

सत्य की आराधना भक्ति है।...वह मरकर जीने का मंत्र है।

—महात्मा गांधी (यरवदा जेल, २२-७-१९३०)

सत्य गोपनीयता से घृणा करता है।

—महात्मा गांधी (यंग इण्डिया, २१-१२-१९३१)

मेरे लिए सत्य धर्म और हिन्दू धर्म पर्यायवाची शब्द हैं। हिन्दू धर्म में अगर असत्य का कुछ अंश है तो मैं उसे धर्म नहीं मान सकता। अगर इसके लिए सारी हिन्दू जाति मेरा त्याग कर दे और मुझे अकेला ही रहना पड़े तो भी मैं कहूंगा, "मैं अकेला नहीं हूं, तुम अकेले हो, क्योंकि मेरे साथ सत्य है और तुम्हारे साथ नहीं है।" सत्य तो प्रत्यक्षपरमात्मा है।

—महात्मा गांधी (गांधी सेवा संघ सम्मेलन हुबली, २०-४-१९३७)

सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसकी ज्यों-ज्यों सेवा की जाती है त्यों-त्यों उसमे अनेक फल आते दिखाई देते हैं। उनका अन्त ही नही होता। ज्यों-ज्यों हम गहरे पैठते हैं, त्यों-त्यों उसमें से रत्न निकलते हैं, सेवा के अवसर हाथ आते रहते हैं।

—महात्मा गांधी (आत्मकथा)

मेरी भक्तिपूर्ण खोज ने मुझे 'ईश्वर सत्य है' के प्रचलित मंत्र के बजाय 'सत्य ही ईश्वर है' का अधिक गहरा मंत्र दिया है।

—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, ४)

कोई असत्य से सत्य को नहीं पा सकता। सत्य को पाने के लिए हमेशा सत्य का आचरण करना ही होगा।

—महात्मा गांधी (मेरे सपनों का भारत, २८)

सच्चा तप यह है कि अपने भाइयों के ताप से तपा जाए। सच्चा यज्ञ यह है जिसमें अपने स्वार्थ की आहुति दी जाए। सच्चा दान वह है जिसमें परमार्थ किया जाए और सच्ची ईश्वरसेवा यह है कि उसके दुःखी जीवों की सहायता की जाए।

—मदनमोहन मालवीय (मालवीय जी के लेख, पृ० १०१)

काना कहने से काने को जो दुःख होता है, वह क्या दो आँखों वाले आदमी को हो सकता है?

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० १०)

सत्य इतना विराट है कि हम क्षुद्र जीव व्यावहारिक रूप में उसे सम्पूर्ण ग्रहण करने में प्रायः असमर्थ प्रमाणित होते हैं। जिन्हें हम परम्परागत संस्कारों के प्रकाश में कलंक-मय देखते हैं, वे ही शुद्ध ज्ञान में यदि सत्य ठहरें, तो मुझे आश्चर्य नहीं होगा।

—जयशंकर प्रसाद (कंकाल, पृ० २७०)

अमृत को प्रायः बढ़ाकर देखने से सत् लघु कर दिया गया है, किन्तु सत्य विराट है। उसे सहृदयता द्वारा ही हम सर्वत्र ओतप्रोत देख सकते हैं। उस सत्य के दो लक्षण बताये गये हैं—श्रेय और प्रेय। इसीलिए सत्य की अभिव्यक्ति हमारे वाङ्मय में दो प्रकार से मानी गई है—काव्य और शास्त्र।

—जयशंकर प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ३७)

तुम बँध नियमों के कूलों में
बहते जाओ, इसमें मंगल,
तर्कों के रोड़ों से टकरा
बढ़ते जाओ, क्षण-फेन उगल!

—सुमित्रानंदन पंत (उत्तरा, कविता 'सत्य', पृ० १२०)

पदार्थ, जीवन, मन तथा आत्मा की मान्यताएं हमारी बुद्धि के विभाजन भर हैं; सम्पूर्ण सत्य इनसे परे तथा इनमें भी व्याप्त होने के कारण एक तथा अखण्डनीय है।

—सुमित्रानन्दन पंत ('उत्तरा', भूमिका, पृ० १३)

सत्य का मार्ग सरल है। तर्क और संदेह की चक्करदार राह से उस तक पहुँचा नहीं जा सकता। इसी से जीवन के सत्य-द्रष्टाओं को हम बालकों जैसा सरल विश्वासी पाते हैं।

—महादेवी वर्मा (स्मारिका, पृ० ६३)

सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है और दूसरा अपनी अनेकता में अनन्त। इसी से साधन के परिचय स्निग्ध खण्डरूप से साध्य की विस्मयकारी अखण्ड स्थिति तक पहुँचने का क्रम आनन्द की लहर पर लहर उठाता हुआ चलता है।

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, भूमिका, पृ० ५)

आकाश में मेघ चाहे जितने घने, जितने काले हों, दिन को रात नहीं बना सकते।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (कालविजय, पहला अंक)

रहस्य और इन्द्रजाल में लोक का मन जो रस पाता है सीधे सत्य के दर्शन में नहीं।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (वैशाली में वसंत, पहला अंक)

तर्क का अन्त नहीं होता, सत्य अनुभव की वस्तु है।

—भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा, पृ० ३२)

सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा ही जब सबसे बड़ा लक्ष्य हो जाता है तो सत्य पर से दृष्टि हट जाती है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० २८)

सत्य वह नहीं है जो मुख से बोलते हैं। सत्य वह है जो मनुष्य के आत्यन्तिक कल्याण के लिए किया जाता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० १९०)

सत्य को पाना कठिन है, पाकर सुरक्षित रखना और भी कठिन है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (पुनर्नवा, पृ० २९६)

वाणी में उतरा हुआ सत्य अपूर्ण ही होगा। उसमें आप पूर्णता की खोज क्यों कर रहे हैं?

—मुनि नयमल (श्रमण महावीर, पृ० २७)

सत्य रूपी नारायण का व्रत ही जीवन का सच्चा व्रत है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल (वेद-विद्या, पृ० २००)

सच को वल देने के लिए साक्षी आवश्यक होता है।

—यशपाल (झूठा सच, पृ० ६५५)

असत्य में शक्ति नहीं है। अपने अस्तित्व के लिए भी उसे सत्य का आश्रय लेना अनिवार्य है।

—विनोबा (विचारपोथी, ४)

वह ज्ञान-लिप्सा-क्षितिज-सपना
रे, वही तुझ में अनेकों स्वप्न देगा।
ओ, अनेकों सत्य के शिशु
नव हृदय के गर्भ में द्रुत
आ चलेंगे।

—मुक्तिबोध (तारसप्तककविता 'खोल आंखें')

सांच को आंच क्या?
सत्य बोलने में डर क्या?

—हिंदी लोकोक्ति

सत मोरा रहिहें संपत मोरा जइहे न।
संपत जइहें बहुरि मोरा अइहे न॥

यदि मेरा सत्य रहेगा तो मेरी संपत्ति जाएगी नहीं। यदि सत्य चला जाएगा तो सम्पत्ति भी चली जाएगी और लौटकर नहीं आएगी।

—हिंदी लोकोक्ति (बिहार प्रदेश)

जो सच्ची बात होती है वही दिल में उतरती है।

—अकबर इलाहाबादी

लब बिबंदो चश्म बंदो गोश बंद
गर नबीनी सिररे हक़ बर मा बिखंद।

तू अपने ओठ बंद रख, नेत्र बंद रख, कान बंद रख। इतने पर भी तुझे सत्य का गूढ़ तत्त्व न मिले तो मेरी हँसी उड़ाना।

[फ़ारसी] **—मौलाना रूम**

अघियो काओ कचु, माणिकनि मोट थी।
पलइ पाओ सचु, आछीन्दे लज भरा॥

खोटा काँच स्वीकृत हुआ और माणिक्य लौटा दिए गए। पल्ले में सत्य है परन्तु संसार में उसका मूल्य नहीं है। उसे प्रस्तुत करते भी लज्जा आती है।

[सिंधी] **—शाह अब्दुल लतीफ़**

सडुन करि सडनि रे, हलण रिअ म हलु;
जलणु रिअ म जलु, रुअण रिउ मगँ रुई।

सच्ची पुकार के बिना मत पुकार। सच्चे चलने के बिना मत चल। सच्ची जलन के बिना मत जल। सच्चे रोने के बिना मत रो।

[सिंधी] —शाह अब्दुल लतीफ़

सत्यवादी करी संसार सकल।
अलिप्त कमल जलीं जैसे ॥

सत्यवादी संसार-रूपी जल में कमल के समान अलिप्त रहता है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंगगाथा, १०२५)

सत्य त्यागा चि समान हें।

सत्य त्याग के समान है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ३६३१)

किसी प्रकार की हानि ने रहित बोलने को सत्य बोलना कहते हैं।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, २९१)

बाह्य शुद्धि जल से होती है और आंतरिक शुद्धि सत्य बोलने से प्राप्त होती है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, २९८)

सभी दीपक दीपक नही हैं। बुद्धिमानों के लिए सत्य वचन रूपी दीपक ही दीपक हैं।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, २९९)

सत्य हज़ार ढंग से कहा जा सकता है और फिर भी हर ढंग सच हो सकता है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० २१४)

सत्य के लिए सब कुछ त्यागा जा सकता है, पर सत्य को किसी भी चीज के लिए छोड़ा नहीं जा सकता, उसकी बलि नहीं दी जा सकती।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० २१४)

केवल बुद्धि के द्वारा परम सत्य की चाहे कितनी प्रकार की खोजें हों, उनका पर्यवसान या तो इसी प्रकार के अज्ञेयवाद में होगा अथवा किसी बौद्धिकदर्शन शास्त्र या मनः-कल्पित सिद्धांत में होगा।

—अरविन्द (इस विश्व की पहेली)

भारतीय विचारक जानता है कि सभी उच्चतम सनातन सत्य आत्मा के सत्य हैं।

—अरविन्द (भारतीय संस्कृति के आधार)

सत्य भी अनन्त की एक स्थिति है, उसका विरोध नहीं।

—अरविन्द (दिव्य जीवन)

जिस सत्य की खोज हम कर रहे हैं, वह चार प्रधान चीजों से बना है—प्रेम, ज्ञान, शक्ति और सौन्दर्य।

—श्री मां (शिक्षा पृ० ११)

मैं धर्म-परिवर्तन करवा कर अनुयायी इकट्ठे नहीं करना चाहता, मैं केवल सत्य का अनुष्ठान करता हूं।

—रामतीर्थ (राम हृदय, पृ० २५४)

वे यदि तर्क करना चाहें तो हमें परास्त कर सकते हैं। लेकिन फिर भी हम यह बात निर्भय होकर कह सकते हैं कि हमने जो सत्य अपने हृदय की व्यथा में से निकालकर सब लोगों के सामने रक्खा है, उस सत्य को कोई महामहोपाध्याय उड़ा देने की शक्ति नहीं रखता।

—शरत्चन्द्र (नारी का मूल्य, पृ० २५)

सत्य कभी वंचना नहीं करता।

—शरत्चन्द्र (शेष परिचय, पृ० १६९)

संसार में अधिकांश सत्य केवल सामयिक सत्य होते हैं। चिरकाल के लिए सत्य अगर कुछ है तो वह संसार के बाहर की वस्तु है।

—शरत्चन्द्र (शेष परिचय, पृ० २३९)

जो कल्याण को ले आता है, उसी को 'सत्य' कहते हैं। जो अशुभकर है, वह सत्य नहीं है।

—शरत्चन्द्र (शेष परिचय, पृ० २३९)

हर युग के सामने बाधाओं और विरोधियों के बीच से सत्य को नया होकर प्रकट होना होगा।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा, परिच्छेद ६४)

जब हम सत्य को पाते है तब वह अपने सारे अभाव और अपूर्णता के बावजूद हमारी आत्मा को तृप्त करता है, उसे झूठे उपकरणों से सजाने की इच्छा तक नहीं होती।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा, परिच्छेद ७६)

प्लेटो मुझे प्रिय है, किन्तु सत्य उससे भी अधिक प्रिय है।

—अरस्तू (निकोमैकियन एथिक्स)

सत्य को खरीदी, और उसे बेचो मत, और बुद्धिमत्ता, उपदेश और समझदारी को भी।

—पूर्वविधान (लोकोक्तियां, २३।२३

प्रत्येक सत्य, चाहे वह किसी के मुख से क्यों न निकला हो, ईश्वरीय सत्य है।

—सेंट एम्ब्रोज

मैंने सत्य को पा लिया, ऐसा मत कहो, बल्कि कहो, मैंने अपने मार्ग पर चलते हुए आत्मा के दर्शन किए है।

—खलील जिब्रान (जीवन-सन्देश, पृ० ६६)

सत्य सदा का है, सत्य का अतीत और वर्तमान नहीं होता।

—विमलमित्र (साहब बीवी गुलाम, पृ० ३५३)

Truth is nobody's property, truth is not the property of Jesus, we ought not to preach it in the name of Jesus.

सत्य किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं है। सत्य ईसा की सम्पत्ति नहीं है। हमें उसका प्रचार ईसा के नाम में नहीं करना चाहिए।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइज़ेशन, खण्ड २, पृ० २३)

Truth not only must inform but inspire.

सत्य को सूचक ही नहीं, प्रेरक भी होना चाहिए।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (क्रिएटिव यूनिटी, एन ईस्टर्न यूनिवर्सिटी पृ० १८७)

The stream of truth flows through its channels of mistakes.

सत्य की सरिता अपनी भूलों की वाहिकाओं से होकर बहती है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रेबर्ड्स, २४३)

Think truly, Speak truly, Live truly. Act truly.

सच्चाई से सोचो। सच्चाई से बोलो। सच्चाई से जियो। सच्चाई से कर्म करो।

—शिवानन्द

A sour truth is better than a sweet lie.

खट्टा सत्य मधुर असत्य से अधिक अच्छा है।

—शिवानन्द

Truth is the best thing that men may keep.

मनुष्य के रखने के लिए सर्वोच्च वस्तु सत्य है।

—चाउसर (कैंटरबरी टेल्स)

Man prefers to believe what he prefers to be true.

मनुष्य जिस बात का सत्य होना अधिक पसन्द करता है, उसी में विश्वास करना अधिक पसन्द करता है।

—बेंकन (दि आग्मेटिस सांइटिएरम)

What the imagination seizes as beauty must be truth.

जिसे कल्पना शक्ति और सौन्दर्य स्वीकारेगी, वह सत्य ही होगा।

—कीट्स (बेंजमिन बेले को पत्र, २२ नवम्बर १८१७)

Truth is always strange.
Stranger than fiction.

सत्य सदैव निराला होता है, कल्पना से भी अधिक निराला।

—बायरन (डान जुयान, १४।१०१)

All great truths begin as blasphemies.

सभी महान सत्य प्रारंभ में ईश्वर-निन्दा कहे जाते हैं।

—जार्ज बर्नार्ड शा (अन्नाजन्स्का)

Truth is the cry of all, but the game of the few.

सत्य की बात सभी कहते है, लेकिन उसका पालन बहुत थोड़े लोग करते हैं।

—बिशप जार्ज बर्कले (साइरिस)

Great is truth, and shall prevail.

सत्य महान है और विजयी होगा।

—टामस ब्रूक्स (दि क्राउन एंड ग्लोरी आफ़ क्रिश्चियनिटी, पृ० ४०७)

The greatest Friend of Truth is Time, her greatest Enemy is Prejudice and her constant companion is Humility.

सत्य का सबसे बड़ा मित्र समय है। उसका सबसे बड़ा शत्रु पूर्वग्रह है और उसका स्थायी साथी विनम्रता है।

—चार्ल्स कैलेब काल्टन (दि लैकॉन)

Words, phrases, fashions pass away;
But truth and nature live through all.

शब्द, मुहावरे और फ़ैशन आते हैं और चले जाते हैं किन्तु सत्य और प्रकृति सदैव रहते हैं।

—बर्नार्ड बार्टन (स्टैंजाज आन ब्लूमफ़ील्ड)

The truth is often unpopular.

सत्य बहुधा लोक में अप्रिय होता है।

—एडले स्टीवेन्सन (भाषण, ८ जून १९५८)

Take my hand :
For I have passed this way.
And know the truth.

मेरा हाथ पकड़ लो क्योंकि मैं इस रास्ते से जा चुका हूं तथा सत्य जानता हूं।

—फ्रैंक टाउन्सहेंड (अर्थ)

सत्य-असत्य

मुसा तासंयथा सच्चं सच्चं तासं यथा मुसा।

उनका झूठ भी सत्य जैसा है और सत्य भी झूठ जैसा है।

—जातक (कुणाल जातक)

अब रहीम मुसकिल परी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलें न राम॥

—रहीम (दोहावली, २२५)

अंतर अँगुरी चार को, झूठ साँच में होय।
सब मानै देखी, कही, न माने कोय॥

—वृन्द (वृन्द सतसई, ३५१)

कंचन कंचन ही सदा, काँच काँच सो काँच।
दरिया झूठ सो झूठ है, साँच साँच सो साँच॥

—दरियाव

असत बैन नहिं बोलिये, तातैं होत बिगार।
वे असत्य नहिं सत्य हैं, जातैं ह्वै उपकार॥

—बुधजन (बुधजन सतसई, पृ० ७२)

साँच कहे जग मारल जाय, झूठे जग पतियाय।

सत्य बोले तो जग मारने जाता है, झूठ कहे तो जग विश्वास कर लेता है।

—हिन्दी लोकोक्ति

असत्य जे वाणी। तेथें पापाची च खाणी॥
सत्य बोलें मुखें। तेथें उचं बलती सुखें॥

जो असत्य बोलता है, वह पाप की खान है। जो मुख से सत्य ही बोलता है, उसकी ओर सुख उमड़ कर आता है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, १२३७)

झूठ से जो पाऊँगा वह पाना नहीं खोना है और सत्य से जो खोता है, वह खोना नहीं पाना है।

—विमल मित्र (परस्त्री, पृ० २८५)

A lying reality is falsehood's crown.
And a perverted truth her richest gem.

अन्तर्निहित सत्य असत्य का मुकुट है और एक भटका हुआ सत्य उसका सबसे अधिक मूल्यवान रत्न है।

—अरविन्द (सावित्री, १०१२)

Truth lies within a little and certein compass, but error is immense.

सत्य एक छोटी तथा सीमित परिधि में रहता है किन्तु ग़लती बड़ी होती है।

—विस्काउंट बोलिंगब्रोक (रिफ़्लेक्शन्स अपान एक्ज़ाइल)

सत्य और अहिंसा

दे० 'अहिंसा और सत्य'।

सत्याग्रह

सत्याग्रह तत्त्वतः राजनीतिक अर्थात् राष्ट्रीय जीवन में सत्य और विनय को प्रविष्ट कराने का प्रयत्न मात्र है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।

—महात्मा गांधी (यंग इंडिया, १०।३।१९२०)

शस्त्रधारी निःशस्त्र होकर दीन बन जाता है। परन्तु सत्याग्रही कभी दीन बनता ही नही। वह नश्वर शरीर या शरीर के शस्त्रों पर भरोसा नही रखता, वह तो अजेय, अमर, अविनाशी आत्मा के बल पर युद्ध करता है।

—महात्मा गांधी (गोधरा में भाषण, ३ नवम्बर १९१७)

सत्याग्रह की लड़ाई हमेशा दो प्रकार की होती है: एक जुल्मों के विरुद्ध, और दूसरी अपनी दुर्बलता के विरुद्ध।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ३११)

सत्संगति

देवो देवेभिरा गमत्।

परमेश्वर विद्वानों की संगति से प्राप्त होता है।

—ऋग्वेद (१।१।५)

अमृतस्य प्रकारोऽयं दुर्लभः साधुसंगमः।

अमृततुल्य साधु-संगम का प्राप्त होना दुर्लभ है।

—वाल्मीकि (रामायण)

रसायनमयी शीता परमानन्ददायिनी।
नानन्दयति कं नाम साधुसंगतिचंद्रिका॥

सज्जन पुरुष की संगति रूपी चंद्रिका, जो रसायनमयी, शीतल तथा परम आनन्ददायिका है, किसे आनन्दित नहीं करती!

—वाल्मीकि (रामायण)

शून्यमाकीर्णतामेति मृत्युरप्युत्सवायते।
आपत्सम्पदिवाभाति विद्वज्जनसमागमे॥

विद्वान् पुरुष के आने से निर्जन स्थान भी जन-संकुल (अर्थात् भरा-पूरा) हो जाता है, मृत्यु भी उत्सव जैसी हो जाती है तथा आपत्ति भी सम्पत्ति के समान प्रतीत होती है।

—वाल्मीकि (रामायण)

यः स्नातः शीतसितया साधुसंगतिगंगया।
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः॥

जिसने शीतल एवं शुभ्र सज्जन संगति रूपी गंगा में स्नान कर लिया उसको दान, तीर्थ, तप तथा यज्ञ से क्या प्रयोजन?

—वाल्मीकि (रामायण)

संयोगो वै प्रीतिकरो महत्सु प्रतिदृश्यते।

महापुरुषों के साथ होने वाला समागम प्रीति को बढ़ाने वाला होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, आदिपर्व।१९९।५६)

मोहजालस्य योनिर्हि मूढैरेव समागमः।
अहन्यहनि धर्मस्य योनिः साधु समागमः॥

मूढ़ मनुष्यों से मिलना-जुलना मोहजाल की उत्पत्ति का कारण होता है। इसी प्रकार साधु-महात्माओं का संग प्रतिदिन धर्म की प्राप्ति कराने वाला है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व।१।२५)

येषां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च।
ते सेव्यास्तैः सभास्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी॥

जिन पुरुषों के विद्या, जाति और कर्म—ये तीनों उज्ज्वल हों, उनकी सेवा करना चाहिए, क्योंकि उन महापुरुषों के साथ बैठना शास्त्रों के स्वाध्याय से भी बढ़ कर है।

—वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व।१।२७)

भक्तिस्तु भगवद्भक्तसंगेन परिजायते।
तत्संगं प्राप्यते पुंभिः सुकृतैः पूर्वसंचितैः॥

भक्ति तो भगवद्भक्तों के संग से प्राप्त होती है परन्तु वह संग मनुष्यों को पूर्व जन्मों के संचित सुकर्मों से ही मिलता है।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, ४।३३)

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुर्हरेत् ।
पापं तापं तथा दैन्यं सद्यः साधुसमागमः ॥

गंगा पाप का, चन्द्रमा ताप का और कल्पवृक्ष दीनता के अभिशाप का अपहरण करता है, परन्तु सत्संग पाप, ताप और दैन्य—तीनों का तत्काल नाश कर देता है।

—गर्गसंहिता (६२।६)

न कस्य वीर्याय वरस्य संगतिः ।

श्रेष्ठ की संगति किसका बल नहीं बढ़ाती ?

—कालिदास (कुमारसंभव, १५।५१)

प्रायो यत्किञ्चिदपि प्राप्नोत्युत्कर्षमाश्रयान्महतः ।

कोई भी वस्तु महान् का आश्रय पाकर उत्कर्ष प्राप्त करती है।

—हर्ष (प्रियदर्शिका, ३।१)

धनिनाभितरः सतां पुनर्गुणवत्-सन्निधिरेव सन्निधिः ।

धनिकों की बात दूसरी हो सकती है किन्तु सज्जनों के लिए तो गुणवानों की सन्निधि ही सच्ची निधि है।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, २।५३)

सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति ।

सज्जनों का सज्जनों से सम्बन्ध किसी प्रकार बड़े पुण्य से होता है।

—भवभूति (उत्तररामचरित, २।१)

सत्संगजानि निधनान्यपि तारयन्ति ।

सत्संग से उत्पन्न मरण भी मनुष्य का उद्धार कर देते है।

—भवभूति (उत्तररामचरित, २।११)

ध्रुवं फलाय महते महद्भिः सह संगमः ।

महान पुरुषों की संगति निश्चय ही महान फल देती है।

— सोमदेव (कथासरित्सागर, १२।५।१५०)

गुणवज्जनसम्पर्काद् याति स्वल्पोऽपि गौरवम् ।

गुणी पुरुषों के सम्पर्क से छोटा व्यक्ति भी गुरुता प्राप्त कर लेता है।

—क्षेमेन्द्र

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ।

सत्संगति बुद्धि की जड़ता को हरती है। वाणी में सत्य का संचार करती है। सम्मान की वृद्धि करती है। पापों को दूर करती है, चित्त को प्रसन्न करती है और दसों दिशाओं में कीर्ति फैलाती है। बताओ, सत्संगति मनुष्य के लिए क्या नहीं करती।

—भर्तृहरि (नीतिशतक,२३)

सत्संगः स्वर्गवासः ।

सज्जनों का संग स्वर्ग में वास है।

—चाणक्यनीतिसूत्राणि (५।१६)

काचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतीं द्युतिम् ।
तथा सत्संनिधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम् ॥

काँच भी कंचन का सँग पा जाने पर मरकत मणि की शोभा प्राप्त कर लेता है। उसी प्रकार सज्जनों का साथ करने से मूर्ख भी विद्वान बन जाता है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, प्रस्ताविका, ४१)

संगः सर्वात्मना त्याज्यः सचेत् त्यक्तुं न शक्यते ।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सर्वा संगो हि भेषजम् ॥

संग हर प्रकार से त्याग देना चाहिए। यदि उसको त्यागना संभव न हो तो सज्जनों का ही संग करना चाहिए क्योंकि सत्संगति मनुष्य के लिए औषधि है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, संधि, ६५)

दुर्जनेऽपि हि सौजन्यं सुजनैर्यदि संगमः ।

सुजनों की संगति होने पर दुर्जन में भी सुजनता आ जाती है।

—क्षत्रचूडामणि

सदा सन्तोभिगन्तव्यो यद्यप्युपदिशन्ति नो ।
या हि स्वैरकथास्तेषामुपदेशा भवन्ति ताः ॥

सुसभ्य सत्पुरुष यद्यपि कुछ उपदेश न करें तो भी उनके पास जाना उत्तम है। जो आपस में उनकी बातें होती हैं, वे ही उपदेश होती हैं।

—अज्ञात

चिराय सत्संगम शुद्धमानसो
न यात्यसत्संगतमात्मवान्नरः।

चिरकाल तक सत्पुरुषों की संगति करने के कारण शुद्ध मानस वाला मनस्वी मानव असत् संगति में नहीं पड़ता।

—अज्ञात

सब्भिरेव समासेथ, सब्भि कुब्बेथ सन्थवं।
सतं सद्धम्ममञ्ञाय, पंञ्ञा लब्भति नाञ्ञतो॥

सत्पुरुषों के ही साथ बैठे। सत्पुरुषों के ही साथ मिले-जुले, सत्पुरुषों के अच्छे धर्मों को जानने से ही प्रज्ञा प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं।

[पालि] —संयुत्तनिकाय(१।१।३१)

निहीयति पुरिसो निहीनसेवी
न च हायथ कदाचि तुल्यसेवी।
सेट्ठमुपनमं उदेति खिप्पं
तस्या अत्तनो उत्तरिं भजेथा॥

अपने से शील और प्रज्ञा से हीन व्यक्ति के संग से मनुष्य हीन हो जाता है। बराबर वाले के संग से हीन नहीं होता है, ज्यो का त्यों रहता है। अपने से श्रेष्ठ सग से शीघ्र ही मनुष्य का उदय, विकास होता है। अतः सदा श्रेष्ठ पुरुषों का ही संग करना चाहिए।

[पालि] —अंगुत्तरनिकाय (३।३।६)

मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगन्नाथ
साध संगति हरि भगति बिन, कछू न आवे हाथ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४६)

कबीर तास मिलाइ, जास हियाली तूं बसे।
नहिं तर बेगि उठाइ, नित का गंजन को सहे॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ५०)

सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२)

मज्जन फल पेखिअ ततकाला।
काक होहिं पिक बकउ मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई।
सतसंगति महिमा नहिं गोई॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।३।१)

मति कीरति गति भूति भलाई।
जब जेहि जतन जहां जेहि पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ।
लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।३।३)

बिनु सतसंग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।३।४)

सतसंगति मुद मंगल मूला।
सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।३।४)

सठ सुधरहिं सत संगति पाई।
पारस परस कुधात सुहाई॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।३।५)

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता।
सतसंगति संसृति कर अंता॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।४५।३)

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२५ ख)

धन्य घरी सोइ जब सतसंगा।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।१२७।४)

राम कृपा तुलसी सुलभ, गंग सुसंग समान।
जो जल परै जो जन मिलै कीजै आपु समान॥

—तुलसीदास (दोहावली, ३६३)

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएं बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥

—तुलसीदास (दोहावली, १३२)

जो साधुन सरणी परे तिनके कवन विचार।
दंत जीभ जिमि राखिहै दुष्ट अरिष्ट सँहार॥

जो लोग श्रेष्ठ लोगों की शरण लेते हैं, उनकी क्या चिन्ता करनी? जैसे दाँतों से घिरी जीभ भी सुरक्षित रहती है उसी प्रकार गुरु-भक्त लोग भी दुष्टों और दुर्भाग्य से सुरक्षित रहते हैं।

—गुरु गोविंद सिंह (विचित्र नाटक, १३।२५)

रहे समीप बड़ेन के, होत बड़ो हित मेल।
सबही जानत बढ़त है, बृच्छ बराबर बेल॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

पलटू सतसंगत मिला खेलि लेहु दिन चार।
फिर फिर नहीं दिवारो दियना लीजै वार॥

—पलटू साहब

सभी दुःखों के ध्वंस का उपाय है सत्पुरुषों की संगति।

—शिवानन्द (दिव्योपदेश, ३।४३)

ऊँचे जर मी शवद अज़ परतवे आँ क़ल्ब सियाह
कीमयाएस्त कि दर सोहबते दरवेशानस्त।

वह विलक्षण वस्तु, जिसकी छाया मात्र से ही अंधेरे हृदय में प्रकाश हो जाता है, साधुओं की सत्संगति में ही प्राप्त होती है।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

सदाचार

वयं देवानां सुमतौ स्याम।

हम देवों[1] की शुभ मति के अधीन रहें।

—ऋग्वेद (७।४१।४)

मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये।
मा नो रीरधतं निदे॥

हे इन्द्र और अग्नि! हमें पाप के कार्यों में न लगाओ। हमें हिंसा के कामों में मत लगाओ और निंदा के लिए भी हमें मत लगाओ।

—सामवेद (९१८)

मा नो विददमिमा मो अशस्तिर
मा नो विदद् वृजिना द्वेष्याया।

पराजय, अपयश, कुटिल आचरण और द्वेष हमारे पास कभी न आएं।

—अथर्ववेद (१।२०।१)

तस्मात् सान्त्वं सदा वाच्यं न वाच्यं परुषं क्वचित्।
पूज्यान् सम्पूजयेद् दद्यान्न च याचेत् कदाचन॥

सदा सान्त्वनापूर्ण मधुर वचन ही बोले, कभी कठोर वचन न बोले। पूजनीय पुरुषों का सत्कार करे। दूसरों को दान दे किन्तु स्वयं कभी किसी से कुछ न मांगे।

—वेदव्यास (आदिपर्व, ८७।१३)

शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः॥
वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥

तात यक्ष! सुनो, ब्राह्मणत्व में न तो कुल कारण है, न स्वाध्याय और न शास्त्रश्रवण। ब्राह्मणत्व का हेतु आचार ही है, इसमें संशय नहीं है। इसलिए प्रयत्नपूर्वक सदाचार की रक्षा करनी चाहिए, ब्राह्मण को विशेष रूप से, क्योंकि जिसका सदाचार अक्षुण्ण है, उसका ब्राह्मणत्व भी बना हुआ है और जिसका आचार नष्ट हो गया, वह तो स्वयं भी नष्ट हो गया।

—वेदव्यास (महाभारत, वन पर्व, ३१३।१०८-१०९)

न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः।
अन्तेष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते॥

मेरा ऐसा विचार है कि सदाचार से हीन मनुष्य का केवल ऊँचा कुल मान्य नहीं हो सकता, क्योंकि नीच कुल में उत्पन्न मनुष्य का भी सदाचार श्रेष्ठ माना जाता है।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व, ३४।४१)

आत्मनिन्दाऽऽत्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः।
अनाचरितमार्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम्॥

अपनी निन्दा और प्रशंसा, परायी निन्दा और परायी स्तुति—यह चार प्रकार का आचरण श्रेष्ठ पुरुषों ने कभी नहीं किया।

—वेदव्यास (महाभारत, कर्ण पर्व, ३५।४५)

---

1. श्रेष्ठ विद्वानों।

आचाराल्लभते ह्यायुराचादाल्लभते श्रियम्।
आचारात् कीर्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥

सदाचार से मनुष्य को आयु प्राप्त होती है, सदाचार से लक्ष्मी प्राप्त होती है और सदाचार से ही उसे इस लोक और परलोक में कीर्ति प्राप्त होती है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, १०४।६)

आचारो भूतिजनन आचारः कीर्तिवर्धनः।
आचाराद् वर्धते ह्यायुराचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

सदाचार कल्याण उत्पन्न करने वाला और कीर्ति बढ़ानेवाला होता है। सदाचार से आयु बढ़ती है तथा सदाचार ही बुरे लक्षणों को नष्ट करता है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, १०४।१५४)

आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुः प्रवर्धते।

सदाचार से धर्म उत्पन्न होता है तथा धर्म से आयु बढ़ती है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, १०४।१५५)

आचारात्प्राप्यते स्वर्गमाचारात्प्राप्यते सुखम्।
आचारात्प्राप्यते मोक्षमाचारात्किं न लभ्यते ॥

आचार से स्वर्ग मिलता है। आचार से सुख मिलता है। आचार से मोक्ष मिलता है। आचार से क्या नहीं मिलता?

—नारदपुराण (पूर्व भाग ४।२७)

समुल्लंघ्य सदाचारं कश्चिन्नाप्नोति शोभनम्।

सदाचार का उल्लंघन करके कोई कल्याण नहीं पा सकता।

—विष्णुपुराण (३।१७।२)

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥

वेदों व स्मृतियों में कहा गया आचार ही श्रेष्ठ धर्म है। आत्मवान द्विज को इस आचार के पालन में प्रयत्नवान होना चाहिए।

—मनुस्मृति (१।१०८)

साधवः क्षीणदोषाः स्युः सच्छब्दः साधुवाचकः।
तेषामाचरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते ॥

साधुओं (श्रेष्ठों) को दोष-रहित होना चाहिए। सत् शब्द साधु का वाचक है। उनका जो आचरण है, वही सदाचार कहा जाता जाता है।

—हारीत स्मृति

यस्तूदारचमत्कारः सदाचारविहारवान्।
स निर्याति जगन्मोहान्मृगेन्द्रः पंजरादिव ॥

जो पुरुष उदार-स्वभाव तथा सत्कर्म के सम्पादन में कुशल है, सदाचार में विहार करता है, वह जगत् के मोह-पाश से वैसे ही निकल जाता है, जैसे पिंजरे से सिंह।

—योगवासिष्ठ (मुमुक्षुव्यवहार प्रकरण, ६।२८)

दशा ननु यदा यादृगुत्पद्यते तदुचितमाचारम्
आचारविदो वदन्ति।

समयानुसार मनुष्य के लिए जिस समय जैसी दशा उत्पन्न हो जाती है, उस समय उस दशा के योग्य आचार को ही आचारविद् उचित बतलाते हैं।

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावन चम्पू, १५।१२३)

अन्तः शान्तो बहिः शान्तः, शान्त एव प्रसीदति।
शान्तं शिवमथाद्वैतं, सदाचारः समुच्चितः।

भीतर और बाहर, दोनों प्रकार, शान्त रहने वाला ही प्रसन्न रहता है। शान्त भाव, शिव भाव और अद्वैत-भाव का योग ही सदाचार समझना चाहिये।

—विश्वबंधु शास्त्री (मानवता का मान, पृ० १२८)

अनसूया क्षमा शान्तिः संतोषः प्रियवादिता।
कामक्रोधपरित्यागः शिष्टाचारनिदर्शनम् ॥

अनसूया, क्षमा, शान्ति, संतोष, प्रियवाणी तथा काम और क्रोध का त्याग—ये श्रेष्ठ आचरण के लक्षण हैं।

—अज्ञात

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिवेज्जलम्।
शास्त्रपूतां वदेद्वाणीं मनःपूतं समाचरेत् ॥

मार्ग में दृष्टि से पवित्र करके चरण रखना चाहिए। वस्त्र से पवित्र करके जल पीना चाहिए। शास्त्र से पवित्र वाणी बोलनी चाहिए मन से पवित्र किया हुआ आचरण करना चाहिए।

—अज्ञात

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा
यद्यप्यधीता सह षड्भिरंगैः।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले व्यजन्ति
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः॥

छहों अंगों के साथ अध्ययन करने पर भी वेद आचार-हीन पुरुष को पवित्र नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्ति को वेद मृत्युकाल के समय उसी प्रकार त्याग देते हैं, जिस प्रकार पक्षी पंख उगने के पश्चात् घोंसला त्याग देते हैं।

—अज्ञात

आचारः परमो धर्म आचारः परमं तपः।
आचारः परमं ज्ञानम् आचारात् किं न साध्यते॥

आचार परम धर्म है, आचार परम तप है, आचार सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है, आचार से क्या सिद्ध नहीं होता?

—अज्ञात

आचारवन्तो मनुजा लभन्ते
आयुश्च वित्तं च सुतान् च सौख्यम्।
धर्मं तथा शाश्वतमीशलोक-
मत्रापि विद्वज्जनपूज्यता च॥

आचारवान् पुरुष ही आयु, धन, पुत्र, सौख्य, धर्म तथा शाश्वत भगवद्धाम एवं यहाँ पर विद्वत्समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करते है।

—अज्ञात

कायेन वाचाय च योच सञ्ञातो
मनसा च किञ्चि न करोति पापं
न अत्थहेतु अलिकं भणति
तथाविधं सीलवन्तं वदन्ति॥

जो शरीर, वाणी तथा मन से संयत है, मन से भी कोई पाप कर्म नहीं करता, तथा स्वार्थ के लिये झूठ नहीं बोलता, ऐसे व्यक्ति को सदाचारी कहते हैं।

[पालि] —सरभंग जातक (जातक, पंचम खण्ड)

जब तक निर्धन पुरुष पाप से अपना पेट भरता है तब तक धनवान पुरुष के शुद्धाचरण की पूरी परीक्षा नहीं। इसी प्रकार जब तक अज्ञानी का आचरण अशुद्ध है, तब तक ज्ञानवान के आचरण की पूरी परीक्षा नहीं—तब तक जगत में आचरण की सभ्यता का राज्य नहीं।

—पूर्णसिंह ('आचरण की सभ्यता' निबंध)

आचरण केवल मन के, स्वप्नों से कभी नहीं बना करता। उसका सिर तो शिलाओं के ऊपर घिस-घिसकर बनता है।

—पूर्णसिंह ('आचरण की सभ्यता' निबंध)

आचरण की सभ्यतामय भाषा सदा मौन रहती है।

—पूर्णसिंह ('आचरण की सभ्यता' निबंध)

मुझे विश्वास है कि दुराचारी सदाचार के द्वारा शुद्ध हो सकता है।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, प्रथम अंक)

वैराग्य से मनुष्य असत् कर्मों से निवृत्त होता है और फिर सत् कर्मों की उसकी प्रवृत्ति बढ़ती है, इसलिए सदाचार के लिए विवेक और वैराग्य दोनों का साथ-साथ उदय होना आवश्यक है।

— हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० १०२)

सदाचार के तीन आधार हैं—अदम्यता, सुकर्म और पवित्रता।

—विद्यानन्द 'विदेह'

श्रेष्ठ कुल का लक्षण सदाचरण से युक्त जीवन ही है। दुराचरण नीच जन्म को सिद्ध कर देगा।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १३३)

एक ईश्वर ही हमारे पूज्य हैं। अहिंसा ही धर्म है। अधर्म से प्राप्त वस्तु को अस्वीकार करना ही व्रत है। अनिच्छा से रहना ही तप है। किसी से कपट न करना ही भक्ति है। सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में समभाव से रहना ही समयाचार है। यही सत्य है। हे देव! इसके आप साक्षी हैं।

—बसवेश्वर

There is no road or ready way to virtue.

सदाचार के लिए कोई राजपथ या तैयार मार्ग नहीं है।

—टामस ब्राउन (रेलिजियो मेडिसी, १।५३)

Virtue is the fount whence honour springs.

सदाचार वह स्रोत है जहां से सम्मान जन्मता है।

—क्रिस्टोफ़र मार्लो (कांक्वेस्सट् आफ़ टैम्बरलेन, भाग १)

सदुपयोग

प्राप्त का सदुपयोग ही परिस्थिति का सदुपयोग है।

—एक संत (जीवनदर्शन, पृ० १७)

सद्यः स्नाता

कामिनि करए सनाने। हेरितहि हृदय हनए पंचवाने।
चिकुर गरए जल धारा। जनि मुख-ससि डर रोअए अँधारा॥

—विद्यापति (विद्यापति पदावली, पृ० २१)

ओ नुकि करतहि चाहि किए देहा।
अवहि छोड़व मोहि तेजब नेहा।
ऐसा रस नहि पाओव आरा।
इथे लागि रोइ गरए जल धारा।

—विद्यापति (विद्यापति पदावली, पृ० २२)

सद्व्यवहार

मुझे भुला दो या ठुकरा दो
कर लो जो कुछ भावे।
लेकिन यह आशा का
अंकुर नहीं सूखने पावे॥
करके कृपा कभी दे देना
शीतल जल के छींटे।
अवसर पाकर वृक्ष बने यह
दे फल शायद मीठे॥

—सुभद्रा कुमारी चौहान (मुकुल, आहत की अभिलाषा)

दूसरों को रुलाकर प्राप्त की हुई सम्पत्ति रोकर खोनी पड़ेगी। सद्व्यवहार से संचित सम्पत्ति खोने पर भी भविष्य में लाभप्रद होगी।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६५९)

सनातन धर्म

गति, प्रगति, परिवर्तन, अनुभव, सुधार, प्रयोग, संस्करण—ये सब सनातन धर्म के मूल तत्त्व हैं। इसलिए सनातन धर्म नित्य-नूतन रहता आया है।

—काका कालेलकर (युगानुकूल हिन्दू जीवनदृष्टि, पृ० २७)

सनातन धर्म भारत का अपना धर्म है जो भारतीय परम्परा के अनुयायिओं को आदि मानव समाज के उत्तराधिकार में मिला है।

—स्वामी राघवाचार्य ('सनातन धर्म औ भारतीयता'-लेख)

सफलता

**अनिर्वेदं च दाक्ष्यं च मनसश्चापराजयम्।
कार्यसिद्धिकराण्याहुः··············· ॥**

उत्साह, सामर्थ्य और मन में हिम्मत न हारना—ये कार्य की सिद्धि कराने वाले गुण कहे गए हैं।

—वाल्मीकि (रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, ४९।६)

**जयस्य हेतुः सिद्धिर्हि कर्म दैवं च संश्रितम्।
संयुक्तो हि बलैः कश्चित् प्रमादान्नोपयुज्यते॥**

सिद्धि (मनोयोग) और प्रारब्ध के अनुकूल पुरुषार्थ ही विजय का हेतु है। कोई बल से संयुक्त होने पर भी प्रमाद करे—तो वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता।

—वेदव्यास (महाभारत, सभापर्व, १६।१२)

**यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनर्धरः।
तत्र श्रीविजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥**

जहाँ योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान् है और जहां गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है, ऐसा मेरा[1] मत है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व, ४२।७८ अथवा गीता, १८।७८)

**रागो योगस्तथा दाक्ष्यं नयश्चेत्यर्थसाधकाः।
उपायः पण्डितैः प्रोक्तास्ते तु दैवमुपासिताः॥**

विद्वानों ने अभीष्ट अर्थ की सिद्धि करने वाले चार उपाय बताए हैं—राग (राजा के प्रति सैनिकों की भक्ति) योग (साधन-संपत्ति), दक्षता (उत्साह, बल एवं कौशल) तथा नीति, परन्तु वे सभी दैव के अधीन है।

—वेदव्यास (महाभारत, कर्ण पर्व।१०।१२।१३)

---
१. संजय का।

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान् न क्लीवा नाभिमानिनः ।
न च लोकरवाद् भीता न वै शश्वत् प्रतीक्षिणः ॥

जो आलसी हैं, कायर हैं, अभिमानी हैं, लोक-चर्चा से डरने वाले और सदा समय की प्रतीक्षा में बैठे रहने वाले हैं, ऐसे लोगों को अपने अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति नही हो सकती ।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१४०।२३)

यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ।
को वा न सिध्यति ममेति करोति कार्यम् ।
यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणां
दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः ॥

यत्न करने पर भी यदि कार्य सिद्ध न हो तो इसमें किसका दोष है ? कौन नहीं चाहता कि मेरे कार्य सिद्ध हों। अच्छे प्रयत्नों से पुरुषों की पुरुषता सिद्ध होती है। कार्य की सिद्धि तो भाग्य के विधान पर अवलम्बित है ।

—भास (अविमारक, ३।१२)

आरम्भमात्रमपि कस्यचिदेव दिद्ध्यै
कश्चित्प्रयत्नपरमोऽप्यफलप्रयासः ।

किसी को कार्य का आरम्भ करते ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है और किसी का परम प्रयत्न भी निष्फल हो जाता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।१५६१)

यो यमर्थं प्रार्थयते तदर्थं चेह ते क्रमात् ।
अवश्यं स तमाप्नोति न चेदर्धान् निवर्तते ॥

जो जिस वस्तु को पाने की इच्छा करता है, वह उसको अवश्य ही प्राप्त कर लेता है यदि बीच में ही प्रयत्न को न छोड़ दे ।

—योगवासिष्ठ (२।४।१२)

असिद्धार्था निवर्त्तन्ते न हि धीराः कृतोद्यमाः ।

धीर पुरुष उद्यम प्रारम्भ करने के अनन्तर असफल होकर नहीं लौटते ।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ५।३)

अवमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा च पृष्ठतः ।
स्वार्थं समुद्धरेत् प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता ॥

अपमान को आगे तथा मान को पीछे करके बुद्धिमान मनुष्य को अपना प्रयोजन सिद्ध करना चाहिए क्योंकि स्वार्थ-नाश मूर्खता है ।

—बल्लाल कवि (भोज प्रबन्ध, १२)

क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ।

महापुरुषों की कार्यसिद्धि, सत्व[1] से होती है, साधन से नहीं ।

—बल्लाल कवि (भोजप्रबन्ध, १६८)

सत्यपति पोते सुदृढ़े न कर्णधारं विनैति वत पारम् ।

नौका से सुदृढ़ होने पर भी कर्णधार के बिना वह पार नहीं जाती ।

—अन्नलदेव (मनोनुरंजन)

यस्मिन् जीवति जीवन्ति बहवः सोऽत्र जीवतु ।

जिसके जीने से बहुत से लोग जीवित रहें वही इस संसार में वास्तव में जीता है ।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, १।२३)

यज्जीव्यते क्षणमपि प्रथितं मनुष्यैः
विज्ञानशौर्यविभार्य्यगुणैः समेतम् ।
तन्नाम जीवितमिह प्रवदन्ति तज्ज्ञाः
काकोऽपि जीवति चिराय बलिं च भुंक्ते ॥

मनुष्य ज्ञानी, पराक्रमी, सद्गुणी, धन, सम्पत्ति आदि से युक्त हुआ जो जीवन क्षण-भर भी जीता है, वही उसका वास्तविक जीवन है—ऐसा विद्वान कहते हैं, क्योंकि यों तो कौआ भी बलि खाता है और चिरकाल तक जीता है ।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, १।२४)

यस्मिन् श्रुतिपथं प्राप्ते दृष्टे स्मृतिनुपागते ।
आनन्दं यान्ति भूतानि जीवितं तस्य शोभते ॥

जिसका वृत्तांत सुनकर, जिसको देखकर, जिसका स्मरण करके, समस्त प्राणियों को आनन्द होता है, उसी का जीवन शोभा देता है ।

—अज्ञात

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥

---

१. शक्ति ।

इस परिवर्तनशील संसार में मनुष्य का जन्म और मरण का क्रम तो लगा ही हुआ है किन्तु सफल जन्म उसी का है जिसके उत्पन्न होने से वंश उन्नति को प्राप्त होता हो।

—अज्ञात

नहि प्रतिज्ञामात्रेण अर्थसिद्धिः।

प्रतिज्ञा मात्र से ही अर्थ सिद्धि नहीं हो जाती है।

—संस्कृत लोकोक्ति

न नाणमित्तेण कज्जनिप्फत्ती।

जान लेने मात्र से कार्य की सिद्धि नहीं हो जाती।

[प्राकृत] —भद्रबाहु (आवश्यक निर्युक्ति, १५१)

जो धर्म की दृष्टि से लड़ता है वह आशा छोड़ता ही नहीं। जिसका कार्य शुद्ध है और जिसके साधन भी शुद्ध हैं उसे मानना चाहिए कि सफलता अवश्य मिलेगी। निर्धारित समय पर न मिले तो वह इतना ही कहेगा, मेरे अनुमान में कहीं भूल थी, किन्तु इस मार्ग से सफलता तो मिलेगी ही।

— महात्मा गांधी (नवजीवन, २-१०-१९२१)

महान काम महान बलिदान और महान उपायों के बिना नहीं किए जा सकते।

—महात्मा गांधी (ड्रिंक्स, ड्रग्स, गैम्बलिंग, २५)

सफलता में अनंत सजीवता होती है, विफलता में असह्य अशक्ति।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद १३)

गुड़ से मारने वाला जहर से मारने वाले की अपेक्षा कहीं सफल हो सकता है।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० ५७)

सफलता का एक ही क्षण होता है।

— जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, तृतीय अंक)

संसार में जो भी व्यक्ति सफलता की खोज में है, वस्तुतः वह या तो रुपया खोज रहा है अथवा कीर्ति।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' ('वेणु वन', पृ० १६)

जो बात सफल होती है, वह निश्चय ही धर्म है। अधर्म और सफलता कभी एक साथ रह ही नहीं सकते।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० १११)

कामयाबी हो गई तो बेवकूफी[1] पर भी नाज़[2]।
और जो नाकामी[3] हुई अक्ल[4] भी शरमिन्दा है।

—अकबर इलाहाबादी

इस तरह तय की है हमने मंजिलें।
गिर गए, गिरकर उठे, उठकर चले।

—अज्ञात

ता अक़्लो फ़ज़्ल बीनी बे मारफ़त नशीनी।

जब तक तू बुद्धि और विद्या के चक्कर में रहेगा, तुझे सफलता कभी भी प्राप्त न होगी।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

साधनमुन पनुलु समकूरु धरलोन।

इस धरती में साधन करने से सभी काम सफल होते हैं।

[तेलुगु] —वेमना (वेमनशतकमु)

शक्ति कलुगु पनुलु चक्कमा नेरवेरु
भक्ति गलुगु पूज फलमु निच्चु
युक्ति कलुगु माट योप्पुनुरा भुवि॥

सच्ची आसक्ति के साथ किये जाने वाले काम सत्फल देते है। भक्तिभाव से की जाने वाली पूजा सफल होती है। सयुक्तिक वचन, समय के अनुकूल कहे जाकर जीवन में सफलता देते हैं।

[तेलुगु] —वेमना

साधनों की चिन्ता ही जीवन की सफलता का महामन्त्र है।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत जाग्रत, पृ० १३६)

पवित्रता, धैर्य और अध्यवसाय, इन्हीं तीनों गुणों से सफलता मिलती है, और सर्वोपरि है प्रेम।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, खण्ड ३, पृ० ३३८)

सफलता का रहस्य वेदान्त को व्यवहार में लाना है। व्यावहारिक वेदान्त ही सफलता की कुंजी है।

—रामतीर्थ (रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० ११)

---

१. मूर्खता। २. अभिमान। ३. असफलता। ४. बुद्धि।

आपकी दुकान का माल अगर खरा है, तो आज हो या चार दिन बाद, खरीदार जमा होंगे ही। माल अच्छा नहीं होने पर हजार कोशिश करने पर भी दुकान नहीं चलेगी। दो चार दिन में हो या महीने में दिवाला ही पिट जाएगा।

—शरत्‌चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० १९)

जो योग्यता रखता है उसे ही सफलता का श्रेय लेने दो।

—विस्काउंट नेलसन होरेशियो (ध्येयवाक्य)

संधान मात्र पर्याप्त नहीं है, लक्ष्य-भेद भी चाहिए।

—इटालवी सूक्ति

महान उपलब्धियों के लिए हमें कर्म ही नहीं करना चाहिए अपितु स्वप्न भी देखना चाहिए, योजना ही नहीं बनानी चाहिए अपितु विश्वास भी करना चाहिए।

—अनातोले फ़्रांस

Work, ever performing work, is the first principle of success.

सफलता का पहला सिद्धान्त है काम—अनवरत काम।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गॉड रियेलेलाइजेशन, खण्ड २, पृ० ४)

I carry in my world that flourishes the worlds that have failed.

मैं अपने संसार में, जो सम्पन्न है, उन संसारों को लिए हुए हूं जो विफल हो चुके हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (स्ट्रे बर्ड्स, १२१)

If you wish success in life, make perseverance your bosom friend, experience your wise counsellor, caution your elder brother, and hope your guardian genius.

यदि तुम जीवन में सफलता पाना चाहते हो तो धैर्य को अपना घनिष्ठ मित्र, अनुभव को अपना बुद्धिमान परामर्श-दाता, और सावधानी को अपना बड़ा भाई बना लो और आशा को अपनी संरक्षक प्रतिभा।

—एडिसन

The secret of success is constancy to purpose.

उद्देश्य में निष्ठा सफलता का रहस्य है।

—डिज़रायली (भाषण, २४ जून १८७०)

A minute's success pays the failure of years.

क्षण भर की सफलता वर्षों की असफलता की कमी को पूरा कर देती है।

—राबर्ट ब्राउनिंग (अपोलो ऐंड दि फ़ेट्स, प्रोलाग)

A successful man is one who can lay a firm foundation with the bricks that others throw at him.

सफल मनुष्य वह है जो दूसरे लोगों द्वारा अपने पर फेंकी गई ईंटों से एक सुदृढ़ नींव डाल सकता है।

—अज्ञात

सबल

दे० 'शक्तिशाली'।

सबल-निर्बल

दमन का बाजार गर्म है। निर्बल का एकमात्र आधार रोना है सबल का एकमात्र आधार आँखें तरेरना। दोनों क्रियाएं आँखों से ही होती हैं, लेकिन उनमें कितना बड़ा अन्तर है।

—प्रेमचन्द (विविध-प्रसंग, पृ० ५३)

जो मारता है, वह सबल है; जो भय करता है, वह निर्बल है।

—यशपाल (दिव्या, पृ० ५८)

सभ्य

सभ्य जंगली सबसे बुरा जंगली होता है।

—सी० जे० वेबर

Increased means and increased leisure are the two civilisers of man.

मानव को सभ्य बनाने वाली दो वस्तुएं हैं—बढ़े हुए साधन और बढ़ा हुआ अवकाश।

—डिज़रायली (भाषण, ३ अप्रैल १८७२)

सभ्यता

सभ्यता केवल हुनर के साथ ऐब करने का नाम है। आप बुरे-से-बुरा काम करें, लेकिन अगर आप उस पर परदा डाल सकते हैं तो आप सभ्य हैं, जेंटिलमैन हैं। अगर आप में यह सिफ़त नहीं तो आप असभ्य हैं, बदमाश हैं। यही सभ्यता का रहस्य है।

—प्रेमचन्द ('सभ्यता का रहस्य' कहानी)

प्राण बचाना चाहते हो तो जल्दी भागो, सभ्यता हमारे पीछे पड़ी हुई है।

—ख़लील जिब्रान (बटोही, पृ० ३७)

Civilization is the open, self-perpetuating interchange between man, values and cosmos in their various dimensions and orders.

मानव, मूल्यों और विश्व के मध्य उनके विविध आयामों व कोटियों मे, खुला तथा आत्मस्थायीकरण करने वाला विनिमय ही सभ्यता है।

—राधाकमल मुखर्जी (डेस्टिनी आफ़ सिविलिजेशन, पृ० १)

Civilization is at its highest when it stimulates and directs the human self beyond evolution and history, beyond itself.

सभ्यता की उच्चतम स्थिति तब होती है जब वह मानव स्व को विकास और इतिहास के परे, स्वयं अपने को परे जाने के लिए प्रेरित करती है तथा मार्गदर्शन करती है।

—राधाकमल मुकर्जी (दि डेस्टिनी आफ़ सिविलिजेशन, पृ० २१६)

Civilization is a movement and not a condition, a voyage and not a harbour.

सभ्यता तो गति है, स्थिति नहीं। यात्रा है, बन्दरगाह नहीं।

—आर्नोल्ड टायनबी (रीडर्स डाइजेस्ट, अक्तूबर १९५८)

Civilizations come to birth in environments that are unusually difficult and not unusually easy.

सभ्यताओं का जन्म असाधारण रूप से कठिन परिवेशों में होता है नकि असाधारण रूप से सरल परिवेशों में।

—आर्नोल्ड टायनबी

The history of almost every civilization furnishes examples of geographical expansion *coinciding with deterioration in quality.*

प्राय: प्रत्येक सभ्यता का इतिहास भौगोलिक विस्तार और गुण-दृष्टि से पतन का एक साथ घटित होने के उदाहरण प्रस्तुत करता है।

—आर्नोल्ड टायनबी

Disinterested intellectual curiosity is the life-blood of real civilization.

निष्काम बौद्धिक जिज्ञासा यथार्थ-सभ्यता का जीवन-रस है।

—जार्ज मैकाले ट्रेवेल्यन

समझाना

तओ दुस्सन्नप्पा दुट्ठे मूढे बुग्गाहिते।

दुष्ट को, मूर्ख को और बहके हुए को समझा पाना बहुत कठिन है।

[प्राकृत] —स्थानांग (३।४)

एक जो होय तो ज्ञान सिखाइए
कूप ही मे यहाँ भाँग परी है।

—भारतेंदु हरिश्चन्द्र (प्रेम-माधुरी, ८९)

तेलियनि मनुजुनि सुखमुग
देलुपंदगु सुखतरमुग देलुपग वच्चुं
देलिसिन वानि, देलिसियु
देलियनि नरु देल्प ब्रह्म देवुनि वशमे।

नासमझ को कोई भी बात आसानी से समझायी जा सकती है। समझदार को समझाना और भी आसान है। लेकिन बीच के व्यक्ति को समझाना स्वयं ब्रह्मा के भी वश की बात नही है।

[तेलुगु] —एनुगु लक्ष्मण कवि

समत्व

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥

सुख-दुख, लाभ-हानि और जय-पराजय को समान समझकर, उसके उपरांत युद्ध के लिए तैयार हो जा। इस प्रकार युद्ध करने से पाप को नहीं प्राप्त होगा।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व २६।३८ अथवा गीता, २।३८)

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

समत्व-बुद्धि-युक्त पुरुष पुण्य व पाप दोनों को इस लोक में ही त्याग देता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व २६।५० अथवा गीता, २।५०)

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥

जब तेरी अनेक प्रकार के सिद्धांतों को सुनने से विचलित हुई बुद्धि एकाग्रता में अचल और स्थिर होगी, तब तू समत्व-योग को प्राप्त होगा।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व २६।५३ अथवा गीता, २।५३)

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥

ज्ञानी जन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल में समदर्शी होते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २९।१८ अथवा गीता, ५।१८)

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

सुहृद्, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष करने योग्य, बन्धु, धर्मात्माओं मे और पापियों में भी जिसकी बुद्धि सम हो गई है, वही विशेष योग्यता का मनुष्य है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व ३०।९ अथवा गीता, ६।९)

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

जिसकी आत्मा योगयुक्त हुई है, वह सर्वत्र समदृष्टि से देखता है। वह सब प्राणियों में आत्मा को और सब प्राणियों को आत्मा में देखता है।

वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व।३०।२९ अथवा गीता, ६।२९)

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

जो मनुष्य मुझे (परमात्मा को) सर्वत्र और सबको मुझमें (परमात्मा में) देखता है, उसकी दृष्टि में मैं (परमात्मा) कभी नष्ट नहीं होता और वह मेरी (परमात्मा की) दृष्टि में कभी नष्ट नहीं होता।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, ३०।३० अथवा गीता, ६।३०)

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति ॥

जो मनुष्य नाश होने वाले सब प्राणियों में समभाव से रहने वाले अविनाशी परमेश्वर को देखता है, वही सत्य को देखता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व ३७।२७ अथवा गीता, १३।२७)

वर्षुकस्य किमपः कृतोन्नतेरम्बुदस्य परिहार्यमूषरम्।

ऊँचाई पर पहुँचे हुए जल बरसाने वाले बादल का ऊसर को छोड़ना क्या उचित है?

—माघ (शिशुपालवध, १४।४६)

आयओ बहिआ पास।

अपने समान ही दूसरों को भी देख।

[प्राकृत] —आचारांग (१।३।३)

तुमंसि नाम तं चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि।
तुमंसि नाम ते चेव जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि।
तुमंसि नाम तं चेव जं परियावेयव्वं ति मन्नसि।

जिसे तू मारना चाहता है, वह तू ही है। जिसे तू शासित करना चाहता है, वह तू ही है। जिसे तू परिताप देना चाहता है, वह तू ही है।

[प्राकृत] —आचारांग (१।५।५)

नो अत्ताणं आसाएज्जा, नो परं आसाएज्जा।

न अपनी अवहेलना करो, न दूसरों की अवहेलना करो।

[प्राकृत] —आचारांग (१।६।५)

बैर न बिग्रह[1] आस[2] न त्रासा[3]।
सुखमय ताहि सदा सब आसा[4]॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।४६।३)

मनो तू चूं न मानद दरमियाना
चे मस्जिद चे कनिश्त चे दैरखाना।

जब 'मैं' और 'तू' तेरे बीच में न रह जायेंगे, उस समय मन्दिर, मस्जिद और गिरजा सब तेरे लिए समान हो जाएंगे।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

इसुक बोग्गु रायि, इनुमनु स्वर्णंबु
कसवु पोच वलेनु गनुचुनुंडि
परम पदमु गांचु परिणाम मंदु न।

सच्चे विद्वान की दृष्टि में सभी सांसारिक वस्तुएं समान रहती हैं। पत्थर, कोयला, रेत, लोहा और सोना इन सभी चीज़ों को वह तिनके के बराबर देखता है।

[तेलुगु] —वेमना

समझ

दे० 'बुद्धि'।

समन्वय

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त
विकल बिखरे है, हो निरुपाय,
समन्वय उनका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

१. लड़ाई-झगड़ा। २. आशा। ३. भय। ४. दिशाएं।

समन्वय हिंदुत्व की सबसे बड़ी विशेषता है। विश्व के साथ अविरोध-भाव प्राप्त करने की पद्धति समन्वय है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल ('कल्याण' का 'हिन्दू संस्कृति' अंक, पृ० ९७)

समय

दे० 'काल भी'।

कार्यमण्वपि काले तु कृतमेत्युपकारताम्।
महानप्युपकारोऽपि रिक्ततामेत्यकालतः॥

ठीक समय पर किया हुआ थोड़ा-सा भी कार्य बहुत उपकारी होता है और समय बीतने पर किया हुआ महान उपकार भी व्यर्थ हो जाता है।

—योगवासिष्ठ

न भवेत् पविपातेऽपि प्रमयः समयं विना।
प्रसूनमप्यसून् हन्ति जन्तोः प्राप्तावधेः पुनः॥

समय आए बिना वज्रपात होने पर भी मृत्यु नहीं होती है, और समय आ जाने पर पुष्प भी प्राणी का प्राण ले लेता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।५३१)

नृपते किं क्षणो मूर्खो दरिद्रः किं वराटकः।

हे राजन्। क्षण भर का समय है ही क्या, यह समझने वाला मनुष्य मूर्ख हो जाता है और एक कौड़ी है ही क्या, यह समझने वाला दरिद्र हो जाता है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, २।९१)

अनावर्ती कालो व्रजति।

कभी न लौटने वाला समय जा रहा है।

—अज्ञात

आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्यः स्वर्णकोटिभिः।
स वृथा नीयते येन तस्मै नृपशवे नमः॥

करोड़ों सुवर्ण मुद्राएं देकर भी आयु का एक क्षण भी नहीं प्राप्त किया जा सकता। ऐसी दशा में ऐसे बहुमूल्य क्षण को जो व्यर्थ बिताता है, उस मनुष्य रूप पशु को नमस्कार है।

—अज्ञात

अच्चेइ कालो तूरंति राइओ,
न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा।
उविच्च भोगा पुरिसं चयंति,
दुमं जहा खीणफलं व पक्खी॥

हे राजन्! काल बहुत तीव्र गति से बीत रहा है। एक-एक करके रात्रियाँ बीत रही हैं। काम-भोग मनुष्य को उसी प्रकार छोड़कर चले जाते हैं, जैसे फलरहित वृक्ष को पक्षी।
[प्राकृत] —कामसुत्तं

अणभिक्कंतं च वयं संपेहाए, खणं जाणाहि पंडिए।

हे आत्मविद् साधक! जो बीत गया सो बीत गया। शेष रहे जीवन को ही लक्ष्य में रखते हुए प्राप्त अवसर को परख। समय का मूल्य समझ।
[प्राकृत] —आचारांग (१।२।१)

गय दियहा किं एन्ति पडीवा।

गये हुए दिन क्या फिर लौट कर आते है?
[अपभ्रंश] —स्वयम्भूदेव (पउमचरिउ, ५।१२।५)

कबीर पल की सुधि नहीं, करै कालि्ह का साज।
काल अच्यंता झड़पसी, ज्यूं तीतर को बाज॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ७२)

समय फिरें रिपु होहिं पिरीते।
—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।१७।३)

तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा।
मुए करइ का सुधा तड़ागा॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२६१।१)

दिवस जात नहिं लगिहि बारा।
—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।६२।१)

जानि परै कहुँ रज्जु अहि कहुँ अहि रज्जु लखात।
रज्जु रज्जु अहि अहि कबहुँ रतन समय की बात॥
—रत्नावली

अपनी-अपनी ठौर पर, सबको लागै दाव।
जल मे गाड़ी नाव पर, थल गाड़ी पर नाव॥
—वृन्द (वृन्द-सतसई)

जो समय बचाते हैं वे धन बचाते हैं, और बचाया हुआ धन कमाये हुए के बराबर है। इसलिए जिन्हें समय का मूल्य नहीं, वे दुनिया का कितना धन खो देते होंगे। इसका हिसाब कौन लगा सकता है?
—महात्मा गांधी (मणि बहन को पत्र, १४-१२-१९३२)

सही चीज़ के पीछे वक्त देना हमको खटकता है, निकम्मी के पीछे ख्वार होते हैं, और खुश होते हैं।
—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, १८२)

एक भी मिनट फिज़ूल जाता है तो वापिस कभी नहीं आता है। यह बात जानते हुए भी हम कितने मिनट गँवाते हैं।
—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, १८२)

आदमी अगर निकम्मी बात छोड़े और काम की, थोड़े-से-थोड़े शब्दों में कहे, तो बहुत समय अपना और दूसरों का बचा लेता है।
—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, २१४)

अगर हम आज की चिंता कर लेंगे, तो कल की चिंता भगवान कर लेगा।
—महात्मा गांधी (सत्य ही ईश्वर है, २३)

दिन को ऊना-ऊनी[1], रात को चरखा पूनी।
—हिंदी लोकोक्ति

पुरुष बली नहिं होत है समय होत बलवान।
भीलन लूटी गोपिका वहि अर्जुन वहि बान॥
—अज्ञात

गुज़र गये है जो दिन फिर न आयेंगे हरगिज़
कि एक चाल फ़लक[2] हर बरस[3] नहीं चलता।
—दाग़

आज महफ़िल से तुम आये हो उठाने हमको
हाय वह दिन कि जो उठते थे बिठाने हम को।
—अमीर मीनाई

तेरे कूचे इस बहाने मुझे दिन से रात करना
कभी इससे बात करना कभी उससे बात करना।
—मुसहफ़ी

---

१. समय-नाश। २. आकाश। ३. वर्ष।

वह जो उठते थे बिठाने के लिए
आज बैठे हैं उठाने के लिए।

—अज्ञात.

गुज़श्ता ख़्वाबो आयन्दा ख़यालस्त
ग़नीमत दां हमीं हम रा कि हालस्त।

भूतकाल स्वप्न है और भविष्य काल अनुमान है और वह समय जो वर्तमान है, उसे ग़नीमत समझ।

[फ़ारसी] —अज्ञात

हो अजे संभाल इस समें नूं
कर सफल उदन्दा जांवदा।
इह ठहर न जाच न जाणदा
लंघ गया न मुड़के आंवदा ॥

हे मनुष्य ! इस गतिशील समय को देख। यह रुकना नहीं जानता। एक बार जो बीत गया, वह फिर लौटकर नही आएगा।

[पंजाबी] —भाई वीरसिंह

करन सवारी समें ते
फड़न समें दी वाग।

समय पर वही सवारी कर सकता है जो समय की लगाम पकड़े रहे।

[पंजाबी] —अमृता प्रीतम (कविता 'बारां माह')

समयपीयूषमोषुकुन्नू तृष्णा—
शमम् वरत्तुवान् करियिल्ला पिन्ने।

समय रूपी अमृत वहता जा रहा है। संभव है प्यास बुझाने का अवसर तुम्हें फिर न मिले।

[मलयालम] —शंकर कुरुप (ओटक्कुरल, कविता 'पिन्नत्ते वसन्तनम्')

इस अनन्त सृष्टि में समय का क्या मूल्य है ?

—शिवानन्द (दिव्योपदेश, २।३८)

समय पुनः वापस न आने के लिए उड़ा जा रहा है।

—वर्जिल

जो समय चिंता में गया, समझो कूड़ेदान में गया। जो समय चिंतन में गया, समझो तिजोरी मे जमा हो गया।

—चिंग चाओ

मनुष्य के जीवन में एक ऐसा समय आता है जब यशस्वी पुरुष के लिए उसका यश विद्रूप में परिणत हो जाता है, अर्थवान के लिए अर्थ अनर्थ बन जाता है, हिंसावादी मनुष्य के लिए हिंसा हास्यास्पद बन जाती है। यह बात मनुष्य के लिए जितनी सत्य है, समाज के लिए भी उतनी ही सत्य है।

—विमलमित्र (चलते-चलते, पृ० ८४)

जो कुछ न्यायसंगत है, उसे कहने के लिए सभी समय उपयुक्त समय है।

—सोफ़ोक्लीज़

The inaudible and noiseless foot of time.
समय का अश्रव्य और निःशब्द चरण।

— शेक्सपियर (आल्स वेल दैट एंड्स वेल, ५।३)

The spirit of the time shall teach me speed.
समय की आत्मा मुझे गति सिखा देगी।

—शेक्सपियर (किंग जान, ४।२)

Pleasure and action make the hours seem short.

आनन्द और कर्म से घटे छोटे प्रतीत होने लगते हैं।

—शेक्सपियर (ओथेलो, २।३)

Time will run back, and fetch the age of gold.
समय वापस जाकर स्वर्ण-युग ले आएगा।

—मिल्टन (आन मार्निंग आफ़ क्राइस्ट्स नेटिविटी)

Time, which is the author of authors.
समय—जो लेखकों का भी लेखक है।

—बेकन (एडवांसमेंट आफ़ लर्निंग, १।४।१२)

To choose time is to save time.
समय चुनना समय बचाना है।

—बेकन (एसेज़, 'आफ़ डिस्पैच')

The years teach much which the days never know.

वर्ष बहुत कुछ सिखा देते हैं जो दिनों को कभी ज्ञात नहीं होता।

—एमर्सन (एसेज़, एक्सपीरिएंस)

Take care of the minutes : for hours will take care of themselves.

मिनटों की चिन्ता करो क्योंकि घंटे तो अपनी चिन्ता स्वयं कर लेंगे।

—चेस्टरफ़ील्ड (पुत्र को पत्र, ६-११-१७४७)

The great instructor, Time.

महान शिक्षक—समय।

—एडमंड बर्क (एक पत्र में, २६ मई १७६५)

There is no waste of time in life like that of making explanations.

सफ़ाइयां देने में होने वाले समय-नाश के समान जीवन में अन्य कोई समय-नाश नहीं है।

—डिज़रायली (भाषण, ११ मार्च १८७३)

Time is the great physician.

समय महान चिकित्सक है।

—डिज़रायली (एंडिमियन, ६।६)

Remember that time is money.

याद रखो कि समय धन है।

—बेंजमिन फ़्रैंकलिन (युवा व्यापारियों को परामर्श ग्रंथावली, खण्ड २)

A wanderer is man from his birth.
He was born in a ship.
On the breast of the river of time.

मनुष्य जन्म से ही पर्यटक है। उसका जन्म समय रूपी नदी के वक्षस्थल पर एक जहाज़ में हुआ था।

—मैथ्यू आर्नोल्ड (दि फ़्यूचर, १।१)

Time, a maniac scattering dust
And life, a Fury slinging flame.

समय—धूल बिखराता हुआ एक विक्षिप्त, और
जीवन—प्रकोप फैलाती हुई एक अग्नि-शिखा।

—टेनिसन (इन मेमोरियम, १)

Strict punctuality is, perhaps, the cheapest virtue which can give force to an otherwise utterly insignificant character.

संभवत: कट्टर समयपालकता वह सरलतम गुण है जो एक अन्यथा पूर्णतया महत्त्वहीन व्यक्ति को महत्त्व दे सकता है।

—जान फ्रेडरिक बोइस

समर्थ

समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं।
रवि, पावक, सुरसरि की नाईं॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।६६।४)

समर्पण

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।
गले राम की जेवड़ी, जित खेंचे तित जाउँ॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० २०)

देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज, सब माया-बिबस विचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपो हारे॥

—तुलसीदास (विनयपत्रिका, पद १०१)

वह[1] जैसे रखे वैसे ही रहना चाहिए और अगर वह खौलते तेल में डाल दे तो भी हमें खुशी से नाचने के लिए तैयार रहना चाहिए।

—महात्मा गांधी (पत्र छगनलाल जोशी को, २-१०-१९३२)

दया, माया, ममता लो आज,
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास,
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

1. ईश्वर।

इस अर्पण में कुछ और नहीं
केवल उत्सर्ग छलकता है.
मैं दे दूं और न फिर कुछ लूं
इतना ही सरल झलकता है।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, लज्जा सर्ग)

आँसू से भीगे अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा,
तुमको अपनी स्मित रेखा से
यह संधि-पत्र लिखना होगा।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, लज्जा सर्ग)

सर्वात्मा के स्वर में, आत्मसमर्पण के प्रत्येक ताल में अपने विशिष्ट व्यक्तिवाद का विस्मृत हो जाना—एक मनोहर संगीत है।

—जयशंकर प्रसाद (स्कंदगुप्त, द्वितीय अंक)

जन-जन के जीवन के सुन्दर
हे चरणों पर
भाव-वरण भर
दूँ तन-मन-धन न्योछावर कर।

—सुर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (अणिमा, ३)

पूजा और पुजापा प्रभुवर !
इसी पुजारिन को समझो।
दान-दक्षिणा और निछावर
इसी भिखारिन को समझो।।

—सुभद्राकुमारी चौहान (मुकुल, ठुकरा दो या प्यार करो)

बजुज आँचे तू ख़ाही मन चे ख़ाहम
बजुज आँचे नुमाई मन चे बीनम्।

जो कुछ भी तेरी इच्छा है, उसके अतिरिक्त और मेरी इच्छा हो ही क्या सकती है ? जो कुछ भी तू दिखाता है, मैं उसके सिवा और क्या देखूं ?

[फ़ारसी] **—मौलाना रूम**

मरा गर तू चुनादारी चुनानम्
मरा गर तू चुनी ख़ाही चुनीनम्।

अगर तू वैसा रखे, वैसा हूँ और ऐसा रखे, ऐसा हूं, जिस प्रकार तू मुझको रखना चाहता है, मैं वैसा ही हूँ।

[फ़ारसी] **—मौलाना रूम**

दरॉं ख़ुम्मे कि दिलरा रंग बख़्शी
कि बाशम मन चे बाशद मेहरो कीनम्।

तू जिस ढँग में चाहे मुझे रंग दे। मैं क्या वस्तु हूँ और मेरा प्यार तथा वैर क्या है।

[फ़ारसी] **—मौलाना रूम**

बेरो जाने पिदर तन दर क़ज़ा देह
बतक़दीराते यज़दानी रज़ा देह।

प्रिय पुत्र ! जा ईश्वर की आज्ञानुसार कार्य करना आरम्भ कर दे। अपना शरीर उसको अर्पण कर दे और वह जो कुछ करता है, उसमें प्रसन्न रह।

[फ़ारसी] **—शब्सतरी**

प्रत्येक पत्थर कुछ बनना चाहता है और वह अपने आप को प्रसन्नता से उन हाथों को सौंप देता है जिन उँगलियों में छेनी पकड़ी होती है।

—अमृता प्रीतम (एक थी अनीता, पृ० ३१)

मानवता का सच्चा सेवक वह नहीं, जो केवल धन देता है, अपितु वह है जो स्वयं को समाजकार्य के लिए समर्पित कर देता है। धन देने वाले को प्रसिद्धि मिलती है, जबकि समय व शक्ति देने वाले व्यक्ति को समाज का प्रेम मिलता है। सम्भवतः पहले व्यक्ति का नाम सबको याद रहे और दूसरा व्यक्ति भुला दिया जाए, परन्तु दूसरे के किए हुए शुभ कार्यों की सुगंधि सदैव समाज में महकती रहेगी।

—सैमुअल स्माइल्स (ड्युटी)

सबसे अधिक ताज़े, बिना स्पर्श किये हुए और बिना सूँघे फूल ही भगवान के चरणों पर चढ़ाये जाते हैं और वे उन्हें ही ग्रहण करते है।

—विवेकानंद (विवेकानन्द साहित्य, भाग ५, पृ० १९७)

समर्पण को प्रचार व दिखावे से घृणा है।

—सत्य साई बाबा

समस्या

प्रश्न स्वयं किसी के सामने नहीं आते। मैं तो समझती हूं मनुष्य उन्हें जीवन के लिए उपयोगी समझता है। मकड़ी की तरह लटकने के लिए अपने आप ही जाला बुनता है।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, द्वितीय अंक)

हाथी अपने पाँव भारी, चींटी अपने पांव भारी।

हाथी अपने पैरों से भार अनुभव करता है और चींटी अपने पैरों से। सब अपनी-अपनी समस्याओं से ग्रस्त रहते हैं।

—हिंदी लोकोक्ति

फ़िक्रे-मआश[1] इश्के-बुतां[2] यादे-रफ़्तगां[3]
इस जिन्दगी में अब कोई क्या-क्या किया करे।

—सौदा

It is the man not the method that solves the problem.

समस्या का हल विधि नहीं करती, मनुष्य करता है।

—एच० मैशके (प्रेज़ेंट प्राब्लम्स आफ़ अल्जबरा एण्ड अनालिसिस)

समाचार

सच कहो ऐ बुलबुलों किस बाग से आती हो तुम
है हमारे भी तुम्हें कुछ आशियाने की ख़बर।

—यक़ीन

बुरा समाचार लाने वाले को कोई पसन्द नहीं करता है।

—सोफ़ोक्लीज (एंटिगोन)

हर प्रशंसा की तुलना में बुरा समाचार दूर तक जाता है।

— बाल्टासार ग्राशियन (अनूदित कृति, दि आर्ट आफ़ वर्ल्डली विज़डम)

The nature of bad news infects a teller.

बुरे समाचार की प्रकृति समाचार बताने वाले को संक्रमित कर देती है।

—शेक्सपियर (एंटोनी एण्ड क्लियोपेट्रा, १.२)

१. आजीविका की चिंता। २. सुन्दरियों से प्रेम। ३. अतीत की स्मृतियां।

When a dog bites a man that is not news, but when a man bites a dog that is news.

जब कोई कुत्ता किसी मनुष्य को काटे तो वह 'समाचार' नहीं हुआ, परन्तु जब कोई मनुष्य किसी कुत्ते को काटे तो वह 'समाचार' है।

—चार्ल्स एंडर्सन डान ('ह्वाट इज़ न्यूज़ ?' लेख)

Nowadays truth is the greatest news.

आजकल तो सबसे बड़ी खबर 'सत्य' है।

—टामस फ़ुलर (नोमोलोजिया, ३६८९)

Evil news rides post, while good news baits.

बुरा समाचार तेज़ी से दौड़ता है, अच्छा समाचार रुका रहता है।

—मिल्टन (सैम्सन एगानिस्ट्स)

If it's far away, it's news, but if it's close at home, it's sociology.

यदि यह बहुत दूर की बात है, तब तो यह समाचार है, परन्तु यदि यह घर के समीप की ही बात है, तब यह समाज-शास्त्र है।

—जेम्स रेस्टन (वाल स्ट्रीट जर्नल, २७ मई १९६३)

What's wan man's news is another man's throubles.

एक व्यक्ति के लिए जो समाचार है, वह दूसरे मनुष्य की परेशानी है।

—फ़िनले पीटर डन्ने (आब्ज़रवेशन बाइ मिस्टर डूले, दि न्यूज़ आफ़ ए वीक)

समाचारपत्र

दे० 'पत्रकार', 'पत्रकारिता', 'पत्रिका' भी।

किसी भी अख़बार का पहला काम है, लोगों के भावों को समझकर प्रकट करना। दूसरा काम है, लोगों में जिन भावनाओं की जरूरत हो उन्हें जाग्रत करना। तीसरा काम है, लोगों में अगर कोई ऐब हो तो उन्हें किसी भी मुसीबत की परवाह न कर बेधड़क सबके सामने रख देना।

— महात्मा गांधी (हिन्द स्वराज्य)

अनियंत्रित राज-सत्ता पर अंकुश लगाना ही समाचार-पत्रों का सच्चा उपयोग है।

—लोकमान्य तिलक

सरकार की पसंद के लिए हमने समाचार-पत्र नहीं निकाला। सरकार की आलोचना करने के कारण वह हम पर क्रुध होती हो तो उसके क्रोध की हमें तनिक भी परवाह नहीं।

—लोकमान्य तिलक

केवल अख़बारों की पाल चढ़ाकर दुस्तर संसार-सागर में यात्रा करने का मुझको साहस नहीं होता।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (नया और पुराना)

हजार संगीनों की अपेक्षा चार विरोधी समाचार-पत्रों से अधिक डरना चाहिए।

—नैपोलियन प्रथम (नीति वाक्य)

दैनिक समाचारपत्र पुस्तक का उसी प्रकार स्वाभाविक शत्रु है जैसे कुलटा किसी श्रेष्ठ स्त्री की शत्रु होती है।

—जूल्स डि गोनकोर्ट

विश्व देखने की खिड़की को एक समाचारपत्र से ढँका जा सकता है।

—स्टेनिस्ला लेक (अनूदित कृति 'अनकेम्प्ट थाट्स')

Newspapers always excite curiosity. No one ever lays one down without a feeling of disappointment.

समाचारपत्र सदैव उत्सुकता जगाते हैं। समाचारपत्र का पढ़ना बन्द करने से पहले निराशा की भावना सभी में आ जाती है।

—चार्ल्स लैम्ब (लास्ट एसेज़ आफ़ एलिया)

Were it left to me to decide whether we should have a government without newspapers, or newspapers without a government, shauld not hesitate a moment to prefer the latter,

यदि मुझे चुनने को कहा जाए कि हम बिना समाचार-पत्रों के सरकार रखें या बिना सरकार के समाचारपत्र, तो मैं बाद की बात चुनने में क्षण-भर भी संकोच नहीं करूंगा।

— टामस जेफ़र्सन (कर्नल एडवर्ड कैरिंगटन को) पत्र, १६ जनवरी १७८७)

The man who never looks into a news paper is better informed than he who reads them, in as much as he who knows nothing is nearer to truth than he whose mind is filled with falsehood and errors.

समाचारपत्रों को पढ़ने वाले व्यक्ति की तुलना में उन्हें न पढ़ने वाला अधिक अच्छी जानकारी वाला होता है, उसी प्रकार जैसे जो व्यक्ति कुछ नहीं जानता है, वह उस व्यक्ति की अपेक्षा जिसका मन झूठ और त्रुटियों से भरा हुआ है, सत्य से अधिक निकट होता है।

—टामस जेफ़र्सन (जान नारवेल को पत्र, ११ जून १८०७)

People everywhere confuse
What they read in newspapers with news.

सभी जगह लोग समाचार पत्रों में जो कुछ पढ़ते हैं उसे समाचार समझने की भूल करते हैं।

—ए० जे० लीबलिंग (दि न्यूयार्कर, ७ अप्रैल, १९५६ में लेख 'ए टाकेटिव समथिंग आर अदर)

A newspaper, not having to act on its description and reports, but only to sell them to idly curious people, has nothing but honour to lose by inaccuracy and unveracity.

समाचार-पत्र को, जिसे अपने वर्णनों और रपटों के अनुसार, कुछ करना तो होता नहीं है, केवल उन्हें आलस्य-पूर्ण उत्सुक व्यक्तियों को वेचना होता है, अपनी अ-यथार्थता और असत्यता से प्रतिष्ठा ही खो बैठता है।

—जार्ज बर्नर्ड शा (दि डाक्टर्स डिलेमा, ४)

We live under a government of men and morning newspapers

हम मनुष्यों और प्रातःकालीन समाचारपत्रों के शासन में रह रहे हैं।

—वेंडेल फ़िलिप्स (भाषण, २८ जनवरी १८५२)

In America journalism is apt to be regarded as an extension of history; in Britain, as an extension of conversation.

अमरीका में पत्रकारिता को इतिहास का विस्तार तथा ब्रिटेन में वार्तालाप का विस्तार माना जाएगा।

—एन्थोनी सैंपसन (एनाटामी आफ़ ब्रिटेन)

A good newspaper. I suppose, is a nation talking to itslf,

मेरी मान्यता है कि एक अच्छा समाचारपत्र स्वयं से ही बात करता राष्ट्र है।

—आर्थर मिलर (दि आब्ज़र्वर, २६ नवम्बर १९६१)

The First Duty of a newspaper is to be Accurate. If it be Accurate, it follows that it is Fair.

समाचारपत्र का प्रथम कर्त्तव्य यथातथ्य होना है। यदि यह यथातथ्य है तो उसी से यह समझ लेना चाहिए कि यह निष्पक्ष भी है।

—हर्बर्ट वेयर्ड स्वोप (न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून में पत्र, १६ मार्च १९५८)

There was a time when the reader of an unexciting newspaper would remark, "How dull is the world today !" Nowadays he says, "What a dull newspaper !"

एक समय था जब किसी उत्तेजनाविहीन समाचारपत्र का पाठक कहता था, "आज संसार कितना नीरस है !" आजकल वह कहता है, "कैसा नीरस समाचारपत्र है !"

—डेनियल जे० बूर्स्टिन (दि इमेज)

Nowhere else can one find so miscellaneous, so various, an amount of knowledge as is contained in a good newspaper.

एक अच्छे समाचारपत्र में जितनी प्रकीर्ण, जितनी विविधतापूर्ण ज्ञानराशि मिल सकती है, अन्यत्र कहीं नहीं।

—हेनरी वार्ड बीचर (प्रावर्ब्स फ़्राम प्लाइमाउथ पल्पिट)

The evil that men do lives on the front pages of greedy newspapers, but the good is oft interred apathetically inside.

लालची समाचार पत्रों के मुखपृष्ठो पर तो मनुष्य के कुकर्म अंकित होते हैं परन्तु सुकर्मों को प्राय: उदासीनता के साथ अंदर दफ़ना दिया जाता है।

—ब्रूक्स एटकिंसन (वन्स एराउण्ड दि सन, डिसेम्बर ११)

समाज

धन को आप किसी अन्याय के बराबर फैला सकते हैं। लेकिन बुद्धि को, चरित्र को और रूप को, प्रतिभा को और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर है। छोटे-बड़े का भेद केवल धन से ही तो नही होता। मैंने बड़े बड़े धन-कुबेरों को भिक्षुकों के सामने घुटने टेकते देखा है, और आपने भी देखा होगा। रूप के चौखट पर बड़े-बड़े महीप नाक रगड़ते हैं। क्या यह सामाजिक विषमता नही है ?

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० ५९)

जिस समाज में ग़रीबों के लिए स्थान नही, वह उस घर की तरह है जिसकी बुनियाद न हो। कोई हल्का-सा धक्का भी उसे जमीन पर गिरा सकता है।

—प्रेमचन्द (कर्मभूमि, पृ० ३८३)

अत्याचारी समाज पाप कह कर कानों पर हाथ रखकर चिल्लाता है; वह पाप का शब्द दूसरों को सुनाई पड़ता है; पर वह स्वयं नही सुनता।

—जयशंकर प्रसाद (आंधी, 'विजया' कहानी, पृ० ११७)

तर्कों, वादों, कटु संघर्षों में
खोए जन
निर्मित कर सकते न
सौध सामाजिकता का।

—सुमित्रानन्दन पंत (आस्था, पृ० १४१)

जिस समाज में मानवीय विचारों और व्यवहारों के निरन्तर परिवर्तमान मूल्यों के विचार करने वाले मनीषी, प्रकृति के रहस्य भेदकर नवीन-नवीन जानकारियां उद्घाटित करने वाले अनुसन्धाता नहीं होते, वह समाज प्रवाह-रुद्ध जलराशि के समान गन्दा, गतिहीन और मृत बन जाता है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचारप्रवाह, पृ० २३९)

हमारे सामने समाज का आज जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० १३)

'समम् अजन्ति जनाः अस्मिन् इति' यह समाज शब्द का अर्थ है जिसमें लोग मिलकर, एक साथ, एक गति से, एक-से चलें, वही समाज है।

—सम्पूर्णानन्द (समाजवाद, पृ० १६)

इस समय 'समाज' एक कल्पनामात्र है। विशेष उद्देश्यों की सिद्धि के लिए अस्थायी गुट बन जाते हैं परन्तु स्थायी बुद्धिमूलक संघटन, जिसमें लक्ष्य की एकता, श्रम का और पारिश्रमिक का विभाग तथा एक के प्रयत्न का दूसरे के प्रयत्न के साथ सहयोग हो, नहीं है। न तो किसी छोटे क्षेत्र, किसी राष्ट्र के भीतर समाज के लक्षण देख पड़ते हैं, न व्यापक रूप से पृथ्वी भर के मनुष्यों में।

—सम्पूर्णानन्द (समाजवाद, पृ० २४)

वही सामाजिक परिवर्तन कल्याणकारी होता है जो वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल हो परन्तु प्राचीन परम्परा को एकदम तोड़ न दे। यदि समय पर ऐसा परिवर्तन कर दिया जाए तो नूतनता के भीतर पुरातनता अनुस्यूत रहती है। ऐसा परिवर्तन जीवन के लिए यथार्थ मार्ग-निर्देश करता है परन्तु यदि नूतनता के नशे में आकर परिवर्तन कर दिया गया या परिवर्तन किया ही न गया हो सामाजिक और कौटुम्बिक जीवन विषाक्त हो जाता है। उभयतः सच्चे धर्म का ह्रास होता है।

—सम्पूर्णानन्द (स्फुट विचार, पृ० ८६)

संघर्ष की भावना को प्रश्रय न देकर मनुष्य के उदात्त गुणों को जगाना ही समाज के कल्याण का मार्ग है।

—सम्पूर्णानन्द (समाजवाद, पृ० ३१२)

समाज किसी को ब्रह्मज्ञानी नहीं बना सकता परन्तु मनुष्य की भाँति रहने का अवसर दे सकता है। उसका यही धर्म है।

—सम्पूर्णानन्द (चिद्विलास)

समस्त स्वस्थ सामाजिक परिवर्तन अपने भीतर काम करने वाली आध्यात्मिक शक्तियों के व्यक्त रूप होते हैं और यदि ये बलशाली और सुव्यवस्थित हों, तो समाज अपने आपको उस तरह से ढाल लेता है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० २१६)

जब पूर्व परम्पराओं का एक अभिमान होता है, वर्तमान सुख-दुख तथा भविष्यकाल की आशा-आकांक्षा और ध्येय-दिशा एक होती है, तब वह लोकसमूह 'समाज' कहलाने लगता है।

—पु० ग० सहस्रबुद्धे (हिन्दू समाज संघटन, और विघटन, पृ० २)

समाज का अर्थ है नर और नारी। उसका अर्थ न तो केवल नर ही है और न केवल नारी ही है। दोनों के ही कुछ कर्तव्य हैं। आवश्यकता केवल यही देखने की है कि उन कर्तव्यों का सम्यक् रूप से प्रतिपालन होता है या नहीं।

—शरत्चन्द्र (नारी का मूल्य, पृ० ६७)

समाज तैयार होकर जब सत्य की सीमा लाँघता है, तब उसे हानि पहुँचानी हो पड़ती है। इस धक्के से समाज मरता नहीं, उसका मोह छूट जाता है।

—शरत्चन्द्र (चरित्रहीन, पृ० ३१८)

समाज का क्षय होना पहचानने में समय लगता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा, परिच्छेद ६५)

मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है।

—अरस्तू

जनता की कमियों की आलोचना करना आवश्यक है, ...परन्तु ऐसा करते समय हमे सच्चे हृदय से जनता का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और हृदय व प्राण से उसकी रक्षा करने व उसे शिक्षित करने के उद्देश्य से ही बोलना चाहिए।

—माओ-त्से-तुंग (अध्यक्ष माओ-त्से-तुंग की रचनाओं के उद्धरण, पृ० ५१)

The prosperity of a people is proportionate to the number of hands and minds usefully employed. To the community, sedition is a fever, corruption is a gangrene, and idleness is an atrophy.

किसी समाज की उन्नति उसके उपयोगी ढंग से नियुक्त हाथों और मस्तिष्कों की संख्या की समानुपातिक होती है। समाज के लिए राजद्रोह एक ज्वर है, भ्रष्टाचार विगलन है और अकर्मण्यता क्षयरोग है।

—जानसन

Society everywhere is in conspiracy against the manhood of every one of its members.

समाज सर्वत्र अपने ही सदस्यों में से प्रत्येक के मानवत्त्व के विरुद्ध-षड्यन्त्र-रत है।

—एमर्सन (एसेज, सेल्फ़ रिलाएंस)

Social prosperity means man happy, the citizen free, the nation great.

सामाजिक सम्पन्नता का अर्थ है कि मनुष्य सुखी हो, नागरिक स्वतन्त्र हो, राष्ट्र महान हो।

—विक्टर ह्यूगो (ले मिजरेबिल्स)

No greater spiritual injury can be done to a people than to teach them to undervalue or despise the achievements of their forefathers.

किसी समाज को अपने पूर्वजों की उपलब्धियों का कम मूल्य आँकने या उनसे घृणा करने की शिक्षा देने से बड़ा आध्यात्मिक आघात उस समाज पर नहीं किया जा सकता।

—हैवेल (इंट्रोडक्शन टू आर्यन रूल इन इंडिया, पृ० ८)

Historians generally illustrate rather than correct the ideas of the Communities within which they live and work.

इतिहासकार जिन समाजों में रहते व काम करते हैं, उनके विचारों को संशोधित नहीं केवल प्रदर्शित करते हैं।

—आर्नोल्ड टायनबी

As long as men are men, a poor society cannot be too poor to find a right order of life nor a rich society too rich to have need to seek it.

जब तक मनुष्य मनुष्य है तब तक कोई भी निर्धन समाज इतना निर्धन नहीं हो सकता कि वह जीवन की ठीक विधि न खोज सके और न कोई धनी वर्ग इतना धनी हो सकता है कि उसे खोजने की आवश्यकता न हो।

—आर० एन० टानी

समाज-धर्म

हम प्रतिदान भी नही चाहते और प्रत्युपकार की भी आशा नहीं करते, ऐसा जो उपकार होता है, उसे हम समाज-धर्म कहते है। वह सामाजिक मूल्य बन जाता है।

—दादा धर्माधिकारी (सर्वोदय दर्शन, पृ० २७६)

समाज-पुरुष

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

ब्राह्मण इसका मुख है। क्षत्रिय इसके दोनों बाहू हैं। वैश्य इसकी जांघें हैं। और पैरों के भाग से शूद्र बना।

—ऋग्वेद (१०।६०।१२)

समाज-भक्ति

जो है नहीं, उसे मैं नहीं मानता। भगवान नही हैं, देवी-देवता भी झूठी कल्पना हैं। परन्तु जो हैं, उन्हें तो अस्वीकार नहीं करता। समाज पर मैं श्रद्धा करता हूं, मनुष्य की मैं पूजा करता हूं। जानता हूँ कि मनुष्य की पूजा करना ही मनुष्य जन्म की सार्थकता है। जबकि हिन्दू के घर में पैदा हुआ हूँ, तब हिन्दू समाज की रक्षा करना मेरा काम है।

—शरत्चन्द्र (गृहदाह, पृ० ६)

समाज-रचना

राष्ट्र का भीतरी संव्यूहन ऐसा होना चाहिए जिसमें प्रत्येक मनुष्य को धर्माविरुद्ध अर्थ और काम निर्बाध प्राप्त हो सके। यह तभी हो सकता है जब समाज का संगठन धर्ममूलक हो।

—सम्पूर्णानन्द (चिद्विलास)

When society requires to be re-built, there is no use in attempting to rebuild it on the old plan.

जब समाज की पुनः रचना वांछनीय हो, तब उसे पुरानी योजना के आधार पर ही पुनः निर्मित करने के प्रयत्न का कोई उपयोग नहीं है।

— मिल (डिसर्टेशंस ऐंड डिस्कशंस, एसे आन कालरिज, पृ० ४२३)

समाजवाद

समाजवाद कोई यूरोपीय विचार नही है, यह मूलतः एशियाई और विशेषत. भारतीय विचार है।...वह मानव को अपने उच्चतर स्व का अबाधित विकास करने के लिए, अवकाश व शांति प्रदान करने के लिए, समाज की आर्थिक समस्या का स्थायी समाधान करने के लिए, पुराना एशियाई प्रयास मात्र है।

— अरविन्द ('कॉस्ट एंड डेमोक्रेसी' निबंध)

हमारी सब बुराइयों का एक ही इलाज है और वह है 'समाजवाद'। इसलिए हमारा ध्येय समाजवाद होना चाहिए।

—जवाहरलाल नेहरू (झांसी में भाषण, २७ अक्तूबर १९२९)

समाजवाद विषय के व्यवहार का एक अजीब ढंग यह है कि इस शब्द को, जिसका कि अंग्रेजी भाषा में एक निश्चित अर्थ है, एक बिल्कुल ही दूसरा अर्थ दिया जाए। यदि लोग शब्दों को अपने-अपने अलग अर्थ देने लगें तो विचारों के आदान-प्रदान में मदद नही मिलती।

—जवाहरलाल नेहरू (महात्मा गांधी को पत्र, १३ अगस्त १९३४)

समाजवाद गरीब को अमीर बनाना चाहता है, ईसा अमीर को ग़रीब बनाना चाहते थे। समाजवाद को अमीरों से द्वेष है, ईसा को उन पर तरस आता था।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (साहित्यमुखी, पृ० १२)

भारतीय समाजवाद कर्तव्य की साधना में है और यूरोपीय समाजवाद अधिकारों के संघर्ष में। भारतीय समाजवाद सुख और शान्ति की ओर अग्रसर होता है तथा यूरोपीय समाजवाद संघर्ष एवं रक्तपात की ओर।

—रत्नाकर शास्त्री (भारत के प्राणाचार्य, पृ० ४०)

What is Socialism? There are a hundred definitions of Socialism and a thousand sects of Socialists. Essentially Socialism is no more and no less than a criticism of the idea of property in the light of the public good.

समाजवाद क्या है? समाजवाद की सैकड़ों परिभाषाएं हैं और समाजवादियों के हज़ारों वर्ग हैं। तत्त्वतः समाजवाद तो सम्पत्ति के विचार की लोकहित की दृष्टि से आलोचना से न कम है, न अधिक।

—हर्बर्ट जार्ज वेल्स (ए शार्ट हिस्ट्री आफ़ दि वर्ल्ड, अध्याय ५९)

समाज-व्यवस्था

अपना-अपना कर्म करें सब धर्म-निरत हों प्रानी।
कोई भाग न ले औरों का सभी न्याय के ध्यानी।
गला न काटा जाय किसी का पेट न छाँटा जाये।
जिसको जन्म दिया प्रभुवर ने वह जीने भी पाये।

—गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' (तारकवध, पृ० ५५२)

समाज-सुधार

हर सुधार का कुछ न कुछ विरोध अनिवार्य है। परन्तु विरोध और आन्दोलन, एक सीमा तक, समाज में स्वास्थ्य के लक्षण होते हैं।

—महात्मा गांधी (अस्पृश्यता पर वक्तव्य, १६-११-१९३२)

समाज-सेवा

दे० 'सेवा' भी।

यदि हमारे चारों ओर का जनसमूह कष्टग्रस्त है, पतित है, अवनत है, तो ईश्वर का अन्वेषक अपने भाइयों की दशा की उपेक्षा कैसे कर सकता है?

—अरविन्द ('स्वराज' निबंध)

समाज की सेवा में भगवत्-पूजा का भाव चाहिए और सच्ची भगवत्-पूजा जीवन में प्राप्त श्रेष्ठतम भोग-पदार्थों को भगवान की सेवा के निमित्त प्रगाढ़ श्रद्धायुक्त अन्तःकरण से समर्पित कर देने में ही है।

—माधव स० गोलवलकर (विचार-दर्शन, पृ० ४)

समाधि

तत्त्वाववोध एवासौ वासनातृणपावकः।
प्रोक्तः समाधिशब्देन ननु तूष्णीमवस्थितिः॥

वासना रूपी तृण को जलाने वाला अग्नि यह आत्मज्ञान ही है। इसे ही 'समाधि' शब्द से कहते हैं। चुपचाप बैठे रहना समाधि नहीं है।

—महोपनिषद (४।१२)

स्वयमुच्चलिते देहे देही नित्यसमाधिना।
निश्चलं तं विजानीयात् समाधिरभिधीयते।

शरीर के इधर-उधर चलने पर भी देही (जीवात्मा) जब निश्चल (स्वरूप में स्थित) रहता है, तब उसे समाधि कहा जाता है।

—सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद् (द्वितीय खण्ड)

यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परं पदम्।
तत्र तत्र परं ब्रह्म सर्वत्र समवस्थितम्॥

मन[1] जहां जहां जाता है, वहां वहां परम पद की प्राप्ति होती है। उसके लिए सर्वत्र परब्रह्म ही स्थित होता है।

—सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद् (द्वितीय खण्ड)

अन्तः शून्यो वहिः शून्यः कुंभ इवाम्बरे।
अन्तःपूर्णो वहिः पूर्णः कुंभ इवार्णवे॥

समाधिस्थ योगी का अन्तःकरण शून्य होता है और वाह्य भी शून्य होता है जैसे आकाश में स्थित घट भीतर और वाहर शून्य होता है। समाधिस्थ योगी का अन्तःकरण उसी प्रकार अन्तःपूर्ण होता है और वहि.पूर्ण भी होता है जैसे समुद्र में स्थित घट।

—स्वात्मारामयोगीन्द्र (हठयोगप्रदीपिका, ४।५६)

हृदयकुहरमध्ये केवलं ब्रह्ममात्रं
ह्यहमहमिति साक्षादात्मरूपेण भाति।
हृदि विश मनसा स्वं चिन्वता मंजता वा
पवनचलनरोधादात्मनिष्ठो भव त्वम्॥

1. समाधिस्थ साधक का मन।

हृदयगुफा के मध्य में ब्रह्म ही 'मैं' में ऐसे आत्मविश्वास के रूप में प्रकाशमान हो रहा हूं। स्वयं को मन के द्वारा खोजते हुए उसमें प्रवेश करो अथवा वायु की गति को रोक कर आत्मनिष्ठ हो जाओ।

—श्री रमणगीता (२।२)

न समाधिपरो अत्थि अस्मिं लोके परह्मि च,
न परं नापि अत्तानं विहिंसति समाहितो॥

इस लोक तथा परलोक में समाधि से वढ़कर सुख नहीं है। एकाग्रचित न अपने को दुख देता है, न दूसरे को।

[पालि] —जातक (सीलवीमंस जातक)

हद छांड़ि वेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुनि जन महल न पावई, तहां किया विश्राम॥

—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० १३)

तपनि गई सीतल भया, जब सुन्नि[1] किया असनान[2]।

—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० १६)

अकासे मुखि औंधा कुवां, पाताले पनिहारि।
ताका पांणी को हंसा पीवैं, विरला आदि विचारि॥

—कवीर (कवीर ग्रन्थावली, पृ० १६)

दुनिया के सब धर्मग्रन्थों में वेद ही यह घोषणा करते हैं कि वेदाध्ययन गौण है। सच्चा अध्ययन तो वह है 'जिससे अक्षर ब्रह्म प्राप्त हो। और वह न पढ़ना है, न विश्वास है, वरन् अतिचेतन ज्ञान अथवा समाधि है।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, भाग १०, पृ० २१५)

समानता

दे० 'समत्व' भी।

असंबाधं वध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः
प्रवतः समं बहु।

हमारी मातृभूमि में रहने वालों में ऊँच-नीच की असमानता नही है, समता वहुत है।

—अथर्ववेद (१२।१।२)

1. शून्य। 2. स्नान।

एक ही खाक घड़े सब, भांडे, एक ही सिरजनहारा।
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १०५)

एक बूंद एकै मूल मूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जोति थैं सब उतपनां, कौन बाम्हन कौन सूदा ।।
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १०६)

आप सब आदमियों को बराबर नहीं कर सकते, लेकिन हम सबको कम-से-कम समान अवसर तो दे सकते हैं।
—जवाहरलाल नेहरू (जवाहरलाल नेहरू के भाषण, प्रथम खंड, १०३)

किसी को भी अपने से नीचा या ऊँचा मानने में पाप है। हम सब समान हैं। छुआछूत पाप की होती है, मनुष्य की कभी नहीं होती। जो सेवा करना चाहते हैं उनके लिए ऊँच-नीच होता ही नहीं। ऊँच-नीच की मान्यता हिन्दू धर्म पर कलंक है। उसे हमें मिटा देना चाहिए।
—महात्मा गांधी (एक लड़की को पत्र, १४-८-१९३८)

सब घर मटियाले चूल्हे।
—हिंदी लोकोक्ति

हमाम में सब नंगे।
—हिंदी लोकोक्ति

आदर्श याहार महा साम्य नीति नाहिं भेदज्ञान,
मानव-शिशुर यहिं नाहिं जाति द्वेष अपमान,
कबीर, नानक, बुद्ध, चैतन्य, शंकर
कले यहिं समावेश सकळ धर्मर,
लेखिले ए पाषाणर गते
सकल ये समान जगते"
सबु वड़ सान
दीन धनवान
नतमुण्ड
एथिरुण्ड।

महान साम्य-नीति ही जिसका आदर्श है, जहां भेदभाव का ज्ञान नहीं है, मानव-शिशु का जहां अपमान नहीं होता और जहां जातिगत द्वेष भी नहीं है, जिसने बुद्ध, शंकर, कबीर, नानक, चैतन्य—इन सभी के धर्म का समावेश किया है, उसी पाषाण अर्थात् मंदिर के शरीर पर लिखित है—"इस संसार में सभी समान हैं।" क्या बड़े, क्या छोटे, सभी यहां नतमस्तक खड़े हैं।
[उड़िया] —कालिन्दीचरण पाणिग्रही ('पुरी मन्दिर' कविता)

The men of culture are the true apostles of equality.

सुसंस्कृत मनुष्य ही समानता के सच्चे प्रचारक हैं।
—मैथ्यू आर्नोल्ड (कल्चर एंड अनार्की, भूमिका, पृ० ४९)

समाप्ति

दे० 'अंत'।

समीक्षक

कर्णामृतं सूक्तिरसं विमुच्य दोषे प्रयत्नः सुमहान् खलानाम्।
निरीक्षते केलिवनं प्रविश्य क्रमेलकः कंटकजालमेव ।।

कर्णामृत सदृश सूक्तिरस को छोड़कर, उसमें दोष निकालने में ही दुष्टों का भारी प्रयत्न रहता है। क्रीड़ा-उद्यान में प्रवेश करके ऊँट केवल कांटों पर ही दृष्टि डालता है।
—बिल्हण (विक्रमांकदेवचरित, १।२९)

क्व दोषोऽत्र मया लभ्य इति संचिन्त्य चेतसा।
खलः काव्येषु साधूनां श्रवणाय प्रवर्तते ।।

इस कविता में मुझे दोष कहां प्राप्त होगा, ऐसा मन में निश्चय करके ही दुष्ट व्यक्ति सज्जनों के काव्य के श्रवण में प्रवृत्त होता है।
—अज्ञात

ख्यातिं गमयति सुजनः सुकविर्विदधाति केवलं काव्यम्।

सुकवि तो काव्य की रचना मात्र करता है, उसे प्रसिद्धि तो सुजन द्वारा मिलती है।
—भदन्त रविगुप्त (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १५४)

व्याख्यातुमेव केचित् कुशलाः शास्त्रं प्रयोक्तुमलमन्ये ।
उपनामयति करोऽन्नरसांस्तु जिह्वैव जानाति ॥

कुछ लोग काव्य की व्याख्या करने में ही कुशल होते हैं, दूसरे उसका समुचित प्रयोग करने में भी समर्थ होते हैं। हाथ अन्न को मुख तक पहुँचा देता है किन्तु उसके रस को जिह्वा ही जानती है।

—भदन्त रविगुप्त (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, १५५)

सभी चीज़ों के सभी आलोचक हैं। समझते हैं कि शब्दों के अर्थ जब समझ में आ रहे हैं तो सब कुछ समझ रहे हैं।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ५४)

You know who the critics are? The men who have failed in literature and art.

क्या तुम जानते हो आलोचक कौन होते हैं? वे लोग जो साहित्य और कला में असफल हो गये हैं।

—डिज़रायली (लोथायर, अध्याय ३५)

The severest critics are always those who have either never attempted, or who have failed in original composition.

कठोरतम आलोचक सदैव वे ही होते हैं, जिन्होंने मौलिक रचना के लिए या तो कभी प्रयास ही नहीं किया या उसमें असफल रहे।

—हैज़लिट

Reviewers are usually people who would have been poets, historians, biographers etc. if they could, they have tried their talents at one or at the other and have failed; therefore they turn critics.

समालोचक प्रायः ऐसे लोग होते हैं जो यदि बन सकते तो स्वयं कवि, इतिहासकार, या जीवनचरित लेखक बन गये होते; उन्होंने एक-दो क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा को परखा था लेकिन असफल रहे। इसीलिए वे समालोचक बन जाते हैं।

—कालरिज (लेक्चर्स आन शेक्सपियर एंड मिल्टन)

Critics are sentinels in the grand army of letters, stationed at the corners of newspapers and reviews, to challenge every new author.

समालोचक साहित्य की भव्य सेना में प्रहरी हैं जो हर नये लेखक को चुनौती देने के लिए समाचारपत्रों और पत्रिकाओं के कोनों पर बैठे हैं।

—लांगफ़ेलो

समीक्षा

दे० 'समीक्षक' भी।

न शब्द ब्रह्मोत्थं परिमलमनाघ्राय च जनः।
कवीनां गम्भीरे वचसि गुणदोषौ रचयतु ॥

लोग शब्दब्रह्म से उठने वाले परिमल को सूंघे विना कवियों के गम्भीर वचनों में गुण-दोष का विवेचन न करें।

—मुरारि (अनर्घराघव, ७।५१)

परकाव्यदूषणवैमुख्यमनभिहितस्य अभिहितस्य तु यथार्थमभिधानम्।

विना पूछे दूसरे की रचना में दोष प्रदर्शन न करना चाहिए और पूछने पर वास्तविक एवं समुचित आलोचना करनी चाहिए।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, प्रथम अधिकरण, अध्याय १०)

निधौ रसानां निलये गुणाना-
मलंकृती नामुदतावगाधे।
काव्ये कवीन्द्रस्य नवार्थतीर्थे
या व्याचिकीर्षा मम तां नतोऽस्मि ॥

रसों के निधि, गुणों के भंडार, अलंकारों के अगाध समुद्र, अद्भुत और नवीन अर्थरत्नों के भंडार, कवीन्द्र के काव्य पर जो यह मेरी व्याचिकीर्षा[1] है, उसे मेरा नमस्कार है।

—पूर्ण सरस्वती

वस्तुतः काव्य जैसी सुकुमार वस्तु की आलोचना के लिए अपने संस्कारों के बहुत ऊपर उठने की जरूरत है, फिर वे संस्कार चाहे देश-गत हों या काल-गत।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचार-प्रवाह, पृ० ४५)

१. व्याख्या करने की इच्छा।

आसमान में निरन्तर मुक्का मारने में कम परिश्रम नहीं है और मैं निश्चित जानता हूँ कि रहस्यवादी आलोचना लिखना कुछ हँसी-खेल नहीं है। पुस्तक को छुआ तक नहीं और आलोचना ऐसी लिखी कि त्रैलोक्य विकम्पित। यह क्या कम साधना है !

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल)

जातियां जब थकती हैं, तब उनका ध्यान रचना से हट कर आलोचना पर चला जाता है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (साहित्यमुखी, पृ० १)

मुतकल्लिम रा—ता कसे ऐब न गीरद सुख़ुनश् सलाह न पिज़ीरद।

जब तक कोई बात करने वाले का दोष न बताए तब तक उसकी वाणी में सुधार नहीं होता है।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

कम उम्र में कहानी लिखना अच्छा, कविता लिखना और भी अच्छा। किन्तु समालोचना लिखने बैठना अन्याय है। चाहे उपन्यास पर हो, चाहे नारी के ऊपर हो।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ८२)

वर्तमान काल ही साहित्य का सर्वोच्च न्यायालय नहीं है।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० १२३)

I am bound by my own definition of criticism : a disinterested endeavour to learn and propagate the best that is known and thought in the world.

संसार में सर्वोत्तम ज्ञात और सर्वोत्तम चिन्तन को सीखने और प्रचारित करने का रागरहित प्रयास।

—मैथ्यू आर्नोल्ड (फ़ंक्शन्स आफ़ द क्रिटिसिज़्म ऐट दि प्रेज़ेंट टाइम)

समीपता

दूरस्थोऽपि समीपस्थो यो यस्य हृदये स्थितः।
हृदयादपि निष्क्रान्तः समीपस्थोऽपि दूरतः॥

जो जिसके हृदय में स्थित है, वह दूर होते हुए भी उसके समीप में स्थित है, हृदय से निकला हुआ व्यक्ति समीप होने पर भी दूर ही है।

—शौनकीयनीतिसार (७६)

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो, यो यस्य मनसि स्थितः।
यो यस्य हृदये नास्ति, समीपस्थोऽपि दूरतः॥

जो जिसके हृदय में विराजमान हैं, वह दूर रहता हुआ भी दूर नहीं है, परन्तु जो जिसके हृदय में नहीं है, वह समीप होता हुआ भी समीप नहीं है।

—वृद्धचाणक्य

यह प्रकृति की अनेक विधियों में से एक है कि हम प्रायः ठीक अपने से पहले वाली पीढ़ी की अपेक्षा दूरस्थ पीढ़ियों से अधिक समीपता अनुभव करते हैं।

—इगोर स्ट्राविन्सकी (कनवर्सेशन्स विध इगोर स्ट्राविन्स्की)

समूह

दे० 'भीड़'।

समृद्धि

अभ्यंजनं सुरभि सा समृद्धिर्हिरण्यं वर्चः।

तेल की मालिश, सुगंध, सोना, शरीर का तेज, ये सब समृद्धि के लक्षण हैं।

—अथर्ववेद (६।१२४।३)

अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनंद्यते।

चातक उन्हीं बादलों का स्वागत करते है, जिनमें पानी भरा होता है।

—कालिदास (रघुवंश, १७।६०)

परस्परविरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभम्।
संगतं श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम्॥

श्री (समृद्धि) और सरस्वती (ज्ञान) का परस्पर विरोधी होने के कारण एक ही स्थान पर मिलना दुर्लभ है, वे ही दोनों सज्जनों के कारण के लिए एक ही स्थान पर निवास करें।

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, ५।२४)

निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन समं समृद्धयः।

समृद्धियां पराक्रमशील मनुष्य के साथ रहती हैं, अनुत्साही मनुष्य के साथ नहीं।

—भारवि (किरातार्जुनीय, २।१५)

उदयन्नेष सविता पद्मेष्वर्पयति श्रियम्।
विभावयितुमृद्धीनां फलं सुहृदनुग्रहम्॥

उदित होता हुआ यह सूर्य कमलों को श्री प्रदान करता है। समृद्धि बढ़ने का परिणाम यह होता है कि स्वजनों का हित करने की क्षमता आ जाती है।

—अज्ञात

Prosperity is only an instrument to be used, not a deity to be worshipped.

समृद्धि उपयोगी साधनमात्र है, उपासनार्थ देवता नहीं।

—काल्विन कूलिज (भाषण, ११ जून १९२८)

समृद्धि और विपत्ति

Prosperity doth best discover vice, but adversity doth best discover virtue.

समृद्धि शक्तिभर दुर्गुणों को खोज निकालती है। परन्तु विपत्ति शक्ति भर गुणों को खोज निकालती है।

—बेकन (एसेज, आफ़ एडवर्सिटी)

Prosperity is not without many fears and distastes and adversity is not without comforts and hopes.

समृद्धि के साथ बहुत सी आशंकाएं और असुविधाएं भी हैं और विपत्ति सुखों और आशाओं से रहित नहीं होती।

—बेकन (एसेज, आफ़ एडवर्सिटी)

सम्मान

दे० 'आदर' भी।

यमप्रयतमानं तु मानयन्ति स मानितः।
न मान्यमानो मन्येत न मान्यमभिसंज्वरेत्॥

प्रयत्न न करने पर भी विद्वान लोग जिसे आदर दें, वही सम्मानित है। दूसरों से सम्मान पाकर भी अभिमान न करे और सम्माननीय पुरुष को देखकर जले नहीं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व। ४२।४१)

ये न मानित्वमिच्छन्ति मानयन्ति च ये परान्।
मान्यमानान् नमस्यन्ति दुर्गाण्यतितरन्ति ते॥

जो दूसरों से सम्मान नही चाहते, और स्वयं ही दूसरों को सम्मान देते हैं तथा सम्माननीय पुरुषों को नमस्कार करते हैं, वे दुर्लंघ्य संकटों से पार हो जाते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व। १०६।१६)

अधमा धनमिच्छन्ति धनमानौ हि मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥

अधम मनुष्य धन की इच्छा करते हैं, मध्यम मनुष्य धन और मान की इच्छा करते हैं किन्तु उत्तम मनुष्य मान की ही इच्छा करते हैं। महान व्यक्तियों का धन तो मान ही है।

—गरुडपुराण (१।११५।१२)

अधमाः कलिमिच्छन्ति सन्धिमिच्छन्ति मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति, मानो हि महतां धनम्॥
मानो ह मूलमर्थस्य माने म्लाने धनेन किम्।
प्रभ्रष्टमानदर्पस्य, किं धनेन किमायुषा॥

तुच्छ मनुष्य कलह पसंद करते हैं, मध्यम श्रेणी के मनुष्य संधि चाहते हैं और उत्तम मनुष्य मान की इच्छा करते हैं। मान ही श्रेष्ठ पुरुषों का धन है। मान ही अर्थ का मूल है, मान के नष्ट होने पर धन किस काम का! जिसका मान-दर्प नष्ट हो गया, उसके जीवन और धन से क्या लाभ?

—गरुडपुराण

सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीति-
मुत्पादयति।

सत्कार से मिलकर सत्कार अधिक प्रेम उत्पन्न करता है।

—भास (स्वप्नवासवदत्ता, ४)

अभ्यर्चनं मे न तथा प्रणामो धर्मे यथैषा प्रतिपत्तिरेव।

मुझे प्रणाम करना मेरा वैसा सम्मान नहीं है, जैसा कि यह धर्माचरण।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १८।२२)

प्रतिवध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।

पूज्य की पूजा न करना श्रेय को रोक देता है।

—कालिदास (रघुवंश, १।७६)

सत्कारधनः खलु सज्जनः।

दूसरों का सत्कार करना ही सज्जनों की सम्पत्ति होती है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, २।१५)

मानो हि महतां धनम्।

बड़े लोगों का धन तो सम्मान ही होता है।

—शुक्रनीति (२।४२०)

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां तु विमानना।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

जहाँ अपूज्यों की पूजा होती है तथा पूज्यों का अपमान होता है, वहाँ दुर्भिक्ष, मरण तथा भय—ये तीन होते है।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, ३।२०१)

अन्तःकुटिलतां बिभ्रंच्छंखः स खलु निष्ठुरः।
हुंकरोति यदा ध्मातस् तदैव बहुगण्यताम्॥

अन्दर कुटिल रहने वाला शंख निष्ठुर होता है, जब वह सुन्दर ध्वनि करता है, तभी सम्मानित होता है।

—शाङ्‌र्गधर-पद्धति

समय दसा कुल देखि कैं, सबै करत सनमान।

—रहीम (दोहावली, २५२)

रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पिआवै मान विनु।
वरु विप देय बुलाय, मानसहित मरिबो भलो॥

—रहीम (दोहावली, २७६)

मूढ़ तहाँ ही मानिये, जहाँ न पण्डित होय।
दीपक को रवि के उदै, बात न पूछै कोय॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

मुझे याद नहीं आता कि कभी सम्मान की भूख मुझे लगी हो, किन्तु काम की भूख अवश्य है। सम्मान देने वालों से काम लेने के लिए मैं फड़फड़ाया हूँ और जिन्होंने काम नहीं दिया, उनके सम्मान से दूर भागा हूँ।

—महात्मा गांधी

ज़मीन-जायदाद चली जायेगी तो फिर पदा की जा सकेगी, घर-बार चला जायेगा तो फिर खड़ा हो जायेगा, मगर इज़्ज़त चली जायेगी तो वह फिर से नहीं आयेगी।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० २४१)

जो मनुष्य सम्मान प्राप्त करने योग्य होता है, वह हर जगह सम्मान प्राप्त कर लेता है। परन्तु अपने जन्मस्थान में सम्मान प्राप्त करना कठिन है।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ५००)

मनुष्य जितने सम्मान के लायक़ हो, उतना ही उसका सम्मान करना चाहिए, उससे अधिक नहीं करना चाहिए, नहीं तो उसके नीचे गिरने का डर रहता है।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ४४७)

मान-सम्मान किसी के देने से नहीं मिलते, अपनी-अपनी योग्यतानुसार मिलते हैं।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ०५६६)

सम्मान प्राप्त होने पर सम्मान के प्रति प्रकट की गई उदासीनता व्यक्ति के महत्त्व को बढ़ा देती है।

—मोहन राकेश (आषाढ़ का एक दिन, पृ० २८)

'जी' कहो, 'जी' कहलाओ।

—हिंदी लोकोक्ति

Mine honour is my life; both grow in one;
Take honour from me, and my life is done.

मेरा सम्मान ही मेरा जीवन है, दोनों एक साथ बढ़ते हैं। मेरा सम्मान नष्ट कर दोगे तो मेरा जीवन भी नष्ट हो जाएगा।

—शेक्सपियर (किंग रिचर्ड सेकंड, १।१)

No flowers, by request.

माँगने पर पुष्पार्पण नहीं।

—अल्फ़्रेड ऐंगर (डिक्शनरी आफ़ नेशनल बायोग्रफ़ी)

सरकार

वे मुझ पर गोली चलाते हैं, तो यही क़ानून की रक्षा है, मैं चलाता हूं तो क़त्ल की कोशिश है। सरकारें अपनी प्रजा को निहत्था कर अपने हाथ में बंदूक़ें और तोपें रखती हैं। क्या यह इस बात का प्रमाण नहीं कि शासन सदा तलवार की शक्ति और दमन से होता है ?

—यशपाल (धर्मयुद्ध)

शासन में भाग लेने से इनकार करने वाले बुद्धिमानों को बुरे लोगों की सरकार के अधीन रहने का दण्ड भोगना पड़ता है।

—प्लेटो

Great governments benefit by criticism, without which they are bound to deteriorate in self-complacency and unchecked selfwill.

महान सरकारें आलोचना से लाभान्वित होती हैं, जिसके अभाव में उनका आत्म-संतोष और निरंकुश स्वेच्छा से विकृत हो जाना स्वाभाविक है।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ('स्वराज्य' पत्र, १४ जुलाई १९५६)

The proper function of a government is to make it easy for the people to do good and difficult for them to do evil.

सरकार का उचित कार्य लोगों के लिए अच्छे कार्य कर सकना सरल बनाना और बुराई कर सकना कठिन बनाना है।

—ग्लैडस्टन

It is with government as with medicine, its only business is the choice of evils. Every law is an evil, for every law is an infraction of liberty.

औषधि के समान शासन का कार्य भी बुराइयों में से चुनाव करना मात्र है। हर क़ानून एक बुराई है, क्योंकि हर क़ानून स्वतंत्रता का अतिक्रमण है।

—जेरेमी बेन्थम (प्रिंसिपल्स आफ़ लेजिस्लेशन)

The people have lost confidence in themselves and they turn to Government, looking for a restoration of that confidence. It is the task of the Government to supply it.

लोगों का आत्मविश्वास समाप्त हो गया है और अब वे सरकार की ओर देख रहे है कि वह आत्मविश्वास पुन: प्राप्त हो। सरकार का कार्य है कि उन्हें आत्मविश्वास प्राप्त कराए।

—लार्ड बेवरब्रुक (१७ फ़रवरी १९४२ का सिंगापुर के पतन के पश्चात् प्रधानमंत्री चर्चिल को लिखित पत्र)

No Government can be long secure without a formidable opposition.

कोई भी सरकार प्रबल विपक्ष के बिना अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रह सकती।

—डिज़रायली (कनिंग्सबाई, २।१)

Misrule is better than no rule, and an ill Government, a bad Government, is better than none.

शासनहीनता की अपेक्षा कुशासन अच्छा होता है और और कोई सरकार न होने की अपेक्षा एक रुग्ण सरकार अच्छी है।

—ओलिवर क्रामवेल (संसद में भाषण, २५ जनवरी १६५८)

Government, even in its best state, is but a necessary evil; in its worst state, an intolerable one.

सरकार अपनी सर्वोत्तम स्थिति में भी निश्चय ही एक अनिवार्य बुराई है; अपनी निकृष्टतम स्थिति में तो असह्य बुराई है।

—टामस पेन (कामनसेंस)

Man is not the enemy of man, but through the medium of a false system of government.

मनुष्य मनुष्य का शत्रु नहीं है, परन्तु ग़लत शासन-पद्धति के माध्यम से वह ऐसा हो जाता है।

—टामस पेन (दि राइट्स आफ़ मैन, भाग १)

Government is a contrivance of human wisdom to provide for human wants.

सरकार, मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानव-बुद्धि का आविष्कार है।

—एडमंड वर्क (फ्रांस की क्रांति पर वक्तव्य)

सरलता

मृदुर्हि परिभूयते।

नम्र व्यक्ति का सभी तिरस्कार करते हैं।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, २१।११)

सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्।

सारी कुटिलता मृत्यु का स्थान है और सरलता परब्रह्म की प्राप्ति का स्थान है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांति पर्व। ७६।२१

सर्वत्रार्जवं शोभते।

सरलता सर्वत्र शोभित होती है।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, १०।४६ के पश्चात्)

आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः।

कुटिल मनुष्यों से सरलता का व्यवहार नीति नहीं है।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, ५।१०३)

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं, गत्वा पश्य वनस्थलीम्।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र, कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः॥

बहुत अधिक सरल भी नहीं होना चाहिए—जंगल में जाकर देखिए कि वहां जो बहुत सीधे वृक्ष होते हैं, वे कट जाते हैं और जो टेढ़े-मेढ़े होते हैं, वे उसी तरह खड़े रहते हैं।

—वृद्धचाणक्य

कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२८१।३

सूधे मन सूधे वचन सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुबर प्रेम प्रसूति॥

—तुलसीदास (दोहावली, १५२)

मिलै जो सरलहि सरल ह्वै, कुटिल न सहज बिहाइ।
सो सहेतु ज्यों वक्र गति, व्याल न बिलहिं समाइ।

—तुलसीदास (दोहावली, ३४)

नीति-चतुर प्राणी अवसर के अनुकूल काम करता है। जहां दबना चाहिए, वहां दब जाता है; जहां गरम होना चाहिए वहां गरम होता है। उसे मानापमान का हर्ष या दुःख नहीं होता। उसकी दृष्टि निरन्तर अपने लक्ष्य पर रहती है। वह अविरल गति से, अदम्य उत्साह से उसी ओर बढ़ता है, किन्तु सरल, लज्जाशील, निष्कपट आत्माएं मेघों के समान होती हैं, जो अनुकूल वायु पाकर पृथ्वी को तृप्त कर देते हैं और प्रतिकूल वायु के वेग से छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

—प्रेमचंद (रंगभूमि, परिच्छेद ४३)

सीधे का मुंह कुत्ता चाटता है।

—हिंदी लोकोक्ति

सीधी अंगुली से क्या घी निकलता है?

—हिंदी लोकोक्ति

ज़ालिम तू मेरी सादादिली पै तो रहम कर
रूठा था आप तुझसे मैं और आप मन गया।

—'क़ायम' चांदपुरी

खुर्रम दिले आँ सके मारूफ़ न शुद,
दरजुब्बा व दर्राओ दर सूफ़ न शुद,
सीमुर्ग सिफ़त बाअर्श परवाज़े कर्द,
दर कुंजे ख़राबए जहां बूफ़ न शुद।

वह हृदय प्रसन्न रहता है जो प्रसिद्ध नहीं है, और जो न बढ़िया कुर्ता पहनता है और न अच्छा कम्बल लेता है वह अच्छा करता है। वह मनुष्य सीमुर्ग पक्षी की भाँति आकाश में ऊँचा उड़ता है और इस संसार रूपी खंडहर के एकान्त का उल्लू नहीं बनता।

[फ़ारसी] —उमर खैयाम (रुबाइयात, ३६०)

अनेक तपस्या तथा साधना के फल से ही मनुष्य सरल तथा उदार बना करता है। सरल हुए विना ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। सरल विश्वासी के समीप ही वे अपना स्वरूप प्रकट किया करते हैं।

—रामकृष्ण परमहंस

यदि तुम छोटे बालकों के समान नहीं बनोगे तो स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं कर पाओगे।

—नवविधान (मत्ती। १८।३)

पावका न : सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः॥

पवित्र करने वाली सरस्वती, जो बुद्धिरूपी कोशवाली है, हमारे यज्ञ को प्रकाशित करने वाली हो।

—ऋग्वेद (१।३।१०)

तमोगुण-विनाशिनी सकल-कालमुद्द्योतिनी
धरातल-विहारिणी जडसमाजविद्वेषिणी।
कलानिधि-सहायिनी लसदलोलसौदामिनी
मदन्तरवलम्बिनी भवतु कापि कादम्बिनी॥

तमोगुण का विनाश करने वाली, समस्त कालों को प्रकाशित करने वाली, धरातल-विहारिणी, मूर्खों के समाज से द्वेष करने वाली, कलानिधि की सहायिका, सुशोभित अचंचल विद्युत् जैसी सरस्वती मेरे अन्तर में निवास करे।

—अज्ञात

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृत्ता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युत-शंकर-प्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

जो कुन्द, चन्द्रमा, तुषार तथा हार के समान धवल है, जो शुभ्र वस्त्रों से आवेष्टित है, जो वीणा के श्रेष्ठ दण्ड से मण्डित हाथ वाली है, जो पद्मासन पर आसीन है, जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि अनेकों देवताओं द्वारा सदा वन्दनीय है, वह सम्पूर्ण अज्ञानान्धकार को नष्ट करने वाली भगवती सरस्वती मेरी रक्षा करें।

—अज्ञात

वर दे, वीणावादिनी वर दे।
प्रिय स्वतन्त्र-रव अमृत-मन्त्र नव
भारत में भर दे।

—निराला (गीतिका, कविता १)

भारति, जय विजय करे
कनक-शस्य-कमलधरे!
लंका पदतल-शतदल,
गर्जितोर्मि सागरजल,
धोता शुचि चरण-युगल
स्तव कर बहु-अर्थ-भरे!

—निराला (अपरा, पृ० ११)

मानव का मन विश्व-जलधि, आत्मा सित शतदल,
विकच दलों पर अधर सुहाये सुघर चरणतल,
वीणा दो हाथों में, दो में पुस्तक-नीरज,
जादू के जीवन के शोभन स्वर जैसे स्रज।

—निराला (अपरा, पृ० १६६)

सर्वनाश

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः।
अर्द्धेन कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुःसहः॥

सर्वनाश के उपस्थित होने पर पण्डित आधे को छोड़ देता है, आधे से कार्य करता है, सर्वनाश असहनीय होता है।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, ५।४२)

सर्वश्रेष्ठ

दे० 'श्रेष्ठ मनुष्य' भी।

नास्ति गंगासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः।
नास्ति विष्णुसमं दैवं नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्॥

गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है। माता के समान कोई गुरु नहीं है। भगवान विष्णु के समान कोई देवता नहीं है। गुरु से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, प्रथम पाद, ६।५८)

नास्ति शान्तेः परो बन्धुर्नास्ति सत्यात्
परन्तपः।
नास्ति मोक्षात् परो लाभो नास्ति गंगा
समा नदी॥

शान्ति से बढ़कर कोई बन्धु नहीं है। सत्य से बढ़कर कोई तप नहीं है। मोक्ष से बढ़कर कोई लोभ नहीं है। और गंगा के समान कोई नदी नहीं है।

—नारदपुराण (पूर्व भाग, ६।५६)

इदानीं तु मया ज्ञातं त्यागान्नास्ति परं सुखम्।
नास्ति विद्या समं चक्षुर्नास्ति चक्षुः समं बलम्॥

—वराहपुराण (१५३।२८)

मैंने अब जाना कि त्याग से बड़ा सुख नहीं है, विद्या के समान नेत्र नहीं है तथा दृष्टि के समान बल नहीं है।

—वराहपुराण (१५३/२८)

उपकारः परो धर्मः परोऽर्थः कर्मनैपुणम्।
पात्रे दानं परः कामः परो मोक्षो वितृष्णता॥

उपकार करना सबसे बड़ा धर्म है, कर्मदक्षता सबसे बड़ा अर्थ है, सुपात्र को दान देना सबसे बड़ी तृप्ति है तथा वैराग्य सबसे बड़ी मुक्ति है।

—अज्ञात

मन तू ऊँची ठौर लगि, जहाँ न पहुँचै और।
तहाँ बैठि नीची लगै, ऊँची-ऊँची ठौर॥

—नागरीदास

मेरे लिए सत्य से परे कोई धर्म नहीं है, और अहिंसा से बढ़कर कोई परम कर्त्तव्य नहीं है।

—महात्मा गांधी, (गांधी सेवासंघ सम्मेलन, सावली, ३ मार्च १९३६)

Write it on your heart that everyday is the best day in the year.

इसे अपने हृदय में लिख लो कि हर दिन वर्ष का सर्वोत्तम दिन है।

—एमर्सन (सोसायटी एंड सालिट्यूड, वर्क्स एण्ड डेज़)

सर्वहारा

सर्वहारा वर्ग जनसंख्या के सभी वर्गों से भरती हो जाता है।

—मार्क्स (कम्युनिस्ट घोषणापत्र)

दर्शनशास्त्र को यथार्थ बनाए बिना सर्वहारा को समाप्त नहीं किया जा सकता।

—मार्क्स (कांट्रीब्यूशन टू दि क्रिटिक आफ़ हेगेल्स फिलासफ़ी आफ़ राइट)

सलाह

दे० 'उपदेश', 'परामर्श' भी।

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्।
अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद् यस्य नेच्छेत् पराभवम्॥

राजन्! मनुष्य को चाहिए कि वह जिसकी पराजय नहीं चाहता, उसको बिना पूछे भी अच्छी अथवा बुरी, कल्याण करने वाली या अनिष्ट करने वाली—जो भी बात हो, बता दे।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व।३४।४)

अभीश्चरति यो नित्यं मन्त्रोऽदेयः कथंचन।

जो मनुष्य अपने को बुद्धिमान मानकर निर्भय विचरता है, उसे कभी कोई सलाह नहीं देनी चाहिए क्योंकि वह दूसरे की सलाह नहीं सुनता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१३८।२११)

Advice is seldom welcome.
Those who need it most, like it least.

सलाह का कदाचित ही स्वागत होता है। जिन्हें इसकी अधिकतम आवश्यकता होती है, वे ही इसे सबसे कम पसन्द करते हैं।

—जानसन

सस्ता-महँगा

सस्ता रोए बार-बार, महँगा रोए एक बार।

—हिंदी लोकोक्ति

सहज

सहज-सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजैं हरिजी मिलैं, सहज कहीजै सोइ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ४२)

संकल्पासी धोका। सहज ते उत्तम॥

संकल्प में धोखा है, जो सहज है वही उत्तम है।

[मराठी] —तुकाराम

सहजता

जो व्यक्ति बहुत कम हंसता है, उसकी स्वाभाविक हंसी का ठहाका कितना प्यारा लगता है। जिसने अस्वाभाविक कठोरता से अपने हृदय के सभी आनन्द-द्वारों पर संयम की अर्गला चढ़ाकर रखी हो, एक बार द्वार खोलने पर ताज़ी हवा का झोंका उसे ऐसा बेसुध कर देता है कि द्वार बन्द करने का उसे फिर ध्यान ही नहीं रहता।

—शिवानी (करिए छिमा)

सहमति

मियां-बीबी राज़ी तो क्या करेगा काज़ी ?

—हिंदी लोकोक्ति

सहनशीलता

यद् यद् ब्रूयादल्पमतिस्तत्तदस्य सहेद् बुधः।

मूर्ख मनुष्य कुछ भी कह दे, विद्वान् पुरुष को वह सब सह लेना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।११४।७)

शृणुते सर्वधर्माश्च सर्वान् देवम् नमस्यति।
अनसूर्युजितक्रोधसतस्य तुष्यति केशवः॥

ईश्वर उससे सन्तुष्ट होता है जो सब धर्मों के उपदेशों को सुनता है, सभी देवताओं की उपासना करता है, जो ईर्ष्या से मुक्त है और क्रोध को जीत चुका है।

—विष्णुधर्मोत्तर पुराण (१।५८)

भया हि सेटठस्स वचो खमेथ
सारम्भहेतु पन सदिसस्स।
यो चीध हीनस्स वचो खमेथ
एतं खन्तिं उत्तमं आहु सन्तो॥

अपने से ऊँचे का (कठोर) वचन भय से सहन किया जाता है और बराबर वाले झगड़े के डर से। यह जो अपने से नीचे वाले के वचन का सहन करना है, इसे ही सन्त-पुरुष 'उत्तम शान्ति' कहते हैं।

[पालि] —जातक (सरभंग जातक)

जैसी परै सो सहि रहे, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है, सीत, घाम औ मेह॥

—रहीम (दोहावली, ६८)

ओर्चिन नीकु लोटोदवदेन्नटिकिन्।

यदि तुम में सहनशक्ति हो तो तुमको किसी बात की कमी नहीं होती है।

[तेलुगु] —आदिभट्ल नारायणदासु (वेंपु माट)

खोदने वालों का भी भार जिस प्रकार पृथ्वी सहन करती है उसी प्रकार अपने निन्दकों को सहन करना एक विशिष्ट धर्म है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १५१)

जो शान्त भाव से सहन करता है, वही गंभीर रूप से आहत होता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (प्रतिहिंसा)

सहयोग

एकचित्ते द्वयोरेव किमसाध्यं भवेदिति।

दो व्यक्तियों के एक-चित्त होने पर कोई कार्य असाध्य नहीं होता।

—सोमदेव (कथासरित्सागर)

टूट[1] न रख ओ बालके[2], सबसे मिलकर चाल।
टूटा ढोबर[3] देत हैं, गाँव गली में डाल॥

—अज्ञात

एकमेकां साहृय करूं। अवघे धरूं सुपंथ।

आपस में हम लोग एक-दूसरे की सहायता करें और सभी एक साथ सन्मार्ग पर चलें।

[मराठी] —तुकाराम

Cooperation is nothing but superficial manifestation of love.

सहयोग प्रेम की सामान्य अभिव्यक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइज़ेशन, खण्ड २, पृ० ८)

१. बिगाड़। २. बालक। ३. हांडी।

सहानुभूति

पांव न जाके फटी बिवाई,
वह क्या जाने पीर पराई !

—हिंदी लोकोक्ति

घायल की गति घायल जाने ।

—हिंदी लोकोक्ति

कौन हमदर्द किसका है जहाँ में 'अकबर'
इक उभरता है यहाँ एक के मिट जाने से ।

—अकबर इलाहाबादी

न कह किसी से कि ग़ालिब नहीं जमाने में
हरीफ़े-राज़े-मुहब्बत, मगर दरो-दीवार ।

किसी को आप बीती मत सुना क्योंकि संसार में प्रेम के रहस्य के सुनने योग्य लोग नहीं है । लोग तो दीवार और दरवाज़े के समान जड़ (सहानुभूति-शून्य) ही हैं ।

[फ़ारसी] —ग़ालिब (दीवान, ५८।१०)

हाले दरमान्दगाँ कसे दानद
कि बा हवाले ख्वेश दर मानद ।

दुःखियों की दशा वही जानता है जो अपनी परिस्थितियों से दु खी हो गया है ।

[फ़ारसी] —शेखसादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

मृत्युपर्यन्त ग़रीबों और पददलितो के लिये सहानुभूति रखो ।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत जाग्रत, पृ० २६)

मनुष्य कैसा भी अपराधी हो, भगवान उसे कितना ही दंड दे, उसके दुःख से हमें दुःखित होना चाहिए, समवेदना प्रकाशित करनी चाहिए ।

—शरत्‌चन्द्र (दत्ता, पृ० ४०)

सहानुभूति मानवता का गौरव है ।

—सैमुअल स्माइल्स (कर्तव्य, पृ० १३२)

सहानुभूति एक ऐसी विश्व-व्यापक भाषा है जिसको सब प्राणी समझते हैं ।

—जेम्स एलेन (आनन्द की पगडंडियां, पृ० ६८)

सहायता

स सुहृद् यो विपन्नार्थं दीनमभ्युपपद्यते ।
स बन्धुर्योऽपनीतेषु साहाय्यायोपकल्पते ॥

मित्र वह है जो दीन और आपत्तिग्रस्त की सहायता करता है, बंधु वह है जो पथभ्रष्ट की सहायता करता है ।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकांड, ६३।२७-२८)

अर्थं सप्रतिबन्धं प्रभुरधिगन्तुं सहायवानेव ।
दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सचक्षुरपि ॥

कठिनाइयों वाले लक्ष्य को सहायकों वाला व्यक्ति ही प्राप्त कर सकता है । नेत्रों वाला मनुष्य भी अंधेरे में बिना दीपक के कुछ नहीं देख सकता ।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, १।९)

बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति ।
संभूयांभोधिमभ्येति महानद्या नगापगा ॥

बड़े ही सहायता से छोटा भी कार्य सिद्ध कर लेता है । बड़ी नदी के साथ मिली पहाड़ी नदी भी समुद्र तक पहुँच जाती है ।

—माघ (शिशुपालवध, २।१००)

यात्याश्रितः किल समाश्रयणीयलभ्यां
निन्द्यां गतिं जगति सर्वजनार्चितां वा ।
गच्छन्त्यधस्तृणगुणः श्रितकूपयंत्रः
पुष्पाश्रयी सुरशिरोभुवि रूढिमेति ॥

जगत में आश्रित व्यक्ति, आश्रयदाता से प्राप्त निंदनीय या सर्वजन-प्रशंसित गति को प्राप्त करता है । कूपयंत्र (रहँट) का आश्रय वाली तृण की रस्सी नीचे जाती है और पुष्प का आश्रय लेकर तृण देवता के शिर पर चढ़ता है ।

—कल्हण (राजतरंगिणी, १।२८४)

प्रायः सुकृतिनामर्थे देवा यान्ति सहायताम् ।
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुंचति ॥

साधारणतः अच्छे काम करने वालों के लिए देवता भी सहायता करते है । कुपथ पर चलने वाले को भाई भी छोड़ देता है ।

—श्रीकृष्ण मिश्र (प्रबोधचन्द्रोदय)

श्रेय: सिसाधयिषवो न विना सहायं,
योग्याश्च तद् घटयितुं कुशला भवन्ति।

अपने कल्याण के साधन के इच्छुक सुयोग्य व्यक्ति भी सहायक के बिना उसे सिद्ध करने में कुशल नहीं हो पाते हैं।

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावनचम्पू, ११।१६२)

अलसस्याल्पदोषस्य निर्विद्यस्याकृतात्मनः।
प्रदानकाले भवति मातापि हि पराङ्मुखी॥

आलसी, अल्पदोषी, विद्या-हीन तथा धन-हीन की सहायता करने के समय माता भी विमुख हो जाती है।

—कामन्दकीयनीतिसार

जो गति ग्राह गजेन्द्र की, सो गति पहुँची आय।
बाजी जात बुंदेल की राखो बाजीराय॥

—छत्रसाल (बाजीराव पेशवा को नवाब मुहम्मद खां के आक्रमण के समय लिखा पत्र, संवत् १७८३)

सबहि सहायक सबल के कोऊ न निबल सहाइ।
पवन जगावत आग को दीपहि देत बुझाइ॥

—वृन्द (वृन्द सतसई, ५१)

जो मनुष्य अपनों का पालन न कर सका, वह दूसरों की किस मुंह से मदद करेगा?

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० ५)

डूबते को तिनके का सहारा।

—हिंदी लोकोक्ति

यह देखना है वक़्त पै आता है कौन काम
ऐ 'राज़' यों तो सारा जहां मेहरबान है।

—राजबहादुर वर्मा 'राज़' (राज़ोनियाज़, पृ० ४५)

साहिल[1] के तमाशाई हर डूबने वाले पर
अफ़सोस तो करते है इमदाद[2] नहीं करते।

—अज्ञात

स्याहबख़्ती[3] में कब कोई किसी का साथ देता है
कि तारीकी[4] में साया[5] भी जुदा रहता है इन्सां से।

—नासिख़

---

१. तट २. सहायता। ३. बुरा समय।
४. अन्धेरा। ५. छाया।

उपकारिकि नुपकारमु
विपरीतमु गादु सेय विवरिंपंगा
नपकारिकि नुपकारमु
नेपमेन्नक सेयु वाडु नेर्परि सुमती॥

अपने की सहायता करने वाले को सहायता देना कोई बड़ी बात नहीं है। लेकिन अपने प्रति अन्याय करने वाले को, बिना खरी खोटी सुनाए, सहायता करो तो वही सच्चा मानव कहलाता है।

[तेलुगु] —बद्देना (सुमतिशतक)

आवश्यक समय पर पहुँचायी हुई सहायता अल्प होने पर भी इस पृथ्वीलोक से बढ़कर होती है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, १०२)

हमीं संसार के ऋणी हैं, संसार हमारा ऋणी नहीं। यह तो हमारा सौभाग्य है कि हमें संसार में कुछ करने का अवसर मिलता है। ससार की सहायता करने से हम वास्तव में स्वयं अपना ही कल्याण करते हैं।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, तृतीय खण्ड, पृ० ५४)

सहिष्णता

दे० 'सहनशीलता'।

सहृदय

कवेरभिप्रायमशब्दगोचरं
स्फुरन्तमार्द्रेषु पदेषु केवलम्।
वदद्भिरंगैः कृतरोमविक्रियै-
र्जनस्य तूष्णीं भवतोऽयमंजलिः॥

शब्दों द्वारा अवाच्य, लेकिन सरस पदावली में स्फुरित होते हुए, कवि के अभिप्राय को हृदयंगम कर शब्दों द्वारा उसका वर्णन न करते हुए, उसे केवल रोमांचित अंगों द्वारा द्योतित कर मौन रह जाने वाले व्यक्ति को मेरा यह अंजलि-बद्ध प्रणाम है।

—विज्जका (वल्लभदेव कृत सुभाषितावली, १५८)

सहृदय भी थोड़े ही होते हैं। जो होते हैं वे भी थोड़ी देर के लिए ही।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (पुनर्नवा, पृ० ११६)

सांख्य और योग

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥

अज्ञानी लोग ही सांख्य और योग को अलग-अलग फल वाले कहते हैं, न कि विद्वान । इनमें से किसी एक का अच्छी प्रकार अनुष्ठान करने से मनुष्य को दोनों का फल (अर्थात परमतत्त्व, परमात्मा) प्राप्त होता है ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व।२६।४ अथवा गीता, ५।४)

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च यः पश्यति स पश्यति ॥

जो स्थान सांख्यमार्गियों को प्राप्त होता है, वह योग-मार्गियों को भी प्राप्त होता है । अतः जो मनुष्य सांख्य और योग का एकरूप देखता है, वही यथार्थ देखता है ।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।२६।५ अथवा गीता, ५।५)

नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योगसमं बलम् ।

सांख्य के समान कोई ज्ञान नही है और योग के समान कोई बल नहीं है ।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।३१६।२)

सांख्यिकी

You and I are forever at the mercy of the census-taker and the census-maker.

आप और मैं सदा के लिए जनगणना के संग्राहक तथा जनगणना के निर्माता की दया पर हैं ।

—वाल्टर लिपमैन (ए प्रिफ़ेस टू पालिटिक्स)

There are three kinds of lies—lies, damned lies and statistics.

झूठ के तीन प्रकार होते हैं—झूठ, महाझूठ तथा सांख्यिकी ।

—मार्क ट्वेन (आटोबायोग्राफ़ी)

सांस्कृतिक नेतृत्व

राज्य के यंत्र से पृथक और स्वतंत्र जाग्रत मानवान्तः-करण की अभिव्यक्ति का वह अधिष्ठान भी हो जहां मानव-मूल्य मूर्त और प्रत्यक्ष प्रतिष्ठित देखे जा सकें । ऐश्वर्यशाली राजपुरुष के समक्ष लोक-श्रद्धा से अभिषिक्त वह पुरुष प्रतिष्ठित हो जो सम्पत्ति से शून्य हो और जिसका प्रमुख प्रभुत्व करोड़ों मानव जनों की आत्मचेतना के प्रतीक-प्रतिनिधि के रूप में अनिवार्य और अमोघ हो ।

—जैनेन्द्र (समय, समस्या और सिद्धान्त, पृ० २१)

साख

लाख जाए तो जाए साख न जाए ।

—हिंदी लोकोक्ति

साझेदारी

साझे की हांडी चौराहे पे फूटे ।

—हिंदी लोकोक्ति

या मारे साझे का काम,
या मारे भादों का घाम[1] ।

—हिंदी लोकोक्ति

सात मामा का भांजा भूख ही भूख पुकारे ।

—हिंदी लोकोक्ति

भागेर ठाकुर भोग पाय ना ।

विभाजित घर में देवताओं को भोग नहीं मिलता ।

[बंगला] —लोकोक्ति

उम्मडि बेरं, उप्परि सन्यासं ।

साझे में व्यापार करेगा तो संन्यासी बनेगा[2] ।

[तेलुगु] —लोकोक्ति

सात्त्विकता

दे० 'त्रिगुण' भी ।

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥

वेदाभ्यास, तप, ज्ञान, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, धर्म-क्रियाएं और आत्मचिंता—ये सब सात्त्विक गुण के लक्षण हैं ।

—मनुस्मृति (१२।३१)

---

1. धूप । 2. भिखारी बनेगा ।

साथ

यत्र शशी प्रविशति तत्र ननु प्रविशन्त्येव रश्मयः ।

जहां चन्द्रमा प्रवेश करता है, वहां किरणें प्रवेश करेंगी ही ।

—वीणावासवदत्ता

मित्तो हवे सत्तपदेन होति
सहायो पन द्वादसकेन होति,
मासद्धमासेन च ञाति होति
तत्तुत्तरिं अत्तसमोपि होति ॥

सात पग साथ चलने से मनुष्य मित्र हो जाता है, बारह दिन साथ रहने से 'सहायक' हो जाता है, महीना-आध महीना साथ रहने से जातिबंधु भी हो जाता है ।

[पालि] —जातक (कालकण्णि जातक)

अंधा सिपाही कानी घोड़ी,
विधना ने आप मिलाई जोड़ी ।

—हिंदी लोकोक्ति

साधक

विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकांचनः समस्तभूतेषु वसन समो हि यः ।
स्थानं परं शाश्वतमव्ययं च यतिर्हि गत्वा न पुनः प्रजायते ॥

जिसकी बुद्धि अत्यन्त शुद्ध है, जो मिट्टी के ढेले और सुवर्ण में समान भाव रखता है, समस्त प्राणियों में समभाव से निवास करता है, वह यत्नशील साधक अपनी साधना पूर्ण करके उस सर्वोत्कृष्ट सनातन एवं अविनाशी पद को प्राप्त होता है, जहां पहुंच जाने पर कोई भी मनुष्य इस संसार में जन्म नहीं लेता ।

—स्कन्दपुराण (माहेश्वर खण्ड, कुमारिका खण्ड, ५५।१४१)

अहो शास्त्रमहो शास्त्रमहो गुरुरहो गुरुः ।
अहो ज्ञानमहो ज्ञानमहो सुखमहो सुखम् ॥

शास्त्र अद्भुत है । शास्त्र अद्भुत है । गुरु अद्भुत है । गुरु अद्भुत है । ज्ञान अद्भुत है । ज्ञान अद्भुत है । सुख अद्भुत है । सुख अद्भुत है ।

—विद्यारण्यस्वामी (पंचदशी, ७।२९७)

यथा दिवा तथा रत्ति, यथा रत्ति तथा दिवा ।

साधक के लिए जैसा दिन वैसी रात और जैसी रात वैसा दिन ।

[पालि] —दीघनिकाय (३।१०।३)

अतीतं नानुसोचन्ति, नप्पजप्पन्ति नागतं ।
पच्चुप्पन्नेन यापेन्ति, तेन वण्णो पसीदति ॥

बीते हुए का शोक नहीं करते । आने वाले भविष्य की चिन्ता नहीं करते । जो हैं, उसी से निर्वाह करते हैं । इसी से साधकों का चेहरा खिला रहता है ।

[पालि] —संयुत्तनिकाय (१।१।१०)

यथा ब्रह्म तथा एको, यथा देवो तथा दुवे ।
यथा गामो तथा तयो, कोलाहलं ततुत्तरिं ॥

अकेला साधक ब्रह्म के समान है, दो देवता के समान है, तीन गांव के समान हैं, इससे अधिक तो केवल कोलाहल—भीड़ है ।

[पालि] —थेर गाथा (३।२४५)

सद्धं नगरं किच्चा, तवसंवरमग्गलं ।
खन्ति निउणमागारं, तिगुत्तं दुप्प धंसगं ॥
धणु परक्कमं किच्चा, जीवं च ईरियं सया ।
धिइं च केमणं किच्चा, सच्चेण पलिमंथए ॥
तव नारायजुत्तेण, मित्तूणं कम्प कंचुयं ।
मुणी विमयसंगामो, भवाओ परिमुच्चए ॥

मुमुक्षु जीव श्रद्धा रूपी नगर में, क्षमा रूपी दुर्ग की दीवार तैयार कर, तप और संयम रूपी अर्गला से उसे अछेद्य और अभेद्य बनाता है । फिर वह पराक्रम रूपी धनुष की ईर्यासमिति रूपी डोरी बना उसे धैर्य रूपी केतन के सत्य से बांधता है । तदनन्तर वह उस धनुप पर तप रूपी बाण चढ़ा कर कर्म-कवच को भेदता है । इस तरह से कर्म-संग्राम का अंत करने वाला मुनि भव-भ्रमण से मुक्त हो जाता है ।

[प्राकृत] —कम्मसुत्तम्

अणाणाय पुट्ठा वि एगे नियट्टंति,
मंदा मोहेण पाउडा ।

मोहाच्छन्न अज्ञानी साधक संकट आने पर धर्म-शासन की अवज्ञा कर फिर संसार की ओर लौट पड़ते हैं।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।२)

इत्थ मोहे पुणो पुणो सन्ना,
नो हव्वाए नो पाराए ।

बार-बार मोहग्रस्त होने वाला साधक न इस पार रहता है, न उस पार ।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।२)

विमुत्ता हु ते जणा, जे जणा पारगामिणो,

जो साधक कामनाओं को पार कर गये हैं, वस्तुत. वे ही मुक्त पुरुष है।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।२)

विण वि लोभं निक्खम, एस अकम्मे आणति पासति ।

जिस साधक ने विना किसी लोक परलोक की कामना के निष्क्रमण किया है प्रव्रज्या ग्रहण की है, वह अकर्म होकर सव कुछ का ज्ञाता व द्रष्टा हो जाता है ।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।२)

महयं पलिगोव जाणिया, जा वि य वंदणपूयणा इहं।

साधक के लिए वंदन और पूजन एक बहुत बड़ी दलदल है।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।२।१।११)

ण दीणो ण गव्वितो ।

साधक को न कभी दीन होना चाहिए और न अभिमानी।

[प्राकृत] —आचारांगचूर्णि (१।२।२५)

चरणगुणविप्पहीणो, वुड्डइ सुवहुपि जाणंतो ।

जो साधक चरित्र के गुण से हीन है वह वहुत से शास्त्र पढ़ लेने पर भी संसार-समुद्र में डूब जाता है ।

[प्राकृत] —आचार्य भद्रवाहु (आवश्यक निर्युक्ति, ९७)

जह वालो न जंपंतो,
कज्जमकज्जं व उज्जुयं भणइ ।
तं तह आलोएज्जा,
मायामयर्वप्पमुक्को उ ॥

वालक जो भी उचित या अनुचित कार्य कर लेता है, वह सव सरल भाव से कह देता है। इसी प्रकार साधक को भी गुरुजनों के समक्ष दंभ और अभिमान रहित होकर यथार्थ आत्मलोचन करना चाहिए।

[प्राकृत] — आचार्य भद्रवाहु (ओघनिर्युक्ति, ८०१)

साहुणा सागरो इव गंभीरेण होयव्वं ।

साधु को सागर के समान गंभीर होना चाहिए ।

[प्राकृत] —दशवैकालिकचूर्णि (१)

धर्म के क्षेत्र में चार प्रकार के साधक होते हैं—गंभीर, चिंतनशील (ज्ञानयोगी), दूसरों की सहायता के लिए प्रवल कर्मशील (कर्मयोगी), साहस और निर्भीकता के साथ आत्मानुभूति प्राप्त कर लेने में अग्रसर (राज्ययोगी) तथा शान्त एवं विनम्र (भक्तियोगी)।

—विवेकानन्द (पवहारीबावा)

साधक की यही वड़ी भूल होती है कि वह भगवान का जप-स्मरण-ध्यानादि करते समय तो अपना सम्बन्ध भगवान से मानता है और व्यावहारिक क्रियाओं को करते समय अपना सम्बन्ध संसार से मानता है । इस भूल का कारण समय-समय पर होने वाली उसके उद्देश्य की भिन्नता है ।

—रामसुखदास (गीता का भक्तियोग, पृ० ६)

साधन की कमी वास्तव में कमी नहीं है, उद्देश्य में कमी ही कमी है। अतः साधक को चाहिए कि उद्देश्य में किंचित् भी कमी न आने दे। उद्देश्य पूर्ण होने पर साधन की सिद्धि स्वतः हो जायगी।

—रामसुखदास (गीता का भक्तियोग, पृ० १२३)

दरियाए फ़रावां न शवद तीरा व संग ।
आरिफ़ कि विरंजद तुनक आव'स्त हनोज ॥

महासागर पत्थर फेंकने से चंचल नहीं होता। जो साधक खिन्न हो जाय वह अभी थोड़े पानी में है।

[फ़ारसी] —शेख सादी (गुलिस्तां, दूसरा अध्याय)

बुवद फ़िक्रे निकू रा शर्त तजरीद
पसंगा लमहए अज़ बर्क़ ताईद।

ईश्वर की खोज में निकलने वालों के लिए सबसे पहले त्याग की आवश्यकता है, इसके उपरान्त उसकी सहायतारूपी बिजली की।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

वह भूलने की वृत्ति ही भूल जाता है, आलस्य करने में आलस्य करता है और दुश्चिन्तता में सावधान नहीं होता, बल्कि उसकी ओर से दुश्चिन्त हो जाता है।

—समर्थ रामदास (दासबोध)

साधन

दे० 'साध्य और साधन' भी।

स्वल्पापि दीपकणिका बहुलं नाशयेत्तमः।

दीपक का थोड़ा सा भी प्रकाश बहुत से अंधेरे को नष्ट कर देता है।

—आत्मबोधोपनिषद् (२८)

तावद् रथेन गन्तव्यं यावद् रथपथि स्थितः।
स्थाता रथपतिस्थानं रथमुत्सृज्य गच्छति॥

तब तक रथ से जाना चाहिए, जब तक रथ से चलने योग्य पथ पर स्थित हो। जब वह मार्ग पूरा हो जाता है तब उस रथ-मार्ग पर खड़े रथ को छोड़कर मनुष्य आगे चला जाता है।

—अमृतनादोपनिषद् (श्लोक ३)

कर्मभिः स्वैरवाप्तस्य जन्मनः पितरौ यथा।
राज्ञां तथाऽन्ये राजस्य प्रवृत्तावेव कारणम्॥

जिस प्रकार स्वकर्मों से प्राप्त जन्म के प्रति माता-पिता कारण होते हैं, उसी प्रकार राजाओं के राज्य-प्रवर्तन में अन्य लोग कारण होते हैं।

— कल्हण (राजतरंगिणी, ३।२४४)

सम्पूर्णस्य विलम्वते न कामः।

सम्पूर्ण साधनयुक्त के मनोरथ की सिद्धि में विलम्ब नहीं होता।

—अभिनंद (रामचरित, १४।१०८)

अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा।

अनिष्ट से यदि इष्ट सिद्धि हो भी जाए तो भी उसका परिणाम अच्छा नहीं होता।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।६)

अतृणे पतिते वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।

तिनकों से रहित स्थान पर गिरी हुई अग्नि स्वयं ही शान्त हो जाती है।

—अज्ञात

सत्यानुसारिणी लक्ष्मीः कीर्तिस्त्यागानुसारिणी।
अभ्याससारिणी विद्या बुद्धिः कर्मानुसारिणी॥

लक्ष्मी सत्य का अनुसरण करती है। कीर्ति त्याग का अनुसरण करती है। विद्या अभ्यास का अनुसरण करती है। बुद्धि कर्म का अनुसरण करती है।

—अज्ञात

जब एक द्वार बन्द होता है, तो दूसरा खुल जाता है।

— सर्वेटीज (डान क्विक्ज़ोट)

The dwarf sees farther than the giant, when he has the giant's shoulder to mount on.

बौने को जब देव के कन्धे पर चढ़ने का अवसर मिल जाता है तो वह उस देव से भी कहीं आगे देख लेता है।

— कालरिज (दि फ़्रेंड)

साधन और साध्य

दे० 'साध्य और साधन'।

साधना

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि॥

बुद्धिमान मनुष्य पहले वाक् को मन में विलीन करे, फिर मनको ज्ञानाचारूप बुद्धि में विलीन करे, ज्ञान को महान आत्मा में विलीन करे और उसको शान्त परमात्मा में विलीन करे। — कठोपनिषद् (१।३।१३)

भोगैकवासनां त्यक्त्वा त्यज त्वं भेदवासनाम्।
भावाभावौ ततस्त्यक्त्वा निर्विकल्पः सुखीभव ॥

भोगवासना का पहले त्याग करके भेद-वासना का त्याग करो। फिर भाव और अभाव दोनों का त्याग करके संकल्प-विकल्प-हीन होकर सुखी हो जाओ।

—महोपनिषद् (४।१०६)

ज्ञातं ज्ञातव्यमधुना दृष्टं दृश्यमद्भुतम्।

अब मैंने जो ज्ञातव्य था, वह जान लिया और जो अद्भुत देखना था उसे देख लिया।

—महोपनिषद् (५।५८)

अव्युत्पन्नमना यावद्भवान ज्ञाततत्परः।
गुरुशास्त्रप्रमाणैस्तु निर्णीतं तावदाचर ॥

जब तक तुम्हारे अंदर ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो जाती, जब तक तुम्हें परम पद अज्ञात है तब तक गुरु तथा शास्त्र प्रमाण के द्वारा निर्णित मार्ग का आचरण करो।

—मुक्तिकोपनिषद् (२।३०)

अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगतिरेव च ॥
वासनासपरित्यागः प्राणस्पन्दननिरोधनम्।
एतास्ता युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल ॥

चित्त को वश में करने के लिए अध्यात्मविद्या का ज्ञान सत्संगति, वासनाओं का भली भांति परित्याग तथा प्राणायाम—ये प्रबल उपाय हैं।

—मुक्तिकोपनिषद् (२।४४।४५)

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत्।

दृष्टि को ज्ञानमयी करके जगत् को ब्रह्ममय देखना चाहिए।

—तेजोबिन्दु उपनिषद् (१।२९)

क्व गतं केन वा नीतं कुत्र लीनमिदं जगत्।
अधुनैव मया दृष्टं नास्ति किं महदद्भूतम् ॥

यह जगत् जो अभी-अभी मैंने देखा था, अब नहीं है। कहां चला गया? कौन ले गया? कहां विलीन हो गया? कैसा महान आश्चर्य!

—अध्यात्मोपनिषद् (६५)

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

सहस्रों मनुष्यों में कोई ही मनुष्य परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है और उन प्रयत्न करने वाले सिद्धों में भी कोई ही मुझे (परमात्मा) को तत्त्वतः जानता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व।३१।३ अथवा गीता, ७।३)

प्रवृत्तं नोपरुन्धेत शनैरग्निमिवेन्धयेत्।
ज्ञानान्वितं तथा ज्ञानमर्कवत् सम्प्रकाशते ॥

साधन आरम्भ कर देने पर उसे बीच में न रोके। जैसे आग धीरे-धीरे तेज की जाती है, उसी प्रकार ज्ञान के साधन को धीरे-धीरे उद्दीप्त करे। ऐसा करने से ज्ञान सूर्य की तरह प्रकाशित होने लगता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व। २१५।२४)

वासनाक्षयविज्ञानमनोनाशा महामते।
समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फलदा मुने ॥

वासनाक्षय, परमात्मा का यथार्थ ज्ञान और मनोनाश—इन तीनों का एक साथ दीर्घकाल तक प्रयत्नपूर्वक अभ्यास किया जाये तो ये परमपदरूप फल देते हैं।

—योगवासिष्ठ (उपशम प्रकरण, ९२।१७)

दारुं नमयन्ति तच्छका अत्तान दमयन्ति पण्डिता।

जैसे बढ़ई लकड़ी को सीधा करते हैं वैसे ही पण्डित अपने को साधते हैं।

[पालि] —मज्झिमनिकाय (२।३६।४)

अलंकुलस्स पमाएणं।

बुद्धिमान साधक को अपनी साधना में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।४)

धम्मे हरए बम्बे सन्तितित्थे,
अणाविले अत्त पसन्नलेसे।
जहिं सिणाओ विमलो विसुद्धो
सुसीइभुओ पजहामि दोस

धर्म मेरा जलाशय है, ब्रह्मचर्यशांति तीर्थ है, आत्मा की प्रसन्नलेखा मेरा निर्मल घार है, जहां पर आत्मास्नान कर कर्ममल से मुक्त हो जाता है।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (१२।४६)

वे पर्योहि ण गम्मइ वेमुह सुई ण सिज्जए कंथा।
विण्णि ण हुंति आयाणा इंदिय सोक्खं च मोक्खं च ॥

दो मार्गों पर नहीं चला जा सकता। दो मुखों वाली सुई से कंथा नहीं सिली जा सकती। हे अज्ञानी। इंद्रिय-सुख और मोक्ष दोनों साथ-साथ नहीं प्राप्त हो सकते।
[अपभ्रंश] —मुनि रामसिंह (पाहुड दोहा, २१३)

जसु हरिणच्छी हियवडए तसु णवि बंभु वियारि।
एक्कहिं केम संमति वढ बे खंडा पडियारि ॥

जिसके हृदय में मृगनयनी सुन्दरी वास करती है, वह ब्रह्म विचार कैसे करे? एक ही म्यान में दो तलवारें कैसे रह सकती हैं?
[अपभ्रंश] —योगीन्द्र (परमप्पयासु, १।१२१)

हत्थ अहुट्ठहं देवली वालहं णा हि पवेसु।
संतु णिरंजणु तहिं बसइ णिम्मलु होइ गवेसु ॥

यह साढ़े तीन हाथ का छोटा सा शरीर रूपी मंदिर है। मूर्ख लोग इसमें प्रवेश नहीं कर सकते। इसी में निरंजन वास करता है। निर्मल होकर उसे खोजो।
[अपभ्रंश] —मुनि रामसिंह (पाहुड दोहा, ९४)

ग्यान सरीखा गुरु न मिलिया चित्त सरीखा चेला।
मन सरीखा मेलू न मिलिया तीथैं गोरख फिरै अकेला ॥
—गोरखनाथ (गोरखवानी, सबदी, १८९)

आसा का ईंधण करूं. मनसा करूं विभूति।
जोगी फेरी फिल करौं, यौ विननां कै सूति ॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० २८)

कबीर मारिग कठिन है, कोई न सकई जाय।
गए ते बहुड़े नहीं, कुशल कहे को आइ ॥
—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० ३१)

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर।
आसा त्रिष्णां नां मुई, यों कहि गया कबीर ॥
—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ३३)

सो जप जपौं जो वहुरि न जपना।
सो तप तपौं जो वहुरि न तपना।
सो गुरु करौ जो वहुरि न करना।
ऐसा मरौं जो वहुरि न मरना ॥
—रैदास

एकै साधे सब सधैं, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहिं सींचिवो, फूलहि फलहि अघाय ॥
—रहीम (दोहावली, १६)

आठ पहर चौंसठ घरी भरो पियाला प्रेम।
बुल्ला कहे विचारि कै इहै हमारो नेम ॥
—बुल्ला साहब

रस ही में रस बरसिहै, धारा कोटि अनंत।
तहँ मन निश्चल राखिये, 'दादू' सदा बसंत ॥
—दादूदयाल

बाजत अनहद बांसुरी, तिरवेनी के तीर ॥
राग छतीसों सोइ रहे, गरजत गगन गंभीर ॥
—यारी

'जगन्नाथ' जगदीस की, राहु सु अति बारीक।
पहले चलिवो कठिन है, पीछे श्रम नहिं सींक ॥
—जगन्नाथ

रहनी करनी साध की, एक राम का ध्यान।
बाहर मिलता सो मिलै, भीतर आतम ग्यान ॥
—दरिया साहब

पिया बिनु मोहि नीक न लागे गाँव ॥
चलत चलत मोरा चरन दुखा गइले,
अँखियन परि गइले धूरि ॥
अगवाँ चलत पंथ ना सूजत, पछवाँ परद ना पाँव ॥
ससरे जाऊँ त पिया न चिन्हइ, नइहर जात लजाउँ।
इहाँ मोर गाँव उहाँ मोर पाही, बीचवा अमरपुर धाम ॥
'धरमदास' विनवे कर जोरी, तहाँ ठाँव न गाँव ॥

प्रियतम के विना मुझे अपना गाँव अच्छा नहीं लगता। चलते-चलते मेरे चरण दुःख गये हैं और आँखों में धूलि पड़ गई है। आगे चलने में तो पंथ नहीं सूझता और पीछे को पाँव मुड़ नहीं पाते हैं। यदि मैं ससुराल जाती हूँ तो प्रियतम मुझे पहचानता नहीं है और नैहर जाते मुझे लज्जा घेर लेती है। यहाँ मेरा गाँव (जन्म स्थान) है और वहाँ मेरी पाही है। बीच में अमरपुर नामक धाम है। 'धरमदास' हाथ जोड़ कर विनती करते हैं और कहते हैं कि उस अमरपुर धाम में न स्थल है और न गाँव ही है। (मैं जाऊँ तो कहाँ जाऊँ?)
—धरमदास

ज्ञान को वान लगो धरनी,
जन सोवत चौंकि अचानक जागे।
छूटि गयो विषया विष बंधन,
पूरन प्रेम सुधा रस पागे।
भावत बाद बिबाद निखाद[1] न,
स्वाद जहां लगि सो सब त्यागे।
मूंदि गईं अंखिया तव तें जव तें,
हिये में कछु हेरन लागे॥

—धरनीदास (धरनीदास की बानी, पृ० २७)

वहुत दुवारे[1] सेवना, वहुत भावना कीन्ह।
धरनी मन संसय मिटी, तत्व[2] परो जव चीन्ह॥

—धरनीदास (धरनीदास की वानी, पृ० ४३)

साधना के जो तीन अवयव—कर्म, ज्ञान और भक्ति—कहे गए हैं, वे सव काल पाकर दोषग्रस्त हो सकते हैं। 'कर्म' अर्थशून्य विधि-विधानों से निकम्मा हो सकता है, 'ज्ञान' रहस्य और गुह्य की भावना से पाखण्डपूर्ण हो सकता है और भक्ति इन्द्रियभोग की वासना से कलुषित हो सकती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६७-६८)

साधक सदा वने रहना ही
चरम सिद्धि,—कहता मन,
मुक्ति सिद्धि आकांक्षा से
अव उपकृत जीवन!

—सुमित्रानंदन पंत (गीतहंस, पृ० २०)

अलभ है इष्ट, अतः अनमोल,
साधना ही जीवन का मोल।

—सुमित्रानंदन पंत (आधुनिक कवि)

होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड़ से चेतन का निशिवासर,
कवि का प्रति छवि से जीवन हर, जीवन भर;
भारती इधर है उधर सकल
जड़ जीवन के संचित कौशल;
जय, इधर ईश हैं उधर सवल माया-कर।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (अपरा, पृ० १७६)

१. द्वारे। २. तत्त्व।

खोज ही चिर प्राप्ति का वर
साधना ही सिद्धि सुन्दर

—महादेवी वर्मा (दीप-शिखा, पृ० ६८)

अपनी शान्ति के लिए तपस्या करना सवसे वड़ा स्वार्थ है। औरों की शान्ति के लिए अशांत होना ही सच्ची साधना है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (पुनर्नवा, पृ० १२२)

साधना की दो धाराएं है—अनादिकाल से। एक धारा में 'अहं' के परिणाम की चिंता है, 'अहं' के मंगल की भावना है; दूसरी धारा में 'अहं' का सर्वथा समर्पण है।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

अपनी साधना को अंतकाल तक सतत चालू रखना। जिस रास्ते पर एक वार चल पड़े, उसी पर लगातार क़दम वढ़ाते जाना। कभी चले, कभी नहीं; ऐसा करने से मंज़िल पर पहुंचने की कभी आशा नहीं हो सकती।

—विनोवा (गीता-प्रवचन, पृ० १४३)

जव तक फल न मिले, तव तक साधना जारी रखनी चाहिए।

—विनोवा (गीता-प्रवचन, पृ० १४३)

साधना कहां तक करें? जव वह अपने आप 'होने' लगे तव तक।

—विनोबा (विचारपोथी, २०२)

जिस पर तुम हो रीझते, क्या देते जदुवीर।
रोना धोना सिसकना, आहों की जागीर॥

—तुलसीराम शर्मा 'दिनेश'

साधना-काल में साधन में ही मन-प्राण-अर्पण-कार्य करो, क्योंकि उसकी चरम अवस्था का नाम ही सिद्धि है।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, भाग ३, पृ० ४५)

छन्द के वन्धनों से जिस प्रकार काव्य-कथा वंधी रहती है, उसी प्रकार अपने प्राणों में साधना द्वारा तुमको वांध रखूंगा।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (नैवेद्य, कविता ८)

साधना का लक्ष्य है एक ओर तो वासनाओं का नाश करना और दूसरी ओर सद्वृत्तियों का विकास करना। वासनाओं के नष्ट होते ही दिव्य भावों से हृदय परिपूर्ण हो जाएगा और हृदय में दिव्य भावों के प्रवेश करते ही समस्त दुर्बलतायें भाग जाएंगी।

—सुभाषचन्द्र वसु (मांडले जेल से श्री हरिचरण वागची को पत्र, १९२६ ई०)

साधना में चलते समय एक ओर देखो, पीछे फिर क्या है? भेद का अन्त है। साधना मे ही भेद है, फल में भेद कहां है?

—आनन्दमयी मां (अमर वाणी, पृ० ५८)

साधना का तात्पर्य ईश्वर को जानना मात्र नहीं है अपितु स्वयं को ईश्वर बना लेता है।

—शिवानंद (दिव्योपदेश, ४।८)

अगर है शौक़ मिलने का, तो हरदम लौ लगाता जा।
जला कर ख़ुदनुमाई को, भसम तन पर लगाता जा।।
पकड़ कर इश्क़ की झाड़ू, सफ़ा कर हिज्रए दिल को।
दुई की धूल को लेकर, मुसल्ले पर उड़ाता जा।।
मुसल्ला छोड़, तसवी तोड़, कितावें डाल पानी में।
पकड़ दस्त तू फिरश्तों का, ग़ुलाम उनका कहाता जा।।
न मर भूखा, न रख रोज़ा, न जा मस्जिद, न कर सिज्दा।
वजूका तोड़ दे कूजा, शरावे शौक़ पीता जा।।

—अज्ञात

दो ख़ुतवा बेश न वुवद राहे सालिक
अगरचे दारद ऊ चंदी महालिक।

पथिक को वहुत दूर नही चलना है। हां, उसके मार्ग में विघ्न वाधाएं अवश्य वहुत हैं।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

यके बीयो यके गोयो यके दां
वर्दी ख़त्म आदम अस्लो फ़र्रे ईमां।

एक ही को सदैव अपनी दृष्टि के सम्मुख रख, एक ही से वोल और एक ही को अपने हृदय में धारण कर। धर्म्म की सब शिक्षाओं का मूल यही है।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

दर तरीक़त हर चे पेशे सालिक आयद ख़ैरे अस्त
बर सिराते मुस्तकीम ऐ दिल कसे गुमराह नेस्त।

जो कुछ भी ईश्वर के मार्ग के पथिक पर बीत रहा है, वह सब उसकी भलाई के लिए है। हे हृदय! कोई मनुष्य सीधे मार्ग से नहीं भटकता है।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

ट्योठ मोधुर तय म्यूठ ज़हर
यस यूत च्नुख जतन बाव।
यम्य् यथ करु य कल तॅ क़हर,
सु तथ शहर वॉतिथ प्यव।।

कड़वा, मीठा है और मीठा, विष। जो जितना यत्न कर सका तथा जिसने जिसकी एकनिष्ठा से आराधना की, वह उस उद्देश्य को पाने में सफल हुआ।

[कश्मीरी] —लल्लेश्वरी (लल्लवाख)

मन पुश तॅय यछ पुशाञ्नी,
भॉवकि कुसुम लॉगिज्यस पूज़े।
शशि-रस गोड़ दिज्यस जलवॉनी,
छ्वपि मंत्र शंकर स्वात्म वुज़े।।

मन माली है और जिज्ञासा मालिन। भाव-कुसुमों से उसकी पूजा करना। शशिरस (अमृत) से उसका अभिषेक करना। मौन होकर मंत्र-जाप करने से स्वात्म रूप शंकर उद्‌बुद्ध होगा।

[कश्मीरी] —लल्लेश्वरी (लल्लवाख)

जीव साज समरे
एइ देख रणवेशे काल प्रवेशे तोर घरे।
आरोहण करि महापुण्य-रथे
भजन-साधन दुरो अश्व जुड़े ताते
दिये ज्ञान धनु के राज भक्ति ब्रह्मवाण संयोग कर रे।
आर एक युक्ति आछे सुन सुसंगति,
सब शत्रु नाशेर चाईने रथरथी
रणभूमि यदि करेन दाराराप भागीरथीर तीरे।।

हे जीव! युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। वह देखो रणवेश को धारण कर काल तुम्हारे घर के अन्दर प्रविष्ट हो रहा है। महापुण्यरूप रथ में चढ़कर, साधन-भजन नामक दो घोड़ों को उसमें जोत कर, ज्ञान-धनुष में टंकार देकर, उसमें भक्तिरूप

ब्रह्मबाण का संयोग करो। कवि दाशरथि कहते हैं कि और भी एक सुसगत युक्ति है, सुनो, यदि गंगा-तट रणभूमि बने तो समस्त शत्रुओं के नाश के लिए रथ-रथियों की कोई आवश्यकता नहीं है।

[बँगला] —दाशरथि

आय मन बड़ाते जावि,
काली कल्पतरु मूले चारि फल कुड़ाये पावि।

रे मन, घूमने चल, काली रूप कल्पतरु के नीचे धर्म, अर्थ, काम मोक्ष ये चारों फल तू पा जायेगा।

[बँगला] —रामप्रसाद

मन रे, कृषिकाज जानो ना,
ए मन मानव जमिन रइलो पतित,
आवाद करले फलतो सोना।

रे मन, तू खेती करना नहीं जानता, यह मनुष्य-शरीर रूपी भूमि पतित ऊसर पड़ी रह गयी। यदि तू इसे आबाद करता, तो सोना फलता।

[बँगला] —अज्ञात

कष्ट फले कृष्ण मिले।

कष्ट करने से कृष्ण प्राप्त होंगे।

[उड़िया] —लोकोक्ति

नाम स्मरतों ह्मणुनी आचाराल दोष।
तरी श्रवण, मनन, भक्ति पडियली वोस।।

यदि मनुष्य राम नाम स्मरण करता है परन्तु उसके आचरण सदोष हैं तो उसकी भक्ति, श्रवण व मनन वृथा हैं।

[मराठी] —एकनाथ

रात्री दिवस आम्हां युद्धाचा प्रसंग।
अंतर्बाह्य जग आणि मन।।

हमें दिन-रात युद्ध की ही धुन रहती है। एक ओर है मन और दूसरी ओर है, अंतर्बाह्य जगत्।

[मराठी] —तुकाराम

जेथे नाहीं श्रवण स्वार्थ।······
तेथे साधकें एक क्षण। क्रमूं नये सर्वथा।।

जहां श्रवण रूप स्वार्थ न सध पाये, वहां साधकों को एक क्षण भी नहीं गँवाना चाहिए।

[मराठी] —समर्थ रामदास

Man can not reach the shrine if he does not make the pilgrimage.

बिना तीर्थ यात्रा किए कोई मनुष्य तीर्थस्थान तक नहीं पहुँच सकता।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दि रिलीजन आफ़ एन आर्टिस्ट)

साधु

दे० 'संत' भी।

तन जग में मन हरि के पासा।
लोक भोग सूं सदा उदासा।।

—सहजोबाई

साध रूप हरि आप हैं, पावन परम पुरान।
मेटैं दुविधा जीव की, सब को करैं कल्यान।।

—दयाबाई

हम साधु-महात्माओं के सामने इसीलिए सिर झुकाते हैं कि उनमें त्याग का बल है।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० ५९-६०)

साध्य

दे० 'साध्य और साधन' भी।

सिद्धि सुख विस्तृत करके
सतत साध्य हित
तन्मय रहना ही श्रेयस्कर!

—सुमित्रानंदन पंत (पतझर, पृ० १६६)

साध्य और साधन

आप टिन की खान में चांदी की आशा नहीं कर सकते।

—महात्मा गांधी (हिंद स्वराज, ६६)

अशुद्ध साधनों का अशुद्ध परिणाम होता है।

—महात्मा गांधी (फ़ार पैसिफ़िस्ट, ९३)

सामंजस्य

लोक में फैली दुःख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनन्द कला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्‌भुत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचण्डता में भी गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। विरुद्धों का यही सामंजस्य कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था)

सामर्थ्य

दे० 'शक्ति' भी।

स भारः सौम्य भर्तव्यो यो नरं नावसादयेत्।
तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम्॥

हे सौम्य! पुरुष को उतना ही बोझ उठाना चाहिए, जो उसे शिथिल न कर दे। वही अन्न खाना चाहिए, जो पेट में जाकर पच जाय, रोग न पैदा करे।

—वाल्मीकि (रामायण, अरण्यकाण्ड, ५०।८१)

क इदानीं सहकारमन्तरेणातिमुक्तलतां पल्लवितां सहते।

आम छोड़कर और कौन वृक्ष पल्लवित माधवी लता को सहारा दे सकता है?

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ३।१० के पश्चात्)

न पादपोन्मूलनशक्तिरंहः
शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य।

वायु का जो वेग वृक्षों को जड़ से उखाड़ देने की शक्ति रखता है, वह पर्वत का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

—कालिदास (रघुवंश, २।३४)

सान्निध्यमेव हि मणेस्तमसोऽपहत्यै।

मणि का सान्निध्य ही अन्धकार को दूर करने में समर्थ होता है।

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावनचम्पू, ११।८७)

गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणो
बली बलं वेत्ति न वेत्ति निर्बलः।
पिको वसन्तस्य गुणं न वायसः
करी च सिंहस्य बलं न मूषकः॥

गुणी ही गुण जानता है, निर्गुणी नहीं। बलवान ही बल जानता है, निर्बल नहीं। कोयल ही वसन्त के गुण जानती है, कौआ नहीं। हाथी ही सिंह का बल जानता है, चूहा नहीं।

—अज्ञात

का नहिं पावक जरि सकै, का न समुद्र समाय।
का न करै अबला प्रबल, किहिं जग काल न खाय॥

—जोधराज (हम्मीर रासो, पृ० ५४)

तेतेहि माने अनल पजारहअ
जेहे निमाइउर पानी।

उतने ही परिणाम में आग प्रज्वलित करनी चाहिए जितनी कि पानी से बुझाई जा सके।

—विद्यापति (विद्यापति पदावली)

अपनी पहुँच बिचारिकै, करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये, जेती लांबी सौर॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

जितनी चादर देखिए, उतने पैर पसारिए।

—हिंदी लोकोक्ति

साम्यवाद

साम्यवादियों का सिद्धान्त इस एक वाक्य में सूत्रबद्ध किया जा सकता है—निजी सम्पत्ति का अन्त।

— मार्क्स (कम्युनिस्ट घोषणापत्र)

साम्यवाद की यात्रा ही नास्तिकवाद से भी प्रारंभ होती है।

—मार्क्स (१८४४ की पांडुलिपियां)

साम्यवाद इतिहास की सुलझी पहेली है और साम्यवाद को पता भी है कि वही यह हल है।

—मार्क्स (१८४४ की पांडुलिपियां)

साम्यवादी

कम्युनिस्ट ग्रुप से अशफ़ाक़ की गुज़ारिश है कि तुम इस गैरमुल्क की तहरीक को लेकर जब हिन्दुस्तान में आये हो तो तुम अपने को ग़ैर मुल्की ही तसव्वुर[1] करते हो, देसी चीजों से नफ़रत, विदेशी पोशाक और तर्ज़े-मआशरत[2] के दिलदादा[4] हो, इससे काम नहीं चलेगा। अपने असली रंग में आ जाओ। देश के लिए मरो, देश के लिए जिओ। मैं तुमसे काफ़ी तौर से मुत्तफ़िक़[5] हूं और कहूंगा कि मेरा दिल ग़रीब किसानों के लिये और दुखिया मज़दूरों के लिए हमेशा दुखी रहा है।

—अशफ़ाक़ उल्ला खां (अमर शहीद अशफ़ाक़ उल्ला खां, पृ० १०८)

अराजकवादी को एक मनुष्य की चिन्ता है और साम्य-वादी को एक प्रणाली की।

—ए० जी० गार्डनर (पिलर्स आफ़ सोसाइटी)

Every communist has a fascist frown, every fascist a communist smile.

हर साम्यवादी का फासिस्ट तेवर होता है और हर फासिस्ट की साम्यवादी मुस्कान।

—म्युरियल स्पार्क (दि गर्ल्स आफ स्लेंडर मीन्स, अध्याय ४)

सायंकाल

दे० 'संध्या'।

सारग्रहण

अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं
स्वल्पं तथाऽयुर्बहवश्च विघ्नाः।
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु
हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥

निश्चय ही शब्दशास्त्र अनन्त है, आयु थोड़ी है। उसमें भी बहुत से विघ्न हैं। अतः सारहीन को त्यागकर सार ग्रहण करना चाहिए जिस प्रकार हंस जल के बीच से दुग्ध ग्रहण कर लेते हैं।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, कथामुख)

हंस सारग्राही गहत छीर तजत सब नीर।
मंथन करि पय तक्र तजि, लह नवनीत अहीर ॥

—योगानंदाचार्य

सारपूर्ण

असारे खलुसंसारे सारमेतच्चतुष्टयम्।
काश्यां वासः सतां संगे गंगांभः शंभुपूजनम् ॥

इस असार संसार में यह चार ही सारपूर्ण है—काशी में निवास, सत्संगति, गंगाजल तथा शिवपूजन।

—नारद (शब्दकल्पद्रुम, पृ० २२ पर उद्धृत)

सार्थकता

चरन सोई जो नचत प्रेम से, कर सोई जो पूजा।
सीस सोई जो नवै साधु के, रसना और न दूजा ॥

—नामदेव

सावधान

चु कर्दी बा कुलूख अन्दाज पैकार
सरे खुद रा ब नादानी शिकस्ती।
च तीर अन्दाख्ती बर रूए दुश्मन
हिज़र कुन कांदर आमाजश निशस्ती।

ढेला फेंकने वाले से तूने लड़ाई की तो तूने स्वयं ही मूर्खता से अपने सिर को फोड़ा है। यदि तू किसी शत्रु के सिर पर तीर फेंके, तो सावधान, क्योंकि तू भी उसके निशाने पर है।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, प्रथम अध्याय)

---

१. विदेशी तरीकों को। २. समझते हो। ३. रहन-सहन का ढंग। ४. प्रेमी। ५. सहमत।

सावधानी

प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ।

साफ पैर में कीचड़ लपेटकर धोने की अपेक्षा उसे न लगने देना ही अच्छा है ।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।१८१)

उच्चारूढैर्नरैरात्मा रक्षणीयोऽतियत्नतः ।
दूरारोहपरिभ्रंश-विनिपातः सुदुःसहः ॥

ऊँचाई पर पहुंचे हुए मनुष्यों को यत्नपूर्वक आत्मा की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि दूर तक चढ़ जाने के बाद नीचे गिरना दुःसह्य होता है ।

—अज्ञात

त्याज्या दुस्तटिनी नदी ।

जिस नदी का किनारा गिरने वाला हो, वह त्याज्य होती है ।

—संस्कृत लोकोक्ति

असावधानी विनाश को बहुत शीघ्र बुलाती है । सचेत रहो, सावधान रहो, जीवन-महल के किसी भी दरवाजे से काम-क्रोध-रूपी किसी भी चोर को अन्दर न घुसने दो और सावधानी के साथ, जो पहले घुसे बैठे हों, उन्हें दृढ़ता और शूरता के साथ निकालने की प्राणपन चेष्टा करते रहो। सावधानी ही साधना है ।

—हनुमान प्रसाद पोद्दार

दूध का जला छाछ को फूंक-फूंककर पीता है ।

—हिंदी लोकोक्ति

साहस

भवति तनय सत्यं सशंयः साहसेषु ।

हे पुत्र ! साहस के कार्यों (जैसे युद्ध आदि) में निःसन्देह विजय का) संशय होता है ।

—भट्टनारायण (वेणी संहार, ५।२१)

साहसे श्री : प्रतिवसति ।

साहस में सम्पत्ति निवास करती है ।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, ४।५ के पश्चात्)

न शर्मणे शिखिनि पतंगसाहसम् ।

जलती आग में पतंगे का दुस्साहस कल्याणकारक नहीं होता ।

—अभिनंद (रामचरित, १५।३३)

दैवमेव हि साहाय्यं कुरुते सत्त्वशालिनाम् ।

साहसी व्यक्तियों की सहायता भाग्य ही करता है ।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ३।४।३११)

प्राप्यते किं यशः शुभ्रम् अनंगीकृत्य साहसम् ।

क्या साहस को स्वीकार किये बिना ही कहीं शुभ्र यश प्राप्त होता है ?

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ५।२)

दत्तच्छेदो हि नगानां श्लाघ्ये गिरिविदारणे ।

पर्वतों को उखाड़ने के फलस्वरूप यदि हाथियों के दाँत टूट जाएं तो भी वे प्रशंसा के पात्र हैं ।

—अज्ञात

हिम्मत और हौसला मुश्किल को आसान कर सकते हैं, आंधी और तूफान से बचा सकते हैं, मगर चेहरे को खिला सकना उनके सामर्थ्य से बाहर है ।

—प्रेमचन्द (गुप्तधन, भाग १, पृ० १०८)

भय की भाँति साहस भी संक्रामक होता है ।

—प्रेमचंद (कर्मभूमि, पृ० १८)

मुझे भी मौत सिर पर खड़ी दिखाई देती है । फिर अंतः-करण में निराशा की लहर जब कभी उठती है, उसी समय श्रद्धासागर में विलीन हो जाती है । मेरा जीवन आशातीत व्यतीत हुआ है, इसलिए जब तक दम में दम है, तब तक मनुष्य को बेदम नहीं होना चाहिए—यह मेरा सिद्धान्त है ।

—श्रद्धानंद (कल्याण मार्ग का पथिक, प्रस्तावना)

साहस और धैर्य ऐसे गुण है जिनकी कठिन परिस्थितियों में आ पड़ने पर बड़ी आवश्यकता होती है ।

—महात्मा गांधी (इंडियन ओपिनियन, २०-८-१९०३)

यह सच है कि पानी में तैरने वाले ही डूबते हैं, किनारे पर खड़े रहने वाले नहीं। मगर ऐसे लोग तैरना भी नहीं सीखते।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ३७५)

हारिए न हिम्मत बिसारिए न राम।

—हिंदी लोकोक्ति

ओखली में सर दिया तो मूसलों का क्या डर

—हिंदी लोकोक्ति

कफ़न बाँधे हुए सर से किनारे तेरे आ बैठे
हज़ारों तोहमतें हम पर लगा ले जिसका जी चाहे।

—रामतीर्थ

रात-दिन गर्दिश में हैं सातों आसमां,
हो रहेगा कुछ न कुछ, घबराएँ क्या ?

सातों आसमान रात-दिन गतिशील हैं। जो होना है, होगा ही, अतः क्यों घबराएं ?

—ग़ालिब (दीवान-ए-ग़ालिब, ४६।२)

घर से क्यों ख़फ़ा रहें, चर्ख़[1] का क्यों गिला करें
सारा जहां अदू[2] सही, आओ मुक़ाबला करें॥

—भगतसिंह

कमाले बुजदिली[3] है पस्त[4] होना अपनी आंखों में।

अगर थोड़ी-सी हिम्मत हो तो फिर क्या हो नहीं सकता।

—ब्रजनारायण चकबस्त

अगर मरदी बुरुं आ वा नजर कुन
हर च आयद व पेशद जां गुजर कुन।

यदि तू मनुष्य है तो मैदान में आकर देख। जो कुछ बाधाएं तेरे सम्मुख आवें, उन्हें पार कर जा।

[फ़ारसी] —शब्सतरी

हिम्मत किम्मत होए, विण हिम्मत किम्मत नहीं।
करै न आदर कोय, रद कागद ज्यूं राजिया॥

हे राजिया ! हिम्मत से ही मनुष्य की क़ीमत होती है। बिना हिम्मत के कोई क़ीमत नहीं होती। हिम्मत से रहित पुरुष का रद्दी क़ागज़ के समान कोई आदर नहीं करता।

[राजस्थानी] —कृपाराम

कारज सरै न कोय, बळ प्राक्रम हीमत बिना।
हलकार्या की होय, रंग्या स्याळां राजिया॥

बल, पराक्रम और हिम्मत के बिना कोई काम पूरा नहीं हो सकता है। हे राजिया। रंगे हुए सियारों को हिम्मत दिलाने से क्या हो सकता है ?

[राजस्थानी] —कृपाराम

साहसे कोलंबस गयो, नवी दुनियामां,
साहसे नेपोल्यन भिड्यो, यूरोप आखामां,
साहसे ल्युथर ते थयो, पोपनी सामां
साहसे स्काटे देवु रे वाळ्युं जोता मां,
साहसे सिकन्दर नाम अमर सहु जाणे।

साहस के कारण ही कोलम्बस नई दुनिया में गया। साहस के कारण ही नेपोलियन सारे यूरोप से भिड़ा। साहस के कारण ही लूथर ने पोप का विरोध किया। साहस के कारण ही स्काट ने देखते ही देखते क़र्ज चुका दिया। साहस के कारण ही सारी दुनिया में सिकन्दर का नाम अमर है, यह किसी से छिपा नहीं है।

[गुजराती] —अज्ञात (इंडियन ओपिनियन, दि० १८-५-१९०७)

हिम्मत सोडूं नये सर्व पुन्हा येईल उदयाला।

इस आशा से कि सुदिनों का कभी-न-कभी उदय होगा, साहस नहीं छोड़ना चाहिए।

[मराठी] —प्रभाकर

सब दुर्बलता और सब बंधन कल्पना है। उससे एक शब्द कह दो और वह लापता हो जायगी। निर्बल मत बनो। निस्तार का अन्य कोई मार्ग नहीं है। सन्नद्ध हो जाओ और शक्तिशाली बनो। कोई भय नहीं। कोई कुसंस्कार नहीं। सत्य जैसा है, उसका सामना करो। यदि मृत्यु आती है—वह हमारे सभी दुःखो से बढ़कर दुःख है—तो आने दो। हम चौपड़ का पांसा फेंकने के लिए कृतसंकल्प हैं। यही समग्र धर्म है, जिसे मैं जानता हूं।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, भाग ७, पृ० ३१३)

१. आकाश। २. शत्रु। ३. कायरता की पराकाष्ठा। ४. शिथिल।

हर मनुष्य के विचार उसके साहस के अनुसार होते हैं। कठिन एवं उच्च आदर्श केवल महान आत्माओं की समक्ष में आ सकता है जो बलिदान करने पर तैयार हों। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य केवल अपने हृदय को देखकर कहता है—यह काम संभव है। इसका प्रमाण नहीं दिया जा सकता।

—लाला हरदयाल

संकट में साहस का होना आधी मंज़िल तय कर लेना है।

—प्लाटस

भाग्य साहसी का साथ देता है।

—वर्जिल (एनीड, १०२८४)

जिस मनुष्य में जितना साहस होता है उसी के अनुसार उसके संकल्प भी होते हैं।

—मुतनब्बी (अरबी-काव्य-दर्शन, पृ० ११)

पराजय, मेरी पराजय, मेरी न मिटने वाली हिम्मत! मैं और तू मिलकर तूफ़ान के साथ क़हक़हे लगाएंगे।

—खलील जिब्रान (पागल, ४६)

Courage mounteth with occasion.

साहस अवसर के साथ-साथ बढ़ता है।

—शेक्सपियर (किंग जॉन, २।१)

Courage is the thing. All goes if courage goes.

साहस ही सब कुछ है। साहस गया तो सब कुछ गया।

—सर जेम्स मैथ्य बेरी (भाषण, ३ मई १९२२)

साहसी

'साहसी' शब्द और उससे अधिक 'साहसी' कर्मों की हमें आवश्यकता है।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, खण्ड ४)

जो मनुष्य भीरु है, वह छोटे-छोटे कार्यों को भी बहुत बड़े कार्य समझता है। और जो साहसी होता है वह बहुत बड़े बड़े कार्यों को भी छोटे ही छोटे कार्य समझता है।

—मुतनब्बी (अरबी-काव्य-दर्शन, पृ० ११)

He's truly valiant that can wisely suffer.
The worst that man can breathe.

वह सच्चा साहसी है जो मनुष्यों पर आने वाली भारी से भारी विपत्ति को बुद्धिमत्तापूर्वक सह सकता है।

—शेक्सपियर (टाइमन आफ़ एथेन्स, ३।५)

साहित्य

वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव।
अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता॥

परिमित स्वरों में गुंफित गान की भांति ही परिमित वर्णों में गुंफित वाङ्मय अतिशय विचित्र है।

—माघ (शिशुपालवध, २।७२)

शब्दार्थयोर्यथावत्सहभावेन विद्या साहित्यविद्या।

शब्द और अर्थ के यथावत् सहभाव को बतानेवाली विद्या साहित्य-विद्या कहलाती है।

—राजशेखर (काव्यमीमांसा, द्वितीय अध्याय)

साहित्यमनयोः शोभाशालितां प्रति काप्यसौ।
अन्यूनानतिरिक्तत्वमनोहारिण्यवस्थितिः॥

सौन्दर्य द्वारा प्रशंसा को प्राप्त करने के लिए, इन दोनों (शब्द और अर्थ) की अपकर्ष और उत्कर्ष से रहित (समान रूप से विद्यमान), रमणीय यह कोई (अलौकिक ही) अवस्थिति 'साहित्य' (कही जाती) है।

—कुन्तक (वक्रोक्तिजीवित, १।१७ कारिका)

ओजस्वी मधुरः प्रसादविशदः संस्कारशुद्धोऽभिधा—
भक्तिव्यक्तिविशिष्टरीतिरुचितैरर्थैर्धृतालंकृतिः।
वृत्तस्थः परिपाकवानविरसः सद्वृत्तिरप्राकृतः
शस्यः कस्य न सत्कविर्भुवि यथा तस्यैव
सूक्तिक्रमः॥

ओजस्वी, मधुर, प्रसादविशद (ईश की कृपा से निर्मल), संस्कार-शुद्ध, अभिधा (नाम) तथा भक्ति (ईश्वर-भक्ति) और व्यक्ति (प्रसिद्धि) से विश्रुतकीर्ति, उचित पुरुषार्थ से अर्जित ६ अर्थों (सम्पत्ति) से अलंकृत, वृत्तपरायण (सदाचारयुक्त), गंभीर, सरस तथा शुद्ध जीविका वाला सत्कवि उसी की काव्य-परिपाटी के समान किसका प्रशंसनीय नहीं

होता? अर्थात सभी का प्रशंसनीय होता है। सत्कवि का काव्य भी ओजस्वी, मधुर-विशद (प्रसाद गुण से निर्मल), संस्कार-शुद्ध (लोक, शास्त्र, काव्य आदि के परिशीलन से उत्पन्न व्युत्पत्ति द्वारा शुद्ध), अभिधा तथा भक्ति (गौण-उपचार) और व्यक्ति (व्यंजना) से विशिष्ट वैदर्भी आदि रीतियों से सम्पन्न, उचित अर्थों (वाच्य,लक्ष्य व व्यंग अर्थों) द्वारा तथा अलंकारों से अलंकृत, वृत्तपरायण (सुन्दर छन्दों में स्थित), अति प्रौढ़ व सरस व सुन्दर वृत्तियों से युक्त और अप्राकृत (प्राकृत भाषा से भिन्न) होता है।[1]

—जगद्धर भट्ट (स्तुतिकुसुमांजलि, ५।३१)

यदा प्रकृत्यैव जनस्य रागिणो
भृशं प्रदीप्तो हृदि मन्मथानलः।
तदात्र भूयः किमनर्थपण्डितैः
कुकाव्यहव्याहुतयो निवेशिताः॥

जब संसार में अपने आप ही विषय-वासना की आग भभक रही है, तब फिर न जाने ये अनर्थकारी कुकवि कुकाव्य-रूपी आहुति क्यों फेंक रहे हैं।

—अज्ञात

प्रत्येक देश का साहित्य उस देश के मनुष्यों के हृदय का आदर्श रूप है।

—बालकृष्ण भट्ट (साहित्य सुमन, पृ० १)

ज्ञान-राशि के सचित कोश ही का नाम साहित्य है।

—महावीरप्रसाद द्विवेदी (संचयन, पृ० ४८)

अपने समय में उठी हुई किसी ख़ास हवा की झोंक में प्राचीन आर्षकाव्यों के पूर्णतया निर्दिष्ट स्वरूप वाले आदर्श पात्रों को एकदम कोई नया मनमाना रूप देना भारती के पवित्र मन्दिर में व्यर्थ गड़बड़ मचाना है।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था)

जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३)

१. यहां कवि और काव्य कैसा होना चाहिए, इसका वर्णन श्लेषयुक्त पदावली में किया गया है।

मनुष्य ने जगत् में जो कुछ सत्य और सुंदर पाया है और पा रहा है, उसी को साहित्य कहते हैं।

—प्रेमचंद (मानसरोवर, भाग १, प्राक्कथन)

जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य-प्रेम न जाग्रत हो—जो हम में सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहाने का अधिकारी नहीं।

—प्रेमचंद (प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन में सभापति पद से दिया गया भाषण)

साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन बनाता है।

—प्रेमचंद (प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन में सभापति पर से दिया गया भाषण)

हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सचाइयों का प्रकाश हो—जो हममें गति और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज़्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।

—प्रेमचंद (प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन में सभापति पद से दिया गया भाषण)

इतिहास को साहित्य में प्रतिष्ठित करने के लिए घटना को जीवन से और जीवन को मनुष्य के मनोरागों से जोड़ना पड़ता है।

—महादेवी वर्मा (वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'ललित विक्रम' की भूमिका)

साहित्य मनुष्य की शक्ति-दुर्बलता, जय-पराजय, हास-अश्रु और जीवन-मृत्यु की कथा है।

—महादेवी वर्मा (सप्तपर्णा, पृ० ११)

दृष्टि का काम बाहर को देखना भी है, और भीतर को भी। जब वह बाहर को देखती है, तब रचनाओं पर समय के पैरों के निशान पड़े बिना नही रहते।

—माखनलाल चतुर्वेदी (हिमकिरीटिनी, आत्मनिवेदन)

जो साहित्य हमारी वैयक्तिक क्षुद्र संकीर्णताओं से हमें ऊपर उठा ले जाए और सामान्य मनुष्यों के साथ एक करा के अनुभव करावे, वही उपादेय है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचार प्रवाह, पृ० १४१)

साहित्य का मुख्य उद्देश्य सहज भाषा में ऊँचे विचारों और श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों को अनायास ग्राह्य बनाना है। प्रेषण-धर्मिता उसका मुख्य गुण है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचार प्रवाह, पृ० १०२)

साहित्य का लक्ष्य मनुष्यता ही है। जिस पुस्तक से यह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता, जिससे मनुष्य का अज्ञान, कुसंस्कार और अविवेक दूर नहीं होता, जिससे मनुष्य शोषण और अत्याचार के विरुद्ध सिर उठाकर खड़ा नहीं हो जाता, जिससे वह छीना-झपटी, स्वार्थपरता और हिंसा के दलदल से उबर नहीं पाता वह पुस्तक किसी काम की नहीं है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचार और वितर्क, पृ० ६२)

साहित्य सामाजिक मंगल का विधायक है। यह सत्य है कि वह व्यक्ति विशेष की प्रतिभा से ही रचित होता है, किन्तु और भी अधिक सत्य यह है कि प्रतिभा सामाजिक प्रगति की ही उपज है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचार और वितर्क, पृ० २४४)

मनुष्य को अज्ञान, मोह, कुसंस्कार और परमुखापेक्षिता से बचना ही साहित्य का वास्तविक लक्ष्य है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० ४७)

जो साहित्य मनुष्य-समाज को रोग-शोक, दारिद्र्य-अज्ञान तथा परमुखापेक्षिता से बचाकर उसमें आत्मबल का संचार करता है, वह निश्चय ही अक्षय निधि है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० १८१)

साहित्य-सेवा और पुस्तक-लेखक का परस्पर पर्याय-वाची हो जाना साहित्य के लिए बड़ा खतरनाक है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कल्पलता, पृ० १२८)

सारे मानव-समाज को सुन्दर बनाने की साधना का ही नाम साहित्य है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कल्पलता, पृ० १३८)

साहित्य की साधना निखिल विश्व के साथ एकत्व अनुभव करने की साधना है।···जो साहित्य नामधारी वस्तु लोभ और घृणा पर आधारित है वह सत्य कहलाने के योग्य नहीं।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (साहित्य-सहचर, पृ० ६)

जो साहित्य मनुष्य को उसकी समस्त आशा-आकांक्षाओं के साथ, उसकी सभी सबलताओं और दुर्बलताओं के साथ, हमारे सामने प्रत्यक्ष ले आकर खड़ा कर देता है, वही महान साहित्य है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (आलोक पर्व, पृ० ९३)

अपराध और हिंसा पश्चिमी साहित्य का आधार सदैव से है और इस देश में वह बराबर वर्जित रहा। इसीलिए समूचे संस्कृत साहित्य में अपराध की नींव पर सरस्वती का मदिर नहीं बना।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (अपराजित, भूमिका, पृ० ६)

प्रचार साहित्य का गुण नहीं, अवगुण है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (आधुनिक बोध, पृ० ९४)

मेरे सृजनात्मक साहित्य में यों व्यथा की ही अभिव्यक्ति अभी अधिक हुई है, पर वह व्यथाकाल में नहीं, जीवन से छीने सुख के दौड़ते पलों में हुई है।

—विश्वम्भर 'मानव' (लहर और चट्टान, भूमिका)

विशुद्ध कल्पना द्वारा प्रसूत साहित्य और लोकानुभव पर आश्रित साहित्य में उतना ही अन्तर है जितना खद्योत के प्रकाश और भुवनभास्कर के आलोक में।

—भोलानाथ शर्मा ('गेटे' निबन्ध)

महान साहित्य इस जीवन-जगत के घनिष्ठ सम्पर्क और गम्भीर अनुभव से ही उत्पन्न होता है।

—भोलानाथ शर्मा ('गेटे' निबन्ध)

अनुभूति की सफल साहित्यिक अभिव्यक्ति की एक शर्त उसका आडम्बर-शून्य होना है।

—भोलानाथ शर्मा ('मुरलिका' पत्रिका, १५ सितम्बर, १९५६ में लेख)

वे न तो कहानियां हैं और न साहित्य ही। केवल स्याही और क़लम की फ़िज़ूलख़र्ची और पाठकों पर अत्याचार।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ३२)

जिन्होंने संसार में सत्य की उपलब्धि की है, अपने जीवन से जिन्होंने स्नेह और प्रेम के स्वरूप का अनुभव किया है, वे अन्तराल में ही पड़े रहते हैं। दुःख की आग में जलकर जिनकी अनुभूति शुद्ध और सत् नहीं हो पाई, उन्हीं पर आजकल साहित्य-सर्जन का भार आ पड़ा है, इसलिए साहित्य आजकल इस तरह नीचे की ओर जा रहा है।

— शरत्चन्द्र (शरत्पत्रावली, पृ० ६०)

सबसे ज़िन्दा रचना वही है जिसे पढ़ने से लगे कि ग्रंथकार अपने अन्दर से सब कुछ को बाहर फूल की भांति खिला रहा है।

—शरत्चन्द्र (शरत् पत्रावली, पृ० ८१)

उसका (साहित्य का) काम है हृदय का योग कर देना, जहां योग ही अन्तिम लक्ष्य है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (रवीन्द्र साहित्य : भाग २४ : 'साहित्य का तात्पर्य' निबन्ध, पृ० ११२)

भाव के साहित्य-मात्र में ऐसी एक भाषा की सृष्टि होती है, जो कुछ कहती है और कुछ छिपाती है, जिसमें कुछ अर्थ होता है और कुछ होता है स्वर। इस भाषा को कुछ आड़ी करके, कुछ तिरछी करके, उसके साथ रूपक मिला कर, उसके अर्थ को उलट-पुलट कर, तब कहीं, वस्तु-विश्व के प्रतिघात से मनुष्य में जो एक भाव का विश्व सृष्ट होता रहता है, उसको प्रकट करना सम्भव होता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (रवीन्द्र साहित्य : भाग २४, 'साहित्य का तात्पर्य' निबन्ध, पृ० ११५)

साहित्य तो समय का फल है. ज़मीन को भी कुछ दिनों के विश्राम की जरूरत होती है, उसे अवसर दिया जाता है—तभी फ़सल अच्छी होती है।

—विमल मित्र ('गवाह नं० ३')

अविश्वसनीय संभावना की अपेक्षा विश्वसनीय असंभावना सदा वरेण्य[1] है।

—अरस्तू (पोइतिका)

१. नाटक, महाकाव्य आदि के रचियताओं के लिए।

जो भी साहित्य लिखा जाता है, उसमें मैं वही पसंद करता हूं जिसे आदमी अपने खून से लिखता है। हे साहित्यिक! तू अपनी रचनाएं एक बार ख़ून से लिख। फिर तू समझेगा कि ख़ून ही साहित्य की आत्मा है।

—नीत्शे

मुझे ऐसा साहित्य दो, जिसे एक बार पढ़ लेने पर फिर आदमी को चैन से सोना हराम हो जाय। उसके दिमाग में कांटे घुसेड़ दे। अपने उन मित्रों से कहो, जो तुम्हारे लिए साहित्य लिखते हैं कि गांव वालों के लिए भी लिखें। ऐसा दहकता हुआ सत्य लिखें जो गांव वालों को जलाए, जिससे लोग दौड़कर मरने को तैयार होकर मैदान में आगे आयें।

—मैक्सिम गोर्की (मां)

एक ही आकाश के नीचे रहने वाली सब जातियां इस विश्वसाहित्यरूपी सर्वसामान्य सम्पत्ति से सहर्ष सुखी हों।

—गेटे ('वेल्ट लिटरेचर' कविता)

A good book is the precious life-blood of a master spirit, embalmed and treasured up on purpose to a Life beyond Life.

उत्तम पुस्तक एक महान आत्मा की प्राणशक्ति होती है, जिसे उद्देश्यपूर्वक सुरक्षित करके व संजोकर जीवन से परे के जीवन के लिए रखा गया है।

—मिल्टन (एरियोपेगिटिका)

Great literature is simply language charged with meaning to the utmost possible degree.

महान साहित्य अधिकतम संभव मात्रा में अर्थ से आविष्ट भाषा मात्र है।

—एज़रा पाउंड (हाउ टू रीड)

It takes a great deal of history to produce a little literature.

तनिक सा साहित्य निर्मित करने के लिए बहुत सा इतिहास लगता है।

—हेनरी जेम्स (लाइफ आफ़ नेथेनियल हाथार्न)

Literature is the art of writing something that will be read twice; journalism what will be grasped at once.

साहित्य ऐसा कुछ लिखने जीवन की कला है जो दो बार पढ़ा जाएगा, पत्रकारिता ऐसा कुछ लिखने की कला है जो तत्काल समझ लिया जाएगा।

—साइरिल कानोली (एनेमीज आफ़ प्रामिज, अध्याय १)

In reality there is no kind of evidence or argument by which one can show that Shakeaspere, or any other writer, is good... Ultimately there is no test of literary merit except survival, which is itself an index to majority opinion.

वास्तव में इस प्रकार का कोई प्रमाण या तर्क नहीं है जिससे कोई यह सिद्ध कर सके कि शेक्सपियर या अन्य कोई लेखक 'श्रेष्ठ' है।···अन्ततोगत्वा उत्तरजीविता के अतिरिक्त साहित्यिक श्रेष्ठता की कोई कसौटी नहीं है, और उत्तरजीविता स्वयं ही बहुमत की सूचक है।

—जार्ज आरवेल (सिलेक्टिड एसेज)

साहित्य का इतिहास

जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य-परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३)

साहित्य का इतिहास पुस्तकों, उनके लेखकों और कवियों के उद्भव और विकास की कहानी नहीं है। वह वस्तुतः अनादिकाल-प्रवाह में निरन्तर प्रवहमान जीवित मानव समाज की ही विकास-कथा है। ग्रन्थ और ग्रन्थकार, सम्प्रदाय और उनके आचार्य उस परम शक्तिशाली प्राण-धारा की ओर सिर्फ इशारा भर करते है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (हमारे पुराने साहित्य के इतिहास की सामग्री)

साहित्यकार

जिन्हें धन-वैभव प्यारा है, साहित्य-मंदिर में उनके लिए स्थान नही है। यहां तो उन उपासकों की आवश्यकता है, जिन्होंने सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान लिया हो, जिनके दिल में दर्द की तड़प हो और मुहब्बत का जोश हो।

—प्रेमचंद (प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन में सभापति पद से दिया गया भाषण)

'प्रगतिशील लेखक संघ' यह नाम ही मेरे विचार से गलत है। साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। अगर वह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता।

—प्रेमचंद (प्रगतिशील लेखक संघ के लखनऊ अधिवेशन में सभापति पद से दिया गया भाषण)

सौन्दर्यस्रष्टा एवं जीवनद्रष्टा चाहे वाल्मीकि हो या गोर्की, वह सेनानायक या सेनावाहक नहीं होता, वह संदेश या युग-संकेतवाहक ही होता है।

—सुमित्रानंदन पंत (उत्तरा, भूमिका)

हम नाम-रूपधारी जन एक-एक कर मरते रहेंगे, पर मनुष्य जियेगा। जिसके शब्द की धड़कन मानवजाति के हृदय को स्पंदन देती रहेगी, वह शब्ददाता मर नहीं पाएगा। उसको अमर रखा जाएगा।

—जैनेन्द्र (इतस्ततः, पृ० १५५)

संसार की अनुभूतियां और घटनाएं साहित्यकार के लिए मिट्टी हैं, जिनसे वह प्रतिमा बनाता है।

—अज्ञेय (त्रिशंकु, पृ० ७२)

कृतिकार का उद्देश्य या लक्ष्य केवल अनुभव का सम्प्रेषण है। सहजबोध द्वारा अपनी अनुभूतियों से व्यापकता अनुभवों में प्रवेश, उन अनुभवों की पकड़ और उनका सम्प्रेषण—यही उसका लक्ष्य है। यह पूरा हो जाता है तो उसे तृप्ति होती है, यही आत्माभिव्यक्ति का सन्तोष है, यद्यपि आत्माभिव्यक्ति लक्ष्य नही था और यह पूरा हो जाता है तो समाज प्रभावित भी होता है, यद्यपि समाज को प्रभावित करना भी लक्ष्य नहीं था।

—अज्ञेय (भवन्ती, पृ० ८०)

साहित्यिक का कर्तव्य तो स्पष्ट है कि वे किसी प्रथा को कभी चिरंतन न समझें, किसी रूढ़ि को दुर्विजेय न मानें और आज की बनने वाली रूढ़ियों को भी त्रिकाल-सिद्ध सत्य न मान लें।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० ४१)

साहित्य के उपासक अपने पैर के नीचे की मिट्टी की उपेक्षा नहीं कर सकते।

—हजारी प्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० १८४)

क्या लिखने की कोई ऐसी शैली नहीं हो सकती, जिसमें लहरें भी हों, सरसता भी हो, सन्तुलन भी हो और गहराई भी?

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (ज़िन्दगी मुस्कराई)

रचनाओं को छपाकर नहीं, फाड़कर ही नया लेखक आगे बढ़ता है।

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (ज़िन्दगी मुस्कराई)

जो क़लम सरीखे टूट गये पर झुके नहीं
उनके आगे यह दुनिया शीश झुकाती है,
जो क़लम किसी क़ीमत पर बेची नहीं गई
वह तो मशाल की तरह उठाई जाती है।

—रामकृष्ण श्रीवास्तव

सच्चा साहित्य केवल एक प्रकार से सच्चा क्रांतिकारी हो सकता है—और वह प्रकार है समाज के समक्ष उसके सच्चे चित्र को व्यवस्थित कर समाज की आत्मचेतना को जगाने का प्रकार।

—भोलानाथ शर्मा ('मुरलिका' पत्रिका, १५ सितम्बर १९५६ में लेख)

साहित्य-सेवा

'साहित्य-सेवा का अधिकार सबको है', यह ठीक है; पर साहित्य-सेवा का अर्थ पुस्तक लिखना ही नहीं है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कल्पलता, पृ० १२८)

सिंह

अनुकृतगंडशैल-मद-मंडित-गंड-तट-
भ्रमदलिमंडली-निविड-गुंगुमघोसजुषः।
दलयति हेलयैव हरिरुग्रकरान्-करिणस्-
त्रिजगति तेज एव गुरु नो विकृताकृतिता॥

पर्वततुल्य, मद-मंडित तथा गुंजार करते भ्रमरों के समूह से युक्त गंडस्थलों वाले और उग्र सूंड़ों वाले हाथियों को सिंह लीलापूर्वक ही नष्ट कर देता है। त्रिलोक में तेज ही बड़ा होता है, न कि भयानक आकृति।

—भट्ट वासुदेव (वल्लभदेव कृत सुभाषितावली)

एणः क्रीडति शूकरश्च खनति द्वीपी च गर्वायते
क्रोष्टा क्रन्दति वल्गते च शशको वेगाद् रुरुर्धावति।
निःशंकः करिणेतकस्तरुलतामुन्मोटते लीलया
हं हो सिंह विना त्वयाद्य विपिने कीदृग्दशा वर्तते॥

हिरन खेल रहा है। शूकर खोद रहा है। तेंदुआ गर्व कर रहा है। सियार क्रन्दन कर रहा है। खरगोश उछल-कूदकर रहे हैं। रुरु हिरन वेगपूर्वक दौड़ रहा है। निःशंक गजबालक तरुलताओं को लीलापूर्वक तोड़ रहा है। हे सिंह! तुम्हारे बिना आज वन की कैसी दशा हो रही है!

—अज्ञात

सिंहः स्वीयशिशून् निवेश्य
हृदय सान्द्रादरादाशुत्या वेशेन
भिनत्ति संभ्रमपदं
मत्तेभकुंभस्थलम्।

सिंह अपने शिशुओं को हृदय पर रखकर आलिंगन करता हुआ उनसे प्रेमपूर्वक खेलता है, परन्तु मदमत्त हाथियों के कुंभस्थलों का आवेशपूर्वक फाड़ डालता है।[1]

— अज्ञात

---

१. यह किसी अद्वैतमत के पंडित की गर्वोक्ति का एक अंश है। पूर्वार्द्ध में कहा गया है कि हम अद्वैत दर्शन में पटु विद्यार्थियों को को भी नमस्कार करते हैं परन्तु द्वैतवादियों के सिरों पर बायां पैर रखते हैं जैसे सिंह।
अद्वैतोक्तिपटून् बटूनपि वयं बालान् नमस्कुर्महे, ये तु द्वन्द्ववशास्तदीयशिरसि वामं पदम्।

अनुदितसटावंसो नातिस्फुटाः करजांकुरा—
दशनमुकुलोद्भेदः स्तोको मुखे मृदुर्गजितम्।
मृगपतिशिशोर्नास्त्यद्यापि क्रिया स्वकुलोचिता
मदकृतमहागन्धस्यान्ध्यं व्यपोहति दन्तिनाम्॥

सिंह के बालक के कन्धों पर अभी सटाएं नहीं उगी हैं। उसके पंजे भी स्पष्ट नहीं दिखाई देते हैं। उसके मुख में कलियों के समान दांत भी थोड़े ही निकले हैं। उसकी गर्जना भी अभी कोमल है और उसकी स्वकुलोचित क्रिया भी अभी नहीं है। तथापि, वह हाथियों की मदकृत महागंध की अंधता को दूर कर देता है।

—अज्ञात

अद्यापि न स्फुरति केसरभारलक्ष्मीर्
न प्रेंखति ध्वनितमद्रगुहरन्तरेषु।
मत्तास्तथापि करिणो हरिणाधिपस्य
पश्यन्ति भीतमनसः पदवीं वनेषु॥

अभी सिंह की केसर-भार-शोभा भी दिखाई नहीं दे रही है और न उसकी गर्जना गुफाओं में गूंज रही है, फिर भी मत्त गज वन में मृगराज सिंह के पैरों के चिह्नों को भयभीत मन से देख रहे हैं।

—अज्ञात

सिक्का

That realm can not be rich whose coin is poor or base.

वह शासन कभी भी धनी नहीं हो सकता जिसका सिक्का घटिया और खोटा है।

—विलियम सेसिल (रानी द्वारा सिक्का-सुधार के अवसर पर टिप्पणी)

सिद्ध पुरुष

योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।

जो अकाम, निष्काम, आप्तकाम और आत्मकाम होता है, उसके प्राणों का उत्क्रमण नही होता, वह ब्रह्म ही ही रहकर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

—बृहदारण्यक उपनिषद् (४।४।६)

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।

योगाग्निमय शरीर को प्राप्त करने वाले साधक को न तो रोग होता है, न जरा और न मृत्यु।

—श्वेताश्वतर उपनिषद् (२।१२)

जीव सिद्ध की अविकसित दशा है और सिद्ध जीव की विकसित दशा है। इन दोनों में दशा-भेद है, अस्तित्व-भेद नहीं है।

—आचार्य तुलसी

सिद्धान्त

छोटी-छोटी बातों में ही हमारे सिद्धान्तों की परीक्षा होती है।

—महात्मा गांधी (*ऐसे थे बापू*)

सिद्धि

मंत्रे तीर्थे द्विजे दैवे दैवज्ञे भषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

मंत्र में, तीर्थ में, ब्राह्मण में, देवता में, दैवज्ञ में, औषधि में तथा गुरु में, जिसकी जैसी भावना रहती है, उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, ५।१०६)

सिद्धि का है साधन ही मोल।

—मैथिलीशरण गुप्त

एकाकिनी प्रतिज्ञा हि प्रतिज्ञातं न साधयेत्।
अकेली प्रतिज्ञा स्वीकृत वस्तु को सिद्ध नहीं करती।

—माधवाचार्य कृत सर्वदर्शनसंग्रह में न्याय दर्शन की उद्धृत उक्ति)

जिह्वा दग्धा परान्नेन करौ दग्धौ प्रतिग्रहात्।
मनो दग्धं परस्त्रीभिः कथं सिद्धिर्वरानने॥

जिसकी जिह्वा परान्न से दूषित हो, हाथ दूसरे की वस्तु ग्रहण करने से कलंकित हों, और मन परनारी के दर्शन से क्षुब्ध हो, उसे सिद्धि कैसे प्राप्त होगी?

—कुलार्णवतंत्र (१५।८४)

भवन्ति क्लेशबहुला सर्वस्यापीह सिद्धयः।
सभी के लिए सिद्धियां प्रायः कष्ट-बहुला होती हैं।
—सोमदेव (कथासरित्सागर)

सिनेमा

साहित्यिक सुरुचि पर सिनेमा ने ऐसा धावा बोल दिया है कि कुरुचि को नेतृत्व करने का संपूर्ण अवसर मिल गया है।
—जयशंकर प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १०४)

स्वाभाविक मनुष्य की बोली सुन लेने···समझ लेने के बाद तस्वीरों की बोली में कोई रस नहीं रह जाता।
—लक्ष्मीनारायण मिश्र (राजयोग, अंक १)

सिनेमा में मुल्क की बरबादी है, सिनेमा से हम इन्द्रिय-सेवी बनते हैं, सिनेमा से हमारा आदर्श फीका होता है, सिनेमा ने प्रेम को शरीर की वस्तु बना दिया है।
—जैनेन्द्र कुमार (सुनीता, पृ० २२७)

सिरदर्द

आँत भारी तो माथ भारी।
—हिंदी लोकोक्ति

सीख

दे० 'शिक्षा'।

सीता

दे० 'सीता-सौन्दर्य' भी।

सद्गुण, औदार्य, धैर्य, पातिव्रत, सदयता, नैसर्गिक गंभीरता और दिव्य सुन्दरता आदि समस्त दिव्य गुणों को जिस एक नाम से सम्बोधित किया जा सकता है, वह नाम है—श्री सीता माता का।
—स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर (सावरकर विदार दर्शन, पृ० १३)

सीता-सौन्दर्य

सम सबरन सुखमाकर सखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर॥

सीता जी के शरीर का रंग अत्यन्त सुन्दर है और बड़ा सुखदायक सोने का सा है, परन्तु सीताजी का शरीर कोमल है और सोना कठोर होता है।
—तुलसीदास (बरवै रामायण, २)

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह, निसि दिन यह विगसाइ॥

यह कैसे कहा जाए कि सीता का मुख शरदऋतु के कमल के समान है, क्योंकि वह रात में मलिन हो जाता है और यह रात-दिन प्रफुल्लित रहता है।
—तुलसीदास (बरवै रामायण, ५)

चंपक-हरवा अंग मिलि अधिक सोहाइ।
जान परै सिय हियरे जब कुंभिलाइ॥

चम्पा का हार श्री सीता जी के अंग से मिल कर अधिक शोभा देता है, पर वह श्री सीता जी के हृदय पर है, यह तभी जान पड़ता है जब वह कुम्हला जाता है।
—तुलसीदास (बरवै रामायण, ५)

सिय तुव-अंग रंग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौ चंपक होत॥

हे सीता! तुम्हारे अंग के रंग से मिलकर वस्तुएं अधिक प्रकाशित होती हैं, इसी से जब मैं बेले का हार पहनाती हूं, तब वह चम्पे का हो जाता है।
—तुलसीदास (बरवै रामायण, ६)

भूकन्या कुच कुम्भ कर्कश
महा देखोनि लाजे करी।
भ्रूचाप नयनासि मीन तुले
पावे कटी केसरी॥
चन्द्रास्या अलिकुन्तला मृगदशा
लज्जा पड़े मन्मथा।
ते तो मुख्य अखा वृषभध्वजसखा
त्याची प्रिया नान्यथा॥

सीता के कठोर कुच-कुम्भों को देखकर हाथी लज्जित हुआ कि उसके गंडस्थल भी उतने कठोर नहीं हैं। धनुष की आकृति वाली उसकी काली भौहें तथा नेत्रों की मोहकता से मछलियों की तुलना नहीं की जा सकती। सीता की कटि को देखकर ऐसा लगता है मानो सिंह ने कटि उससे ली हो। उसके केश भ्रमर के समान काले है। उसका ऐसा रूप सौन्दर्य देखकर कामदेव लज्जित हो गया। यह रूपवती और कोई नहीं, सीता ही हैं जो वृषभध्वज शिव के सखा विष्णु अर्थात् राम की प्रिया हैं।[1]

[मराठी] —अज्ञात

सीमा

कलासीमा काव्यं सकलगुणसीमा वितरणम्।
भये सीमा मृत्युः सकलसुखसीमा सुवदना॥
तपः सीमा मुक्तिः सकलकृतिसीमाश्रितभृतिः।
प्रियसीमाह्लादो श्रवणसुखसीमा हरिकथा॥

कला की सीमा काव्य है—अर्थात् जितनी कलाएं हैं, उनमें काव्य सर्वश्रेष्ठ है। समस्त गुणों की सीमा दान है। भयों में मृत्यु का भय प्रधान है। समस्त सुखों में सुन्दरी स्त्री का मुख-सुख प्रमुख है। तप की सीमा मुक्ति है। समस्त कर्तव्यों की सीमा आश्रितों का पोषण है। प्रिय वस्तुओं की सीमा आह्लाद है। श्रवण सुखों की सीमा हरि-कथा है।

—अज्ञात

अपनी सम्पत्ति की सीमा को न समझकर बड़े दानी बनने से वह सीमा शीघ्र घट जाएगी।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ४१०)

सामयिक और स्थानीय कारणों से मनुष्य सीमा के अन्दर सत्य को देखता है, इसलिए वह सत्य को छोड़कर सीमा की ही पूजा करने लगता है, देवता से अधिक पंडे को मानता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (१० अगस्त १९२१ का शांति निकेतन का भाषण 'शिक्षा का मिलन')

1. यहां १२ राशियों के नाम भी छिपे हैं—कन्या, कुंभ, कर्क, मीन, तुला और वृषभ के तो स्पष्ट नाम आ गए हैं। फिर भ्रूचाप धनुष या धनुराशि, केसरी सिंह राशि, अलि वृश्चिक राशि, अजा मेष, राशि, मन्मथ मकर केतु अर्थात मकर राशि। नयन दो होते हैं अतः नयन मिथुन।

We all of us live too much in a circle.

हम सभी लोग एक ही घेरे में बहुत अधिक रहते हैं।

—डिज़रायली (सिबिल, पृ० १)

सुन्दर

दूरस्थाः पर्वता रम्या वेश्या च मुखमंडने।
युद्धस्य वार्ता रम्या त्रीणि रम्याणि दूरतः॥

दूरस्थ पर्वत; मुख सजा लेने पर वेश्या तथा युद्ध की वार्ता रम्य होते हैं। किन्तु ये तीनों दूर से ही रम्य होते हैं।

—अज्ञात

'सुन्दर' शब्द बाह्यार्थ की ओर संकेत करता हुआ जान पड़ता है और 'रमणीय' शब्द हृदय की ओर।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग २, पृ० १७९)

Handsome is as handsome does.

सुन्दर वह है जो सुन्दर कार्य करे।

— गोल्डस्मिथ (द विकार आफ़ वेकफ़ील्ड, अध्याय १)

सुन्दरता

दे० 'सौन्दर्य'।

सुकुमारता

कवच कहा ये धारिहैं लचकीले मृदु गात।
सुमन हार के भार तें तीन-तीन वल खात॥

—वियोगी हरि (वीर सतसई, पंचम शतक, ५३)

नाज़ुक है न खिचवाऊंगा तस्वीर मैं उसकी
चेहरा न कहीं अक्स के बदले उतर आए।

—अशद देहलवी

हज़ारों ख़ार[1], लाखों फूल उस गुलशन[2] में हैं लेकिन
न तुम-सा नाज़नीं[3] कोई, न हम-सा नातवां कोई।

—अमीर मीनाई

1. कांटे। 2. उद्यान। 3. सुकुमारी।

सुख

दे० 'सुख-दुःख' भी।

दुर्लभं हि सदा सुखम्।

सदा सुख ही सुख दुर्लभ है।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, १८।१३)

धर्मोदयं सुखमाशंसमानाः।

हम धर्म को प्राप्त कराने वाले सुख की कामना करते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व।२६।४)

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः
सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥

हे राजन्! निरोगी रहना, ऋणी न होना, परदेश में न रहना, अच्छे लोगों के साथ मेल होना, अपनी वृत्ति से जीविका चलाना और निर्भय होकर रहना—ये छह मनुष्य लोक के सुख हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व।३३।८९)

अशान्तस्य कुतः सुखम्।

अशान्त को सुख कैसे हो सकता है?

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व।२६।६६ अथवा गीता २/६६)

सर्वसाम्यमनायासं सत्यवाक्यं च भारत।
निर्वेदश्चाविधित्सा च यस्य स्यात् स सुखी नरः॥

भारत! सबमें समता का भाव, व्यर्थ परिश्रम का अभाव, सत्य-भाषण, संसार में वैराग्य और कर्मासक्ति का अभाव—ये पाँचों जिस मनुष्य में होते है, वह सुखी होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शान्तिपर्व।१७७।२)

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते
यथान्धकारादिव दीपदर्शनम्।

दुःख की अनुभूति के बाद ही सुख अच्छा लगता है जैसे अन्धकार के बाद दीप-दर्शन अच्छा लगता है।

—भास (चारुदत्त, १।३)

स्नेहेन कश्चिन्न समोऽस्ति पाशः
स्रोतो न तृष्णासममस्ति हारि।
रागाग्निना नास्ति समस्तथाग्निस्-
तच्चेत् त्रयं नास्ति सुखं च तेऽस्ति॥

स्नेह के समान कोई बँधा नहीं है। तृष्णा के समान बहा ले जाने वाली कोई धारा नहीं है। राग-अग्नि के समान कोई अग्नि नहीं है। अतः यदि ये तीन नहीं हैं तो तुम्हें सुख है।

—अश्वघोष (सौन्दरनंद, ५।२८)

तत्सुखं यत्र निर्वृत्तिः।

सुख वही है जहाँ निर्भय जीवन है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।१५०)

न च सुखान्यविघ्नानि।

सुख विघ्न से रहित नहीं होते।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, २।१६२)

अकिंचनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः।
सदासन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः॥

अकिंचन, दान्त, शान्त, समचित तथा सदा सन्तुष्ट मन वाले को सभी दिशाएँ सुखमय होती हैं।

—अज्ञात

एवं सकलजगत्त्रयहृदयचमत्कारकारिचरितानाम्।
स्वयमनुधावन्ति सदा कल्याणपरम्पराः पदवीम्॥

इस प्रकार समस्त त्रिभुवन के हृदय को चमत्कृत करने वाले पुरुषों के पथ का अनुगमन कल्याण-परम्पराएं सदा स्वयं ही करती हैं।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ४।२)

लोभमूलानि पापानि रसमूलानि व्याधयः।
इष्टमूलानि शोकानि त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भव॥

पापों का मूल लोभ है। व्याधियों का मूल रस है, शोक का मूल इष्ट है। इन तीनों को त्याग कर सुखी बन।

—अज्ञात

असारे खलु संसारे सुखभ्रान्तिः शरीरिणाम्।

निश्चय ही असार संसार में शरीरधारियों के लिये सुख केवल भ्रान्ति है।

— अज्ञात

कुलीनैः सह सम्पर्कं पंडितैः सह मित्रताम् ।
ज्ञातिभिश्च समं मेलं कुर्वाणो नावसीदति ।।

कुलीन व्यक्तियों के साथ संबंध, बुद्धिमानों के साथ मित्रता और स्वजातीय मनुष्यों के साथ मेल रखने वाला मनुष्य कभी दुःख नहीं पाता ।

—अज्ञात

नहि वरविघाताय कन्योद्वाहः ।

कन्या का विवाह वर का नाश करने के लिए नहीं होता है ।

—संस्कृत लोकोक्ति

दुक्खी सुखं पत्थयति, सुखी भिय्योपि इच्छति ।
उपेक्खा पन सन्तत्ता, सुखमिच्चेव भासिता ।।

[पालि] —विसुद्धिमग्ग (१९।२३८)

सुखकामानि भूतानि ।

सभी प्राणी सुख चाहते हैं ।

[पालि] —उदान (२/३)

जेण सिया, तेन णो सिया ।

जिन वस्तुओं से सुख की आशा रखते हो, वे सुख के हेतु नहीं हैं ।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।४)

न हि सुखेन सुखं लभ्यते ।

सुख से सुख नहीं मिलता ।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांगचूर्णि (१।३।७)

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पच्छी, फिरि जहाज पर आवै ।

—सूरदास (सूरसागर, भाग १, १६८)

तनहिं राख सत्संग में, मनहिं प्रेमरस भेव ।
सुख चाहत हरिवंस हित कृष्ण-कल्पतरु सेव ।।

—हितहरिवंश महाप्रभु

जोते बिन, वए बिनु, निफल निराए बिनु
सुकृत सुखेत सुखसालि फूलि फरि गे ।

पुण्य रूप श्रेष्ठ खेत मे सुख रूप धान बिना जोते, वोए और भली भाँति निराये ही फूल कर फल गए ।

—तुलसीदास (गीतावली, अयोध्या कांड, पद ३२)

यौवन-सुख केवल अतृप्त लालसाओं के सिवा और कुछ नही है । सच्चे सुख का समय केवल वाल्य-अवस्था है ।

—बालकृष्ण भट्ट (साहित्य सुमन, पृ० ६८)

धीरज, उद्यम, बुद्धि, वल, साहस, शक्ति, सुनीत ।
ये दस सुखदायक सदा, सुतिय सुपूत सुमीत ।।

—रामचरित उपाध्याय

दुःख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात;
एक परदा यह झीना नील
छिपाये है जिसमें सुख गात ।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

नित्य समरसता का अधिकार,
उमड़ता कारण जलधि समान;
व्यथा में नीली लहरों बीच
बिखरते सुखमणिगण द्युतिमान ।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

जीवन का सुख दूसरों को सुखी करने मे है, उनको लूटने में नहीं ।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० २९७)

सुख सन्तोष से प्राप्त होता है, विलास से सुख कभी नही मिल सकता ।

—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद १५)

मनुष्य के दुःख से दुःखी होना ही सच्चा सुख है ।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (पुनर्नवा, पृ० १२२)

अपने सुख-दुख के बोझ को सबको अलग-अलग ढोना है ।

—बच्चन (निशा निमंत्रण, पृ० १०९)

सुखी तो वह है जिसको सम्पत्ति का मोह नहीं है, जो धूल को हीरा और हीरा को धूल समझता है ।

—रांगेय राघव (पांच गधे, पृ० ५३)

क्षण-भंगुरता के इस क्षण में जीवन की गति, जीवन का स्वर,
दो सौ वर्ष आयु यदि होती तो क्या अधिक सुखी होता नर ?

—गजानन माधव मुक्तिबोध (पृ० २०)

सुख सिन्धु अपने पास है, सुख सिन्धु जल की मीन हो।
'भोला' लगा डुबकी सदा, मत हो दुःखी, मत दीन हो।

—भोले बाबा (वेदांत छंदावली, भाग १)

बाहर नहीं सुख है जरा, सुख सिन्धु भीतर है भरा।
नर मूढ़ बाहर खोजता, ज्यों हिरण कस्तूरी भरा॥

—भोले बाबा (वेदांत छन्दावली, भाग २)

प्रथम सुख निरोगी काया,
दूसर सुख हो घर में माया।
तीसर सुख कुलवन्ती नारी,
चौथा सुख सुत आज्ञाकारी।
पंचम सुख हो वास सुवासा,
छठवां सुख हो पंडित पासा।

—अज्ञात

घर सुख तो बाहर चैन।

—हिंदी लोकोक्ति

कासा[1] भर खाना, आसा[2] भर सोना।

—हिंदी लोकोक्ति

अनजान सुजान, सदा कल्यान।
मूर्ख और ज्ञानी—ये दोनों आनन्द से रहते हैं।

—अज्ञात

सुख वही है जो सद्धर्म से प्राप्त हो। अन्य सभी वस्तुतः दुखप्रद एवं यशहीन ही होते है।

—तिरुवरल्लुवर (तिरुक्कुरल, ३९)

सुख की इच्छा हो तो सभी वस्तुओं के होते हुए उनसे मुक्ति प्राप्त करो। फिर यही अनेक प्रकार के सुख सिद्ध होंगे।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ३४२)

१. थाली। २. नींद।

शिक्षा, विद्या, बुद्धि, ज्ञान, उन्नति, जो कुछ है, सब सुख के लिए है। चाहे जिस तरह से देखो, अपना सुख बढ़ाने के सिवा वह सब और कुछ भी नहीं है।

—शरत्चन्द्र (देवदास, पृ० ३९)

पार्थिव सुख ही एक मात्र सुख नहीं है—बल्कि धर्म के लिए, दूसरों के लिए उस सुख को उत्सर्ग कर देना ही श्रेय है।

—शरत्चन्द्र (दत्ता, पृ० ७६)

यह दुर्भाग्य की बात है कि हम आत्मिक स्वतंत्रता के मूल्य पर सांसारिक सुखों को खरीदते हैं।

— शिवानंद (दिव्योपदेश, १।३)

निद्रा, संपत्ति और स्वास्थ्य का सच्चा सुख प्राप्त करने के लिए उनमें बीच-बीच में अवरोध होना आवश्यक है।

—जीन पाल फ्रेडरिक रिख़्तर

Sweet is pleasure after pain.
दुःख के बाद सुख मधुर होता है।

—ड्राइडेन (अलेक्ज़ेंडर्स फ़ीस्ट)

Ever let the fancy roam.
Pleasure never is at home.
सदा ही कल्पना को भ्रमण करने दो, क्योंकि सुख कभी भी घर पर नहीं रहता है।

—कीट्स (फ़ेन्सी)

Pleasure's a sin, and sometimes sin's a pleasure.
सुख पाप होता है और कभी-कभी पाप सुख होता है।

—बायरन (डान जुआन, १।३३)

Though sages may pour out their wisdom's treasure;
There is no sterner moralist than pleasure.
संत भले ही अपने बुद्धिमत्तापूर्ण उपदेश देते रहें परन्तु सुख से अधिक कठोर नीतिवादी अन्य कोई नहीं है।

—बायरन (डॉन जुयान, ३।६५)

सुख-दुःख

सर्वो विमृशते जन्तुः कृच्छ्रस्थो धर्मदर्शनम् ।
पदस्थः पिहितं द्वारं परलोकस्य पश्यति ॥

प्रायः सभी प्राणी जब स्वयं संकट में पड़ जाते हैं तो अपनी रक्षा के लिए धर्मशास्त्र की दुहाई देने लगते हैं और जब अपने उच्च पद पर प्रतिष्ठित होते हैं, उस समय उन्हे परलोक का द्वार बंद दिखाई देता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शल्य पर्व। ३२।५९)

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
न नित्यं लभते दुःखं न नित्यं लभते सुखम्

सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख आता है। कोई भी न तो सदा दुःख पाता है और न निरन्तर सुख ही प्राप्त करता है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व। २५।२३)

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वा प्रियम्।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः ॥

बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि सुख या दु.ख, प्रिय अथवा अप्रिय, जो प्राप्त हो जाय, उसका हृदय से स्वागत करे, कभी हिम्मत न हारे।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१७४।३९)

नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्।

राग के समान कोई दुःख नही है और त्याग के समान कोई सुख नहीं है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१७५।३५

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।

आशा ही परम दुःख और निराशा का भाव परम सुख है।

—भागवत (११।८।४४)

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद् विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥

सब कुछ जो परवश है, दुःख है। सब कुछ जो अपने वश में है, सुख है। संक्षेप में इसे सुख-दुःख का लक्षण जाने।

—मनुस्मृति (४।१६०)

अनन्तानीह दुःखानि सुखं तृणलवोपमम्।
नातः सुखेषु बध्नी यात् दृष्टिं दुःखानुबंधिषु ॥

इस संसार में दुःख अनन्त हैं तथा सुख अत्यल्प है, इसलिए दुःखों से घिरे सुखों पर दृष्टि नहीं लगानी चाहिए।

—योगवासिष्ठ (२।१३।२३)

द्वन्द्वानि सर्वस्य यतः प्रसक्तान्यलाभलाभप्रभृतीनि लोके।
अतोऽपि नैकान्तसुखोऽस्ति कश्चिन् नैकान्तदुःखः पुरुषः पृथिव्याम् ॥

क्योंकि संसार मे हानि-लाभ आदि द्वन्द्व सब में लगे हुए हैं, इसलिए भी पृथ्वी पर कोई पुरुष न तो एकान्त सुखी है और न एकान्त दुःखी।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, ११।४३)

दृष्ट्वा विमिश्रां सुखदुःखतां मे
राज्यं च दास्यं च मतं समानम्।
नित्यं हसत्येव हि नैव राजा
न चापि संतप्यत एव दासः।

मैं तो सर्वत्र दुःख व सुख को मिला हुआ देख कर, राज्य व दासत्व को समान मानता हूँ। न तो राजा ही नित्य हँसता है और न दास ही नित्य संतप्त होता है।

—अश्वघोष (बुद्धचरित, ११।४४)

यदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद्रसवत्तरम्।

जो सुख, दुःख के पश्चात् होता है, वह साधारण सुख से अधिक सुखमय होता है।

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, ३।२१)

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु॥

एक ओर चन्द्रमा अस्ताचल की ओर जा रहा है और दूसरी ओर लालिमा को आगे किए हुए सूर्य उदित हो रहा है। यह संसार दो तेजों के एक साथ उदय और अस्त के द्वारा मानो अपनी दशा विशेषों मे नियंत्रित हो रहा है।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ४।२)

धाराभिरातप इवाभिहतं सरोजं
दुःखायते मम मनः सुखमश्नुते च।

मेरा मन उस कमल के समान एक साथ दुःखी और सुखी हो रहा है जिस पर कड़ी धूप पड़ रही हो और साथ-साथ पानी भी पड़ रहा हो।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, ५।३)

आगामिसुखं वा दुःखं वा हृदयं समर्थीकरोति।
अपना हृदय आगामी सुख या दुःख को बता देता है।
—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, ५।६ के पश्चात्)

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण॥

दुःख या सुख किसी पर सदा ही नहीं रहते। ये तो पहिए के घेरे के समान कभी नीचे, कभी ऊपर यों ही होते रहते हैं।

—कालिदास (मेघदूत, उत्तरमेघ, ५२)

प्रायेण च निसर्गत एवानायतस्वभावभंगुराणि सुखानि, आयतस्वभावानि च दुःखानि।

सुख तो स्वभाव से ही अल्पकालिक होते हैं और दुःख दीर्घकालिक।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्व भाग, पृ० ५११)

सुखं वा दुःखं वा किमिव हि जगत्यस्ति नियतं
विवेक प्रध्वंसाद् भवति सुखदुःखव्यतिकरः।
मनोवृत्तिः पुंसां जगति जयिनी कापि महतां
यथा दुःखं दुःखं सुखमपि सुखं वा न भवति॥

क्या सुख अथवा दुःख जगत् में निश्चित है? विवेक के विनाश से सुख अथवा दुःख होते हैं। महापुरुषों की मनोवृत्ति जयशालिनी होती है जिससे दुःख तो दुःख नहीं रहता तथा सुख भी सुख नहीं रहता।

—क्षेमीश्वर (चंडकौशिक नाटक ४।२६)

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्॥

इन्द्रियों का संयम न करना आपत्तियों का मार्ग है और इन्द्रियों की विजय सुखों का मार्ग है, यह बताया गया है। दोनों मे जो इष्ट हो, उसी से जाना चाहिए।

—चाणक्यनीति

यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परंगतः।
द्वाविमौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः॥

जो मूढतम मनुष्य है और जो बुद्धि में सर्वोच्च है—ये दो ही सुख प्राप्त करते हैं, शेष तो दुःख ही पाते है।

—अज्ञात

सुखं वा यदि वा दुःखं यत्किंचित् क्रियते परे।
यत्कृतं च पुनः पश्चात् सर्वमात्मनि तद्भवेत्॥

जैसा सुख-दुःख दूसरे को दिया जाता है, वैसा ही सुख-दुःख उसी के परिणामस्वरूप स्वयं को प्राप्त होता है।

—अज्ञात

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददाति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः
स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥

सुख-दुःख को देने वाला अन्य कोई नहीं है। इन्हें कोई अन्य देता है, यह कहना कुबुद्धि है। "मैं कर रहा हूं" यह कहना व्यर्थ अभिमान है क्योंकि अपने कर्मों के सूत्र से ही लोग बँधे हुए हैं।

—अज्ञात

दुक्खूपनीतो पि नरो सपञ्ञो
आसं न छिन्देय्य सुखागमाय,
वहू पि पस्सा अहिता हिता च
अवितक्किता मच्चु उपब्बजन्ति।

मनुष्य को चाहिए कि वह दुःख से घिरा होने पर भी सुख की आशा न छोड़े। बहुत सारे दुःख तथा सुख और मृत्यु बिना विचारे ही आ जाते है।

[पालि] —जातक (सरभंगि जातक)

जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं।

प्रत्येक व्यक्ति का सुख-दुःख अपना-अपना है।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।४)

का अरई के आणंदे ?

ज्ञानी के लिए क्या दुःख, क्या सुख ?

[प्राकृत] —आचारांग (१।३।३)

अणइच्छियइं होंति जिम दुक्खइं सहसा
परिणवंति तिह सोक्खइं।

जैसे यदृच्छया दुःख आते हैं, वैसे ही सहसा सुख भी आ जाते हैं।

[अपभ्रंश] —धनपाल (भविसयत्त कहा, ३।१७।८)

सुख बीते दुख होत है, दुख बीते सुख होत।
दिवस गए ज्यौं निसि उदित, निसिगत दिवस उदोत।

—वृन्द (वृन्द सतसई, १०५)

सुन लो पलटू भेद यह, हँसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख में नरक निदान।

—पलटू साहब

दुइ दुख बीच सुक्ख है निजु[1] जानहु सयँसार[2]।
जइ[3] अति रैनि अन्धेरी तौ अजोर[4] भिनुसार[5]॥

—मंझन (मधुमालती, २३९)

सुख होवे सो हरि कृपा, दुख कर्मन का भोग।
'बनादास' यों मारिये मन मूरख का रोग॥

—बनादास

व्यक्तिगत सुख विश्व वेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुःख विश्व के सुख में घुलकर जीवन को अमरत्व।

—महादेवी वर्मा (यामा, भूमिका)

देखूं सब के उर की डाली—
सब में कुछ सुख के तरुण फूल,
सब में कुछ दुःख के करुण फूल;
सुख-दुःख न कोई सका भूल।

—सुमित्रानंदन पंत (आधुनिक कवि)

१. निश्चित रूप से। २. संसार में। ३. यदि। ४. उज्ज्वल। ५. प्रभात।

अविरत दुख है उत्पीड़न;
अविरत सुख भी उत्पीड़न,
दुख सुख की निशा दिवा में
सोता जगता जग जीवन।

—सुमित्रानंदन पंत (आधुनिक कवि)

सुख के हेतु सभी हैं पागल
दुख से किस पामर का प्यार ?
सुख में है दुख, गरल अमृत में,
देखो, बता रहा संसार।

—'निराला' (अनामिका, पृ० १०९-११०)

सुख में है दुख, गरल अमृत में,
देखो बता रहा संसार।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (अनामिका, पृ० ११३)

दुख पुरुषार्थी की करवट है,
सुख श्रम की परिणति का घर है
धूप-छाँह से कैसा झगड़ा,
कभी इधर है, कभी उधर है॥

—माखनलाल चतुर्वेदी (वेणु लो, गूंजे धरा, पृ० २)

डरो नहीं पथ के काँटों से,
भरा अमित आनंद अजिर में।
यहाँ दुःख ही ले जाता है,
हमें अमर सुख के मन्दिर में।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (चक्रवाल, पृ० ३६)

दुःखों की चोट खाकर
हृदय जो कूप-सा जितना
अधिक गंभीर होगा;
उसी में वृष्टि पाकर
कभीउतना अधिक संचित
सुखों का नीर होगा।

—रामधारी सिंह 'दिनकर' (चक्रवाल, पृ० ११२)

दुःख को धैर्य से सहना चाहिए। उसके सामने घुटने न टेकने चाहिए। दुख की तरह सुःख को भी सावधानी से सहना चाहिए।

—विनोबा (स्थितप्रज्ञदर्शन, १८)

मन का सुख-दुःख और होता है, मनुष्य का और। मन को सुख-दुःख होने से यह अनिवार्य नहीं है कि मनुष्य को भी सुख-दुःख हो ही।

—विनोबा (स्थितप्रज्ञदर्शन, पृ० ८५)

हँसी बाँट लेने से अनन्त हो जाती है। दुःख बँटता है, तो हलका हो जाता है और सुख बँटता है, तो दुगना हो जाता है।

—दादा धर्माधिकारी (सर्वोदय दर्शन, पृ० २५६)

चार दिना की चाँदनी फेरि अन्धेरी रात।

—हिंदी लोकोक्ति

फ़लक देता है जिनको ऐश उनको ग़म भी होते हैं
जहाँ बजते हैं नक़्क़ारे वहां मातम भी होते हैं।

—दाग़

सितारा सुबहे इशरत का शबे मातम निकलता है।

दुःख की रात्रि समाप्त होने पर सुख का सूर्य उदित होता है।

—अज्ञात

दमे बा ग़मे बसर जहां यकसर नयी अरज़द।

दुःख में एक क्षण भी व्यतीत करना संसार के सम्पूर्ण सुखों से कहीं बढ़कर है।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

आधे गाँव होली अर् आधे गाँव दीवाली।

—राजस्थानी लोकोक्ति

लक्ष्मी आलिया जें सुख। सुख नव्हें तें केवल दुःख।
सुख मानिती ते केवल मूर्ख॥

लक्ष्मी की प्राप्ति से जो सुख होता है उसे केवल दुःख समझना चाहिए। उसे जो सुख मानते हैं वे केवल मूर्ख हैं।

[मराठी] —एकनाथ

बरे जालीयाचे अवघे सांगाती।
वाइटाचे अंती कोणी नाहीं।

सुख के सब साथी हैं, दुःख का कोई नहीं।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ४४५३)

सुख पाहतां जवापाडें। दुख पर्वता एवढें॥

सुख के क्षण छोटे और दुःख की घड़ियां लम्बी प्रतीत होती हैं।

[मराठी] — तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ८८)

सुख के प्रत्येक तोले के साथ सेर भर दुःख भी आता है। वस्तुतः वही शक्ति है जो एक समय सुख बनकर व्यक्त होती है, और दूसरे समय पर दुःख बनकर।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग, १० पृ० ३१)

सुख आदमी के सामने आता है, तो दुःख का मुकुट पहन कर। जो उसका स्वागत करता है, उसे दुःख का भी स्वागत करना चाहिये।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग १०, पृ० २३२)

सुख-दुःख पराए हाथ में है या मेरे अपने हाथ में? दूसरा केवल बाहरी जगत् का मालिक है—भीतरी जगत् का तो मैं ही अकेला मालिक हूं। अपने राज्य को लेकर मैं क्यों न सुखी हो सकूंगा? जड़ जगत् ही जगत् है, अन्तर्जगत् क्या जगत् नहीं है? अपने मन को लेकर क्या नहीं रहा जा सकता है?

—बंकिमचन्द्र (रजनी, पृ० ३४)

सुखी परिवार सभी एक जैसे होते हैं, लेकिन प्रत्येक दुःखी परिवार अपने तरीक़े से दुःखी होता है।

—तोल्स्तोय (अन्ना करेनिन)

अपने सुख के दिनों का स्मरण करने से बड़ा दुख कोई नहीं है।

—दांते (इन्फ़रनो, सर्ग ११)

सुख-भोग

मन लाग्यो सुख भोग में, तरन चहै संसार।
नारायन कैसे बने, दिवस रैन को प्यार॥

—नारायण स्वामी

सुखी

ये च मुढतमा लोके ये च बुद्धे परं गताः ।
ते नराः सुखमेधन्ते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥

इस संसार में जो अत्यन्त मूढ हैं और जो बुद्धि से परे पहुँच गये हैं, वे ही मनुष्य सुखी हैं, बीच के सभी लोग कष्ट भोगते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १७४।३३)

उत्तमैः सह सांगत्यं पण्डितैः सह सत्कथाम् ।
अलुब्धैः सह मित्रत्वं कुर्वाणो नावसीदति ॥

उत्तम व्यक्तियों के साथ संगति, पंडितों के साथ सत्कथा तथा निर्लोभियों के साथ मित्रता करने वाला व्यक्ति दुःखी नहीं होता।

—बृहस्पतिनीतिसार

यंच अञ्ञे न रक्खंति यो न अञ्ञे न रक्खति ।
स वे राज सुखं सेति कामेसु अनपेक्खवा ॥

न तो जिसकी दूसरे रक्षा करते हैं और न जो दूसरों की रक्षा करता है, हे राजन् ! वही भोगों में अपेक्षारहित व्यक्ति सुख से सोता है।

[पालि] —जातक (सुख विहारी जातक)

सुधार

दे० 'सुधारक'।

सुधारक

सुधार तो बहुत दूर की बात है। पहले आदमी बनाइए, सुधार तब होगा।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (प्रबंध प्रतिमा, पृ० १०१)

यदि तुम जगत का उपकार करना चाहते हो, तो जगत् पर दोषारोपण करना छोड़ दो, उसे और भी दुर्बल मत करो।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, खंड २, पृ० १९)

सुधार की उग्र चेष्टा का फल यही होता है कि उससे सुधार की गति रुक जाती है। किसी से ऐसा मत कहो कि 'तुम बुरे हो' वरन् उससे यह कहो, 'तुम अच्छे हो, और भी अच्छे बनो।'

—विवेकानन्द (विवेकानंद साहित्य, भाग ७, पृ० ३०)

यदि तुम सच्चे सुधारक होना चाहते हो, तो तीन बातों की आवश्यकता है। प्रथम तो यह कि तुम्हारा हृदय भावनाशील हो। दूसरी बात तुम्हें यह सोचनी चाहिए कि इन सबके लिए क्या तुमने कोई उपाय भी ढूंढ़ निकाला है, या नहीं ? और एक चीज की आवश्यकता है—अटल अध्यवसाय। यदि ये तीनों गुण तुममें हैं तो वास्तव में तुम एक सच्चे सुधारक, मार्गप्रदर्शक, गुरु एवं मनुष्य जाति के लिए वरदानस्वरूप हो।

—विवेकानन्द (विवेकानंद साहित्य, भाग ७, पृ० २३९-४०)

भावी नवयुवक सुधारक ! तू भारतवर्ष की प्राचीन रीतियों और परमार्थ-निष्ठा की निन्दा मत कर। इस प्रकार विरोध का एक नया बीज बो देने से भारतवर्ष के मनुष्य एकता को प्राप्त नहीं कर सकते।

—रामतीर्थ (रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० ५)

आवश्यकता है—
किनकी ? सुधारकों की—
दूसरों को सुधारने वालों की नहीं,
किन्तु अपने आपको सुधारने वालों की।
विश्वविद्यालय के उपाधिधारी सज्जनों की नहीं,
किन्तु परिच्छिन्न भाव के विजेताओं की
आयु —दिव्यानन्द भरा तारुण्य।
वेतन—ईश्वरत्व।
शीघ्र निवेदन करो
किससे ? विश्व-नियन्ता से
अर्थात् अपनी ही आत्मा से,
दासोऽहं भरी दीनता से नहीं
किन्तु निश्चयात्मक निर्णय और अधिकार के साथ।

—रामतीर्थ (राम हृदय, पृ० २९२)

उत्तम सुधारक वह है जिसके नेत्र सौन्दर्य और योग्यता को देख सकते हैं और जो अपने आदर्श जीवन का उदाहरण देकर अपराधियों को उचित मार्ग पर ला सकता है।

—जेम्स एलेन (आनन्द की पगडंडियां, पृ० ५३)

तुम्हारा वायुमण्डल जिस हद तक ख़राब हो, उसी हद तक उसे सेवा के कार्यो द्वारा सुधार कर सुन्दर बनाने की आवश्यकता है।

—अरुण्डेल (सेवा के मन्त्र)

Reformers want to bring out great men, grand men, by laying down laws and rules, and they want to dictate to them and make themselves the examiners of other people. It is unnatural. It will not do.

सुधारक लोग नियम और कानून बनाकर महापुरुष तथा प्रभावशाली पुरुष बनाना चाहते हैं, उनको आदेश देना चाहते हैं और अपने को दूसरों का परीक्षक बनाना चाहते हैं। यह अस्वाभाविक है। इससे काम नहीं चलेगा।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइजेशन, खण्ड २, पृ० १४३)

Beginning reform is beginning revolution

सुधार प्रारम्भ करना क्रांति प्रारम्भ करना है।

—आर्थर वेलेजली

Moderate reformers always hate those who go beyond them.

साधारण सुधारक सदा ही उन लोगों से घृणा करते हैं जो उनसे आगे जाते हैं।

—जेम्स एंथोनी फ़्राउड (लाइफ़ ऐंड लेटर्स आफ़ एरासमस, लेक्चर २०)

सुनना

श्रुत्वा धर्मं विजानाति, श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति, श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥

सुन करके ही मनुष्य धर्म को जान पाता है, सुन करके ही दुर्मति को छोड़ देता है, सुन कर ही ज्ञान को प्राप्त कर लेता है और सुनकर ही मोक्ष को प्राप्त करना चाहिए।

—चाणक्यनीति

सुपात्र

दे० 'पात्र'।

सुपुत्र

एकेनापि सुवृक्षेण, पुष्पितेन सुगन्धिना।
वासितं तद् वनं सर्वं, सुपुत्रेण कुलं यथा॥

पुष्पित व सुगन्धित एक भी महान् वृक्ष से सारा वन उसी प्रकार सुगन्धित और सुरम्य हो जाता है जैसे सुपुत्र से कुल।

—चाणक्यनीति

सुभाषित

दे० 'सूक्ति'।

सुलेख

शीर्षोपेतान् सुसम्पूर्णान् समश्रेणिगतान् समान्।
आन्तरान् वै लिखेद्यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः॥

उपर की शिरो रेखा से युक्त, सभी प्रकार से पूर्ण, समानान्तर तथा सीधी रेखा में लिखे गए और आकृति में बराबर अक्षरों को जो लिखता है वही श्रेष्ठ लेखक कहा जाता है।

—मत्स्यपुराण (२१४।२६-२७)

सुशीलता

दे० 'शील'।

सुवर्ण

दे० 'स्वर्ण'।

सूक्ति

अपूर्वाह्लाददायिन्य उच्चैस्तरपदाश्रयाः।
अतिमोहापहारिण्यः सूक्तयो हि महीयसाम्॥

महान् व्यक्तियों की सूक्तियां अपूर्व आनन्द की देने वाली, उत्कृष्टतर पद पर पहुँचाने वाली और मोह को पूर्णतया दूर करने वाली होती है।

—योगवासिष्ठ (५।४।५)

सुभाषितेषु सर्वेषु साधुकारमुदीरयेत्।

सभी सुभाषितों के सम्बन्ध में साधुवाद प्रकट करे।

—बोधिचर्यावतार (५।७५)

अथवाभिनिविष्टबुद्धिषु व्रजति व्यर्थकतां सुभाषितम्।

दुराग्रह से ग्रस्त चित्त वालों के लिए सुभाषित व्यर्थ हो जाते हैं।

—माघ (शिशुपालवध, १६।४३)

सुभाषितं हारि विशत्यधो गलान्न दुर्जनस्यार्क-
रिपोरिवामृतम्।
तदेव धत्ते हृदयेन सज्जनो हरिर्महारत्न-
मिवातिनिर्मलम्॥

जैसे अमृत भी राहु के कंठ से नीचे नहीं उतर पाता, वैसे ही निर्मल मनोहर सूक्तियां भी दुष्टों के गले नहीं उतर पाती। किंतु हृदय पर निर्मल कौस्तुभमणि धारण करने वाले भगवान विष्णु के समान सज्जन उन्हें ही अपने हृदय में धारण कर लेते हैं।

—बाणभट्ट (कादम्बरी, कथामुख, पृ० ४)

कर्णं गतं शुष्यति कर्ण एव
संगीतकं सैकतवारिरीत्या।
आनन्दयत्यन्तरनुप्रविश्य
सूक्तिः कवेरेव सुधा सगन्धा॥

जिस प्रकार बालू में पड़ा हुआ पानी वहीं सूख जाता है, उसी प्रकार संगीत भी केवल कान तक पहुँच कर सूख जाता है। परन्तु कवि की सूक्ति में ही ऐसी शक्ति है कि वह सुगन्ध-युक्त अमृत के समान हृदय के अन्तस्तल तक पहुँच कर मन को सदैव आह्लादित करती रहती है।

—नीलकंठ दीक्षित (शिवलीलार्णव)

हृतोऽपि चित्ते प्रसभं सुभाषितैर्न साधुकारं वचसि प्रयच्छति।

मन ही मन कवियों की सूक्तियों पर पूर्ण रूप से मोहित होकर भी दुर्जन मुख से साधुवाद नहीं देता है।

—धनंजय (द्विसंधानमहाकाव्य, १।६)

संसारकटुवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे।
सुभाषित-रसास्वादः संगतिः सुजनैः सह॥

संसार रूपी कटु वृक्ष के यह दो फल अमृत के समान हैं—एक तो सुभाषित का रसास्वादन और दूसरा सज्जनों का समागम।

—चाणक्यनीति

द्राक्षा म्लानमुखी जाता, शर्करा चाश्मतां गता।
सुभाषित-रसस्याग्रे, सुधा भीता दिवंगता॥

सुभाषित के रस के आगे द्राक्षा म्लानमुखी हो गई, शर्करा सूख कर पत्थर जैसी या किरकिरी हो गई और सुधा भयभीत होकर स्वर्ग को चली गई।

—अज्ञात

आस्वादितदयिताधरसुधारसस्यैव सूक्तयो मधुराः।
अकलितरसालमुकुलो न कोकिलः कलमुदंचयति॥

मधुर सूक्तियां प्रिया के अधर-सुधा-रस के समान आस्वाद में मधुर होती हैं। आम्रमंजरी का आस्वाद लिये बिना कोयल मधुर ध्वनि में नहीं गाती।

—अज्ञात

केषांचिद् वाचि शुकवत् परेषां हृदि मूकवत्।
कस्याप्याहृदयाद् वक्त्रे वल्गु वल्गन्ति सूक्तयः॥

किन्हीं लोगों की वाणी में सूक्तियां तोते की तरह रटी हुई होती हैं और किन्हीं का हृदय सूक्तिमय होता है किन्तु उनकी वाणी प्रस्फुटित नहीं होती। ऐसे कोई विरले ही होते हैं जिनके हृदय से वाणी तक सरस सूक्तियों की परम्परा प्रवाहित होती हैं।

—अज्ञात

भाषासु मुख्या मधुरा दिव्या गीर्वाणभारती।
तस्माद्धि काव्यं मधुरं तस्मादपि सुभाषितम्॥

भाषाओं में मुख्य, मधुर और दिव्य देववाणी संस्कृत है, उसमें भी काव्य मधुर है और उसमें भी मधुर सुभाषित हैं।

—अज्ञात

उचितेन विचारेण चारुतां यान्ति सूक्तयः।
वेद्यतत्त्वाववोधेन विद्या इव मनीषिणाम् ॥

सूक्तियाँ उचित विचार से सुन्दर बनती हैं जैसे जानने योग्य तत्त्व के ज्ञान से मनीषियों की विद्या।

—अज्ञात

विञ्ञातसारानि सुभासितानि।

सुभासित ज्ञान का सार होते हैं।

[पालि] —सुत्तनिपात (२।२१।६)

इच्छामि वोहं सुतवुद्धिं अत्तनो,
सन्तो च मं सुप्पुरिसा भजेय्युं
अहं सवन्तीहि महोदधीव
न हि तात तप्पामि सुभासितेन ॥

मैं अपने ज्ञान में वृद्धि चाहता हूं और यह चाहता हूं कि मुझे सत्पुरुषों का आश्रय मिले। जिस प्रकार नदियों से समुद्र की तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार हे तात! सुभाषितों से मेरी तृप्ति नही होती।

[पालि] —जातक (महासुतसोम जातक)

अग्गि यथा तिणकट्ठं डहन्तो
न तप्पति सागरो वा नदीहि
एवं पि ते पण्डिता राजसेट्ठ
सुत्वा न तप्पन्ति सुभासितेन ॥

जिस प्रकार अग्नि तृण-काष्ठ को जलाती हुई कभी तृप्त नहीं होती और सागर नदियों को पाकर कभी तृप्त नहीं होता, उसी प्रकार हे राजश्रेष्ठ! पंडितजन सुभाषितों से कभी तृप्त नही होते।

[पालि] —जातक (महासुतसोम जातक)

सैकड़ों दलीलें एक तरफ़ और एक चुटैल सुभाषित एक तरफ़। वह प्रतिद्वन्दी को निरुत्तर कर देता है, उसके जवाब में उसकी ज़वान नही खुलती। उसका पक्ष कितना ही प्रवल हो, पर सुभाषितों में कुछ ऐसा जादू होता है कि मानो वह एक फूंक से दलीलों को उड़ा देता है।

—प्रेमचंद (विविध प्रसंग, पृ० ४८७)

लालित्य, चमत्कृति तथा शब्द एवं अर्थ के अलंकारों से रुचिपूर्ण और साथ ही जीवन में मार्गदर्शन करने वाले तत्त्व को व्यक्त करने से 'सुभाषित' कहना उचित होगा।

—माधव स० गोलवलकर (पत्र रूप श्री गुरुजी, पृ० ३२०)

शास्त्र-वचनों के पीछे ऋषि-मुनियों के धर्मानुभव का प्रभाव होता है। सुभाषितों के पीछे जातीय हृदय की मान्यता होती है।

—काका कालेलकर (मंगलदेव शास्त्री कृत 'सुभाषित-सप्तशती की भूमिका)

It is a good thing for an uneducated to read books of quotations.

अशिक्षित व्यक्ति के लिए सूक्तिग्रंथों का अध्ययन अच्छी बात है।

—विंस्टन चर्चिल (माई अर्ली लाइफ़, अध्याय २)

सूत्र

सूचनात्सूत्रमित्याहु सूत्रं नाम परं पदम्।

जो सूचन (ज्ञान) का हेतु हो, उसे 'सूत्र' कहते है। अतः 'सूत्र' परमपद का नाम है।

—नारदपरिव्राजकोपनिषद् (३।७८)

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढंकां नवपंचवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्र-जालम् ॥

नृत्य की समाप्ति पर नटराज-राज शिव ने डमरू को चौदह वार वजाकर सनकादि सिद्धों के उद्धार के लिए शिवसूत्रों (व्याकरण के १४ माहेश्वर सूत्रों) का समूह प्रकट किया।

—नन्दिकेश्वर (काशिका, १)

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद्विश्वतो मुखम्।
अस्तोभमनवद्यंच सूत्रं सूत्रकृतो विदुः ॥

सूत्रकारों ने सूत्र का लक्षण इस प्रकार किया है—सूत्र अल्पाक्षर-युक्त, संदेहरहित, सारगर्भित, व्यर्थ शब्द से हीन, व्यापक तथा निर्दोष अर्थ को वताने वाला होता है।

—अज्ञात (राजशेखर द्वारा 'काव्यमीमांसा' में उद्धृत)

१. स्वय अपने संदर्भ में कथित।

ण सुतमत्थं अतिरिच्च जाती।

सूत्र, अर्थ को छोड़कर नहीं चलता।

[प्राकृत] —बृहत्कल्पभाष्य (३६२७)

He is a benefactor of mankind who contracts the great rules of life into short sentences, that may be easily impressed on the memory, and so recur habitually to the mind.

वह मानव जाति का महान हितैषी है जो जीवन के महान नियमों को सूत्रों में समेट देता है, जो स्मृति में सरलता से अंकित हो जाते है और इस कारण मस्तिष्क में स्वभाववश बार-बार आते रहते हैं।

—डा० जानसन

सूनापन

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्यास्त्वबान्धवाः।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्या दरिद्रता॥

पुत्रहीन का घर सूना है, बान्धव-हीन की दिशाएं सूनी हैं, मूर्ख का हृदय सूना है और दरिद्र का सब कुछ शून्य है।

—चाणक्यनीति

सूफ़ी

डिने डुखोया, अण डिने राज़ी थिया,
सूफ़ी ते थिया, जिअें कौन खंया ऊँ पाण सें।

सूफ़ियों को संसारी चीजें देने से वे दुखी होते हैं और न देने से राज़ी। सूफ़ी वे हो सकते हैं जो अपने साथ कुछ न लें।

[सिंधी] —शाह लतीफ़

सूर और तुलसी

सूर और तुलसी···उपदेशक नहीं हैं, अपनी भावुकता और प्रतिभा के बल से लोक-व्यापार के भीतर भगवान की मनोहर मूर्ति प्रतिष्ठित करने वाले हैं।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिन्तामणि, भाग १, पृ० २०१)

सूरदास

दे० 'सूर और तुलसी' भी।

आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएं श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्त्तन करने उठी, जिनमे सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी।

—रामचन्द्र शुक्ल (सूरदास, पृ० ९२)

'वात्सल्य' और 'शृंगार' के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आँखो से किया, उतना किसी और कवि ने नहीं।

—रामचन्द्र शुक्ल (सूरदास, पृ० ९२-९३)

हिन्दी-साहित्य में शृंगार का रसराजत्व यदि किसी ने पूर्ण रूप से दिखाया तो सूर ने।

—रामचन्द्र शुक्ल (सूरदास, पृ० ९३)

शक्ति, शील और सौन्दर्य भगवान की, इन तीन विभूतियों में से सूर ने केवल सौन्दर्य तक ही अपने को रखा है, जो प्रेम को आकर्षित करता है।

—रामचन्द्र शुक्ल (सूरदास, पृ० ९६)

सूरदास में जितनी सहृदयता और भावुकता है, प्रायः उतनी ही चतुरता और वाग्विदग्धता भी है।

—रामचन्द्र शुक्ल (सूरदास, पृ० ११३)

वे ज्ञान के विरोधी नहीं, भक्ति-विरोधी ज्ञान के विरोधी हैं।

—रामचन्द्र शुक्ल (सूरदास, पृ० १३३)

सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केसवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकास॥

—अज्ञात

सूरसागर

यदि 'सूरसागर' को हम रससागर कहें, तो बेखटके कह सकते हैं।

—रामचन्द्र शुक्ल (सूरदास, पृ० १०५)

सूरसागर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अंश 'भ्रमरगीत' है, जिसमें गोपियों की वचन-वक्रता अत्यन्त मनोहारिणी है। ऐसा सुन्दर उपालंभ-काव्य और कहीं नहीं मिलता।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास, १६७)

सूर्य

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।

सूर्य जंगम और स्थावर की आत्मा है।

—ऋग्वेद (१।११५।१)

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महा देवो मर्त्यां आ विवेश॥

इसके चार सींग हैं। तीन चरण है। दो सिर हैं। सात हाथ हैं। यह तीन प्रकार से बँधा है। बरसते मेघ या बलवान वृषभ के समान शब्द करता है। वह महान देव मनुष्यों के बीच में प्रवेश करता है।[1]

[यहां विद्वान, यज्ञ पुरुष, जीवात्मा, व्याकरण इत्यादि के पक्षों में भी अर्थ संभव है।]

—ऋग्वेद (४।५८।३)

नवो नवो भवसि जायमानः।

प्रकट होते हुए तू सदैव नया-नया प्रतीत होता है।

—अथर्ववेद (७।८१।२)

एते वाऽउत्पवितारो यत् सूर्यस्य रश्मयः।

सूर्य की किरणें पवित्र करने वाली हैं।

—शतपथ ब्राह्मण (१।१।३।६)

आनंदमयो ज्ञानमयो विज्ञानमय आदित्यः।

आदित्य आनंदमय, ज्ञानमय और विज्ञानमय है।

—सूर्योपनिषद्

१. चार सींग=चार दिशाएं, तीन चरण=तीन ऋतुएं, दो सिर=दो अयन, सात हाथ=सात रंगों की किरणें, तीन प्रकार से बंधना=तीन लोकों में बंधना।

कः शक्तः सूर्यं हस्तेनाच्छादयितुम्।

सूर्य को हाथ से कौन आच्छादित कर सकता है।

—भास (अविमारक, १।५ के पश्चात्)

सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।

सहस्रगुणा लौटा देने के लिए सूर्य जल लेता है।

—कालिदास (रघुवंश, १।१८)

एकः श्लाघ्यो विवस्वान् परहितकरणायैव यस्य प्रयासः।

एक सूर्य ही धन्य है जिसका सारा प्रयास परहित करने के लिए ही है।

—हर्ष (नागानन्द, ३।१८)

तीव्रं निर्वाणहेतुर्यदपि च विपुलं यत्प्रकर्षेण चाणु
प्रत्यक्षं यत्परोक्षं यदिह यदपरं नश्वरं शाश्वतं च।
यत्सर्वस्य प्रसिद्धं जगति कतिपये योगिनो यद्विदंति
ज्योतिस्तद् द्विप्रकारं सवितुरवतु वो बाह्यमाभ्यन्तरं च॥

जगत में सभी प्राणियों में प्रसिद्ध होने पर भी कुछ ही योगियों द्वारा ज्ञानगम्य, नश्वर होते हुए भी नित्य, समीपस्थ होते हुए भी दूरस्थ, प्रत्यक्ष होते हुए भी परोक्ष, विस्तीर्ण होते हुए भी अत्यधिक अणुरूप और तीव्र होते हुए भी मोक्ष की हेतुभूत, सूर्य की बाह्य तथा अन्तः दोनों प्रकार की ज्योति आपकी रक्षा करे।

—मयूर (सूर्यशतक, २९)

ध्वान्तस्यैवान्तहेतुर्न भवति मलिनैकात्मनः पाप्मनोऽपि
प्राक्पादोपान्तभाजां जनयति न परं पंकजानां प्रबोधम।
कर्ता निःश्रेयसानामपि न तु खलु यः केवलं वासराणां
सोऽव्यादेकोद्यमेच्छाविहितबहुबृहद्विश्वकार्योऽर्यमा वः॥

संसार में अपनी इच्छा से तथा एकमात्र अपने ही प्रयत्नों से अनेक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले, केवल मलिन आत्मा वाले अंधकार के विनाशक नहीं, अपितु पाप के भी विनाशक, केवल कमलों को विकसित करने

वाले नहीं अपितु चरणों (किरणों) के समीप रहने वालों को भी परम प्रबोध करने वाले, एवं केवल दिवस के कर्ता नहीं अपितु मोक्ष के भी कर्ता, सूर्य, आप लोगों की रक्षा करें।

—मयूर (सूर्यशतक)

चढ़ो गगन तरु धाय, दिनकर वानर अरुन मुख।
कीन्हों झकि झहराय, सकल तारका कुसुम बिन।

—केशव (रामचन्द्रिका, ५।१३)

सृष्टि

दे० 'संसार' भी।

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।

सब ओर से प्रकाशमान 'तप' से ऋत और सत्य प्रकट हुआ, उसी से रात्रि उत्पन्न हुई। उस तप से ही यह जल से युक्त महान समुद्र और सूक्ष्म जलों में व्याप्त आकाश प्रकट हुआ।

—ऋग्वेद (१०।१९०।१)

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।

जगत्-कर्ता ने जिस प्रकार पहले बनाया था, ठीक उसी प्रकार उसने अब भी सूर्य और चन्द्रमा, आकाश और पृथ्वी, अन्तरिक्ष और प्रकाश बनाये।

—ऋग्वेद (१०।१९०।३)

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।
संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुख-दुःख-हेतोः॥

सृष्टि का कारण क्या है? काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, पंचभूत, योनि, या इन सबका संयोग—ये सब तो चिन्त्य है, आत्मभाव न होने के कारण। और आत्मा भी सृष्टि का कारण नहीं है क्योंकि उसे सुख-दुख होता है।

—श्वेताश्वतर उपनिषद् (१।२)

All things began in order, so shall they end, and so shall they begin again; according to the ordainer of order and mystical mathematics of the city of heaven.

क्रम के नियामक और स्वर्गपुरी के रहस्यमय गणितज्ञ के निर्देशानुसार सभी वस्तुएं क्रमबद्ध प्रारंभ हुई, इसी प्रकार वे समाप्त भी होंगी, और इसी प्रकार वे पुनः प्रारंभ भी होंगी।

—सर टामस ब्राउन (दि गार्डेन आफ़ साइरस, अध्याय ५)

सेना

पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम्।

झंडा लेकर चलने वाली सेना का जयघोष बहुत ऊँचा हो।

—अथर्ववेद (३।१९।६)

सेना को चाहिए कि वह जनता के साथ एकरूप हो, ताकि जनता उसे अपनी ही सेना समझे। ऐसी सेना अपराजेय बन जाएगी।

—माओ-त्से-तुंग (माओ-त्से-तुंग की रचनाओं के उद्धरण)

Wherever there is a vast standing army, the government is the government of the sword.

जहां भी विशाल स्थायी सेना है, वहां की सरकार तलवार की सरकार है।

—डिज़रायली (लार्ड जार्ज बेंटिक—ए पोलिटिकल बायोग्राफ़ी)

सेनापति

यथा ह्यकर्णधारा नौ रथश्चासारथिर्यथा।
द्रवेद् यथेष्टं तद्वत् स्यादृते सेनापतिं बलम्॥

जैसे बिना नाविक की नाव जहां कहीं भी जल में बह जाती है, और बिना सारथी का रथ चाहे जहां भटक जाता है, उसी प्रकार सेनापति के बिना सेना भी जहां चाहे भाग सकती है।

—वेदव्यास (महाभारत, द्रोणपर्व, ५।१९)

सेवक

विनियोगप्रसादा हि किंकराः प्रभविष्णुषु ।

सेवकों पर स्वामियों की कृपा आदेश से ही लक्षित होती है।

—कालिदास (कुमारसंभव, ६।६२)

प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च ॥

जिन सेवकों के बुद्धि, पराक्रम और भक्ति—ये सभी गुण होते हैं, वे राजा के कल्याण के लिए होते हैं। इन गुणों से शून्य सेवक तो ऐश्वर्य व आपत्ति दोनों ही कालों में स्त्रीवत् (कोमल व पोष्य) ही होते हैं।

—विशाखदत्त (मुद्राराक्षस, १।१५)

अनभिज्ञो गुणानां यो न भृत्यैः अनुगम्यते ।

सेवक उस राजा को त्याग देते हैं जो उनके गुणों की उपेक्षा करता है।

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, १।७९)

आहारे बडवानलश्च शयने यः कुम्भकर्णायते
संदेशे बधिरः पलायनविधौ सिंहः शृगालो रणे ।
अन्धो वस्तुनिरीक्षणेऽथ गमने खंजः पटुः क्रन्दने
भाग्येनैव हि लभ्यते पुनरसौ सर्वोत्तमः सेवकः ।

भोजन करने में बड़वानल के समान, सोने में कुम्भकर्ण के समान, संदेश सुनने में बहरा, भागने में सिंह, युद्ध में शृगाल, वस्तुओं को देखने में अन्धा, चलने में लंगड़ा, रोने में चतुर—इस प्रकार का उत्तम सेवक भाग्य से ही मिलता है।

—अज्ञात

उन्नत्यै नमति प्रभुं प्रभुगृहान् द्रष्टुं बहिस्तिष्ठति
स्वद्रव्यव्ययमातनोति जडधीरागामिवित्ताशया ।
प्राणान् प्राणितुमेव मुञ्चति रणे क्लिश्नाति भोगेच्छया
सर्वं तद् विपरीतमेन कुरुते तृष्णान्धदृक् सेवकः ॥

तृष्णा से अन्धा बना हुआ सेवक जितनी भी लालसाएं रखता है, करता सब उनके विपरीत है। वह उन्नति करने के लिए अपने स्वामी के आगे झुकता है, स्वामी के घर में प्रवेश पाने के लिए घर के बाहर बैठा रहता है, भविष्य में धनलाभ की आशा से वह मूर्ख अपना धन व्यय करता है, जीवित रहने के लिए ही (स्वामी के) युद्ध में प्राण गँवा देता है तथा भोगों की कामना से कष्ट उठाता है।

—अज्ञात

सेवक सेव भुलांनियां, पंथ कुपंथ न जान ।
सेवक सो सेवा करै, जिहि सेवा भल मांन ॥

—कबीर (कबीर ग्रंथावली, पृ० २४९)

सेवक सो जो करै सेवकाई ।

—तुलसीदास (रामचरित मानस, १।२९०।२)

कोउ नृप होउ हमहि का हानी ।
चेरि छांड़ि अब होब कि रानी ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।१६।३)

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ ।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।३०६)

साह ही को गोतु गोतु होत है गुलाम को ।

—तुलसीदास (कवितावली, उत्तरकाण्ड, १०७)

सेवक को सेवा खोजने कहीं जाना नहीं पड़ता। वह अपने आप उसके पास आ जाती है।

—विनोबा (गीता-प्रवचन, पृ० २२२)

सेवा

दे० 'समाज-सेवा' भी।

देयमार्तस्य शयनं स्थितश्रान्तस्य चासनम् ।
तृषितस्य च पानीयं क्षुधितस्य च भोजनम् ॥

रोग आदि से पीड़ित मनुष्य को सोने के लिए शय्या, थके हुए को बैठने के लिए आसन, प्यासे को पानी तथा भूखे को भोजन तो देना ही चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, वन पर्व, २।५५)

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् पराम्
अष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ।
आर्ति प्रपद्येऽखिलदेहभागाम्
अन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥

मैं (रन्तिदेव) ईश्वर से आठों ऋद्धियों से युक्त परम गति नहीं चाहता हूं, मोक्ष भी नहीं चाहता। चाहता हूं कि सभी देहधारियों का दुःख मेरे ऊपर आ पड़े। मैं उनके हृदय में स्थित हो जाऊं जिससे वे दुःख रहित हो जाएं।

—भागवत (९।२१।१२)

यथा खात्वा खनित्रेण भूतले वारि विन्दति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रुषुरधिगच्छति ॥

जैसे मनुष्य कुदाल से पृथ्वी को खोदकर उसके तल से जल प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार गुरु की सेवा करने वाला शिष्य गुरु के पास विद्यमान विद्या को प्राप्त कर लेता है।

—चाणक्यनीति

अरण्यरुदितं कृतं शवशरीरमुद्वर्तितं।
स्थलेऽब्जमवरोपितं सुचिरमूषरे वर्षितम्।
श्वपुच्छमवनामितं बधिरकर्णजापः कृतः
धृतोऽन्धमुखदर्पणो यदबुधो जनः सेवितः॥

मूर्ख स्वामी की, की गई सेवा उसी प्रकार निरर्थक है जिस प्रकार से अरण्यरोदन, शव पर सुगन्धित पदार्थों का लेपन, स्थल में कमल लगाना, ऊसर भूमि में अधिक समय तक वर्षा, कुत्ते की पूंछ को सीधा करने का प्रयत्न, बहरे के कान में फुसफुसाना और अन्धे को दर्पण दिखाना।

—अज्ञात

सेवा श्ववृत्तिर्यैरुक्ता तैर्न सम्यगुदाहृतम्।
स्वच्छचारी कुत्र श्वा विक्रीतासुः क्व सेवकः॥

जिन लोगों ने सेवा करने को कुत्ते का जीवन कहा है, उन्होंने उदाहरण ठीक नहीं दिया। कहां तो स्वच्छन्द घूमने वाला कुत्ता और कहां तन तथा जीवन बेचे हुए सेवक!

—अज्ञात

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना।
सेवा धरमु कठिन जगु जाना॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२९३।४)

सबकी सेवा न परायी
वह अपनी सुख संसृति है;
अपना ही अणु-अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आनंद सर्ग)

सेवा सबसे कठिन व्रत है।

—जयशंकर प्रसाद (कंकाल, २५१)

सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः।

राजकीय अनुचर को लघु बना देने वाली सेवा को विद्वान लोग ठीक ही कुत्ते की वृत्ति कहते है।

—विशाखदत्त (मुद्राराक्षस, ३।१४)

कष्टोऽयं खलु भृत्यभावः।

यह भृत्यभाव बड़ा कष्टप्रद होता है।

—हर्ष (रत्नावली, प्रथम अंक)

अमोघफला हि महामुनिसेवा भवति।

महामुनियों की सेवा का फल अवश्य मिलता है।

—बाण (कादम्बरी)

यत्नेन सेवितव्यः पुरुषः कुलशीलवान् दरिद्रोऽपि।

सद्वंश में उत्पन्न तथा चरित्रवान पुरुष के निर्धन होने पर भी उसकी सेवा यत्नपूर्वक करनी चाहिए।

—शूद्रक (मृच्छकटिक, ८।१)

मौनान्मूकः प्रवचनपटुश्चाटुको जल्पको वा।
धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा दूरतश्चाप्रगल्भः।
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः।
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः॥

सेवा-कार्य अधिक कठिन है, योगीजन भी इसको पार नहीं कर पाते। क्योंकि चुपचाप रहने पर सेवक गूंगा, बोलने पर बकवादी, नज़दीक रहने पर धृष्ट, दूर रहने पर अकुशल, क्षमाशील होने पर कायर और असहिष्णु होने पर प्रायः बुरे परिवार का कहलाता है।

—भर्तृहरि (नीतिशतक, ५८)

अग्निरापः स्त्रियो मूर्खाः सर्पा राजकुलानि च।
नित्यं यत्नेन सेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट्।

अग्नि, जल, स्त्री, मूर्ख, सर्प और राजकुल इन छह की यत्न से सेवा करनी चाहिए, ये शीघ्र ही प्राणसंहारक होते है।

—अज्ञात

पुष्पार्थिनः सिंचन्ति अद्भिः तरुम्।

फूल चाहने वाले जल से पौधे को सींचते भी हैं।

—चाणक्यसूत्राणि

घर सेवा की सीढ़ी का पहला डण्डा है। इसे छोड़कर तुम ऊपर नहीं जा सकते।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० १२०)

सच्चा आनन्द, सच्ची शान्ति केवल सेवा-व्रत में है। वही अधिकार का स्रोत है, वही शक्ति का उद्गम है। सेवा ही वह सीमेंट है जो दम्पति को जीवन-पर्यन्त स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है, जिस पर बड़े-बड़े आघातों का भी कोई असर नहीं होता। जहां सेवा का अभाव है, वहीं विवाह-विच्छेद है, परित्याग है, अविश्वास है।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ० १६७)

अगर समाज को विश्वास हो जाए कि आप उसके सच्चे सेवक हैं; आप उसका उद्धार करना चाहते हैं, आप निस्वार्थ है, तो वह आपके पीछे चलने को तैयार हो जाता है लेकिन यह विश्वास सच्चे सेवाभाव के विना कभी प्राप्त नहीं होता।

—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद ५२)

हममे कितने ही ऐसे सज्जन है जिनके मस्तिष्क में राष्ट्र की सेवा करने का विचार उत्पन्न होता है, लेकिन बहुधा वह विचार ख्यातिलाभ की आकांक्षा से प्रेरित होता है। हम वह काम करना चाहते है जिसमें हमारा नाम प्राणिमात्र की जिह्वा पर हो, कोई ऐसा लेख अथवा ग्रन्थ लिखना चाहते हैं जिसकी लोग मुक्त कठ से प्रशसा करें, और प्राय: हमारे इस स्वार्थ-प्रेम का कुछ न कुछ बदला भी हमको मिल जाता है, लेकिन जनता के हृदय में हम घर नही कर सकते।

—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद ५२)

सेवा करने से हृदय शुद्ध होता है, अहंभाव दूर होता है, सर्वत्र परमात्मा का दर्शन करने का अभ्यास होकर बहुत शांति प्राप्त होती है।

—माधव स० गोलवलकर (पत्र रूप श्री गुरु जी, पृ० ४३६)

जब मैं अपने कुटुम्ब की सेवा करने में भी समर्थ नहीं हूं तब सारे भारत की सेवा करने पर कमर कसने का विचार धृष्टता है। इससे तो अच्छा यही होगा कि मैं अपना प्रयत्न अपने कुटुम्ब की सेवा तक ही केन्द्रित रखूं और ऐसा समझूं कि परिवार की सेवा द्वारा मैं पूरे देश की या यों कहिए कि पूरी मानवता की सेवा कर रहा हूँ। इसी में नम्रता है और इसी में प्रेम की भावना है।

—महात्मा गांधी (मद्रास में स्वदेशी पर भाषण, १४-२-१९१६)

मेरा धर्म-सिद्धान्त है ईश्वर की, और इसलिए मनुष्य जाति की, सेवा। पर एक भारतवासी के नाते मैं भारत की और एक हिन्दू के नाते भारतीय मुसलमानों की सेवा न करूं तो न ईश्वर की सेवा कर सकता हूँ, न मनुष्य जाति की।

—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, २६-१०-१९२४)

दृश्य ईश्वर क्या है? ग़रीब की सेवा।

—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, ५-२-१९२५)

मानव-जाति की सेवा भी तो अंत में तो अपनी ही सेवा है।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की नयी, डायरी, भाग १, २८३)

संत पुरुष के लिए एकांत में रहकर विचार मात्र से भी सेवा कर सकना संभव है। ऐसा लाखों में एक निकल सकता है।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की डायरी, भाग २, १५)

जो सच्ची सेवा करने वाला है, उसका प्रचार तो अपने आप होने वाला है।

—महात्मा गांधी (बिहार की क़ौमी आग में, ११३)

जो मनुष्य-जाति की सेवा करता है, वह ईश्वर की सेवा करता है।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन, भाग १, ९८)

अगर आप ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहते हों तो दरिद्रनारायण की सेवा करें।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय खंड ४१, पृ० ५०७)

हाथ में भी सेवा हो और हृदय में भी सेवा हो, तभी सच्ची सेवा हमारे हाथों बन पड़ेगी।

—विनोबा (गीता प्रवचन, पृ० ५१)

प्राप्तों की सेवा, सन्तों की सेवा, दुःखितों की सेवा और द्वेषकर्ताओं की सेवा—यह सर्वोत्तम सेवा है।

—विनोबा (विचार पोथी, ३)

जितनी दृष्टि व्यापक रखोगे, उतनी सेवा की क़ीमत बढ़ेगी। सेवा की क़ीमत उसके परिणाम पर निर्भर नहीं है।

—विनोबा (लोकनीति, पृ० २१६)

सेवा छोटी है या बड़ी, इसकी क़ीमत नहीं है। किस भावना से, किस दृष्टि से वह की जा रही है, उसकी क़ीमत है।

—विनोबा (लोकनीति, पृ० २१६)

यदि सेवा-कर्म उत्कृष्ट करना चाहते हो तो साधनों को पवित्र मानो। सजीव-निर्जीव साधनों को भी पवित्र समझो। उनको प्रसन्न रखो। दूसरा कोई देव नहीं है, दूसरा कोई धर्म नहीं है।

—साने गुरुजी (भारतीय संस्कृति, पृ० ७४)

सेवा करके विज्ञापन न करो, जिसकी सेवा की है, उस पर बोझ मत डालो। नहीं तो तुम्हारी सेवा पुनः स्वीकार करने मे उसे संकोच होगा और पिछली सेवा के लिये, जो उसने स्वीकार की थी, उसके मन में पछतावा होगा।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

हम अपनी विशाल भावनाओं का केन्द्र-विन्दु विश्वपति को बनाकर साथ-साथ विश्व की सेवा कर सकते है। विश्व-सेवा के अन्तर्गत ही जाति-सेवा तथा देश-सेवा भी आ ही जाती है। विश्व की सेवा से विश्वपति की सेवा तथा विश्वपति की सेवा से विश्व की सेवा हो ही जाती है।

—गंगेश्वरानंद (सद्गुरु स्वामी गंगेश्वरानंद के लेख तथा उपदेश, पृ० ६)

भारत की सेवा का अर्थ, करोड़ों पीड़ितों की सेवा है। इसका अर्थ दरिद्रता और अज्ञान, और अवसर की विषमता का अन्त करना है। हमारी पीढ़ी के सबसे बड़े आदमी की यह आकांक्षा रही है कि प्रत्येक आँख के प्रत्येक आँसू को पोंछ दिया जाय। ऐसा करना हमारी शक्ति से बाहर हो सकता है, लेकिन जब तक आँसू हैं और पीड़ा है, तब तक हमारा काम पूरा नहीं होगा।

—जवाहरलाल नेहरू (जवाहरलाल नेहरू के भाषण, प्रथम खंड, पृ० ३)

सेवा से मेवा।

—हिंदी लोकोक्ति

परग दीन जनुल यन्दु पक्ष मुंचिते चालु
परमात्मुनियंदु प्रीति पेट्ट नेटिके।

दीन और असहाय व्यक्तियों को सहायता दोगे तो अच्छा है। मानव की सेवा करो तो भगवान की अर्चना करने की आवश्यकता नहीं है।

[तेलुगु] —रामदास

जीव-सेवा से बढ़कर और कोई दूसरा धर्म नही है। सेवा-धर्म का यथार्थ अनुष्ठान करने से संसार का बंधन सुगमता से छिन्न हो जाता है।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, भाग ६, पृ० ५६)

भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं—सेवा और त्याग। इन्हीं मार्गो से उसको भावनाओं को तीव्र करो, शेष सब अपने आप ठीक हो जायगा।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत जाग्रत, पृ०५१)

सेवा करने वाले हाथ स्तुति करने वाले ओष्ठों की अपेक्षा अधिक पवित्र हैं।

—सत्य सांई बाबा

अपने सेवाधर्म के लिए नीचे लिखे तीन सिद्धान्त स्थिर कर लो—

(१) सेवा-धर्म को स्वीकार करना ही सर्वोत्तम है।
(२) याद रक्खो कि तुमसे कहीं अधिक बलवान् शक्ति तुम्हें सेवा के लिए सक्षम बनाती हैं।
(३) यह कभी न भूलो कि जो दैवी अंश तुममें है, वही दूसरे में भी हैं।

—अरुण्डेल (सेवा के मन्त्र)

सेवा के बदले की आशा मत रखना, यह याद रखना की तुमने जो सेवा की है, वह शरीर की नही, वल्कि आत्मा की सेवा की है।

—अरुण्डेल (सेवा के मन्त्र)

प्रत्येक पल सेवा करने का होता है।

—अरुण्डेल (सेवा के मन्त्र)

अगर मेरे पास बहुतेरे साधन होते तो मैं कितनी ज्यादा सेवा कर सका होता, इस उधेड़बुन में पड़ने की अपेक्षा जो साधन आज तुम्हारे मौजूद हैं, उनके द्वारा की गयी ज़रा-सी मदद कहीं क़ीमती है।

—अरुण्डेल (सेवा के मन्त्र)

सामने वाले आदमी में जिस गुण की कमी है, उस *सद्गुण के प्रत्यक्ष दर्शन उसे अपने व्यवहार द्वारा करा देना ही उसकी बड़ी से बड़ी सेवा है।*

—अरुण्डेल (सेवा के मन्त्र)

जो लोग यह सोचते है कि वे किसी भी प्रकार की सेवा करने के योग्य नही हैं, लगता है कि वे जानवरों और वनस्पतियों को भूल जाते है।

—अरुण्डेल (सेवा के मन्त्र)

विज्ञान और कला से जनसाधारण की सेवा तभी संभव है जब वैज्ञानिक और कलाकार जनसाधारण के साथ जन-साधारण के समान ही जीवन वितायें और बदले में कुछ माँगे बिना ही उन्हें अपनी वैज्ञानिक और कला-सम्बन्धी सेवाएं समर्पित करें—ऐसी सेवाएं जिन्हें स्वीकार और अस्वीकार करने की पूर्ण स्वतन्त्रता जनसाधारण को हो।

—तोल्स्तोय (ह्वाट शैल वी डू देन)

शक्तिशाली मनुष्यों की पंक्ति में मैं नहीं बैठना चाहता, क्योंकि उससे मेरे और निर्धन मनुष्यों के बीच में, जिनकी मैं सेवा करना चाहता हूँ, एक दीवार खड़ी हो जाएगी।

—कागावा

सैनिक

Their's not to make reply,
Their's not to reason why,
Their's but to do and die.

उनका[1] कार्य उत्तर देना नहीं है। उनका कार्य 'क्यों'? पूछना नहीं है। उनका कार्य तो केवल कर्त्तव्यपालन करना तथा मरना है।

—टेनिसन (दि चार्ज आफ़ दि लाइट ब्रिगेड)

सोना-जागना

दे० 'जागना-सोना'।

सौंदर्य

अहो तस्या रूपसम्पद्, रूपानुरूपं यौवनं, यौवन-सदृशं सौकुमार्यन्।

अहा, कैसा था उसका रूप! रूप के अनुरूप यौवन! यौवन के सदृश सुकुमारता।

—भास (अविमारक, २।२ के पश्चात्)

सवर्मलंकारो भवति सुरूपाणाम्।

रूपवानों के लिए सब कुछ अलंकार ही होता है।

—भास (अविमारक, २।८ के पश्चात्)

प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।

सौन्दर्य का फल प्रेमियों को रिझाना है।

—कालिदास (कुमारसंभव, ५।१)

न षट्पदश्रेणिरेव पंकजं सशैवलासंगमपि प्रकाशते।

कमल का पुष्प पंक्ति से युक्त जितना सुन्दर प्रतीत होता है, उतना ही सुन्दर सिवार से युक्त होने पर भी प्रतीत होता है।

—कालिदास (कुमारसंभव, ५।९)

आकृतिविशेषेश्वादरः पदं करोति।

सुन्दर आकृति वालों के प्रति सबका मन आदर हो ही जाता है।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, १।३ के पश्चात्)

---

१. सेना की विशिष्ट टुकड़ी के सैनिकों का।

सर्वास्ववस्थासु चारुता शोभान्तरं पुष्यति।

चारुता सभी अवस्थाओं में शोभा को पुष्ट करती है।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, २।५ के पश्चात्)

आमरणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेषः।
उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः॥

उस सुन्दरी का शरीर आभूषणों का भी आभूषण है, श्रृंगार की सामग्रियों का भी श्रृंगार है और उपमानों का भी उपमान है।

—कालिदास (विक्रमोवर्शीय, २।३)

किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।

सुन्दर आकृतियों के लिए क्या वस्तु अलंकार नहीं होती है!

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, १।१९)

सर्वास्वस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्।

सुन्दर आकृति वालो मे सभी अवस्थाओं में सुन्दरता विद्यमान रहती है।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, ६।५ के बाद)

अहो रूपातिशयः निष्पादनोपकरणकोशस्याक्षीणता विधातुः।

अरे! विधाता के असाधारण सौन्दर्य-रचना के उपकरण-कोश में कभी कमी नही आती!

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्व भाग, पृ० ४५३)

न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्।

स्वभावतः सुन्दर वस्तु आरोप्यमाण गुण की अपेक्षा नहीं रखती।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ४।२३)

रम्याणां विकृतिरपि श्रियं तनोति।

स्वभा तः सुन्दर हैं, उनकी विकृति भी शोभाधायक होती है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ७।५)

क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।

क्षण-क्षण में जो नवीनता को प्राप्त करना है, वही तो रमणीयता का स्वरूप है।

—माघ (शिशुपालवध, ४।१७)

अनेन ते सुन्दरि दर्शनेन वा
कृतोपचारोऽस्मि कियत् कदर्थ्यसे।
न वीक्षते वल्गु न मंजु भाषते
गता क्वचिल्लोचनवर्त्म मालती॥

हे सुन्दरी! तुम्हारे दर्शन से ही वस्तुतः हमारा अतिथि-सत्कार हो गया है। तुम इतना कष्ट न करो। यदि मालती लता केवल दृष्टि में भी आ जाये तो उसके देखने से ही तृप्ति हो जाती है। वह न मधुर दृष्टि से देखती है, न बोलती ही है, फिर भी मन की तृप्ति हो जाती है।

—परिमल पद्मगुप्त (नवसाहसांकचरित, ७।४७)

अहो रूपमहो कान्तिरहो लावण्यपाटवम्।
अनीदृशमिदं रूपं न जातं न जनिष्यते॥

आश्चयजनक रूप! आश्चर्यजनक देहकान्ति! आश्चर्य-जनक लावण्य की चारुता! ऐसा रूप न कभी हुआ है, न कभी होगा।

—धनंजय (द्विसंधानमहाकाव्य, ७।८३)

किमप्यस्ति स्वभावेन सुन्दरं वाऽप्यसुंदरम्।
यदेव रोचते यस्मै भवेत्तत्तस्य सुंदरम्॥

कोई भी वस्तु स्वभाव से न तो सुन्दर है और न असुन्दर। जिसे जो अच्छा लगे, उसे वही सुन्दर है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, २।५३)

कोकिलानां स्वरो रूपं, स्त्रीणां रूपं पातिव्रतम्।
विद्या रूपं कुरूपाणां, क्षमा रूपं तपस्विनाम्॥

कोयल का सौन्दर्य उसके स्वर में है, स्त्री का सौन्दर्य उसके पतिव्रत-धर्म (सतीत्व) में है, कुरूपों का सौन्दर्य विद्या में है और तपस्वियों का सौन्दर्य क्षमा में।

—चाणक्यनीति

आगच्छदुत्सवो भाति यथैव न तथा गतः।
हिमांशोरुदयः सायं चकास्ति न तथोषसि ॥

बीता हुआ उत्सव उतना अच्छा नहीं लगता जितना कि आने वाला, चन्द्रमा का उदय जितना सायंकाल सुशोभित होता है उतना प्रातः काल नहीं।

—अज्ञात

आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेषः।
उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः ॥

हे मित्र, उसका शरीर तो अलंकारों का भी अलंकार है, सजावटों की भी उत्कृष्ट सजावट है, उपमान का भी प्रति-उपमान है।

—अज्ञात

छेआ उणो पकिदिचंगिमभावणि जूजा
दक्खारसो ण महुरिज्जइ सक्कराए।

जो अनुभवी और चतुर हैं, वे स्वाभाविक सौन्दर्य पर ही मुग्ध होते हैं। मिठास के लिए द्राक्षारस को शक्कर की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

[प्राकृत] —राजशेखर (कर्पूरमंजरी, २।२६)

णं वम्मह भल्लि विंधणसील जुवाण जणि।

वह सुन्दरी युवकों के हृदयों को वेधने के लिए कामदेव के भाले के समान थी।

[अपभ्रंश] —धनपाल (भविसयत्त कहा, ५।७।६)

जाणमि एक्कु जे विहि घडइ सयतु वि ञ्जागू सामण्णु।
जिं पुणु आयउ णिम्मविउ को वि पयावइ अण्णु ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा ने सामान्य संसार की रचना की। इन सुन्दरियों की रचना कोई अन्य प्रजापति ही करता है।

[अपभ्रंश] —वीर कवि (जंबूस्वामि चरिउ)

ए सखि पेखलि एक अपरूप। सुनइत मानबि सपन सरूप।

—विद्यापति (विद्यापति पदावली)

ना कोई है ओहि के रूपा।
न ओहि काहु अस तइस अनूपा।
ना ओहि ठाऊँ न ओहि बिन ठाऊँ।
रूप रेख बिनु निरमल नाऊँ।

—जायसी (पदमावत, ८)

नैन जो देखा कँवल भा निरमर नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा दसन जोति नग हीर॥

—जायसी (पदमावत, ६५)

स्याम सों काहे की पहिचानि।
निमिष निमिष वह रूप न वह छबि रति कीजै जिहि जानि।

—सूरदास (सूरसागर)

ऐसी रचना सलोनी न भई, न है, न होनी।

—तुलसीदास (गीतावली, अयोध्या कांड, पद २१)

सोभा-सुधा पियें करि अँखियां दोनी।

—तुलसीदास (गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद २२)

निरखि निकाव अधिकाई बिथकित भई।
बच, बपू नैन-सम सोभा-सुधा भरिगे।

इनकी सुन्दरता की अधिकाई को देखकर उनकी वाणी विशेष शिथिल हो गई तथा नेत्र-सरोवर शोभा-सुधा से भर गए।

—तुलसीदास (गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद ३२)

आनन्द उमंग मन, जौवन उमंग तन,
रूप की उमंग उमगत अंग अंग है।

—तुलसीदास (कवितावली, अयोध्याकाण्ड, पद १५)

गोरे को बरनू देखें सोनो न सलोनो लागै,
साँवरे बिलोके गर्व घटत घटनि के।

गोरे (लक्ष्मण) के रंग को देखने पर सोना सुहावना नही लगता और साँवरे (राम) को देखने से श्याम मेघों का गर्व घट जाता है।

—तुलसीदास (कवितावली, अयोध्याकाण्ड, पद १६)

कहहु काहि पट तरिय गौरि गुन-रूपहि।
सिंधु कहिय केहि भाँति[1] सरिस[2] सर कूपहि॥

—तुलसीदास (पार्वतीमंगल, ७७)

त्यौं त्यौं प्यासेई रहत, ज्यौं ज्यौं पियत अघाय।
सगन सलोने रूप की, जुन चख तृषा बुझाय॥

—बिहारी (बिहारी सतसई, १६२)

१. किस तरह। २. सदृश।

लिखन बैठि जाकी सविहिं[1], गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥
—बिहारी (बिहारी सतसई, १६५)

तो तन अवधि अनूप[2], रूप लग्यो सब जगत को।
मो दृग लागे रूप, दृगन लगी अति चटपटी[3]॥
—बिहारी (बिहारी सतसई, १६६)

समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोय।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होय॥
—बिहारी (बिहारी सतसई, ७७२)

कुंदन को रंगु फीको लगै,
झलकै अति अंगन चारु गुराई।
आँखिन में अलसानि चितौन में
मंजु बिलासन की सरसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं,
'मतिराम' लहै मुसकानि मिठाई।
ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि
त्यों-त्यों खरी निकरै-सी निकाई॥
—मतिराम (मतिराम ग्रंथावली, पृ० २५४)

पल-पल में पलटन लगे, जाके अंग अनूप,
ऐसी इक व्रजबाल को, कहि नहि सकत सरूप॥
—पद्माकर

आवै मन माहि तब रहे मन ही मे गड़ि
नैननि बिलोकि बाल नैननि समाति है।
—पुहकर (रसरतन)

बार-बार पिय आरसी मत देखहु चित लाय।
सुंदर कोमल रूप में दीठ न कहुँ लगि जाय॥
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (प्रेम-माधुरी, १)

जिस सौन्दर्य में भोलेपन की झलक नहीं, वह बनावटी सौन्दर्य है।
—बालकृष्ण भट्ट (साहित्य सुमन, पृ० ८१)

१. चित्र। २. अनूपता की सीमा। ३. आकुलता।

सुन्दरता मनोभावों पर निर्भर होती है। माता अपने कुरूप बालक को भी सुन्दर समझती है।
—प्रेमचन्द (कायाकल्प, ७)

रूप हुलिया पहचानने की विद्या का दुश्मन है।
—प्रेमचन्द (गुप्तधन-२, पृ० २४)

सौन्दर्य लालसाओं का स्रोत है।
—प्रेमचन्द (गुप्तधन-२, इज्जत का खून, पृ० १८)

साहित्य का क्षेत्र है सौन्दर्य की सृष्टि और सौन्दर्य सम्बन्धवाचक है। सुन्दर की कल्पना ही बिना असुन्दर के नहीं हो सकती, वैसे ही जैसे प्रकाश अन्धकार के सम्बन्ध से ही व्यक्त हो सकता है।
—प्रेमचन्द (विविध प्रसंग, पृ० ११३)

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करुण कामना मूर्ति;
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।
—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

घिर रहे थे घुंघराले बाल
अंस अवलम्बित मुख के पास,
नील घन-शावक से सुकुमार
सुधा भरने को विधु के पास।
—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ बन बीच गुलाबी रंग।
—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

हृदय की अनुकृति वाह्य उदार
एक लम्बी काया, उन्मुक्त।
—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।
—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, इड़ा)

शशि मुख पर घूँघट डाले
अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आये।

—जयशंकर प्रसाद (आंसू, पृ० १६)

घन में सुन्दर बिजली-सी
बिजली में चपल चमक सी,
आँखों में काली पुतली
पुतली में श्याम झलक सी।

जयशंकर प्रसाद (आंसू, पृ० १६)

बाँधा था विधु को किसने
इन काली ज़ंजीरों से
मणि वाले फणियों का मुख
क्यों भरा हुआ हीरों से ?

—जयशंकर प्रसाद (आंसू, पृ० २१)

मुख-कमल समीप सजे थे
दो किसलय से पुरइन के
जल-बिन्दु सदृश ठहरे कब
उन कानों में दुख किनके ?

—जयशंकर प्रसाद (आंसू, पृ० २३)

चंचला स्थान कर आवे,
चंद्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी।

—जयशंकर प्रसाद (आंसू, पृ० २४)

विश्वात्मा ही सुन्दरतम है।

—जयशंकर प्रसाद (प्रेमपथिक)

क्षणभंगुर सौन्दर्य देखकर रीझो मत, देखो ! देखो !!
उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्व मात्र में छाई है।

—जयशंकर प्रसाद (प्रेमपथिक)

लोग प्रिय-दर्शन बताते इन्दु को
देखकर सौन्दर्य के इक बिन्दु को
किंतु प्रिय-दर्शन स्वयं सौन्दर्य है
सब जगह इसकी प्रभा ही वर्य है।

—जयशंकर प्रसाद (कानन कुसुम)

हे लाज भरे सौन्दर्य !
बता दो मौन बने रहते हो क्यों ?

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, प्रथम अंक)

कैसी कड़ी रूप की ज्वाला ?
पड़ता है पतंग सा इसमें मन होकर मतवाला।

—जयशंकर प्रसाद (चंद्रगुप्त, चतुर्थ अंक)

उपनिषदों के षोडशकला-पुरुष के प्रतिनिधि बने सोलह कलावाले पूर्ण अवतार श्री कृष्णचन्द्र। सुन्दर नर-रूप की यह पराकाष्ठा थी। नारी-मूर्ति में सुन्दरी की, ललिता की, सौन्दर्य-प्रतिमा के अतिरिक्त सौन्दर्य-भावना के लिए अन्य उपाय भी माने गये।

—जयशंकर प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ६१)

रूप-सौन्दर्य से मध्यम कोटि की वस्तु नाद-सौन्दर्य या शब्द-माधुर्य है।

—रामचन्द्र शुक्ल (रस मीमांसा, पृ० ५७)

मन की दर्शन-वृत्ति की रागात्मिका दशा ही सौन्दर्य की अनुभूति कहलाती है।

—रामचन्द्र शुक्ल (रस मीमांसा, पृ० ५७)

भीतर का सौदर्य देखा तो बाहर का फीका लगेगा।

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, ६६३)

सौन्दर्य की स्तुति होनी चाहिए। लेकिन वह मूक ही अच्छी है।

—महात्मा गांधी (संपूर्ण गांधी वाङमय, खंड ४६, पृ० १६०)

खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे,
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी, तड़ित-द्युति ने क्षमा मांगी।

—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (गीतिका, कविता २)

'सुन्दर' का सम्मान करना किसी भी जाति की महिमा की कसौटी है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (विचारप्रवाह, पृ० २६१)

जो जाति जितनी ही अधिक सौन्दर्य प्रेमी है, उसमें मनुष्यता भी उतनी ही अधिक होती है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कल्पलता, पृ० १३८)

शोभा का मूल उत्स तो आत्मदान में है। जहां अपने-आपको दलित द्राक्षा की तरह निचोड़ कर समर्पित कर देने की प्रकृति नहीं है, वहां कचधार्य, देहधार्य, परिधेय और विलेपन जैसे मंडन द्रव्यों के निरन्तर प्राप्त होते रहने पर भी और रूप, वर्ण, प्रभा, राग, आभिजात्य, विलासिता, लावण्य, छाया और सौभाग्य के सुलभ होते रहने पर भी सच्चा सौन्दर्य नहीं बन पाता।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (मेघदूत—एक पुरानी कहानी)

उसका सारा मुखमण्डल स्वास्थ्य, सौन्दर्य और शृंगार से दिप रहा था।

—इलाचन्द्रजोशी (प्रेत और छाया, पृ० २१६)

सौन्दर्य व्यक्त भी है और अव्यक्त भी। साकार की सीढ़ियों पर चढ़कर तुम निराकार सौन्दर्य को निहार सकोगे।

—अमृतलाल नागर (मानस का हंस, पृ० ७२)

जो सौन्दर्य का प्रेमी होगा, वह सौन्दर्य को भोग कर नष्ट करना नहीं चाहेगा। श्रेष्ठ सौन्दर्य वह है, जिसे देखकर भोग-वासना निवृत्त हो जाती है।

—अखंडानंद (विभूतियोग, पृ०२७७)

मुखड़ा टुकड़ा था शरत् पूर्णिमा विधु का,
कोंपल सा सुन्दर अधर उत्स सा मधु का।

—जानकीवल्लभ शास्त्री (तीर तरंग, पृ० १७)

सौन्दर्य शक्ति है, सौन्दर्य आदर्श है, वह स्फूर्ति देता है, पवित्रता देता है, बलि की प्रेरणा देता है। जो असुन्दर है, वह फिर सत्य भी कैसे है?

—जैनेन्द्र कुमार (सुनीता, पृ० २२४)

किसी भी नारी या गृह की बदसूरती या खूबसूरती को केवल दस मिनट में संवारा जा सकता है, यही बात उल्टी भी लागू होती है।

—शिवानी (विषकन्या, पृ० १६)

ऐसी सिलसिली ओप सुन्दर कपोलन की
खिसल खिसल परै दीठि जिन परतें।

—अज्ञात

अंतड़ी में रूप, बक्से में छवि।
रूप भोजन पर और छवि आभूषणों पर निर्भर करती है।

—हिन्दी लोकोक्ति

एक हुस्न[1] आदमी, हज़ार हुस्न कपड़ा
लाख हुस्न ज़ेवर, करोड़ हुस्न नखड़ा।

—हिन्दी लोकोक्ति

रूप रोयेला भाग हँसेला।
सौन्दर्यवान रोयेगा, भाग्यवान हँसेगा।

—हिन्दी लोकोक्ति (बिहार प्रदेश)

क्या मुसव्वर[2] यार की तस्वीरे क़ामत खींचते।
खिंच न सकती उनसे वह गर ता क़यामत[3] खींचते।

— बहादुरशाह 'ज़फ़र'

है सलसलाहट ऐसी सी कुछ नर्म गात है,
जब वहां निगहका ध्यान पड़ा झट रपट गया।

—इन्शा

जो नक़ाब उठ्ठी मेरी आंखों पे पर्दा पड़ गया
कुछ न सूझा आलम उस पर्दानशीं का देखकर।

—मोमिन

मान ले कहना मेरा ए जान[4] हँस ले बोल ले
हुस्न यह दो दिन का है मेहमान, हँस ले बोल ले।

—नज़ीर

---

१. सौन्दर्य २. चित्रकार। ३. प्रलय तक।
४. हे प्राणप्रिय!

वागे शिगुफ़तः तेरा विसाते निशाते दिल,
अब्रे वहार ख़ुमकदह किसके दिमाग़ का।

तेरा प्रफुल्लित सौन्दर्योद्यान मेरे हृदय के आनन्द की शय्या है। वसन्त का मेघ (वृष्टि) मुझे इसके सामने अच्छा नही लगता।

—ग़ालिब (दीवान)

दिलचस्प है, आफ़त है, क़यामत है, ग़ज़ब है[1]
बात उनकी, अदा उनकी, कद उनका, चलन उनका।

—अकबर इलाहाबादी

हुस्न[2] वह जिस है बाज़ारे जहां में बाक़ी
फैले हैं जिसके लिए मुफ़लिसो ज़रदार[3] के हाथ।

—राजा गिरधारीप्रसाद 'बाक़ी'

उसकी आंखें हया[4] की किश्ती,
नज़रें उसकी हसीन[5] मन्दिर
उसकी बातें हरी की वंसी।

—सागर 'निज़ामी' (रससागर, 'औरत' कविता पृ० १६२)

तुम कि वैठे हुए इक आफ़त हो
उठ खड़े हो तो क्या क़यामत[6] हो।

—हातिम

दोनों ही जफ़ाजू है 'जिगर' इश्क़ हो या हुस्न
इक यार ने लूटा मुझे इक यार ने मारा।

—'जिगर' मुरादाबादी (कुल्लियाते जिगर, पृ० ७)

दिलफ़रेवी की अदा उसकी अनूप
रूप में थी राधिकासूं भी सरूप।

—फ़ाइज़

उठाके आइना दिखला दिया उसे मैंने
न सूझी आरिज़े गुल गूं[7] की जब मिसाल[8] मुझे।

—बर्क़

मय[9] में वह वात कहां जो तेरे दीदार[10] में है।
जो गिरा फिर न कभी उसको सँभलते देखा।

—अज्ञात

१. प्रलय। २. सौन्दर्य। ३. धनी व निर्धन। ४. लज्जा। ५. सुन्दर। ६. प्रलय। ७. फूल जैसे कपोल। ८. उपमा। ९. मदिरा। १०. दर्शन।

नै हर कि ब सूरते नेक् 'स्त सीरते ज़ेबा दरू' स्त।

जरूरी नहीं कि जो रूप में ठीक हो, वह सद्गुण-सम्पन्न भी हो।

[फ़ारसी] —शेख सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

दिट्ठुल फूल अम्हारे म्वाझथि।
तो देखि तरुणे सावइ मूझथि॥
तुछ फूल तारे मण हारे।
रयणिमुहां जणु गणिए तारे॥

उसकी दृष्टि के फूल हमारे माध्यस्थ्य में फूले होते हैं, तव उन्हें देखकर समस्त तरुण जन मोहित हो जाते हैं।

(उसके दृष्टि-पुष्प को देखकर) फूल तुच्छ हो गए और तारे मन में हार गए, मानो इसी कारण तारे रजनी-मुख गिने जाते हैं।

[दक्षिण कोसली भाषा] —रोड (राउल वेल, २०)

सुन्दरऽ तृप्ति रे अवसान नाहिं
जेते देखु थिले नुआ दिसु नाई।

सुन्दरता की तृप्ति कभी पूर्ण नहीं होती जव भी उस पर दृष्टि जाती है नवीनता ही दिखाई देती है।

[उड़िया] —राधानाथराय (चिलिका)

सूर्योदय की सुन्दरता और सूर्यास्त की शोभा, तारों भरी रात की छवि, पुष्पसज्जित घास-स्थली की छटा, चित्रकला, मूर्तिकला तथा वास्तुकला की शोभा, बच्चों तथा कन्याओं का माधुर्य—ये मुझे आश्चर्य एवं हर्ष से परिपूर्ण कर देते है और मैं आत्मविभोर हो जाता हूं।

—हरदयाल

आवश्यकता की समाप्ति के वाद भी जो वस्तु अवशिष्ट रह जाती है, वही सौन्दर्य है और वह सौन्दर्य हमें प्राप्ति के रूप में मिलता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

सौन्दर्य ईश्वर द्वारा उपहार है।

—अरस्तू

सौन्दर्य संसार की सभी संस्तुतियों से बढ़कर है।

—अरस्तू

जिस उद्देश्य के जिए यह उपयोगी है, उसके लिए हर वस्तु अच्छी और सुन्दर होती है परन्तु जिसके लिए अनुपयोगी होती है, उसके लिए बुरी और कुरूप।

—सुक़रात

सौन्दर्य वह पथ है, जो आत्मजयी मानव को 'स्व' की ओर ले जाता है।

—खलील जिब्रान (धरती के देवता, पृ० ३३)

Beauty dwells in purity. Beauty shines in virtues.

सौन्दर्य पवित्रता में रहता है और गुणों में चमकता है।

—शिवानन्द (थॉट पॉवर, पृ० १२८)

Beauty of place translates itself to the Indian consciousness as God's cry to the soul.

स्थान का सौन्दर्य भारतीय चेतना को आत्मा के लिए ईश्वर की पुकार प्रतीत होता है।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज वर्क्स, खण्ड २, पृ० २१८)

Politics influences aesthetics; power also looks beautiful, particularly unequalled power.

राजनीति सौन्दर्य-बोध को प्रभावित करती है। सत्ता भी, विशेषकर अतुलनीय सत्ता, सुन्दर दिखाई देती है।

—राममनोहर लोहिया (इंटरवेल ड्यूरिंग पालिटिक्स पृ० १३७)

True simplicity is the secret of true beauty.

सच्चे सौन्दर्य का रहस्य सच्ची सरलता है।

—वासवानी (दि लाइफ़ ब्युटिफुल, पृ० ८८)

Beauty provoketh thieves sooner than gold.

चोरों के लिए सुवर्ण की अपेक्षा सौन्दर्य अधिक शीघ्र उत्तेजित करता है।

—शेक्सपियर (ऐज यू लाइक इट, १।३)

Beauty is a witch,
Against whose charms faith melteth into blood.

सौन्दर्य एक जादुगरनी है जिसके जादू से विश्वास द्रवित होकर रक्त में चला जाता है।

—शेक्सपियर (मच एडो एवाउट नथिंग, २।१)

Beauty doth varnish age.

सौन्दर्य अवश्य ही वय को चमका देता है।

—शेक्सपियर (लव्स लेबर्स लास्ट, ४।३)

Beauty is bought by judgment of the eye.

सौन्दर्य दृष्टि के निर्णय से खरीदा जाता है।

—शेक्सपियर (लव्स लेबर्स लास्ट, २।१)

So beauty blemish'd once's forever lost.

सौंदर्य एक बार दोपग्रस्त हुआ तो सदैव के लिए नष्ट हो जाता है।

—शेक्सपियर (दि पैशनेट पिलिग्रिम, १३)

Beauty lives with kindness.

सौन्दर्य दयालुता का सहचर है।

—शेक्सपियर (टू जेंटिलमेन आफ वेरोना, ४।२)

A beautiful face is a silent commendation.

सुन्दर मुख मौन प्रशंसा है।

—बेकन (एपोथेग्म्स, १२)

That is the best part of beauty, which a picture cannot express.

सौन्दर्य का वही अंश सर्वोत्कृष्ट है जिसे चित्र अभिव्यक्त नहीं कर सकता।

—बेकन (एसेज, आफ़ ब्यूटी)

A thing of beauty is a joy for ever.

सुन्दर वस्तु शाश्वत आनन्द है।

—कीट्स (एण्डीमियॉन, सर्ग १)

'Beauty is truth, truth beauty'—that is all
Ye know on earth, and all ye need to know.

पृथ्वी पर तुम बस इतना ही जानते हो और तुम्हें इतना ही जानना पर्याप्त भी है कि 'सौन्दर्य सत्य है और सत्य सौन्दर्य है'।

—कीट्स (ओड आन ए ग्रीशियन अर्न)

Love built on beauty, soon as beauty, dies.

सौन्दर्य पर आधारित प्रेम सौन्दर्य की ही भांति, शीघ्र नष्ट हो जाता है।

—जान डोन

Beauty is the lover's gift.

सौन्दर्य प्रेमी का उपहार है।

—विलियम कानग्रेव (दि वे आफ़ दि वर्ल्ड, १।४)

Beauty is in the eye of the beholder.

सौन्दर्य दर्शक की दृष्टि में होता है।

—मारग्रेट वुल्फ़ हंगरफ़ोर्ड

सौभाग्य

सर्वास्वस्थास्वतिमधुरता प्रयास्यति सौभाग्यम्।

सौभाग्य सभी अवस्थाओं में मधुरता प्राप्त करेगा।

—वीणावासवदत्ता

स्त्री

दे० 'नारी' भी।

हाड न सग्गा होय, नेह सगा सोही सगा।
येह अचंभा जोय, माँ देखे महलीजलै॥

प्रेम ही ऐसा सम्बन्ध है जो दो व्यक्तियों को रक्त सम्बन्ध न होने पर भी एक कर देता है। देखो न, पुरुष के मर जाने पर अपने उदर से उत्पन्न करने वाली मां केवल रो कर रह जाती है, साथ प्राण नहीं दे पाती। लेकिन स्त्री प्रेम के कारण उसके साथ जलकर प्राण त्याग देती है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

स्त्रियां, जब उनमें समझ हो तब भी, विचित्र प्राणी होती हैं।

—मार्क्स (एंगेल्स को पत्र, दि विज़डम आफ़ कार्ल मार्क्स, न्यूयार्क, १९६७ में वीमेन में उद्धृत)

स्त्री-पुरुष

दे० 'नर-नारी'।

स्तुति

त्वदनुस्मृतिरेव पावनी स्तुतियुक्ता
न हि वक्तुमीश सा।
मधुरं हि पयः स्वभावतो
ननु कीदृक् सितशर्करान्वितम्॥

हे नाथ! यों तो आपका स्मरण ही अतीव लोक-पावन है, फिर उसके साथ यदि स्तुति का समावेश हो जाए, तब तो फिर उसकी महिमा का कहना ही क्या? दूध स्वभाव से ही मधुर होता है, फिर उसमें यदि मिश्री या शकर मिला दी जाए, तब तो फिर उसके स्वाद का कहना ही क्या?

—उपमन्यु

यथाल्पमप्यौषधमुन्मदं गदं
यथामृतं स्तोकमपि क्षयाद्भयम्।
ध्रुवं तथैवाप्सुरपि स्तवः प्रभोः
क्षणादघं दीर्घमपि व्यपोहति॥

जैसे थोड़ी-सी औषधि भी भयंकर रोग को शान्त कर देती है और जैसे थोड़ा-सा अमृत भी मृत्यु के भय को दूर कर देता है, वैसे ही थोड़ी-सी भी ईश्वर की स्तुति बहुत-से पापों को शीघ्र ही नष्ट कर देती है।

—जगद्धर भट्ट (स्तुतिकुसुमांजलि, ७।१०)

स्थान

दाक्ष्यमेकपदं धर्म्यं दानमेकपदं यशः।
सत्यमेकपदं स्वर्ग्यं शीलमेकपदं सुखम्॥

धर्म का मुख्य स्थान दक्षता है। यश का मुख्य स्थान दान है। स्वर्ग का मुख्य स्थान सत्य है। सुख का मुख्य स्थान शील है।

—महाभारत (वनपर्व, ३१३।७०)

नासमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ।

जब तक दूसरी जगह न देख ले, तब तक पुरानी जगह न छोड़े ।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।१०२)

स्थानस्थितानि पूज्यन्ते पूज्यन्ते च पदे स्थिताः ।
स्थानभ्रष्टा न पूज्यन्ते केशा दन्ता नखा नराः ॥

अपने स्थान तथा पद पर स्थित ही सम्मानित होते हैं। स्थानभ्रष्ट केशों, दांतों, नाखूनों तथा मनुष्यों का सम्मान नहीं किया जाता है।

—शौनकीयनीतिसार

स्थानं प्रधानं न बलं प्रधानं,
स्थाने स्थितिः कापुरुषोऽपि शूरः।

स्थान प्रधान है, बल प्रधान नहीं है। स्थान पर स्थित कायर पुरुष भी शूर हो जाता है।

—अज्ञात

नक्रः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति ।
स एव प्रच्युत स्थानाच्छुनापि परिभूयते ॥

घड़ियाल अपने स्थान पर बैठकर गजराज को भी खींच लेता है। किन्तु वही अपने स्थान से हटकर कुत्ते से भी हार जाता है।

—अज्ञात

मुझे कोई निश्चित स्थान खड़े होने के लिए दे दो तो मैं पृथ्वी को खिसका दूंगा।

—आर्कमिडीज (पप्पस अलेक्जेंडर के संग्रह में प्राप्त)

स्थायित्व

ज़िन्दगी जामे ऐश[1] है लेकिन
फ़ायदा क्या अगर मुदाम[2] नहीं।

—वली

१. सुखकर प्याला। २. स्थायी।

स्थितप्रज्ञ

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

हे अर्जुन ! जब मनुष्य मनोगत सब कामनाओं को त्याग देता है और आत्मा में आत्मा से ही संतुष्ट रहता है, तब उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व २६।५५ अथवा गीता, २।५५)

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

दुःखों में जिनका मन उदास नहीं होता, सुखों में जिसकी आसक्ति नहीं होती, तथा जो राग, भय व क्रोध से रहित होता है, उसको स्थितप्रज्ञ मुनि कहते हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व २६।५६ अथवा गीता, २।५६)

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

जो पुरुष सर्वत्र आसक्तिरहित होकर शुभ तथा अशुभ वस्तु को प्राप्त करने पर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, वह स्थितप्रज्ञ होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व २६।५७ अथवा गीता, २।५७)

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही मनुष्य जब सब ओर से अपनी इन्द्रियों को इन्द्रिय-विषयों से समेट लेता है, तब वह स्थितप्रज्ञ होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, २६।५८ अथवा गीता, २।५८)

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

जिस पुरुष की इन्द्रियां वश में होती हैं, वह स्थितप्रज्ञ होता है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व २६।६१ अथवा गीता, २।६१)

जातस्य नियतो मृत्युः पतनं च तथोन्नतेः।
विप्रयोगावसानस्तु संयोगः संचयः क्षयः।।
विज्ञाय न बुधाः शोकं न हर्षमुपयान्ति ये।
तेषामेवेतरे चेष्टां शिक्षन्तः सन्ति तादृशाः।।

जो जन्म ले चुका है, उसकी मृत्यु निश्चित है। जो ऊंचा चढ़ चुका है, उसका नीचे गिरना भी अवश्यंभावी है। संयोग का अवसान वियोग में ही होता है और संग्रह हो जाने के बाद उसका क्षय होना भी निश्चित बात है। यह समझकर विद्वान पुरुष हर्ष और शोक के वशीभूत नहीं होते और अन्य मनुष्य भी उन्हीं के आचरण से शिक्षा लेकर वैसे ही बनते हैं।

—ब्रह्मपुराण (२१२।८९-९०)

नायाति वाडवशिखिक्वथनेन तापं
शैत्यं हिमाद्रिपयसा विशतान वाब्धिः।
कश्चिद्गभीरमनसां सततं विषाद-
काले प्रमोदसमये च समोऽनुभावः।।

सागर बाडवाग्नि की गर्मी से संतप्त नहीं होता है और न हिमालय के जल के प्रवेश से शीतल होता है। इसी प्रकार निरंतर गंभीर मन वाले लोग हर्ष व विषाद के समय समान रहते हैं।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।२६६६)

तम्हा पंडिए नो हरिसे, नो कुप्पे।

आत्मज्ञानी साधक को ऊँची या नीची किसी भी स्थिति में न हर्षित होना चाहिए, न कुपित।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।३)

लाभुत्ति न मज्जिज्जा,
अलाभुत्ति न सोइज्जा।

मिलने पर गर्व न करे। न मिलने पर शोक न करे।

[प्राकृत] —आचारांग (१।२।५)

गीता में हिमालय को स्थिरता की विभूति बतलाया है। जिसकी बुद्धि स्थिर है, वह हिमालय में ही है।

—विनोबा (विचारपोथी, ३७)

गाल गॉण्डिन्यम् बोल पॅड़िन्यम्,
दॅपिन्यम् तो यस् यि रोचे।
सहज कुसमौ पूज करिन्यम्,
बो अमलॉन्य् तॅ कस् क्या म्वचे।

कोई मुझे गाली दे या बुरा भला कहे। जो जिसको रुचे, वही मुझे कहा करे। कोई सहज कुसुमों से मेरी पूजा करे, मुझ पर कोई मैल नहीं चढ़ेगा, क्योंकि मैं अमलिन हूं। ऐसी स्थिति में किसी को क्या मिलेगा?

[कश्मीरी] —लल्लेश्वरी (लल्लवाख, क्र० ५५)

स्नान

गुणा दशस्नानकृतो हि पुंसो
रूपं च तेजश्च बलं च शौचम्।
आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वं
दुःस्वप्ननाशं च तपश्च मेधा।।

मनुष्यों को स्नान करने से दस गुणों की प्राप्ति होती है—रूप, तेज, बल, शुद्धता, आयु, आरोग्य, अलोलुपता, कुस्वप्ननाश, तप और मेधा।

—विश्वामित्र स्मृति (१।८६)

स्नेह

अतिस्नेहः खलु कार्यदर्शी।

जो अधिक स्नेह करता है, वही ठीक उपाय सुझा सकता है।

—कालिदास (विक्रमोर्वशीय, १।८ के पश्चात्)

न हि बुद्धिगुणेनैव सुहृदामर्थदर्शनम्।
कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मः स्नेहेनाप्युपलभ्यते।।

केवल बुद्धि के बल से कोई अपने मित्रों का काम नहीं कर सकता। कार्य-सिद्धि का सूक्ष्म पथ स्नेह से ही पूर्ण होता है।

—कालिदास (मालविकाग्निमित्र, ४।६)

न हि स्नेहो युक्तायुक्तमनुरुणद्धि।

स्नेह उचित अथवा अनुचित को नहीं रोकता।

—राजशेखर (विद्धशालभंजिका)

जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू ।
सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२५६।३)

स्नेह से हृदय चिकना हो जाता है। परन्तु बिछलने का भय भी होता है ।
—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, द्वितीय अंक)

चेलिमि मैं जेदु मेंतिय जेललु गानि
बलिमि मैं बालु द्रावँप बादु गादु ।

प्यार से विष भी पिला सकते हैं, लेकिन बलपूर्वक दूध पिलाना मुश्किल है।
[तेलुगु] —कंदुकूरि वीरेशलिंग पंतुलु (नीतिचंद्रिका)

स्नेह में आवरण की अर्गला कहां हो सकती है? स्नेही के अश्रु-बिन्दु मन की बात को प्रकट कर ही देते हैं।
—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ७१)

स्नेह शून्य सब वस्तुओं को अपने लिए मानते हैं। स्नेह सम्पन्न अपने शरीर को भी दूसरों का मानते हैं।
— तिरुवल्वर (तिरुक्कुरल, ७३)

स्नेह-पथ में चलने वाला शरीर ही सजीव शरीर है, अन्यथा वह हाड़चर्म-वेष्टित सारहीन पदार्थ ही है।
—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ८०)

इस संसार में सबसे बड़ा जादूगर स्नेह है। व्याधि के प्रतिकार की प्रधान औषधि प्रणय है। नहीं तो हृदय की व्याधि को कौन शान्त कर सकता है?
—बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (दुर्गेशनन्दिनी, १७४)

स्पर्धा

यः स्पर्धया येन निजप्रतिष्ठां
लिप्सुः स एवाह तदुन्नतत्वम् ।

किसी की स्पर्धा करता हुआ जो व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा चाहता है, वह उसकी उन्नति ही प्रकट करता है।
—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, १०।४९)

स्पर्श

तोमार कल्याण स्पर्शे
पराजित जगतर
हिंसा पाप अकल्याण
असत्य कलुष ।

तुम्हारे कल्याणकारी स्पर्श से जगत की हिंसा, पाप, अकल्याण, असत्य और कलुष सभी पराजित होते हैं।
[असमिया] —नलिनीबाला देवी (कवि-श्रीमाला, पृ० १०४)

सन्तान का तन-स्पर्श शरीर को तथा उसके तोतले बोल कानों को सुख देते हैं।
—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६५)

स्पर्श-दोष

तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे ।
नगरग्राम दाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति ॥

तीर्थ में, विवाह के समय, युद्ध के अवसर पर, राष्ट्र-विप्लव के समय तथा नगर या ग्राम में आग लग जाने पर छुआछूत का दोष नहीं रहता है।
—तीर्थप्रकाश

स्पष्टवादिता

मैं किसान का लड़का हूं। किसान की ज़बान में मिठास नहीं होती। मेरी जीभ कुल्हाड़े जैसी है; और मेरी बात कड़वी लगे तो भी हम दोनों के हित की है। मैं साफ़ बात पसन्द करने वाला हूं।
—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० २३३)

There is no wisdom like frankness.
स्पष्टवादिता सर्वोच्च बुद्धिमत्ता है।
—डिजरायली (सिविल, पृ० ९)

स्पष्टीकरण

I fear explanations explanatory of things explained.

स्पष्ट कर दी गई बातों के स्पष्टीकरणार्थ दिए गए स्पष्टीकरणों से मुझे भय लगता है।

—अब्राहम लिंकन

स्मरण

दे० 'स्मृति'।

स्मारक

पैसे से ही स्मरण (स्मारक) क़ायम होता है—इस भ्रम ने कितना नुक़सान किया है!

—महात्मा गांधी (बापू के आशीर्वाद, २६६)

They only deserve a monument who do not need one; that is, who have raised themselves a monument in the minds and memories of men.

केवल वे लोग स्मारक के अधिकारी हैं, जिनको उसकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उन्होंने स्वयं ही लोगों के मनों व स्मृतियों में एक स्मारक बना लिया है।

—हैज़लिट

A monument to Newton! a monument to Shakespeare! Look up to Heaven—look into the human Heart. Till the planets and the passions—the effections and the fixed stars are extinguished—their names cannot die.

न्यूटन का स्मारक! शेक्सपियर का स्मारक! आकाश को देखो, मानवहृदय को देखो। जब तक ग्रह हैं और भावनाएं हैं—जब तक नक्षत्र और भाव नष्ट नहीं हो जाते—उनके नाम मर नहीं सकते।

—जॉन विलसन

स्मिति

दे० 'मुस्कान' भी।

मेरे चुप रहने पै क्या वो बाज़ रहते छेड़ से,
मुसकरा कर देखते फिर मुसकरा कर देखते।

—'जिगर' मुरादाबादी (शोला ए तूर, पृ० ६७)

तेरी मुस्कराहट में क्या दिलकशी है
यह फूलों पै सोई हुई चांदनी है।

—सरदार जाफ़री

दुःख आ पड़ने पर मुस्कराओ। उसका सामना करके विजयी होने का साधन इसके समान और कोई नहीं है।

—तिरुवल्लुवर (तिरुक्कुरल, ६२१)

The least you can give another is a smile—a smile full of love and joy. This will remove the load of worries weighing on his mind. A smile alone can do this.

अन्य व्यक्ति को तुम कम से कम एक मुस्कान तो दे ही सकते हो—प्रेम और आनन्द से भरी मुस्कान। यह उसके मन पर लदा चिंताओं का बोझ हटा देगी। मुस्कान ही यह कर सकती है।

—रामदास स्वामी (रामदास स्पीक्स, भाग १, पृ० ४६)

One may smile, and smile and be a villain.

यह संभव है कि व्यक्ति मुस्कराता रहे और मुस्कराता रहे और दुष्ट हो।

—शेक्सपियर (हैमलेट)

The robbed that smiles steals something from the thief.

जो लूटा जाने पर भी मुस्कराता है, वह चोर का कुछ चुरा लेता है।

—शेक्सपियर (ओथेलो, १।३)

What sunshine is to flowers, smiles are to humanity.

मानवता के लिए मुस्कानें वैसी ही हैं जैसे पुष्पों के लिए सूर्य का प्रकाश।

—एडीसन

What's the use of worrying
It never was worthwhile,
So, pack up your troubles in your old kit-bag,
And smile, smile, smile.

चिंता का क्या लाभ ? चिंता तो कभी भी उचित नहीं थी। अतः अपने कष्टों को अपने पुराने झोले में बन्द करो और मुस्कराओ, मुस्कराओ, मुस्कराओ।

—जार्ज आसफ़ (पैंक अप योर ट्रबिल्स इन योर ओल्ड किटबैग)

स्मृति

स्मरो वावाकाशाद् भूयः।

स्मरण ही आकाश की अपेक्षा उत्कृष्ट है।

—छान्दोग्योपनिषद् (७।१३।१)

अध्वन्यध्वनि तरवः पथि-पथि पथिकैरुपास्यते छाया।
विरलः स कोऽपि विटपी यमध्वगो गृहगातः स्मरति॥

मार्गों के किनारों पर वृक्ष हैं और हर मार्ग में पथिक उनका आश्रय लेते हैं लेकिन ऐसा वृक्ष विरला ही होता है जिसका स्मरण घर पहुँचकर पथिक करता हो।

—पंडितराज जगन्नाथ

अजहुं अवनि विहरत दरार मिस सो अवसर सुधि कीन्हें।

उस अवसर की स्मृति आने पर दरार फटने के व्याज से आज भी पृथ्वी विदीर्ण हो जाती है।

—तुलसीदास (गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद १३)

माला जपों न कर जपों, जिह्वा जपों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करैं मैं पाया विश्राम॥

—मलूकदास

सुमिरन ऐसा कीजिये, दूजा लखै न कोय।
ओंठ न फरकत देखिये, प्रेम राखिये गोय॥

—मलूकदास

बैठत उठत सयन सोवत निस चलत-फिरत सब ठौर।
नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न एक पर और॥

—भारतेन्दु हरिश्चंद्र (प्रेम-मालिका, १३)

मजबूरी में हमें उन लोगों की याद आती है, जिनकी सूरत भी विस्मृत हो चुकी होती है।

—प्रेमचन्द (रंगभूमि, परिच्छेद ३)

चिन्ता करता हूं मैं जितनी
उस अतीत की, उस सुख की,
उतनी ही अनंत में बनती
जाती रेखायें दुख की।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, चिन्ता सर्ग)

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे ?
जब सावन-घन-सघन-बरसते
इन आंखों की छाया भर थे !

—जयशंकर प्रसाद (लहर)

बस गयी एक बस्ती है
स्मृतियों की इसी हृदय में
नक्षत्र-लोक फैला है
जैसे इस नील निलय में।

—जयशंकर प्रसाद (आंसू, पृ० ९)

स्मृति जीवन का पुरस्कार है।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, तृतीय अंक)

अतीत की ओर मुड़-मुड़कर देखने की प्रवृत्ति सुख-दुःख की भावना से परे है। स्मृतियां हमें केवल सुखपूर्ण दिनों की झांकियां नहीं समझ पड़तीं। वे हमें लीन करती हैं, हमारा मर्मस्पर्श करती हैं।

—रामचन्द्र शुक्ल (रसमीमांसा, पृ० २३२)

इस सूखी दुनिया में प्रियतम
मुझ को और कहां रस होगा ?
शुभे ! तुम्हारी स्मृति के सुख से
प्लावित मेरा मानस होगा।

—अज्ञेय (पूर्वा)

तबीयत अपनी घबराती है जब सुनसान रातों में
हम ऐसे में तेरी यादों की चादर तान लेते है।

—'फ़िराक़' गोरखपुरी (बज्मे जिंदगी, रंगे शायरी, पृ० १००)

जिसको तुम भूल गए याद करे कौन उसको?
जिसको तुम याद हो वो और किसे याद करे?

—'जोश' मलीहाबादी (आज की उर्दू शायरी)

रश्क से नाम नहीं लेते कि सुन ले न कोई
दिल ही दिल में हम उसे याद किया करते है।

—नासिख

नहीं आती तो याद उनकी महीनों तक नहीं आती
मगर जब याद आते हैं तो अक्सर याद आते हैं।

—'हसरत' मूहानी

दिल धड़कने का सबब[1] याद आया
वो तेरी याद थी अब याद आया।

—अज्ञात

लज़्ज़ाते जहांरा हमा दर पाए फ़िगन्द।
जौक़े कि देहद दस्त जेयादे तो मरा।

तेरी याद में जो आनन्द मुझे प्राप्त होता है, उसने तमाम संसार के मजों को अपने पैरों से रौंद डाला है।

[फ़ारसी] —जामी

व तल्खस्त सब्रेके बर यादे ओस्त
कि तल्खी शकर बाशद अज दस्ते दोस्त।

उसकी स्मृति में जो असंतोष है वह कड़ुवा नहीं है। मित्र की दी हुई कड़ुवी वस्तु भी मीठी हो जाती है।

[फ़ारसी] —शेख सादी

सज्जण वल्ले गुण रहे, गुण भी वल्लणहार।
सूकण लागी बेलड़ी, गया ज सींचणहार॥

स्नेही चला गया, उसके गुणों की स्मृति मात्र रह गई। अब वह स्मृति भी जाने वाली है क्योंकि वह लता ही सूखने वाली है, उसको सींचने वाला चला जो गया है।

[राजस्थानी] —अज्ञात

1. कारण।

स्मृति माने आरम्भनी समाप्तिविहीन
स्वप्न तार गति पथ
प्रेम तार परिणति यार कोनो आरम्भनी नाइ।

स्मृति का अर्थ है समाप्ति-विहीन आरम्भ। स्वप्न उस का गति-पथ है। प्रेम उसकी परिणति है जिसका कोई आरम्भ नहीं है।

[असमिया] —नवकान्त बरुआ (चकुपानीः फागुनर)

हम स्मृतियों को सनातन और अपरिवर्तनीय नहीं मानते। हम तद्‌गत सत्य को सनातन और अपरिवर्तनीय समझते हैं। स्मृतियों में परिवर्तन करना पड़ेगा, इस भय से सत्य को नकारना वैसी ही मूर्खता होगी, जैसे घर बढ़ाने के डर से बच्चों की हत्या करना।

—विनायक दामोदर सावरकर (सावरकर विचार दर्शन, पृ० ८५)

यह याद क्या चीज़ होती है जो समय को हाथ से पकड़-कर ठहरा देती है।

—अमृता प्रीतम (एक थी अनीता, पृ० ६६)

Memory, the warder of the brain.

स्मृति मस्तिष्क की वार्डर[1] होती है।

—शेक्सपियर (मैकबेथ, १।६)

स्मृतिकार

मनुर्विष्णुर्यमो दक्षः अंगिरोऽत्रि बृहस्पतिः।
आपस्तम्बश्चोशना च कात्यायन-पराशरौ॥
वसिष्ठव्याससंवर्ता हरीतगौतमावपि।
प्रचेताः शंखलिखितौ याज्ञवल्क्यश्च काश्यपः॥
शातातपो लोमशश्च जमदग्निः प्रजापतिः।
विश्वामित्रपैठीनसी बौधायनपितामहौ॥
छागलेयश्च जाबालो मरीचिश्च्यवनो भृगुः।
ऋष्यश्रृंगो नारदश्च षट्त्रिंशत् स्मृतिकारकाः॥

मनु, विष्णु, यम, दक्ष, आंगिरा, अत्रि, बृहस्पति, आपस्तम्ब, उशना, कात्यायन, पराशर, वसिष्ठ, व्यास, संवर्त, हरीत, गौतम, प्रचेता, शंख, लिखित, याज्ञवल्क्य, काश्यप, शातातप, लोमश, जमदग्नि, प्रजापति, विश्वामित्र,

1. कारागार-प्रमुख।

पैठीनसि, वौधायन, पितामह, छागलेय, जाबाल, मरीचि, च्यवन, भृगु, ऋष्यश्रृंग तथा नारद—ये ३६ स्मृति-रचयिता है।

—शंखलिखित-स्मृति

स्वजन

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा।

शत्रु केवल देह पर आघात करता है किन्तु स्वजन हृदय पर आघात करता है।

—भास (प्रतिमानाटक, १।१२)

स्वारथ सुकृत न स्रम वृथा, देखु विहंग विचारि।
बाज पराये पानि परि, तू पंछिनि न मारि॥

—विहारी (विहारी सतसई, ६६६)

स्वतंत्र

दे० 'स्वतंत्रता'।

स्वतंत्रता

दे० 'स्वाधीनता', 'स्वराज्य' भी।

स्वातंत्र्यात् सुखमाप्नोति स्वातंत्र्याल्लभते परम्।
स्वातंत्र्यान्निर्वृत्ति गच्छेत् स्वातंत्र्यात् परमं पदम्॥

मनुष्य स्वतंत्रता से सुख को प्राप्त करता है। स्वतंत्रता से परम तत्त्व को प्राप्त करता है। स्वतंत्रता से निर्वृत्ति (शान्ति) को प्राप्त करता है। स्वतंत्रता से परम पद को प्राप्त करता है।

—अष्टावक्रगीता (१८।५०)

सव्वं परवसं दुक्खं, सव्वं इस्सरियं सुखं।

जो पराधीन है, वह सब दुःख है, और जो स्वाधीन है वह सर्व सुख है।

[पालि] —उदान (२।९)

देश की स्वाधीनता क़ानूनी वारीकियों से हासिल नहीं होती। उसके लिए या तो लोहे की तलवार ज़रूरी है या सत्याग्रह की खड्ग। प्रताप, शिवाजी, नेलसन, वेलिंग्टन, क्रूगर वग़ैरा वकील नहीं थे, अमानुल्ला वकील नहीं है, न लेनिन ही वकील था। इन सब में वीरता, स्वार्थ-त्याग साहस आदि गुण थे, यही वजह है कि ये इतनी सेवा कर सके।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४०, पृ० ४१७)

समाज को मुझसे अपनी रक्षा पाने का अधिकार तो है, किन्तु मेरी ही रक्षा के लिए मुझ पर ज़बर्दस्ती कोई चीज़ लादने का उसे कोई अधिकार नही है। मुझे ग़लती करने का अधिकार जब तक मेरी ग़लती किसी और को ख़तरे में नहीं डालती—मेरी आजादी का सारतत्त्व है।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० २९८)

स्वाधीनता सद्गुणों को जगाती है, पराधीनता दुर्गुणों को।

—प्रेमचन्द (कायाकल्प, पृ० ९२)

मेरी आवश्यकताएं परमात्मा की विभूति प्रकृति पूरी करती हैं। उसके रहते दूसरों का शासन कैसा?

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, प्रथम अंक)

ईश्वर ने सब मनुष्यों को स्वतन्त्र उत्पन्न किया है; परन्तु व्यक्तिगत स्वतन्त्रता वहीं तक दी जा सकती है, जहां दूसरों की स्वतन्त्रता में बाधा न पड़े। यही राष्ट्रीय नियमों का मूल है।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, तृतीय अंक)

व्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ है व्यक्ति-समता की प्रतिष्ठा, जिसमें समझौता अनिवार्य है।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० ९५)

सच्ची आजादी उसके भाग्य में नहीं, जो अपनी रक्षा खुशामद और सेवा से करता है। अपने आपको गँवाकर ही सच्ची स्वतंत्रता नसीब होती है।

—सरदार पूर्णसिंह ('कन्यादान' निबंध)

मनुष्य स्वतंत्रता-प्रिय है। किसी प्रकार के दासपन को वह नहीं सह सकता।

—सरदार पूर्णसिंह (अमरीका का मस्तयोगी वाल्टह्विटमैन)

एक घड़ी की भी परवशता कोटि नरक के सम है।
पल भर की भी स्वतन्त्रता सौ स्वर्गो से उत्तम है।

—रामनरेश त्रिपाठी (पथिक, तीसरा सर्ग)

नत हुए विना जो अशनि घात सहती है,
स्वाधीन जगत में वही जाति रहती है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० २१)

स्वातंत्र्य जाति की लगन, व्यक्ति की धुन है,
वाहरी वस्तु यह नहीं, भींतरी गुण है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (परशुराम की प्रतीक्षा पृ० २१)

यह जाति तो अपने आत्मसम्मान के प्रति सजग हो गई है, कष्टों की भट्टी में तपेगी। उसे तपना भी चाहिए। वह गुलामी के जुए को उतार फेंकने के प्रयास के क्रम में जितनी भी तकलीफ़ें आयें, बरदाश्त करेगी, बरदाश्त करनी ही चाहिए।

—महात्मा गांधी (मजिस्ट्रेट की धांधली, यंग इंडिया, १५-६-१९२१)

आर्थिक आज़ादी के विना, और जब तक ग़रीबी न मिटे, तब तक असली आज़ादी हो ही नहीं सकती। भूखे आदमी से कहना कि तुम आज़ाद हो···सिर्फ उसका मज़ाक़ करना है।

—जवाहरलाल नेहरू (विश्व-इतिहास की झलक, भाग १, पृ० ३२६)

आजादी एक ऐसी चीज़ है कि जिस वक़्त आप गफ़लत में पड़ेंगे, वह फिसल जाएगी। वह जा सकती है, वह ख़तरे में पड़ सकती हैं।

—जवाहरलाल नेहरू (लालक़िले के प्राचीर से, भाग १, पृ० ३४)

विचारों के प्रकाशन में वाहरी हस्तक्षेप बहुत बुरा है, लेकिन समाचारों को दवाने की मनोवृत्ति और कोशिश कही ज्यादा खतरनाक है।

—जवाहरलाल नेहरू (जवाहरलाल नेहरू वाङ्मय, खंड ७, पृ० ४०१)

जिस तंत्र के द्वारा हम अपनी आत्मा का दर्शन करने में, अपनी राष्ट्रीय आत्मा का साक्षात्कार करने में, अपनेपन को व्यक्त करने में समर्थ हों, वही स्वतंत्र होगा।

—माधव स० गोलवलकर (श्री गुरुजी समग्र दर्शन, खंड १, पृ० १४२)

हाथ पांव जकड़ो जो चाहो, है अधिकार तुम्हारा।
जंजीरों से कैद नहीं, हो सकता हृदय हमारा॥

—सोहनलाल द्विवेदी (भैरवी, पृ० ८८)

बुद्धिमान को स्वेच्छा से सही मार्ग पर चलना चाहिए। विवश होकर किसी वात को मानना मोहग्रस्त मूढ़ लोगों का काम है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (कुटज, पृ० २१)

स्वतंत्रता अनुभव करना ही जीवन है। पराभूत सजीव होकर भी मृत है।

—यशपाल (दिव्या, पृ० ५८)

सीस चढ़ाये बिनु भयो, कहो कौन स्वाधीन।

—वियोगी हरि (अनुराग मंजरी, पृ० ४९)

परतन्त्रता में समाज का 'स्व' दब जाता है, इसीलिए राष्ट्र स्वराज्य की कामना करते हैं, जिससे वे अपनी प्रकृति और गुण धर्म के अनुसार प्रयत्न करते हुए सुख की अनुभूति कर सकें।

—दीनदयाल उपाध्याय

रोटी की आजादी सिर्फ पेट भरना नहीं है, इन्सान के दिमाग़ को हर जेलखाने से निकालना है।

—रांगेय राघव (पांच गधे, पृ० ३५)

स्वतन्त्रता की साधना करने वाला अपने आत्मबल के सहारे ही आगे बढ़ता है। वह दूसरों के सहारे आगे बढ़ने की बात सोच ही नहीं सकता।

—नथमल मुनि (श्रमण महावीर, पृ० २६)

जब तक संसार में धर्ममय अर्थशास्त्र की प्रस्थापना नहीं होती, सर्वोदय करने वाले, मानव को शोभा देने वाले अर्थशास्त्र की स्थापना नहीं होती, तब तक संसार में सच्ची स्वतन्त्रता नहीं आ सकती। आज जो स्वतन्त्रता है, वह तो उसका ढोंग है, उसकी परछायी है, स्वतन्त्रता का भूत है। सच्चे अर्थ में मंगलदायक एवं आनन्ददायक, बिना अपवाद के सबका सर्वांगीण विकास करनेवाली स्वतन्त्रता अभी बहुत दूर है।

—साने गुरुजी (भारतीय संस्कृति, पृ० १५१)

यह हसरत रह गई किस-किस मजे से जिन्दगी करते
अगर होता चमन अपना, गुल अपना, बाग़बां अपना।

—मज़हर

मिटने वालों को वफ़ा का यह सबक़ याद रहे
बेड़ियां पैर में हों और दिल आज़ाद रहे।

—ब्रजनारायण चकबस्त

कभी वो दिन भी आयेगा जब अपना राज देखेंगे
जब अपनी ही ज़मीं होगी जब अपना आसमां होगा।

—अशफ़ाक़ उल्ला खां

सही जज़बाते हुर्रियत[1] कहीं मेटे से मिटते हैं
अबस[2] हैं धमकियां दारोरसन[3] की और जिंदां[4] की।

—अशफ़ाक़ उल्ला खां

मिले खुश्क रोटी जो आजाद रहकर,
तो वो खौफ़ो जिल्लत[5] के हलवे से बेहतर।

—इस्माइल मेरठी (हयातो कुल्लियाते इस्माईल, पृ० १०६)

दूद मां दुखंदी उये थी बाहि सां भडिको हणी,
जा दलाए जानि खे जज़िबात जूं चिणी गूंहणी।
जिअो मुख़ालिफ़ बाउ छुटिके तिअं करे तेजी घणी।

जब स्वतंत्रता की अग्नि बड़े वेग से भभक उठती है तब भावनाओं की चिनगारियों से शरीर को झुलसा देती है।

[सिंधी] —किशिनचंद 'बेवस' (कविता आज़ादिगी)

पारतन्त्र्यतिन् रत्नमेय्येक्काळुम् सौख्यो-
दारमे स्वातन्त्र्यत्तिन् पुल्लणिच्चेळिमारम्।

परतंत्रता के रत्नों से जगमगाने की अपेक्षा स्वतंत्रता की घास में उगी-बनी मेरी छोटी सी मलिन झोंपड़ी मेरे लिए सुखकर और संतोषदायिनी है।

[मलयालम] —शंकर कुरुप (ओटक्कुरल, कविता पुष्पगीतम् १)

विचार और कार्य की स्वतन्त्रता ही जीवन, उन्नति और कुशल-क्षेम का एकमेव साधन है।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृ० ३२१)

अपनी स्वतन्त्रता को बुद्ध, ईसा, मुहम्मद या कृष्ण के हाथों न बेचो।

—रामतीर्थ (रामहृदय, पृ० ४१)

स्वतंत्रता परमात्मा का ही गुण है।

—लोकमान्य तिलक

राजनैतिक क्षेत्रों में स्वतंत्रता की गंगा में स्नान करना अन्तिम लक्ष्य होता है।

—लोकमान्य तिलक (अकोला में ४ मई १९०८ का भाषण)

हम उन नींवों को रखने का काम तब तक जारी रखेंगे जब तक हम वहीं पर मर कर गिर नहीं जायेंगे और वहीं दफ़ना नहीं दिए जायेंगे। मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि हम पूर्ण संतोष के साथ मरेंगे कि भारत की स्वतंत्रता की शानदार इमारत समय आने पर हमारी हड्डियों पर खड़ी होगी।

—मोतीलाल नेहरू (१७ मार्च १९२८ को केंद्रीय धारा सभा में भाषण)

---

१. आजादी के उद्गार। २. निरर्थक। ३. सूली और फांसी का तख्ता। ४. जेल। ५. भय व अपमान।

स्वयं अपने प्रति उत्तरदायी होने का संकल्प ही स्वतन्त्रता है।

—नीत्शे

विश्व का इतिहास तो स्वतंत्रता की चेतावनी की प्रगतिमात्र है, अन्य कुछ नहीं।

—हेगेल (दर्शन का इतिहास, भूमिका)

यह तथ्य सुनिश्चित समझो कि जब दृढ़ संकल्प कर लोगे तभी तुम्हारा देश स्वतंत्र हो जाएगा।

— मैज़िनी

जब ज्ञान-दीप से मनुष्य का अन्तर्मन प्रकाशित हो जाता है, तो वह आत्मा की स्वतन्त्रता का अनुभव करता है।

—सैमुअल स्माइलस (कर्तव्य, पृ० ५)

उत्पादन की वर्तमान बुर्जुआ परिस्थितियों में स्वतंत्रता का अर्थ है स्वतंत्र व्यापार, स्वतंत्र क्रय-विक्रय।

—मार्क्स (कम्युनिस्ट घोषणापत्र)

मानव अधिकारों में से एक है अन्तःकरण की स्वतंत्रता अर्थात् अपनी पसन्द के धर्म को अपनाने का अधिकार। विश्वास का यह विशेषाधिकार या तो मानव-अधिकार के रूप में या मानव अधिकारों के फलस्वरूप अन्तर्निहित मान्यता प्राप्त है।

—मार्क्स ('यहूदी प्रश्न' पर लिखे गए एक लेख में)

मैं जानता हूं कि सर्वप्रथम विद्रोही सदा मौत के मुंह में ही जाता है। परन्तु ज़रा बताओ तो कि बिना बलिदानों के स्वतंत्रता किसको मिली है।

—रिलेयेव (कविता 'नालीवायको')

Independence and freedom imply using your own ears on every occasion, using your own eyes on every occasion.

स्वाधीनता और स्वतंत्रता का अर्थ है हर अवसर पर अपने कानों को काम में लाना, हर अवसर पर अपने नेत्रों का उपयोग करना।

—रामतीर्थ (इन वुड्स आफ़ गाड रियलाइजेशन, खण्ड १, पृ० ५२)

Remember that you will have to pay the price of freedom. Freedom can never he had by begging. It has to be got by force. Its price is blood.

स्मरण रखो कि स्वतंत्रता का मूल्य तुम्हें चुकाना ही होगा। स्वतंत्रता कभी भिक्षा मांगने से नहीं मिल सकती। इसे बल से ही प्राप्त करना होगा। इसका मूल्य खून है।

—सुभाषचंद्र बोस (जून १९४२ का एक रेडियो भाषण)

None can love freedom heartily, but good mean; the rest love not freedom, but licence.

सत्पुरुष ही स्वतन्त्रता को हृदय से प्यार कर सकते हैं। शेष व्यक्ति तो स्वतन्त्रता से नहीं, स्वतन्त्रता से प्यार करते हैं।

—मिल्टन (टेन्योर आफ़ किंग्स एण्ड मैजिस्ट्रेट्स)

It is a strange desire to seek power and to loose liberty.

मनुष्य की यह विचित्र इच्छा है कि वह सत्ता प्राप्त करना और स्वतन्त्रता को छोड़ देना चाहता है।

—बेकन (एसेज़, 'आफ़ ग्रेट प्लेस')

If you cannot be free, be as free as you can.

यदि तुम स्वतंत्र नहीं हो सकते, तो जितने स्वतंत्र हो सकते हो, उतने ही हो जाओ।

—एमर्सन (जर्नल्स, १८३९)

Necessity is the plea for every infringement of human freedom. It is the argument of tyrants, it is the creed of slaves.

मानव-स्वातंत्र्य के हर अतिक्रमण के लिए आवश्यकता का तर्क दिया जाता है। यह तानाशाहों का तर्क है, यह दासों का धर्म है

—विलियम पिट (हाउस आफ़ कामंस में इण्डिया बिल पर भाषण, १८ नवम्बर १७८३)

Material achievements, while necessary, do not meet the deeper needs of mankind. Man needs the higher freedoms, freedom to know, to debate freely to write and express his views.

भौतिक उपलब्धियाँ, आवश्यक होने पर भी, मानव जाति की गंभीरतर आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करतीं। मनुष्य को आवश्यकता है उच्चतर स्वतन्त्रताओं की जानने की स्वतंत्रता, मुक्त रूप से वाद-विवाद करने की स्वतंत्रता, लिखने और अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता।

—रिचर्ड निक्सन (लंदन में भाषण, २६ नवम्बर १९५८)

Among a people generally corrupt, liberty can not long exist.

व्यापक रूप से भ्रष्ट जनसमाज में स्वतंत्रता चिरस्थायी नहीं हो सकती।

—एडमंड बर्क (एक पत्र में)

Liberty too must be limited in order to be possessed.

स्वतंत्रता भी अधिकार में रह सके इसलिए सीमित होनी चाहिए।

— एडमंड बर्क (एक पत्र में)

The people never give up their liberties but under some delusion.

लोग अपनी स्वतंत्रता कभी नहीं छोड़ते, जब तक कि वे किसी धोखे में न हों।

—एडमंड बर्क (बकिंघमशायर की जनसभा में भाषण, १७८४ ई०)

The cause of freedom is the cause of God.

स्वाधीनता का पक्ष ईश्वर का पक्ष है।

—विलियम लियोल बाउलन (एडमंड बर्क, पंक्ति १८)

There can be no real freedom without the freedom to fail.

असफल होने की स्वतंत्रता के बिना वास्तविक स्वतंत्रता हो ही नहीं सकती।

—एरिक हाफ़र (दि आर्डियल आफ़ चेंज, १२)

स्वतंत्रता-संग्राम

जबकि हम स्वराज्य-यज्ञ को चालू रखना चाहते हैं, हमें चाहिए कि हम निकम्मे साहित्य का पढ़ना बन्द कर दें, निरर्थक बातें करना छोड़ दें और अपने जीवन का एक-एक क्षण स्वराज्य के काम में बिताने लगें।

—महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड ४१, पृ० २८८)

स्वतंत्रता के युद्ध में सैनिक और सेनापति का भेद नहीं। जिसकी खड्ग-प्रभा में विजय का आलोक चमकेगा, वही वरेण्य है। उसी की पूजा होगी।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, चतुर्थ अंक)

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नयी जवानी थी,
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहिचानी थी,
दूर फ़िरंगी को करने की मन में सबने ठानी थी।
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी॥

—सुभद्राकुमारी चौहान ('झांसी की रानी' कविता)

महलों ने दी आग, झोंपड़ी ने ज्वाला सुलगायी थी।
वह स्वतंत्रता की चिनगारी अन्तरतम से आयी थी॥

—सुभद्राकुमारी चौहान ('झांसी की रानी' कविता)

For freedom's battle once begun
Bequeathed by bleeding sire to son
Though baffled oft is ever won.

स्वतन्त्रता के लिए जो युद्ध एक बार प्रारम्भ हो जाता है, एवं पूर्वजों से पुत्रों को विरासत के रूप में मिलता जाता है, उसमें कई बार बाधाएं तो आ सकती है किन्तु अन्त में उसमें सदा ही विजय होती है।

—बायरन

स्वदेश-प्रेम

दे० 'देशभक्ति' भी।

यद्यपि सब जग का हित-चिन्तन सब को आवश्यक है,
पर प्रत्येक मनुज का पहला देश जाति का हक है।
—रामनरेश त्रिपाठी (पथिक, पृ० २८)

जिसकी रज में लोट-लोटकर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक-सरककर बड़े हुए हैं।
परमहंस सम बाल्यकाल में सब सुख पाये,
जिसके कारण 'धूल भरे हीरे' कहलाये।
हम खेले कूदे हर्षयुत जिसकी प्यारी गोद में॥
हे मातृभूमि! तुझको निरख मग्न क्यों न हो मोद में?
—मैथिलीशरण गुप्त (स्वदेश-संगीत, पृ० २४)

न बदले आदमी जन्नत से भी बेतुल हज़न[1] अपना।
कि अपना घर है अपना, और है अपना वतन अपना।
—'दास'

क्या हुआ गर मर गये अपने वतन[2] के वास्ते,
बुलबुलें क़ुर्बान[3] होती है चमन के वास्ते।
—कुंवर प्रतापचन्द्र 'आजाद' (तराना आजाद, 'वतन के वास्ते' कविता)

स्वदेशाभिमान

जिसको नही गौरव तथा निज देश पर अभिमान है।
वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है॥
—राजेन्द्रदेव सेंगर (सारन्धा, पृ० १५६)

स्वदेशी

दे० 'स्वराज्य और स्वदेशी' भी।

स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार कीजै,
विनय इतना हमारा मान लीजै।

1. दुख का घर। 2. देश। 3. बलि।

शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो,
न जाओ पास, उससे दूर भागो।
—महावीरप्रसाद द्विवेदी (सुमन)

जियें जब तक सदा धारण करें भोजन-वसन देशी,
मिले मिट्टी में मिट्टी जब मिले हमको कफन देशी।
—गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

स्वदेशी वह भावना है जो हमें दूर के बजाय अपने आसपास के परिवेश के ही उपयोग और सेवा तक सीमित रखती है।
—महात्मा गांधी, (मद्रास में 'स्वदेशी' पर भाषण, १४ फरवरी १९१६)

हमें जापान के बने सुन्दर वस्त्र पहनने चाहिए—ऐसा 'भगवद्गीता' में कहीं नहीं लिखा है, आपका जो धर्म है। प्रत्येक शास्त्र में यही लिखा है, आपका जो धर्म उसी से आपका उद्धार होगा। इस लिए हमारे देश के कारीगर अपने घरों में भजन गाते हुए जो कपड़ा बनाते है, उस वस्त्र को पहनना हमारा धर्म है।
—महात्मा गांधी (बम्बई में स्वदेशी पर भाषण, ७-९-१९१९)

बात मुंहिजे वितुं धार्यो आ विदेशी माल जो,
मुल्क जो जाणी मिठो, खारो खुशीअ सां खाइबो॥

हमने विदेशी वस्तुओं को प्रयोग न करने का व्रत लिया है। देश की खारी वस्तु को भी मीठा समझकर खुशी से खाया जाएगा।
—किशिनचंद 'बेवस' (कविता 'देसी हुनिर')

जे उण्यल हून्दी कफ़न में, ग़ैरु हिन्दी तन्दुका,
लाशु मरिणे बैदि बेवसि थी शकी, शरमाइबो॥

यदि हमारे कफ़न में एक भी अभारतीय तन्तु बुना हुआ होगा तो मरने के बाद हमारी लाश लज्जित हो जाएगी।
[सिंधी] —किशिनचंद 'बेवस' (कविता 'देसी हुनिर')

स्वधर्म

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

गुणहीन प्रतीत होने वाला स्वधर्म करने में सुगम प्रतीत होने वाले परधर्म से श्रेयस्कर है। स्वधर्म में मरना भी कल्याणकारक है और परधर्म भयंकर है।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व।२७।३५ अथवा गीता, ३।३५)

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् ।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥

गुणहीन प्रतीत होने वाला स्वधर्म आचरण करने में सुगम प्रतीत होने वाले परधर्म से श्रेयस्कर है क्योंकि स्वभाव से नियत किये हुए स्वधर्म रूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्मपर्व, ४२।४६ अथवा गीता, १८।४६)

स्वधर्म वह है जिसमें स्वास्थ्य के अनुरूप आहार और आचरण हो, बुद्धि के अनुरूप अध्ययन और चिन्तन हो, आनन्द के अनुरूप स्थिति हो, जिसमें आनन्द पराधीन न हो। आत्मस्वरूप धर्म का प्रकाश जीवन में हो, यह स्वधर्म है। जीवन में एकत्व आये तो वह स्वरूपानुरूप होगा।

—अखंडानद सरस्वती (कर्मयोग, पृ० २६३)

स्वपक्ष-त्याग

यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते ।
स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात् तैरेव हन्यते ॥

जो अपने पक्ष को त्याग कर दूसरे पक्ष के लोगों का सेवन करता है, वह अपने पक्ष के नष्ट हो जाने पर फिर उन्हीं के द्वारा मार डाला जाता है।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकांड।८७।१६)

स्वप्न

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।

यदि यह स्वप्न है तो न जागना ही अच्छा होता।

—भास (स्वप्नवासवदत्ता, ५।६)

अकुशलदर्शनाः स्वप्ना देवतानां प्रशंसया कुशलपरिणामा भवन्ति ।

अशुभ-सूचक स्वप्न भी देवताओं की स्तुति करने से शुभ-फलदायक हो जाते हैं।

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, २।१ के पश्चात्)

अवितथफलाश्च प्रायः निशावसानसमयदृष्टा भवन्ति स्वप्नाः ।

रात्रि के अंतिम भाग में देखे गए स्वप्न प्रायः सत्य फल वाले होते हैं।

—बाणभट्ट, (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० २०३)

यह सपने सुकुमार तुम्हारी स्मित से उजले।

—महादेवी वर्मा (दीपशिखा, कविता ६, पृ० ८५)

सम्भव है मनुष्य अपने लिए एक नया स्वप्न-लोक निर्माण कर सके, किन्तु उसे नया हृदय कहां मिलेगा, जिसको प्राप्त कर वह अपने टूटे हुए हृदय को भूल सके, अपने पुराने घावों को भर दे और उसके बाद उस नये स्वप्नलोक में सुख-पूर्वक विचार सके।

—रघुवीर सिंह (शेष स्मृतियां, पृ० ८६-८७)

था ख़्वाब में ख़याल को तुझसे मुआमला
जब आँख खुल गई न ज़ियां था न सूद था[1]।

—गालिब (दीवान)

Dreams are true while they last, and do we not live in dreams?

स्वप्न जब तक बने रहते हैं, सत्य होते है और क्या हम स्वप्नों में ही नहीं रहते है?

—टेनिसन (दि हायर पैनथीज्म)

स्वभाव

न हि निम्बात् स्रवेत् क्षौद्रं लोके निगदितं वचः ।

नीम से मधु नहीं टपकता—यह लोकोक्ति सत्य है।

—वाल्मीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, ३५।१७)

---

१. न लाभ था, न हानि थी।

स्वभावाज्जायते सर्वं स्वभावाच्च तथाभवत्।
अहंकारः स्वभावाच्च तथा सर्वमिदं जगत् ॥

स्वभाव से ही सब की उत्पत्ति होती है, स्वभाव से ही परमात्मा पूर्वोक्त रूप में प्रकट हुआ है, स्वभाव से ही अहंकार तथा यह सारा जगत् प्रकट हुआ है।

—हरिवंशपुराण (भविष्य पर्व।१६।१३)

वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्यागमाय च।
कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु वस्त्वात्मकं कुतः ॥

एक ही वस्तु दुःख, सुख, ईर्ष्या, कोप आदि के लिए होती है, अतः वस्तु की वस्तुता (स्वभाव की नियतता) कहां रही?

—विष्णुपुराण (२।६।४५)

जलं स्वभावतः शान्तं पावकातपयोगतः।
उष्णं भवति तच्छीघ्रं तद्विना शिशिरं भवेत ॥

जल का स्वभाविक गुण है शीतल रहना। आग या धूप के संयोग से वह गर्म हो जाता है, किन्तु फिर उनका संयोग हटते ही वह तुरन्त ठंडा हो जाता है।

—देवीभागवत (३।१०।४८)

हितमपि परुषार्थं रुष्यति श्राव्यमाणः।

कठोर शब्दों में कहे गए हितकर वाक्यों को सुनकर भी (मनुष्य) रुष्ट हो जाता है।

—भास (पंचरात्र, १।४०)

दुखं न मे स्यात् सुखमेव मे स्यादिति प्रवृत्तः सततं हि लोकः।

मुझे दुःख न हो, मुझे सुख ही हो, इसके लिए जगत सारा प्रयत्न करता है।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, १८।३८)

उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगाच्
छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य।

जल तो आग की गर्मी पाकर ही गर्म होता है, उसका अपना स्वभाव तो ठंडा ही होता है।

—कालिदास (रघुवंश, ५।५४)

प्रकृतिर्दुस्त्यजा।

स्वभाव छोड़ा नहीं जा सकता।

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, ३।२७ के पश्चात)

न कमलाकरं वर्जयित्वा राजहंस्यन्यत्राभिरमते।

कमलाकर को छोड़कर राजहंसी अन्यत्र नहीं रमती।

—हर्ष (रत्नावली, द्वितीय अंक)

विषधरवदनाद्विषमन्तरेण किमन्यन्निष्क्रामति।

विषधर के मुख से विष के अतिरिक्त और क्या निकलता है?

—हर्ष (नागानन्द, पंचम अंक)

किंवा प्रशमनहेतुनापि न प्रचंडतरीभवति वडवानलो वारिणा।

क्या शांतिकारक समुद्र जल से भी वाडवाग्नि अधिक प्रचंड नहीं होती है?

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्व भाग, पृ० ३१७)

चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः।

क्या चन्दन-वृक्ष से जो अग्नि उत्पन्न होती है वह जलाती नहीं है?

—बाणभट्ट (कादम्बरी, पूर्वभाग, पृ० ३१७)

स्वैरिणो विचित्राश्च लोकस्य स्वभावाः प्रवादाश्च

लोगों के स्वभाव और प्रवाद मनमाने और विचित्र होते हैं।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० ७९)

वसितुमिच्छति निरापदि सर्वः।

सभी निरापद स्थान में रहना चाहते हैं।

—भारवि (किरातार्जुनीय, ९।१६)

सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला-
पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि।

अटल स्वभाव सती स्त्री की भाँति जन्मान्तर में भी पुरुष का अनुसरण करता है।

—माघ (शिशुपालवध, १।७२)

कारणविकृतोऽपि पुनः प्रतिपद्यते जनः
स्निग्धः।
सलिलं वह्निस्तापात् तप्तं पुनरेति शीतत्वम् ।।

स्नेही व्यक्ति किसी कारण से विकार-युक्त हो जाने पर भी बाद में अपना स्वभाव ग्रहण कर लेता है, जैसे आग से तपा हुआ पानी पुनः शीतल हो जाता है।

—सोमेश्वर (उल्लासराघव, ८।११)

अम्भोऽपि प्रवहत्स्वभावमशनैराश्यानमश्नायते
ग्रावाम्भः स्रवति द्रवत्वमुदितोद्रेकेषु चार्वेयुषः।
कालस्यास्खलितप्रभावरभसं भाति प्रभुत्वेऽद्भुते
कस्यामुत्र विधातृशक्ति घटिते मार्गे निसर्गः स्थिरः।।

बहने के स्वभाव वाला कोमल जल भी धीरे-धीरे पाषाण हो जाता है और पाषाण द्रवित होकर जल बन जाता है। काल का अद्भुत प्रभुत्व सर्वत्र स्थिर होता है। यहां विधाता की शक्ति से निर्मित मार्ग में किसका स्वभाव स्थिर, रह सकता है।

—कल्हण (राजतरंगिणी, ८।३४०६)

शुद्धः स एव कुलजश्च स एव धीरः।
श्लाघ्यो विपत्स्वपि न मुंचति यः स्वभावम् ।।

वही पवित्र है, कुलीन है, धीर है और वही प्रशंसनीय है जो विपत्ति में भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ता।

—प्रकाशवर्ष (वल्लभदेव कृत सुभाषितावलि, २७३)

स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्तुमन्यथा।
सुतप्तमपि पानीयं पुनर्गच्छति शीतताम् ।।

उपदेश से स्वभाव को बदला नहीं जा सकता, भली प्रकार गरम किया हुआ (खौलाया हुआ) भी पानी पुनः शीतल हो जाता है।

—विष्णुशर्मा (पंचतंत्र, १।२८०)

न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं
न चापि वेदाध्ययनंदुरात्मनः।
स्वभाव एवात्र तथा तिरिच्यते
यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ।।

धर्मशास्त्र अथवा वेद का अध्ययन करता है, इसलिए यह दुरात्मा भला आदमी हो गया है, यह समझना भूल है। क्योंकि स्वभाव ही सबसे बड़ी चीज़ है जैसे गाय का दूध स्वभाव से ही मीठा होता है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।१७)

अतीत्य हि गुणा सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते।

सब गुणों को दबाकर स्वभाव सबके सिर पर बैठा रहता है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।२०)

प्रत्यहः सर्वसिद्धिनामुत्तापः प्रथमः किल।

गरम स्वभाव सब सिद्धियों का प्रथम विघ्न है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ३।४५)

यः स्वभावो हि यस्यास्ति स नित्यं दुरतिक्रमः।

जिसका जो स्वभाव है उसे छुड़ाना कठिन है।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, ३।५८)

न क्षुधार्तोऽपि सिंहस्तृणं चरति।

भूखा होने पर भी सिंह घास नहीं खाता।

—चाणक्यसूत्राणि (१६४)

श्वा कर्णे वा पुच्छे वा छिन्ने श्वैव भवति नाश्वो
न गर्दभः।

कान या पूंछ काट देने पर भी कुत्ता तो कुत्ता ही रहता है, घोड़ा या गधा नहीं बन जाता।

—अज्ञात

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धं
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षुकाण्डम्।
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः कांचनं कान्तवर्णं
न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम् ।।

चन्दन घिसे जाने पर पुनः पुनः अधिक सुन्दर गंध छोड़ता है। गन्ना चूसने पर पुनः पुनः स्वादिष्ट रहता है। सोना जलाने पर पुनः पुनः सुन्दर वर्ण ही रहता है। प्राणान्त होने पर भी उत्तम व्यक्तियों का स्वभाव विकृत नहीं होता।

—अज्ञात

काकस्य गात्रं यदि कांचनस्य
माणिक्यरत्नं यदि चंचुदेशे।
एकैकपक्षे ग्रथितं मणीनां
तथापि काको न तु राजहंसः॥

कौवे का शरीर चाहे सोने का हो, उसकी चोंच में माणिक्य रत्न जड़ा हो और उसका एक-एक पंख मणियों से गूँथा हुआ हो, फिर भी वह कौवा ही बना रहेगा, राजहंस नहीं हो जायेगा।

—अज्ञात

उपाधिभिः सततसंगतोऽपि
न हि स्वभावं विजहाति भावः।
आजन्म यो मज्जति दुग्धसिंधौ
तथापि काकः किल कृष्ण एव॥

विशेष कारकों के निरन्तर साहचर्य में रहने पर भी मूल स्वभाव छूटता नहीं है। जो आजीवन दूध के समुद्र में डूबे रहे, वह कौवा भी काला ही रहता है।

—अज्ञात

दूधें पटाइअ सींचीअ नीत।
सहज न तेज करइला तीत॥

दूध से पटाओ या नवनीत से सींचो किन्तु करेला अपना स्वभाविक तीतापन नहीं त्यागता।

—विद्यापति (विद्यापति पदावली)

पावक सिखा निच न धावए।
ऊँच न जा जलधारा।
तत ते पए अबस करए।
जकर जे बेवहारा॥

अग्नि-शिखा नीचे को नहीं दौड़ती, और पानी की धारा ऊपर को नहीं जाती है। जिसका जो व्यवहार है, वह उसे अवश्य करता है।

—विद्यापति (विद्यापति पदावली)

कहा होत पयपान कराए विष नहि तजत भुजंग।
सूरदास कारी कामरि पै चढ़त न दूजो रंग।

—सूरदास (सूरसागर, १।३३२)

जाकी जैसी बानि परी री।
कोऊ कोटि करै नहिं छूटे, जो जिहिं धरनि धरी री।

—सूरदास (सूरसागर, १०।३०१४)

जाकी प्रकृति परी जिय जैसी, सोचन भली बुरी कौ।
जैसैं सूर व्याल रस चाखैं, मुख नहिं होत अमी कौ॥

—सूरदास (सूरसागर, १०।४१३२)

प्रकृति जो जाकैं अंग परी।
स्वान पूंछ कोउ कोटिक लागै, सूधी कहुं न करी।

—सूरदास (सूरसागर, १०।४१४४)

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ।
मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।२३१।३)

भलो भलाइहि पै लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरता, गरल सराहिअ मीचु॥

—तुलसीदास (दोहावली, ३३८)

रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पिअतहू, साँप सहज धरि खाय॥

—रहीम दोहावली, (२२९)

कोटि जतन कोऊ करो, परै न प्रकृतिहिं[1] बीच[2]।

—बिहारी (बिहारी सतसई)

नहि इलाज देख्यो सुन्यो, जासों मिटत सुभाव।
मधु पुट कोटिक देत तऊ, विष न तजत विषभाव॥

—वृन्द (वृन्द सतसई)

---

१. स्वभाव में। २. अन्तर।

ब्रह्म बनाये बन रहे, ते फिर और बनै न।
कान कहत नहिं बैन ज्यों, जीभ सुनत नहिं बैन ।।

—वृन्द (वृन्द सतसई)

करै न कबहूं साहसी, दीन हीन को काज।
भूख सहै पै घास को, नाहिं भखै मृगराज ।।

—वृन्द (वृन्द सतसई)

मनुष्य, मनुष्य के दुख-सुख से सौदा करने लगता है और उसका मानदण्ड बन जाता है रुपया।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० ५८)

कभी-कभी मनुष्य की यह मूर्खतापूर्ण इच्छा होती है कि जिनको हम स्नेह की दृष्टि से देखते हैं, उन्हें अन्य लोग भी उसी प्रकार प्यार करें। अपनी असम्भव कल्पना को आहत होते देखकर वह झल्लाने लगता है।

— जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० १२२)

मानव-स्वभाव दुर्बलताओं का संकलन है, सत्कर्म विशेष होने पाते नहीं, क्योंकि नित्यक्रियाओं द्वारा उनका अभ्यास नहीं। दूसरी ओर ज्ञान की कमी से ईश्वर-निष्ठा भी नहीं।

—जयशंकर प्रसाद (कंकाल, पृ० ३९)

रूप-लावण्य प्राकृतिक गुण है, जिसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। स्वभाव एक उपार्जित गुण है, उसमें शिक्षा और सत्संग से सुधार हो सकता है।

—प्रेमचन्द (सेवासदन, परिच्छेद २३)

हम चाहे जितना पायें कम ही लगता है
कुछ ऐसी रखी है तरकीब स्वभावों में।

—कुँवरनारायण (आत्मजयी, पृ० ७३)

सच है सुधामय भारती से,
खल सुधरते हैं नहीं।
क्या क्षीर पाने पर फणी,
विष त्याग देते हैं कहीं ?

—श्यामनारायण पाण्डेय (तुमुल)

सदाचार मनुष्य की रुचि से पैदा नहीं होता। उसे तो पैदा करती है उसकी धरती जिस पर वह पैदा होता है। इसी धरती के गुण और स्वभाव के अनुसार हमारा स्वभाव बनता है।

— लक्ष्मीनारायण मिश्र (नारद की वीणा, पहला अंक)

अम्बा[1] नीबू बानियां[2] गर दाबे रस देयँ।
कायथ कौवा करहटा[3] मुर्दा हू सों लेयँ ।।

—घाघ

इल्लत जाये धोये-धाये, आदत कहां जाये ?

—हिंदी लोकोक्ति

चोर चोरी से जाएगा तो क्या हेराफेरी से भी जाएगा ?

—हिंदी लोकोक्ति

कोयल होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय।

—हिंदी लोकोक्ति

कुत्ते की दुम बारह बरस नली में रखी, तो भी टेढ़ी की टेढ़ी।

—हिंदी लोकोक्ति

बद बदी से न जाये, तो नेक नेकी से भी न जाये।

—हिंदी लोकोक्ति

धोए हू सौ बार के काजर होय न सेत।

—हिंदी लोकोक्ति

तूमड़ी अड़सठ तीरथ कर आई,
तऊ न गई कड़वाई।

—हिंदी लोकोक्ति

बशर ने खाक पाया, लाल पाया या गौहर पाया
मिज़ाज अच्छा अगर पाया तो सब कुछ उसने
भर पाया ।।

—दाग़

जो खोड बाला तो जन्मकाला।
बाल्यकाल का स्वभाव जन्म भर रहता है।

[मराठी] —मराठी लोकोक्ति

चित्त नैजमुनु स्पष्टपरचुनदि
जिह्व कानि रुपंबु गादु।

व्यक्ति के स्वभाव को स्पष्ट करने वाली उसकी वाणी होती है, उसका रूप नहीं।

[तेलुगु] —पानुगंटि (वनवास राघवमु)

---

१. आम। २. बनिया।
३. कायस्थ, कौवा और किलहटा पक्षी।

जिसके पास रूप है, वह दिखाएगा ही। जिसके पास गुण है, वह प्रकाश करेगा ही। जिसके हृदय में प्रेम है, जो प्रेम करना जानता है, वह प्रेम करेगा ही। इसमें तुम और हम क्या कर सकते हैं ?

—शरत्चन्द्र (बड़ी बहन, पृ० १४२)

ओखली-मूसल को स्वर्ग ले जाओ तो वहां भी वे धान ही कूटेंगे।

—बंगला लोकोक्ति

Few love to hear the sins they love to act.

जिन पापों को मनुष्य करना पसन्द करते है, उन्हें सुनना पसन्द नहीं करते।

—शेक्सपियर (पेरिक्लीज़, १।१)

He talks of wood : it is some carpenter.

वह लकड़ी की बात करता है तो वह बढ़ई ही होगा।

—शेक्सपियर (किंग हेनरी सिक्स्थ, प्रथम खण्ड, ५।१)

The chains of habit are generally too small to be felt until they are too strong to be broken.

स्वभाव की शृंखलाएं सामान्यतः इतनी छोटी होती हैं कि अनुभव नहीं की जा सकतीं जब तक कि वे इतनी मज़बूत न हो जाएं कि तोड़ी न जा सकें।

—जानसन

To complain of the age we live in, to murmur at the present possessors of power, to lament the past, to conceive extravagant hopes of the future, are the common disposition of the greatest part of the man-kind.

जिस युग में हम रह रहें हैं, उसकी शिकायत करना, वर्तमान सत्ताधारियों की आलोचना करना, भविष्य पर फ़ालतू आशाएं लगाना—ये मानव जाति के अधिकतम अंश का आम स्वभाव है।

—एडमंड बर्क

स्वराज्य

दे० 'स्वतंत्रता', 'स्वाधीनता', 'स्वराज्य और स्वदेशी' भी।

यदि किसी दिन हमें स्वराज्य मिलेगा तो वह अपने ही पुरुषार्थ से मिलेगा। वह दान के रूप में कदापि नहीं मिलने का।

— महात्मा गांधी (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में भाषण, ६ फरवरी १९१६)

हम ऐसा स्वराज्य चाहते हैं जिसमें सभी व्यक्तियों को, भंगियों तक को समान अधिकार प्राप्त हों।

—महात्मा गांधी (सूरत की सभा में भाषण, २०-४-१९२१)

कोई राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र को बतौर दान के स्वराज्य नहीं दे सकता। यह तो ऐसी निधि है जो देश के अच्छे-अच्छे पुरुषों के रक्त से ही खरीदी जा सकती है।

—महात्मा गांधी (यंग इंडिया, ५ जनवरी १९२२)

स्वराज्य की किसी भी योजना में सेना और पुलिस पर जनता के नियंत्रण की बात अवश्य होनी चाहिए।

—महात्मा गांधी ('स्वराज्य' के संवाददाता से भेंट, जनवरी १९२२)

स्वराज्य का अर्थ यह है कि हम आत्मबल के आधार पर खड़े रहें। किसी पर आधार न रखें।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृ० ५८५)

धर्म के आशीर्वाद से जो स्वराज्य स्थापित होगा, वह अक्षय होगा।

—वृन्दावनलाल वर्मा (झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ० ४७०)

कां स्वाराज्य तेव्हां झालें
कां स्वराज्य सांप्रत जुरलें ?

तब[1] स्वराज्य क्योंकर स्थापित हो सका था और आज वह क्यों चला गया है ?

[मराठी]—यशवन्त दिनकर पेंढरकर(कविता 'देहाचा पूल')

स्वराज्य जिसकी मुट्ठी में है, उसकी उस मुट्ठी को खोल सकने की सामर्थ्य ही स्वराज्य की पात्रता की सच्ची कसौटी है।

—लोकमान्य तिलक (नासिक कांग्रेस में 'स्वराज्य-प्रस्ताव' पर भाषण)

1. शिवाजी के समय में।

स्वराज्य और स्वदेशी

स्वराज्य चाहते हो तो स्वदेश की रक्षा के लिए कटिबद्ध होना ही पड़ेगा। स्वदेश के प्रति यह जो ममता है वही स्वदेशी के व्रत की जननी है। आर्यभूमि को 'माता' के रूप में देखना ही स्वदेशी का अभियान है। स्वदेशी और स्वराज्य अभिन्न हैं। स्वदेशी का अंतिम रूप स्वराज्य है। किन्तु स्वदेशी और स्वराज्य का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है, पारंपरिक नहीं। स्वदेशी स्वराज्य का साधन है और स्वराज्य भावी उन्नति की नींव है, शिखर नहीं।

—लोकमान्य तिलक

स्वर्ग

दे० 'स्वर्ग-नरक' भी।

श्रद्धया सत्येन मिथुनेन स्वर्गाल्लोकान् जयति।

श्रद्धा और सत्य के जोड़े से स्वर्ग लोकों को जीत लेता है।

—ऐतरेय ब्राह्मण (७।१०)

सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च।
भूतानुकम्पां प्रियवादितां च।
द्विजातिदेवातिथिपूजनं च।
पन्थानमाहुस्त्रिदिवस्य सन्तः॥

सत्य, धर्म, पराक्रम, प्राणियों पर दया, प्रिय वचन बोलना, ब्राह्मणों, अतिथियों एवं देवताओ की पूजा करना, इन सबको सन्तों ने स्वर्ग का मार्ग बताया है।

—वालमीकि (रामायण, अयोध्याकाण्ड, १०९।३१)

जहां हमारी सुन्दर कल्पना आदर्श का नीड़ बनाकर विश्राम करती है, वही स्वर्ग है। वही विहार का, वहीं प्रेम करने का स्थल स्वर्ग है, और वह इसी लोक में मिलता है। जिसे वह नहीं मिला, वह इस संसार में अभागा है।

—जयशंकर प्रसाद (स्कंदगुप्त, द्वितीय अंक)

जिसमें लाखों बरस की हूरें हों
ऐसी जन्नत का क्या करे कोई।

—दाग़

हमको मालूम है जन्नत[1] की हक़ीक़त[2] लेकिन,
दिल के खुश रखने को 'ग़ालिब' यह ख़याल अच्छा है।

—ग़ालिब (दीवान)

Earth has no sorrow that Heaven can not heal.

पृथ्वी पर ऐसा कोई दुःख नहीं है जिसको स्वर्ग दूर न कर सके।

—टामस मूर (कम ई डिसकंसोलेट)

स्वर्ग-नरक

वृक्षांश्छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्।
यद्येव गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते॥

वृक्ष काट कर, पशुओं को मारकर तथा खून की कीचड़ करके ही यदि स्वर्ग प्राप्त होता है तो नरक किसे प्राप्त होगा?

—विष्णु शर्मा (पंचतंत्र, ३।१०७)

दुनिया ही में मिलते हैं हमें दोज़खो-जन्नत।
इन्सान ज़रा सैर करे घर से निकल कर।

—दाग़

गर जन्नतो जहीम नदीदी बेबीं के हस्त
शग़लो फ़राग़े जन्नते मा ओ जहीमे मा।

तूने स्वर्ग और नरक नहीं देखा है। समझ ले कि उद्यम स्वर्ग है और आलस्य नरक है।

[फ़ारसी] —सनाई

नरुनि मनसे स्वर्गंबुनु नरकमुनगु।

स्वर्ग और नरक के बारे में चर्चा करने की क्या जरूरत है? मानव का मन ही स्वर्ग और नरक है।

[तेलुगु] —सेट्टि लक्ष्मीनरसिंहम् (चित्र हरिश्चंद्रीयमु, २।३५)

None can reach heaven who has not passed through hell.

कोई भी व्यक्ति जो नरक में नहीं जा चुका है, स्वर्ग में नही पहुँच सकता।

—अरविन्द (सावित्री, २।८)

---

१. स्वर्ग। २. सच्चाई।

Then I saw that there was a way to hell, even from the gates of heaven.

तब मैंने देखा कि वहां स्वर्ग के द्वारों से होकर भी नरक को एक मार्ग गया था।

—जान बनयन (पिल्ग्रिम्स प्राग्रेस, भाग १)

स्वर्ण

स्वर्ण की ही ओर सब खिचते है, स्वर्ण ही पर सब निर्भर हैं।

—गेटे (फ़ाउस्ट)

स्वागत

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

तृण का आसन, पृथ्वी, जल और चौथी मीठी वाणी—सज्जनों के घर में इन चार चीज़ों की कभी कमी नहीं होती।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योग पर्व।३६।३४)

स्वाद

यद्यत् स्वादुतरं तत्तद् विदध्यादुत्तरोत्तरम्।

जो-जो अधिक स्वादिष्ट हो उसे उत्तरोत्तर खाना चाहिए।

—सुश्रुत संहिता (सूत्र स्थान, अध्याय ४६)

आस्वाद्यस्य कि सर्वस्य जिह्वाग्रे क्षणसंगमः।
कण्ठनाडीमतीतं च सर्वं कदशनं समम्॥

जितने खाद्य पदार्थ हैं, उनका स्वाद जिह्वा के अग्रभाग से क्षण भर के संयोग का है, गले के नीचे उतरा कि स्वादिष्ट और स्वादहीन भोजन दोनों एक से हैं।

—अज्ञात

जिसका स्वास्थ्य अच्छा है, उसके मुंह में स्वाभाविक भोजन से रस तो पैदा होने ही चाहिए और उनकी पहचान है स्वाद। यह तो बड़े संयमी को भी अनुभव होता रहेगा और होते रहना चाहिए, परन्तु इस स्वाद के प्रति राग नहीं होना चाहिए।

—महात्मा गांधी (मणि बहन को पत्र, १४-१२-१९३२)

जीभ को जीत लेना सब वस्तुओं को जीत लेने के बराबर है।

—महात्मा गांधी (महादेव भाई की डायरी नई, भाग १, पृ० २८०)

जिस मनुष्य में विषय-वासना रहती है, उसमें जीभ के स्वाद भी अच्छी मात्रा में होते हैं।

—महात्मा गांधी (आत्मकथा, पृ० २७९)

स्वाधीनता

दे० 'स्वतंत्रता', स्वराज्य', 'स्वराज्य और स्वदेशी' भी।

पराधीनता दुख महा, सुख जग में स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विषै, कनक पींजरे दीन॥

—दीनदयाल गिरि (दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, पृ० ७७)

पाए गदा लंग नेस्त,
खल्क़े खुदा तंग नेस्त।

फ़क़ीर का पैर लंगड़ा नही है और भगवान की सृष्टि छोटी नही है।

[फ़ारसी] —अज्ञात

क्या वे स्वाधीनता पाने योग्य हैं, जो दूसरों को स्वाधीनता देने के लिए प्रस्तुत नहीं?

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, तृतीय खंड, पृ० ३३२)

राजनीतिक और सामाजिक स्वाधीनता बहुत अच्छी चीज़ है किन्तु वास्तविक चीज़ आध्यात्मिक स्वाधीनता अर्थात् मुक्ति है। यही जातीय जीवन का उद्देश्य है।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, भाग १०, पृष्ठ ५९)

किन्तु स्वाधीनता नाममात्र तो नहीं है। दाता के दाहिने हाथ के दान ही से तो इसे भीख की तरह पाया नहीं जाता—इसका मूल्य देना होता है। किन्तु वह मूल्य कहां है? किसके

पास है ? वह केवल यौवन के रक्त में ही जमा है। वह अर्गला जब तक नहीं खुलेगी, तब तक कहीं इसका पता नहीं मिलेगा। वह अर्गला खोलने का समय आया है।

—शरत्चन्द्र (तरुणों का विद्रोह)

हृदयों को अर्पित करो परन्तु एक-दूसरे के संरक्षण में मत रखो।

—खलील जिब्रान (जीवन-संदेश, पृ० २६)

The liberty of the individual must be thus far limited; he must not make himself a nuisance to other people.

व्यक्तिगत स्वाधीनता यहां तक ही होनी चाहिए कि वह दूसरों के लिए परेशानी न बने।

—मिल (आन लिबर्टी, अध्याय ३)

Liberty! Oh Liberty! What crimes are committed in thy name.

स्वाधीनता ! ओ स्वाधीनता ! तेरे नाम पर क्या-क्या अपराध किए जाते हैं !

—मेरी जीन रोलैंड

The tree of liberty must be refreshed from time to time with the blood of patriots and tyrants. It is its natural manure.

स्वाधीनता का वृक्ष समय-समय पर देशभक्तों से व अत्याचारियों के रक्त से सींचा जाना चाहिए। यही इसकी प्राकृतिक खाद है।

—टामस जेफ़र्सन (डब्लू० एस० स्मिथ को पत्र, १३-११-१७८७)

Liberty means responsibility. That is why most men dread it.

स्वाधीनता का अर्थ उत्तरदायित्व है। यही तो कारण है कि अधिकांश मनुष्य उससे डरते हैं।

—जार्ज बर्नार्ड शा

स्वाध्याय

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात्।

स्वाध्याय में नित्य तत्पर होना चाहिए।

—मनुस्मृति (३।७५)

सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः।

स्वाध्याय में बाधक सभी कामों को छोड़ दे।

—मनुस्मृति (४।१७)

सज्झाएवा निउत्तेण, सव्वदुक्खविमोक्खणे।

स्वाध्याय करते रहने से समस्त दुःखों से मुक्ति मिलती है।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (२६।१०)

सज्झायं च तओ-कुज्जा, सव्वभावविभावणं।

स्वाध्याय सब भावों का प्रकाश करने वाला है।

[प्राकृत] —उत्तराध्ययन (२६।३७)

न वि अत्थि न वि अ होही, सज्झाय समं तवोकम्मं।

स्वाध्याय के समान दूसरा तप न अतीत में कभी हुआ, न वर्तमान में कहीं है और न भविष्य में कभी होगा।

[प्राकृत] —बृहत्कल्पभाष्य

स्वाध्याय बुद्धि का यज्ञ है। स्वाध्याय के द्वारा मानव सत् को प्राप्त होता है।

—जयशंकर प्रसाद (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ३६)

पढ़ ग्रन्थ नित्य विवेक के, मन स्वच्छ तेरा होयगा।
वैराग्य के पढ़ ग्रन्थ तू बहुजन्म के अघ धोयगा॥
पढ़ ग्रंथ सादर भक्ति के, आह्लाद मन भर जायगा।
श्रद्धा सहित स्वाध्याय कर, संसार से तर जायगा॥

—भोलेबाबा

Reading is to the mind what exercise is to the body.

मन के लिए स्वाध्याय वैसा ही है जैसा शरीर के लिए व्यायाम है।

—रिचर्ड स्टील (दि टैटलर, सं० १४७)

स्वाध्याय और योग

स्वाध्यायाद्योगमासीत
योगात् स्वाध्यायमामनेत्।
स्वाध्याय-योग-सम्पत्या
परमात्मा प्रकाशते॥

स्वाध्याय के बाद योगसाधना करे और योगसाधना के बाद स्वाध्याय करे। स्वाध्याय और योगसाधना से परमात्मा प्रकाशित होता है।

—अज्ञात

स्वाभाविकता

यदि आप पर्वत की चोटी पर देवदार वृक्ष नहीं बन सकते तो घाटी के छोटे वृक्ष बनिए, झरने के समीप का एक सुन्दर, छोटा वृक्ष बनिए। और, यदि वृक्ष भी न बन सकें तो झाड़ी बनिए। यदि झाड़ी भी न बन सकें तो वह घास बनिए जो मार्ग को सुखद बना सके। यदि आप कस्तूरी मृग न बन सकें तो एक मछली ही बनिए, झील की सुनहली मछली। हम कभी कप्तान नहीं बन सकते, हमें नाविक बनाना होगा।

—डगलस मैलोस

यदि आप राजमार्ग न बन सकें तो पगडंडी ही बनिए। यदि आप सूरज न बन सकें तो तारा ही बनिए क्योंकि केवल आकार से मनुष्य की सफलता अथवा असफलता का निर्णय नहीं होता। आप अपनी **स्वाभाविकता** के अनुसार श्रेष्ठ बनिए।

—डगलस मैलोस

मैं शेक्सपियर के समान पुस्तक नहीं लिख सकता। परन्तु मैं ऐसी पुस्तक लिख सकता हूं जो मेरी अपनी हो।

—वाल्टर रेले

स्वाभिमान

येनैव मानेन समं प्रसूतस्तेनैव मानेन दिवं प्रयामि।

जिस मान के साथ जन्मा, उसी मान के साथ स्वर्ग जा रहा हूं।

—भास (ऊरुभंग, १।४७)

अभिमानधनस्य गत्वरैरसुभिः स्थास्नुयशश्चिचषितः।
अचिरांशुविलासचंचला ननु लक्ष्मीः फलमानुषंगिकम्॥

गमनशील प्राणों से स्थायी यश का संग्रह करने की इच्छा रखने वाले और अभिमान को धन मानने वाले लोगों के लिए विद्युद्विलास की भांति चंचल लक्ष्मी की प्राप्ति गौण रूप से ही होती है।

—भारवि (किरातार्जुनीय, २।१९)

ज्वलितं न हिरण्यरेतसं चयमास्कन्दति भस्मनां जनः।
अभिभूतिभयादसूनतः सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः॥

लोग राख के ढेर को रगड़ देते हैं किन्तु जलती हुई आग को नहीं। अतः मानी लोग परिभव के भय से सुखपूर्वक प्राण तो छोड़ देते हैं, किन्तु तेजस्विता नहीं छोड़ते।

—भारवि (किरातार्जुनीय, २।२०)

तावदाश्रीयते लक्ष्मया तावदस्य स्थिरं यशः।
पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते॥

तभी तक लक्ष्मी उसका आश्रय लेती है, तभी तक उसका यश स्थिर है और तभी तक वह पुरुष है जब तक वह स्वाभिमानहीन नहीं हुआ।

—भारवि (किरातार्जुनीय, १७।४०)

समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः।

स्वाभिमानी मनुष्य शत्रुओं का समूल नाश किए बिना उदित नहीं होते हैं।

—माघ (शिशुपालवध, २।३३)

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।
स्वस्यादेवापमानेऽपि देहिनस्तद् वरं रजः॥

अपमानित होने पर भी यदि कोई मनुष्य स्वस्थ बना रहे तो उससे अच्छी तो वह धूल ही है जो पैर से चोट खाने पर शिर पर आक्रमण करती है।

— माघ (शिशुपालवध, २।४६)

उपेक्ष्यपक्षे भूपानां मानः स्वार्थस्य सिद्धये।
स तु प्राणानुपेक्ष्यापि ग्राह्यपक्षे मनस्विनाम्॥

राजाओं के लिए स्वाभिमान स्वार्थ-सिद्धि में उपेक्षणीय हो जाता है। किन्तु मनस्वियों के लिए स्वाभिमान प्राणों की उपेक्षा करके भी ग्राह्य होता है।

— कल्हण (राजतरंगिणी, ४।६१३)

त्यजन्त्यसून्शर्म च मानिनोवरं
त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम् ।

मानी व्यक्ति भले ही प्राण और सुख त्याग दें किन्तु वे याचना न करने का व्रत नहीं छोड़ते ।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, १।५०)

संभवत्यभिजातानाम् अभिमानो ह्यकृत्रिमः ।

उत्तम वंश में उत्पन्न होने वालों को स्वाभाविक स्वाभिमान होता है ।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ३।४)

देहपातमपीच्छन्ति सन्तो नाविनयं पुनः ।

सज्जन लोग मरना पसन्द करते हैं, पर अविनय नहीं ।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ८।६।९६)

मनस्वी म्रियते कामं कार्पण्यं न तु गच्छति ।
अपि निर्वाणमायाति नानलो याति शीतताम् ॥

स्वाभिमानी मनुष्य मर मिटता है, पर किसी के सामने दीन नहीं बनता । आग बुझ भले ही जाये, पर जीवित रहते वह ठण्डी नहीं होती ।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।१३१)

लांगूलचालनमधश्चरणावपातं
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं ।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपंगवस्तु
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्चभुंक्तम् ॥

पूंछ हिलाने पैरों पर, लोटने, जमीन में लेटकर मुंह और पेट दिखाने जैसे हेय कार्य अपने को टुकड़ा देनेवाले के सम्मुख केवल कुत्ता करता है। लेकिन पालतू गजराज अपने अन्नदाता को गंभीर दृष्टि से देखता है और सैंकड़ों बार मनुहार करने पर खाता है ।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, २।४२)

वरं प्राण-परित्यागो, मानभंगेन जीवनात् ।
प्राण-त्यागे क्षणं दुःखं, मानभंगो दिन दिने ॥

तिरस्कृत जीवन की अपेक्षा प्राणों का परित्याग कर देना अच्छा है। प्राणों के त्याग के समय थोड़ी देर का दुःख होता है, परन्तु तिरस्कृत जीवन में प्रतिदिन का दुःख होता है ।

—वृद्ध चाणक्य

मानो हि महतां धनम् ।

मान ही महापुरुषों का धन है ।

—चाणक्य नीति

सिंहा यथा परपराक्रमसाधितानि
खादन्ति नैव पिशितानि बुभुक्षयार्ताः ॥
दुःखे महत्यपि तथैव परेण लब्धान्
वान्छन्त्यसूनपि न मानधना महान्तः ॥

जिस प्रकार भूख से व्याकुल होने पर भी सिंह दूसरों के पराक्रम से प्रस्तुत मांस नहीं खाते उसी प्रकार महान दुःख होने पर भी दूसरे के द्वारा लाये गये धन को स्वाभिमानी मनुष्य नहीं चाहते ।

—वीणावासवदत्ता (३।१२)

किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ।

क्या माननीयों में अग्रगण्य सिंह सूखी घास खाता है ?

—भर्तृहरि (नीतिशतक, २९)

गंगा-तीरमपि त्यजन्ति मलिनम्, ते राजहंसा वयम् ।

हम ऐसे राजहंस हैं जो दूषित हो जाने पर गंगा तट को भी त्याग देते हैं ।

—अज्ञात

अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम् ।

अर्जुन की दो प्रतिज्ञाएं हैं—दीन न होना तथा युद्धक्षेत्र से न भागना ।

—अज्ञात

पतत्यंगारवर्षे वा वाति वा प्रलयानिले
तालः स्तब्धतयारब्धस्तथैव सह नश्यति ॥

चाहे अंगार बरसते हों अथवा प्रलयकाल की आंधी चलती हो, ताड़ का वृक्ष अकड़ के साथ खड़ा रहता है और उसी अकड़ के साथ नष्ट हो जाता है ।

—अज्ञात

वहीं तलवार जो केले को भी नहीं काट सकती, सान पर चढ़कर लोहे को काट देती है। मानव जीवन में लाग बड़े महत्त्व की वस्तु है । जिसमें लाग है, वह बूढ़ा भी जवान

है, जिसमें लाग नहीं, ग़ैरत नहीं, वह जवान भी हो तो मृतक है।

—प्रेमचंद ('सुजान भगत' कहानी)

स्वाभिमानी जन कभी अपमान सह सकते नही।

—मैथिलीशरण गुप्त (रंग में भंग, पद ८८)

किसानो में स्वाभिमान की भावना जाग्रत हुए बिना उनका कभी कल्याण नही होगा।

—सरदार पटेल (सरदार पटेल के भाषण, पृष्ठ ३१३)

छोड़ो मत अपनी आन, सीस कट जाये,
मत झुको अनय पर, भले व्योम फट जाये।
दो बार नही यमराज कंठ धरता है,
मरता है जो, एक ही बार मरता है।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' (परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० २१)

मैंने जीवन में एक दोष बस यही किया,
अपनी भूलों को आगे बढ़ स्वीकार लिया,
यदि मिला दान में अमृत भी, ठुकरा आया,
अपने हाथों से अर्जन करके गरल पिया।

—रामानन्द दोषी ('तुम अपनी पीर सँभालो' कविता)

'अकबर' ने सुना है अह्ले-ग़ैरत[1] से ये ही
जीना ज़िल्लत[2] से हो तो मरना अच्छा।

—अकबर इलाहाबादी

सिजदे से गर बहिश्त मिले दूर कीजिए
दोज़ख ही सही, सिरका झुकाना नहीं अच्छा।

—अज्ञात

ब नाने खुश्क क़नाअत कुनैमो जामाए दल्क़
कि बारे मिहनते खुद बिह ज़ि बोर मिन्नते खल्क़।

हम सूखी रोटी से और गुदड़ी से सन्तोष करेंगे क्योंकि अपने कष्टों का भार लोगों के उपकार के भार से अच्छा है।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, तीसरा अध्याय)

---

१. स्वाभिमानी लोग। २. अपमान।

नानम् अफ़ज़ूद ओ आबे रूयम् कास्त
बे नवायी बिह अज़ मज़िल्लते ख़्वास्त।

मेरी रोटी बढ़ गयी और प्रतिष्ठा क्षीण हो गयी। माँगने के अपमान से निर्धनता अच्छी।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, तीसरा अध्याय)

मरो ब ख़ानए अरबाब बे मुरव्वते दहर
कि कुंजे आफ़ियत दर सराए ख़ेशतनस्त।

ज़माने के स्नेहहीन लोगों के घर न जा क्योंकि तेरे निजी घर में ही विश्राम का कोना है।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान)

मानंबरयग बाण स
मानमु मानंबु सखुडु मानमे धनमुन्
मानमु विडुचुट कंटेनु
मानुम प्राणमुल विडुवुट मंचिदि तलपन्।

देखा जाय तो गौरव प्राणों से समान है। अपना गौरव ही अपना सखा है। अपना मान ही अपना धन है। मान को छोड़ने से अधिक अच्छा यही है कि प्राणों को ही छोड़ दे।

[तेलुगु] —अय्यलयिडु (भास्कर रामायणमु)

स्वामिभक्ति

अनुक्तहितकारिता हि प्रकाशयति मनोगतां स्वामिभक्तिम्।

बिना कहे हित-सम्पादन करने का भाव ही मन में स्थित स्वामिभक्ति को प्रकट करता है।

—भट्टनारायण (वेणीसंहार, ६।१२ के पश्चात)

कुत्ता कुत्ते को काटता है और मालिक के अन्न की रक्षा करता है। वैसे ही हम-तुम राज-पुरुषों की प्रसन्नता के लिए एक दूसरे का हनन करते है।

—यशपाल (दिव्या, पृ० ५५)

स्वामी

प्रभुचित्तमेव हि जनोऽनुवर्तते ।

लोग अपने स्वामी के चित्त के अनुसार काम करते हैं।

—माघ (शिशुपालवध, १५।४१)

न हि भृत्येषु पराङ्मुखः प्रभुः ।

स्वामी अपने सेवकों पर कभी विमुख नहीं होता।

—कर्णपूर (आनंदवृन्दावनचम्पू, १६।४६)

मनुष्य रूपी यन्त्र में पैसा रूपी कोयला डालने से अधिक से अधिक काम लिया जाना संभव नहीं। बढ़िया काम तो उसके द्वारा तभी होगा जब उसकी भावना को जागृत किया जाये। मालिक-नौकर के बीच का गठ-बन्धन पैसे का नहीं, प्रीति का होना चाहिए।

—महात्मा गांधी (इण्डियन ओपिनियन, २३-५-१६०८)

स्वार्थ

मान्तः स्थुर्नो आरातयः।

ज्ञान व धनादि न देने वाले हमारे बीच में न रहें।

—ऋग्वेद (१०।५७।१)

केवलाघो भवति केवलादी।

जो अकेला खाता है, वह पापमय है।

—ऋग्वेद (१०।११७।६)

मित्रं च शत्रुतामेति कस्मिंश्चित् कालपर्यये।
शत्रुश्च मित्रतामेति स्वार्थो हि बलवत्तरः॥

कभी कभी समय के फेर से मित्र शत्रु बन जाता है और शत्रु भी मित्र हो जाता है क्योंकि स्वार्थ बड़ा बलवान है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व।१३८।१४२)

अहितो दृश्यते ज्ञातिरज्ञातिर्दृयते हितः।
स्नेहं कार्यान्तिराल्लोकश्छिनत्ति च करोति च॥

स्वजन शत्रु हो जाते है और पराए मित्र हो जाते हैं, ऐसा देखा जाता है। कार्यवश ही लोग स्नेह करते भी हैं और तोड़ते भी हैं।

—अश्वघोष (सौंदरनन्द, १५।३८)

प्रयोजनापेक्षितया प्रभूणां
प्रायश्चलं गौरवमाश्रितेषु।

प्राय: स्वामियों का अपने आश्रितों के प्रति आदरभाव अपने प्रयोजन के लिए और अस्थिर होता है।

—कालिदास (कुमारसंभव, ३।१)

शक्याशक्यपरिसंख्यानशून्याः प्रायेण स्वार्थतृषः।

प्राय: स्वार्थ की चाह में लोग सामर्थ्य और असामर्थ्य की बात को ध्यान में नहीं लाते।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० ६२)

युक्तायुक्तविचारशून्यत्वाच्च शालीनमपि शिक्षयन्ति स्वार्थतृष्णाः प्रागल्भ्यम्।

युक्त-अयुक्त के विचार से रहित होने से स्वार्थ की तृष्णाएं शील वाले व्यक्ति को प्रगल्भ बना देती है।

—बाणभट्ट (हर्षचरित, पृ० ३५६)

निरपत्रपा हि स्वार्थसाधका भवन्ति।

लज्जा से रहित व्यक्ति ही स्वार्थ के साधक होते हैं।

—कर्णपूर (आनन्वृन्दावनचम्पू, १३।८)

न किं स्वार्थपराः स्वार्थपराहत्या हत्यामिव मन्यन्ते।

स्वार्थपरायण व्यक्ति दूसरे के द्वारा (अपना) स्वार्थनाश होने पर क्या उसे हत्या की तरह नहीं मानते?

—कर्णपूर (आनन्दवृन्दावनचम्पू, १३।१६)

कार्यार्थी भजते लोके यावत् कार्यं न सिध्यति।
उत्तीर्णे च परे पारे नौकायाः किं प्रयोजनम्॥

अपना कार्य सिद्ध होने तक ही कार्यार्थी व्यक्ति सम्मान करता है। नदी के दूसरे तीर पर पहुँचने पर नौका का क्या प्रयोजन होता है?

—अज्ञात

सुर-नर मुनि सब कै यह रीती।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ४।१२।१)

जेहि तें कछु निज स्वारथ होई।
तेहि पर ममता कर सब कोई ॥
—तुलसीदास (रामचरितमानस, ७।६५।४)

हित पुनीत सब स्वारर्थहि अरि असुद्ध बिनु चाड़।
निज मुख मानिक सम दसन भूमि परे ते हाड़ ॥
—तुलसीदास (दोहावली, ३३०)

सर निमग्न सिर सलिल अति,
ताकों तनिक न भार।
अपनी करि इक गगरि लइ,
लगत गरिष्ठ अपार ॥

सरोवर में डुबकी लगाने पर सिर पर अत्यधिक जल आ जाता है परन्तु उसका तनिक भी भार नहीं लगता किन्तु अपने हाथ में अपने कर की एक गगरी भर लेने पर भी वह अपार भारी लगती है।
—दयाराम (दयाराम सतसई, क्रमांक ४१६)

राक्षस भी अपने स्वार्थ के लिए इतिहास और पुराण का प्रमाण दे सकता है।
—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (दुर्लभ बन्धु)

पशुओं को खाते-खाते मनुष्य, पशुओं के भोजन की जगह भी खाने लगे। ओह कितना इनका पेट बढ़ गया है! वाह रे समय !!
—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० ११)

किन्तु संधिपत्र स्वार्थों से प्रबल नहीं होते, हस्ताक्षर तलवारों को रोकने में असमर्थ प्रमाणित होंगे।
—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, चतुर्थ अंक)

बुद्धि का अक्षय कोष मनुष्य, थोड़ी सी भूमि के लिए मनुष्यत्व को मिट्टी मे मिला देना चाहता है।
—रामकुमार वर्मा (चारुमित्रा)

धन, वैभव, अधिकार—सब स्वार्थ की भूमिकाएं हैं। *सब छलना है।*
—रांगेय राघव (पक्षी और आकाश, पृ० ६५)

दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है। केवल उतना ही याद रखती है जितने से उसका स्वार्थ सधता है। बाकी को फेंक कर आगे बढ़ जाती है।
—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० १३)

राग को वैराग्य की चटनी लगाकर चाटिए,
ज्ञान को अज्ञान की कैंची चलाकर काटिए।
गीत गाओ त्याग के, चर्चा करो परमार्थ पर,
घूम-फिर कर अन्त में आ जाइए निज स्वार्थ पर ॥
—काका हाथरसी ('सत्संग' कविता)

आप डूबा तो जग डूबा।
—हिन्दी लोकोक्ति

आप-मरे जग प्रलय।
—हिंदी लोकोक्ति

जब तक रकाबी में भात,
तब तक मेरा-तेरा साथ।
—हिंदी लोकोक्ति

रोना है तो इसका कोई नहीं किसी का
दुनिया है और मतलब मतलब है और अपना।
—अकबर इलाहाबादी

वेदनारे करितेछे परिहास।
स्वार्थोद्धत अविचार !

स्वार्थ से उद्धत अविचार वेदना का परिहास कर रहा है।
[बंगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

कोनी निंदा, कोनी वंदा;
अमुचा स्वहिता धंदा।

कोई निंदा करे या वंदना; अपना तो स्वार्थ का धन्धा है।
[मराठी] —मराठी लोकगीत

तिनटकु पुट्टलेवुगद ! वित्तमु जीवितलक्ष्यसिद्धिकै
यनयमु पों' ट्टकोसमीय यन्युल जंपुट
राक्षसत्वमौ।

खाने के लिए ही जन्म नहीं लेते हैं न ? जीवन की लक्ष्य-सिद्धि के लिए खाते हैं। पेट भरने के लिए औरों को मार डालना राक्षसता है।

[तेलुगु] —साधन वीरास्वामि नायुडु ('अहिंसा' कविता)

मैं जितने दीपक जलाता हूं उनमें से केवल लपट और कालिमा ही प्रकट होती है।

— रवीन्द्रनाथ ठाकुर (नैवेद्य)

प्रीति की अपेक्षा प्रयोजन ने ही आज मनुष्य को सबसे अधिक ग्रस लिया है।

— विमल मित्र (परस्त्री, पृ० ३०)

The devil can seriptive for his purpose.

अपने प्रयोजन के लिए तो शैतान भी धर्मग्रन्थ उद्धृत कर सकता है।

—शेक्सपियर (दि मर्चेण्ट आफ़ वेनिस, १।३)

स्वार्थी

दे० 'स्वार्थ'।

स्वावलम्बन

अत्तदीपा भिक्खवे बिहरथ, अत्तसरणा अनञ्ञ-
सरणा।

भिक्षुओं ! आत्मदीप और आत्मशरण होकर विहार करो, किसी दूसरे के भरोसे मत रहो।

[पालि] —दीघनिकाय (३।३।१)

तजु आसा सब झूठ ही, संग साथी नहिं कोय।
केउ केहू न उबारही, जेहि पर होय सो होय।।

—जगजीवन साहब

मानव-स्वभाव है; वह अपने सुख को विस्तृत करना चाहता है। और भी, केवल अपने सुख से ही सुखी नहीं होता, कभी-कभी दूसरों को दुखी करके, अपमानित करके, अपने मान को, सुख को प्रतिष्ठित करता है।

—जयशंकर प्रसाद (तितली, पृ० ४६)

स्वावलम्बन के बिना स्वराज्य की कल्पना करना ही ग़लत है।

—दीनदयाल उपाध्याय

तुमने जो बनी बनाई राह हमारे सामने कर दी है वह हमें कुछ भी दूर नहीं ले जाती।

—जैनेन्द्र कुमार (सुनीता, पृ० ३१-३२)

खेती पाती[1] बीनती[2] औ घोड़े की तंग।
अपने हाथ सँवारिये लाख लोग हों संग।।

—घाघ

करु बहियां बल आपनी, छोड़ बिरानी आस।
जाके आँगन नदी है, सो कस मरे पियास।।

—अज्ञात

आप काज महाकाज।

—हिंदी लोकोक्ति

अपना हाथ जगन्नाथ।

—हिंदी लोकोक्ति

दर जहां बालो व परे खेश कुशूदन आमोज,
कि परीदन नतवाँ बा परो बाले दीगरां।

संसार में अपने पंखों को फैलाना सीखो क्योंकि दूसरों के पंखों के सहारे उड़ना संभव नहीं।

[फ़ारसी] —इक़बाल

ता कुजा दर तहे बाले दीगरां मी बाशी
दर हवाए चमन आज़ाद परीदन आमोज़।

तुम दूसरों के डैनों का सहारा कब तक लोगे ? उपवन की हवा में स्वतंत्र होकर उड़ना सीखो।

[फ़ारसी] —इक़बाल

---

१. पत्र लिखना। २. विनती करना।

आपन चोखे सोना वर्षे, दादार चोखे रुपा,
तार पर यतो देख, गाया और गुपा।

अपने नेत्रों के सामने काम होगा तो सोना बरसेगा। बड़े भाई के सामने काम होगा तो चांदी बरसेगी। अन्य लोग काम देखेंगे तो बातें ही होंगी।

[बँगला] —बँगला लोकोक्ति

देवता उनकी सहायता करते है जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं।

—ईसप (नीतिकथाएं)

स्वयं अपनी सहायता करो तो ईश्वर तुम्हारी सहायता करेगा।

—जीन डि ला फ़ांतेन (फेबिल्स, ६।१८)

You can elevate others only if you have elevated yourself.

आप दूसरो को तभी ऊपर उठा सकते है, जब आप स्वय ऊपर उठ चुके हों।

—शिवानंद (वाइस आफ़ दि हिमालयाज, पृ० २०)

स्वास्थ्य

शीतोष्णो चैव वायुश्च त्रयः शरीरजा गुणाः।
तेषां गुणानां साम्यं यत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम् ॥

सर्दी, गर्मी और वायु (कफ़, पित्त और बात)—ये तीन शारीरिक गुण हैं। इन तीनों का साम्यावस्था में रहना ही स्वास्थ्य का लक्षण बताया गया है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १६।११)

सत्वं रजस्तम इति मानसाः स्युस्त्रयो गुणाः।
तेषां गुणानां साम्यं यत्तदाहुः स्वस्थलक्षणम् ॥

सत्व, रज और तम—ये तीन मानसिक गुण हैं। इन तीनों गुणों का सम अवस्था में रहना मानसिक स्वास्थ्य का लक्षण बताया गया है।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, १६।१३)

शरीरं सत्वसंज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मतः।
तथासुखानां योगस्तु सुखानां कारणं समः॥

शरीर और मन रोगों तथा अस्वस्थता के आधार हैं। जब (शरीर, मन और इन्द्रिय-विषय का) समान योग होता है, तब स्वस्थता होती है और इनका असमान योग होता है, तब रोग होता है।

—चरकसंहिता (सूत्र स्थान, प्रथम अध्याय)

तस्य प्रकृतिरुद्दिष्टा दोषा शरीरमानसाः।
देहिनं नहि निर्दोषं ज्वरः समुपसेवते ॥

शारीरिक और मानसिक दोष ज्वर की उत्पत्ति के कारण है। दोषरहित प्राणी को ज्वर कभी नहीं सताता है।

—चरकसंहिता (चिकित्सास्थान, तृतीय अध्याय)

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रधान कारण आरोग्य है।

—चरकसंहिता

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥

जिसके वात, पित्त और कफ समान रूप से कार्य कर रहे हों, पाचन-शक्ति ठीक हो, रस आदि धातु एवं मलों की क्रिया सम हो और आत्मा, इन्द्रियां तथा मन प्रसन्न हों, उसी को स्वस्थ कहते हैं।

—सुश्रुतसंहिता

किं सौख्यमरोगिता जगति जन्तोः।

सुख क्या है? प्राणी की संसार में अरोगिता।

—नारायण पंडित (हितोपदेश, १।१४७)

आनीयते शरीरेण क्षीणोऽपि विभवः पुनः।
विभवः पुनरानेतुं शरीरं क्षीणमक्षमः ॥

क्षीण हुआ वैभव शरीर के द्वारा पुनः प्राप्त किया जा सकता है किन्तु धन क्षीण शरीर को पूर्ववत् लाने में असमर्थ है।

—अज्ञात

निरामयस्य किमायुर्वेदविदः।

नीरोग को वैद्यराज से क्या लेना देना ?

—अज्ञात

बड़ा ही अभागा है वह देश, जिसके युवक और युवतियों के चेहरों पर स्वास्थ्य की आनन्ददायिनी झलक देखने में न आवे।

—गणेशशंकर विद्यार्थी (साप्ताहिक प्रताप, २५ जनवरी १९१४)

शरीर-सम्बन्धी नियमों को हम कब तोड़ते हैं, इसका हमें पता नहीं चलता। और जो सिद्धान्त इन्सान के बनाये क़ानून के बारे में हैं, वही क़ुदरत के क़ानून के बारे में भी है कि अज्ञान यह कोई बचाव नहीं है।

— महात्मा गांधी (मीरा बहन को पत्र, २१-७-३२)

शरीर को इतना कमाओ कि वह फ़ौलाद हो जाये, तभी मन दृढ़तापूर्वक भगवान की ओर जायेगा।

—वृन्दावनलाल वर्मा (झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, पृ० १८१)

आंख में अंजन, दांत में मंजन,
नित कर, नित कर, नित कर।
कान में लकड़ी नाक उँगली,
मत कर, मत कर, मत कर॥

—अज्ञात

प्रत्येक युवती के स्वास्थ्य की जितनी हानि होगी, उतनी ही हानि आने वाली प्रजा की होगी।

—विनायक दामोदर सावरकर (क्रांतिकारी चिट्ठियां, पृ० ५६)

तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत।

—हिंदी लोकोक्ति

स्वास्थ्य के विना जीवन-जीवन नहीं है।

—एरीफ़ान

सदैव दूसरों को प्रसन्न रखने की बात सोचा करो, इस नुस्खे से तुम चौदह दिन मे स्वस्थ हो जाओगे।

—एलफ़्रेड एडलर (मेलंकोलिया रोग के रोगियों को सलाह)

Now good digestion wait on appetite
And health on both.

अच्छी पाचन क्रिया भूख पर निर्भर करती है और स्वास्थ्य दोनों पर।

—शेक्सपियर (मैकबेथ, ३।४)

स्वेच्छाचार

न स्वेच्छं व्यवहर्तव्यमात्मनः भूतिमिच्छता।

अपने कल्याण के इच्छुक व्यक्ति को स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिए।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, १४।१२७)

ह

हँसना-रोना

कबीर हसणां दूरि करि, करि रोवण सौं चित्त।
बिन रोयां क्यूं पाइए, प्रेम पियारा मित्त॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ६)

जो रोऊं तो बल घटे, हँसौं तो राम रिसाइ।
मनहि माँहि बिसूरणां, ज्यूं घुंण काठहि खाइ॥

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० ६)

'सम्मन' किसको रोइये, हँसिये कौन विचार।
गये सो आवन के नहीं, रहे सो जावनहार॥

—सम्मन

जहाँ हँसेंगे लोग वहीं रोना भी होगा।
रस खेती के हेतु बीज बोना भी होगा।
हँसना-रोना एक तत्त्व केवल दो काया।
जीवन लेकर सीख यही जगती में आया।

—गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

शादी ओ ग़म में जहां[1] की एक से दस का है फ़र्क़[2],
ईद के दिन हँसिये तो दस दिन मोहर्रम रोइए।

—मीर

मसर्रत[3] हुई हँस लिए दो घड़ी,
मुसीबत पड़ी रो के चुप हो गए।

—'कैफ़' बरेलवी

Laugh and the world laughs with you;
Weep and you weep alone,
For the mad old earth must borrow its mirth,
But has trouble enough of its own

यदि हँसोगे तो सारा जगत तुम्हारे साथ हँसेगा। यदि तुम रोओगे तो तुम्हें अकेले ही रोना पड़ेगा क्योंकि इस दुःखी वृद्ध संसार को प्रसन्नता तो कहीं से माँगनी पड़ेगी परन्तु कष्ट तो उसका अपना ही बहुत है।

—व्हीलर (दि वे आफ़ दि वर्ल्ड)

1. जगत। 2. अन्तर। 3. हर्ष।

हँसी

दे० 'हँसना-रोना' भी।

लेखनीमितइतो विलोकयन्
कुत्र-कुत्र न जगाम पद्मभूः।
तां पुनः श्रवणसीम्नि योजितां
प्राप्य सन्ततमुखः स्मितं दधौ॥

लेखनी को इधर-उधर ढूंढ़ते हुए ब्रह्मा कहाँ-कहाँ नहीं गए? परन्तु बाद में अपने ही कान के ऊपर लगायी हुई लेखनी को पाकर वह मुख नीचे करके मुस्कराने लगे।

—भानुदत्त (रसतरंगिणी, ७।१)

न प्राप्नुवन्ति यतयो रुदितेन मोक्षं
स्वर्गायितिं न परिहासकथा रुणद्धि।
तस्मात् प्रतीतमनसा हसितव्यमेव वृत्तिं
बुधेन खलु कौसकुचीं विहाय॥

यतिगण रोने-कलपने से ही मोक्ष नहीं पा जाते हैं। यदि स्वर्ग मिलने वाला है, तो परिहास कथा से उसमें बाधा नहीं पड़ने वाली है। अतः बुद्धिमान व्यक्ति को मुंह बिगाड़ रहने का स्वभाव छोड़कर खुले मन से हँसना चाहिए।

—पादताडितकम्

अक्षमः क्षमतामानो क्रियायां यः प्रवर्तते।
स हि हास्यास्पदत्वं च लभते प्राणसंशयम्॥

जो असमर्थ व्यक्ति स्वयं को समर्थ मानता हुआ कार्य में लगता है, वह हँसी का पात्र बनता है तथा प्राण-संशय को प्राप्त करता है।

—अज्ञात

णतिवेलं हसे मुणी।

मर्यादा से अधिक नहीं हँसना चाहिए।

[प्राकृत] —सूत्रकृतांग (१।९।२९)

तिह हसु जिहण हसिज्जइ जणेण।
हँसना वही ठीक है कि दूसरे हँसी न उड़ा सकें।
[अपभ्रंश] —स्वयम्भूदेव (पउमचरिउ, ७।१२।२)

प्रान हमारे घात होत हैं, तुम्हारे भाएं हाँसी।
—सूरदास (सूरसागर, १०।४२२५)

हँसत बाल के बदन मैं यौं छबि कछू अतूल।
फूली चंपक बेलि तैं झरत चमेली-फूल।।
—मतिराम (मतिराम ग्रंथावली, पृ० ३९१)

नहीं सह सकता उनकी हँसी, जो अपने बराबर के हैं, क्योंकि उनकी हँसी में ईर्ष्या, व्यंग और जलन है।
—प्रेमचंद (गोदान, पृ० १७)

उस हँसी के पीछे निस्सन्देह दुःख की एक दीर्घ परम्परा थी।
—हजारीप्रसाद द्विवेदी (चारुचन्द्रलेख, पृ० १४४)

अपने ऊपर इसलिए हँसो कि तुमने संसार को नहीं समझा। संसार पर इसलिए हँसो कि संसार ने तुमको नहीं समझा। अपनी भूलों पर इसीलिए हँसो कि उनका सुधार असंभव है। अपनी लालसाओं पर इस वास्ते हँसो कि वे अनधिकार चेष्टा थीं। अपने प्रेमियों पर इस कारण हँसो कि उनका प्रेम मिथ्या था। अपने द्रोहियों पर इसीलिए हँसो कि उनका द्रोह झूठा है। इससे अधिक हँसने के और क्या कारण हो सकते हैं?
—विश्वम्भर नाथ 'शर्मा' कौशिक (भिखारिणी, पृ० २५९)

दूध पीने वाला शिशु जैसी निर्दोष हँसी हँसता है, वैसी ही हँसी, मस्ती बिखेरने वाली हँसी, कष्टों को विदा करने की अचूक दवा है।
—रामचरण महेन्द्र (आनन्दमय जीवन, पृ० १२८)

दिल-जलों से दिल्लगी अच्छी नहीं,
रोने वालों से हँसी अच्छी नहीं।
—रियाज (दर्द-ए-दिल)

हँसी तेरी पियारे फुलझड़ी है,
यही ग़ुंचे[1] के दिल में गुलझड़ी है।
—मजमून

सलीके का मज़ाक़ अच्छा, करीने की हँसी अच्छी,
अजी जो दिल को भा जाए वही बस दिल्लगी अच्छी।
—अज्ञात

With the fearful strain that is on me night and day, if I did not laugh I should die.

इतना भयंकर तनाव रात-दिन मुझ पर है कि यदि मैं न हँसू तो मर जाऊंगा।
—अब्राहम लिंकन

There is nothing more unbecoming of a man than to laugh.

मनुष्य के लिए हँसने से अधिक अशोभन कुछ नहीं है।
—विलियम कान्ग्रेव (दि डबिल डीलर, १।२)

हठ

अति हठ मत कर हठ बढ़े, बात न करिहै कोय।
ज्यौं-ज्यौं भीजै कामरी, त्यौं-त्यौं भारी होय।।
—वृन्द (वृन्द सतसई)

पंचों का कहना सिर आंखों पर, मगर परनाला यहीं गिरेगा।
—हिन्दी लोकोक्ति

पट्टु बट्ट राडु पट्टि विडुव राडु।
किसी बात पर 'हठ' करना नहीं चाहिए। हठ किया हो तो उसको अन्त तक छोड़ना भी नहीं चाहिए।
[तेलुगु] —क्षेत्रय्या

---

1. कली।

हठयोग

अशेषतापतप्तानां समाश्रयमठो हठः।
अशेषयोगयुक्तानामाधारकमठो हठः॥

हठयोग तो सम्पूर्ण तापों से तप्त मनुष्यों का आश्रय-स्थल मठ है। हठयोग सम्पूर्ण योगों से युक्त मनुष्य के लिए कच्छपरूप भगवान के समान आधारभूत है।

—स्वात्माराम योगींद्र (हठयोगप्रदीपिका, १।१०)

ब्रह्मचारी मिताहारी त्यागी योगपरायणः।
अब्दादूर्ध्वं भवेत् सिद्धो नात्रकार्या विचारणा॥

ब्रह्मचारी, मिताहारी, त्यागी और योगपरायण मनुष्य एक वर्ष के अनंतर सिद्ध हो जाता है, इसमे संशय नहीं करना चाहिए।

—स्वात्मारामयोगीन्द्र (हठयोगप्रदीपिका, १।५७)

युवा वृद्धोऽतिवृद्धो वा व्याधितो दुर्बलोऽपि वा।
अभ्यासात् सिद्धिमाप्नोति सर्वयोगेष्वतंद्रितः॥

युवा हो, वृद्ध हो, अतिवृद्ध हो, रोगी हो या दुर्बल हो, सब योगांगों में आलस्य न करते हुए अभ्यास से सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

—स्वात्मारामयोगींद्र (हठयोगप्रदीपिका, १।६४)

वपुः कृशत्वं वदने प्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले।
अरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं नाडीविशुद्धिर्हठयोग-लक्षणम्॥

देह की कृशता, मुख पर प्रसन्नता, वाणी की स्फुटता, नेत्रों की निर्मलता, रोग का अभाव, विंदु-जय, अग्निदीपन तथा नाडी-विशुद्धि—ये हठयोग के लक्षण है।

—स्वात्मारामयोगीन्द्र (हठयोगप्रदीपिका, २।७८)

गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया।
परखि देखु तैं ओहि की छाया।
पाइअ नाहि जूझि हठि कीन्हे।
जेइँ पावा तेइँ आपुहि चीन्हे।
नौ पौरी तेहि गढ़ मँझिआरा।
औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा।
दसवँ दुआर गुपुत एक नाँकी।
अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँकी।
भेदी कोइ जाइ ओहि घाटी।
जौं लै भेद चढ़ै होइ चाँटी।
गढ़ तर सुरंग कुण्ड अवगाहा।
तेहि महँ पंथ कहौं तोहि पाहाँ।
चोर पैठि जस सेंधि सँवारी।
जुआ पैंत जेउँ लाव जुआरी।
जस मरजिआ समुँद धँसि मारै हाथ आव तव सीप।
ढूँढि लेहि सुरग दुवारी औ चढ़ु सिंघलदीप॥
दसवँ दुवार तारु का लेखा।
उलटि दिस्ट जो लावो देखा।

—जायसी (पदमावत, २१५-२१६)

हत्या

अनागोहत्या वै भीमा।
निरपराध की हत्या करना बड़ा भयंकर है।

—अथर्ववेद (१०।१।२६)

तिल भरि मच्छी खाइकै, कोटि गऊ करि दान।
कासी करवत लै मरै, तो भी नरक निदान॥

—कबीर

सबमें एक खुदा ही कहत हो,
तो क्यों मुरगी मारो?

—कबीर

जिव मति मारो बापुरा, सबका एकै प्रान।
हत्या कबहुं न छूटिहै, कोटिन सुने पुरान॥

—कबीर

कुंजर चींटी पसू नर, सब में साहिव एक।
काटै गला खुदाय का, करे सूरमा लेख॥

—मलूकदास

खून वह जो सिर पै चढ़के बोले।

—हिन्दी लोकोक्ति

Assassination has never changed the history of the world.

हत्या ने कभी विश्व का इतिहास नहीं बदला है।

—डिज़रायली (मई १८६५ का एक भाषण)

Assassination is the extreme form of censorship.

हत्या सेंसर-व्यवस्था का चरम रूप है।

—जार्ज बर्नार्ड शा (दि शोइंग अप आफ़ ब्लेंको पॉसनेट, दि लिमिट्स आफ़ टॉलरेशन)

हनुमान

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि।।

अतुल बल के धाम, सोने के पर्वत के समान कान्तियुक्त शरीर वाले, दैत्य रूपी वन के लिए अग्निरूप, ज्ञानियों में अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणों के निधान, वानरों के स्वामी, श्री रघुनाथ जी के प्रिय भक्त पवन-पुत्र हनुमान जी को मैं प्रणाम करता हूँ।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, ५।३ श्लोक)

बल कैधों[1] वीर रस, धीरज कै[2], साहस कै
तुलसी सरीर धरे सबनि को सार सो।

—तुलसीदास (हनुमान बाहुक, पद्य ४)

नाइ-नाइ माथ जोरि-जोरि हाथ जोधा जोहैं
हनुमान देखे जग जीवन को फल भो[3]।

—तुलसीदास (हनुमान बाहुक, पद्य ५)

सारिखो[4] त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो[5]।

—तुलसीदास (हनुमान बाहुक, पद्य ७)

दूत राम राय को सपूत पूत पौन को तू
अंजनी को नंदन प्रताप भूरि भानु सो।
सीय-सोच-समन, दुरित[6]-दोष-दमन
सरन आये अवन लखन-प्रिय प्रान सो।।
दसमुख दुसह दरिद्र दरिबे को भयो
प्रगट तिलोक ओक तुलसी निधान सो।

—तुलसीदास (हनुमान बाहुक)

१. न जाने। २. अथवा, क्या। ३. हुआ। ४. सदृश। ५. हुआ। ६. पाप।

घोर जंत्र मंत्र कूट कपट कुजोग रोग
हनुमान आन[1] सुनि छाँड़त निकेत[2] हैं।

—तुलसीदास (हनुमान बाहुक, ३२)

हनुमन मतवे हरिम मतवो।
हरिम मतवे हनुमन मतवो।।
हनुमनु ओलिदरे हरि ताजो लिवनु।
हनुमनु मुनिदरे हरि मुनिव।।

श्री हनुमान का मत ही श्री हरि का मत है। श्री हरि का मत ही श्री हनुमान का मत है। श्री हनुमान प्रसन्न होंगे तो हरि अवश्य प्रसन्न होंगे। यदि श्री हनुमान अप्रसन्न होंगे तो श्री हरि भी अप्रसन्न होंगे।

[कन्नड़] —पुरंदरदास

आञ्जिलै ओन्रु पेट्रान आञ्जिलै ओन्रैत्तावि
आञ्जिलै ओन्रु आराग आरियरक्काग एगि।
आञ्जिलै ओन्रु पेट्र अणंगु कण्डु अयलार ऊरिल्
आञ्जिलै ओन्रै वैत्तान् अवन् एम्मै अलित्तुक्काप्पान्।।

पाँचों में से एक का पुत्र, पाँचों में से एक को लांघकर पांचों में से एक के मार्ग से आर्यों के नाते पहुंचकर, पाँचों में से एक की पुत्री देखकर विजनों के क्षेत्र में, पाँचों में से एक को लगाकर आया, वह (हनुमान) हमारी रक्षा करे।[3]

[तमिल] —अज्ञात

आमार कि फलेर अभाव ?
पेयेछि जे फल, जनम सफल,
मोक्षफलेर वृक्ष राम हृदये।
श्री रामकल्पतरुमूले बसे रई।
जखत जे फल वांछा, सेई फल प्राप्त हई।।

मुझे क्या फल की कमी है? मुझे जो फल प्राप्त है, उससे मेरा जन्म सफल हो गया है। मोक्ष-फल के वृक्ष श्रीराम मेरे हृदय में है। मैं श्रीराम रूपी कल्पवृक्ष के मूल में बैठा हूं। जब जिस फल की इच्छा होती है वह फल मुझे उसी समय प्राप्त हो जाता है।[4]

[बंगला] —अज्ञात

१. शपथ। २. स्थान। ३. आञ्जिलै शब्द यहां पाँच बार आया है। इस शब्द का अर्थ है पाँच। एक-एक करके क्रमशः वायु, जल, आकाश, पृथ्वी व अग्नि संकेतित हैं।
४. हनुमानजी की उक्ति।

धीर गुरु हनुमान को देखो। उनसे पौरुष का वर माँगो। उनका एक हाथ पौरुष का है और एक धर्म के साथ है। उनका एक पद विज्ञान है और एक सौजन्य है।

—डी०वी० गुंडप्पा (बाळिगोंदु नबिके, पृ० ९१)

हरड़

हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी॥

हरड़ मनुष्यों के लिए माता के समान हितकारी होती है। माता तो कभी कुपित भी हो जाती है पर उदरस्थ हरड़ कभी कुपित नहीं होती।

—भावप्रकाश

हरियाली

हसुरत्तल ! हसुरित्तल
हसुरेत्तल् कडलिनलि।
हसुर्गट्टितो कवियात्मं
हसुर् नेत्तर् ओडलिनलि !

उधर हरियाली है, इधर हरियाली है, यहां-वहां सब जगह हरियाली है। इस हरियाली के सागर में डूबी कवि की आत्मा भी हरी हो गई है। कवि के शरीर का रक्त भी हरा बन गया है। कवि की हर नाड़ी में हरियाली ही बह रही है।

[कन्नड़] —कुवेम्पु (कविता 'हसुरु')

हल

हल है झंडा सदा तुम्हारा,
हल के गाओ गौरव-गान;
हल से हल हों सभी समस्या
सहल बने अपना मैदान।

—सोहनलाल द्विवेदी (युगाधार, पृ० ३५)

हर्ष

दे० 'प्रसन्नता', 'हर्ष और शोक'।

हर्ष और शोक

सुनते है खुशी भी है जमाने में कोई चीज
हम ढूंढते फिरते हैं किधर है वह कहां है।

—दाग़

तुम्हारा हर्ष है नग्न होकर प्रकट होने वाला तुम्हारा शोक।

—खलील जिब्रान (जीवन-संदेश, पृ० ३९)

जब तुममें हर्ष की उमंगें उठें तब अपने हृदय की तह में देखो तो तुम्हें ज्ञात होगा कि जो तुम्हें हर्ष प्रदान कर रहा है, वह वही है, जिसने तुम्हें शोक प्रदान किया था। और जब तुम शोक में डूबे हुए हो, तब फिर अपने अन्तरतम में झांको तो तुम देखोगे कि वास्तव में तुम उसके लिए रो रहे हो, जिसने तुम्हें प्रसन्नता प्रदान की थी।

—खलील जिब्रान (जीवन-संदेश, पृ० ३९)

हाइकू

जिसने जीवन में तीन से पाँच तक हाइकू[1] रच लिए, वह हाइकू कवि है और जिसने दस हाइकू की रचना कर ली, वह महान कवि है।

—मात्सुओ बाशो

हाथ

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः॥

यह मेरा हाथ ऐश्वर्यवान् है, यह मेरा दूसरा हाथ और भी अधिक ऐश्वर्यवान् है। यह मेरा हाथ सब रोगों को औषधिवत् दूर करने वाला है। यह मेरा हाथ सुखयुक्त स्पर्श वाला है।

—ऋग्वेद (१०।६०।१२)

हाथ को तब हाथ कोई क्यों कहे,
हो सका जब लोक सेवा में न रत,
दे सका जब दान दीनों को नहीं,
जो न पाया पूज पूजित को सतत॥

1. जपानी काव्य का एक रूप।

लाज जिससे लाज वालों की रहे,
बुन सका जो वह नहीं ऐसा वसन,
लोकहितकर काम कर कमनीयतम,
जो सका भव में न कीर्ति वितान तन
जो न गिरतों के उठाने को उठा
जो सिंची उससे सुरुचि क्यारी नहीं ।।
तो कहाँ उसमें रही कमनीयता,
जो लगी उसको सुकृति प्यारी नहीं ।।
जो तपे के शीश पर छाया न की
जल रहे को जो बचा पाया नहीं,
जो न उससे आँख के आँसू पुंछे,
हाथ तो कुछ हाथ के आया नहीं ।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

सच्चा दैन्य केवल सम्पत्ति का अभाव नहीं है वरन संपत्ति की इच्छा का भी अभाव है अर्थात हृदय और हाथ दोनों खाली रहने चाहिए।

—लाल बहादुर वर्मा (इस्लाम का सूफ़ी-सम्प्रदाय : एक परिचय)

हाथ मिलाना

पकड़ कर हाथ झकझोरो किसी से जब मिलो 'बेढब'
नमस्ते-वन्दगी की जंगली आदत पुरानी है।

—'बेढब' बनारसी (बेढब की बहक, पृ० १७)

हाथी

अन्यूनोन्नतयोऽतिमात्रपृथवः पृथ्वीधरश्रीभृतस्
तन्वन्तः कनकावलीभिरुपमां सौदामनीदामभिः ।
वर्षन्तः शममानयन्नुपलसच्छृंगारलेखायुधाः
काले कालियकायकालवपुषः पांसून्
गजाम्भोमुचः ।।

अत्यन्त ऊँचे, विशाल आकार वाले, पर्वतों के सौन्दर्य को धारण किए हुए, बिजली के सदृश कनकावलियों वाले, इन्द्रधनुषों के सदृश लाल लाख से अलंकृत और कालिय नाग के शरीर की कान्ति वाले मेघ सदृश गजों ने मदवर्षा करके उठती धूल को शान्त कर दिया।

—माघ (शिशुपालवध, १७।६९)

अन्योन्येषां पुष्करैरामृशन्तो
दानोद्भेदानुच्चकैर्भुग्नवालाः ।
उन्मूर्धानः संनिपत्यापरान्तैः
प्रायुध्यन्त स्पष्टदन्तध्वनीभाः ।।

दाँतों की टकराहट की ध्वनियां करते हुए, सिर उठाए हुए और पूँछों को झुकाए हुए व उठाए हुए और अपनी सूंडों के सिरों को एक दूसरे के गंडस्थलों में मारते हुए हाथी युद्ध कर रहे हैं।

—माघ (शिशुपालवध, १८।३२)

एतद्गन्धगजस् तृषाम्भसि भृशं कंठान्तमज्जत्तनुः
फेनैः पांडुरितः स्वदिक्करिजयक्रीडायशःस्पर्धिभिः ।
दन्तद्वन्द्वजलानुबिम्बनचतुर्दन्तः कराम्भोवमि
व्याजादभ्रमुवल्लभेन विरहं निर्वापयत्यम्बुधेः ।।

उसका गन्धयुक्त गज प्यास के कारण आकण्ठ जल में निमग्न शरीर वाला होता हुआ ऐरावत गज से वियोगजन्य सागर के दुःख को उस पर अपनी सूंड से जल उलीचने के द्वारा शान्त कर रहा है। यह गज अपने साथी गजों से प्रतियोगिता में विजयी होने से प्राप्त यश से मानो स्पर्धा कर रहे समुद्र के झागों द्वारा यह गज श्वेत किया जा रहा है। जल में इसके दोनों दाँतों के प्रतिबिम्बित होने के कारण यह चार दाँतों वाला दिखाई दे रहा है।

—श्रीहर्ष (नैषधीयचरित, १२।८५)

एवंविधान् गजान् जात्यान् वनादानीय पार्थिवः ।
विनये शिष्यवत् कुर्यात् पुत्रवत् परिपालयेत् ।।

इस प्रकार उच्चजाति के गजों को वन से लाकर राजा को चाहिए कि उन्हें शिष्य के समान शिक्षा दे तथा उनका पुत्र के समान पालन करे।

—पालकाप्य

ऊर्णा नैव ददाति नैव विषयो वाहस्य दोहस्य वा
तृप्तिर्नास्ति महोदरस्य बहुभिर्घासैः पलाशैरपि ।
हा कष्टं कथमस्य पृष्ठशिखरे गोणी समारोप्यते
को गृह्णाति कपर्दकैरलमिति ग्राम्यैर्गजो हस्यते ।।

न तो इससे ऊन मिलती है, न यह गाड़ी खींचता है, और न यह दूध देता है। बहुत घास व पत्तियों से भी इस बड़े पेट वाले की तृप्ति नहीं होती है। हाय ! इसकी पीठ पर अनाज के बोरे कैसे रखे जायेंगे ? इससे क्या धन मिलेगा ?—ऐसा

कह-कह कर ग्रामीण जन (हाथी को जीवन में पहली वार देखकर तथा उसकी उपयोगिता व महत्ता न समझ पाने के कारण) हाथी का उपहास कर रहे हैं।

—अज्ञात

उछृंखलेन निरपेक्षतयोन्मदेन
येनाकुलीकृतमिदं करिणा वभूव।
दत्त्वा पदं शिरसि हस्तिपकार्भकेण
मन्दः कथं गमित एष वशं प्रसह्य॥

यह स्थान एक हाथी द्वारा आकुल कर दिया गया था जब वह जंजीर तोड़कर उन्मादपूर्वक इधर-उधर दौड़ रहा था। महावत के बालक द्वारा उसके सिर पर पैर रखे जाने पर यह कैसे इतना शान्त व नियंत्रित हो गया?

—अज्ञात

'रहिमन' करि सम वल नहीं, मानत प्रभु कै धाक।
दांत दिखावत दीन ह्वइ, चलत घिसावत नाक॥

हाथी के समान किसी में बल नहीं होता है, फिर भी हाथी स्वामी का रौब मानता है। (उसकी नम्रता तो देखो) वह अपनी दीनता प्रकट करने के लिए दाँत दिखाता है और नाक रगड़ता हुआ चलता है।

—रहीम (दोहावली)

छार उछारत सीस पर, कहु 'रहीम किहि काज'।
जिहि रज मुनि पतनी तरी, तिहि खोजत गजराज॥

हाथी अपने सिर पर धूल डाल रहा है, कहो किसलिए? कारण यह है कि हाथी वह रज ढूंढ़ा करता है जिसके स्पर्श से मुनि-पत्नी अहल्या का उद्धार हुआ था।

—रहीम (दोहावली)

जीवित हाथी एक लाख का, मरा हाथी सवा लाख का।

—हिन्दी लोकोक्ति

हाथी रात, वरात, वरसात की चीज़ है।

—हिन्दी लोकोक्ति

हानि

स्वपक्षहानिकर्तृत्वात् स्वकुलांगारतां गतः।

स्वपक्ष की हानि करने वाला कुलांगार के समान होता है।

—संस्कृत लोकोक्ति

ज्ञान घटै किए मूढ़ की संगत,
ध्यान घटै विन धीरज लाए।
प्रीत घटै परदेस वसे अरु,
मान घटै नित ही नित जाए।
सोच घटै किए साधु की संगत,
रोग घटै कछु औषध खाए।
गंग कहैं सुनि साह अकव्वर,
पाप घटै हरि के गुन गाए।

—गंग (गंग कवित्त, ३९)

इस भीषण संसार में एक प्रेम करने वाले हृदय को खो देना, सवसे वड़ी हानि है।

—जयशंकर प्रसाद (ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४४)

लोहा को लोहा काटे और जात[1] को जात।

—हिन्दी लोकोक्ति

चौवे गए छव्वे होने, दुवे ही रह गए।

—हिन्दी लोकोक्ति

गए दोनों जहाँ के काम से हम
न इधर के रहे न उधर के रहे
न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम[2]
न इधर के रहे न उधर के रहे।

—शरर

हास

दे० 'हँसी'।

हास्य कवि

It is the business of a comic poet to paint the vices and follies of human kind.

हास्य-कवि का काम है कि वह मानव जाति के दुर्गुणों और मूर्खताओं का चित्रण करे।

—विलियम कानग्रीव (दि डविल डीलर)

---

१. जाति के लोग। २. प्रिय का दर्शन।

हिन्दी

संस्कृत गहरो कूपजल भाखा वहता नीर।
परसत मन उज्वल करैं, निरमल होत सरीर ।।

—कबीर

तुरकी, अरबी, हिन्दवी, भाखा जेती आहि।
जेहि महँ भाखा प्रेम कर सबै सराहैं ताहि ।।

—जायसी

हिन्दी किसी के मिटाने से मिट नहीं सकती।

—चन्द्रबली पांडेय

भारतीय धर्म की है घोषणा घमंड भरी
हिन्दी नहीं जाने उसे हिन्दी नहीं जानिए।

—नाथूराम शंकर शर्मा

है भव्य भारत ही हमारी मातृभूमि हरी भरी।
हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा और लिपि है नागरी ।।

—मैथिलीशरण गुप्त

भाषा और संस्कृति से खिलवाड़ करने वाले राजनीतिज्ञ आते हैं, चले जाते हैं। ये राजनीतिज्ञ आज हैं और कल नहीं रहेंगे; किन्तु भारतीय संस्कृति की प्रतीक हिन्दी सदा अमर रहेगी।

—पुरुषोत्तमदास टण्डन

जिस भाषा में तुलसीदास जैसे कवि ने कविता की हो वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई भाषा नहीं ठहर सकती।

—महात्मा गांधी (भाषण : काशी नागरी प्रचारिणी सभा में, ५ फरवरी १९१६)

पण्डितजी (मदनमोहन मालवीय) का अंग्रेजी भाषण चाँदी की तरह चमकता हुआ कहा जाता है, किन्तु उनका हिन्दी भाषण इस तरह चमका है, जैसे मानसरोवर से निकलती हुई गंगा का प्रवाह सूर्य की किरणों से सोने की तरह चमकता है।

—महात्मा गांधी (भाषण : भागलपुर में, १४ अक्तूबर १९१७)

तुलसीदास जी की भाषा सम्पूर्ण है, अमर है। इस भाषा में हम अपने विचार प्रकट न कर सकें तो दोष हमारा ही है।

—महात्मा गांधी (भाषण : भागलपुर में, १७ अक्तूबर १९१७)

हिन्दी को आप हिन्दी कहें या हिन्दुस्तानी, मेरे लिए तो दोनों एक ही हैं। हमारा कर्तव्य यह है कि हम अपना राष्ट्रीय कार्य हिन्दी भाषा में करें।

—महात्मा गांधी (भाषण : मुजफ्फरपुर में, ११ नवम्बर १९१७)

मुझे पक्का विश्वास है कि किसी दिन हमारे द्रविड़ भाई-बहन गम्भीर भाव से हिन्दी का अध्ययन करने लगेंगे। आज अंग्रेजी भाषा पर अधिकार प्राप्त करने के लिए वे जितनी मेहनत करते हैं, उसका आठवां हिस्सा भी हिन्दी सीखने में करें तो बाक़ी हिन्दुस्तान जो आज उनके लिए बन्द किताब की तरह है, उससे वे परिचित होंगे और हमारे साथ उनका ऐसा तादात्म्य स्थापित हो जायेगा जैसा पहले कभी नहीं था।

—महात्मा गांधी (यंग इंडिया, १६।६।१९२०)

द्रविड़ लोगों की संख्या कम है, इसलिए राष्ट्रीय शक्ति की दृष्टि से बजाय इसके कि द्रविड़ भारत के समागम के लिए सारे द्रविड़ेतर भारत के लोग तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ सीखें, द्रविड़ों को ही शेष भारत की आम भाषा सीखनी चाहिए।

—महात्मा गांधी (यंग इंडिया, १६।६।१९२०)

यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि हमारी जाति की जीवित भाषा होने का गौरव प्राकृत को ही प्राप्त हुआ है, जो देववाणी संस्कृत की वरिष्ठतम पुत्री है और आज की भाषा में वह हिंदी अथवा हिन्दुस्तानी कहलाती है।

—विनायक दामोदर सावरकर (हिन्दुत्व, पृ० ३९)

भारतवर्ष की राजभाषा चाहे जो हो और जैसी भी हो, पर इतना निश्चित है कि भारतवर्ष की केन्द्रीय भाषा हिन्दी है। लगभग आधा भारतवर्ष उसे अपनी साहित्यिक भाषा मानता है, साहित्यिक भाषा अर्थात् उसके हृदय और

मस्तिष्क की भूख मिटाने वाली, करोड़ों की आशा-आकांक्षा अनुराग-विराग, रुदन-हास्य की भाषा। उसमें साहित्य लिखने का अर्थ है करोड़ों के मानसिक स्तर को ऊँचा करना, करोड़ों मनुष्यों को मनुष्य के सुख-दुःख के प्रति संवेदनाशील बनाना, करोड़ों को अज्ञान, मोह और कुसंस्कार से मुक्त करना।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० ४७-४८)

हिन्दी भारतवर्ष के हृदय-देश में स्थित करोड़ों नर-नारियों के हृदय और मस्तिष्क को खुराक देने वाली भाषा है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० १७०)

हिन्दी को संस्कृत से विच्छिन्न करके देखने वाले उसकी अधिकांश महिमा से अपरिचित हैं।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, पृ० १७४)

हिन्दी-उर्दू दो भाषाएं नहीं हैं क्योंकि उनका व्याकरण एक है—उनका मूल शब्द-भण्डार एक है।

—रामविलास शर्मा (भाषा और समाज, पृ० ३३५)

मैं मानता हूं कि भारत की आधुनिक भाषाओं में हिन्दी ही सच्चे अर्थ में सदैव भारतीय भाषा रही है, क्योंकि वह निरन्तर भारत की एक समग्र चेतना को वाणी देने का चेतन प्रयास करती रही है। और सभी भाषाओं में प्रदेश बोला है—कई बार बड़े प्रभावशाली ढंग से बोला है, हिन्दी में आरंभ से ही देश बोलता रहा है—भले ही कभी-कभी कमजोर स्वर में भी बोला है।

—सच्चिदानंद वात्स्यायन (अद्यतन)

हिन्दी हमारी मौसी है[1] और मौसी का प्रेम निश्चय ही माता से कम नहीं होता।

—मनोहर कृष्ण गोलवलकर

हिन्दी को गंगा नहीं बल्कि समुद्र बनना होगा।

—विनोवा भावे

चू मन तूतिए हिंदम, अर रास्त पुरसी,
जे मन हिंदवी पुर्स, ता नग्ज़ गोयम।

मैं हिन्दुस्तान की तूती हूं। यदि तुम कुछ पूछना चाहते हो तो हिन्दी में पूछो, मैं तुम्हें उसमें बातें बता सकूंगा।
[फ़ारसी]

—अमीर खुसरो

हिन्दी के विरोध का कोई भी आन्दोलन राष्ट्र की प्रगति में बाधक है।

—सुभाषचंद्र वसु

प्राचीन हिन्दी-कवियों के ऐसे-ऐसे गीत मैंने सुने हैं कि सुनते ही मुझे ऐसा लगा है कि वे आधुनिक युग के हैं। इसका कारण यह है कि जो कविता सत्य है, वह चिरकाल ही आधुनिक है। मैं तुरंत समझ गया कि जिस हिन्दी-भाषा के खेत में भावों की ऐसी सुनहरी फ़सल फली है, वह भाषा भले ही कुछ दिन यों ही पड़ी रहे, तो भी उसकी स्वाभाविक उर्वरता नहीं मर सकती, वहां फिर खेती के सुदिन आयेंगे और पौष मास में नवान्न उत्सव होगा।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (रवीन्द्र साहित्य : भाग २४, 'चयन' निबन्ध, पृ० १२८)

विद्या की कोई भी संस्था वास्तविक अर्थ में भारतीय नहीं कही जा सकती जब तक उसमें हिंदी के अध्ययन-अध्यापन का प्रबंध नहीं हो।

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (स्पार्क्स फ़्राम ए गवनर्स एन्‌विल, खंड १, पृ० ८०)

हिंदी ही हमारे राष्ट्रीय एकीकरण का सबसे शक्तिशाली और प्रधान माध्यम है। यह किसी प्रदेश या क्षेत्र की भाषा नहीं, बल्कि समस्त भारत की 'भारती' के रूप में ग्रहण की जानी चाहिए!

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (भारतीय हिंदी परिषद् के खुले अधिवेशन के सभापति पद से भाषण, १९५३ ई०)

It is the language of a very large section of the people of India, of the majority, if we disregard small dialectical variations. It is indeed in a position to claim to be the 'national' language of India, even as Hinduism is the 'national' religion of India. But it would be improper to make Hinduism the 'official' religion of India as it would, according to me, be

1. मराठी-भाषी होने के नाते।

improper to make Hindi the 'official' language of India···What is 'national' need not always be 'official'.

यह भारत की जनता के बहुत बड़े गर्व की ओर, यदि हम छोटे-मोटे बोलीगत रूप भेदों को छोड़ दें तो, बहुमत की भाषा है। वास्तव में यह उसी प्रकार भारत की 'राष्ट्रीय' भाषा होने का दावा कर सकती है, जिस प्रकार से हिंदू धर्म भारत का 'राष्ट्रीय धर्म' है। लेकिन मेरे विचार में जिस प्रकार हिन्दू धर्म को भारत का राजधर्म बनाना अनुचित है, उसी प्रकार हिन्दी को भी भारत की राजभाषा बनाना अनुचित है।···आवश्यक नहीं कि जो कुछ राष्ट्रीय है, वह हमेशा 'राजकीय' भी हो।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ('स्वराज्य', ४ अगस्त १९५६)

A sound knowledge of Hindi must be one of the aims of all education in all parts of India. Hindi is bound to be the national language of India. The progress of communications and commerce is certain to bring this about.

भारत के सभी भागों में सारी शिक्षा का एक उद्देश्य हिन्दी का पूर्ण ज्ञान भी होना चाहिए। हिंदी का भारत की राष्ट्र-भाषा होना निश्चित है। संचार-व्यवस्था और वाणिज्य की प्रगति निश्चय ही यह कार्य सम्पन्न करेगी।

—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य (इंडियन फ़िनान्स, १४ सितम्बर १९५७)

हिंदुत्व

दे० 'हिंदू', 'हिंदू धर्म'।

हिंदू

दे० 'हिंदूधर्म' भी।

आसिंधु-सिंधुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव स वै हिन्दुरिति स्मृतः॥

सिंधु नदी से महासागर तक विस्तृत भारतभूमि जिसकी पितृभूमि है और पुण्यभूमि है, वही 'हिन्दू' है।

—विनायक दामोदर सावरकर (हिन्दुत्व, पृ० १०१)

खाने-पीने मात्र से हिन्दू धर्मावलम्बी धर्मभ्रष्ट कैसे होगा? कारण यह कि हिन्दू धर्म का निवास-स्थान तुम्हारा पेट नहीं है। वह तुम्हारे रक्त में है, बीज में है, हृदय में है आत्मा में है और उस हिन्दू रक्त, हृदय, बीज और आत्मा का मुसलमान आदि लोगों के पानी की एक बूंद में तो क्या पूरे समुद्र में भी डूब सकना असम्भव है।

—विनायक दामोदर सावरकर (सावरकर विचार दर्शन, पृ० १४७)

मैंने सदा ही सनातनी हिन्दु होने का दावा किया है।

—महात्मा गांधी (अहमदाबाद के दलित वर्ग सम्मेलन में भाषण, १३-४-१९२१)

हिंदू सब एक हों। कोई ऊँचा, कोई नीचा नहीं।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन, भाग १, पृ० १९१)

हिन्दुओं के सब धर्मकृत्य उदक्-संस्थ होते हैं। प्रत्येक कथा में उत्तर की ओर जाने की कल्पना अनुस्यूत है। प्रत्येक हिन्दू जानता है कि अन्ततः उसको गंगातट से होते हुए कैलास की ओर जाना है। यदि इस भावना की तह में एक अखंड भूमिभाग की कल्पना न होगी, तो फिर इस भावना का सार्वत्रिक प्रसार कैसे संभव हुआ होगा?

—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर (अखंड हिन्दुस्थान, पृ० १७)

हिंदू की दृष्टि में धर्म, संस्कृति, जीवन—तीनों क्षेत्रों का विस्तार समान है। एक को हटाकर एक नहीं रहता।

—वासुदेव शरण अग्रवाल ('कल्याण' का हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ९७)

हिन्दुस्तानी मुसलमान और ईसाई उसी तरह से हिंदी हैं जिस तरह एक हिंदू मत का मानने वाला। अमरीका के लोग, जो सभी हिन्दुस्तानियों को हिन्दू कहते हैं, बहुत ग़लती नहीं करते। अगर वे 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग करें, तो उनका प्रयोग बिल्कुल ठीक होगा।

—जवाहरलाल नेहरू (हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० ९९)

व्यावहारिक अनेकता में तात्त्विक एकता और प्रकृति-जनित जगत् की विषमता में परमात्मा की नित्य समता देखना हिन्दू संस्कृति की विशेषता है।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

रक्खो हिन्दूपन का गर्व
यही ऐक्यसाधन का सर्व,
हिन्दू, निज संस्कृति का त्राण
करो, भले ही दे दो प्राण।

—मैथिलीशरण गुप्त

संसार में जो कुछ जहां फैला प्रकाश-विकास है,
इस जाति की ही ज्योति का उसमें प्रधानाभास है।

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती, पृ० २५)

जैन वैदिक नहीं है और वैदिक जैन नहीं है। दोनों दो विचारधाराओं को मानकर चलते हैं। किन्तु हिन्दू दोनो हैं। हिन्दू एक जाति है, जैन और वैदिक कोई जाति नही है। वह एक विचार है, दर्शन है।

—नथमल मुनि (श्रमण महावीर, पृ० २२४)

हम चूजने हिन्दु कसे दर आशिक़ी दीवाना नेस्त।
सोखतन बर शमा मुर्दा कारेकस परवाना नेस्त॥

पतंग तो अपने प्रेमी दीपक पर तभी तक प्राण न्योछावर करता है, जब तक उसका प्रेमी दीपक प्रज्वलित रहता है, परन्तु हिंदू जाति की नारियां धन्य हैं जो अपने प्रेमी पतिरूपी दीपक के बुझ जाने पर भी प्राणों का बलिदान कर देती हैं।

[फ़ारसी] —अलाउद्दीन खिलजी (पद्मिनी के जौहर पर उक्ति)

हिन्दूच्या साम्राज्यवादी आम्हीं झटत आहों।

हिन्दुओं के साम्राज्य की स्थापनार्थ ही हम प्रयत्नशील हैं।

[मराठी] —खंडो बल्लाल (शिरका सरदार को पत्र)

हिन्दू मात्र एक दूसरे के भाई है। 'इसे नहीं छूते, उसे नहीं छूते, उसे नहीं छूते' कहकर ही तो हमने इनको ऐसा बना दिया है। इसीलिए तो हमारा देश हीनता, भीरुता, मूर्खता तथा कापुरुषता की चरम अवस्था को प्राप्त हुआ है। इनको उठाना होगा, इन्हें अभयवाणी सुनानी होगी, बतलाना होगा कि तुम भी हमारे समान मनुष्य हो, तुम्हारा भी हमारे ही समान अधिकार है।

— विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ६, पृ० ७३)

तभी और केवल तभी तुम हिन्दू कहलाने के अधिकारी हो, जब इस नाम को सुनते ही तुम्हारी रगों में शक्ति की विद्युत-तरंग दौड़ जाये।

—विवेकानन्द (उत्तिष्ठत जाग्रत, पृ० १)

हिन्दू लोगों में हमको नुक्ताचीनी नहीं, किन्तु गुण-ग्रहण का भाव, भ्रातृत्व की भावना, समन्वय की बुद्धि, धर्मों व कार्यों का यथायोग्य अधिकार और श्रम की महिमा को जाग्रत करना है।

—रामतीर्थ (रामतीर्थ ग्रंथावली, भाग ७, पृ० ७)

अभिमन्यु व्यूह में केवल घुसना जानता था, उससे निकलना नहीं, हिंदू उससे ठीक उल्टा है। उसके समाज में घुसने का मार्ग बन्द है, निकलने के मार्ग सैकड़ों-हजारों हैं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (गोरा, परिच्छेद ६५)

हमारी दृष्टि में हिन्दू-सभ्यता मूर्ति वैसी ही है जैसा हमारे पंचांगो में अंकित संक्रांति का चित्र होता है। वह केवल स्नान और जप करती है, व्रत-उपवास से कृश हो गई है, दुनिया की प्रत्येक वस्तु का संस्पर्श त्यागकर अत्यन्त संकोच के साथ एक कोने में खड़ी है। परन्तु एक दिन यही हिन्दू सभ्यता सजीव थी, उसने समुद्र पार किया था, उपनिवेश बसाये थे, दिग्विजय की थी। दूसरों को कुछ दिया था और दूसरों से ग्रहण किया था।

— रवीन्द्रनाथ ठाकुर (रिपन कालेज में २६ सितम्बर १९११ का भाषण—'हिन्दू विश्वविद्यालय')

रूढ़िवादी ईसाई की धारणा यह होती है कि धर्म के सिद्धान्त मे ही मोक्ष होती है। इस धारणा के वशीभूत हो कर वह हर उस आदमी को ईसाई बनाने का बीड़ा उठा लेता है जो दूसरे धर्म का अनुयायी होता है और जब तक वह ऐसा कर नही लेता तब तक वह उनको घृणा करता है।

मुझे आज तक कोई ऐसा हिन्दू नहीं मिला जिसका किसी न किसी धर्म-सिद्धान्त में पूरी तरह विश्वास न हो, परन्तु दूसरी ओर मुझे एक भी हिन्दू ऐसा नहीं मिला जो किसी विधर्मी को अपने धर्म का अनुयायी बनाना चाहता हो, या जो किसी भी व्यक्ति को उसके अन्धविश्वास के कारण घृणा की दृष्टि से देखता हो।

—काउंट हरमान कीजरलिंग (द ट्रैवेल डायरी आफ़ ए फ़िलासफ़र, खण्ड १, पृ० २९२)

हिंदुओं की स्वच्छता लोक-प्रसिद्ध है।

—एल्फ़िंस्टन (हिस्ट्री आफ़ इंडिया, पृ० २०२)

हिंदूधर्म

प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु साधनानामनेकता।
उपास्यानामनियम एतद् धर्मस्य लक्षणम् ॥

वेदों को प्रमाण मानना, साधनाओं की अनेकता, इष्ट-देवों के संबंध में नियम का न होना—ये (हिन्दू) धर्म के लक्षण हैं।

—लोकमान्य तिलक

सकल जगत में खालसा पंथ गाजै।
जगै धर्म हिंदुन, सकल धुंध[1] भाजै ॥

सम्पूर्ण संसार में खालसा पंथ की गर्जना गूंजे, जिससे हिंदू धर्म जागे और सब मलिनता दूर हो जाए।

—गुरु गोविन्दसिंह (दशम ग्रंथ)

हिन्दू धर्म का रहस्य जानना केवल हिन्दुओं का नहीं, सारे भारतीयों का काम है।

—महात्मा गांधी (इंडियन ओपिनियन, १७-१०-१९०८)

हिन्दू धर्म अपनी बुनियाद में निहित इसी स्वदेशी की भावना के कारण स्थितिशील और फलस्वरूप अत्यंत शक्ति-शाली बन गया है। चूंकि वह धर्मान्तरण की नीति में विश्वास नहीं करता इसलिए वह सबसे ज्यादा सहिष्णु है और आज भी वह अपना विस्तार करने में उतना ही समर्थ है, जितना भूतकाल में था। कहा जाता है कि उसने बौद्ध धर्म को खदेड़ कर भारत से बाहर कर दिया। यह ठीक नहीं है। उसने उसे आत्मसात् कर लिया। स्वदेशी भावना के कारण हिन्दू अपने धर्म का परिवर्तन करने से इनकार करता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानता है। कारण यह है कि वह जानता है कि उसमे नये सुधारों का समावेश करके उसे पूर्ण बनाया जा सकता है। और मैंने हिन्दूत्व के विषय में जो कुछ कहा है, वह मेरे विचार से संसार के सभी बड़े बड़े धर्मों पर लागू है। हां, हिन्दू धर्म के बारे में यह विशेष रूप से सही है।

—महात्मा गांधी (मद्रास में 'स्वदेशी' पर भाषण, १४ फ़रवरी १९१६)

मैं अपने को सनातनी हिन्दू कहलाता हूं क्योंकि :

(१) मैं वेदों, उपनिषदों, पुराणों और हिन्दू धर्मग्रंथों के नाम से प्रचलित सारे साहित्य में विश्वास रखता हूं और इसलिए अवतारों और पुनर्जन्म में भी।

(२) मैं वर्णाश्रम धर्म के उस रूप में विश्वास रखता हूं जो मेरे विचार से विशुद्ध वैदिक है लेकिन उसके आजकल के लोक-प्रचलित और स्थूल रूप में मेरा विश्वास नहीं।

(३) मैं गो-रक्षा में उसके लोक-प्रचलित रूप से कहीं अधिक व्यापक रूप में विश्वास करता हूं।

(४) मैं मूर्तिपूजा में अविश्वास नहीं करता।

—महात्मा गांधी (यंग इंडिया, ६-१०-१९२१)

हिन्दू धर्म सभी लोगों को अपने-अपने धर्म के अनुसार ईश्वर की उपासना करने को कहता है, और इसलिए इसका किसी धर्म से कोई झगड़ा नहीं है।

—महात्मा गांधी (यंग इंडिया, ६-१०-१९२१)

हिन्दू धर्म की ख़ुसूसियत यह है कि उसमें काफी विचार-स्वातंत्र्य है। और उसमें हरेक धर्म के प्रति उदारभाव होने के कारण उसमें जो कुछ अच्छी बातें रहती हैं, उनको हिन्दू धर्म मान सकता है। इतना ही नहीं मानने का उसका कर्त्तव्य है। ऐसा होने के कारण हिन्दू धर्मग्रंथ के अर्थ का दिन-प्रतिदिन विकास होता है।

—महात्मा गांधी (हबीबुर्रहमान को पत्र, ५-११-१९३२)

हिन्दू धर्म के लिए एक कसौटी रखी गई है जिसको एक बालक भी समझ सकता है। जो बुद्धिग्राह्य वस्तु नहीं है और बुद्धि से विपरीत है वह कभी धर्म नहीं हो सकती है। और जो सत्य और अहिंसा से विपरीत है वह भी धर्म नहीं हो सकती है।

—महात्मा गांधी (हबीबुर्रहमान को पत्र ५-११-१९३२)

---

१. यहां 'भंड' पाठ भी है।

अपने आप को हिन्दू कहने में मुझे गर्व का अनुभव इस लिए होता है कि यह शब्द मुझे इतना व्यापक लगता है कि यह न केवल पृथ्वी के चारों कोनों के पैग़म्बरों की शिक्षाओं के प्रति सहिष्णु है, बल्कि उन्हें आत्मसात् भी करता है।

— महात्मा गांधी (अस्पृश्यता पर वक्तव्य, ४-११-१९३२)

साम्प्रदायिकता का मुझ में लेश भी नहीं है, क्योंकि मेरा हिन्दू धर्म है।

—महात्मा गांधी (अस्पृश्यता पर वक्तव्य, २६-११-१९३२)

शास्त्रों के ईश्वर-प्रेरित होने के दावे को आम तौर पर अक्षुण्ण रखकर भी, उनमें नये सुधार और परिवर्तन करने में उसने कभी हिचक महसूस नहीं की। इसलिए हिन्दू धर्म में सिर्फ़ वेदों को ही नहीं, बाद के शास्त्रों को भी प्रमाण माना जाता है।

—महात्मा गांधी (अस्पृश्यता पर वक्तव्य, ३०-१२-१९३२)

हिन्दू धर्म जीवित धर्म है।

—महात्मा गांधी (हिन्दी नवजीवन, १२-२-१९-२६)

आज दुनिया में सब धर्मों की कड़ी परीक्षा हो रही है। इस परीक्षा में हमारे हिन्दू-धर्म को सौ फ़ीसदी नम्बर मिलने चाहिए, ९९ फ़ीसदी भी नहीं।

—महात्मा गांधी (दिल्ली की प्रार्थना सभा, १७ जुलाई) १९४७)

यही तो हिन्दू धर्म की खूबी है कि वह बाहर से आने वालों को अपना लेता है।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन भाग १, २१)

हिन्दू धर्म एक महासागर है। जैसे सागर में सब नदियां मिल जाती हैं, वैसे हिन्दू धर्म में सब समा जाते हैं।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन भाग २, १६८)

जो सब धर्मों को समान माने, वही हिन्दू धर्म है।

—महात्मा गांधी (प्रार्थना प्रवचन भाग २, ३३२)

हिन्दू धर्म का स्वरूप: आचार सहिष्णुता, विचार स्वातन्त्र्य, नीति-धर्म के विषय में दृढ़ता।

—विनोबा (विचारपोथी, क्र० २)

मुझे हिन्दू धर्म क्यों प्रिय है?

(१) असंख्य सत्पुरुष—वामदेव, बुद्धदेव, ज्ञानदेव आदि।

(२) अनेक सामाजिक एवं वैयक्तिक संस्थाएं, संस्कार तथा आचार—यज्ञ, आश्रम, गोरक्षण आदि।

(३) शाश्वत नीतितत्त्व—अहिंसा, सत्य आदि।

(४) सूक्ष्म तत्त्व विचार—भूतमात्र में हरि आदि।

(5) आत्मनिग्रह का वैज्ञानिक उपाय—योगविद्या।

(६) जीवन और धर्म की एकरूपता—कर्मयोग।

(७) अनुभव-सिद्ध साहित्य—उपनिषद्, गीता आदि।

—विनोबा (विचारपोथी, क्र० ८)

सबसे हमारे धर्म का ऊंचा यही तो लक्ष है,
होती असीम अनेकता में एकता प्रत्यक्ष है।
मति की चरमता या परमता है वही अविभिन्नता,
बस छा रही सर्वत्र प्रभु की एक निरवच्छिन्नता॥

—मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती, पृ० १७३)

हिन्दू अमुक व्यक्ति, मत, पुस्तक से बंधा धर्म नहीं है। सब उसमें समाता गया है और इस भूखण्ड में उगती-बढ़ती सामाजिक और सामासिक संस्कृति के सम्बोधन के निमित दूसरों द्वारा दी गई वह 'हिन्दू' संज्ञा है।

—जैनेन्द्र (समय, समस्या और सिद्धांत, पृ० ४८६)

हिन्दुत्व का स्वभाव है कि वह जितना ही परिवर्तित होता है, उतना ही अपने मूल स्वरूप के अधिक समीप पहुंच जाता है।

—रामधारी सिंह 'दिनकर' (संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ८३)

मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूं, जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति, दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता से ही विश्वास नहीं करते, वरन् समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं।

—विवेकानंद (विवेकानंद साहित्य, प्रथम खंड, पृ० ३)

जिसे हम हिन्दू कहते हैं, वह वास्तव में सनातन धर्म है, क्योंकि यही वह विश्वव्यापी धर्म है जो दूसरे सभी धर्मों का आलिंगन करता है। यदि कोई धर्म विश्वव्यापी न हो तो वह सनातन भी नहीं हो सकता।

—अरविन्द (उत्तरपाड़ा भाषण)

हमारा धर्म 'रिलीजन' नही है, वह मनुष्यत्व का एकांश नहीं है, वह राजनीति से तिरस्कृत नही है, वह युद्ध से वहिष्कृत नही है, व्यवसाय से निर्वासित नही हैं, दैनन्दिन व्यवहार से दूरीकृत नहीं है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (निबंध 'धर्म-प्रचार')

घर और गाँव के क्षुद्र सम्बन्धों से ऊपर प्रत्येक व्यक्ति का विश्व के साथ योग सम्पादन करने के लिए हिन्दू धर्म ने पथ दिखाया है। प्रतिदिन पंचयज्ञ के द्वारा हिन्दू धर्म ने समाज के प्रत्येक सदस्य को इस बात का स्मरण कराया है कि देवता, ऋषि, पितृ-पुरुष, समस्त मानव जाति और पशु-पक्षी के साथ उसका मंगलमय सम्बन्ध है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर (रवीन्द्रनाथ के निबन्ध, पृ० ३८०)

तर्क-प्रेम हिन्दू धर्म की विशेषता है।

—राधाकृष्णन् (भारत की अंतरात्मा, पृ० ६)

The Sanatana Dharma sanctions and endorses every form of honest striving after knowledge. It is jealous and suspicious of no form of truth. Perhaps in this lies the true crown of Hinduism.

सनातन धर्म, ज्ञान प्राप्त करने के सच्चे प्रयास के प्रत्येक रूप की अनुमति देता है और उसे स्वीकार करता है। वह सत्य के किसी भी रूप से न ईर्ष्या करता है, न उस पर सन्देह। संभवतः इसी में हिन्दू धर्म का यथार्थ गौरव है।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज वर्क्स, भाग ३, पृ० ३६७)

We do not distinguish between the sacredness of different forms of Truth. Truth is truth.

हम सत्य के विभिन्न रूपों की पवित्रता में भेद नहीं करते। सत्य, सत्य है।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज वर्क्स, भाग ३, पृ० ३६७)

To the Hindu, religion is experience or nothing. If science is also experience, he does not feel it incumbent upon him to deny either of two things, both of which he knows to be true.

हिन्दू के लिए धर्म अनुभव की वस्तु है अथवा कुछ भी नहीं है। यदि विज्ञान भी अनुभव की वस्तु है तो वह उन दोनों में से किसी को नकारने की आवश्यकता नही समझता क्योंकि वह जानता है कि दोनों ही सत्य हैं।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज वर्क्स, भाग ३, पृ० ३६७)

Hinduism never tends to make men contended to read or to believe...Our faith rests from first to last on a basis of experience, of realisations, of personal appropriation. Without this, a mere lip-adhesion is of no consequence in our eyes.

हिन्दू धर्म मनुष्यों को पढ़कर या विश्वास कर लेने में ही सन्तुष्ट हो जाना कभी नही सिखाता। हमारा धर्म प्रारंभ से अंत तक अनुभव, बोध और वैयक्तिक विनियोग पर आधारित है। हमारी दृष्टि में, इसके बिना मात्र शाब्दिक निष्ठा निरर्थक है।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज वर्क्स, भाग ३, पृ० ३६७)

Hinduisim is one of the finest and most coherent growths in the world. Its disadvantages arise out of the fact that it is a growth, not an organisation; a tree not a machine.

हिन्दू धर्म विश्व के सर्वोत्तम और सर्वाधिक सुसंगत विकासों में से है। इसकी हानियां इस तथ्य से उद्भूत हैं कि यह विकास है, संगठन नही, एक वृक्ष है, यंत्र नहीं।

—भगिनी निवेदिता (सिस्टर निवेदिताज वर्क्स, भाग ३, पृ० ४००)

What religion had burnt most human beings in the name of its Master? Christianity. Did any one dream of holding Jesus responsible for this? Would they be right if they did? Certainly not...Nor in the same way could we denounce Indian religion as the cause of Indian crime.

अपने गुरु के नाम पर सर्वाधिक मनुष्यों को किस धर्म ने जलाया है? ईसाई धर्म ने। क्या किसी ने कभी कल्पना की कि इसके लिए ईसा को उत्तरदायी माना जाए और यदि वे ऐसा सोचते तो क्या यह उचित होता? निश्चय ही नहीं।...उसी प्रकार हम भारतवर्ष में होने वाले अपराधों के लिए भारतीय धर्म को उत्तरदायी नहीं ठहरा सकते।

—भगिनी निवेदिता (२८ मई १८९९ के भाषण के प्रश्नोत्तर में)

हिंदू-संस्कृति

दे० 'हिंदू'।

हिंदू-सभ्यता

दे० 'हिंदू'।

हिंसा

आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुम्।
न हिंस्याद् ब्राह्मणान् गांश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः॥

आचार्य, धर्मशास्त्र-प्रवक्ता, पिता, माता, गुरु, ब्राह्मण, गाय और तपस्वियों की हिंसा न करे।

—मनुस्मृति (४।१६२)

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्
श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।

महानुभाव गुरुजनों को न मारकर इस लोक में भिक्षा का अन्न खाना भी कल्याणकारक समझता हूँ।

—वेदव्यास (महाभारत, भीष्म पर्व।२६।५ अथवा गीता २।५)

अप्पेगे हिंसस् मे त्ति वा वहंति,
अप्पेगे हिंसंति मे त्ति वा वहंति,
अप्पेगे हिंसिस्संति मे त्ति वा वहंति।

इसने मुझे मारा, कुछ लोग इस विचार से हिंसा करते हैं। यह मुझे मारता है, कुछ लोग इस विचार से हिंसा करते हैं। यह मुझे मारेगा, कुछ लोग इस विचार से हिंसा करते हैं।

[प्राकृत] —आचारांग (१।१।६)

तयो रोगा पुरे आसुं, इच्छा अनसनं जरा।
पसूनं च समारम्भा, अट्ठानवुतिमागमुं॥

पहले केवल तीन रोग थे—इच्छा, भूख, जरा। पशु-वध प्रारम्भ होने पर अट्ठानवे रोग हो गये।

[पालि] —सुत्तनिपात (२।१९।२८)

जीव वधत अरु धरम कहत हो, अधरम कहां है भाई।
आपन तो मुनिजन ह्वै बैठे, का सनि कहौ कसाई।

—कबीर (कबीर ग्रन्थावली, पृ० १०१)

मारैं सोइ निसोगा[1] डरै न अपने दोस।

—जायसी (पदमावत, २७)

अवश्य हिंसा अति निंद्य कर्म है।
तथापि कर्तव्य प्रधान है यही।
न सद्म हो पूरित सर्प आदि से।
वसुंधरा में पनपें न पातकी॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (प्रियप्रवास, १३।७८)

हिंसा और रक्तपात भी धर्म होता है—कभी-कभी।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र (गरुड़ध्वज, तीसरा अंक)

हित

विदितं वो यथा सर्वं लोकवृत्तमिदं तव।
विदिते चापि वक्तव्यं सुहृद्भिरनुरागतः॥

लोक-व्यवहार की सभी बातें तुम सब लोगों को विदित ही हैं, लेकिन विदित होने पर भी हितैषी सुहृदों का कर्तव्य है कि वे स्नेहवश हित की बात बतावें।

—वेदव्यास (महाभारत, विराट पर्व ४।८-९)

1. चिन्तारहित।

यथा ह्य स्वावचैर्वाक्यैः क्षिप्तचित्तो नियम्यते।
तथैव सुहृदा शक्यो न शक्यस्त्ववसीदति॥

जैसे मनुष्य विक्षिप्त चित्त वाले पागल को नाना प्रकार के ऊँच-नीच वचनों द्वारा वश में लाते हैं, उसी प्रकार सुहृद-गण भी अपने स्वजन को वश में रखने की चेष्टा करते हैं। जो वश में आ जाता है, वह तो सुखी होता है और जो किसी तरह वश में नहीं आ सकता, वह दुःख भोगता है।

—वेदव्यास (महाभारत, सौप्तिक पर्व।५।८)

स बन्धुर्यो हिते युक्तः स पिता यस्तु पोषकः॥
तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते॥१५॥

जो हितकार्य में लगा है, वह भाई है। जो पोषक है, वह पिता है। जिसमें विश्वास है, वह मित्र है। जहा जीविका है, वही देश है।

—बृहस्पतिनीतिसार

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि-सम सब कहँ हित होई।

कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है जो गंगा की तरह सबका हित करने वाली हो।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, १।१४।५)

हित अनहित पसु-पच्छिउ जाना।
मानुष तन गुन ज्ञान निधाना॥

हित और अनहित को पशु-पक्षी भी जानते है। फिर मनुष्य शरीर तो गुण ज्ञान का भंडार ही है।

—तुलसीदास (रामचरितमानस, २।२६४।२)

लोक-हित भव्यतम प्रेरणा है।

—वर्जिल

हिमालय

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य
स्थितः पृथिव्या इव मानदंडः॥

उत्तर दिशा में देवता-स्वरूप हिमालय नामक पर्वतों का राजा पूर्व और पश्चिम के समुद्रों में प्रविष्ट होकर पृथ्वी के मानदंड की तरह विद्यमान है।

—कालिदास (कुमारसंभव, १।१)

अचल हिमालय का शोभनतम
लता कलित शुचि सानु शरीर,
निद्रा में सुख स्वप्न देखता
जैसे पुलकित हुआ अधीर

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आशा सर्ग)

विश्व कल्पना सा ऊँचा वह
सुख शीतल सन्तोष निदान;
और डूबती सी अचला का
अवलंबन मणि रत्न निधान।

—जयशंकर प्रसाद (कामायनी, आशा सर्ग)

शुभ्र शांति में समाधिस्थ हे
शाश्वत सुन्दरता के भूभृत!

—सुमित्रानंदन पंत (स्वर्णकरण, हिमाद्रि)

स्वर्ग खंड तुम इस वसुधा पर,
पुण्यतीर्थ हे देव प्रतिष्ठित!

—सुमित्रानंदन पंत (स्वर्णकरण, हिमाद्रि)

यह तुंग हिमालय किसका है?
उत्तुंग हिमालय किसका है?
हिमगिरि की चट्टानें गरजीं
जिसमें पौरुष है उसका है।

—श्यामनारायण पाण्डे (आधुनिक कवि)

हिमालय को भारतीय साहित्य और इतिहास से हटा दिया जाए तो वह बहुत निष्प्राण हो जाएगा। हिमालय हमारा प्रहरी है, देवभूमि है, रत्नखानि है, इतिहास-विधाता है, संस्कृति-मेरुदण्ड है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (आलोक पर्व, पृ० २५)

ऐ हिमालय! ऐ फ़सीले किश्वरे हिन्दोस्तां
चूमता है तेरी पेशानी को झुककर आसमां
तुझ में कुछ पैदा नहीं देरीना-रोजी के निशां
तू जवां है गर्दिशे-सामो-सहर के दर्म्यां।

हे हिमालय ! तू हिंदुस्थान देश की प्राचीर है। आकाश झुककर तेरे माथे को चूमता है। तुझ में प्राचीनता के कारण जर्जरता के कुछ चिह्न नहीं दिखाई देते। तू तो प्रातः-सायं के चक्र के मध्य तरुण है।

—इक़बाल ('हिमालय' कविता)

झटिका दुरंत मेये
बुके खेला करे धेये
धरित्री ग्रासिया सिंधु लोटे पदतले।
ज्वलंत अनल छवि
ध्वक ध्वक ज्वले रवि
किरन-जलन-ज्वाला माला शोभे गले।

आँधी तो उसकी एक शरारती लड़की भर है, वह दौड़-दौड़कर उसके सीने पर खेलती है, धरित्री सिंधु को ग्रसकर उसके पैर पर लोटती है। जलती हुई आग की तरह सूर्य धक-धक जलता है, किरणों की जलती हुई माला से उसका कंठ सुशोभित है।

[बंगला] —विहारीलाल चक्रवर्ती

हीनता

हीनता हिंसा से भी हीन।

—मैथिलीशरण गुप्त (जय भारत, सर्ग ४१)

There are minds so impatient of inferiority that their gratitude is a species of revenge, and they return benefits, not because recompense is a pleasure, but because obligation is a pain.

अनेक मन हीनता से ऐसे बेचैन होते हैं कि उनकी कृतज्ञता एक प्रकार का प्रतिशोध होती है, और वे उपकारों का बदला इसलिए नही चुकाते हैं कि बदला चुकाना सुखद लगता है अपितु इसलिए कि आभार कष्टकर लगता है।

—डा० जानसन (दि रैम्बलर, १५ जनवरी १७५१)

The greater .the feeling of inferiority that has been experienced, the more powerful is the urge to conquest and the more violent the emotional agitation.

अनुभव की गई हीनता की भावना जितनी अधिक बड़ी होती है, उतनी ही अधिक शक्तिशाली उसे जीतने की प्रेरणा होती है और उतनी ही अधिक प्रचंड मनोवेगात्मक उत्तेजना होती है।

—एलफ्रेड एडलर

We must interpret bad temper as a sign of inferiority.

चिड़चिड़ेपन की हमें हीनता की भावना का लक्षण समझना चाहिए।

—एल्फ्रेड एडलर

No man likes to have his intelligence or good faith questioned, especially if he has doubts about it himself.

कोई भी व्यक्ति अपनी बुद्धि या नेकनीयती पर सन्देह किया जाना पसन्द नहीं करता, विशेषत: तब जब कि उसे स्वयं ही इस पर सन्देह हो।

—हेनरी ब्रुक्स एडम्स

No one can make you feel inferior without your consent.

कोई भी व्यक्ति तुम्हें बिना तुम्हारी सहमति के हीनता अनुभव नहीं कर सकता।

अन्ना एलीनॉर रूज़वेल्ट

All sins have their origin in a sense of inferiority, otherwise called ambition.

सभी पापों का जन्म हीनता की भावना से होता है, जिसका दूसरा नाम महत्त्वाकांक्षा है।

—सेज़रे पावेसे (दि बर्निंग ब्रैंड)

In our society to admit inferority is to be a fool, and to admit superiority is to be an outcast. Those who are in reality superior in intelligence can be accepted by their follows only if they pretend they are not.

हमारे समाज में अपनी हीनता मानना मूर्ख बनना है, और अपनी श्रेष्ठता मानना बहिष्कृत बनना है। जो वास्तव में ही बुद्धि में श्रेष्ठतर हैं, उन्हें भी उनके साथी तभी श्रेष्ठतर मान सकते हैं जब वे यह प्रदर्शित करते रहें कि वे श्रेष्ठतर नहीं हैं।

—मेरिया मेन्स (मोर इन ऐंगर, १।१)

हृदय

तीर्थानां हृदयं तीर्थं शुचीनां हृदयं शुचिः ।

तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ विशुद्ध हृदय है, पवित्र वस्तुओं में अति पवित्र भी विशुद्ध हृदय ही है ।

—वेदव्यास

हृदयं चेतनास्थान मोजसश्चाश्रयो मतम् ।

हृदय चेतना का स्थान है और ओज का आधार-स्थल भी है ।

—शाङ्‌र्गधर संहिता (पूर्वखण्ड, ५।४६)

येषां हृदयस्थो भगवान मंगलायतनं हरिः ।
नित्योत्सवस्तदा तेषां नित्यश्रीर्नित्यमंगलम् ॥

जिनके हृदय में मंगलमय भगवान विष्णु का आवास है, उनके यहां सर्वदा उत्सव, सर्वदा लक्ष्मी और सर्वदा मंगल का निवास रहता है ।

—रामानुजाचार्य

प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ।

कोमल हृदय वाले व्यक्तियों की चित्त-वृत्ति प्रायः करुणामयी होती है ।

—कालिदास (मेघदूत, उत्तरमेघ ३५)

अन्यदेव ततो रक्तपिंडाद्धृदयमुच्यते ।
अयं हृदिति वृत्त्या तदात्मनो रूपमीरितम् ॥
तस्य दक्षिणतो धाम हृत्पीठे नैव वामनः ।
तस्मात् प्रवहति ज्योतिः सहस्रारं सुषुम्नया ॥

हृदय रक्तपिंड से पृथक् ही है । यही केन्द्र (हृत्) है यही 'हृदय' शब्द की व्युत्पत्ति है । अतः हृदय को आत्मा का रूप कहा गया है । उसका स्थान वक्षस्थल में दाहिनी ओर है, बायीं ओर नहीं । उसी से सहस्रार को सुषुम्ना द्वारा ज्योति बहती है ।

—श्री रमण गीता (५।६)

भुवनं मनसो नान्यदन्यन्न हृदयान्मनः ।
अशेषा हृदये तस्मात् कथा परिसमाप्यते ॥

संसार मन से भिन्न नहीं है । मन हृदय से भिन्न नही है । अतः समस्त कथा हृदय में ही समाप्त होती है ।

—श्री रमण गीता (५।१२)

कवि अच्छर अरु तरुनि-कटाछैं ।
ए दोउ सुलग लगैं हिय आछे ॥
जो हिय अच्छर रस नहिं भिदै ।
सो हिय अर्जुन-बान न छिदै ॥

—नन्ददास (नन्ददास ग्रंथावली, पृ० ११८)

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेस लजात ।
कहिहै सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात ॥

—बिहारी (बिहारी सतसई, ५३८)

शुद्ध हृदय जाको भयो, उहै कृतारथ जान ।
सोई जीवनमुक्त है, सुन्दर कहत बखान ॥

—सुन्दरदास (उक्त अनूप, पृ० १७५)

ऊधो मेरा हृदयतल था एक उद्यान न्यारा ।
शोभा देती अमित उसमें कल्पना-क्यारियां थीं ।
प्यारे-प्यारे कुसुम कितने भाव के थे अनेकों ।
उत्साहों के विपुल विटपी मुग्धकारी महा थे ॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
(प्रियप्रवास, १०।४८)

स्वच्छ हृदय भीरु कायरों की-सी वंचक शिष्टता नहीं जानता ।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, द्वितीय अंक)

मनुष्य-हृदय स्वभाव-दुर्बल है । प्रवृत्तियां बड़ी-बड़ी राज्य-शक्तियों के सदृश इसे घेरे रहती हैं । अवसर मिला कि इस छोटे से हृदय-राज्य को आत्मसात् कर लेने को प्रस्तुत हो जाती हैं ।

—जयशंकर प्रसाद (राज्यश्री, प्रथम अंक)

हिला कर धड़कन से अविनीत
जगा मत, सोया है सुकुमार
देखता है स्मृतियों का स्वप्न
हृदय पर मत कर अत्याचार।

—जयशंकर प्रसाद (चन्द्रगुप्त, प्रथम अंक)

कांच का टुकड़ा टूट कर तेज़ धार वाला छुरा हो जाता है। वही कैफ़ियत इंसान के टूटे हुए दिल की है।

—प्रेमचन्द (गुप्तधन,भाग १, पृ० ६४)

मनुष्य को कर्म में प्रवृत्त करने वाली मूल वृत्ति भावात्मिका है। केवल तर्कबुद्धि या विवेचना से हम किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होते।

—रामचन्द्र शुक्ल (चिंतामणि, भाग १, पृ० १५७)

नक़ल ऊपरी बातों की हो सकती है, हृदय की नहीं। पर हृदय पहचानने के लिए हृदय चाहिए, चेहरे पर की दो आँखों से ही काम नहीं चल सकता।

—रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३६७)

हृदय में कौन जो छेड़ता बाँसुरी?
हुई ज्योत्स्नामयी अखिल मायापुरी,
लीन स्वर-सलिल में मैं बन रही मीन।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (गीतिका, कविता ६९)

पूछ लो अपने हृदय से
इस हृदय के प्रश्न सारे।

—सोहनलाल द्विवेदी (चित्रा, पृ० ६८)

हृदय का जिनको नहीं विचार,
मूढ़ हैं या है ज्ञानागार।
मनुज हूँ कैसे सकता भूल,
हृदय के शूल हृदय के फूल॥

—बलदेव प्रसाद मिश्र (साकेत-सन्त, सर्ग ४।२७)

विद्या और बुद्धि से मनुष्य की विलक्षणता प्रकट होती है, उसके विषय में कुतूहल का अनुभव हो सकता है, परन्तु श्रद्धा और ममत्व का नहीं, उसके लिए तो काम केवल बुद्धि के बल पर नहीं परन्तु हृदय के बल पर हुए है।

—दीनदयाल उपाध्याय (जगद्गुरु शंकराचार्य)

मातृ-हृदय में बच्चे की हर बात को पूर्ण करने की जितनी उमंग होती है, उतनी किसी और हृदय में नहीं होती।

—डा० विद्यावती वर्मा

दिल के वीराने का क्या मज़कूर[1] है
यह नगर सौ मर्तबा लूटा गया।

—मीर

बे-दादे-इश्क़ से नहीं डरता, मगर 'असद'
जिस दिल पै नाज़ था मुझे, वह दिल नहीं रहा।

प्रेम की कठिनाइयों से मैं नहीं डरता परन्तु जिस हृदय पर मुझे गर्व था, अब वह हृदय ही नही रहा।

—ग़ालिब (दीवान)

हाले-दिल नहीं मालूम, लेकिन इस क़दर यानी
हमने बारहा ढूंढा, तुमने बारहा पाया।

प्रेम की विवशता में हृदय की दशा का ज्ञान इतना भी नहीं रहा कि वह कब गया, क्यों गया! हमने अपने हृदय को बार-बार खोजा और तुमने बार-बार पाया।

—ग़ालिब (दीवान)

या रब[2], न वह समझे हैं, न समझेंगे मेरी बात।
दे और दिल उनको, जो न दे मुझको ज़बाँ[3] और॥

—ग़ालिब (दीवान)

ईद औ नौरोज हैं सब दिल के साथ
दिल नही हाज़िर तो दुनिया है उजाड़।

—हाली

---

१. उल्लेख। २. हे ईश्वर। ३. जिह्वा या भाषा।

तुम्हारा दिल मेरे दिल के बराबर हो नहीं सकता
वह शीशा हो नहीं सकता, यह पत्थर हो नहीं सकता।

—दाग़

बताती है 'मजहर' यही दिल की हरकत[1]
मेरा कारवां धीरे-धीरे रवां[2] है।
हृदय की गति यही बताती है कि मेरे जीवन का कारवां धीरे धीरे आगे जा रहा है।

—मजहर

रंज भी है, ग़म भी है, हसरत भी है, अरमान भी
एक ज़रा से घर में तूने कितने मेहमां भर दिये।

—नाशाद

एक दिल और वलवले इतने कि नामुमकिन[1] शुमार[2]
एक साग़र[3] इसमें तूने कितने तूफ़ां भर दिये?

—नाशाद

जोशे जुनूं से पैदा कुछ ऐसी बेखुदी है
दिल हमको ढूंढता है हम दिल को ढूंढते हैं।

—नाशाद

धुआं पहले उठता था, आग़ाज़[4] था वह,
हुआ खाक[5] अब, यह है अंजाम[6] दिल का।

—अकबर इलाहाबादी

शुक्र काबे में कलीसा में भकटते न फिरे
अपने दिलवर का पता हमने लगाया दिल में।

—बहर

दर्द है दिल के लिए और दिल इन्सां के लिए।

—ब्रजनारायण चकबस्त (सुबह वतन, पृ० २९)

कहने ही से तो होती है अपनी परायी बात
बेहतर है दिल का 'राज' ही अफ़्शा[7] न कीजिए।

—राजबहादुर वर्मा 'राज' (राज़ोनियाज़, पृ० ९६)

फ़ासले हों लाख दिल से दिल जुदा होता नहीं।

—'जिगर' मुरादाबादी

१. असम्भव। २. गणना। ३. मदिरा का प्याला। ४. प्रारम्भ। ५. भस्म। ६. परिणाम। ७. प्रकट।

एक शीशा हूँ कि हर पत्थर से टकराता हूँ मैं।

—'जिगर' मुरादाबादी (कुल्लियाते जिगर, पृ० ४०)

दिल हँसी है तो मुहब्बत भी हँसी पैदा कर।

—'जिगर' मुरादाबादी (कुल्लियाते जिगर, पृ० ८९)

अभी कमसिन हो, नादां हो कहीं खोदोगे दिल मेरा
तुम्हारे ही लिए रखा है ले लेना जवां होकर।

—नातिक़ लखनवी

न ताब हिज्र[1] में है न आराम वस्ल[2] में
कम्बख़्त दिल को चैन नहीं है किसी तरह।

—मोमिन

आया है हमको हाय यह मज़मूं चिराग़ से
रोशन उसी का नाम रहे जो जलाये दिल।

—असीर

गुमां[3] न क्योंकि करूं तुझपै दिल चुराने का
झुकाके आंख सबब[4] क्या है मुस्कराने का।

—ममनून

हर दिल कि दरूँ मायए तजरीद कम अस्त,
बेचारा हमा उम्र नदीमे नदम अस्त।
जुज़ ख़ातिरे फ़ारिग़ कि निशाते दारद,
बाक़ी हमा उम्र हर चे हस्त असबाबे ग़म अस्त।

जिस हृदय में त्याग की उमंग कम है, वह बेचारा जीवन भर लज्जित मनुष्य से भी अधिक लज्जित बना रहेगा। जो हृदय सांसारिक बाधाओं से मुक्त है, उसे प्रसन्नता प्राप्त है, शेष वस्तुएं तो जीवन को दुख देने वाली हैं।

[फ़ारसी] —उमर ख़ैयाम (रुबाइयात, २१९)

न बायद बस्तन् अन्दर चीज़ो कस दिल
कि दिल बर दाश्तन् कारे स्त मुश्किल।

पदार्थ या व्यक्ति से अपना हृदय नहीं बांधना चाहिये क्योंकि हृदय को संभालना कठिन कार्य है।

[फ़ारसी] —शेख़ सादी (गुलिस्तां, पाँचवां अध्याय)

१. वियोग। २. संयोग। ३. सन्देह। ४. कारण।

ऐ मन गुलाम आं कि दिलश बाजबां यकेस्त।

मैं उसका गुलाम हूँ जिसका हृदय और जिह्वा (वाणी) एक हैं।

[फ़ारसी] —हाफ़िज़ (दीवान, पृ० ५३)

मल नाहीं चित्ता। तेथें देवाची च सत्ता।

निर्मल हृदय में ईश्वर वास करता है।

[मराठी] —तुकाराम (तुकाराम अभंग गाथा, ३६३१)

हमारे हृदय में प्रेम, धर्म और पवित्रता का भाव जितना बढ़ता जाता है, उतना ही हम बाहर प्रेम, धर्म और पवित्रता देख सकते हैं। हम दूसरों के कार्यों की जो निन्दा करते हैं, वह वास्तव में हमारी अपनी ही निन्दा है।

—विवेकानन्द (विवेकानन्द साहित्य, भाग ७, पृ० ३७)

फूल अपने लिए नहीं खिलता, दूसरोंके लिए तुम भी अपने हृदय-कुसुम को दूसरों के लिए प्रस्फुटित कर देना।

—बंकिमचन्द्र (कमलाकान्त का पोथा, पृ० १०)

Above all temples of brick and stone is the Temple of the Heart.

ईंट पत्थर के सब मन्दिरों के ऊपर हृदय का मन्दिर है।

—साधु वासवानी (दि लाइफ़ ब्युटिफ़ुल, पृ० ६२)

The same heart beats in every human breast.

प्रत्येक मानव-वक्षस्थल में एक ही हृदय धड़कता रहता है।

—मैथ्यू आर्नोल्ड (दि बरीड लाइफ़, १।२३)

हृदयहीन

यस्तु प्रकृत्याश्मसमान एव
कष्टेन वा व्याकरणेन नष्टः।
तर्केण दग्धोऽनिल-धूमिना वा-
प्याविद्धकर्णः सुकवि प्रबन्धैः॥
न तस्य वक्तृत्वसमुदभवः स्या—
च्छिक्षाविशेषैरपि सुप्रयुक्तैः।
न गर्दभो गायति शिक्षितोऽपि
सन्दर्शितं पश्यति नार्कमन्धः॥

जो स्वभाव से ही पाषाणवत् है, या जो व्याकरण को कष्टपूर्वक पढ़ते-पढ़ते जड़ हो गया है, या अग्नि व धूम से सम्बंधित न्यायदर्शन पढ़ते-पढ़ते मानसिक सरसता दग्ध हो जाने के कारण महाकवियों की सुन्दर रचनाओं को सुनना भी जिसके कानों को अच्छा नहीं लगता, उसे विशद शिक्षा देने पर भी और अभ्यास करने पर भी, वह कभी कवि नहीं हो सकता। सिखाने पर भी गधा गा नहीं सकता है और दिखाने से भी अन्धा मनुष्य सूर्य को नहीं देख सकता है।

—क्षेमेन्द्र (कविकंठाभरण)

न भेकः कोकनदिनी-किंजल्कास्वाद-कोविदः।

मेंढक कमलिनी के पराग का रस लेना नहीं जानता।

—सोमदेव (कथासरित्सागर, ६।४)

सूरदास धिक धिक है तिनकौं, जिनहिं न पीर परारी।

—सूरदास (सूरसागर, १०।२६।६३)

अज़ तने बेदिल ताअत नयायद।

हृदयहीन मनुष्य से उपासना नहीं होती।

[फ़ारसी] —शेख सादी (गुलिस्तां, आठवां अध्याय)

हेमन्त ऋतु

नवप्रवालोद्‌गमसस्यरम्यः
प्रफुल्ललोध्रः परिपक्वशालिः।
विलीनपद्मः प्रपतत्तुषारो
हेमन्तकालः समुपागतोऽयम्॥

यह तुषार गिराती हुई हेमन्त ऋतु आ गई है, जिसमें (गेहूं आदि) अनाजों के नूतन अंकुरों के निकल आने से सब ओर सुहावना दृश्य दिखाई पड़ रहा है। लोध के वृक्ष फूल गए हैं, धान पक गया है और कमल लुप्त हो गए हैं।

—कालिदास (ऋतुसंहार, ४।१)

बहुगुणरमणीयो योषितां चित्तहारी
परिणतबहुशालिव्याकुलग्रामसीमा।
विनिपतिततुषारः क्रौंचनादोपगीतः
प्रदिशतु हिमयुक्तस्त्वेष कालः सुखं वः॥

अनेक-अनेक उपकारी गुणों से मन को मुग्ध करने वाली, रमणियों के चित्त को लुभाने वाली यह हेमन्त ऋतु जिसमें ग्रामों के समीप पके हुए धानों के खेत लहराते होते हैं, जिसमें पाला गिरता है, और सारस कल-कूजन करते हैं, आपको सुख दे।

—कालिदास (ऋतुसंहार, ४।१६)

ज्यों ज्यों बढ़ति बिभावरी, त्यों त्यों बढ़त अनंत।
ओक ओक सब लोक सुख, कोक सोक हेमन्त॥

हेमन्त ऋतु में जैसे-जैसे रात्रि बढ़ती जाती है वैसे-वैसे सब लोगों के घरों का सुख और चक्रवाक का शोक भी अत्यधिक बढ़ता जाता है।

—बिहारी (बिहारी सतसई)

सीत की सवाई सी दिखाई परै दिन-रात
खेतन में पात-पात जमे जात सोरा से।
सरद-सरद बरफान की पवन आवै,
करर-करर दंत बाजैं झकझोरा से॥

—ग्वाल कवि

हाय हेमन्त लक्ष्मी तोमार नयन केन ढाका
हिमेर घन घोमय खानि धूमल रंगे आंका
सन्ध्याप्रदीप तोमार हाते
मलिन होरे कुयाशाते
कंठे तोमार वाणी येन करुण वाष्पे माखा
धरार आंचल भरे दिले प्रचुर सोनार धाने
दिगंगनार अंकन आज पूर्ण तोमार दाने
आपन दाने आड़ा लेते रइले केन आसन पेते
आपना के एइ केमन तोमार गोपन करे राखा।

हाय हेमन्तलक्ष्मी! धूमिल रंगों से अंकित हिम के बादलों के घूंघट से तुम्हारे नयन कैसे ढँके हुए हैं? तुम्हारे हाथों में कुहासे से म्लान सांध्य दीप है। तुम्हारी वाणी मानो करुण वाष्प में लिपटी हुई है। तुमने स्वर्णिम धान से धरती का आंचल भर दिया है। दिगंगनाओं का आंगन आज तुम्हारे दान से पूर्ण है। अपने ही दान में तुमने स्वयं को कैसा छिपा रखा है!

[बँगला] —रवीन्द्रनाथ ठाकुर

होनहार

दे० 'भवितव्यता' और 'भाग्य'।

होली

राका होलाके।

होली पर्व पर पूर्णिमा 'राका' ही देवता है।

—काठकगृह्यसूत्र (७३।१)

कीर्णैः पिष्टातकौघैः कृतदिवसमुखैः
कुंकुमक्षोदगौरैर्—
हेमालंकारभाभिर्भरनमितशिखैः
शेखरैः कैकिरातैः।
एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजिता-
शेषवित्तेशकोषा
कौशाम्बी शातकुंभद्रवखचितजनेवैक—
पीता विभाति॥

उड़ते हुए केशर-मिश्रित गुलालों से, जिनसे उषःकाल का भ्रम हो रहा है, नागरिकों के स्वर्णाभूषणों की दीप्तियों से तथा नागरिकों द्वारा धारण किए गए अपने भार से अग्रभाग को झुका देने वाले अशोक पुष्प के शिरोभूषणों से यह कौशाम्बी नगरी ऐसी दीख पड़ती है मानो यहां रहने वालों की देह पर सोने का पानी चढ़ा दिया गया हो और इस नगरी ने अपने ऐश्वर्य से कुबेर के कोष को हरा दिया हो और प्रमाण यहां के लोगों का यह असाधारण वेश ही है।

—हर्ष (रत्नावली, १।११)

धारायंत्र-विमुक्त-संततपयः पूरप्लुते सर्वतः
सद्यः सान्द्रविमर्द-कर्दमकृतक्रीडे क्षणं प्रांगणे।
उद्दाम प्रमदा-कपोल-निपतत्-सिन्दूररागारुणैः
सैन्दूरीक्रियते जनेन चरणन्यासैः पुरःकुट्टिमम्॥

(होली के दिन, बड़े घरों के सामने) धारायंत्र (फ़व्वारे) से निकला हुआ पानी निरन्तर पूरे वेग से छूटता हुआ चारों ओर फैल रहा है (जो नागरिकाओं को अपनी-अपनी पिचकारी में पानी भरने की इच्छा को पूरा करने में सहायक है। उस स्थान पर पुर-युवतियों के निरन्तर आते रहने से

आंगन में हो गई कीच पर उनके कपोलों से झरते अबीर व माँग के सिंदूर के झड़ने से वह कीच भी लाल रंग की हो रही है और लोगों के पैरों में लगी उस लाल कीच से फ़र्श सिन्दूरमय हो रहा है।

—हर्ष (रत्नावली, १।१२)

पीठ दिए हीं नैंक मुरि, करि घूंघट पटु टारि।
भरि गुलाल की मूंठि सौं, गई मूठि सी मारि॥

यद्यपि वह नायक की ओर पीठ किए ही खड़ी रही, फिर भी थोड़ी सी मुड़कर और अपने हाथ में घूंघट का वस्त्र तनिक सा ऊपर करते हुए उसके ऊपर मुट्ठी में भरे हुए गुलाल को फेंककर चली गयी। तभी से ऐसा लग रहा है मानो उसने उस क्रिया द्वारा नायक को सम्मोहित करके, अपनी मुट्ठी में कर लिया है।

—बिहारी (बिहारी सतसई)

छुटत मुठिनु संग हीं छुटी, लोक-लाज-कुल-चाल।
लगे दुहुन इक बेर ही, चलचित नैन गुलाल॥

नायक तथा नायिका की परस्पर एक-दूसरे पर गुलाल भरी मुट्ठियों के खुलते ही लोक-लाज और कुलीनता की मर्यादाएं भी खुल गयीं। उन दोनों के चंचल नेत्रों तथा हृदयों में एक साथ ही गुलाल जा लगा।

—बिहारी (बिहारी सतसई)

जज्यौं उझकि झांपति बदनु, झुकति बिहँसि सतराइ।
तत्यौं गुलाल मुठी झूठी, झझकावत प्यौ जाइ॥

जैसे-जैसे नायिका संकोचवश उझकती हुई, मुख ढँकती हुई, झुकती हुई तथा मुस्कराती हुई सीधी खड़ी होती है, वैसे-ही-वैसे नायक झूठ-मूठ की गुलाल से भरी हुई मुट्ठी को उसके ऊपर फेंकने का अभिनय करता है, जिससे नायिका बार-बार झिझकने लगती है।

—बिहारी (बिहारी सतसई)

गिरै कंपि कछु, कछु रहै, कर पसीजि लपटाइ।
लैयौ मुठी गुलाल भरि, छुटत झुठी ह्वै जाय॥

नायक-नायिका दोनों की मुट्ठियां गुलाल से भरी हैं, किन्तु उनके खुलते ही गुलाल नहीं निकल पाता—क्योंकि कुछ तो परस्पर दर्शन से उत्पन्न कंप के कारण गिर जाता है और कुछ हथेलियों में ही पसीने के कारण चिपका रह जाता है।

—बिहारी (बिहारी सतसई)

'ग्वाल कवि' कोऊ गुलचावें, औ रचावें रंग,
अंगन लचावें, औ नचावें डारि रोरी है।
केती कहें गोरी, बरजोरी कौ न मानों बुरो
हो-हो लाल होरी, लाल होरी, लाल होरी है॥

— ग्वाल कवि

मोहन औ मोहिनी ने फाग की मचाई लाग
बाग में बजत बाजे कौतुक बिसाल है।
केसर के रंग बहैं छज्जन पै छातन पै
नारे पै नदी पै औ निकास पै उछाल है।
'ग्वाल कवि' कुंकुम की घालन रसालन पै
तालन तमालन पै फूटत उताल है।
गुंजन गुलालन पै, लालन पै, ग्वालन पै
बाला-बाल-बालन पै, घुमड़्यौ गुलाल है।

—ग्वाल कवि

फाग में, कि बाग में, कि भाग में रही है भरि,
राग में, कि लाग में, कि सौहे खात झूठी में।
चोरी में, कि जोरी में, कि रोरी में, कि मोरी मे,
कि झूमि झुकझोरी में, कि झोरिन की ऊठी में।
'ग्वाल कवि' नैन में, कि सैन में, कि बैन में,
कि रंगलैन-दैन में, कि ऊजरी अंगूठी में।
मूठी में, गुलाल में, कि ख्याल में तिहारे प्यारी
कर में भरी मोहिनी, सो भयो लाल मूठी में॥

— ग्वाल कवि

जाहि लगै सो भजै न अगै,
डिगैई डिगै पै सकै नहिं ऊठें।
जो कहूँ कोउक कूदि चलै तौ,
तहां बिचलें, जहां रंग अनूठें।
त्यो 'कवि ग्वाल' खिलावरन खेल में
खीजें खिलें खिन खोरि में रूठें।
मूठें गुलाल की बाल की यों चलें
ज्यों चलें मंत्र बिसाल की मूठें॥

—ग्वाल कवि

फाग के भीर अभीरन में गहि
गोविन्दैं लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पदमाकर'
ऊपर नाई अबीर की झोरी।
छीन पिताम्बर कम्मर ते
सु बिदा दई मीड़ कपोलन रोरी।
नैन नचाइ, कही मुसकाइ,
लला फिरी अइयौ खेलन होरी॥

—पद्माकर

पिया बिन वैरिन होरी आई।

—हिंदी (अवधी) लोकगीत

मास फागुन रंगल तरु सब
जगत रंग पसार ए।
अविर अओर गुलाब कुंकुम
भरल जगत पथार ए॥
[मैथिली हिन्दी] —कुमर

फागुन फगुआ के दिन भेल
सखि सब धूम मचाय।
उड़त गुलाव अबिरबान
देखि देखि जिय ललचाय॥

फागुन मास में होली के दिन आए हैं। मेरी सखियां धूम मचाए हुए हैं। चारों ओर कुंकुम और गुलाल उड़ रहे हैं, जिन्हें देख-देखकर (पति-वियोग के कारण) मेरा मन तरस रहा है।

—हिंदी (मैथिली) लोकगीत

राग-रंग और उल्लास का यह पर्व अपनी व्यापकता, स्वच्छन्दता और सम्पन्नता में अनुपम है। अनेक विशेषताओं से युक्त वर्ष का यह अन्तिम पर्व जीवन में संस्कृति के पूर्ण समन्वय का द्योतक है। वैदिक नवान्न यज्ञ और लोकोत्सव का अद्भुत संगम इसमें मिलता है।

—डा० रामानन्द तिवारी (हमारी जीवन्त संस्कृति, पृ० २४२)

होली के पर्व में अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचकर वर्ष की रागिनी एक पक्ष की क्रमिक शान्ति में अवसित होकर नये वर्ष की नई रागिनी को जन्म देती है।

—डा० रामानन्द तिवारी (हमारी जीवन्त संस्कृति, पृ० २४२)

Though the Holika festival is composite in several parts of India and is celebrated on more days than one, in origin it is no more than a spring festival.

यद्यपि होलिका-उत्सव भारत के अनेक भागों में भिन्न-भिन्न रीति का है तथा एक ही दिन न मनाकर अनेक दिनों पर मनाया जाता है, तो भी मूलतः यह वसन्त-उत्सव ही है।

—पांडुरंग वामन काणे (हिस्ट्री आफ़ धर्मशास्त्र, भाग ५ खंड १, पृ० २४१)

ह्रीं

'ह्री' का उदय आकाश से होता है, इसकी पीठ विशुद्ध चक्र में है और उसका आयतन सहस्रार तक है। 'श्रीं' का उदयस्थान भी आकाश है। इसलिए उसकी पीठ विशुद्ध है और आयतन आज्ञाचक्र तक है। 'ऐं' का उदय अग्नि से है, इसलिए उसकी पीठ मणिपुर है और आयतन वाक्शक्ति का स्थान विशुद्धचक्र है और विकाश-स्थान जिह्वाग्र भाग है। इन तीनों में अग्नि ही प्रमुख है 'क्लीं' में लकार से पृथ्वी-तत्त्व की प्रधानता लिए हुए वायुतत्त्व है। 'कं' से जल भी लिया जाता है। इसकी पीठ मूलाधार है और आयतन काम, संकल्प और कामना तीनों में होने के कारण स्वाधिष्ठान और अनाहत एवं आज्ञाचक्र तक है। वाक्शक्ति का सम्बन्ध संकल्पों से है, इसलिए 'ऐं' का साथ 'क्लीं' से है और शक्ति का प्रकाश कांति में होता है, इसलिए 'ह्रीं' का साथ 'श्रीं' से है।

—विष्णुतीर्थ (सौन्दर्यलहरी की टीका, पृ० ४४-४५)

('ह्रीं' बीजमंत्र में) हकार आकाश का द्योतक है, रकार स्पन्द का, ईकार शक्ति का, और अनुस्वार ब्रह्म के प्रतिबिम्बित तेज का।

—विष्णुतीर्थ ('सौन्दर्यलहरी' की टीका, पृ० ३९)

ह्लींकार

ह्लींकारोंकाररूपा त्वमिह
शशिमुखी ह्लींस्वरूपा त्वमेव।
क्षान्तिस्त्वं त्वं च कान्तिर्हरिह-
रकमलोद्भूतारूपा त्वमेव।
त्वं सिद्धिस्त्वं च ऋद्धिः स्मररि पु
नमनसस्त्वं च संमोहयन्ती।
विद्या त्वं मुक्तिहेतुर्भवजलधिज-
दुःखस्य हंत्री त्वमेका॥

हे देवी! तुम ह्लींकार रूपा हो, ओंकार रूपा हो। तुम शशिमुखी ह्ली-स्वरूपा हो। तुम ही क्षान्ति हो, तुम ही कान्ति हो। विष्णु, शिव और ब्रह्मा भी तुम ही हो। तुम सिद्धि हो, तुम ऋद्धि हो। तुम कामदेव के शत्रु शिव के मन को मोहित कर लेती हो। तुम विद्या हो। तुम मुक्ति का हेतु (कारण) हो। एकमात्र तुम भव-सागर से उत्पन्न दुख का नाश करने वाली हो।

—विष्णुयामल ग्रंथ का बीजषोडशार्णमकरन्द स्तोत्र

ह्लींकारमेव शरणं जगतां वदन्ति
ह्लींकारमेव परमं भुवेन रहस्यम्।
ह्लींकारमेव सततं स्मरता मयाद्य
पुष्पांजलिश्चरणयोरम्ब कीर्णः॥

हे माता! ह्लींकार को ही जगत् की शरण कहते हैं। ह्लींकार ही भुवन में परम रहस्य है। आज ह्लीकार का ही सतत स्मरण करते हुए मैंने तुम्हारे चरणों में पुष्पांजलि बिखेर दी है।

—त्रिपुरसुन्दरीपुष्पांजलिस्तव

परिशिष्ट

संदर्भ-अनुक्रमणिका

तृतीय खंड

इस संदर्भ-अनुक्रमणिका में हमारे सभी सूक्ति-स्रोतों अर्थात् उद्धृत लेखकों तथा लेखक नाम से सम्बद्ध ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं आदि का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। साथ ही सम्बद्ध पृष्ठ-संख्याएं भी अंकित की गयी हैं। भूमिका में दी गयी सम्बद्ध टिप्पणी भी द्रष्टव्य है।

अंगराज (२०वीं शती)—भारतीय काव्य-ग्रन्थ। भाषा—हिन्दी। रचयिता—आनन्दकुमार।
(दे० द्वितीय खंड)

अंगुत्तरनिकाय (प्रथम शती ईसा पूर्व)—भारतीय ग्रन्थ। भाषा—पालि। बौद्ध धर्म-ग्रंथ जिसमें भगवान बुद्ध (५६८-४८८) के वचन संगृहीत है। यह 'सुत्तपिटक' के पाँच निकायों में से एक है।
९८४, ११२४, ११९८ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

अंतरा (६ठी शती)—अरब-निवासी। योद्धा तथा अरबी के कवि। पूरा नाम—अंतरा बिन शद्दाद।
(दे० प्रथम व द्वितीय खंड)

अंबिका गिरि राय चौधुरी (१८८५-१९६७)—भारतीय। असमिया-साहित्यकार।
(दे० प्रथम खंड)

अंबिकादत्त व्यास (१८५९-१९००)—भारतीय। संस्कृत-साहित्यकार।
(दे० द्वितीय खंड)

अकबर (१५४२-१६०५)—भारतीय। मुग़ल सम्राट। हिंदी-कवि।
१११४ (दे० द्वितीय खंड भी)

अकबर इलाहाबादी (१८४६-१९२१)—भारतीय। उर्दू-कवि। नाम—सैयद अकबर हुसैन। उपनाम—'अकबर'।
९४६, ९९९, १०१९, १०४८, १०५७, १०८९, १०९८, ११६८, ११९२, १२०४, १२३०, १२७८ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

अकबर मुग़ल सम्राट—दे० अकबर।

अक्षयकुमार बंद्योपाध्याय (मृत्यु—१९६५)—भारतीय। बँगला-लेखक। तथा वक्ता। पूर्व बंगाल में एक कालेज के प्राचार्य रहे।
(दे० प्रथम खंड)

अक्षर अनन्य (जन्म—१६४३)—भारतीय। हिन्दी के संत-कवि।
(दे० प्रथम व द्वितीय खंड)

अक्ष्युपनिषद् (अनेक शती ईसा पूर्व)—भारतीय ग्रन्थ। भाषा—संस्कृत। एक उपनिषद्-ग्रन्थ।
(दे० प्रथम खड)

अखंडानंद—दे० अखंडानन्द सरस्वती।

अखंडानंद सरस्वती (२०वीं शती)—भारतीय। विद्वान संन्यासी। पहले हिन्दी मासिक 'कल्याण' के सह-संपादक रहे। संन्यास-पूर्व नाम—शान्तनु द्विवेदी। धार्मिक व्याख्याता तथा हिन्दी-लेखक।
९६६, १२७७, १२९३ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

अखो भगत—दे० अखो।

अखो (१७वीं शती)—भारतीय। गुजराती के संत-कवि। इन्हें 'अखो भगत' भी कहा जाता है।
(दे० प्रथम व द्वितीय खंड)

अख़्तर शीरानी (१९०५-१९४८)—भारतीय। उर्दू-कवि। नाम—अख़्तर खां। उपनाम—शीरानी।
(दे० प्रथम खंड)

अग्निपुराण(अनेक शती ईसापूर्व)—भारतीय ग्रंथ। भाषा—

९०६, ९३७, ९७०, १०८२, ११६३, ११८७, ११९९ १२१९, १२२२, १२६६, १२६७, १३१२ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

अथर्वशिरोपनिषद् (अनेक शती ईसा पूर्व)—भारतीय ग्रंथ। भाषा—संस्कृत। एक उपनिषद्-ग्रन्थ।
(दे० द्वितीय खंड)

अदम—दे० अब्दुल हमीद 'अदम'।

अध्यात्मोपनिषद् (समय—?)—भारतीय ग्रंथ। भाषा—संस्कृत। एक उपनिषद्-ग्रन्थ।
१२३६ (दे० प्रथम खंड भी)

अध्यापक पूर्णसिंह—दे० सरदार पूर्णसिंह।

अनन्तदेव (१६वीं शती)—भारतीय। संस्कृत-नाटककार।
९७३, १२०३ (दे० द्वितीय खंड भी)

अनाकार्सिस (लगभग ६०० ईसा पूर्व)—सीथिया के दार्शनिक।
(दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

अनातोले फ्रांस (१८४४-१९२४)—फ्रांसीसी साहित्यकार। नोबेल पुरस्कार-विजेता (१९२१)। वास्तविक नाम—जैकुए अनातोले फ्रैंकोई थिबाल्त।
१२०५ (दे० प्रथम खंड भी)

अनीस (१८०२-१८७४)—भारतीय। उर्दू-कवि। नाम—मीर बबर अली। उपनाम—अनीस।
११६८ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

अनूप शर्मा (१८९९-१९६०)—भारतीय। हिन्दी-कवि।
१०४५ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

अन्नपूर्णोपनिषद् (समय—?)—भारतीय ग्रंथ। भाषा-संस्कृत। एक उपनिषद्-ग्रंथ।
११३२

अन्ना एलीनार रूज़वेल्ट—दे० शुद्ध नाम—ऐना एलेना रूजवेल्ट।

अन्ना ब्राउनेल मर्फ़ी जेम्सन—दे० शुद्ध नाम—एना जेमसन।

अप्पय दीक्षित (१५२५-१५८९)—भारतीय। संस्कृत के वैयाकरण, दार्शनिक, काव्यशास्त्री तथा कवि।
(दे० प्रथम व द्वितीय खंड)

अफ़ज़ल परवेज़ (२०वीं शती)—पाकिस्तानी। उर्दू-कवि।
(दे० प्रथम खंड)

अफरा बेन (१६४०-१६८९)—अंग्रेज महिला। नाटककार, उपन्यासकार तथा कवयित्री।
१०२४ (दे० द्वितीय खंड भी)

अबुल गवायज़ (समय—?)—अरब-निवासी। अरबी के कवि।
(दे० द्वितीय खड)

अबुल फ़तहिल बुस्ती (समय—?)—अरब-निवासी। अरबी के कवि।
(दे० प्रथम व द्वितीय खड)

अबू तालिब कलीम (समय—?)—फ़ारसी-कवि।
११६६

अब्दुल अहद 'आजाद' (१९०२-१९४८)—भारतीय। कश्मीरी-कवि।
(दे० प्रथम व द्वितीय खंड)

अब्दुलरहमान (१५वीं शती)—भारतीय। प्राचीन हिंदी काव्य-ग्रन्थ 'सदेशरासक' के रचयिता। 'अब्दुर्रहमान' नाम से भी प्रसिद्ध।
(दे० द्वितीय खंड)

अब्दुल वहाब परे 'वहाब' (१८४५-१९१४)—भारतीय। कश्मीरी-कवि।
(दे० प्रथम खंड)

अब्दुल हमीद 'अदम' (जन्म—१९०९)—भारतीय। उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त के उर्दू-कवि। नाम—सैयद अब्दुल हमीद।
१०५७ (दे० द्वितीय खंड भी)

अब्दुल्ला बस्साफ़ (१४वीं शती)—अरब-निवासी। अरबी-के साहित्यकार।
(दे० द्वितीय खंड)

अब्राहम लिंकन (१८०९-१८६५)—अमरीका के १६वें राष्ट्रपति।
१२८४, १३११ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

अभिधम्मपिटक (प्रथम शती ईसा पूर्व)—भारतीय ग्रन्थ। भाषा - पालि। बौद्ध धर्मग्रंथ जिसमें भगवान बुद्ध के वचन संगृहीत है। यह त्रिपिटक में से एक पिटक है।
(दे० प्रथम खंड)

अभिनंद (९वीं शती)—भारतीय। संस्कृत-कवि जिन्होंने 'रामचरितम्' महाकाव्य रचा था।

(दे० द्वितीय खंड)

दादाभाई नौरोजी (१८२५-१९१७)—भारतीय। स्वातंत्र्य सेनानी। इंडियन नेशनल कांग्रेस के तीन वार अध्यक्ष रहे। ब्रिटेन के संसद्-सदस्य निर्वाचित (१८९२)।
(दे० द्वितीय खंड)

दादूदयाल (१५४४-१६०३)—भारतीय। दादू पंथ के संस्थापक, हिन्दी के सन्त कवि।
९३२, १०६५, ११४३, १२३७ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

दान्ते (१२६५-१३२१)—इटली के कवि। इनका नाम कुछ समय 'ड्युरेंट अलेग्येरी' रहा किन्तु बाद में 'दान्ते अलग्येरी' हो गया। अत: दोनों नामों से जाने जाते थे।
१२६० (दे० द्वितीय खंड भी)

दामोदर गुप्त (८वीं शती)—भारतीय। कश्मीर-नरेश जयापीड के मंत्री। संस्कृत-कवि।
(दे० प्रथम खंड)

दामोदर मिश्र—दे० हनुमान पंडित।

दाशरथि (१८०६-१८५७)—भारतीय। बँगला-कवि। पूरा नाम—दाशरथि राय।
१२४०

दास—दे० भिखारीदास।

दास श्रीरामुलु (१८६४-१९०८)—भारतीय। तेलुगु-कवि। 'दासु श्रीराम कवि' नाम से प्रसिद्ध।
(दे० द्वितीय खंड)

दिङ्नाग (लगभग ५वी-६वी शती)—भारतीय। संस्कृत-नाटककार।
९७७ (दे० प्रथम खंड भी)

दीघनिकाय (प्रथम शती ईसा पूर्व)—भारतीय ग्रंथ। भाषा—पालि। बौद्ध धर्म ग्रंथ। 'धम्मपिटक' के पाँच निकायों में से एक।
१०७२, १११०, १२३३ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

दीनदयाल उपाध्याय (१९१६-१९६८)—भारतीय। समाज-सेवी तथा राजनीतिज्ञ। हिन्दी-साहित्यकार।
९३९, १०५२, १०५८, ११७४, १२८८, १३२८ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

दीनदयाल गिरि (१८०२-१८६५)—भारतीय। हिन्दी-कवि।
१३०० (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

दीन दरवेश (१८०६—?)—भारतीय। गुजरात में जन्मे संत। हिन्दी-कवि।
(दे० द्वितीय खंड)

दीवान-ए-ग़ालिब—दे० ग़ालिब।

दुर्गा भागवत (जन्म—१९१०)—भारतीय। मराठी-साहित्यकार महिला।
१०७२ (दे० द्वितीय खंड भी)

दुर्गासहाय 'सुरूर' जहानाबादी (१८७३-१९१०)—भारतीय। उर्दू-कवि। उपनाम—'सुरूर'।
(दे० प्रथम व द्वितीय खंड)

दूलनदास (१६६०-१७७८)—भारतीय हिन्दी के संत-कवि।
(दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

देकार्ते (१५९६-१६५०)—फ़्रांसीसी वैज्ञानिक व दार्शनिक। पूरा नाम—रेने देकार्ते।
(दे० प्रथम खंढ)

देव (१६७३—?)—भारतीय। हिन्दी कवि। पूरा नाम—देवदत्त।
१०१० (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

देवराज (२०वीं शती)—भारतीय। लखनऊ विश्वविद्यालय में दर्शन के प्रोफ़ेसर रहे। हिंदी-ग्रंथकार। 'डा० देवराज' नाम से प्रसिद्ध।
११७४, ११७६

देवराज 'दिनेश' (जन्म—१९२२)—भारतीय। हिन्दी के कवि, नाटककार तथा पत्रकार।
(दे० द्वितीय खंड)

देवसेन (१९वी शती)—भारतीय। अपभ्रंश-कवि।
९४५ (दे० द्वितीय खंड भी)

देवीदास (१८वी शती)—भारतीय। रामसनेही सम्प्रदाय के संत। हिन्दी-कवि।
९३१ (दे० प्रथम खंड भी)

देवीभागवत पुराण (समय—?)—भारतीय ग्रंथ। भाषा—संस्कृत। पुराण-ग्रंथों में से एक।
९५९, ९६१, १०४६, ११०५, ११४६, ११८९, १२९४ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

देवेन्द्रनाथ ठाकुर (१८१७-१९०५)—भारतीय। बंगाल के समाज-सुधारक। इनके पुत्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर विश्व-प्रसिद्ध साहित्यकार हुए।

पूंतानम् (१६वीं शती)—भारतीय। मलयालम के कृष्ण-भक्त कवि।
(दे० द्वितीय खंड)

पूर्ण सरस्वती (समय—?)—भारतीय। अनेक संस्कृत-ग्रन्थों के टीकाकार के रूप में प्रसिद्ध संस्कृत-विद्वान।
१२२१

पूर्णसिंह—दे० सरदार पूर्णसिंह।

पूर्व विधान(अनेक शती ईसा पूर्व)—यहूदियों व ईसाइयों का मान्य धर्मग्रंथ। भाषा—हिब्रू। यह अंग्रेजी में 'ओल्ड टेस्टामेंट' के नाम से अनूदित हुआ है।
१०७७, ११२०, ११६४ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

पृथ्वीधर (१४वीं शती या पूर्व)—भारतीय। संस्कृत-कवि।
(दे० द्वितीय खंड)

पृथ्वीराज राठौर(१५४६-१६००)—भारतीय। राजस्थानी कवि।
६६७ (दे० द्वितीय खंड भी)

पेट्रार्क (१३०४-१३७४)—इटली के कवि। पूरा नाम—फ्रांसिस्को पेट्रार्क।
१०७३

पेतवत्थु (प्रथम शती ईसा पूर्व)—भारतीय ग्रंथ। भाषा—पालि। बौद्ध धर्मग्रंथ जिसमें भगवान बुद्ध के अनेक उपदेश संगृहीत हैं। यह ग्रन्थ 'खुद्दक निकाय' में समाविष्ट है।
(दे० द्वितीय खंड)

पैंगलोपनिषद् (समय—?)—भारतीय ग्रंथ। भाषा—संस्कृत। उपनिषद्-ग्रन्थों में से एक।
(दे० प्रथम खंड)

पैस्कल (१६२३-१६६२)—फ्रांसीसी दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा गणितज्ञ। पूरा नाम—ब्लेज़ पैस्कल।
(दे० प्रथम खंड)

पोकाक (१६वीं शती)—अंग्रेज भारतविद्। पूरा नाम—ई० पोकाक।
११७३

पोतना (१५वीं शती)—भारतीय। तेलुगु-कवि।
६६६ (दे० प्रथम खंड भी)

पोप—दे० अलेक्जेंडर पोप।

पोप लेव (१८१०-१६०३)—इटलीवासी। 'लेव' नाम से विख्यात १३ पोप धर्माचार्यों में से अन्तिम पोप (१८७८ से १६०३ तक पोप रहे)।
(दे० द्वितीय खंड)

प्रकाशवर्ष (१४वीं शती या उससे पूर्व)—भारतीय। संस्कृत-कवि।
१२६५ (दे० द्वितीय खंड भी)

प्रणवोपनिषद् (समय—?)—भारतीय ग्रंथ। भाषा—संस्कृत। उपनिषद्-ग्रंथों में से एक।
(दे० प्रथम खंड)

'प्रताप' दैनिक (२०वीं शती)—भारतीय समाचारपत्र। कानपुर से प्रकाशित हिन्दी दैनिक (१६२० से प्रारंभ)। सम्पादक-प्रकाशक—'गणेशशंकर विद्यार्थी' रहे।
(दे० द्वितीय खंड)

प्रतापनारायण मिश्र (१८५६-१८६५)—भारतीय। हिन्दी-साहित्यकार।
६६२ (दे० प्रथम खंड भी)

प्रभवानन्द (२०वीं शती)—भारतीय। संन्यासी तथा अंग्रेज़ी-ग्रंथकार। 'स्वामी प्रभवानन्द' नाम से प्रसिद्ध।
(दे० द्वितीय खंड)

प्रभाकर (१७६६-१८४३)—भारतीय। मराठी-कवि तथा विशेषतः ऐतिहासिक पोवाड़ों के रचयिता। पूरा नाम—प्रभाकर जनार्दन दातार।
१२४४

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी (२०वीं शती)—भारतीय। हिन्दी के भक्त-कवि तथा गद्य-लेखक। 'संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी' अथवा 'झूसी के संत' नाम से प्रसिद्ध।
(दे० प्रथम व द्वितीय खंड)

प्रभुदास (समय—?)—भारतीय। हिन्दी-कवि।
(दे० द्वितीय खंड)

प्रभुदेव (१२वीं शती)—भारतीय। कन्नड़ के संत-कवि।
(दे० द्वितीय खंड)

प्रश्नव्याकरणसूत्र (ईसा पूर्व)—भारतीय ग्रंथ। भाषा—प्राकृत। जैन धर्मग्रंथ। द्वादश अंगों में से एक।
१०००, ११६० (दे० द्वितीय खंड भी)

प्रश्नोपनिषद् (अनेक शती ईसा पूर्व)—भारतीय ग्रंथ।

भीखजन (१६वीं-१७वी शती)—भारतीय। राजस्थान के संत तथा हिन्दी-कवि।
(दे० प्रथम खंड)

भीखण जी—दे० भिक्षु स्वामी।

भीखा साहब (१७१३-१७६३)—भारतीय। हिन्दी के संत-कवि। पूर्व नाम—भीखानन्द चौबे।
(दे० प्रथम व द्वितीय खंड)

भूलोकमल्ल—दे० मानसोल्लास।

भूषण (१६१३-१७१५)—भारतीय। हिन्दी-कवि।
१०५६, ११०५, ११०६ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

भैया भगवतीदास (१६वीं-१७वीं शती)—भारतीय। आगरा-निवासी जैन विद्वान। हिन्दी-कवि।
१०२५, १०३७ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

भोज (११वीं शती)—भारतीय। विविधशास्त्र-मर्मज्ञ। धारा-नरेश। संस्कृत-ग्रंथकार।
११७३

भोलानाथ शर्मा (१६०६-१९६०)—भारतीय। संस्कृत-प्रोफ़ेसर। बहुभाषाविद्। हिन्दी-ग्रंथकार।
९८१, १०८९, १२४७, १२५० (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

भोलेबाबा (२०वीं शती)—भारतीय। हिन्दी के संत कवि।
९९१, ११३०, १२५६ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

मंखक (१२ वी शती)—भारतीय। कश्मीर-नरेश जयसिंह (शासनकाल ११२८-११५५) के सभापंडित। संस्कृत के कवि तथा कोशकार।
(दे० प्रथम खंड)

मंझन (१५वीं-१६वीं शती)—भारतीय हिन्दी के सूफ़ी कवि।
१०१०, १०७८, १२५९ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

मंडलब्राह्मणोपनिषद् (अनेक शती ईसा पूर्व)—भारतीय ग्रन्थ। भाषा—संस्कृत। उपनिषद्-ग्रन्थों में से एक।
१०८३ (दे० द्वितीय खंड भी)

मगनलाल हरिभाई व्यास (मृत्यु—१९४८)—भारतीय। गुजराती संत।
(दे० प्रथम व द्वितीय खंड)

मजनून (मृत्यु—१७४५)—भारतीय। उर्दू-कवि।
१३११

मजहर जानजानां—(१६९८-१७८१)—भारतीय। दिल्ली-निवासी उर्दू व फ़ारसी के कवि। नाम—मिर्ज़ा शम्सुद्दीन जानजानां। उपनाम—'मजहर'।
१२८९, १३२९ (दे० प्रथम खंड भी)

मज्झिमनिकाय (प्रथम शती ईसा पूर्व)—भारतीय ग्रन्थ। भाषा—पालि। बौद्ध धर्मग्रन्थ। यह 'धम्मपिटक' का एक ग्रन्थ है।
९६५, ९७४, १०७२, ११११, ११२५, १२३६ (दे० द्वितीय खंड भी)

मज्तर मुज़फ़्फ़रपुरी (समय—?)—भारतीय। उर्दू-कवि।
९६७

मतिराम (१६३९-१७१६) भारतीय। हिन्दी-कवि।
९४९, ११०४, १२७५, १३११ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

मत्स्यपुराण (समय—?)—भारतीय ग्रन्थ। भाषा-संस्कृत। पुराण-ग्रन्थों मे से एक।
९१८, १०७४, ११२२, ११७८, ११८५, १२६२ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

मदनमोहन मालवीय (१८६१-१९४६)—भारतीय। स्वातंत्र्य-सेनानी। हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के संस्थापक। हिन्दी व अंग्रेजी के वक्ता व लेखक।
११९१ (दे० द्वितीय खंड भी)

मदनलाल धींगरा (१८८७-१९०९)—भारतीय। स्वातंत्र्य-प्रेमी बलिदानी।
(दे० द्वितीय खंड)

मधुसूदन राव (१९वीं-२०वी शती)—भारतीय। उड़िया-कवि।
(दे० प्रथम खंड)

मधुसूदन सरस्वती (१६वी शती)—भारतीय। बंगाल में जन्मे किन्तु बाद में काशी में रहे। दार्शनिक व कृष्ण-भक्त। संस्कृत-ग्रन्थकार।
(दे० प्रथम खंड)

मनमोहन मिश्र (जन्म—१९२०)—भारतीय। उड़िया-कवि।
(दे० द्वितीय खंड)

मनुस्मृति (सहस्रों वर्ष ईसा पूर्व)—भारतीय ग्रन्थ। 'मानव जाति के पिता' तथा धर्मशास्त्री स्वायम्भुव मनु द्वारा

लोकोक्ति

भारतीय

अमरीकी मनोवैज्ञानिक।
११३०

विलियम राउन्सेविले एल्गर (१८२२-१९०५)—अमरीकी पादरी व लेखक।
११५१

विलियम रैल्फ़ इंगे (१८०६-१८५४)—अंग्रेज साहित्यकार।
(दे० प्रथम खंड)

विलियम रास वालेस (१८१९-१८८१)—अंग्रेज कवि।
(दे० द्वितीय खंड)

विलियम लिज्ले बाउल्स (१७६२-१८५०)। अंग्रेज कवि।
१२९१

विलियम लियोल बाउलन—दे० शुद्ध नाम—विलियम लिज्ले बाउल्स।

विलियम वर्ड्सवर्थ—दे० वर्ड्सवर्थ।

विलियम शेंस्टन (१७१३-१७६३)—अंग्रेज कवि।
(दे० प्रथम खंड)

विलियम श्वेंक गिलबर्ट (१८३६-१९११)—अंग्रेज नाटककार तथा हास्य-कवि।
(दे० द्वितीय खंड)

विलियम सेसिल (१५२०-१५९८)—अंग्रेज प्रशासक। 'लार्ड वर्घले' नाम से प्रसिद्ध।
१०६८, १२५१

विलियम हेनरी डेविस (१८७१-१९४०)—ब्रिटेन के वेल्स भाग में जन्मे अंग्रेज़ी कवि।
(दे० प्रथम खंड)

विलियम हैमिल्टन (१७८८-१८५६)—स्काटलैंड (ब्रिटेन) के दार्शनिक। 'सर' उपाधि से युक्त।
(दे० द्वितीय खंड)

विल्सन (१८५६-१९२४)—अमरीका के २८वें राष्ट्रपति। पूरा नाम—टामस वुडरो विल्सन।
१०९०, १२८४ (दे० प्रथम खंड भी)

विल्सन मिजनर (१८७६-१९३३)—अमरीकी साहित्यकार।
१०७४

विवेकविलास (१३वीं शती या पूर्व)—भारतीय ग्रन्थ। भाषा—संस्कृत। 'सर्वदर्शनसंग्रह' में उद्धृत।
(दे० द्वितीय खंड)

विवेकानन्द (१८६३-१९०२)—भारतीय। युगनिर्माता संन्यासी। बँगला व अंग्रेज़ी के वक्ता, लेखक व कवि। 'स्वामी विवेकानन्द' नाम से प्रसिद्ध।
९२८, ९३८, ९३९, ९४४, ९८२, ९८६, १००४, १०२६, १०२७, १०२८, १०३१, १०४७, १०५०, १०५४, १०५८, १०७०, १०७५, १०८६, १०९४, १०९५, १०९८, १०९९, ११०८, ११५६, ११७०, ११७६, ११७७, ११९३, १२०४, १२१३, १२१६, १२१९, ११३०, १२३१, १२३४, १२३८, १२४४, १२४५, १२६०, १२६१, १२७१, १२८९, १३००, १३२०, १३२२, १३३० (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

विशाखदत्त (६ठी शती)—भारतीय। संस्कृत-नाटककार।
४४४, ५८०, ५९५ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

विशेष आवश्यक भाष्य (६ठी शती)—भारतीय ग्रन्थ। भाषा—प्राकृत। जैन धर्मग्रन्थ 'आवश्यक सूत्र' पर रचित भाष्य। रचयिता—जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण (मृत्यु—५४०)।
९७४, ११६५ (दे० प्रथम खंड भी)

विशेष आवश्यक भाष्यवृत्ति (समय—?)—भारतीय ग्रंथ। भाषा—प्राकृत। जैन धर्मग्रन्थ 'विशेष आवश्यक भाष्य' पर वृत्ति-ग्रंथ'।
(दे० द्वितीय खंड)

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' (१८९१-१९४५)—भारतीय। हिन्दी-कहानीकार।
१०८९, १३११

विश्वम्भर 'मानव' (१९१२-१९८०)—भारतीय। हिन्दी के साहित्य-समीक्षक तथा साहित्यकार।
१२४७

विश्वनाथ कविराज (१४वीं शती)—भारतीय। उड़ीसा-नरेश के 'सांधिविग्रहिक महापात्र' रहे। कवि, नाटककार तथा काव्यशास्त्र के आचार्य। अनेक संस्कृत व प्राकृत ग्रंथों के रचयिता।
(दे० प्रथम खंड)

विश्वनाथ प्रसाद (जन्म—१९०५)—भारतीय। हिन्दी-कवि। केंद्रीय हिन्दी निदेशालय (शिक्षा मंत्रालय), दिल्ली के निदेशक रहे।
(दे० द्वितीय खंड)

स्विफ्ट (१६६७-१७४५)—अंग्रेज़। कवि व व्यंग्य-लेखक। पूरा नाम—जानथन स्विफ़्ट।
(दे० प्रथम खंड)

हंसकला (१८३१-१९११)—भारतीय। हिन्दी के भक्त कवि। मूल नाम—नागापाठक। संन्यास-जीवन में नाम—'रामचरणदास हंसकला'।
(दे० द्वितीय खंड)

हंससंदेश—दे० वेदान्तदेशिक।

हक्सले—दे० एल्डस हक्सले।

हज़रत अली (मृत्यु—६६१)—अरब-वासी। इस्लाम के चौथे ख़लीफ़ा।
(दे० प्रथम व द्वितीय खंड)

हजारीप्रसाद द्विवेदी (१९०७-१९७९)—भारतीय। हिन्दी के साहित्यकार तथा समीक्षक।
९१२, ९१४, ९२४, ९२७, ९३८, ९४४, ९५२, ९७९ ९८८, १०१२, १०२६, १०५४, १०५७, १०६१, १०६६, १०७३, १०७४, १०९६, १०९८, ११३०, ११४४, ११४७, ११७१, ११७२, ११७३, ११७४, ११७६, ११८५, ११९२, ११९३, १२०४, १२१५, १२२१, १२२२, १२३१, १२३८, १२४७, १२४९, १२५०, १२५५, १२७७, १२८८, १३११, १३१८, १३२५

हनुमान पंडित (सहस्रों वर्ष ईसा पूर्व)—भारतीय। संस्कृत-नाटक 'हनुमन्नाटक' अथवा 'महानाटक' के मूल रचयिता। त्रेतायुग के ऐतिहासिक राम-रावण-युद्ध के महान सेनापति हनुमान ही इस नाटक के रचयिता माने जाते हैं। शिलाओं पर लिखे गए परन्तु बहुत समय तक विलुप्त इस नाटक के अंशों का धारा-नरेश भोज ने समुद्र से शिलाओं को प्राप्त कर उद्धार कराया था। परन्तु अब यह मूल से पर्याप्त भिन्न तथा नाटक कम, काव्य अधिक रूप में ही प्राप्त है। अब इसके दो संस्करण उपलब्ध हैं—प्रथम दामोदर मिश्र कृत १४ अंकों का, जिसे हनुमन्नाटक कहते हैं और द्वितीय मधुसूदन कृत ९ अंकों का। दामोदर मिश्र राजा भोज (११वीं शती) के समकालीन थे।
१००६ (दे० द्वितीय खंड भी)

हनुमान प्रसाद पोद्दार (१८९२-१९७१)—भारतीय। 'कल्याण' हिन्दी मासिक के सम्पादक। हिंदी-साहित्यकार। इन्होंने छद्मनाम 'शिव' से भी लिखा है। दे० 'शिव' भी।
९५८, १०६६, ११६८, १२३८, १२४२, १२७१ १३२० (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

हन्नाह मोर (१७४५-१८३३)—अंग्रेज कवयित्री तथा नाटककार।
९६५

हफ़ीज़ जालन्धरी (जन्म—१९००)—भारतीय। जालंधर (भारत) में जन्मे उर्दू-कवि। पाकिस्तान के 'राष्ट्रीय कवि' बने। पूरा नाम—मोहम्मद हफ़ीज़ जालन्धरी।
(दे० प्रथम खंड)

हम्फ़्री—दे० ह्यूबर्ट हम्फ्री।

हरदयाल—दे० लाला हरदयाल।

हरमन हेस (१८७७-१९६२)—जर्मन साहित्यकार। साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार-विजेता (१९४६)।
१०२७, १०७६, १०७९ (दे० प्रथम खंड भी)

हरमान हैंकिल (समय—?)—जर्मन गणितज्ञ।
(दे० प्रथम खंड)

हरिऔध—दे० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' (जन्म—१९०८)—भारतीय। हिंदी-नाटककार।
९३८,९६५, ९८६, (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

हरिदास—(१४९०-१५७५)—भारतीय। श्रीकृष्ण-भक्त तथा संगीताचार्य महात्मा। हिन्दी-कवि। इनके शिष्य 'तानसेन' प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए।
(दे० द्वितीय खंड)

हरिदास सिद्धान्तवागीश (१८७६-१९३६)—भारतीय। बँगला व संस्कृत के साहित्यकार।
११३०, ११७१ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

हरिनारायण आप्टे (१८८९-१९१९)—भारतीय। मराठी के उपन्यासकार, कहानीकार तथा समीक्षक।
(दे० द्वितीय खंड)

हरिभक्तिसुधोदय (१५वीं शती या पूर्व)—भारतीय ग्रन्थ। भाषा—संस्कृत। रूपगोस्वामी (१४९०-१५६३) द्वारा 'हरिभक्तिरसामृतसिंधु' में उद्धृत।
११३५

卐

परिशिष्ट-२

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

प्रस्तुत विश्व सूक्ति कोश को तैयार करने में सहस्त्रों ग्रन्थों इत्यादि का उपयोग किया गया है। ग्रंथ के तीनों खंडों में संगृहीत सूक्तियों के आधारभूत ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं आदि और सन्दर्भार्थ उपयोग किए गए ग्रंथों की यह सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची (जिसमें फुटकर पत्रों, भाषणों, वार्तालापों इत्यादि के सन्दर्भ-स्रोत सम्मिलित नहीं किए गए हैं) यहाँ प्रस्तुत है। इसमें ग्रंथादि के लेखक/सम्पादक/प्रकाशक की सूचना भी यथासंभव अंकित है। मूल ग्रंथादि की भाषा भी सूचित की गयी है तथा अनूदित ग्रंथादि के लिए 'अनुवाद' शब्द प्रयुक्त है। लेखकों आदि के परिचय के लिए तीनों खंडों के पृथक्-पृथक् परिशिष्ट-१ द्रष्टव्य हैं।

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/सम्पादक/प्रकाशक	भाषा
	अ	
अंगराज	आनन्द कुमार	हिन्दी
अंगुत्तरनिकाय	—	पालि
अंडर दि विलोज़ ऐंड अदर पोइम्स	जेम्स रसेल लावेल	अंग्रेज़ी
अंधेरे बंद कमरे	मोहन राकेश	हिन्दी
अंबरीष चरित्र	आदिभट्ल नारायणदासु	तेलुगु
अकबर	सुरेश मिश्र	हिन्दी
अकबरी दरबार के हिन्दी कवि	—	हिन्दी
अकाल अस्तुति	गुरु गोविन्दसिंह	पंजाबी
अक्ष्युपनिषद्	—	संस्कृत
अखंड हिन्दुस्थान	श्रीपाद दामोदर सातवलेकर	हिन्दी
अग्निपुराण	—	संस्कृत
अठारह सौ सत्तावन का स्वातंत्र्य-समर	विनायक दामोदर सावरकर	अनुवाद
अणिमा	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	हिन्दी
अतिमा	सुमित्रानंदन पंत	हिन्दी
अतीत के चलचित्र	महादेवी वर्मा	हिन्दी
अत्रि-संहिता	—	संस्कृत
अथर्ववेद	—	संस्कृत
अथर्वशिरोपनिषद्	—	संस्कृत

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
अद्यतन	अज्ञेय	हिन्दी
अद्वैत समाज	आनन्द शंकर माधवन्	अनुवाद
अधूरी क्रान्ति	डा० सम्पूर्णानन्द	हिन्दी
अध्यक्ष माओ त्से तुंग की रचनाओं के उद्धरण	माओ त्से तुंग	अनुवाद
अध्यात्म संकीर्तनमु	ताल्लपाक	तेलुगु
अध्यात्म पथप्रदर्शन	चिदानंद सरस्वती	अनुवाद
अध्यात्मोपनिषद्	—	संस्कृत
अनघ	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
अनर्घराघव	मुरारी	संस्कृत
अनामदास का पोथा	हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी
अनामिका	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	हिन्दी
अनुत्तराष्टिका	अभिनव गुप्त	संस्कृत
अनुराग बाँसुरी	नूर मुहम्मद	हिन्दी
अनुराग मंजरी	वियोगी हरि	हिन्दी
अनुराग रत्न	नाथूराम शर्मा 'शंकर'	हिन्दी
अनुराधा	शरत्‌चंद्र	अनुवाद
अनूप शर्मा : कृतियां और कला	सं० प्रेमनारायण टंडन	हिन्दी
अन्तस्तल	आचार्य चतुरसेन	हिन्दी
अन्नपूर्णोपनिषद्	—	संस्कृत
अपरा	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	हिन्दी
अपभ्रंश साहित्य	हरिवंश कोछड़	हिन्दी
अपराजित	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
अपरोक्षानुभूति	शंकराचार्य	संस्कृत
अपोलो ऐंड दि फ़्रेट्	राबर्ट ब्राउनिंग	अंग्रेजी
अभिज्ञानशाकुन्तल	कालिदास	संस्कृत
अभिधम्मपिटक	—	पालि
अभिनवभारती	अभिनवगुप्त	संस्कृत
अभिषेक नाटक	भास	संस्कृत
अमर आन	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	हिन्दी
अमरबेल	वृन्दावनलाल वर्मा	हिन्दी
अमर मंगल	पंचानन तर्करत्न	संस्कृत
अमरवाणी	आनन्दमयी मां	अनुवाद
अमर शहीद अशफ़ाक़उल्ला ख़ां	सं० बनारसीदास चतुर्वेदी	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
अमरुकशतक	अमरुक	संस्कृत
अमृत और विष	अमृतलाल नागर	हिन्दी
अमृत के घूंट	डा० रामचरण 'महेन्द्र'	हिन्दी
अमृतनादोपनिषद्	—	संस्कृत
अमृतबिंदूपनिषद्	—	संस्कृत
अमेलिया	हेनरी फ़ील्डिंग	अंग्रेज़ी
अरबी-काव्य-दर्शन	बाबू महेश प्रसाद साधु	हिन्दी
अरी ओ करुणा प्रभामय	अज्ञेय	हिन्दी
अर्थ	फ्रैंक टाउन्सहेंड	अंग्रेज़ी
अर्थशास्त्र	चाणक्य	संस्कृत
अलंकारसर्वस्व	राजानक रुय्यक	संस्कृत
अलका	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	हिन्दी
अलेक्जेंडर्स फ़ीस्ट	ड्राइडेन	अंग्रेज़ी
अविमारक	भास	संस्कृत
अवेस्ता	जरथुस्त्र	प्राचीन ईरानी
अशोक के फूल	हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी
अष्टांगहृदय	वाग्भट	संस्कृत
अष्टावक्रगीता	—	संस्कृत
असीनेरिया	प्लाटस	लैटिन

आ

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
आँख की किरकिरी	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अनुवाद
आंगिरस-स्मृति	—	संस्कृत
आंधी	जयशंकर प्रसाद	हिन्दी
आंसू	जयशंकरप्रसाद	हिन्दी
आंसू और मुस्कान	खलील जिब्रान	अनुवाद
आइडिल्स आफ़ दि किंग	टेनिसन	अंग्रेज़ी
आइन-ए-अकबरी	अबुलफ़ज़ल	अनुवाद
आइरिश मेलोडीज	टामस मूर	अंग्रेज़ी
आउटस्पोकिन एसेज	विलियम राल्फ़ इंगे	अंग्रेज़ी
आक के पत्ते	अमृता प्रीतम	अनुवाद
आक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी आफ़ क्वटेशंस	—	अंग्रेज़ी
आखिर मिलन	देवेन्द्रनाथ सेन	बंगला
आखिरी कलाम	जायसी	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
आचारांग	—	प्राकृत
आचारांगचूर्णि	—	प्राकृत
आज की उर्दू शायरी	—	हिन्दी
'आज के लोकप्रिय कवि' (ग्रंथमाला के अनेक कवि)	—	हिन्दी
आतशे गुल	'जिगर' मुरादाबादी	उर्दू
आत्मकथा	महात्मा गांधी	अनुवाद
आत्मकथा	बेविन्यूरो सेल्लिनो	अनुवाद
आत्मत्याग	लोचन प्रसाद पाण्डेय	हिन्दी
आत्मजयी	कुंवर नारायण	हिन्दी
आत्मपंचक	शंकराचार्य	संस्कृत
आत्मबोधोपनिषद्	—	संस्कृत
आद्य महाराष्ट्रीय हिन्दी कवि आचार्य दामोदर और उनकी कविता	—	हिन्दी हिन्दी
'आधुनिक कवि' (ग्रंथमाला के अनेक कवि)	—	हिन्दी
आधुनिक बोध	रामधारीसिंह 'दिनकर'	हिन्दी
आधुनिक संस्कृत-नाटक (१, २)	डा० रामजी उपाध्याय	हिन्दी
आन आर्ट ऐण्ड आर्टिस्ट्स	—	अंग्रेज़ी
आन ट्रांसलेटिंग होमेर	मैथ्यू आर्नोल्ड	अंग्रेज़ी
आन दि ईव	तुर्गनेव	अनुवाद
आन दि सब्लाइम ऐंड ब्युटिफ़ुल	एडमंड बर्क	अंग्रेज़ी
आन दि स्टडी आफ़ हिस्ट्री	विस्काउंट बोलिंगब्रोक	अंग्रेज़ी
आनन्द की पगडंडियां	जेम्स एलेन	अनुवाद
आनन्दमय जीवन	डा० रामचरण 'महेन्द्र'	हिन्दी
आनन्दलहरी	अप्पय दीक्षित	संस्कृत
आनन्दवृन्दावनचम्पू	कर्णपूर	संस्कृत
आन बेले	आइज़क डिज़रायली	अंग्रेज़ी
आन लिबर्टी	मिल	अंग्रेज़ी
आन हीरोज़, हीरोवर्शिप ऐंड हीरोइक इन हिस्ट्री	कार्लाइल	अंग्रेज़ी
आप्तनिश्चयालंकार	हेमचन्द्र सूरि	संस्कृत
'आब्ज़र्वर' पत्रिका	—	अंग्रेज़ी
आरती	श्यामनारायण पाण्डे	हिन्दी
आर्केडिज़	मिल्टन	अंग्रेज़ी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
आर्तत्राणपरायणाष्टक	शंकराचार्य	संस्कृत
आर्सपोइटिका	होरेस	लैटिन
आल फ़ार लव	ड्राइडेन	अंग्रेज़ी
आलवन्दार स्तोत्र	यामुनाचार्य	संस्कृत
आल्हखंड	जगनिक	हिन्दी
आवर्स आफ़ आइडिलनेस	बायरन	अंग्रेज़ी
आवश्यकनिर्युक्ति	आचार्य भद्रबाहु	प्राकृत
आवश्यकसूत्र	आचार्य भद्रबाहु	प्राकृत
आश्चर्यचूडामणि	शक्तिभद्र	संस्कृत
आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	हिन्दी
आसावरी	नीरज	हिन्दी
आस्था	सुमित्रानन्दन पंत	हिन्दी

इ

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
इंगलिश पोइट्स	एडीसन	अंग्रेज़ी
इंग्लिश बार्ड्स ऐंड स्काटिश रिव्युअर्स	बायरन	अंग्रेज़ी
इंट्रोडक्शन टू आर्यन रुल इन इंडिया	ई० बी० हैवेल	अंग्रेज़ी
'इंडियन ओपिनियन' पत्र (विविध अंक)	सं० महात्मा गांधी	अंग्रेज़ी
इंडिया इन ग्रीस	पोकाक	अंग्रेज़ी
इक्जियन इन हेविन	डिज़रायली	अंग्रेज़ी
इडीज़ ऐट सेंसेशन्स	एडमंड तथा जूल्स डि गोनकोर्ट	अंग्रेज़ी
इतस्ततः	जैनेन्द्र	हिन्दी
इतिवुत्तक	—	पालि
इन फ्रेंडली कैंडर	एडवर्ड वीक्स	अंग्रेज़ी
इन वुड्स आफ गाड रियलाइजेशन (विविध खंड)	स्वामी रामतीर्थ	अंग्रेज़ी
इन्दिरागांधी आन पीपुल्स ऐंड प्राब्लम्स	—	अंग्रेज़ी
इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये	अज्ञेय	हिन्दी
इन्फ़रनो	दांते	लैटिन
इमेजिनरी कनवर्सेशन्स	वाल्टर सेवेज लेंडर	अंग्रेज़ी
इरावती	जयशंकर प्रसाद	हिन्दी
इलेक्टिव ऐफ़िनिटीज़	गेटे	अनुवाद
इलेक्ट्रा	यूरिपिडीज़	यूनानी
इस विश्व की पहेली	श्री अरविन्द	अनुवाद

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
ऐंड्स ऐंड मीन्स	एल्डस हक्सले	अंग्रेज़ी
एंडिमियन	डिज़रायली	अंग्रेज़ी
एंडिमियन	कीट्स	अंग्रेज़ी
एक और नचिकेता	जी० शंकर कुरुप	अनुवाद
एक कटी हुई ज़िंदगी और कटा हुआ काग़ज	लक्ष्मीकांत वर्मा	हिन्दी
एक्ज़ेम्पिला एंटीथेटोरम	फ़्रांसिस बेकन	लैटिन
एक थी अनीता	अमृता प्रीतम	अनुवाद
एकदा नैमिषारण्ये	अमृतलाल नागर	हिन्दी
एकनाथ चरित्र	लक्ष्मण रामचंद्र पांगारकर	हिन्दी
एकनाथ व तुलसीदास	—	हिन्दी
एकनाथी भागवत	एकनाथ	मराठी
एक सूनी नाव	सर्वेश्वरदयाल सक्सेना	हिन्दी
एकात्म दर्शन	प्र० दीनदयाल शोध संस्थान, दिल्ली	हिन्दी
एकात्म मानववाद : एक अध्ययन	दत्तोपन्त ठेंगड़ी	हिन्दी
एकोत्तरशती	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	बँगला
एकलाग्स	वर्जिल	लैटिन
एगामेमनम	एस्किलस	यूनानी
ए ग्रामेरियन्स फ़्यूनरल	राबर्ट ब्राउनिंग	अंग्रेज़ी
एज्युकेशन फ़ार लेज़र	एस० आर० रंगनाथन	अंग्रेज़ी
एडम बीड	जार्ज इलियट	अंग्रेज़ी
एडमंड बर्क	विलियम लियोल बाउलन	अंग्रेज़ी
एडवांसमेंट आफ़ लर्निंग	फ़्रांसिस बेकन	अंग्रेज़ी
एडवाइस टू यंग ट्रेड्समैन	बेंजमिन फ्रैंकलिन	अंग्रेज़ी
एडविन मारिस	टेनिसन	अंग्रेज़ी
ए डिक्शनरी आफ दि इंग्लिश लैंग्वेज	डा० जानसन	अंग्रेज़ी
ए डिफ़ेंस आफ पोइट्री	शैले	अंग्रेज़ी
ए डेथ इन दि डिजर्ट	राबर्ट ब्राउनिंग	अंग्रेज़ी
ए डे ड्रीम	कालरिज	अंग्रेज़ी
एनीड	वर्जिल	लैटिन
एनेमीज़ आफ़ प्रामिज़	साइरिल कानोली	अंग्रेज़ी
एन्क्वायरी इन टू दि ओरिजिन आफ़ आवर आइडियाज़ आफ़ ब्यूटी ऐंड आर्ट	फ़्रांसिस हचेसन	अंग्रेज़ी
ए पापुलर डिक्शनरी आफ़ बुद्धिज़्म	क्रिस्मस हम्फ्रीज़	अंग्रेज़ी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
ओघनिर्युक्तिकभाष्य	—	प्राकृत
ओटक्कुरल	जी० शंकर कुरुप	अनुवाद
ओडिसी	होमर	यूनानी
ओड्स बुक	होरेस	लैटिन
ओथेलो	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
ओह् डेथ विल फ़ाइंड मी	रूपर्ट ब्रूक	अंग्रेज़ी

औ

औपपातिक सूत्र	—	प्राकृत

क

कंकाल	जयशंकर प्रसाद	हिन्दी
कंटेरिनी फ़्लेमिंग	डिज़रायली	अंग्रेज़ी
कंट्रीटाउन सेइंग्स	एडगर वाटसन होर्न	अंग्रेज़ी
कंडक्ट आफ लाइफ़	एमर्सन	अंग्रेज़ी
कंब रामायण	कम्ब	तमिल
कचनार	वृन्दावनलाल वर्मा	हिन्दी
कठरुद्रोपनिषद्	—	संस्कृत
कठोपनिषद्	—	संस्कृत
कथासरित्सागर	—	संस्कृत
कनवर्सेशंस विद् इगोर स्ट्राविन्स्की	—	अंग्रेज़ी
कनिंग्सवाई	डिज़रायली	अंग्रेज़ी
कपालकुंडला	बंकिमचन्द्र चटर्जी	अनुवाद
कबीर ग्रंथावली	प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	हिन्दी
कम ई डिस्कंटेंटमेंट	टामस मूर	अंग्रेज़ी
कमलाकान्त का पौधा	बंकिमचंद्र	अनुवाद
कम्पलीट पोइम्स	कार्ल सैंडबर्ग	अंग्रेज़ी
कम्युनिस्ट घोषणापत्र	मार्क्स	अंग्रेज़ी
करप्शन	टामस मूर	अंग्रेज़ी
करिए छिमा	शिवानी	हिन्दी
करुणा और दर्द के महाकवि 'अनीस' की श्रेष्ठ रचनाएं	—	हिन्दी
कर्णभार	भास	संस्कृत
कर्तव्य	सैमुअल स्माइल्स	अनुवाद

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
कर्तव्यदर्शन	साधु वेश में एक पथिक	हिन्दी
कर्पूरमंजरी	राजशेखर	प्राकृत
कर्मभूमि	प्रेमचंद	हिन्दी
कर्मयोग	अखंडानंद सरस्वती	हिन्दी
क़लम, तलवार और त्याग	प्रेमचंद	हिन्दी
कला और बूढ़ा चाँद	सुमित्रानंदन पंत	हिन्दी
कलापूर्णोदयमु	पिंगलि सूरना	तेलुगु
कलाविलास	क्षेमेन्द्र	संस्कृत
क्लेक्टिड एसेज़	हक्सले	अंग्रेज़ी
कल्चर ऐंड अनार्की	मैथ्यू आर्नोल्ड	अंग्रेज़ी
कल्पतरु	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
कल्पना	रांगेय राघव	हिन्दी
कल्पलता	हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी
कल्पवृक्ष	वासुदेवशरण अग्रवाल	हिन्दी
कल्याण-कुंज (विविध भाग)	शिव	हिन्दी
'कल्याण' मासिक के विविध विशेषांक— ईश्वरांक, उपनिषद् अंक, गीतांक, भक्ति अंक, भगवत्कृपा अंक, मानवता अंक, वेदान्तांक, संत अंक, संत-वाणी अंक, सदाचार अंक, साधनांक, हनुमान अंक, हिन्दू संस्कृति अंक इत्यादि।	प्र०—गीता प्रेस, गोरखपुर	हिन्दी
कल्याण मार्ग का पथिक	स्वामी श्रद्धानन्द	हिन्दी
कविकंठाभरण	क्षेमेन्द्र	संस्कृत
कवि की प्रेयसी	इलाचन्द्र जोशी	हिन्दी
कविता-कौमुदी (विविध खंड)	रामनरेश त्रिपाठी	हिन्दी
कवि तानसेन और उनका काव्य	नर्मदेश्वर चतुर्वेदी	हिन्दी
कवितावली	तुलसीदास	हिन्दी
कवि तोष और सुधानिधि	प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	हिन्दी
कवित्त रत्नाकर	सेनापति	हिन्दी
'कविश्री माला' (ग्रंथमाला के विविध कवि)	— प्र० राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा	अनुवाद
काश्मीरी भाषा और साहित्य	—	हिन्दी
कहनी अनकहनी	धर्मवीर भारती	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
कांक्वेस्ट आफ़ टैम्वरलेन	क्रिस्टोफ़र मार्लो	अंग्रेज़ी
कांट्रीब्युशन टू दि क्रिटिक आफ़ हेगेल्स फ़िलासफ़ी आफ़ राइट	मार्क्स	अंग्रेज़ी
काका हाथरसी अभिनंदन ग्रंथ	सं० डा० गिरिराज शरण अग्रवाल	हिन्दी
काठकगृह्यसूत्र	—	संस्कृत
कादम्बरी	वाणभट्ट	संस्कृत
कान्वर्सेशन	विलियम कोपर	अंग्रेज़ी
कावा और कर्बला	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
कामधेनुतंत्र	—	संस्कृत
कामनसेंस	टामस पेन	अंग्रेज़ी
कामन्दकीयनीतिसार	—	संस्कृत
कामायनी	जयशंकर प्रसाद	हिन्दी
कायनाते दिल	विश्वेश्वर प्रसाद 'मुनव्वर' लखनवी	उर्दू
कायाकल्प	प्रेमचंद	हिन्दी
कारवाँ-ए-वतन	तिलोकचन्द 'महरूम'	उर्दू
कारिका	नन्दिकेश्वर	संस्कृत
कालविजय	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
काव्य और कला तथा अन्य निवन्ध	जयशंकर प्रसाद	हिन्दी
काव्यनिर्णय	भिखारीदास	हिन्दी
काव्प्रकाश	मम्मट	संस्कृत
काव्यमीमांसा	राजशेखर	संस्कृत
काव्यादर्श	दंडी	संस्कृत
काव्यालंकार	भामह	संस्कृत
काव्यालंकारसूत्र	वामन	संस्कृत
काशीपंचक	शंकराचार्य	संस्कृत
किंग आर्थर	ड्राइडेन	अंग्रेजी
क्रांतिकारी चिट्ठियां	विनायक दामोदर सावरकर	अनुवाद
किंग जान	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
किंग रिचर्ड थर्ड	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
किंग रिचर्ड सेकंड	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
किंग लियर	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
किंग हेनरी एर्थ	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
किंग हेनरी फ़िफ्थ	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
किंग हेनरी फ़ोर्थ (१, २)	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
किंग हेनरी सिक्स्थ (१, २, ३)	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
किप्स	हरबर्ट जार्ज वेल्स	अंग्रेज़ी
किरणवीणा	सुमित्रानंदन पंत	हिन्दी
किरातार्जुनीय	भारवि	हिन्दी
कीप दि फ़ेथ बेबी	एडम क्लेटन पावेल	अंग्रेज़ी
कुकुरमुत्ता	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	हिन्दी
कुछ	पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी	हिन्दी
कुछ पुरानी चिट्ठियां	जवाहरलाल नेहरू	हिन्दी
कुछ विचार	प्रेमचंद	हिन्दी
कुटज	हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी
कुन्दमाला	दिङ्नाग	संस्कृत
कुमारसंभव	कालिदास	संस्कृत
कुमारसंभवमु	नन्नेचोड्डु	तेलुगु
कुरान मजीद	प्र० मकतबा अल् हसनात, रामपुर	अरबी
कुरुक्षेत्र	रामधारीसिंह 'दिनकर'	हिन्दी
कुलार्णवतंत्र	—	संस्कृत
कुल्लियाते-अकबर	—	उर्दू
कुल्लियाते-ज़फ़र	—	उर्दू
कुल्लियाते जिगर	'जिगर' मुरादाबादी	उर्दू
कुल्लियाते 'फ़ानी'	'फ़ानी' बदायूनी	उर्दू
कुशकुमुदवतीय नाटक	अतिरात्रयाजी	संस्कृत
कर्मपुराण	—	संस्कृत
कृत्यकल्पतरु	—	संस्कृत
कृष्ण	राममनोहर लोहिया	हिन्दी
कृष्णकली	शिवानी	हिन्दी
कृष्णचरित	बंकिमचन्द्र	अनुवाद
कृष्णायन	द्वारिका प्रसाद मिश्र	हिन्दी
कृष्णोपनिषद्	—	संस्कृत
केटो	एडीसन	अंग्रेज़ी
केनोपनिषद्	—	संस्कृत
कैंटरबरी टेल्स	चासर	अंग्रेजी
कैरेक्टर्स	ज्यां दि ला ब्रूयरे	अनुवाद
कैरेक्टरिस्टिक्स	हैज़लिट	अंग्रेज़ी
कैवल्योपनिषद्	—	संस्कृत

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
कोरियोलेनस	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
'कोशूर समाचार' पत्रिका के विशेषांक	दिल्ली से प्रकाशित	कश्मीरी-हिन्दी-अंग्रेज़ी
क़ौमी डंका और स्वदेशी खादी	—	हिन्दी
कौषीतकि ब्राह्मण	—	संस्कृत
क्योंकि मैं उसे जानता हूं	अज्ञेय	हिन्दी
क्रांति का उद्घोष (१, २)	लाला हरदयाल	हिन्दी
क्रांतिकारी ऋषि कार्ल मार्क्स	विनायक दामोदर सावरकर	अनुवाद
क्रांतिकारी चिट्ठियाँ	विनायक दामोदर सावरकर	अनुवाद
क्रिएटिव यूनिटी	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अंग्रेज़ी
क्रिएटिव स्प्रिट्स आफ़ दि नाइटीन्थ सेंचुरी	जार्ज ब्राडीज़	अंग्रेज़ी
क्रिश्चियन मारल्स	सर टामस ब्राउन	अंग्रेज़ी
क्वटेंशस इन हिस्ट्री	एलेन तथा वेरोनिका पामर	अंग्रेज़ी
क्वीन माव	शैले	अंग्रेज़ी
'क्वोट' मैगज़ीन	अमरीका से प्रकाशित	अंग्रेज़ी
क्षत्रचूडामणि	वादीभसिंह	संस्कृत
क्षुरिकोपनिषद्	—	संस्कृत

ख

खादी	महात्मा गांधी	हिन्दी
खुद्दक पाठ	—	पालि
खुसरो की हिंदी कविता	सं० ब्रजरत्नदास	हिन्दी

ग

गंग कवित्त	प्र० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	हिन्दी
गंगाष्टक	कालिदास	संस्कृत
गजेन्द्रमोक्षमु	आदिभट्ल नारायणदासु	तेलुगु
गढ़कुंडार	वृंदावनलाल वर्मा	हिन्दी
गणपतिस्तव	—	संस्कृत
ग़बन	प्रेमचंद	हिन्दी
गरुड़ध्वज	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
गरुड़पुराण	—	संस्कृत
गर्गसंहिता	—	संस्कृत
गवाह नं० ३	विमल मित्र	अनुवाद
गांधी वाणी	सं० रामनाथ 'सुमन'	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	ले क/संपादक/प्रकाशक	भाषा
गांधी विचार रत्न	—	हिन्दी
गाड ऐंड डिवाइन इनकार्नेशंस	स्वामी रामकृष्णानंद	अंग्रेज़ी
गाथा-संवत्सरी	सुतीक्ष्ण मुनि उदासीन	हिन्दी
गाथा सप्तशती (गाहा सत्तसई)	हाल सातवाहन	संस्कृत-प्राकृत
ग़ालिब-उग्र	पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	हिन्दी
गीतगोविंद	जयदेव	संस्कृत
गीतहंस	सुमित्रानंदन पंत	हिन्दी
गीता	वेदव्यास कृत महाभारत का अंश	संस्कृत
गीताभाष्य	शंकराचार्य	संस्कृत
गीता में श्रीकृष्ण का परिचय और उपदेश	अक्षयकुमार वंद्योपाध्याय	अनुवाद
गीतांजलि	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	बँगला
गीता का भक्तियोग	स्वामी रामसुखदास	हिन्दी
गीता-प्रबन्ध	श्री अरविंद	अनुवाद
गीता-प्रवचन	विनोवा भावे	अनुवाद
गीतावली	तुलसीदास	हिन्दी
गीतिका	सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला'	हिन्दी
गुप्तधन (१, २)	प्रेमचंद	हिन्दी
गुरुकुल	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
गुरु ग्रंथ साहव	—	पंजावी तथा हिन्दी
गुरु तेगवहादुर की वाणी	—	पंजावी तथा हिंदी
गुरु नानक रचनावली	प्र०—पंजाव सरकार	हिन्दी
गुलिस्तां	शेख सादी	फारसी
गुले नग़मा	'फ़िराक़' गोरखपुरी	उर्दू
गृहदाह	शरत्‌चन्द्र चट्टोपाध्याय	अनुवाद
गेटेज़ वर्क्स	कार्लाइल	अंग्रेज़ी
गेरोय नाशेवो व्रेमेनी	लैरमेंतोव	रूसी
गोदान	प्रेमचंद	हिन्दी
गोपथ ब्राह्मण	—	संस्कृत
गोपालचम्पू	जीवगोस्वामी	संस्कृत
गोरखबानी	गोरखनाथ	हिन्दी
गोरा	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अनुवाद
गोविन्दवैभव	भट्ट मथुरानाथ शास्त्री	संस्कृत
गौडवहो	वाक्पतिराज	प्राकृत

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
	घ	
घनानंद कवित्त	—	हिन्दी
घेरंड संहिता	—	संस्कृत
	च	
चंडकौशिक नाटक	क्षेमीश्वर	संस्कृत
चंडीचरित्रोक्तिविलास	गुरु गोविन्दसिंह	हिन्दी
चक्रवाल	रामधारीसिंह 'दिनकर'	हिन्दी
चक्रव्यूह	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
चतुरी चमार	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	हिन्दी
चतुर्दिक्	शिवप्रसाद सिंह	हिन्दी
चतुर्वर्गसंग्रह	क्षेमेन्द्र	संस्कृत
चन्दनवन	अमृतलाल नागर	हिन्दी
चन्द्रगुप्त	जयशंकर प्रसाद	हिन्दी
चन्द्रगुप्त मौर्य	रामखेलावन वर्मा	हिन्दी
चन्द्रशेखर	वंकिमचन्द्र	अनुवाद
चरकसंहिता	—	संस्कृत
चरणदास जी की वानी	प्र० वेल्वेडियर प्रेस, इलाहाबाद	हिन्दी
चरित्रकोश	द्वारिकाप्रसाद शर्मा चतुर्वेदी	हिन्दी
चरित्रहीन	शरत्चन्द्र	अनुवाद
चरियापिटक	—	पालि
चर्पटपंजरिकास्तोत्र	शंकराचार्य	संस्कृत
चलते-चलते	विमलमित्र	अनुवाद
चांगदेव पासष्टी	ज्ञानेश्वर	मराठी
चांदायन	दाऊद	हिन्दी
चांस ऐक्वेंटेसेज	कोलेट	अंग्रेजी
चाइल्ड हेराल्ड्स पिल्ग्रिमेज	बायरन	अंग्रेजी
चाणक्यनीति	चाणक्य	संस्कृत
चाणक्यसारसंग्रह	चाणक्य	संस्कृत
चाणक्यसूत्राणि	चाणक्य	संस्कृत
चारु चन्द्रलेख	हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी
चारुचर्या	क्षेमेन्द्र	संस्कृत
चारुदत्त	भास	संस्कृत

ग्रंथ पत्र-पत्रिका रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
चारुमित्रा	रामकुमार वर्मा	हिन्दी
चार्टिज्म	टामस कार्लाइल	अंग्रेजी
चार्ल्स [illegible]	[illegible]	अंग्रेजी
चिन्तामणि (१, २)	रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी
चिट्ठी-पत्री	प्रेमचन्द	हिन्दी
चित्रकूट	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
चित्ररेखा	जायसी	हिन्दी
चित्रलेखा	भगवतीचरण वर्मा	हिन्दी
चित्र हरिश्चन्द्रीयमु	वेङ्कटलक्ष्मी नरसिंहम्	तेलुगु
चिता	मोहनलाल द्विवेदी	हिन्दी
चित्रावली	उस्मान	हिन्दी
चिन्तनविलास	स्वामी मुक्तानन्द	हिन्दी
चिद्विलास	सम्पूर्णानन्द	हिन्दी
चुल्ल निद्देसपालि	—	पालि
चेम्बर्स बायोग्राफिकल डिक्शनरी	—	अंग्रेजी
चैतन्यचन्द्रोदय नाटक	कर्णपूर	संस्कृत
चैरिटी	विलियम कौपर	अंग्रेजी
चोखे चौपदे	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	हिन्दी

छ

छान्दोग्योपनिषद्	—	संस्कृत
छाया	जयशंकरप्रसाद	हिन्दी
छायावाद: पुनर्मूल्यांकन	सुमित्रानन्दन पंत	हिन्दी
छुट्टी	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अनुवाद

ज

जंबूस्वामिचरिउ	वीरकवि	अपभ्रंश
जगद्गुरु	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
जपुजी	गुरु नानकदेव	पंजाबी
ज़फ़र की गज़लें	बहादुरशाह ज़फ़र	उर्दू
ज़फ़रनामा	गुरु गोविन्दसिंह	फारसी
ज़ब्तशुदा नज़्में	—	हिन्दी
जमाल दोहावली	प्र० पुस्तक सदन, ज्ञानवापी, वाराणसी	हिन्दी
जय हिन्दम्	पंजाब सरकार	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
जय भारत	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
जय वर्धमान	रामकुमार वर्मा	हिन्दी
जय हनुमान	श्यामनारायण पाण्डेय	हिन्दी
जर्नल्स (विविध वर्ष)	एमर्सन	अंग्रेज़ी
जर्मन साहित्य का इतिहास	वर्नर पाउल फ्रीडरिख़	अनुवाद
जवाहरलाल नेहरू के भाषण	जवाहरलाल नेहरू	हिन्दी
जसहर चरिउ	पुष्पदंत	अपभ्रंश
जहाज़ का पंछी	इलाचन्द्र जोशी	हिन्दी
जातक (१-६)	हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग	अनुवाद
जान ओ लन्दन्स ट्रेज़रट्रोव	विलियम रास वालेस	अंग्रेजी
जापानी कविताएं	सं. डॉ. सत्य भूषण वर्मा	हिन्दी
जावालदर्शनोपनिषद्	—	संस्कृत
जावालिस्मृति	—	संस्कृत
जाबालोपनिषद्	—	संस्कृत
जामे सुरूर	मुंशी दुर्गासहाय 'सुरूर' जहानावादी	उर्दू
जायसी ग्रन्थावली	सं० रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी
जार्ज मेरेडिथ	प्रीस्टले	अंग्रेजी
ज़िंदगी मुस्कराई	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	हिन्दी
ज़िगर की शायरी	'जिगर' मुरादाबादी	हिन्दी
जिएँ तो ऐसे जिएँ	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	हिन्दी
जीवन की राहों पर	मैक्सिम गोर्की	अनुवाद
जीवनदर्शन	एक संत	हिन्दी
जीवनयोग	विमला ठकार	हिन्दी
जीवन-सन्देश	ख़लील जिब्रान	अनुवाद
जीवन-साहित्य	काका कालेलकर	हिन्दी
जूलियस सीज़र	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
जैकुला प्रुडेशियन	जार्ज हर्बर्ट	अंग्रेज़ी / लैटिन
जेबकतरे	अमृता प्रीतम	अनुवाद
जेरुसलम	विलियम ब्लैक	अंग्रेज़ी
जैमिनीयोपनिषद्	—	संस्कृत
जोगी मत जा	विमल मित्र	अनुवाद
जोसेफ एंड्रयूज़	हेनरी फ़ील्डिंग	अंग्रेज़ी
जौहर	श्यामनारायण पाण्डेय	हिन्दी
ज्ञानेश्वरी	ज्ञानदेव	मराठी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/सम्पादक/प्रकाशक	भाषा
ज्यार्जिक्स	वर्जिल	लैटिन
	झ	
झरना	जयशंकर प्रसाद	हिन्दी
झांसी की रानी	सुभद्राकुमारी चौहान	हिन्दी
झांसी की रानी लक्ष्मीबाई	वृन्दावनलाल वर्मा	हिन्दी
झूठा सच	यशपाल	हिन्दी
	ट	
'टाइम' पत्रिका	इग्लैंड से प्रकाशित	अंग्रेजी
टाइमन आफ एथेन्स	शेक्सपियर	अंग्रेजी
टाइम्स एंड्रोनिक्स	—	अंग्रेजी
टाइरैनिक लव	ड्राइडेन	अंग्रेज़ी
टाक्स एंड टाकर्स	रावर्ट लुई स्टीवेंसन	अंग्रेजी
टू ए लेडी विद सम मैनस्क्रिप्ट पोइम्स	टामस मूर	अंग्रेज़ी
टेन्योर आफ़ किंग्स ऐंड मैजिस्ट्रेट्स	मिल्टन	अंग्रेजी
टेविल टाक वाइ दि लेट एलिया	चार्ल्स लैम्ब	अंग्रेजी
टेमिंग आफ दि श्रियु	शेक्सपियर	अंग्रेजी
टैंक्रेड	डिजरायली	अंग्रेज़ी
ट्राई ऐंड ट्राई अगेन	विलियम एडवर्ड हिक्सन	अंग्रेजी
ट्रायलस ऐंड क्रोसिडा	शेक्सपियर	अंग्रेजी
ट्रायोलेट	रावर्ट व्रिजिज़	अंग्रेज़ी
ट्रेडिशन एंड दि इंडिविजुअल टैलेंट	टी० एस० इलियट	अंग्रेज़ी
ट्रेवेल्यन	जार्ज मैकाले	अनुवाद
ट्रैजिक सेंस आफ़ लाइफ़	मिगेल दि यूनामुनो	अंग्रेज़ी
ट्वेल्फ़्थ नाइट	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
	ठ	
ठेले पर हिमालय	धर्मवीर भारती	हिन्दी
	ड	
डान जुयान	वायरन	अंग्रेज़ी
डान जुयान	मोलियर	फ्रांसीसी
डा० हेडगेवार	नारायण हरि पालकर	अनुवाद
डिक्शनरी आफ़ दि इंगलिश लैंग्वेज	डा० जानसन	अंग्रेज़ी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/सम्पादक/प्रकाशक	भाषा
डि लिटेरिस, सिलैबिस	टेरेंटियनस मारस	लैटिन
डिसकवरीज़	बेन जानसन	अंग्रेजी
डिसर्टेशन्स ऐंड डिस्कशन्स	मिल	अंग्रेज़ी
डिस्कोर्सिज़	जान एडम्स	अंग्रेज़ी
डिस्टिक्स	जान हे	अंग्रेज़ी
डिस्ट्रस्ट	एला विलकाक्स	अंग्रेज़ी
डि प्रिंसिपिस	ओरिजेन	लैटिन
डी आगमेंटिस साइंटियरम	फ्रांसिस बेकन	लैटिन
डूम्सडे आवर	सर विलियम अलेक्जेंडर	अंग्रेजी
डेनियल डेरोंडा	जार्ज इलियट	अंग्रेजी
डेस्टिनी आफ़ सिविलिज़ेशन	राधाकमल मुखर्जी	अंग्रेज़ी
ड्यूटी	सैमुअल स्माइल्स	अंग्रेज़ी

ढ

ढोला मारूरा दूहा	—	राजस्थानी

ण

णामपंचमी कहा	.	अपभ्रंश

त

तंत्राख्यायिका	—	संस्कृत
तत्त्वप्रकाश	बनादास	हिन्दी
तत्त्वकथा	एक महात्मा	हिन्दी
तत्त्वचिंतन के कुछ क्षण	स्वामी अशोकानन्द	हिन्दी
तत्त्वार्थसूत्रम्	उमास्वाति	संस्कृत
तपस्विनी	गंगाधर मेहेर	उड़िया
तरंगिणी	किशोरीदास वाजपेयी	हिन्दी
तराना आज़ाद	कुँवर प्रतापचन्द्र आज़ाद	उर्दू
तरुणों का विद्रोह	शरत्चन्द्र	अनुवाद
तल्ख़ियां	साहिर लुधियानवी	उर्दू
तांड्य ब्राह्मण	—	संस्कृत
तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि	म. म. गोपीनाथ कविराज	हिन्दी
तापसवत्सराज	मायुराज	संस्कृत
तारकवध	गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश'	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक,सम्पादक/प्रकाशक	भाषा
तारसप्तक	सं० अज्ञेय	हिन्दी
तितली	जयशंकर प्रसाद	हिन्दी
तिरुक्कुरल	तिरुवल्लुवर	अनुवाद
तिलकमंजरी	धनपाल	संस्कृत
तीर तरंग	जानकीवल्लभ शास्त्री	हिन्दी
तीर्थ प्रकाश	--	संस्कृत
तीसरा सप्तक	सं० अज्ञेय	हिन्दी
तुकाराम अभंग गाथा	तुकाराम	मराठी
तुकाराम एवं कबीर : एक तुलनात्मक अध्ययन	डा० (श्रीमती) रमेश सेठ	हिन्दी
तुमुल	श्यामनारायण पाण्डेय	हिन्दी
तुम्हारे लिए	हिमांशु जोशी	हिन्दी
तुलसी अष्टक	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	हिन्दी
तुलसीदास	चन्द्रबली पाण्डेय	हिन्दी
तुलसीदास आज के सन्दर्भ में	डा० युगेश्वर	हिन्दी
तेजोबिन्दुपनिषद्	—	संस्कृत
तैत्तिरीय ब्राह्मण	—	संस्कृत
तैतिरीयोपनिषद्	—	सस्कृत
'त्यागभूमि' पत्रिका	—	हिन्दी
त्रिकाल संध्या	भवानी प्रसाद मिश्र	हिन्दी
त्रिवेणी	रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी
त्रिशंकु	अज्ञेय	हिन्दी

थ

थाट पावर	शिवानन्द	अंग्रेजी
थेर गाथा	—	पालि
थेरी गाथा	—	पालि

द

दक्षस्मृति	—	संस्कृत
दत्ता	शरत्चन्द्र	अनुवाद
दमयंती	ताराचंद हारीत	हिन्दी
दम्पति वाक्य विलास	गुपाल-कवि	हिन्दी
दयाराम सतसई	दयाराम	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/सम्पादक/प्रकाशक	भाषा
दर्पदलन	क्षेमेन्द्र	संस्कृत
दशकुमारचरित	दंडी	संस्कृत
दशवैकालिक	—	प्राकृत
दशवैकालिकचूर्णि	—	प्राकृत
दशवैकालिकनिर्युक्ति	—	प्राकृत
दशाश्वमेध .	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
दश स्पोक जरथुस्त्र	नीत्शे	अनुवाद
दासबोध	समर्थ रामदास	मराठी
दि अनक्वाइट ग्रेव	साइरिल कोनोली	अंग्रेज़ी
दि आइडियलिस्ट व्यू आफ़ लाइफ	डा० राधाकृष्णन्	अंग्रेज़ी
दि आइलैंड	फ्रांसिस व्यूमाँ तथा जान फ़्लेचर	अंग्रेज़ी
दि इडिल्स आफ दि किंग	टेनिसन	अंग्रेजी
दि आपरा	कार्लाइल	अंग्रेज़ी
दि आर्डील आफ़ चेंज	एरिक हाफर	अंग्रेज़ी
दि आर्डील आफ़ रिचर्ड फ़ेवेरेल	जार्ज मेरेडिथ	अंग्रेज़ी
दि इंटरनेशनल डिक्शनरी आफ थाट्स	सं० ब्रेडले, डेनियल व जोन्स	अंग्रेज़ी
दि इन ऐल्बम	राबर्ट ब्राउनिंग	अंग्रेज़ी
दि इमीटेशन आफ़ क्राइस्ट	टामस ए० केम्पिस	अंग्रेज़ी
दि एथिकल फ़िलासफ़ी आफ़ गीता	पी० एन० श्रीनिवासाचार्य	अंग्रेज़ी
दि एम्स आफ़ एज्यूकेशन	ए० एन० ह्वाइटहेड	अंग्रेज़ी
दि एनाटामी आफ मेलंकोली	राबर्ट बर्टन	अंग्रेज़ी
दि ऐनिवर्सरी	जान डान	अंग्रेज़ी
दि ओपिन डोर	हेलेन केलर	अंग्रेज़ी
दि कंडक्ट आफ़ लाइफ़	एमर्सन	अंग्रेज़ी
दि कमेडी आफ एरर्स	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
दि कांक्वेस्ट आफ हैपीनेस	बर्ट्रेंड रसेल	अंग्रेजी
दि कास्मिक आर्ट आफ़ इंडिया	राधाकमल मुखर्जी	अंग्रेज़ी
दि किंग आफ दि डार्क चेम्बर	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अंग्रेज़ी
दि कैक्सटंस	एडवर्ड जार्ज बुलकर लिटन	अंग्रेज़ी
दि कोर्सेयर	बायरन	अंग्रेज़ी
दि क्राउन ऐंड ग्लोरी आफ़ क्रिश्चियनिटी	टामस ब्रुक्स	अंग्रेज़ी
दि क्वोटेबिल रिचर्ड निक्सन	अमरीकी प्रकाशन	अंग्रेज़ी
दि क्वोटेबिल ह्यूबर्ट हम्फ़्री	अमरीकी प्रकाशन	अंग्रेज़ी
दि गार्डेन आफ़ प्रासपीन	ए० सी० स्विनबर्न	अंग्रेजी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/सम्पादक/प्रकाशक	भाषा
दि गार्डनर	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अंग्रेजी
दि गार्डियन	एडीसन	अंग्रेज़ी
दि गार्डेन आफ़ साइरस	सर टामस ब्राउन	अंग्रेज़ी
दि गुडनेचर्ड मैन	ओलिवर गोल्डस्मिथ	अंग्रेज़ी
दि चिल्ड्रेन्स सांग	रडयार्ड किप्लिंग	अंग्रेजी
दि जान पेडागाग	जार्ज आर्नोल्ड	अंग्रेज़ी
दि जेंटिलमैन अशर	जार्ज चैपमैन	अंग्रेज़ी
दि टर्वर कार्निवाल	—	अंग्रेज़ी
दि टाइटिल	ई० ए० बेनेट	अंग्रेज़ी
दि टाइम आई हैव लास्ट	टामस मूर	अंग्रेजी
दि टू जेंटिलमैन आफ़ वेरोना	शेक्सपियर	अंग्रेजी
दि टेम्पेस्ट	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
दि टैटलर	सर रिचर्ड स्टील	अंग्रेज़ी
दि ट्रैवलर	ओलिवर गोल्डस्मिथ	अंग्रेजी
दि ट्रेविल डायरी आफ़ ए फ़िलासफ़र	काउंट हरमान कीजरलिंग	अंग्रेज़ी
दि डविल गैलेंट	कोल्ले सिवर	अंग्रेज़ी
दि डविल डीलर	विलियम कान्ग्रीव	अंग्रेज़ी
दि डाक्टर्स डिलेमा	जार्ज बर्नार्ड शा	अंग्रेज़ी
दि डाक्ट्रीन आफ़ पैसिव रेसिस्टेंस	श्री अरविंद	अंग्रेज़ी
दि तेलियरैंड पेरीगोर्ड	अलेक्ज़ेंडर	अंग्रेजी
दिनकर की सूक्तियां	रामधारीसिंह 'दिनकर'	हिन्दी
दि नीड फ़ार रूट्स	साइमन वील	अंग्रेज़ी
दि न्यू इकोनामिक मेनेस टू इंडिया	विपिनचन्द्र पाल	अंग्रेज़ी
दि न्यूयार्क आइडिया	लैंगडन मिचेल	अंग्रेज़ी
दि पासिंग आफ़ आर्थर	टेनिसन	अंग्रेज़ी
दि पिटी आफ़ लव	यीट्स	अंग्रेज़ी
दि पेंग्विन कम्पेनियन टू लिटरेचर	—	अंग्रेजी
दि पैशनेट पिल्ग्रिम	शेक्सपियर	अंग्रेजी
दि पैशनेट स्टेट आफ़ माइंड	एरिक हाफ़र	अंग्रेज़ी
दि प्राग्रेस आफ़ एरर	विलियम कापर	अंग्रेज़ी
दि प्रिंसिपल उपनिषद्स	डा० राधाकृष्णन्	अंग्रेजी
दि प्रिंसेस	टेनिसन	अंग्रेज़ी
दि प्रिल्यूड	वर्ड्सवर्थ	अंग्रेज़ी
दि प्रोफ़ेटेस	फ़्रांसिस ब्यूमां तथा जान फ़्लेचर	अंग्रेज़ी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/सम्पादक/प्रकाशक	भाषा
दि फ़िलासफ़ी ऑफ़ सर्वेपल्लि राधाकृष्णन्	डा० राधाकृष्णन्	अंग्रेजी
दि फ़ेविल्स	ला फांटेन	अंग्रेज़ी
दि फ़ेमिली रियूनियन	टी० एस० इलियट	अंग्रेज़ी
दि फ़ेयरी क्वीन	एडमंड स्पेंसर	अंग्रेज़ी
दि फ़्युचर	मैथ्यू आर्नोल्ड	अंग्रेज़ी
दि फ़्रैंच रेवोल्यूशन	कार्लाइल	अंग्रेज़ी
दि वरीड लाइफ़	मैथ्यू आर्नोल्ड	अंग्रेज़ी
दि बाइबिल इन इंडिया	एम० लुई जैकोलियट	अंग्रेज़ी
दि बांडमैन	फ़िलिप मैसिंजर	अंग्रेज़ी
दि बी	ओलिवर गोल्डस्मिथ	अंग्रेज़ी
दि वी	टामस ओसहार्ट मोरंडा	अंग्रेज़ी
दि ब्राइड आफ़ एबिडोस	वायरन	अंग्रेज़ी
दि मर्चेंट आफ़ वेनिस	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
दि मिडसमर नाइट्स ड्रीम	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
दि मिल आन दि फ़्लास	जार्ज इलियट	अंग्रेज़ी
दि मेड आफ़ दि मिल	आइजक विकरस्टाफ	अंग्रेज़ी
दि मेल्टिंग पाट	इसरायल जैंगविन	अंग्रेज़ी
दि मैचमेकर	थार्नस वाइल्डर	अंग्रेज़ी
दि मैन आफ़ डेस्टिनी	जार्ज वर्नाड शा	अंग्रेज़ी
दि मैरिज आफ़ हेविन ऐंड हेल	विलियम ब्लैक	अंग्रेज़ी
दि यंग ड्यूक	डिजरायली	अंग्रेजी
दि राइट्स आफ़ मैन	टामस पेन	अंग्रेज़ी
दि रायवल लेडीज़	ड्राइडेन	अंग्रेज़ी
दि रिविजिटेशन	टामस हार्डी	अंग्रेज़ी
दि रीडर्स एन्साइक्लोपीडिया	वेनेट	अंग्रेज़ी
दि रेक्रूटिंग आफ़ीसर	जार्ज फर्क्युहर	अंग्रेजी
दि रैम्बलर	डा० जानसन	अंग्रेज़ी
दि रोवर	अफ़रा बेन	अंग्रेज़ी
दि लवर्स प्रॉग्रेस	फ्रांसिस ब्यूमां तथा जान फ्लेचर	अंग्रेज़ी
दि लवर्स वाच फ़ोर ओक्लाक	अफरा बेन	अंग्रेज़ी
दि लाइफ़ आफ़ रियजन	जार्ज सांतायना	अंग्रेज़ी
दि लाइफ़ ब्युटिफ़ुल	साधु वास्वानी	अंग्रेज़ी
दि लास्ट राइड टूगेदर	राबर्ट ब्राउनिंग	अंग्रेजी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/सम्पादक/प्रकाशक	भाषा
दि लैकॉन	चार्ल्स केलेब काल्टन	अंग्रेजी
दिवंगत हिंदी-सेवी (१, २)	क्षेमचंद्र 'सुमन'	हिन्दी
दि विंटर्स टैब	शेक्सपियर	अंग्रेजी
दि विंड ओवर दि चिमनी	लाँगफ़ेले	अंग्रेजी
दि विकार आफ़ वेकफ़ील्ड	ओलिवर गोल्डस्मिथ	अंग्रेज़ी
दि विडोज़ टियर्स	जार्ज चैपमैन	अंग्रेज़ी
दि विनर्स	रुडयार्ड किपलिंग	अंग्रेजी
दि विल टू पावर	नीत्शे	अनुवाद
दि वुड्स आफ़ वेस्टरमेन	जार्ज मेरेडिथ	अंग्रेज़ी
दि वे आफ़ दि वर्ल्ड	व्हीलर	अंग्रेज़ी
दि वैली आफ़ फ़ियर	सर आर्थर कानन डॉयल	अंग्रेजी
दिव्य जीवन	अरविन्द	अनुवाद
दिव्या	यशपाल	हिन्दी
दिव्योपदेश	स्वामी शिवानंद	हिन्दी
दि शोइंग अप आफ़ ब्लैंको पॉसनेट	जार्ज बर्नार्ड शा	अंग्रेजी
दि समिंग अप	सामरसेट माम	अंग्रेज़ी
दि सिनिक्स वर्ड बुक	एम्ब्रोज़े बियर्स	अंग्रेज़ी
दि सेकंड मिसेज़ टैंक्वरे	सर आर्थर विंग पिनेरो	अंग्रेजी
दि सोर्ड	जे० माइकेल बैरी	अंग्रेजी
दि सोल आफ़ मैन अंडर सोशल्ज़िम	आस्कर वाइल्ड	अंग्रेजी
दि स्कूल मास्टर	रोगर ऐस्कम	अंग्रेज़ी
दि स्टडी आफ़ पोइट्री	मैथ्यू आर्नोल्ड	अंग्रेज़ी
दि स्टीवेंसन विट	एडलाई स्टोवेंसन	अंग्रेज़ी
दि स्टोरी आफ़ सिविलाइजेशन : आवर ओरिएंटल हेरिटेज	विलियम ड्युरेंट	अंग्रेज़ी
दि स्पेक्टेटर	एडीसन	अंग्रेज़ी
दि हाइंड ऐंड दि पैंथर	ड्राइडेन	अंग्रेज़ी
दि हायर पैन्थीज़्म	टेनिसन	अंग्रेजी
दि होली स्टेट ऐंड दि प्रोफ़ेन स्टेट	टामस फ़ुलर	अंग्रेजी
दीघनिकाय	—	पालि
दीनदयालगिरि ग्रन्थावली	दीनदयाल गिरि	हिन्दी
दीपशिखा	महादेवी वर्मा	हिन्दी
दीवान (पहला व दूसरा)	मीर	उर्दू
दीवान	ग़ालिब	उर्दू

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
दीवान	हाफ़िज़	फ़ारसी
दुर्गास्तोत्र	श्री अरविन्द	अनुवाद
दुर्गेशनन्दिनी	वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय	अनुवाद
दूतघटोत्कच	भास	संस्कृत
दूतवाक्य	भास	संस्कृत
दूसरा सप्तक	सं० अज्ञेय	हिन्दी
देवदास	शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय	अनुवाद
देवशतक	देव	हिन्दी
देवी चौधरानी	वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय	अनुवाद
देवीभागवत पुराण	—	संस्कृत
दोहावली	तुलसीदास	हिन्दी
द्वयोपनिषद्	—	संस्कृत
द्वात्रिंशिका	दे० सिंहासन द्वात्रिंशिका	संस्कृत
द्विपदभारतमु	एलकुचि वालसरस्वती	तेलुगु
द्वापर	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
द्विसंधान महाकाव्य (राघवपांडवीयम्)	धनंजय	संस्कृत

ध

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
धम्मपद	—	पालि
धरती का हृदय	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
धरती के देवता	ख़लील जिब्रान	अनुवाद
धरनीदास जी की वानी	धरनीदास	हिन्दी
धर्म और संस्कृति	डॉ० राधाकृष्णन्	अनुवाद
धर्म और समाज	डॉ० राधाकृष्णन्	अनुवाद
धर्म पर एक दृष्टि	राममनोहर लोहिया	हिन्दी
धर्मबोध	भवानीश कवि	तेलुगु
धर्मयुद्ध	यशपाल	हिन्दी
धार्मिक मतें	लोकमान्य तिलक	मराठी
ध्यानबिन्दूपनिषद्	—	संस्कृत
ध्रुपद के पद	तानसेन	हिन्दी
ध्रुवस्वामिनी	—	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
	न	
नन्ददास-ग्रंथावली	—	हिन्दी
नन्दीसूत्रचूर्णि	—	प्राकृत
नई कविता	नंददुलारे वाजपेयी	हिंदी
'नकूश' पत्रिका, लाहौर	लाहौर (पाकिस्तान) से प्रकाशित	उर्दू
नये सुभाषित	रामधारीसिंह 'दिनकर'	हिन्दी
नरसिंह पुराण	—	संस्कृत
नलचरित्र नाटक	नीलकंठ	संस्कृत
नलविलास	रामचन्द्र	संस्कृत
'नवजीवन' पत्र	महात्मा गांधी	हिन्दी
नवविधान (बाइबिल अथवा न्यू टेस्टा-मेंट)	—	अनुवाद
नवसाहसांकचरित	परिमलपद्मगुप्त	संस्कृत
नहुष	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
नागानंद	हर्ष	संस्कृत
नाट्यदर्पण	रामचन्द्र गुणचन्द्र	संस्कृत
नादबिन्दूपनिषद्	—	संस्कृत
नामघोषा	माधवदेव	असमिया
नारद की वीणा	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
नारदपंचरात्र	—	संस्कृत
नारदपरिव्राजकोपनिषद्	—	संस्कृत
नारदपुराण	—	संस्कृत
नारायण उपनिषद्	—	संस्कृत
नारी	जानकीवल्लभ शास्त्री	हिन्दी
नारी का मूल्य	शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय	अनुवाद
नारी तेरे रूप अनेक	सं० डा० रमेशचन्द्र गुप्त	हिन्दी
नारी मुक्ति लेख संग्रह	लेनिन	अनुवाद
निकोमैकियन एथिक्स	अरस्तू	अनुवाद
निर्धारशतक	अक्षर अनन्य	हिन्दी
निर्वाणषट्क	शंकराचार्य	संस्कृत
निशा-निमंत्रण	हरिवंशराय बच्चन	हिन्दी
निशीथचूर्णिभाष्य	संघदासगणि क्षमाश्रमण	प्राकृत
नीतिद्विषष्टिका	सुन्दरपाण्ड्य	संस्कृत

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
नीतिधर्म	महात्मा गांधी	हिन्दी
नीतिवाक्यामृत	सोमदेव सूरि	संस्कृत
नीतिशतक	भर्तृहरि	संस्कृत
नीहार	महादेवी वर्मा	हिन्दी
नृसिंहचम्पू	दैवज्ञ पंडित सूर्य	संस्कृत
नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद्	—	संस्कृत
नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषद्	—	संस्कृत
नेचर ऐंड लाइफ़	ए० एन० व्हाइटहेड	अंग्रेज़ी
नेताजी सुभाष के विशेष पत्र	सं० शंकर सुल्तानपुरी	अनुवाद
नेहरू : व्यक्ति और विचार	प्रका० सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली	हिन्दी
नैवेद्य	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अनुवाद
नैषधीयचरित	श्रीहर्ष	संस्कृत
नोटबुक्स	सैमुअल बटलर	अंग्रेज़ी
नोट्स ऐट पैंशीज़	अलफ़्रेड कापू	अंग्रेज़ी
नोट्स टुडवर्ड्स दि डेफ़िनिशन आफ़ कल्चर	टी० एस० इलियट	अंग्रेज़ी
नोमोलोजिया	टामस फ़ुलर	लैटिन
नोस्ट्रोमो	जोसेफ़ कानरेड	अंग्रेज़ी
न्याय का संघर्ष	यशपाल	हिन्दी
न्यायसूत्र	गौतम ऋषि	संस्कृत
'न्यू साइंटिस्ट' पत्रिका	अमरीकी प्रकाशन	अंग्रेज़ी

प

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
पंचतंत्र	विष्णु शर्मा	संस्कृत
पंचदशी	विद्यारण्य स्वामी	संस्कृत
पंचरात्र	भास	संस्कृत
पंचस्तवी		संस्कृत
पंडित दीनदयाल उपाध्याय : व्यक्ति-दर्शन	प्र० दीनदयाल शोध संस्थान, दिल्ली	हिन्दी
पउमचरिउ	स्वयंभूदेव	अपभ्रंश
पक्षी और आकाश	रांगेय राघव	हिन्दी
पतझर	सुमित्रानंदन पंत	हिन्दी
पत्रकारिता के अनुभव	मुकुटबिहारीलाल वर्मा	हिन्दी
पत्र रूप श्री गुरूजी	—	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
पत्रावली	सुभाषचन्द्र बसु	हिन्दी
पथ का गीत	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अनुवाद
पथ का प्रभाव	लाओ त्स	अनुवाद
पथिक	रामनरेश त्रिपाठी	हिन्दी
पद्मपुराण	—	संस्कृत
पब्लिक स्कूल वर्स	जान मेसफ़ील्ड	अंग्रेज़ी
परख	जैनेन्द्र	हिन्दी
परमपूजनीय डा० केशव बलीराम हेडगेवार	—	हिन्दी
परमप्पयासु	योगीन्द्र	अपभ्रंश
परम सखा मृत्यु	काका कालेलकर	हिन्दी
परमानंद सागर	परमानंद	हिन्दी
परमार्थ के पथ में	साधुवेष में एक पथिक	हिन्दी
परम्परा बंधन नहीं	विद्यानिवास मिश्र	हिन्दी
परशुराम की प्रतीक्षा	रामधारीसिंह दिनकर	हिन्दी
परशुराम सागर	परशुराम	हिन्दी
परस्त्री	विमल मित्र	अनुवाद
परिक्रमा	महादेवी वर्मा	हिन्दी
परिमल	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	हिन्दी
पर्सपेक्टिव्स	अलेक्जेंडर चेज	अंग्रेजी
पलटू साहब की बानी	प्र० बेल्वेडियर प्रेस, प्रयाग	हिन्दी
पलनाटि वीर चरित्रमु	श्रीनाथ	तेलुगु
पलाशवन	नरेन्द्र शर्मा	हिन्दी
पल्लव	सुमित्रानन्दन पंत	हिन्दी
पहला राजा	जगदीशचन्द्र माथुर	हिन्दी
पाँच गधे	रांगेय राघव	हिन्दी
पांडवगीता	—	संस्कृत
पातंजल योगदर्शन	हरिहरानंद आरण्य	अनुवाद
पादताडितकम्	—	संस्कृत
पानपबोध	पानपदास	हिन्दी
पाम्पे दि ग्रेट	जान मेसफ़ील्ड	अंग्रेज़ी
पारिजातहरण	कर्णपूर	संस्कृत
पार्वतीपरिणय	बाणभट्ट	संस्कृत
पालामॉन ऐंड आरकाइट	ड्राइडेन	अंग्रेज़ी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
पालिटिक्स	अरस्तू	अनुवाद
पावक स्फुलिंग	विमला ठकार	हिन्दी
पास्ट ऐंड प्रेज़ेंट	कार्लाइल	अंग्रेज़ी
पाहुड दोहा	मुनि रामसिंह	अपभ्रंश
पिलिग्रम्स प्राग्रेस	जान बनयन	अंग्रेज़ी
पुअर रिचर्ड्स आल्मनैक	बेंजमिन फ्रैंकलिन	अंग्रेज़ी
पुनर्नवा	हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी
पुराणांडाक	वल्लत्तोल नारायण मेनन	मलयालम
रसरतन	पुहकर	हिन्दी
पूर्व विधान (ओल्ड टेस्टामेंट)	—	अनुवाद
पूर्वा	अज्ञेय	हिन्दी
पृथिवीपुत्र	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
पेंग्विन्स इंटरनेशनल थेसॉरस आफ़ क्वटेशंस	—	अंग्रेज़ी
पेंग्विन्स डिक्शनरी आफ़ क्वटेशंस	—	अंग्रेज़ी
पेंग्विन्स डिक्शनरी आफ़ माडर्न क्वटेशंस	—	अंग्रेज़ी
पेतवत्थु	—	पालि
पेन्शीज़	ब्लेज़ पैस्कल	अंग्रेज़ी
पेरिक्लीज़	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
पेशेंट ग्रिस्सेल	टामस डेक्कर	अंग्रेज़ी
पैंगलोपनिषद्	—	संस्कृत
पैक अप योर ट्रबिल्स इन योर ओल्ड किटबैग	जार्ज आसफ़ —	अंग्रेज़ी
पैराडाइज़ लास्ट	मिल्टन	अंग्रेज़ी
पैलेमन ऐंड आर्काइट	ड्राइडेन	अंग्रेज़ी
पोइटिक्स	अरस्तू	अनुवाद
पोलिटिकल एसेज़	हैज़लिट	अंग्रेज़ी
पोलिटिकल टेस्टामेंट	कार्डिनल रिशेल्यु	अंग्रेज़ी
पौलस्त्यवध	लक्ष्मण सूरि	संस्कृत
प्रणवोपनिषद्	—	संस्कृत
प्रताप' दैनिक पत्र	सं. गणेशशंकर विद्यार्थी	हिन्दी
प्रतापनारायण ग्रंथावली	प्रतापनारायण मिश्र	हिन्दी
प्रतिज्ञा	प्रेमचंद	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
प्रतिज्ञायौगन्धरायण	भास	संस्कृत
प्रतिमानाटक	भास	संस्कृत
प्रतिशोध	रामकुमार वर्मा	हिन्दी
प्रतिशोध	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	हिन्दी
प्रतिहिंसा	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अनुवाद
प्रथम प्रतिश्रुति	आशापूर्णा देवी	अयुवाद
प्रबन्ध-प्रतिमा	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	हिन्दी
प्रबन्ध-पद्म	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	हिन्दी
प्रबोधचन्द्रोदय	श्रीकृष्ण मिश्र	संस्कृत
प्रभावती प्रद्युम्न	पिंगलि सूरन्ना	तेलुगु
प्रभुदेव वचनामृत	—	कन्नड़
प्रश्नव्याकरणसूत्र	—	प्राकृत
प्रशान्तरत्नाकर नाटक	कालीपद (काश्यप कवि)	संस्कृत
प्रश्नोत्तरी	शंकराचार्य	संस्कृत
प्रश्नोपनिषद्	—	संस्कृत
प्रसन्नराघव	जयदेव	संस्कृत
प्राकृतपैंगल	—	अपभ्रंश
प्राकृत साहित्य का इतिहास	जगदीशचन्द्र जैन	हिन्दी
प्राचीन साहित्य	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अनुवाद
प्राच्य धर्म और पाश्चात्य विचार	डा० राधाकृष्णन्	अनुवाद
प्रामिथ्युज़ अनवाउंड	शैले	अंग्रेज़ी
प्रामिथ्युज़ बाउंड	एस्किलस	यूनानी
प्रार्थना-प्रवचन (विविध खंड)	महात्मा गांधी	हिन्दी
प्रास्पिके	राबर्ट ब्राउनिंग	अंग्रेज़ी
प्रिंसिपिल्स आफ़ सोश्योलाजी	ई० ए० रास	अंग्रेज़ी
प्रियदर्शिका	हर्ष	संस्कृत
प्रियप्रवास	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	हिन्दी
प्रेज़ेंट प्राब्लम्स आफ़ अल्जबरा ऐंड अनालिसिस	एच० मैशके	अंग्रेज़ी
प्रेत और छाया	इलाचन्द्र जोशी	हिन्दी
प्रेमनी पीड़ा	दयाराम	गुजराती
प्रेमपथिक	जयशंकर प्रसाद	हिन्दी
प्रेम-माधुरी	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	हिन्दी
प्रेम-मालिका	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
प्रेमवाटिका	रसखान	हिन्दी
प्रेम-सरोवर	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	हिन्दी
प्रेमाश्रय	प्रेमचन्द	हिन्दी
प्लेन टेल्स फ़ाम दि हिल्स	रडयार्ड किपलिंग	अंग्रेजी
फ		
फ़ंक्शन्स आफ़ दि क्रिटिसिज्म ऐट प्रेज़ेंट टाइम	मैथ्यू आर्नोल्ड	अंग्रेज़ी
फ़ंडामेंटल्स आफ़ इंडियन आर्ट	सुरेन्द्रनाथ दास गुप्ता	अंग्रेजी
फ़ाइर फ़्लाइज़	रवीन्द्र नाथ ठाकुर	अंग्रेज़ी
फ़ाउस्ट	गेटे	अनुवाद
फ़ार्म क्वार्टर्ली	चेस्टर चार्ल्स	अंग्रेज़ी
फ़ालोइंग दि इक्वेटर	मार्क ट्वेन	अंग्रेज़ी
फ़िलासफ़ी आफ़ हिस्ट्री	हेगेल	अनुवाद
फ़िलासफ़िकल डिक्शनरी	वाल्त्येर	अनुवाद
फ़ुल एम्प्लायमेंट इन फ़ुल सोसायटी	लार्ड वेवेरिज	अंग्रेज़ी
फेरि मिलिबो	अनूप शर्मा	हिन्दी
फ़ोमा गोरदयेव	मैक्सिम गोर्की	अनुवाद
फ़ेल्टी	ओगडन नैश	अंग्रेज़ी
ब		
बँगला साहित्य दर्शन	मन्मथनाथ गुप्त	हिन्दी
बज़्मे ज़िंदगी रंगे शायरी	'फ़िराक़' गोरखपुरी	उर्दू
बटोही	ख़लील जिब्रान	अनुवाद
बड़ी बहन	शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय	अनुवाद
बन्धन	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	हिन्दी
बहार दानिश	इनायत अल अल्लाह	फ़ारसी
बह्वृचोपनिषद्	—	संस्कृत
बाँगे-दरा	इक़बाल	उर्दू
बाडी, बूट्स ऐंड ब्रिचिज़	एच० डब्ल्यू० थामसन	अंग्रेज़ी
बाणभट्ट की आत्मकथा	हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी
बापू	सियारामशरण गुप्त	हिन्दी
बापू के आशीर्वाद	—	हिन्दी
बापू के पत्र जमनालाल बजाज के नाम	—	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
वायोग्राफ़िया लिटरेरिया	कालरिज	अंग्रेज़ी
वायोग्राफ़ी	कार्लाइल	अंग्रेज़ी
वालचरित	भास	संस्कृत
वालरामायण	राजशेखर	संस्कृत
वालवोध	वल्लभाचार्य	संस्कृत
वालिवध	श्यामनारायण पांडे	हिन्दी
वालिगौंदु नविके	डी०वी० गुंडप्पा	कन्नड़
विखरे मोती	सुभद्राकुमारी चौहान	हिन्दी
विशप व्लोग्राम्स एपोलाजी	रावर्ट व्राउनिंग	अंग्रेज़ी
विहारी की सतसई	पद्मसिंह शर्मा	हिन्दी
विहारी सतसई	विहारी	हिन्दी
वुक आफ़ थेल	विलियम व्लैक	अंग्रेज़ी
वुद्धचरित	अश्वघोष	संस्कृत
वुधजन सतसई	वुधजन	हिन्दी
वुल्ला साहव का शव्दसार	प्र० वेल्वेडियर प्रेस, इलाहावाद	हिन्दी
वूंद और समुद्र	अमृतलाल नागर	हिन्दी
वृहत्कल्पभाष्य	—	प्राकृत
वृहदारण्यकोपनिषद्	—	संस्कृत
वृहस्पतिनीतिसार	—	संस्कृत
वेढव की वहक	'वेढव' वनारसी	हिन्दी
वेन्हम्स वुक आफ क्वटेशंस	वेन्हम	अंग्रेज़ी
वेला	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	हिन्दी
वैक टु मेथुसेला	जार्ज वर्नार्ड शा	अंग्रेज़ी
वोधपाहुड	आचार्य भद्रवाहु	प्राकृत
वोधिचर्यावतार	—	संस्कृत
वौधायन धर्मसूत्र	—	संस्कृत
वौद्धचर्यापद्धति	भदन्त वोधानन्द महास्थविर	हिन्दी
व्रह्मविन्दूपनिषद्	—	संस्कृत
व्रह्मविद्योपनिषद्	—	संस्कृत
व्रह्मविलास	भैया भगवतीदास	हिन्दी
व्रह्मवैवर्तपुराण	—	संस्कृत
व्रह्मांडपुराण	—	संस्कृत
व्रह्मोत्तरपुराण	श्रीधर मल्ले	तेलुगु
व्रह्मोपनिषद	—	संस्कृत

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
	भ	
भक्तचरित्र	अल्लसानि पेद्दना	तेलुगु
भक्तमाल	नाभादास	हिन्दी
भक्तिरसायन	मधुसूदन सरस्वती	संस्कृत
भक्तिसुधा (प्रथम व द्वितीय खंड)	करपात्रीजी (स्वामी हरिहरानंद सरस्वती)	हिन्दी
भगवती आराधना	--	प्राकृत
भगवती सूत्र	—	प्राकृत
भगवन्नामकौमुदी	लक्ष्मीधर	संस्कृत
भगवान परशुराम	कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी	अनुवाद
भट्ट निबन्धावली	बालकृष्ण भट्ट	हिन्दी
भट्टिकाव्य	भट्टि	संस्कृत
भद्राचल रामचरित्रमु	श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री	तेलुगु
भवन्ती	अज्ञेय	हिन्दी
भवानी मंदिर	श्री अरविन्द	अनुवाद
भविसयत्त कहा	धनपाल	अपभ्रंश
भाई जी : पावन स्मरण	—	हिन्दी
भागवत धर्म	विनोबा	हिन्दी
भागवत धर्म मीमांसा	विनोबा	हिन्दी
भागवत पुराण	—	संस्कृत
भागवतमु	पोतन्ना	तेलुगु
भारत (इंडिया) ऐज़ सीन बाई फ़ोरेनर्स	बाबा साहब देशपांडे	अंग्रेज़ी
भारत की अंतरात्मा	डा० राधाकृष्णन्	अनुवाद
भारत की भक्त नारियां	व्यथित हृदय	हिन्दी
भारत के प्राणाचार्य	रत्नाकर शास्त्री	हिन्दी
भारत-भारती	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
भारतमंजरी	क्षेमेन्द्र	संस्कृत
भारत में अंग्रेज़ी राज	सुन्दरलाल	हिन्दी
भारत-विभाजन के अपराधी	राममनोहर लोहिया	हिन्दी
भारतीय अर्थनीति : विकास की एक दिशा	दीनदयाल उपाध्याय	हिन्दी
भारतीय कविता (१९५३)	प्र० साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
भारतीय कविता (१९५६-५७)	प्र० साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली	हिन्दी
भारतीय कहावत संग्रह (१,२)	सं० विश्वनाथ नरवणे	हिन्दी
भारतीय प्राचीन लिपिमाला	गौरीशंकर हीराचंद ओझा	हिन्दी
भारतीय संस्कृति	साने गुरुजी	हिन्दी
भारतीय संस्कृति और शुद्धि	प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	हिन्दी
भारतीय संस्कृति के आधार	श्री अरविन्द	अनुवाद
भारतीय समाज-जीवन और आदर्श	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अनुवाद
भारतीय साहित्य कोश	सं० डा० नगेन्द्र	हिन्दी
भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका	डा० नगेन्द्र	हिन्दी
भारतेन्दु ग्रन्थावली	—	हिन्दी
भारतेन्दु नाटकावली	सं० ब्रजरत्नदास	हिन्दी
भावप्रकाश	—	संस्कृत
भावविलास	देव	हिन्दी
भावी कविता	श्री अरविन्द	अनुवाद
भाषा और समाज	डा० रामविलास शर्मा	हिन्दी
'भाषा' त्रैमासिक (विविध अंक)	राजकीय प्रकाशन, दिल्ली	हिन्दी
भास्कर रामायणमु	अय्यलार्यडु	तेलुगु
भास्करशतकम्	मारन वेंकटय्या	तेलुगु
भिखारिणी	विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'	हिन्दी
भीखा साहब की बानी	प्र० वेल्वेडियर प्रेस, इलाहाबाद	हिन्दी
भूषण-ग्रन्थावली	—	हिन्दी
भोजप्रबन्ध	बल्लाल	संस्कृत
भ्रमरगीत	नन्ददास	हिन्दी

म

मंगलप्रभात	महात्मा गांधी	अनुवाद
मंजीर	गिरिजाकुमार माथुर	हिन्दी
मंडलब्रह्मोपनिषद्	—	संस्कृत
मच एडो एबाउट नथिंग	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
मछली मरी हुई	राजकमल चौधरी	हिन्दी
मतिराम ग्रन्थावली	मतिराम	हिन्दी
मत्स्यपुराण	—	संस्कृत
मदर कारेज	बर्टोल्ट ब्रेख़्त	अंग्रेज़ी
मधुज्वाल	सुमित्रानंदन पंत	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
मधुवाला	हरिवंशराय वच्चन	हिन्दी
मधुमालती	मंझन	हिन्दी
मध्यकालीन संस्कृत नाटक (१, २, ३)	डा० रामजी उपाध्याय	हिन्दी
मध्यमव्यायोग	भास	संस्कृत
मनसिछ्या	ध्रुवदास	हिन्दी
मनुस्मृति	—	संस्कृत
मनोनुरंजन नाटक	अनन्तदेव	संस्कृत
मरण समाधि	—	प्राकृत
मलमासतत्त्व	—	संस्कृत
मलयालम साहित्य का इतिहास	प्र० साहित्य अकादमी, दिल्ली	हिन्दी
मलूकदास की वानी	प्र० वेल्वेडियर प्रेस, इलाहावाद	हिन्दी
मसलानामा	जायसी	हिन्दी
महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय	हिन्दी
महात्मा वनादास : जीवनी और साहित्य	डा० भगवतीप्रसाद सिंह	हिन्दी
महादेव भाई की डायरी	—	अनुवाद
महानिद्देसपालि	—	पालि
महानिर्वाणतंत्र	—	संस्कृत
महाभारत	वेदव्यास	संस्कृत
महाभारतनिर्णय	आनंदतीर्थ	संस्कृत
महाभाष्य	पतंजलि	संस्कृत
महायात्रा (१,२)	रांगेय राघव	हिन्दी
महायोगी श्री अरविन्द	डा० श्याम वहादुर वर्मा	हिन्दी
महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश	डा० श्रीधर व्यं० केतकर	मराठी
महावीरचरित	भवभूति	संस्कृत
महावीर-वाणी	प्र० सर्व सेवा संघ प्रकाशन	हिन्दी
महासुभाषितसंग्रह (विविध खंड)	लुडविक स्टर्नवाख़	संस्कृत-अंग्रेजी
महिममयभारत नाटक	यतीन्द्र विमल चौधरी	संस्कृत
महोपनिषद्	—	अनुवाद
माँ	मैक्सिम गोर्की	अनुवाद
मांडूक्योपनिषद्	—	संस्कृत
माई अर्ली लाइफ़	विंस्टन चर्चिल	अंग्रेज़ी
माटी हो गई सोना	कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
माधवजी सिंधिया	वृन्दावनलाल वर्मा	हिन्दी
माधवस्वातंत्र्य	गोपीनाथ दाधीच	सस्कृत
मानवी	ठाकुर गोपालशरण सिंह	हिन्दी
मानस का हंस	अमृतलाल नागर	हिन्दी
मानसरोवर (विविध भाग)	प्रेमचंद	हिन्दी
मानसी	रामनरेश त्रिपाठी	हिन्दी
मानसोल्लास	सोमेश्वर तथा भूलोकमल्ल	संस्कृत
मारल मैक्जिम्स	जार्ज वाशिंगटन	अंग्रेज़ी
मार्कण्डेय पुराण	—	संस्कृत
मार्कण्डेय स्मृति	—	संस्कृत
मालतीमाधव	भवभूति	संस्कृत
मालविकाग्निमित्र	कालिदास	संस्कृत
मालवीय जी के लेख	—	हिन्दी
मिलन	रामनरेश त्रिपाठी	हिन्दी
मिलिन्द प्रश्न	—	पालि
मिवारप्रताप नाटक	हरिदास सिद्धान्तवागीश	संस्कृत
मिसेलेनियस मैक्जिम्स ऐंड ओपिनियन्स	नीत्शे	अनुवाद
मीर तक़ी 'मीर' और उनकी शायरी	प्र० राजपाल एण्ड संस, दिल्ली	हिन्दी
मीरा-पदावली	—	हिन्दी
मीरा बहन के पत्र	महात्मा गांधी	हिन्दी
मुंडकोपनिषद्	—	संस्कृत
मुकुल	सुभद्राकुमारी चौहान	हिन्दी
मुक्त द्वार	हेलेन केलर	अनुवाद
मुक्तिकोपनिषद्	—	संस्कृत
मुक्तिसोपान	स्वामी श्रद्धानंद	हिन्दी
मुग्धोपदेश	जल्हण	संस्कृत
मुत्यालू सरालु	गुजराडा अप्पाराव	तेलुगु
मुद्गलोपनिषद्	—	संस्कृत
मुद्राराक्षस	विशाखदत्त	संस्कृत
मुर्दों का टीला	रांगेय राघव	हिन्दी
मृच्छकटिक	शूद्रक	संस्कृत
मृणालिनी	वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय	अनुवाद
मेघदूत	कालिदास	संस्कृत
मेघदूत एक अनुचिंतन	श्री रंजन सूरिदेव	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
मेघदूत एक पुरानी कहानी	हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी
मेज़र फ़ार मेज़र	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
मेजर वारवेरा	जार्ज वर्नार्ड शा	अंग्रेज़ी
मेटाफ़िज़िक्स	अरस्तू	यूनानी
मेडिटेशन्स	मारकस ओरिलियस	अनुवाद
मेधावी	रांगेय राघव	हिन्दी
मेन ऐंड वीमैन	रावर्ट व्राउनिंग	अंग्रेज़ी
मेमोरीज़ आफ़ न्यूटन (२)	व्रयुस्टर	अंग्रेज़ी
मेरी जीवनयात्रा (विविध भाग)	राहुल सांकृत्यायन	हिन्दी
मेरे अन्तर	गजानन माधव मुक्तिवोध	हिन्दी
मेरे अन्त समय के विचार	भाई परमानन्द	हिन्दी
मेरे विचार	प्रेमचन्द	हिन्दी
मेरे सपनों का भारत	महात्मा गांधी	हिन्दी
मेरोपी	मैथ्यू आर्नोल्ड	अंग्रेज़ी
मैं इनका ऋणी हूँ	इन्द्र विद्यावाचस्पति	हिन्दी
मैं और तुम	'वेढव' वनारसी	हिन्दी
मैं कौन हूँ	रमण महर्षि	अनुवाद
मैं या हम	विश्वनाथ लिमये	हिन्दी
मैकवेथ	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
मैक्ज़िम्स	ला रोशेफ़ूकाल्ड	अंग्रेज़ी
मैत्रेयी उपनिषद्	—	संस्कृत
आनमैथिमेटिक्स ऐंड मैथिमेटीशियन्स	डैमोलिन्स वोर्डास	अंग्रेज़ी
मैन ऐंड सुपरमैन	जार्ज वर्नार्ड शा	अंग्रेज़ी
मोनोस्टर	मेनांडर	यूनानी
मोर इन ऐंगर	मेरिया मेन्स	अंग्रेज़ी
मोस्कावस्की स्त्रोरनिक	कांस्तेन्तिन पौवेदोनोस्तसेव	रूसी
मोहन माला	महात्मा गांधी	हिन्दी
मोहमुद्गर	शंकराचार्य	संस्कृत

य

'यंग इंडिया' पत्र	सं० महात्मा गांधी	अंग्रेज़ी
यजुर्वेद	—	संस्कृत
यरवदा के अनुभव	महात्मा गांधी	अनुवाद
याज्ञवल्क्य-स्मृति	—	संस्कृत

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
यामा	महादेवी वर्मा	हिन्दी
युगांत	सुमित्रानंदन पंत	हिन्दी
युगानुकूल हिंदू जीवन-दृष्टि	काका कालेलकर	हिन्दी
युगाधार	सोहनलाल द्विवेदी	हिन्दी
योगकुंडल्युपनिषद्	—	हिन्दी
योगचूडामणि उपनिषद्	—	संस्कृत
योगतत्वोपनिषद्	—	संस्कृत
योगवासिष्ठ	—	संस्कृत
योगसार	योगीन्द्र	अपभ्रंश
योगसूत्र	पतंजलि	संस्कृत
योगामृत	मुनि बालचन्द्र	कन्नड़

र

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
रंगनाथ रामायण	गोनबुद्धा रेड्डि	तेलुगु
रंगभूमि	प्रेमचन्द	हिन्दी
रंग में भग	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
रंभामंजरी	नयराज	संस्कृत
रक्तचन्दन	नरेन्द्र शर्मा	हिन्दी
रघुवंश	कालिदास	संस्कृत
रत्नावली	हर्ष	संस्कृत
रत्नावली	सं० पं० सीताराम चतुर्वेदी	हिन्दी
रजनी	वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय	अनुवाद
रवीन्द्र-दर्शन	डा० राधाकृष्णन्	अनुवाद
रवीन्द्रनाथ के निवन्ध	रवींद्रनाथ ठाकुर	अनुवाद
रवीन्द्र साहित्य (विविध भाग)	अनु० धन्यकुमार जैन	अनुवाद
रश्मि	महादेवी वर्मा	हिन्दी
रश्मिरथी	रामधारीसिंह 'दिनकर'	हिन्दी
रश्मिरेखा	वालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	हिन्दी
रस आखेटक	कुवेरनाथ राय	हिन्दी
रसखान-ग्रंथावली	—	हिन्दी
रसतरंगिणी	भानुदत्त	संस्कृत
रसमंजरी	नन्ददास	हिन्दी
रसमीमांसा	रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी
रसरतन	पुहकर	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
रसवन्ती	रामधारी सिंह 'दिनकर'	हिन्दी
रससागर	'साग़र' निज़ामी	हिन्दी
रहिमन विलास	रहीम	हिन्दी
रहीम दोहावली	रहीम	हिन्दी
रहीम रत्नावली	रहीम	हिन्दी
राउन्ड टेबिल	हैज़लिट	अंग्रेज़ी
राग भैरव	विमल मित्र	अनुवाद
राघवपांडवीय (द्विसंधान महाकाव्य)	धनंजय	संस्कृत
राजतरंगिणी	कल्हण	संस्कृत
राजयोग	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
राजस्थानी भाषा और साहित्य	सं० मोतीलाल मेनारिया	हिन्दी
राजाज़ीज़ स्पीचिज़	—	अंग्रेज़ी
राजा प्रजा	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
राजिया रा दूहा	कृपाराम	राजस्थानी
राज़ोनियाज़	राजबहादुर वर्मा 'राज़'	हिन्दी
राज्यश्री	जयशंकर प्रसाद	हिन्दी
राधास्वामी मत	अगमप्रसाद माथुर	हिन्दी
रामकृष्णलीलाप्रसंग	स्वामी सारदानंद	अनुवाद
रामचन्द्रिका	केशवदास	हिन्दी
रामचरित	अभिनंद	संस्कृत
रामचरितमानस	तुलसीदास	हिन्दी
रामतीर्थ-ग्रंथावली (विविध खंड)	—	हिन्दी
रामदास स्पीक्स (विविध खंड)	स्वामी रामदास	अंग्रेज़ी
रामदासु चरित्र	रामदास	तेलुगु
रामलिंगेश शतकम्	अडिदमु सूरकवि	तेलुगु
रामहृदय	स्वामी रामतीर्थ	हिन्दी
रामायण	वाल्मीकि	संस्कृत
रामावतार शर्मा निबंधावलि	प्र० बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना	हिन्दी
रासपंचाध्यायी सुबोधिनीकारिका	—	संस्कृत
राह न रुकी	रांगेय राघव	हिन्दी
रिफ़्लेक्शन अपान एक्ज़ाइल	विस्काउंट बोलिंगब्रोक	अंग्रेज़ी
रिलीजन आफ़ ऐन आर्टिस्ट	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अंग्रेज़ी
रिलीजस क्वटेशंस	—	अंग्रेज़ी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
रिशेलियु	एडवर्ड जार्ज बुलवर	अंग्रेज़ी
रिप्रेज़ेंटेटिव मेन	एमर्सन	अंग्रेज़ी
रीडर्स डाइजेस्ट (विविध अंक)	अमरीकी प्रकाशन	अंग्रेज़ी
रीडिंग, राइटिंग ऐंड रिमेम्बरिंग	लूकास	अंग्रेज़ी
रुक्मिणी मंगल	नन्ददास	हिन्दी
रुक्मिणी हरण	वत्सराज	संस्कृत
रुक्मिणी हरण	हरिदास सिद्धान्तवागीश	संस्कृत
रुद्रहृदयोपनिषद्	—	संस्कृत
रुबाइयात	उमर ख़ैयाम	फ़ारसी
रूपमंजरी	नंददास	हिन्दी
रूसी साहित्य का इतिहास	वीर राजेन्द्र 'ऋषि'	हिन्दी
रेत का वृन्दावन	आशापूर्णा देवी	अनुवाद
रेसिलारु	डा० जानसन	अंग्रेज़ी
रैदासजी की बानी	प्र० वेल्वेडियर प्रेस, इलाहाबाद	हिन्दी
रेलिजियो मेडिसी	सर टामस ब्राउन	लैटिन
र्‌हेसस	यूरि पेडीज़	यूनानी

ल

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
ल' एवेरो	मोलियर	फ़्रांसीसी
लक्ष्मीलहरी	पंडितराज जगन्नाथ	सस्कृत
लघुवाक्यवृत्ति	शंकराचार्य	संस्कृत
लता सुहागिन	शांतिप्रिय द्विवेदी	हिन्दी
ललितमाधव नाटक	रूपगोस्वामी	संस्कृत
ललित विक्रम	वृन्दावनलाल वर्मा	हिन्दी
लल्लवाख	लल्लेश्वरी	कश्मीरी
लव	कालरिज	अंग्रेज़ी
लव्स लेवर्स लास्ट	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
लव्स विदाउट रियज़न	अलेक्जेंडर ब्रोम	अंग्रेज़ी
लहर	जयशंकर प्रसाद	हिन्दी
लहर और लपटें	सतीश बहादुर वर्मा	हिन्दी
लांगमैन्स कम्पेनियन टू ट्वेंटियथ सेंचुरी लिटरेचर	—	अंग्रेज़ी
ला आर्ट पोइटिक	निकोलस बोइलो	फ़्रांसीसी
लाइफ़ आफ जानसन	बॉसवेल	अंग्रेज़ी
लाइफ आफ नेथेनियल हाथार्न	हेनरी जेम्स	अंग्रेज़ी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
लाइफ़ ऐंड लेटर्स आफ एरास्मस	जेम्स एंथोनी फ्राउड	अंग्रेज़ी
'लाइफ़' पत्रिका	अमरीका से प्रकाशित	अंग्रेज़ी
लाइफ़ ब्युटिफ़ुल	साधु वास्वानी	अंग्रेजी
लाइट	फ्रांसिस विलियम	अंग्रेज़ी
लाइव्स आफ़ दि इंग्लिश पोइट्स	डा० जानसन	अंग्रेज़ी
लाक्स्ले हाल	टेनिसन	अंग्रेज़ी
लाजपतराय : हिज रेलेवेंस फ़ार आवर टाइम्स	—	अंग्रेज़ी
ला व्राहिसन दे क्लर्क्स	जूलियन वेन्दा	फ्रांसीसी
लार्ड जार्ज वेंटिक—ए पोलिटिकल वायोग्राफ़ी	डिज़रायली	अंग्रेज़ी
लाल क़िले के प्राचीर से	जवाहरलाल नेहरू	हिन्दी
लाला हरदयाल	धर्मवीर	हिन्दी
'लास एंजिलिस टाइम्स' पत्र	अमरीका से प्रकाशित	अंग्रेज़ी
ला सैसियाज़	रावर्ट ब्राउनिंग	अंग्रेज़ी
लिट्रेचर ऐंड डाग्मा (१८७३ संस्करण)	मैथ्यू आनोल्ड	अंग्रेज़ी
लि एटन्नोपीनियन्स द तामस ग्रेनगार्ज	हिपोलाइट तेन	फ्रांसीसी
लिटरेरी कैरैक्टर	आइज़क डिजरायली	अंग्रेज़ी
लिरीकल वैलड्स	वर्ड्सवर्थ व कालरिज	अंग्रेज़ी
लुकिंग फ़ारवर्ड टू दि ग्रेट ऐडवेंचर	वूथ टेर्किगटन	अंग्रेज़ी
लैंकान	चार्ल्स कैलेव कॉल्टन	अंग्रेज़ी
लेक्चर्स आन दि इंग्लिश पोइट्स	हैज़लिट	अंग्रेजी
लेज़र	विलियम हेनरी डेविस	अंग्रेज़ी
लेटर्स टू हिज़ सन	लार्ड चेस्टरफ़ील्ड	अंग्रेजी
लेनिन की संकलित रचनाएं (विविध खंड)	—	अनुवाद
लेनिन के देश में	वावा पृथ्वीसिंह 'आज़ाद'	हिन्दी
ले मिज़रेविल्स	विक्टर ह्यूगो	अंग्रेज़ी
लोकतत्त्वनिर्णय	हरिभद्र	संस्कृत
लोकनीति	विनोबा	हिन्दी
लोकायतन	सुमित्रानंदन पंत	हिन्दी
लोथेयर	डिजरायली	अंग्रेज़ी
लोशियल्स वार्निंग	टामस कैम्पवेल	अंग्रेज़ी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
	व	
वंगीय प्रताप नाटक	हरिदास सिद्धान्तवागीश	संस्कृत
वक्रोक्तिजीवित	कुन्तक	संस्कृत
वत्सराज	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
वनवासी	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अनुवाद
वनस्थली	नाथूराम अग्निहोत्री 'नम्र'	हिन्दी
वयं रक्षामः	आचार्य चतुरसेन	हिन्दी
वरदराज रामायणमु	—	तेलुगु
वर वनिता	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	हिन्दी
वर्क्स आफ़ कीट्स	—	अंग्रेज़ी
वर्क्स आफ़ टेनिसन	—	अंग्रेज़ी
वर्क्स आफ़ वायरन	—	अंग्रेज़ी
वर्क्स आफ़ वर्ड्सवर्थ	—	अंग्रेजी
वर्क्स आफ़ शैले	—	अंग्रेज़ी
वर्ड्स ऐंड ईडियम्स	लोगन पियरसाल स्मिथ	अंग्रेज़ी
वर्द्धमान	अनूप शर्मा	हिन्दी
वल्ली परिणय	भास्कर यज्व	संस्कृत
वशिष्ठ	श्यामनारायण पाण्डे	हिन्दी
वसिष्ठस्मृति	—	संस्कृत
वाणी	सुमित्रानंदन पंत	हिन्दी
वॉइस आफ दि हिमालयाज	स्वामी शिवानंद	अंग्रेजी
वायुपुराण	—	सस्कृत
वारदाते जिगर	'जिगर' मुरादाबादी	उर्दू
वाल्डेन	थोरो	अंग्रेजी
वाल्पोन	वेन जानसन	अंग्रेजी
वि एटशीपीनियन्स दि तामस ग्रेनमार्ग	हिपोलाइट तेन	फ्रांसीसी
विक्रम स्मृति ग्रन्थ संवत् २००१	अ० भा० विक्रम परिषद्, काशी	हिन्दी
विक्रमादित्य	गुरुभक्तसिंह 'भक्त'	हिन्दी
विक्रमोर्वशीय	कालिदास	संस्कृत
विचार और झलकियां	श्री अरविंद	अनुवाद
विचार और वितर्क	हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी
विचारदर्शन	माधव स० गोलवलकर	हिन्दी
विचारपोथी	विनोबा भावे	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
विचार-प्रवाह	हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी
विचार सागर	साधु निश्चलदास	हिन्दी
विचित्र नाटक	गुरुगोविन्दसिंह	पंजाबी
विज्ञाननौका	शंकराचार्य	संस्कृत
विज़्डम ऐंड डेस्टिनी	मारिस मैंटरलिंक	अंग्रेजी
वितस्ता की लहरें	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
विदग्धमुखमंडन	—	संस्कृत
विदुरनीति	—	संस्कृत
विद्धशालभंजिका	राजशेखर	संस्कृत
विद्यापति पदावली	विद्यापति	हिन्दी
विद्यासुन्दर	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	हिन्दी
विनयपत्रिका	तुलसीदास	हिन्दी
विनयपिटक	—	पालि
विनोवा के पत्र	—	हिन्दी
विनोवा के पत्र बजाज परिवार के नाम	—	हिन्दी
विप्रदास	शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय	अनुवाद
विप्लव यज्ञ की आहुतियां	रामप्रसाद 'विस्मिल'	हिन्दी
विबुधानन्दनाटक	शीलांक	संस्कृत
विभूति योग	अखंडानंद सरस्वती	हिन्दी
विमलमित्र की श्रेष्ठ कहानियां	विमल मित्र	अनुवाद
विमलयतीन्द्र नाटक	यतीन्द्र विमल चौधरी	संस्कृत
विमानवत्थु	—	पालि
विराटा की पद्मिनी	वृन्दावनलाल वर्मा	हिन्दी
विविध प्रसंग (१-३)	प्रेमचंद	हिन्दी
विवियन ग्रे	डिज़रायली	अंग्रेज़ी
विवेकचंद्रोदय नाटक	शिव	संस्कृत
विवेकचूडामणि	शंकराचार्य	संस्कृत
विवेकविलास	—	संस्कृत
विवेकशतक	अचिंत्यानन्द वर्णी	संस्कृत
विवेकानन्द-साहित्य (१-१०)	स्वामी विवेकानन्द	अनुवाद
विशाख	जयशंकर प्रसाद	हिन्दी
विशेष आवश्यक भाष्य	—	प्राकृत
विशेप आवश्यक भाष्यवृत्ति	—	प्राकृत

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
विश्व इतिहास की झलक	जवाहरलाल नेहरू	हिन्दी
विश्वामित्र-स्मृति	—	संस्कृत
विषकन्या	शिवानी	हिन्दी
विषपान	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	हिन्दी
विषवृक्ष	बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय	अनुवाद
विष्णुधर्मोत्तर पुराण	—	संस्कृत
विष्णुपुराण	वेन्नलंगटि सूरना	तेलुगु
विष्णुयामल	—	संस्कृत
विष्णुसहस्रनाम	—	संस्कृत
विसुद्धिमग्ग	—	पालि
वीतरागस्तव	—	संस्कृत
वीररसरा दूहा	नरोत्तमदास स्वामी	राजस्थानी
वीणावासवदत्ता	—	संस्कृत
वीर शंख	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
वीर सतसई	वियोगी हरि	हिन्दी
वीराष्टक	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	हिन्दी
वृन्द सतसई	वृन्द	हिन्दी
वृद्धचाणक्य	चाणक्य	संस्कृत
वे आँखें	विमल मित्र	अनुवाद
वेणीसंहार	भट्टनारायण	संस्कृत
वेणु लो गूंजे धरा	माखनलाल चतुर्वेदी	हिन्दी
वेणुवन	रामधारीसिंह 'दिनकर'	हिन्दी
वेदविद्या	वासुदेवशरण अग्रवाल	हिन्दी
वेदान्त छन्दावली (भाग १-५)	स्वामी भोले बाबा	हिन्दी
वेदान्तसार	सदानन्द	संस्कृत
वे दिन	निर्मल वर्मा	हिन्दी
वेनिस प्रिजर्व्ड	टामस आटवे	अंग्रेज़ी
वेन्निल वेलुगुलु	नार्लं कृष्ण राव	तेलुगु
वेब्सटर्स सेविन्थ न्यू कालेजिएट डिक्शनरी (बायोग्राफ़िकल नेम्स वाला अंश)	—	अंग्रेजी
वेमनशतक	वेमना	तेलुगु
वेयरिंग	राबर्ट ब्राउनिंग	अंग्रेजी
वेरा	ऑस्कर वाइल्ड	अंग्रेजी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
वेल्युमार	आदिभट्टल नारायण दासु	तेलुगु
वैदिक रिलीजन ऐंड फ़िलासफ़ी	स्वामी प्रणवानन्द	अंग्रेज़ी
वैदिक संस्कृति का विकास	लक्ष्मण शास्त्री जोशी	अनुवाद
वैराग्यशतक	भर्तृहरि	संस्कृत
वैराग्य संदीपनी	तुलसीदास	हिन्दी
वैराग्य सार	सुप्रभाचार्य	प्राकृत
वैशाली में वसन्त	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
'वैष्णव कविता' लेख	भोलानाथ शर्मा	हिन्दी
वैष्णवीय तंत्रसार	—	संस्कृत
व्यक्तिविवेक	महिमभट्ट	संस्कृत
व्यास पर्व	दुर्गा भागवत	अनुवाद
व्यासप्रशस्तय:	सं० डा० वी राघवन्	संस्कृत
व्यासवाणी	हरिराम व्यास	हिन्दी
व्हाइल इंग्लैंड स्लेप्ट	विंस्टन चर्चिल	अंग्रेज़ी
व्हाट इज़ न्यूज़	चार्ल्स एंडरसन डान	अंग्रेज़ी
व्हाट शैल वी डू देन ?	तॉलसताय	अनुवाद
व्हाट हैपिन्स इन बुक-पब्लिशिंग	जॉन फ़रर	अंग्रेज़ी

श

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
शंकर-सर्वस्व	नाथूराम शर्मा 'शंकर'	हिन्दी
शंखलिखित स्मृति	—	संस्कृत
शक्ति	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
शक्ति-साधना	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	हिन्दी
शतपथ ब्राह्मण	—	संस्कृत
शपथ	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	हिन्दी
शब्दकल्पद्रुम	राधाकान्तदेव	संस्कृत
शरत पत्रावली	शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय	अनुवाद
शरत्-साहित्य	प्र० हिंदी ग्रंथ रत्नाकर (लि०), बम्बई	अनुवाद
शरीर-श्रम	महात्मा गांधी	अनुवाद
शर्मिष्ठा विजय	नारायण शास्त्री	संस्कृत
शर्ले	चार्लट ब्रांटी	अंग्रेज़ी
शान्तिनिकेतन से शिवालिक	सं० डा० शिवप्रसाद सिंह	हिन्दी
शांतिविलास	नीलकंठ दीक्षित	संस्कृत

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
शारदातिलक	—	संस्कृत
शार्ङ्गधरपद्धति	शार्ङ्गधर	संस्कृत
शार्ङ्गधरसंहिता	—	संस्कृत
शाह लतीफ का काव्य	सं० मोतीलाल जोतवाणी	सिन्धी
शिक्षा	श्री मां	अनुवाद
शिष्टाष्टक	चैतन्य महाप्रभु	संस्कृत
शिखरों का सेतु	शिवप्रसाद सिंह	हिन्दी
शिला पंख चमकीले	गिरिजाकुमार माथुर	हिन्दी
शिवतांडवस्तोत्र	रावण	संस्कृत
शिवपुराण	—	संस्कृत
शिवमहिम्नस्तोत्र	पुष्पदंत	संस्कृत
शिवयोग सागरमु	गणपति देवड्डु	तेलुगु
शिवलीलार्णव	नीलकंठ दीक्षित	संस्कृत
शिवसिंह सरोज	शिवसिंह सेंगर	हिन्दी
शिवानी	श्यामनारायण पांडे	हिन्दी
शिवाजीचरित्र	हरिदास सिद्धांतवागीश	संस्कृत
शिवाबावनी	भूषण	हिन्दी
शिशुपालवध	माघ	संस्कृत
शीशदान	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	हिन्दी
शीलपाहुड़	कुंदकुंद आचार्य	प्राकृत
शीशों का मसीहा	फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़'	उर्दू
शुक्रनीति	—	संस्कृत
शृंगार लहरी	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	हिन्दी
शृंगारशतक	भर्तृहरि	संस्कृत
शेखर : एक जीवनी (१, २)	अज्ञेय	हिन्दी
शेरो सुख़न (विविध भाग)	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	हिन्दी
शेष परिचय	शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय	अनुवाद
शेष स्मृतियां	रघुवीरसिंह	हिन्दी
शोला-ए-तूर	'जिगर' मुरादाबादी	उर्दू
शौनकीयनीतिसार	—	संस्कृत
श्याम लता	ठाकुर जगमोहन सिंह	हिन्दी
श्यामा-सरोज	श्यामचरण मिश्र	हिन्दी
श्यामा-स्वप्न	ठाकुर जगमोहनसिंह	हिन्दी
श्रमण महावीर	मुनि नथमल	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
श्राद्धतत्त्व	—	संस्कृत
श्री अरविन्द साहित्यदर्शन	डा० श्याम बहादुर वर्मा	हिन्दी
श्री और सौरभ	उमाशंकर जोशी	अनुवाद
श्रीकृष्ण गीतावली	तुलसीदास	हिन्दी
श्रीगीतागूढ़ार्थदीपिका	मधुसूदन सरस्वती	संस्कृत
श्री गुरुजी समग्र दर्शन	—	हिन्दी
श्री तुकारामचरित : जीवनी और उपदेश	प्र० गीताप्रेस,गोरखपुर	हिन्दी
श्री दादूदयाल जी की वाणी	—	हिन्दी
श्री देवीभागवतम्	दासु श्रीरामुलु	तेलगु
श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य	डा० रामचन्द्र मिश्र	हिन्दी
श्रीभगवन्नामकौमुदी	लक्ष्मीधर	संस्कृत
श्रीमद्भागवतसारार्थदर्शिनी टीका	आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती	संस्कृत
श्रीरमणवाणी (१, २)	—	अनुवाद
श्रीरमणगीता	गणपति मुनि	संस्कृत
श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग (विविध खंड)	स्वामी सारदानंद	अनुवाद
श्री रामपूर्वतापनीयोपनिषद्	—	संस्कृत
श्री रूपभवानी रहस्योपदेश	—	हिन्दी
श्री विष्णुलहरी	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	हिन्दी
श्री विष्णुसहस्रनामस्तोत्र (व्याख्या)	श्रीपाद दामोदर सातवलेकर	हिन्दी
श्री शारदाष्टक	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	हिन्दी
श्रीसूक्त	—	संस्कृत
श्री हरिलीलाकल्पतरु	अचिंत्यानंदवर्णी	संस्कृत
श्रेष्ठ निबन्ध	गणेशशंकर 'विद्यार्थी'	हिन्दी
श्वेताश्वतर उपनिषद्	—	संस्कृत

स

संकल्पसूर्योदय	वेंकटनाथ वेदान्तदेशिक	संस्कृत
संचयन	प्र० साहित्यकार संघ, प्रयाग	हिन्दी
संचिता	काज़ी नज़रुल इस्लाम	बँगला
संत गुरु रविदास-वाणी	प्र० सूर्य प्रकाशन, दिल्ली	हिन्दी
संत रैदास : व्यक्तित्व एवम् कृतित्व	संगमलाल पांडे	हिन्दी
संत रोहल की वाणी	—	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
संतवाणी	सं० वियोगी हरि	हिन्दी
संदेशरासक	अब्दुर्रहमान	हिन्दी
संपूर्ण क्रांति	जयप्रकाश नारायण	हिन्दी
संभाषण	महादेवी वर्मा	हिन्दी
संयुक्त निकाय	—	पालि
संवर्त-स्मृति	—	संस्कृत
संस्कृति का दार्शनिक विवेचन	डा० देवराज	हिन्दी
संशय की एक रात	नरेश महता	हिन्दी
संसार के महापुरुष	पंडित मदनलाल तिवारी	हिन्दी
संस्कृत साहित्य का इतिहास	आचार्य बलदेव उपाध्याय	हिन्दी
संस्कृति का पाँचवां अध्याय	आचार्य किशोरीदास वाजपेयी	हिन्दी
संस्कृति के चार अध्याय	रामधारीसिंह 'दिनकर'	हिन्दी
संस्मरण	बनारसीदास चतुर्वेदी	हिन्दी
सच, कर्म, प्रतिकार और चरित्र-निर्माण आह्वान	राममनोहर लोहिया	हिन्दी
सतसई	तुलसीदास	हिन्दी
सतसई	रसनिधि	हिन्दी
सत्यकाम	सुमित्रानंदन पंत	हिन्दी
सत्यमेव जयते (भाग १)	भारतन पब्लिकेशन, मद्रास	अंग्रेज़ी
सत्यसाई स्पीक्स (विविध भाग)	सत्यसाई बाबा	अंग्रेज़ी
सत्य हरिश्चन्द्र	बल्लिजेपल्लि	तेलुगु
सत्य ही ईश्वर है	महात्मा गांधी	हिन्दी
सत्यार्थप्रकाश	स्वामी दयानंद	हिन्दी
सत्संगमाला	मगनलाल हरिभाई व्यास	अनुवाद
सद्‌गुरु स्वामी गंगेश्वरानंद के लेख तथा उपदेश	स्वामी गंगेश्वरानंद	हिन्दी
सनडायल आफ़ दि सीज़न्स	हाल बोरलैंड	अंग्रेज़ी
सप्तपर्णा	महादेवी वर्मा	हिन्दी
सफ़र	गुरुदत्त	हिन्दी
सभारंजनशतक	नीलकंठ दीक्षित	संस्कृत
समन्वय	डा० भगवानदास	हिन्दी
सम फ्रूट्स आफ़ सालीट्यूड	विलियम पेन	अंग्रेज़ी
समय, समस्या और सिद्धांत	जैनेन्द्र कुमार	हिन्दी
समयोचितपद्यमालिका	प्र० निर्णय सागर प्रेस	संस्कृत

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
समाजवाद	डा० सम्पूर्णानंद	हिन्दी
समालोचनांजलि	महावीरप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी
सम्पूर्ण गांधी-वाङ्मय (विविध खंड)	प्रकाशन विभाग, भारत सरकार	हिन्दी
'सम्मेलन पत्रिका' का लोक-संस्कृति अंक	प्र०-हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग	हिन्दी
सरदार पटेल के भाषण	—	हिन्दी
सरदार पूर्णसिंह के निबन्ध	—	हिन्दी
सरयू की धार	लक्ष्मीनारायण मिश्र	हिन्दी
सरस्वतीकंठाभरण	भोज	संस्कृत
सरस्वतीरहस्योपनिषद्	—	संस्कृत
सर्मन्स	लारेंस स्टर्न	अंग्रेजी
सर्वदर्शनसंग्रह	माधवाचार्य	संस्कृत
सर्वसारोपनिषद्	—	संस्कृत
सर्वोदय	महात्मा गांधी	अनुवाद
सर्वोदय-दर्शन	दादा धर्माधिकारी	हिन्दी
सांख्यकारिका	ईश्वरकृष्णन	संस्कृत
सांख्यदर्शन	कपिल	संस्कृत
सांख्ययोग	अखंडानंद सरस्वती	हिन्दी
सांख्यसार	विज्ञानभिक्षु	संस्कृत
सांग्स आफ़ इन्नोसेन्स	विलियम ब्लेक	अंग्रेजी
सांग्स आफ़ एक्सपीरिएंस	विलियक ब्लेक	अंग्रेजी
साइंस आफ लैंग्वेज	मैक्समूलर	अंग्रेजी
साइलस मार्नर	जार्ज इलियट	अंग्रेजी
साकेत	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
सकित संत	बल्देवप्रसाद मिश्र	हिन्दी
सागरमुद्रा	अज्ञेय	हिन्दी
साजोसाज़	हाफिज़ जालंधरी	उर्दू
सात क्रांतियाँ	डा० राममनोहर लोहिया	हिन्दी
साधना	रायकृष्णदास	हिन्दी
साधना	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अंग्रेजी
साधुबोध	गुलावराव महाराज	अनुवाद
सानंदोपाख्यान	शिवराम	मराठी
सानेट्स	शेक्सपियर	अंग्रेजी
सामवेद	—	संस्कृत

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
सारंगधर	आदि भट्ल नारायण दासु	तेलुगु
सार्टर रिसार्टस़	कार्लाइल	अंग्रेज़ी
सालिलाक्वीज़ इन इंग्लैंड	जार्ज सांतायना	अंग्रेज़ी
सावय धम्म दोहा	देवसेन	अपभ्रंश
सावरकर विचारदर्शन	—	अनुवाद
सावित्री	श्री अरविंद	अंग्रेजी
साहब बीबी गुलाम	विमल मित्र	अनुवाद
साहित्य और जीवन	बनारसीदास चतुर्वेदी	हिन्दी
साहित्य और राष्ट्रीय स्व	डा० फतहसिंह	हिन्दी
साहित्यदर्पण	विश्वनाथ कविराज	संस्कृत
साहित्य देवता	माखनलाल चतुर्वेदी	हिन्दी
साहित्यमुखी	रामधारीसिंह दिनकर	हिन्दी
साहित्य-रत्नाकर	कहान जी धर्मसिंह राजकोट, काठियावाड़	हिन्दी
साहित्य-सहचर	हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी
साहित्य-सुमन	बालकृष्ण भट्ट	हिन्दी
सिंदूर की होली	लक्ष्मी नारायण मिश्र	हिन्दी
सिंहासन द्वात्रिंशिका	सिद्धसेन दिवाकर	संस्कृत
सिक्स क्राइसिस	रिचर्ड निक्सन	अंग्रेज़ी
सिटीज़न आफ़ दि वर्ल्ड लेटर	ओलिवर गोल्डस्मिथ	अंग्रेज़ी
सिद्धराज	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
सिद्धार्थ	अनूप शर्मा	हिन्दी
सिद्धार्थ	हरमन हेस	अनुवाद
सिबिल	डिज़रायली	अंग्रेज़ी
सिम्बलीन	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
सिस्टर निवेदिताज़ वर्क्स (विविध खंड)	भगिनी निवेदिता	अंग्रेज़ी
सीज़फ्राइड	ज्यां जीरोदू	अनुवाद
सीतोपनिषद्	—	संस्कृत
सीन्स आफ़ क्लेरिकल लाइफ़	जार्ज इलियट	अंग्रेज़ी
सीमा-संरक्षण	हरिकृष्ण प्रेमी	हिन्दी
सीरियस रिफ़लेक्शनस आफ़ राबिसन क्रूसो	डेनियल डिफो	अंग्रेजी
सीसम ऐंड लिलीज़	रस्किन	अंग्रेज़ी
सुकथंकर मेमोरियल एडीशन	प्र० कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस, बंबई	अंग्रेज़ी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
सुगंधित संस्मरण	आचार्य चतुरसेन	हिन्दी
सुजान-रसखान	रसखान	हिन्दी
सुत्तनिपात	—	पालि
सुदंसण चरिउ	नयनंदी	अपभ्रंश
सुदामाचरित	नरोत्तमदास	हिन्दी
सुन्दरदास ग्रंथावली	सुन्दरदास	हिन्दी
सुनीता	जैनेन्द्र कुमार	हिन्दी
सुबह् वतन	ब्रजनारायण चकबस्त	उर्दू
सुभाषितरत्नभांडागारम्	प्र० निर्णय सागर प्रेस	संस्कृत
सुभाषितावली	एनगु लक्ष्मण कवि	तेलुगु
सुभाषित-सप्तशती	मंगलदेव शास्त्री	संस्कृत-हिन्दी
सुभाषितावलि	वल्लभदेव	संस्कृत
सुमतिशतकम्	बद्देना	तेलुगु
सुमन	महावीरप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी
सुर्जनचरित	चन्द्रशेखर	संस्कृत
सुश्रुत-संहिता	—	संस्कृत
सूक्ति-त्रिवेणी	—	प्राकृत-पालि-संस्कृत
सूक्तिमुक्तावली	भगदत्त जल्हण	संस्कृत
सूक्तिरत्नहार	सूर्य	संस्कृत
सूक्तिसागर	प्र० हिंदी समिति सूचना विभाग उत्तर प्रदेश	हिन्दी
सूक्तिसुधाकर	गीताप्रेस, गोरखपुर	संस्कृत-हिन्दी
सूत्रकृतांग	—	प्राकृत
सूत्रकृतांगचूर्णि	—	प्राकृत
सूत्रकृतांगचूर्णिभाष्य	—	प्राकृत
सूयगडो	सुधर्मा	प्राकृत
सूरदास	रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी
सूरसागर	सूरदास	हिन्दी
सूर्यशतक	मयूर	संस्कृत
सूर्योपनिषद्	—	संस्कृत
सृष्टि	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अनुवाद
सेंट सेसिलियाज डे	ड्राइडेन	अंग्रेजी
सेवा के मंत्र	जार्ज अरंडेल	अनुवाद
सेवासदन	प्रेमचंद	हिन्दी

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
सैटाइर्स	निकोलस बाइलो	अंग्रेजी
सैम्सन एगोनिस्ट्स	मिल्टन	अंग्रेजी
सोना और ख़ून	आचार्य चतुरसेन	हिन्दी
सोवरन वूमैन	टामस मूर	अंग्रेजी
सोसाइटी ऐंड सालीट्यूड	एमर्सन	अंग्रेजी
सोहराव ऐंड रुस्तम	मैथ्यू आर्नोल्ड	अंग्रेज
सौन्दरानन्द	अश्वघोष	संस्कृत
सौन्दर्यलहरी की हिन्दी टीका	स्वामी विष्णु तीर्थ	हिन्दी
सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद्	—	संस्कृत
स्कन्दगुप्त	जयशंकर प्रसाद	हिन्दी
स्कन्दपुराण	—	संस्कृत
स्कन्दोपनिषद्	—	संस्कृत
स्केचिज़	हैज़लिट	अंग्रेज़ी
स्टैंज़ाज़ फ़ार म्युजिक़	बायरन	अंग्रेजी
स्ट्रे वर्ड्स	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	अंग्रेजी
स्तुतिकुसुमांजलि	जगद्धर भट्ट	संस्कृत
स्थानांग	—	प्राकृत
स्थितप्रज्ञदर्शन	विनोवा भावे	हिन्दी
स्पार्क्स फ़ाम ए गवर्नर्स एन्विल	कन्हैयालाल माणकलाल मुंशी	अंग्रेजी
स्फुट विचार	डा० सम्पूर्णानन्द	हिन्दी
स्मारिका	महादेवी वर्मा	हिन्दी
स्यमन्तकोद्धार	कालीपद	संस्कृत
स्वदेश-संगीत	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
स्वप्नवासवदत्ता	भास	संस्कृत
'स्वराज्य' पत्र (विविध अंक)	सं० राजगोपालाचार्य	अंग्रेजी
स्वरूपगीता	योगेश्वराचार्य	हिन्दी
स्वर्ण किरण	सुमित्रानंदन पंत	हिन्दी
स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन	सं० युधिष्ठिर मीमांसक	हिन्दी
		हिन्दी
स्वामी हरिदासजी : जीवनी और वाणी	प्रभुदयाल मीतल	हिन्दी

ह

हँसें तो फूल झड़ें	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	हिन्दी
हंससन्देश	वेदान्तदेशिक	संस्कृत

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
हठयोगप्रदीपिका	स्वात्मारामयोगीन्द्र	संस्कृत
हनुमानबाहुक	तुलसीदास	हिन्दी
हमारी संस्कृति	डा० राधाकृष्णन्	अनुवाद
हमारे आराध्यदेव	बनारसीदास चतुर्वेदी	हिन्दी
हमारे राष्ट्र-जीवन की परंपरा	उमाकान्त केशव आप्टे	अनुवाद
हमारे संस्कार-गीत	सं० राजरानी वर्मा	हिन्दी
हम्मीर रासो	बोधराज	हिन्दी
हरिऔध सतसई	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	हिन्दी
'हरिजन-सेवक' पत्र (विविध अंक)	सं० महात्मा गांधी	हिन्दी
हरिभक्तिसुधोदय	—	संस्कृत
हरिवंशपुराण	—	संस्कृत
हरी घास पर क्षण भर	अज्ञेय	हिन्दी
हर्षचरित	बाणभट्ट	संस्कृत
हल्दीघाटी	श्यामनारायण पांडेय	हिन्दी
हाइरोग्लिफ़िक्स	फ्रांसिस क्वार्ल्स	अंग्रेजी
हाउ टू स्टाप वरीयिंग ऐंड स्टार्ट लिविंग	डेल कार्नेगी	अंग्रेजी
हारीत स्मृति	—	संस्कृत
हितोपदेश	नारायण पंडित	संस्कृत
हिन्दी काव्य में अन्योक्ति	डा० संसारचन्द्र	हिन्दी
हिन्दी 'नवजीवन' पत्र	सं० महात्मा गांधी	हिन्दी
हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम	सं० डा० वेदप्रताप वैदिक	हिन्दी
हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी
हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास (विविध खंड)	प्र०—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी	हिन्दी
हिन्दी साहित्य कोश (भाग २)	प्र० ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी	हिन्दी
हिन्दुत्व	विनायक दामोदर सावरकर	अनुवाद
हिन्दू	मैथिलीशरण गुप्त	हिन्दी
हिन्दू गणितशास्त्र का इतिहास	डा० एस० एन० सिंह इत्यादि	अनुवाद
हिन्दू पद पादशाही	विनायक दामोदर सावरकर	अनुवाद
हिन्दू समाज : संगठन और विघटन	डा० पु० ग० सहस्रबुद्धे	अनुवाद
हिन्दू सुपीरियारिटी	हर विलास शारदा	अंग्रेजी
हिमकिरीटिनी	माखनलाल चतुर्वेदी	हिन्दी
हिमगिरिविहार	तपोवनम् महाराज	अनुवाद

ग्रंथ/पत्र-पत्रिका/रचना आदि	लेखक/संपादक/प्रकाशक	भाषा
हिस्ट्री आफ़ धर्मशास्त्र	डा० पांडुरंग वामन काणे	अंग्रेज़ी
हिस्ट्री आफ़ फ़िलासफी	हेगेल	अनुवाद
हिस्ट्री आफ़ लिटरेचर	श्लेगेल	अनुवाद
हिस्ट्री आफ़ संस्कृत लिटरेचर	एम० कृष्णमाचार्य	अंग्रेज़ी
हीरो ऐंड लीडर	क्रिस्टॉफर मार्लो	अंग्रेज़ी
हीरोज ऐंड हीरोवर्शिप	कार्लाइल	अंग्रेज़ी
हेनरिएटा टेम्पिल	डिज़रायली	अंग्रेज़ी
हेनरी फ़िफ़्थ	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
हेनरी सिक्स्थ	शेक्सपियर	अंगज़ी
हैंडमेड फ़ेबिल्स	जार्ज एड	अंग्रेज़ी
हैमलेट	शेक्सपियर	अंग्रेज़ी
हैलोड ग्राउंड	टामस कैम्पवेल	अंग्रेज़ी
होमर	जेम्स एंथोनी फ़ाउड	अंग्रेज़ी
होमेज टू दि डिपार्टिड	महात्मा गांधी	अंग्रेज़ी

शुद्धि-पत्र

तृतीय खंड

तृतीय खंड में (सूक्तियों तथा परिशिष्ट में) हुई मुद्रणगत इत्यादि अशुद्धियों का संशोधन नीचे दिया गया है। सन्दर्भगत अशुद्धियों का परिहार करने में तृतीय खंड का परिशिष्ट—१ भी उपयोगी है।

(क) सूक्तियों का शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
९१३	२	अंतिम सूक्ति	[पालि]	[प्राकृत]
९२८	१	प्रथम सूक्ति	लमक्षीनारायण	लक्ष्मीनारायण
९३७	२	अंतिम सूक्ति	२९	२७
९४२	१	राष्ट्रीयता/३	नैस्सन	नसाउ
९४३	२	रुचि/२	सुदंदण	सुदंसण
९४३	२	अंतिम सूक्ति	लेते	लेत
९६५	१	प्रथम सूक्ति	हानमोर	हन्नाह मोर
९७७	१	नवीं सूक्ति	आडियल	आर्डील
९७७	१	अंतिम सूक्ति	पेन्न	पेन
९७७	२	वात्सल्य/३	जातक कण्हदी पायन जातक	जातक (कण्हदीपायन जातक)
९८३	२	शीर्षक-संकेत	विषय	विजय
९८५	२	अंतिम सूक्ति	—	Who overcomes By force, hath overcome but half his foe.
९९५	१	प्रथम सूक्ति	भामिनिविलास	भामिनिविलास
९९५	२	अंतिम सूक्ति	महासुत सोम, जातक	महासुतसोम जातक
१००२	२	तीसरी सूक्ति	वायुराज	मायुराज
१०१६	२	वियोग/१	लामर्टाइन	लामर्ताइन
१०१९	१	अंतिम पंक्ति	समस्या	समस्याएं
१०२०	१	प्रथम सूक्ति	जान पेटिटसेन	ज्तां एंतोइने पेते
१०२०	१	आठवीं सूक्ति	कापस	कापू

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१०२०	२	दूसरी सूक्ति	हिप्पोलाइट टेन	हिपोलाइट तेन
१०२२	२	प्रथम व दूसरी सूक्ति	माइकेल	मिचेल
१०२७	२	दूसरी सूक्ति	whrk	work
१०३२	२	विषय/१	विपयवैषम्यं	विपयवैषम्यं
१०३३	२	अंतिम पंक्ति	बालसुत्तं	उत्तराध्ययन (५।५)
१०३३	२	अंतिम पंक्ति	[पालि]	[प्राकृत]
१०३४	१	प्रथम सूक्ति	कामसुत्तं	उत्तराध्ययन (१४।१३)
१०३६	१	तीसरी सूक्ति	नारीव	नाशिव
१०४५	१	सातवी सूक्ति	नकारा	नक़्क़ारा
१०४६	१	चौथी सूक्ति	ताँबा	तावाँ
१०५४	१	*बीच में 'वैराग्य' शीर्षक	—	अनावश्यक है, काट दें।
१०५४	१	पाँचवीं सूक्ति	कामसुत्तं	उत्तराध्ययन (१३।१६)
१०६२	२	अंतिम पक्ति	विक्रमोर्वशीय	(विक्रमोर्वशीय,...)
१०६३	१	प्रथम सूक्ति	इ पव:	इवेषव:
१०६६	१	अंतिम सूक्ति	सकते थे	सकते हैं
१०७१	२	अंतिम सूक्ति	—	*सूक्ति की भाषा मराठी है।
१०८८	२	दूसरी सूक्ति	निशीथाच्य	निशीथाच्च
१०८६	१	चौथी सूक्ति	कहानी	कहानी-संग्रह
११३३	२	छठी सूक्ति	वमना	वेमना
११३६	१	छठी सूक्ति	रंगनाथ	एकनाथ
११३७	१	प्रथम सूक्ति	—	*सूक्ति की भाषा फ़ारसी है।
११३७	२	दूसरी सूक्ति	मोदामु	मोक्षमु
११३७	२	अंतिम पंक्ति	फ्रैंक्वोइ रेने दि शेतुव्रयंद	फ़्रैंक्वोइ रेने दि शेतु व्रायंद
११४०	१	पाँचवीं सूक्ति	—	*सूक्ति की भाषा फ़ारसी है।
११४०	२	संत/१	गतिरात्मवतां	गतिरात्मक्तां
११४२	१	*पृष्ठ के ऊपर शीर्षक-सकेत	संघर्ष	संत
११४६	१	दूसरी सूक्ति	लोग	लोभ
११५१	२	अंतिम सूक्ति	स्वयम्वरम्	स्वयमम्वरम्
११५२	२	प्रथम सूक्ति	ललाकर	लजाकर
११५२	२	*अंतिम सूक्ति/ प्रथम पंक्ति	—	अंत में—चिह्न दें।
११५२	२	अंतिम सूक्ति/द्वितीय पंक्ति	भार्गे	मार्गे
११५२	२	*अंतिम सूक्ति,की तृतीय पंक्ति	—	द्वितीय पंक्ति में मिलेगी।
११५२	२	अंतिम सूक्ति/तृतीय पंक्ति	शुद्ध मानस :	शुद्धमानस:
११५२	२	*अंतिम सूक्ति की चतुर्थ पंक्ति	—	तृतीय पंक्ति में मिलेगी।

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
११५२	२	अंतिम सूक्ति/चतुर्थ पंक्ति	मैंक्षमा...	भैक्षमा...
११५२	२	*अंतिम सूक्ति की पंचम पंक्ति		चतुर्थ पंक्ति में मिलेगी/
११५२	२	अंतिम सूक्ति/पंचम पंक्ति	सभो	समो
११५३	१	दूसरी पंक्ति	शुक्लघ्यान...	शुक्लध्यान...
११५३	१	दूसरी सूक्ति	परेणौवा...	परेणैवा...
११५३	१	दूसरी सूक्ति	परस्यैंवातमना	परस्यैवात्मना
११५३	१	अंतिम सूक्ति	गृह	गृहे
११५३	२	प्रथम पंक्ति	प्रवृत्तिलक्ष णं	प्रवृत्तिलक्षणं
११५३	२	चौथी सूक्ति	संचिन्वतो	संचिन्वन्तो
११५३	२	चौथी सूक्ति	वृथामिपम्	वृथामिषम्
११५५	२	दूसरी सूक्ति	परिव्राट	परिव्राट्
११५५	२	दूसरी सूक्ति	रण	रणे
११५६	१	दूसरी सूक्ति	जव	अव
११५७	१	पाँचवीं सूक्ति	मित्तिचित्र	भित्तिचित्र
११५८	१	दूसरी सूक्ति	हेराल्ड	हेरोल्ड
११६३	१	संसर्ग/१	सांसर्गिकों	सांसर्गिको
११६३	१	संसार/१	पश्यं	पश्य
११६३	२	पाँचवीं सूक्ति	तस्यावयर्वभूतैस्तु	तस्यावयवभूतैस्तु
११६३	२	अंतिम सूक्ति	अव्यक्तनभिं व्यवतारं	अव्यक्तनाभं व्यक्तारं
११६६	१	पाँचवी सूक्ति	—	*इस सूक्ति की भाषा फ़ारसी है।
११६६	१	अंतिम पंक्ति	किशन चन्द	किशिनचन्द
११७१	१	चौथी पंक्ति	The world	This world
११७५	२	प्रथम सूक्ति	ए० डब्ल्यू	ए० एन०
११८४	१	दूसरी सूक्ति	सम्पन्न	सम्पन्ना
११९४	२	दूसरी सूक्ति	शिवानन्द	शिवानन्द
११९४	२	तीसरी सूक्ति	best	byeste
११९४	२	तीसरी सूक्ति	keep	kepe
११९४	२	तीसरी सूक्ति	चाउसर	चासर
११९४	२	चौथी सूक्ति	आगमेटिस सांइटिएरम	आंग्मेंट्स साइंटिएरम
१२०१	१	सदाचार/४	सरभंग जातक, (जातक पंचम खंड)	जातक (सरभंग जातक)
१२०३	१	तीसरी सूक्ति	द्दिद्ध्यै	सिद्ध्यै
१२०३	२	तीसरी सूक्ति	अन्नतदेव	अनन्तदेव
१२०४	१	पांचवी सूक्ति	२५	२६

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१२०४	१	छठी सूक्ति	प्रमचन्द	प्रेमचन्द
१२०६	१	प्रथम सूक्ति	कामसुत्तं	उत्तराध्ययन (१३/३१)
१२११	१	छठी सूक्ति	time	Time
१२११	१	अंतिम सूक्ति	life	Life
१२१४	१	दूसरी सूक्ति	क्रुध	क्रुद्ध
१२१६	१	प्रथम सूक्ति	समाजदाद	समाजवाद
१२२०	२	प्रथम सूक्ति	पाणिग्रही	पाणिग्राही
१२२०	२	समीक्षक/२	अज्ञात	अर्चितदेव
१२२२	१	समीक्षा/६	—	*हिन्दी अनुवाद के प्रारंभ में जोड़ें— मैं समीक्षा में अपनी परिभाषा से बँधा हुआ हूँ। संसार में...
१२२३	२	तीसरी सूक्ति	धनमिच्छान्ति	धनमिच्छन्ति
१२२३	२	चौथी सूक्ति	ह मूलमर्थस्य	हि मूलमर्थस्य
१२२७	१	*प्रथम सूक्ति के पश्चात्	—	'सरस्वती' शीर्षक दें।
१२३३	२	अंतिम सूक्ति	कम्मसुत्तम्	अज्ञात
१२३५	२	चौथी सूक्ति	क्विकजोठ	क्विकजोट
१२५३	२	सुकमारता/२	अशद	असद
१२५६	१	प्रथम सूक्ति	(पृ० २०)	(तारसप्तक, पृ० २०, कविता 'मृत्यु और कवि')
१२५६	१	आठवां सूक्ति	तिरुवरलूलुवर	तिरुवल्लुवर
१२५९	२	पाँचवीं सूक्ति	रायधारीसिंह	रामधारीसिंह
१२६४	२	सूत्र/२	काशिका	कारिका
१२७८	१	सातवीं सूक्ति	दिवा	दिया
१२७८	१	सातवीं सूक्ति	गुल गूं	गुलगूं
१२८०	२	अंतिम सूक्ति	महाभारत (वनपर्व	वेदव्यास (महाभारत, वनपर्व...
१२८९	२	प्रथम सूक्ति	आज़ादिगी	'आज़ादिगी'
१३०४	२	स्वाभिमान/३	अय्यलर्यिडु	अय्यालार्युडु

(ख) परिशिष्ट का शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ/संकेत
१	१	अकबर इलाहाबादी/३, ४	—	*१०४८ के पश्चात् १०५६ जोड़ें तथा अन्त में १३२६
२	१	अज्ञात—संस्कृत/२	—	*६४५ के पश्चात् जोड़ें—६४८, ६४६, ६५०, ६५६, ६६०, ६६५, ६६८
२	१	अज्ञात—हिन्दी/४	६२५६	१२५६
३	१	अप्पय दीक्षित/१	१५८६	१५६८
४	१	अभिनव गुप्त/४	११६४	१०६६, ११६४
४	२	अयोध्यासिंह···/४	१३२६	१३२७
५	१	अल ग़ज़ाली	—	*दूसरी पंक्ति के पश्चात् जोड़ें—
			पूरा नाम—अबू हामिद अल ग़ज़ाली।	
७	१	आर्चबिशप वाल्टर···/२	कैंटरबरी	कैंटरबरी
७	२	आसन वेलेस	—	*नाम शुद्ध करें—आर्सन वेलेस।
८	२	ई० एम० फ़ार्स्टर/४	द्वितीय	प्रथम
६	१	उमर खैयाम/२	१२२६	१२२६, १३२६
६	२	ऋग्वेद/३	१०६८	१०६२
१०	१	एडले स्टीवेंसन	—	*ठीक क्रम में यह नाम 'एडलाई स्टीवेंसन' के पश्चात् रखें।
१०	२	एडीसन/४	१२०६	१२०५
१२	१	ए० सी० प्रभुपाद/६	तृतीय	द्वितीय
१३	१	कठोपनिषद्/३	१२६५	१२३५
१४	२	कामन्दकीय नीतिसार/४	६६८	६८८
१४	२	कामसुत्तं/५	अन्तराध्ययन	उत्तराध्ययन
१५	१	कालिदास/५	१ १७	१०१७
१५	१	कालिदास/१०	—	*अंत में जोड़ें—१३२५, १३२७, १३३०, १३३१
१५	२	कीट्स/३	१०३५	१०३४
१६	१	केनेथ वाकर/३	८००	*संख्या काटकर लिखें (दे० द्वितीय खंड)
१७	१	खंडो बल्लाल/१	(१७वीं सती	(१६६८-१७२६)

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ/संकेत
१८	२	गुरुदत्त/१	(१८७४)	(१८९४)
२१	१	चार्ल्स कैलब काल्टन/३	९९६, ९९७	९९६, ९७७
२२	१	जगन्नाथ महात्मा/२	१६३०	१६०३
२३	२	जातक/५	११८५	११८६
२४	२	जाफ़र विन…/३	१०४७	१०४१
२५	२	जार्ज मैकाले ट्रैवेल्यन/३	११०६	१२०६
२६	१	जीन वैप्टिस्ट…/१	लोकोर्डायर	लैकोर्डायर
२६	२	जूल्स डि गोनकोर्त/५	ऐंतोदून	ऐंतोइने
२७	१	जेम्स ट्रस्लो ऐडम्स/३	(दे० तृतीय खंड)	११००
२७	१	जेम्स फ़ीमैन क्लार्क/३	(दे० तृतीय खंड)	९१६
२७	१	जेम्स शर्ले/२	६४२	(दे० द्वितीय खंड)
२८	१	टामस आर्नोल्ड/४	(दे० द्वितीय खंड)	(दे० प्रथम व द्वितीय खंड)
२८	१	टामस ओसवर्ट मोरडा/२	भी	खंड
२८	२	टामस मूर/२	(दे० द्वितीय…)	(दे० प्रथम व द्वितीय…
३०	१	किन्स	—	*नाम ठीक करें—डिकिन्स।
३०	१	डिज़रायली/२	—	*अंत में जोड़ें—
			पूरा नाम—वेंजमिन डिज़रायली	
३०	२	णमोक्कारो…/४	५१५	(दे० द्वितीय खंड)
३१	१	तानिगुचि बुसोन/२	५५६	(दे० द्वितीय खंड)
३१	२	तीर्थप्रकाश/४	१२९३	१२८३
३१	२	तुलसीदास/अंतिम पंक्ति	१२६, ६	१२६६
३२	१	तोप/४	१०११	९२५, १०११
३३	१	दत्तोपंत ठेंगड़ी/५	१०८५	१०५८
३३	१	दवीर/३	६७१	(दे० द्वितीय खंड)
३३	१	दयानन्द/४, ५	—	*पंक्तियां काट कर लिखें— ९९१, ११९० (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)
३३	१	दयाबाई/४	५२२, ६५५	१२४०
३३	१	दयाराम/३, ४	—	*दोनों पंक्तियाँ काट कर लिखें — ९४९, १०२६, ११३५ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)
३३	१	दरियासाहब/१	दे० दरिया साहब (विहार वाले)	दे० दरिया साहब (मारवाड़ के)

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ/संकेत
३३	२.	दरियासाहब (मारवाड़ के)/५	(दे० द्वितीय व तृतीय खंड)	(दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)
३३	२	दाग़/२	१३१४	१३१४, १३२९
३४	१	प्रथम पंक्ति	(दे० द्वितीय खंड)	*इसे इसी पृष्ठ पर दूसरे कालम के अंत में जोड़ें।
३४	२	देवीभागवत पुराण/३	९६१, १०४६	९६१, १००१, १०४६
३७	१	नातिक़ लखनवी/२	(दे० तृतीय खंड)	१३२९
३७	१	नाथूराम अग्निहोत्री 'नम्र'/१	१९७७	१९७०
३७	२	*'नारायण स्वामी' के पश्चात्	—	*छूटा नाम जोड़े— नालं कृष्णाराव (समय—?)—भारतीय। तेलुगु-कवि। (दे० द्वितीय खंड)
३८	२	नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद्	६२०	(दे० द्वितीय खंड)
३९	१	पंडितराज जगन्नाथ/३	४३४, ८११	९९५
३९	१	पतंजलि	—	*पंक्ति काट कर लिखें— ९२१, ९७१, १०९८, ११४७ (दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)
४०	१	पार्क बेंजमिन/१	१८०६	१८०९
४०	२	पुष्पदन्त-१/३	(दे० प्रथम खंड)	११०२ (दे० प्रथम खंड)
४०	२	पुष्पदन्त-२/३	११०२	*संख्या काट दें।
४३	१	फ्रांसिस क्वार्ल्स/१	१५०२	१५९२
४४	२	*बलदेव प्रसाद मिश्र के पश्चात्	—	*छूटा नाम जोड़े— बलिजेपल्लि (समय—?)— भारतीय। तेलुगु-कवि। (दे० प्रथम खंड)
४५	२	बिस्मार्क/३	एडुवर्ड	एडुअर्ड
४६	२	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र/४	तृतीय	द्वितीय
५२	१	माइकेल बाकुनिन	—	*परिचय सुधारें—रूसी क्रांतिकारी चिन्तक। पूरा नाम—माइकेल अलेक्सांद्रोविच बाकुनिन।
५२	१	माघ/५	तृतीय	द्वितीय
५३	१	मार्कण्डेय पुराण		*दूसरी पंक्ति के पश्चात् जोड़ें— ११८९ (दे० द्वितीय खंड भी)

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ/संकेत
५५	१	मैक्स म्यूलर/३	(दे० द्वितीय खंड)	१०४७, ११७३
५५	१	मैनार्ड हचिंस/२	३५५	(दे० प्रथम खंड)
५७	१	रघुवीरसिंह/३	द्वितीय	प्रथम
५७	१	रवि साहब/३	(दे० तृतीय खंड)	९२६
५७	२	रवीन्द्रनाथ ठाकुर/४	९७०	९७९
५७	२	रवीन्द्रनाथ ठाकुर/६	तृतीय	द्वितीय
५७	२	रसखान/३	प्रथम खंड	प्रथम व द्वितीय खंड
५७	२	रसरंगमणि/३	तृतीय	द्वितीय
५८	२	राबर्ट बर्टन/३	(दे०···)	१०२३ (दे०···)
५९	१	रामचन्द्र शुक्ल-१/८	खंड	व द्वितीय खंड
६०	१	रामप्रसाद सेन	—	*ठीक क्रम में नाम को 'रामप्रसाद बिस्मिल' के पश्चात् रखें।
६१	२	रुद्रदत्त मिश्र	—	*ठीक क्रम में नाम को 'रुद्रट' के पश्चात् (पृष्ठ ६१ कालम १) रखें।
६२	२	ला रोशेफ़ूकाल्ड/२	फ्रैंकोइ	फ्रंकोइ
६३	१	लियोपांड···	—	*नाम को शुद्ध करें—लियोपाल्ड
६४	१	लोकोक्ति-विदेशी/तुर्की/१	(दे० द्वितीय खंड)	९६६
६६	२	विनायक कृष्ण गोकाक/३	(दे० द्वितीय खंड)	९८०
६७	२	विलियम ग्रीन/३	(दे० तृतीय खंड)	११३८
६७	२	विलियम पिट/३	१०९०	१२९०
६७	२	विलियम पेन/३	तृतीय	प्रथम
६८	१	विलियम रैल्फ़ इंगे/१	१८०६	१८६०
६८	१	विलियम शेंस्टन/१	१७१३	१७१४
६८	२	विशाखदत्त/२	—	*पृष्ठ-संख्याएं काट दें।
६९	१	विष्णु शर्मा/३	९६०, १०१८	९६०, ९७३, ९९५, १०१८
६९	२	विसुद्धिमग्ग/४	१०४५	१०५४
६९	२	वीर कवि/२	(दे० तृतीय खंड)	(दे० द्वितीय खंड भी)
७०	१	वेदव्यास/५	९९२, १९४	९९२, ९९४
७०	२	व्हीलर/३	(दे० तृतीय खंड)	१३१०
७१	२	शाह अब्दुल लतीफ़/३	११९३, ११९५	११९३, १२९५
७२	१	शिवानी/३, ४	(दे० द्वितीय व तृतीय खंड भी)	(दे० प्रथम व द्वितीय खंड भी)

पृष्ठ	कालम	शीर्षक तथा सूक्ति/संकेत	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ/संकेत
७२	२	शेक्सपियर/२	तृतीय	द्वितीय
७३	१	श्यामनारायण पांडे	—	*नाम को शुद्ध करें—श्यामनारायण पाण्डेय
७५	२	सर विलियम अलेक्ज़ेंडर	—	*नाम को ठीक क्रम में 'सर विलियम' के पश्चात् रखें।
७६	१	सरस्वतीरहस्योपनिषद्/३	दे० द्वितीय	दे० प्रथम व द्वितीय
७६	१	सर्वेंटीज़/१	सेरवांटीज़्	मिगेल डि सेरवांटीज सावेद्रे
७६	१	सारदानंद/१	१८६७	१८६८
७७	१	सिद्धसेन दिवाकर/३	द्विंत्रिशिका	द्वात्रिंशिका
७७	२	सिसेरो/२	मारकस सिसेरो	मारकस तूलियस् सिसेरो
७७	२	सीत्कारत्न/३	१३२७	*सख्या काट दें।
७८	२	सूरदास/५	दे० द्वितीय	दे० प्रथम व द्वितीय
७८	२	सेंट आगस्टीन/३	दे० द्वितीय	दे० प्रथम व द्वितीय
७९	१	सेज़रे पावेसे/१	१९०९	१९०८
७९	१	सेसिल जान रोड्स/१	१९४२	१९०२
७९	२	सोमेश्वर/२	१२९५	*यह सख्या काट दें।
८२	१	—	—	*इस कालम का दूसरा नाम शुद्ध कर 'हरिभट्टु' करें
८२	१	हरिहरानद आरण्य/४	प्रथम	द्वितीय
८३	२	हेनरी एडम्स/२	१०९६	*संख्या काट दें
८३	२	हेनरी थ्योडोर टमरमन/३	(दे० द्वितीय खंड)	*यह पंक्ति काट दें।
८४	१	हेमाचार्य/१	१४	१५